Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१४५ Reg. No. A. 708

भाग २५ Vol. 25. मेष, संवत् १९८४ संख्या १ No. 1.

अप्रेल १९२७

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

१—स्याही—[लेखक श्री पं० इन्द्र विद्यालङ्कार, एम० बी० एच० ... ... १

२—चौपायोंका प्रार्थना पत्र—[ले० श्री चिरंजीलाल माथुर बी० ए० एल-टी. ... ८

३—सूर्य्यमंडल—[ले० श्री० शङ्करलाल जौंदल, एम० एस-सी०, एल० एच० एस० ... १२

४—वृक्षोंका भोजन—[ले० श्री० तारादत्त पाँड़े, एम० एस-सी० ... ... १३

५—सुनारोंकी रसायन क्रिया—[ले० श्री० शङ्करलाल जौंदल, एम० एस-सी०, एल० एच० एस० ... ... १७

६—राज्य प्रबन्ध—[ले० श्री० पं० शीतलाप्रसाद तिवारी, 'विशारद' २०

७—आश्चर्य्यजनक किरणें—ले० श्री अमीचन्द्र विद्यालंकार २५

८—वैज्ञानिकीय—[ले० श्री० अमीचन्द्र विद्यालंकार २८

९—नवग्रह—[ले० श्री० अमीचन्द्र विद्यालंकार ३२

१०—नापकी मूल इकाइयाँ—[ले० श्री० निहालकरण सेठी, डी० एस-सी० ... ... ३४

११—समीकरण मीमांसाकी भूमिका—[ले० श्री० पद्माकर द्विवेदी ४१
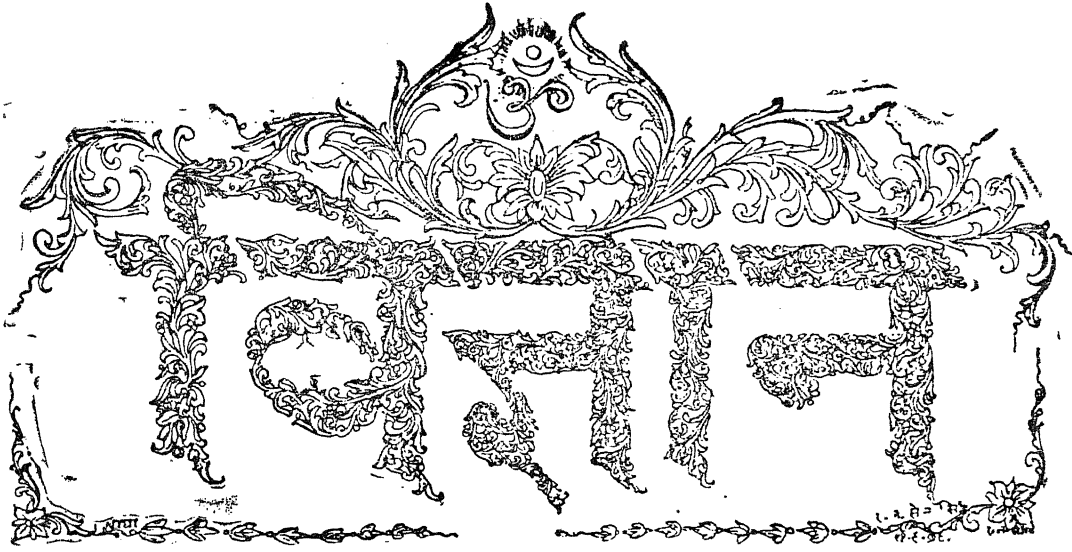
विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २५ } मेष, संवत् १९८४ { संख्या १

स्याही

ऐसा तो शायद ही कोई व्यक्ति होगा, चाहे वह पढ़ा हो या न हो, जिसे किसी न किसी समय* स्याहीसे काम न पड़ता हो। पढ़े लिखे लोगों को तो हरेक समय ही इसकी आवश्यकता रहती है। जो लोग अधिक लिखते रहते हैं वे तो स्वतन्त्र लेखनी (Fountain Pen) में स्याही भर अपने जेबमें उसे रखे रहते हैं। स्याही का हम प्रयोग तो अवश्य करते हैं, एक रङ्गका भी नहीं अनेकों रङ्गोंकी स्याहीका प्रयोग करते हैं पर अभी तक अधिक संख्यक लेखक उसके सम्बन्धमें अधिक ज्ञान नहीं रखते। इसके सिवाय वे और कुछ नहीं जानते कि स्याही एक ऐसा पदार्थ है जिसका अपना कुछ न कुछ रंग होता है, वह स्याही कागज़ इत्यादि पर लिखने के काम आती है। इसके सिवाय उसके सम्बन्ध में हम लोग अधिक जानकारी प्राप्त करनेका यत्न भी नहीं करते। स्याहियाँ भी अनेक प्रकार की होती हैं। उनका वर्णन यथास्थान आगे मिलेगा। यहाँ तो हम इतना ही दिखाना चाहते हैं कि अच्छी स्याहियों में दो विशेषतायें होनी चाहिएँ। एक तो यह कि बहुत समय के बीतने पर भी उसकी रंगत फीकी न पड़ने पाये और दूसरी यह कि जिस कलम से लिखा जाय वह उसे खराब न करे।

इतिहास

स्याही के सम्बन्ध में ऐतिहासिकों के अनेक मत हैं। परन्तु इस बात में तो सभी सहमत हैं कि जब

*प्रारम्भ में स्याह (कालत) से ही स्याही बनाने के कारण सम्भवतः स्याही को स्याही कहा जाता है।

तक स्याही का आविष्कार नहीं हुआ था तब तक लोग मिट्टी के ठीकरों पर लिखा करते थे। रूम में एक ऐसा पुस्तकालय मिला है जिसकी पुस्तकें पके ठीकरों पर छपी हुई हैं। ज्ञात होता है कि मिट्टी पर लिख कर उन्हें फिर पका लिया गया होगा। असीरिया और मिश्र की भी सभ्यता पुरानी है। वहाँ पर पत्थरों और दीवारों पर छेनियोंसे खोदकर लिखा करते थे। यूनान और रोममें किसी तख्ती पर मोम चढ़ा उसपर नोकीली चीज़से लिखनेका आम रिवाज़ था। स्याहीसे लिखनेका प्रचार चीन और जापानमें यूरपसे बहुत पहले था। वे लिखनेके लिये ब्रुश काममें लाया करते थे। इतिहासप्रसिद्ध प्लिनी Pliny और Vitruvious विट्रूवियस ने अपने लेखोंमें स्याहीका वर्णन किया है। डिसकारडीज Discoridies ने तो स्याहीका नुसखा भी दिया है। यूनान वालोंकी स्याही वैसाही थी जैसी चीनियोंकी। आजकल भी छापेखानेकी स्याहीमें चिरागकी कालस Soot का अधिक उपयोग होता है। वे लोग भी इसी से स्याही बनाया करते थे।

भारतवर्षमें तो लेखन-कलाका बहुत प्राचीन समयसे रिवाज चला आरहा है। जबतक लेखन-कला का आविष्कार नहीं हुआ था तब तक तो सब काम स्मरणशक्ति से ही लिये जाते थे। परन्तु यह स्पष्ट है कि बौद्धकाल से भी बहुत पहले भारतीयोंको स्याही से लिखनेका ज्ञान था। लिखनेके लिये कालसकी स्याही और भोज पत्र काममें आते थे। ताम्र पत्र पर लिखने की भी प्रथा उस समय थी। चिरस्थायी लेखोंमें ताम्र पत्र ही काममें लाये जाते थे। भारतवर्षमें जो कागज़ और जो स्याही बनती थी, वे दोनो बहुत अच्छी होती थीं। यही कारण है कि भारतीय हस्तलिखित पुस्तकोंके रंगमें इतना समय गुजरने पर भी कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। तमस्सुक और सरकारी कागज़ात देखने से तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे लोग रंगबिरंगी स्याही बनाने में बड़े चतुर थे अभी तक ऐसे पत्र मिलते हैं जो ८०० वर्ष पहले लिखे गये थे परन्तु आज भी उनकी स्याहीकी रङ्गत में बहुत ही कम अन्तर आया है। आज कल जो स्याहियाँ काम आती हैं। वे जल्दी ही फीकी पड़ने लग जाती हैं। कभी कभी तो वे इतनी अधिक फीकी पड़ जाती हैं कि उनसे लिखे हुए को पढ़ना भी कठिन हो जाता है। इसका कारण यह नहीं कि आजकल देर तक ठहरने वाली स्याहियाँ बनती नहीं। चिरस्थायी स्याहियाँ बनती अवश्य हैं पर हमारे दैनिक जीवन में काम आने वाली स्याहियाँ चिरस्थाई नहीं होतीं। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है त्यों त्यों हवाका तो उन पर असर होता ही है साथ ही साथ कागज़का भी असर होताहै जिससे वे बिगड़ जाती हैं।

वास्तवमें स्याहीका पक्कापन केवल स्याहीके मसाले पर ही निर्भर नहीं करता, किन्तु कागज़की बनावटका भी उसपर असर पड़ता है। आजकल कागज़के बनाने उसे धोने और साफ करनेमें चूना और हरिन Chlorine इत्यादि पदार्थ काम आते हैं। अच्छी तरह धो देनेके बाद भी कागज़का पदार्थोंके रङ्ग उड़ाने में काम आने वाले रसायनिक पदार्थोंकी कुछ न कुछ मात्रा उनमें अवश्य रह जाती हैं। वह धीरे धीरे स्याही पर अपना असर डालती रहती है। अगर उसी स्याहीसे चमड़े पर लिखा जाय तो शायद उसका रंग अपेक्षाकृत अधिक समय तक वैसेका वैसा ही बना रहे। इस लिए चिरस्थाई प्रमाणपत्रों तथा अन्य लेखोंके लिए या तो कागज बहुत शुद्ध हो, उसमें रसायनिक पदार्थ बिलकुल न रहने पावें अथवा कागज़ पर उन्हे न लिख कर किसी और चीज़ पर लिखा जाय। अमेरिकामें ऐसी पुस्तकोंके लिए अलुमीनियमके कागज़ोंका अविष्कार किया गया है। कई समाचार पत्रों ने अपने पत्रोंको चिरस्थाई फाइल रखनेके लिए बढ़िया शुद्ध कागज तैयार किया है जो देर तक खराब न होगा।

जो कागज़ हरिन (Chlorine) से धोकर बनाया जाता है वह जल्दी ही भुरभुरा हो जाता है और कुछ समय बाद वह इतना कमज़ोर हो जाता है कि उसे जहांसे उठाइये वहींसे वह अलग हो जाता है। उसका रङ्ग पीला पड़ जाता है। छापेकी स्याही तो उसपर वैसीकी वैसी ही रहती है क्योंकि चिरागकी कालिखसे

बनी स्याही पर हरिनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता। पर स्याहीके वैसे बने रहनेसे क्या लाभ। संस्कृतमें एक उक्ति प्रसिद्ध है" "सति कुड्ये चित्रं कुड्याभावे कुतश्चित्रम्" कोई आधार हो तो उसपर चित्र खींचा जाय जब आधार ही नहीं तो चित्र किस पर खींचे। यह उक्ति यहाँ ठीक उतरती है। जब कागज ही नहीं रहेगा तो स्याही किस पर रहेगी। पुराने समय के कागज इसीलिए खराब नहीं होते क्योंकि उनके रङ्ग उड़ानेके प्रलोभन में उनके बनाने वाले नहीं पड़ते थे। वे अधिकतर कपड़ेसे कागज बनाते थे। वह इतना अधिक सफेद तो नहीं होता था परन्तु कुछ सफेद अवश्य होता था। वह कागज देर तक खराब नहीं हो सकता था। आज कल भी कालपी आदि स्थानोंमें बहियोंके लिए ऐसा ही कागज तैय्यार किया जाता है। इसमें आवश्यक चिकनाई उत्पन्न करनेके लिए उसे तख्तेपर रखकर पत्थर से खूब घोट दिया जाता है।

बहुत समय तक तो स्याही अनुमानसेही तैयारकी जाती थी। उसके लिए कोई विशेष अनुपात नियम नहीं था। १८ वीं सदीकी समाप्ति पर लूइसने पहले पहल स्याही बनानेमें विज्ञानकी सहायता ली। इसके बाद इस क्षेत्रमें बर्जीलियस और बाटचरने अधिक काम किया। विज्ञानके आश्रयमें स्याही बनानेका जो कार्य प्रारम्भ हुआ उसमें दो बातोंकी ओर ध्यान दिया गया एक तो यह कि कागजको श्वेत बनानेकेलिए काममें लाये जाने वाले चूना हरिन आदि पदार्थोंका स्याही पर कोई असर न हो और दूसरे यह कि जिस कलम (Nib) से लिखें उस पर भी उसका कोई असर न हो सके। वह स्याहीसे खराब न होने पावे। जब तक इन निबोंका अविष्कार न हुआ था तब तक लोग सरकण्डों अथवा परोंसे लिखा करते थे। वे स्याहीसे जल्दी खराब न होते थे। पर ये निब लोहे या अन्य धातुओंके होते हैं। यदि स्याहीमें हलका सा भी तेजाब हुआ तो उस तेजाबसे पंख अथवा सरकंडे के कलमतो खराब न होते थे पर ये झट खराब हो जाते हैं। निब की रक्षाके लिए उसपर सोने आदिका ऐसी धातुओंका मुलम्मा भी किया गया जिनपर तेजाब की क्रिया जल्दी नहीं होती। परन्तु मुलम्मा देर तक नहीं ठहरता कुछ समय बाद जब मुलम्मा उतर जाता है तब फिर वही अड़चन सामने आ खड़ी होती है। Necessity is the Mother of invention आवश्यकता आविष्कारोंकी जननी है, इस सिद्धान्तके अनुसार वैज्ञानिक अच्छी अच्छी स्याहियोंके तैय्यार करने में लगे ही रहे और उन्हें इसमें सफलता भी प्राप्त हुई। स्याहियोंका प्रयोग तथा उन पर वैज्ञानिक अन्वेषण इतना अधिक हुआ है और हो रहा है कि यह भी विज्ञानका एक बड़ा भारी विस्तृत अङ्ग बन गई है।

स्याहियोंके भेद

प्रयोग की दृष्टिसे स्याहियाँ अनेक प्रकारकी हैं। कोई किसी काम आती है और कोई किसी उनको मुख्य रूपसे निम्न भागोंमें बांटा जा सकता है।

(१) लिखनेकी स्याही—यह स्याही द्रवावस्थामें कलमसे लिखनेके काम आती है। उससे मिलती जुलती नकल करनेकी स्याही (Duplicating ink) होती है। वह ऐसे लिखनेके काम आती है जिससे दूसरे कागज पर नकल उतारी जासके।

(२) (Hektographing) एक विशेष प्रकारके कागजपर इससे लिखकर अनेक प्रतियां उतारी जा सकती हैं।

(३) स्याहियों की बुकनी—इन्हे पानीमें घोलनेसे लिखनेकी स्याही तैयार हो जाती है।

(४) स्याही की पैंसिल –इन पैंसिलोंके घोलनेसे भी स्याही तैयार हो जाती है। भीगे कागज पर लिखनेसे तो ऐसा पता लगता है कि मानो एनिलीनके रङ्गोंसे बनी स्याहीसे लिखा हो। जैसे कौपीइङ्ग पैंसिल।

(५) चित्रकारीकी स्याही—यह चित्रकारीमें रंग भरने के काम आती है।

(६) (Lithographing Ink) वे स्याहियाँ जो छापनेके लिए पत्थर पर लिखनेके काम आती हैं। इनपर अम्लादिका प्रभाव नहीं पड़ता।

(७) निशान लगानेकी स्याही (Marking Inks) ये स्याहियाँ कपड़ों पर ऐसे निशान लगानेके काम आती हैं जो धुलनेसे मिटे नहीं।

(८) छापेखानेकी स्याहियाँ
इनमें वे स्याहियाँ भी शामिल हैं जो कि छींट बनाने के काममें लाते हैं। टाइपराइटरके फीतेकी भी स्याही इसी श्रेणीकी होती है।

रासायनिक गवेषणाओंके प्रारम्भ होनेसे पहले भी कई स्याही रासायनिक क्रियासे तैयारकी जाती थी। इन क्रियाओं में धातुओंपर अम्लकी क्रिया कराई जाती थी। जैसे काली स्याही लोहे और टैनीनको मिलाकर तैयारकी जाती थीं। बहुत समय तक यही समझा जाता रहा कि टैनीन एक ही वस्तुमें से निकल सकती है। पर अब अन्य अनेक पदार्थ पाये जाते हैं जिनमें टैनीन मिल सकती है। उन पदार्थों की भिन्न भिन्न मात्रामें भिन्न भिन्न राशि टैनीनकी उपस्थित होती है। इसलिये इस भेदके कारण आज कल एक ही स्याहीके सैकड़ों नुसखे बन गये हैं। इन सबमें रासायनिक क्रिया एक ही होती हैं। भेद केवल इतनाही है कि टैनीनकी आवश्यक राशि प्राप्त करनेके लिये स्याही बनानेके लिये काममें लाये जाने वाले पदार्थ भिन्न भिन्न मात्रामें लिये जाते हैं।

लिखनेकी स्याही

काली, नीली बैंजनी और लाल इत्यादि अनेक रंगोंकी स्याहियाँ लिखनेमें काम आया करती हैं। एक अच्छी स्याहीमें निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिएँ।

१—स्याहीका रंग स्थिर हो।

२—स्याही खूब चलने वाली है। उस स्याहीसे लिखनेमें कलम न रुके।

३—स्याही काग़ज़में खूब गहराई तक घुस जाये। परन्तु वह ऐसी न हो कि काग़ज़के पार ही हो जावे और दूसरे पृष्ठपर दीखने लगे जिस में दूसरा पृष्ठ फिर लिखनेके काम ही न आ सके।

४—दवातमें पहुंच कर वह अधिक गाढ़ी न हो जावे और नहीं उस पर फूई ही लगे।

५—निबपर उसकी कोई रासायनिक क्रिया न हो।

६—उसमें चिपचिपाहट अथवा चिकनापन न हो जिससे कि वह जल्दी सूखने न पावे।

७—उसमें अच्छी चमक हो। जिससे लिखा हुआ देखकर देखने वालेका मन प्रसन्न हो।

८—वह कागज़पर फैलती न हो।

अच्छी स्याही वही है जिससे लिखनेपर कागज़ पर साफ रङ्ग आजाय और हरेक उससे लिखे हुएको सुगमतासे पढ़ सके। उससे लिखे हुए को पढ़नेमें किसीको कष्ट न हो। स्याही उत्तम वही होती है कि उससे चाहे जितनी भी पतली रेखा क्यों न डाली जाय वह स्पष्ट आये और उतनी ही तथा वैसे ही आये जैसी कि रेखा डाली गई है। कई स्याहियां निब पर जम जाती हैं जिससे ऐसे स्याहियोंसे लिखने पर निब थोड़ी ही देरमें मोटा तथा भद्दा लिखने लगता है। कभी कभी अच्छी स्याहीमें भी यह दोष आजाता है। उसका कारण होता है पानीका वाष्प बनकर उड़ जाना। पानी उड़ जानेसे स्याही गाढ़ी हो जाती है और लिखते समय निब पर जमने लगती है। उस समय स्याहीमें पानी मिलानेसे वह ठीक हो जाती है। परन्तु कितनी ही स्याहियाँ पानी मिलाने से ठीक नहीं होती हैं। उस समय यही समझना चाहिये कि स्याही ख़राब होगई है। उसे धोकर साफ कर देना चाहिए और उसके स्थान पर नई स्याही काममें लानी चाहिए। लिखनेकी स्याही तो वही अच्छी होती है जो खूब चलती हुई हो। परन्तु नक़ल करनेकी स्याही ठीक इसके विपरीत खूब गाढ़ी होती है। वह लिखनेकी स्याहीकी तरह तरल नहीं होती है। कभी कभी लोग भूलसे नक़ल करनेकी स्याहीको लिखनेके काम ले आते हैं। उस अवस्थामें वह ठीक काम नहीं देती है। न तो उससे लिखते ही बनता है और न वह सूखती ही है। कागज़ चिपचिपाने लगता है। अक्षर बिगड़ जाते है। कागज़ आपसमें चिपक जाते हैं। उस समय स्याहीको दोष देना सरासर भूल करना है। जिस कामके लिये वह बनाई ही नहीं गई उससे वह काम लेना सरासर भूल है। दोष है काम लेने

वालों का जो बैल से घोड़े का काम निकालना चाहते हैं। इसलिये जो स्याही जिस कामके उपयुक्त हो उसको उसी काम में प्रयुक्त करना चाहिये । नकल करने की स्याही मे गोंद होता है। इसी से कागज़ एक दूसरे से चिपकते हैं । इसलिये यदि कोई उस से लिखना भी चाहे तो पहले उसेमें पानी डाल कर उसे खूब पतला कर लेना चाहिये ।

स्थिरता (Durability)—यह भी स्याहियोंका एक विशेष गुण है। उसका रंग इतना पक्का होना चाहिए कि वह देर तक खराब न होने पावें । कागज़ में चाहे नमी भी क्यों न हो पर उससे लिखने पर अक्षर न फैलें । ये गुण बाज़ारू स्याहियो में कम मिलते हैं। बहुतसी स्याहियोंमें फूई ही लग जाती है। फूईका कारण है सड़ना। सड़ांदका कारण है कृमि-संसार । उसकी उत्पत्तिको रोकनेके लिये कार्बोलिक अम्ल अथवा सैलीसिलिक अम्ल या ऐसी कोई चीज़ उनमें मिलाई जानी चाहिए। इन चीज़ों की उपस्थिति में न सडांद होगी और न फूई ही लगने पावेगी ।

पक्कापन (Indelibility)—सरकारी लेखे प्रमाण पत्र, तमस्सुक, दान पत्र और वसीयत इत्यादि अनेक सुरक्षित रखने योग्य लेखोंके लिये ऐसी स्याही की आवश्यकता होती है जो कि सैकड़ों वर्षों के बाद भी जैसी की तैसी बनी रहे । उनमें कोई खराबी न आने पाये। यदि कोई उनका रङ्ग उड़ाना भी चाहे तो वह रंग उड़ानेमें सफल न हो सके। ऐसा शायद कोई रङ्ग होगा जिस पर रासायनिक विरञ्जकों (Bleachsing Agent) का प्रभाव न पड़ता हो। साधारण स्याहियोंका रंग तो बिना विशेष परिश्रमके सुगमता से ही उड़ाया जा सकता है । परन्तु चिराग के कालस Soot से जो स्याही बनती है वह पक्की होती है। कालस शुद्ध कर्बन है । उस पर रासायनिक पदार्थोंका क्यों प्रभाव पड़ने लगा । इसीलिये कालिख से बनी स्याहियोंसे लिखे हुए को मिटाया नहीं जा सकता न उनका रग उड़ाया जा सकता है। छापेकी स्याही इसीलिये चिरस्थाई होती है। कालसके सिवाय अन्य भी एकाध ऐसे ऐन्द्रियिक (Organic) पदार्थ हैं जिनका रंग पक्का होता है। पक्की स्याही वही होती है जिनका रंग देर तक वैसाका वैसा बना रहे और उसके रंगको आसानीसे उड़ाया न जा सके।

काली स्याही

लिखनेके काम आने वाली काली स्याहियाँ मुख्य रूपसे दो तरहकी होती हैं एक तो वे जिनमें टैनीन होती है और दूसरी वे जिनमें यह नहीं होती। टैनीनकी वस्तुओंके भेदसे भी आगे चलकर काली स्याहियोंके अनेक भेद हैं परन्तु मुख्य यही दो भेद है यहाँ हम उनके और अवान्तर भेदोंपर ही कुछ प्रकाश डालनेका यत्न करेंगे।

टैनीनसे बनी स्याहियां—इन स्याहियोंमें मुख्य रूपसे लोहे का टैनित (Iron Teinat) होता है यह पदार्थ लोहे और टैनिक अम्लका एक समास है। टैनिक अम्ल कीकर, खैर, आंवला, माजूफल, बहेड़ा इत्यादि अनेक पदार्थोंमेंसे प्राप्त होता है। रसायनिक दृष्टिसे ये सब टैनिक अम्ल एक ही जैसे हैं परन्तु फिर भी इनके गुणोंमें भेद होता है। लोहे और टैनिकाम्लके मिलानेसे उनके प्राप्तिके भेदसे उनके समासोंके रङ्गों में भी विभिन्नता होती है। कभी तो लोहेके समास का रङ्ग होता है हरा, कभी जामनी और कभी स्याह परन्तु अन्तमें ये सब रंग काले पड़ जाते हैं। ये स्याहियाँ अधिक पक्की नहीं होती हैं।

टैनीनका निर्माणः—.

टैनीन अधिकतर हरड़, आमला, माजूफल, खैर और कीकर से प्राप्तकी जाती है। विदेशोंमें विलोफर चेस्टनट, और अन्य अनेक वनस्पतियोंसे भी टैनीन (टैनीकाम्ल) प्राप्त किये जाते हैं। किसी वनस्पतिके तो छिलकेमें यह बहुत होती है और किसीके फलमें। जिस वनस्पतिके जिस भागमें यह अधिक होती है उसका वही भाग काममें लाया जाता है । हरड़, आमला और माजूफल इनके तो फल काम आते हैं और खैर तथा कीकरकी छाल।

पौदोंमें प्रायः ऐन्द्रियिक अम्ल हुआ करते हैं। ये अम्ल पानीमें जल्दी घुल सकते हैं। इनमेंसे कितनोंका ही स्वाद कसैला होता है। इन्हींको टैनिकाम्ल कहते हैं। यदि अण्डेकी जिलेटीनसे टैनीन मिलाये जाँय तो एक ठोस पदार्थ बन जाता है। यह एक समास होता है। अण्डेकी सफेदी और कच्ची बिना कमाई खालपर टैनीनका बहुत प्रभाव होता है। कच्ची खालको सुरक्षित करनेके लिये उसे टैनीनके घोलमें रखा जाता है। इस प्रकार रखनेसे वह धीरे धीरे घोल मेंसे टैनीन चूस लेती है। फिर वह चाहे पानीमें ही क्यों न पड़ी रहे वह इस टैनीनके कारण सड़ने नहीं पाती। जब कच्ची खाल नर्म और चिकनी हो जाती है तब उसे चमड़ा कहते हैं।

टैनीनका दूसरा गुण यह है कि वे लोहेके लवणों से मिलकर चिपचिपे हो जाते हैं। ये स्याहीका काम देते हैं। ये स्याहियाँ जल्दी ही सड़ कर खराब हो जाती हैं।

हरड़ोंमेंसे प्राप्त टैनिकाम्ल (wuerci Tannic acid)—यह हरड़ोंमें विशेष रूपसे उपस्थित होता है। यह अम्ल पानी, शराब और ईथरमें अच्छी प्रकार घुल सकता है। इसके इस गुणके कारण इसे हरड़ोंसे अलग करनेमें बड़ी आसानी होती है। हरड़ोंको खूब कूटकर उसमें पर्याप्त ईथर डाल देते हैं। फिर कुछ देर पड़ा रहने देते हैं। ईथरमें टैनीन घुल जाते हैं। अब छाननेसे ईथरमें टैनीनका घोल अलग हो जाता है। इस घोलको एक चौड़े बर्तनमें रख देते हैं। इसका रंग पीला सा होता है। ईथर धीरे धीरे उड़ जाता है। पीछे टैनीनका चूर्ण शेष रह जाता है।

यदि हरड़ोंको १२, १५ दिन पानीके घोलमें सड़ने दें तो उनमें एक रसायनिक परिवर्तन हो जाता है उनमेंसे अभी जो हमने अम्ल प्राप्त किया वह अपनी सत्ता खो गैलिकाम्लGallic Acid में परिवर्तित हो जाता है। इस अम्ल के साथ लोहेके समास नीला रंग देते हैं। यह अम्ल आमकी छालमें भी होता है। इस अम्लको २१०° से २१५°श० तक तक गर्म करने पर इससे (Pyrogalic Acid) बनता है जो लोग फोटोग्राफीका काम काम करते हैं वे इस अम्लसे अच्छी तरह परिचित होंगे। यह अम्ल लोहेके साथ नीला रङ्ग देता है। गैलिकाम्ल अण्डेकी जर्दीके साथ मिलकर कोई ठोस लवण नहीं बनाता।

कत्थेसे भी टैनिकाम्ल निकलता है। कत्था खैरकी छालसे बनता है। खैरकी छालमें टैनिकाम्ल बहुत होता है। छालको पानीमें उबाल कर छान लेते हैं। छने हुए भागमें गन्धकाम्ल डालनेसे एक प्रकारका निक्षेप बैठ जाता है। उसे सीसक कर्बनित (Lead Carbonate) के साथ मिलकर उबालनेसे उनमें परस्पर क्रिया हो जाती है। सीसकका अविलेय गन्धित बन जाता है और टैनीन स्वतन्त्र हो जाता है। छानने पर गंधित तो ऊपर ही रह जाता है और टैनीन पानीमें घुला हुआ नीचे आ बैठता है। पानीके स्थान पर ईथर काममें लानेसे अम्ल अलग करनेमें सुगमता होती है। इस टैनिकालको Catechu Tannic कत्था टैनिकाम्ल कहते हैं इसके साथ लोहेकी क्रिया होनेसे मैले, हरे से रंगका घोल बनता है। यही इसकी विशेषता है।

टैनिक अम्लोंके अन्य अनेक भेद हैं जैसे kino Tannic Acid और Mori Tanic acid इत्यादि। इनके साथ लोहेका लवण काला हरा सा रङ्ग देते हैं।

ये सब टैनिकाम्ल स्याही बनानेके काम आते हैं। इसी लिए इस प्रकरणमें इनका उल्लेख किया गया है यद्यपि इनकी लोहेके लोहस Ferrus या Ferric या लोहिक लवणों पर भिन्न भिन्न क्रिया होती है, और एक की क्रियासे बने समास का रंग प्रारम्भमें दूसरे की क्रियासे बने समासके रंगसे मिलता परन्तु अन्तमें सब एक ही अवस्थामें परिणत हो जाते हैं। सबका रंग काला हो जाता है। लोहस लवण भी वायुसे ओषजन लेकर उपचित Oxidised हो जाते हैं और लोहिकमें परिवर्तित हो जाते हैं।

नीचे संक्षेपमें चित्रपटके द्वारा यह दिखाया गया है कि भिन्न भिन्न टैनिकाम्लों की लोहे के लोहस और लोहिक अम्लों पर क्रिया होनेसे बने समासोंके क्या रंग होते हैं।:—

		लोहस लवण	लोहिक लवण
querci Tannic Acid (हरड़ोंका टैनिकाम्ल)	+	....	काला सा नीला
Gallic Acid (गैलिकाम्ल)	+	....	गहरा नीला
Pyrogallic Acid (पर गैलिकाम्ल)	काला सा नीला	......	+
कत्थेका टैनिकाम्ल (Catechu Tannic Acid)	....	मैला हरा	मैला हरा
Kino Tannic Acid		+	काला सा हरा
Mori Tannic Acid	....	+	गहरा सा हरा

शुद्धावस्थामें टैनीन प्राप्त करनेमें एक तो समय बहुत लगता है और दूसरे व्यय भी बहुत होता है। इस लिए शुद्धावस्थामें बिना तैयार किए ही इन्हे काममें लानेके लिए स्याहीमें वे चीजें काममें लाई जाती हैं जिनसे टैनीन प्राप्त होते हैं। गहरी काली स्याही तैयार करनेके लिए हरड़ोंकी टैनीन अधिक अच्छी होती है। गाढ़ी स्याहीके लिए हरड़ें पूरी की पूरी काममें लाई जाती हैं परन्तु इसमें उतनी सफाई नहीं आने पाती जितनी हरड़ों से टैनीन निकाल कर काममें लानेसे आती है।

स्याहियोंके काममें आने वाला कच्चा माल

(१) हरड़ें--ये कई प्रकारकी होती हैं। इन्हें Gall-nuts भी कहते हैं। कोई हरड़ तो पत्तोंपर कीड़ोंकी क्रिया से और कोई विशेष विशेष पेड़ोंके फलोंपर जैसे ओकको कृमियोंकी क्रियासे बनती है। कइयों में कृमि अन्दर ही मर जाते हैं। जिनमें कृमि अन्दर ही में मर जाते हैं वे उनका घर होती हैं। कृमि घर बनाकर चारों ओर से बन्द कर लेता है और वहीं उसका अन्त हो जाता है। इनमें टैनीनकी मात्रा भिन्न भिन्न होती है। हंगरी और एशिया कोचककी हरड़ें स्याही के काम अधिक आती हैं क्यों कि उनमें टैनीन बहुत होता है। भारतवर्षमें बड़ी हरड़ फलके रूपमें मिलती हैं। हरड़ बहेड़ा और आँमला ये तीनों वस्तुयें आँख के लिये बड़ी उपयोगी होती हैं।

चर्मकार लोग कच्ची खालको ठीक करनेके लिए हरड़ोंका बकला भी काममें लाते हैं। उसी बकलेको स्याही बनानेके लिये फिर काम लायाजा सक्ता है। हरड़ोंमेंसे निकाला हुआ टैनिक अम्ल तैयार किया हुआ भी बिकता है। इसका रंग कुछ मटमैला सा होता है। अच्छा अम्ल वही होता है जो पानीमें सारेका सारा घुल जाय नीचे न बैठे। इसका स्वाद कसैला सा होता है। इसके खानेसे मुँहमें कुछ खुश्की सी मालूम होती है। जो लोग कीकरकी दातुन करते हैं उन्हें इसका अनुभव होगा। जगहकी तंगी और शुद्धताके लिए तो शुद्ध अम्ल ही काममें लाना चाहिए। यदि इसे वायुमें खुला पड़ा रहने दें तो यह खराब हो जाता है। इस लिये इसे बन्द डब्बेमें सूखी जगह रखना चाहिए। गीली हवामें टैनीन बहुत ही जल्द बिगड़ जाता है।

Cutch (कच)—यह दो तरहका होता है। पीले और भूरे रंग का। पीला कच अधिक उपयुक्त होता है। इसमें कत्थेका टैनिकाम्ल बहुत मिला रहता है। बाजारमें यह शुद्धावस्थामें कम मिलता है। कभी कभी तो इसमें कत्था और ४० °/₀ तक ढैलका खून भी मिला रहता है।

Gun Kind और Fustic ये भी स्याही बनानेके काममें आते हैं। उनके विषय में यहां अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं क्यों कि इनका प्रयोग अधिक नहीं होता॥

आँवले-(Myrabolans):—वह भारतमें बहुत होते हैं। पहाड़ी प्रदेशोंमें तो यह बहुतायत से होता है। इसका स्वाद कसैला तथा रुक्ष होता है।

पके फलोंको तोड़कर उनकी गुठली निकाल देते हैं। फिर उन्हे सुखाकर रख लेते हैं आँवले खानेके बाद

पानीका स्वाद मीठासा लगता है। इसमें ३५ से ३०% तक टैनिन होती है। नत्रसाम्ल Nitrous Acid उन ओ२ की क्रियासे आंवले का रंग नीला हो जाता है—अपने इसीगुण के कारण आँवले नीली और काली स्याही बनानेके काम आते हैं।

लोहेके लवण-लोहस गन्धित (Green vitriol) या हरा तूतिया स्याही बनानेमें बहुत प्रयुक्त होता है। बाजारमें यह बहुत सस्ता मिल जाती है। यदि इसे वायुमें खुला छोड़ दें तो यह धीरे २ वायुमें से ओषजन ले कर लोहससे लोहिक अवस्थामें बदल जाता है। यूं तो यह सस्ता ही बाजारसे मिल जाता है फिर भी यदि कोई इसे बनाना चाहे तो यूं बना सकता है।

थोड़ा सा बारीक लोहा लेकर इसे चीनीके प्यालेमें रख दीजिए। उसपर हलका गन्धकाम्ल डालिये। धीरे धीरे लोहा उसमें घुल जायगा। अब उसे छान लीजिए फिर उसमें मद्यसार डालिए। हरा तूतिया अविलेय होकर नीचे बैठ जायगा। इसे शीशीमें रख कस कर डाट लगा दीजिए। ताकि हवा उसके साथ मिलकर उस पर क्रिया न कर सके। अभी हम ऊपर बता चुके हैं कि हवाकी ओषजनसे उसकी रासायनिक बनावट में अन्तर पड़ जाता है। इसलिए इसे सुरक्षित रखनेके लिए खूब कसकर डाट लगाई हुई बोतलमें रखना चाहिये।

स्याहियोंकी रसायनिक बनावट

अभी हम ऊपर लिख चुके हैं कि स्याहियोंके काममें आने वाले पदार्थोंमें मुख्य दो पदार्थ हैं एक तो लोहा दूसरा टैनीन। इन दोनोंकी परस्पर क्रिया होने से लोहेका टैनीन (Iron tenat) बन जाता है। हरड़ों अथवा अन्य काम आने वाले पदार्थोंमें टेनीनके सिवाय और अन्य पदार्थ भी होते हैं। इनकी उपस्थितिके कारण लोहे के अन्य समासभी बन जाते हैं। इन्ही समासों की तथा अन्य वानस्पतिक पदार्थों की उपस्थिति होने के कारण स्याहीमें फुई लग जाती है और स्याही निक्षिप्त होकर फीकी पड़ जाती है। उसमें थक्के थक्केसे जम जाते हैं और वह फिर काम की नहीं रहती। ऐसी स्याहियाँ यदि एक बार सूख जाँय तो फिर इनमें पानी मिलाकर लिखना भी कठिन हो जाता है।

हरड़ोंके रसको कुछ दिन तक सड़ने देनेसे गैलिकाम्ल (Gallic Acid) बन जाता है। इससे ब्लू ब्लैक स्याही बनती है। लोह टैनित अथवा गैलित पानीमें घुल नहीं सकते। ये स्याहीमें अवलम्बनस्थ अवस्थामें रहते हैं। इन्हें हमेशा एकरस अवलम्बनस्थ अवस्थामें बनाये रखनेके लिये कीकरका गोंद, डैक्स्ट्रीन और कभी कभी खाँड भी काममें लाई जाती है। जिसमें डैक्स्ट्रीन (Dextrine) मिली होती है वह स्याही देरमें सूखती है। डैक्स्ट्रीन वायुमेंसे आद्रता चूस लेती है। खाँड़ एक तो महँगी भी होती है फिर फुई भी पैदा होती है। यदि यह स्याही दवातमें सूख जाय तब वह फिर किसी कामकी नहीं रहती।

लोहस गंधितसे बनी स्याहीसे लिखे अक्षर कागज़ पर हरे नीलेसे आते हैं। कुछ देरमें वायुकी ओषजनकी क्रिया होनेपर उनका रंग काला पड़ जाता है। लोहिक गन्धितसे बनी स्याही प्रारम्भसे ही कागज़ पर काला रंग देती है।

यदि स्याहीमें लोहसगन्धित अधिक हो तो वह कुछ समय बाद पीली पड़ जाती है, उसमें रासायनिक विश्लेषण हो जाता है और लोह टैनित फट कर लोहस ओषिद (लो२ ओ३) बन जाता है। इसका रंग पीलासा होता है।

स्याहीमें प्रायः हरड़ और लोहसगन्धित बराबर बराबर लिया जाता है। यदि गन्धित कुछ अधिक हो तो रंग अधिक काला आता है। यदि केवल हरे तूतियेसे ही लिखें तो लिखते समय अक्षर नहीं दीखने पर धीरे धीरे वायु लगने पर वे पीले भूरेसे दीखते लगते हैं। यदि तूतिया कुछ कम रखा जाय तो स्याही अच्छी बनती है। स्याहीमें लोह टैनित जितनी बारीक अवस्थामें होगा उतनाही स्याही अच्छी होगी इसके लिये स्याहीमें गंधितकी मात्रा कम होनी चाहिये।

केवल हरड़ोंके पानीसे लिखने पर अक्षर नहीं दीखते। हाँ यदि उसे देर तक धूपमें रखा जाय तो

वे भूरे रङ्गके दीखने लगेंगे। टैनिकका रंग धीरे धीरे भूरा हो जाय करता है। सज्जी या क्षारकी उपस्थिति में यह क्रिया तेजीसे होती है। हरड़ोंसे लिखे हुए अक्षरोंको सोडेसे धो दें तो वे स्पष्ट दीखने लगते हैं। यदि कागज़ में हरिण हुई तब तो यह रंग या तो आवेगा ही नहीं और यदि आया भी तो बहुत ही अस्पष्ट और धीरे धीरे। हरिण वाले कागजों पर अच्छीसे अच्छी स्याही नहीं ठहर सकती क्योंकि हरिण तो सभी ऐन्द्रियिक रंगोंकी रंगतको उड़ा सकती है। नीलवकका रंग भी उसके सामने नहीं ठहर सकता।

स्याहीको सड़ाँदसे बचानेके लिये उसमें कृमि विनाशक द्रव्योंका मिलाना भी आवश्यक है। हरा तूतिया स्वय भी सड़ाँदको रोकने वाला पदार्थ है। सम्भव है पहले इसीलिये उसकी मात्र अधिक डाली जाती हो। परन्तु उसकी उपस्थिति स्याहीकी रासायनिक बनावट पर भी असर डालती है। इसलिये स्थान पर कार्बोलिकाल (Carbolic acid) या ऐसी ही कोई और चीज़ डालनी चाहिये। चीज़ ऐसी होनी चाहिये जिससे स्याहीकी रासायनिक बनावटपर असर न पड़े। इस अंशमें इस अम्लकी १०°/० तक मात्रा उपयोगी सिद्ध हुई है।

इस प्रकार कृमिविनाशक पदर्थोंके मिला देनेसे स्याही देर तक खराब नहीं होने पातीं। सड़ाँद, फुई, थक्के बैठना इत्यादि अनेक प्रकारकी खराबियाँ जो कृमियोंके कारण उत्पन्न हो जाती हैं वे इनकी उपस्थितिमें उत्पन्न नहीं होने पातीं।

अपूर्ण

[पं० इन्द्र विद्यालङ्कार एम० बी-एच०]

चौपायोंका प्रार्थना पत्र

[लें० श्री चिरंजीलाल माथुर, बी. ए. एल टी.]

दि कोई जीवधारी श्री मान् कहलाने योग्य हैं तो आप हैं। बने हुवे तो आप साढ़े तीन हाथके ही हैं परन्तु आपमें कार्य-कुशलता इतनी बढ़ी हुई है कि समस्त जीवधारी आप के सामने हार मान गये हैं और पृथ्वी माता अपने समस्त रत्न आपको अर्पण कर चुकी है। आपकी बुद्धिके बलसे जल, वायु, अग्नि इत्यादि आपके चरण-सेवक हो गये हैं। जल इसलिए बरसता है कि आपके खेतोंमें अन्न उपजावे। वायु इसलिए चलती है कि आपकी चक्की चलावे या जहाज़ चलावे। नदी इस लिए बहती है कि वह कहीं खेतोंको सींचे और कहीं आपके लिये बिजली पैदा करे। समुद्र इस वास्ते है कि वह आपके बड़े बड़े जहाजोंको छातीपर लादे रहे। पहाड़ इस वास्तेहैं कि आपके मकान बनानेको पत्थर दें, लकड़ी दें, और कभी कभी जवाहिरात नज़र करें सूर्य दिनमें रोशनी के लिये हाजिर रहता है। चन्द्रमा रात्रिमें मशाल लिये खड़ा रहता है। बिजली तो ऐसी गुलाम हो गई है कि दरबार हालके रौनक देनेसे लेकर झाड़ू बुहारूतक का काम करती है। अभिप्राय यह है कि जो कुछ है आपकी सेवाके लिये है। हम चौपाये भी आपकी सेवा करते रहे हैं। हमने जो आपकी प्रशंसा में कहा है यह कोरी खुशामद नहीं हैं, बिल्कुल सही है।

हम आपके पुराने सेवक हैं। जब रेल नहीं थी तो हम ही आपको अपनी पीठपर बिठाकर एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचाते थे या आपकी गाड़ी खींचते थे; और अब भी हमको इन्कार नहीं है, किन्तु अब हमको बाहर गाँव वाले ही अधिकतर काममें लाते हैं। हमारी प्रार्थना यह है कि अब आपको उपर्युक्त बहुतसे नौकर मिल गये हैं। हमको अब

पचपन सालमें निकालकर पेन्शन दे दी जावे। हमारी वजूहात निम्न लिखित हैं:—

हे "अशरफुल मखलूक़ात," (गो यह पदवी आपने स्वयं ले ली है परन्त हमको तो आपसे काम निकालना है, इसलिए जो पदवी आपको प्रसन्न करे वही लगा देंगे। ध्यान देकर हमारी बात सुनिये। हम आपसे पेन्शन इस लिये नहीं मागते कि आपका हर्ज करके हम आराम करें। बल्कि जब हमने देख लिया है कि हमारे बगैर अब आपका काम चल सकता है तो प्रार्थना की है। वरना आप जानते ही हैं कि हमने आपकी सेवा तब भी की थी जब आप बुद्धिमें हमसे कुछ थोड़े ही अच्छे थे अब हम आपका ध्यान इस ओर दिलाते हैं कि आपका क्या क्या काम किस तरह हमारे बगैर हो सकता है।

१. सवारी—इस सेवासे आप हमको छुट्टी बड़ी आसानीसे दे सकते हैं क्योंकि बाइसिकल आपने बना ली है और मोटरें ऐसी ऐसी बनाली हैं कि कई आदमियोंको शीघ्रतासे एक जगहसे दूसरी जगह ले जावें। बड़े फासलेके लिये रेल है और जमीनपर चलनेकी क्या? अब तो आपने चिड़ियोंकी तरह उड़नेके लिये हवाई जहाज भी बना लिये हैं।

२. माल घसीटना—इस कामके लिये भी लौरी मोटर और रेलगाड़ी अच्छी तरह काममें आ रही है, जहाँ नहीं चली है वहाँ और चला दो और हमको छुट्टी दो। देखो, हममेंसे बहुतोंकी तो नाक कट गई हैं और बहुतोंके तो मुँह छिल गये हैं जरा तो हमारे ऊपर रहम खाओ।

३. खेतीके लिये—भाप) के द्वारा चलने वाले हल बन गये हैं। कुओंमेंसे इञ्जन द्वारा पानी खिंच आता है। दाना छाँटनेकी मशीन बन गई है। जब खेतके तमाम कामोंकी मशीनें बन गई हैं तब हमको छुट्टी क्यों नहीं देते।

४. शानके लिये—वाह रे आपकी शान! हमारे तो जीपर बीतती है। और आपकी शान। परन्तु शानके लिये भी बड़ी बड़ी खूबसूरत मोटरें बन गई हैं। हवाई जहाज़ और और भी कई चीजें बना सकते हो।

५. फौजके लिये—प्रथम तो आपको चाहिये कि आप आपसमें लड़े भिड़े नहीं जिससे फौजकी आवश्यकता ही न रहे। आप आपसमें लड़कर अपनी अशरफुल मखलूक़ातीके बट्टा लगाते हैं। खैर, अगर आपको हमारे जैसे बने वगैर सरता नहीं, तो भले ही लड़ें; परन्तु अब फ़ौजमें हमारी क्या ज़रूरत है। मशीन ही तोपें खींच लेती हैं। टेंक हैं, फौजी मोटर हैं और फिर अब तो आप चीलकी तरह हवामें उड़ कर भी तो बम्ब वगैरः फेंक देते हैं। फिर भला फ़ौजके लिये हमें क्यों दुःख देते हो।

दूध-दही—आपमेंसे शायद कुछ यह कहेंगे कि इनको छुट्टी नहीं देनी चाहिये क्योंकि इनमेंसे कुछ सवारीके अतिरिक्त दूध दही भी देते हैं, और दूधसे घी निकलता है जिससे इतनी खाने पीनेकी चीजें बनती हैं इन महाशयोंसे हमारी यही प्रार्थना है कि दूधके बिना तो आपके खानेका काम बहुत अच्छी तरह चल सकता है। वास्तवमें दूध बच्चोंका खाना है बड़ोंका नहीं है। और स्तनोंमें दूध बच्चेके लिये ही ईश्वर पैदा करता है न कि आपके लिये। फिर आपमेंसे बहुतसे बड़े परहेज़गार बनते हैं। क्या परहेज़गारीके यही मायने हैं कि हमारा खून पीवें। दूध एक तरहका खून ही है जो हमारे जिस्ममें बनता है। यह आपके शाक या फलमें तो शामिल है नहीं हम चौपायोंको भी हँसी आती है जब आप कई महात्मा कहते हैं कि हमने अन्न छोड़ दिया है केवल दूध खाते हैं। अजी साहब, अन्न छोड़कर खून पिया तो आप तो उल्टे पिशाची भोजन करते हैं। खैर कुछ भी हो, हमारे कहनेका मतलब यह है कि आप बिना दूध खाये अच्छी तरह गुज़र कर सकते हैं। अगर यह भी माना जावे कि दूध सात्विक भोजन है तो महाराज हुआ करो, हमें क्यों तंग करते हो। अपनी स्त्रियोंका पियो। रहा आपके घीका! तो महराज, घी तो अब बनस्पतिका आप लोगोंने बना लिया है। अब हमारे खूनमेंसे घी निकालनेकी क्या जरूरत है। वनस्पतिका घी वास्तव-

में सात्विक है। उससे हलुआ पूड़ी पकौड़ी बनाइये और हत्यासे बचिये।

कुछ महाशय आपमेंसे यह भी कहते हैं कि यदि हम जानवरोंको पालना छोड़ देंगे तो हमारी प्रकृतिका कोमल भाग नष्ट हो जावेगा। यह कहना दो प्रकारसे व्यर्थ है। प्रथम तो आप लोग बजाय कोमल भागके निकृष्ट भागको हमारे लिये रिजर्व किये हुये हैं। क्या कोमलताके यही मायने हैं कि आप हमारे गलेमें फांस डालकर खूंटेसे बांध दें, पैरोंको पछाड़ीसे जकड़ दें या बेड़ी डाल दें नथनीको छेद दें। नाकमें सूराख कर दें, गरदनमें तीक्षण नोक चुभावें, जब चाहें तब खानेको, दें जब चाहें तब पानी दें, कंधेपर जूड़ा रखदें, पीठपर सवार होजाँय, लकड़ीसे हाँके। अगर यही कोमलता है तो कृपा कीजिये हम बाज आये इस कोमलतासे, इस कोमलताको आप मनुष्य जातिके लिये रख छोड़िये, और हमको छुट्टी दीजिये।

दूसरी तरहसे आपको कोमलताकी वजह यों गलत है कि आप कोमलता जानते हो नहीं। जब आप अपनी मनुष्य जातिमें ही कोमलता नहीं बर्तते तो हमसे क्या खाक वर्तेंगे। यदि आपमें कोमलता होती, तो क्यों अदालतमें कत्लके, मारपीट लड़ाई, दंगोंके, लूटमारके, भगा ले जानेके मुकदमे होते। कौन नहीं जानता है कि आप लोगोंने अपनी जातिके ही मारनेके लिये क्या क्या उपाय किये हैं और कर रहे। हैं लोहेका ज्ञान हुआ तो इस लिये कि उससे नोकदार हथियार बनाकर भाईको बींधें बारूदका बनाना जाना तो इस लिये कि भाईको दूरसे ही मार दें। गैसोंका ज्ञान किया तो इसलिये कि भाई हवाके द्वारा नष्ट कर दें। हवामें उड़ना सीखा तो इस लिये कि भाइयोंके ऊपर हवामेंसे हो बम डाल दें। यह तो आपकी करतूत है और फिर आप दम भरते हैं कोमलताका। जब आप अपनी मनुष्य जातिके साथ ऐसा बर्ताव रखते हैं तो हम आपसे और क्या आशा रख सकते हैं।

अब हमने हर तरहसे आपकी बिनती कर ली है। हमारे बिना काम कैसे चल सकता है यह भी बता दिया है। हमारे साथके अत्याचारका हाल भी सुना दिया है। अब भी यदि आप हमारी प्रार्थना नहीं सुनेंगे तो आप याद रखिये हम हिन्दुस्तानियोंकी तरह निहत्थे नहीं हैं। हम सींगोंसे, सुमोंसे, दांतोंसे, आपकी खबरले डालेंगे। हम केवल रेलवेके नोकरोंकी तरह हड़ताल ही नहीं करेंगे वरन तुम लोगोंको कुचल डालेंगे यह तो हमारी भलमनसाहत है जो कुछ कहते ही नहीं। नहीं तो हममेंसे एक भी फिर जावे तो तुम्हारी जातिके सैकड़ोंके दाँत खट्टे कर दे। हम हजारों वर्षोंसे भल मनसाहतका बर्ताव कर रहे हैं परन्तु आप नहीं मानते हैं। अब यह अन्तिम प्रार्थना है। इसको चुनौती समझें। यदि अब भी आप लोगोंने हमको आजाद नहीं किया तो हमको भलमनसी छोड़कर आप जैसा बनना पड़ेगा।

आपमें से कुछ हमको एक और काममें भी लाते हैं। वह पहले इस वजहसे नहीं कहा कि वह इतना घृणित है कि अगरचे आपको उसके करनेमें शर्म नहीं आती पर हमको तो कहनेमें भी लज्जा मालूम होती है। वह यह है कि हममेंसे कुछका दूध खाकर खेतीमें काममें लाकर उनका मांस भी खानेको आप तैय्यार हो जाते है। जब सैकड़ों हजारों चीजें खानेकी हैं और आपने बना ली हैं तो हमको इस काममें लाना मनुष्यता है या नहीं, इसको आप ही सोच सकते हैं। हमारे ख्यालसे तो ऐसा करना पूरे भगेरोंकी नकल करना है—परन्तु नक़ल करनेमें तो महाशयजी आप बड़े प्रवीन हैं। कोई जीवधारी सिवाय बन्दरके जो डार्विनके मतानुसार आपका पुरखा है ऐसा नक्काल नहीं है जैसा कि मनुष्य। कुछ पक्षियोंके रंग बिरंगे पंखों वाला देखा तो आपने भी रंग बिरंगे कपड़े पहन लिये परंदोंको हवामें उड़ते बहुत दिनोंसे देख रहे थे। आखर आप भी उड़ने लग गये। मछलियोंकी नक़ल पानीमें तैरनेकी तो बहुत पहले सीख चुके थे। मांसाहारी जीवधारियोंके तेज दाँत व नख होते हैं तो उनकी नक़ल करके आपने भी कांटे छुरी बना लिये और उनसे खाने लगे। शेरके नखोंकी बननकी नक़ल करके

एक हथियार बाघनख भी बना लिया। गधे घोड़के सुम देखकर आपने भी जूतोंमें हील लगा ली और नाल भी (आदमियोंकी भी नाल बन्दी होती है)। उक़ाबकी तेज़ आँख देखकर आपने भी दूरबीन बना ली। बये-का घोंसला देखकर आपने भी दोमंज़ले मकान बना लिये। शहदकी मक्खियोंका छत्ता देखकर सिपाहियोंकी बारकें बना लो, यहाँ तक कि बतख़की तरह पानीमें डुबकी मारनेके लिये किशती बना ली। गरज़ कि हर जानवरकी नक़ल कर डाली। अगर सृष्टिके रचनेसे पहले ईश्वरको यह मालूम होता कि आप इस तरह तमाम जानवरोंकी नकल कर डालेंगे तो ईश्वर या तो केवल आप ही आपको बनाता या आपको बिल्कुल नहीं बनाता। ऐसा होता तो हमारे लिये अच्छा होता। खैर अब हमपर दया कीजिए।

आपके सेवक—चौपाये

सूर्य मँडल

धूमकेतू

(लेखक—श्री शङ्करलाल जिन्दल, M. Sc, L. H. M.)

इसको साधारणतः पुच्छल तारा और अङ्गरेज़ीमें Comet कहते हैं। कभी कभी रातको आकाशमें एक तारा जिसके चमकती हुई एक पूँछ होती है दिखाई देता है। वास्तवमें यह पूँछ बहुत लम्बी होती है पर वज़नमें केवल आध सेरके लगभग होती है। धूमकेतुका मुण्ड ज़रा कुछ भारी होता है परन्तु वह भी बहुत ही सूक्ष्म Rarefied पदार्थका बना होता है—कुछ लोगोंका विचार है कि जब कभी धूमकेतू दृष्टिगोचर होता है तब कोई न कोई अमंगल संसारमें अवश्य होता है। वास्तवमें देखा जावे तो उसमें कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो अमंगल-का कारण हो। हमारी पृथ्वी एक दफ़ा कुछ वर्ष हुए एक ऐसे ही धूमकेतुकी पूंछमें होकर गुज़र चुकी है, परन्तु हमको कुछ भी नहीं मालूम हुवा-इसकी वजह यह है कि उसका पदार्थ अति सूक्ष्म Rarefied दशामें होता है धूमकेतूओंमें अपना निजी प्रकाश नहीं होता है। जब कभी वे सूर्य्यके समीप आते हैं तब ही दिखाई देते हैं। प्रत्येक वर्ष ८ या १० धूमकेतु सूर्य्य मंडलमें होकर निकल जाते हैं और छोटे होनेके कारण दिखाई नहीं देते जब कभी कोई बड़ा धूमकेतु आता है तब ही दिखाई देता है। कोई कोई धूमकेतु तो इसी मंडलका निवासी हो जाता है और सूर्य्यके गिर्द घूमने लगता है वह एक बार दीख कर फिर वापिस नहीं आता। बृहस्पति, शनि, यूरेनस और नैप्चुनने कई धूमकेतुओंको अटका रक्खा है एक धूमकेतू ऐसा है जिसको सबसे पहिले हैली साहबने मालूम किया था और अब उन्हींके नाम पर "हैली धूमकेतु" कहलाता है। इसको नैप्चुन ने सूर्य्य मंडलमें क़ैद कर रक्खा है। यह सूर्य्य और नैप्चुनके समीप होकर एक लम्बा रस्ता तै करता है जिसमें कि ७५ वर्ष लगते हैं। सब धूमकेतु सर्वदाके लिए विदा नहीं हो जाते हैं बल्कि कई ऐसे है जो नियत रास्तेसे घूमते हैं।

धूमकेतुओंका कोई विशेष आकार नहीं होता जब वे सूर्य्यसे दूर रहते हैं तब उनके पूंछ नहीं होती। पास आने पर ही पूंछ बनती है। कभी कभी दो २ व तीन ३ पूछें भी दिखाई देती हैं। यह पूंछ सूर्य्यसे दूर रहती है गोया कि वह उसको अपनेसे दूर ढकेल रहा है। एक दफ़ा एक पूछकी लम्बाई १० करोड़ मील थी गो कि उसका वजन केवल आध सेर ही था।

उल्कापिण्ड

कभी कभी रातको आकाशमें देखनेसे कुछ तारे टूटते नज़र आते हैं, इन्हींको उल्कापिण्ड वा Miteorites कहते हैं। प्रत्येक दिन लगभग दो करोड़के उल्कापिण्ड पृथ्वीकी वायुमें प्रवेश करते हैं। उनकी गति प्रति सेकंड २० मीलके होती है। बन्दूककी गोली केवल २ मील फ़ी सकंडकी रफ़्तार

से चलती है। इसी गतिके कारण हवाकी रगड़से उल्कापिण्डोंमें इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि वे जल उठते हैं। कभी कभी अधजले पिण्ड यहांपर भी गिर जाते हैं। बहुतसे लोग इनको देखना अशुभ मानते हैं परन्तु यह बात ग़लत है। २१ अपरैल, ९, १० और ११ अगस्त व १२, १३, १४ और २७ नौम्बरकी रातोंको उल्कापात बहुत होता है। प्रत्येक उल्कापिण्ड सूर्य्यके गिर्द चक्कर लगता है बहुतसे क़तार बांधकर भी घूमते हैं जब पृथ्वी घूमते घूमते उनके झुंडके समीप पहुँचती है तब उल्कापात अधिक होता है यही वजह है कि ख़ास ख़ास रात्रिको बहुतसे तारे टूटते दिखाई देते हैं। सबसे अधिक उल्कापात २७ वीं नौम्बरको होता है।

वृक्षोंका भोजन निर्माण

(Carbon Assimilation).

[ले. श्री तारादत्त पाँडे, एम. एस-सी]
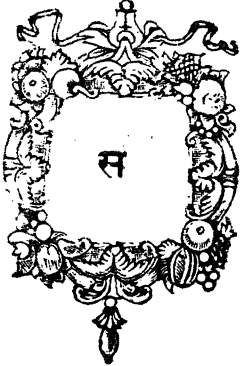
साधारणतः जितने पशुओंको हम देखते हैं उन सबमें हम यही पाते हैं कि उनको एक प्रकारसे तैयार भोजन मिलता है। उनके भोजनमें कर्बोज (Carbohydrates,) तैल पदार्थ (fats) और प्रोटीड (Proteids) मुख्य वस्तुएं हैं। वृक्षोंको हम कहीं भी इस प्रकारके पदार्थोंको पाते नहीं देखते।

उस ज़मीनमें जहां कि वृक्ष उगते हैं या उस वायुमें जिसमें कि वे सांस लेते हैं इन वस्तुओंका सर्वथा अभाव है। तिसपर भी एक छोटेसे बीजसे बढ़ते बढ़ते कुछ वर्षोंके पश्चात् हम एक विशाल वृक्ष देखते हैं। यह सब बढ़ती जो कि भोजनके आधार पर निर्भर है फिर कहांसे होती है?

इस प्रश्नका उत्तर हमें या तो उस मिट्टीसे जिसमें कि वृक्ष उगता है, अथवा उस वायुके विशाल मण्डपसे जिसके नीचे वह रहता है, सहजमें मिल सकता है।

मिट्टीकी परीक्षा और विश्लेषण (analysis) से हमें यह मालूम होता है कि उसमें अधिकतर खनिज पदार्थों का (Inorganic salts) बाहुल्य है। उसमें किसी किसी स्थानपर मुख्य करके दलदलोंके पास जहाँपर कि मृत्त वस्तुएं सड़ती हैं कर्बनिक योगिकों (organic compounds) का लेश पाया जाता है जो कि वृक्षके जीवनके लिए सर्वथा अपर्याप्त है।

वायुकी परीक्षासे उसमें भिन्न भिन्न प्रकारकी वायु पाई जाती हैं, जिनमें उद्जन Hydrogen ओषजन oxygen, नत्रजन nitrogen और कर्बन-द्विओषिद carbon dioxide मुख्य हैं।

जैसा पहले कहा गया है वृक्ष इन्हीं वस्तुओंके बीचमें उगता और बढ़ता है। इसका यह तात्पर्य निकला कि वह अपना सम्पूर्ण भरण,-पोषण और भोजन निर्माण इन्हीं अनांगारित वस्तुओं (inorganic पदार्थों) से करता है।

अब प्रश्न यह होता है कि क्या मिट्टी और हवाकी सब वस्तुएं वनस्पतियोंके जीवनके लिए आवश्यक हैं, अथवा उनमेंसे कुछ अनावश्यक भी हैं। यह बात मकईके कुछ अङ्कुरों (seedlings) को पोषक घोल (water culture) में रखकर सिद्ध की जा सकती है। इसमें उगे हुए कई एक वनस्पतियोंके अंकुर खूब बढ़ते हैं और अन्तमें फूल और फल उसी प्रकार देते हैं जैसेकि पृथ्वीपर बोये हुए बीज।

बनस्पतियोंके इन पोषक घोलोंके कई नुसखे (Formula) हैं। उनमेंसे एक नीचे दिया जाता है।

१˙० ग्राम Calcium nitrate

०·२५ " Potassium Chloride
०·२५ " Magnesium sulphate
०·२५ " Potassium phosphate
१००० घन सेंटीमीटर स्रवित पानी।
कुछ बूंद Ferric chloride solution

ऊपर लिखे लवणोंको उनकी मात्राके अनुसार स्रवित (Distilled) पानीमें अच्छी प्रकार मिलानेके बाद ३,४ बूंद Ferric chloride solution छोड़ना चाहिए।

चित्र १.

यह बात नीचे लिखे प्रयोग (Experiment) से भली प्रकार मालूम होजाती है।

प्रयोग—कुछ मकईके बीजोंको लेकर रात भर पानीमें भिगो दो और प्रातःकाल, जब वे पानीमें फूल जाएं, उनको एक गहरी तश्तरीमें लकड़ीके चूरेमें बो दो। ४,५ दिनके बाद जब अंकुरोंमें प्रायः १ इञ्च लम्बी जड़ें उग जाएं तो उनको स्रावित जल (Distileld water) से धोकर चित्र १ के अनुसार छेद किये हुए कौर्कके दो टुकड़ोंके बीच-में, साफ़ की हुई रुईसे लपेट कर, दबा दो। इस कौर्कको अंकुरके साथ (चित्र १ अ के अनुसार) कांचके बर्तनमें लगादो, जड़ें पोषक घोलमें डूबी रहनी चाहिए नहीं तो पौधा शीघ्र ही सूख कर मर मेंसे प्रत्येककी एक खास मात्रा है जिससे कम होनेपर पौधे ठीक २ नहीं उगते, चाहे एकका कमी पूरी करनेके लिए हम दूसरे पदार्थोंकी मात्रा बढ़ा दें।

इन पदार्थोंमेंसे प्रत्येकका अलग अलग क्या ख़ास कर्त्तव्य है, इस विषय पर अभी कुछ अधिक ज्ञात नहीं है और न इस विषयपर आविष्कारकों

की एक राय है। उनके अभावसे पौधोंपर जो असर पड़ता है केवल वही मालूम है। ऐसा क्यों होता है इसका हमें अभी पूर्ण ज्ञान नहीं है। तिसपर भी इस विषयपर जो कुछ मालूम है वह संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है।

पोटासियम—इसके न रहनेसे वृक्षकी वृद्धि नहीं होसक्ती जैसाकि चित्र २ के क और ख में दिखाया गया है।

क के पोषक घोलमें पोटासियम पूरी मात्रामें है और ख में उसका सर्वथा अभाव है। दोनों घोलोंमें उगाए हुए पौधोंसे मालूम होता है कि पोटासियमके रहनेसे क में मज़बूत तना, लम्बी जड़ें और घनी और बड़ी पत्तियाँ हैं। ख में पोटासियमकेअभावसे अंकुर कुछ बढ़ ही नहीं सका। कुछ लोगोंका मत है कि पोटासियम कर्बोज्ञ Carbohydrate निर्माणके लिए बहुत आवश्यक है।

गन्धक और फोस्फोरस—इनके बिना प्रोटीन (Protems) का निर्माण नहीं हो सकता क्योंकि ये प्रोटीन बनाने वाले तत्वोंमें से हैं। गन्धक प्रत्येक रूपमें भी पौधेके काम नहीं आ सकता, क्योंकि सिवाय गन्धेत Sulphates के यह और प्रत्येक रूपमें पौधोंके लिये अहितकरहै। इसी प्रकार फास्फोरस भी केवल स्फुरेत Phosphates के रूपमें काम आता है। दूसरे रूपोंमें वह भी हानिकारक है। गन्धक और फोस्फोरसका कोई दूसरा तत्त्व स्थानापन्न नहीं होसकता।

लोहा—इसके बिना पत्तियां हरी नहीं हो पातीं। जैसा आगे बताया जायगा पत्तियोंके हरे रङ्गके ही कारण बनस्पतियां अपना भोजन निर्माण कर सकती हैं। सो अन्ततोगत्वा जीवन लोहेपर बहुत कुछ निर्भर है।

कैल्सियम—इसका गुण ठीक प्रकार से मालूम नहीं है और इस विषयमें आविष्कारकोंका मतभेद ही है। कुछ विद्वान इसे वृक्षके लिए व्याधिरक्षक बताते हैं। दूसरोंका मत यह है कि यह पत्तियोंके अन्दर बने हुए आक्सेलिक अम्ल Oxalic acid के साथ मिलकर केलसियम आक्सलेट Calcium oxalate बनाता है। इसके अभावमें पत्तियां आक्सेलिक Oxalic acid के विषैले गुणके कारण मर जाती हैं। केलसियम आक्सलेट Calcium oxalate अहानिकर है।

मैग्नीसियम—यह प्रोटीन Proteins और हरे रङ्ग (Chlorophyll) दोनोंमें पाया जाता है। इसलिए इसका होना भी आवश्यक है। विलस्टाटर (एक जर्मन विद्वान) के मतानुसार हरे रङ्ग (Chlorophyll) की भोजन निर्माण क्रियामें मैग्नीसियम सहायता देता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ये खनिज पदार्थ बनस्पतियोंमें किस हिसाबसे होते हैं। इसका अनुमान इसीसे हो सकता है कि पौधेमें जलका भाग बहुत अधिक होता है यहांतक कि किसी २ वनस्पतिमें ६५ सैकड़ा जलका भाग होता है। वनस्पतियोंको १००° सैण्टिग्रेडपर जायगा।

चित्र १ स के अनुसार कौर्कके टुकड़ोंमें एकएक सूराख़ होना चाहिए जिससे बीच बीच में पानीमें हवा मिलाई जा सके। १ सूराखमें एक मुड़ा ट्यूब हवा अंदर भरनेके लिए लगा देना चाहिए। दो सूराखोंसे आवश्यकतासे अधिक हवा बाहर निकल सकती है॥

पौधोंकी जड़ोंको वृक्ष रोगों या फफूंदी (Fungi) से बचानेके लिए कांचके वर्त्तनके चारों ओर एक काला कपड़ा या कागज़ लपेट देना चाहिए॥

प्रति दिन ये पौधे पोषक घोलसे आवश्यक पदार्थोंको लेकर बढ़ते जाएंगे। बीचमें प्रत्येक सप्ताह के बाद पौधोंको पोषक घोलसे निकाल कर १०, ११ घण्टोंके लिए स्रवित जलमें रख देन चाहिए। कुछ सप्ताहोंके बाद कांचके वर्त्तनमें एक अच्छा खासा मकईका पेड़ लग जायगा।

इसके विपरीत केवल स्रवित जलमें उगाए हुए अंकुर थोड़ा बढ़नेके बाद (चित्र १ ब) मर जाते हैं।

इससे यह सिद्ध हुआ कि पौधे खनिज पदार्थोंके आधार पर अपनी वृद्धि कर सक्ते हैं।

अब हमको यह देखना है कि पोषक घोलमें क्या २ तत्त्व Elements हैं। उसमें लाहा, गन्धक, पोटेशियम Pitassium, मैग्नीशियम Magnes um, फास्फोरस Phosphorus, नत्रजन Nitrogen, ओषजन Oxygen और हरिण Clorine हैं।

इन सब पदार्थोंमें पहिले ६ का वृक्षके भीतर घोलके रूपमें जाना सर्वथा आवश्यक है। इनमेंसे हम किसी एकको भी नहीं छोड़ सक्ते। किसी एकके भीं अभावसे पौधेकी वृद्धि बिल्कुल रुक जाती है और अन्तमें मृत्यु सन्मुख आती है।

इन पदार्थोंके रहनेसे ही काम नहीं चल जाता। इनमें कुछ कालतक गरम करनेके पश्चात् जलका अँश जब निकल जाता है तब जो सूखा अँश बचता है उसमें भी प्रायः ९०—९५ सैकड़ा भाग कर्बनिक organic पदार्थोंका होता है। ये सब जलाए जा सकते हैं। जलनेके पश्चात् जो राख बचती है उसीमें ये सब खनिज पदार्थ मिलते हैं।

ऊपर कही बातसे खनिज पदार्थोंकी पौधोंके भीतरकी मात्राका अनुमान हो सकता है। आपमेंसे हर एकने घास, फूंस अथवा लकड़ीका जलना देखा होगा। सेरों लकड़ी जलनेके बाद जो राख बचती है जो कि वज़नमें बहुत हल्की होती है। इससे आप ऊपर कही बातोंकी सत्यता को मान जाएंगे।

इतनी थोड़ी मात्रामें होते हुए भी ये वनस्पतियोंकी वृद्धि और जीवनके लिए सर्वथा आवश्यक हैं। नदीकी बालूमें और बागमें अथवा साधारण मट्टीमें उगी हुई वनस्पतियां इस बातका प्रमाण हैं। नदीकी रेतमें इन पदार्थों (Salts) का अभाव है, इस लिए उसपर बहुत कम पौधे उगते हैं और साधारण मट्टीमें इनकी मात्रा पर्याप्त है इस लिए उसमें आपको बहुत कम स्थान खाली मिलता है, बाकी सब बनस्पतियोंसे भरा होता है। अतः यह सिद्ध हुवा कि पर्याप्त मात्रा न होनेसे पौधोंकी वृद्धि नहीं होसकती।

यहाँपर एक बात कहनी आवश्यक है कि केवल ओषजन Oxygen ही विशुद्ध रूप (elemental form) में पौधोंके काम आता है और सब पदार्थ यौगिकों Com- pounds के रूपमें काम आते हैं।

ऊपर लिखे ६ आवश्यक पदार्थोंको छोड़कर भी कुछ और ऐसे पदार्थ हैं जो कि मट्टीसे पानीमें घुल कर वृक्षके अन्दर पहुँच जाते हैं। एक दम आवश्यक न होते हुए भी ये वृक्षकी जीवन यात्रामें थोड़ी बहुत सहायता देते हैं। इनमेंसे जस्ता, एलुमीनियम, सिलिकन silicon, हरिण chlorine और आयोडिन Iodine साधारण उदाहरण हैं।

यह सब तो हुई खनिज पदार्थोंकी बात, परन्तु कोयला जिसके आधारपर कर्बनिक यौगिक Orga- nic Compounds और अन्ततोगत्वा जीवाद्यम (protoplasm) बनता है, किस रूपमें और कहाँसे आता है।

आकाश बेल अथवा साँपकी छत्री (इसको कोई २ लोग कुकुरमुत्ता भी कहते हैं) को छोड़कर हमको देखना है कि स्वयं पाकी (autotrophic) वनस्पतिएं कर्बन (carbon) कहाँसे पाती हैं। आकाश बेल, सांपकी छत्री और इससे मिलते जुलते पौधोंको निर्मित भोजन दूसरे पौधे या मृत प्राणियोंसे मिल जाता है, इस लिए हम इन्हें परपाकी (heterotrophic) कहेंगे। इनके विषयमें अभी हम कुछ नहीं लिखेंगे। स्वयंपाकियोंकी बात समाप्त होनेपर इस विषयकी चर्चाकी जाएगी।

कर्बन पृथ्वीपर उगनेवाले पौधोंको केवल वायु हीसे मिल सकता है, यह बात इस प्रकारसे सिद्धकी जासकती है कि पोषक घोलके प्रयोग (experiment) में देखा गया है कि घोलमें हमने कर्बनका किसी भी रूपमें प्रवेश नहीं कराया है तो वह केवल वायु हीके मार्गसे कर्बन द्विओषिद carb

on dioxide के रूपमें पौधेकोमिला होगा। जलमें रहने वाले पौधोंको पानीमें घुला हुआ कर्बन द्विओषिद् carbon dioxid मिलता है और वे उसीका उपयोग करते हैं।

अब हमको यह देखना है कि यह कर्बन द्विओषिद् पौधोंके भीतर जड़ों द्वारा या पत्तियों द्वारा जाता है। अनुभवसे पता चलता है कि जिन पौधोंके पत्तियों को छोड़कर जड़ों द्वारा यह दिया गया वे कुछ कालके बाद मर गए और उनमें माँड starch की मात्रा पहिलेके बनिस्वत बहुत कम होगई।

इन सब बातोंसे यह सिद्ध हुआ कि पौधे अपनी पत्तियों द्वारा कर्बन द्विओषिद् को और जड़ों द्वारा खनिज पदार्थोंको लेकर भोजन निर्माण करते हैं।

सुनारोंकी रसायन क्रिया

(ले० श्री शंकरलाल जिंदल, M. Sc., L. H. M.)

प्रत्येक हिन्दूका थोड़ा बहुत काम सुनारोंसे अवश्य पड़ता है। जो मनुष्य आभूषण इत्यादि पसंद नहीं करते वे भी कमसे कम एक अंगूठी, एक घड़ीकी सोनेकी चैन या एक सेफ्टी पिन अवश्य प्रयोगमें लाते हैं। इस लेखमें हम एक दृष्टि सुनारोंके यहांकी रसायन क्रियापर डालेंगे—यद्यपि मैंने सुनारोंको काम करते बहुत देखा है परन्तु उनके कामोंमें जो रसायन विद्याका प्रयोग होता है वह मैंने सर प्रफुल्ल चंद्ररायकी History of Hindu Chemistry पुस्तकसे लिया है ताकि विज्ञानके पाठ कभी इससे कुछ लाभ उठावें।

यदि बिल्कुल खालिस सोना काममें लाया जाता तो इतनी कठिनतायाँ सुनारोंको न उठानी पड़ती क्योंकि खालिस सोना हवामें गर्म करनेसे वैसा ही रहता है। खालिस सोना इसलिये काममें नहीं लाते क्योंकि वह मुलायम बहुत होता है। इसी वास्ते उसमें कुछ अंश ताँबका होता है जोकि सोनेको सख्त कर देना है तांबेमें एक ऐब यह है कि वह हवामें गर्म करनेसे काला पड़जाता है इसका कारण यह है कि तांबा हवाकी ओषजनसे मिलकर Copper Oxide बनाता है जोकि रंगमें काला होता है—यदि सोनेमें जस्ता मिला हो तो उसे गर्म करनेपर जस्त-ओषिद् Linc Oxide बन जाता है जोकि ठंडा होनेपर सफ़ेद होता है। यही कारण है कि सोनेकी वस्तुओंमें मिलावट देखनेके लिए उनको आगमें तपाया जाता है यदि इसमें तांबा अधिक है तो वस्तु बिल्कुल काली पड़ जावेगी और यदि जस्तका भी मेल है तो उसपर सफ़ेदी नजर पड़ेगी।

यदि आपने किसी सुनारको सोनेकी वस्तु बनाते देखा है तो आपको मालूम होगा कि सोनेको आगसे बाहर निकालनेके बाद वह कुछ कुछ काला होता है और जैसे जैसे वह हथोड़ेसे पीटा जाता है कालापन सारेमें फैल जाता है इसका कारण यही है कि सोनेमें जो तांबेका अंश होता है वह हवाकी ओषजनसे मिलकर ताम्र-ओषिद् Copper Oxide के परमाणु बनाता है और वे हथोड़ेसे पिटे जानेपर सारे सोनेमें फैल जाते हैं। प्रायः सुनार लोग इस कालेपन को दूर करने के लिए उस सोनेकी सलाखको कोयलेकी आगपर गर्म करते हैं और एक दम पानीमें डाल देते हैं। इस क्रियाको इस प्रकार समझा सकते हैं कि कोयला ताम्र-ओषिद् Copper Oxide की ओषजन को छीनकर कर्बन-ओषिद् Carbon monoxide बनाता है और तांबा रह जाता है यदि इस गर्म सलाखको धीरे धीरे ठंडा करें तो तांबा फिर ओषजनसे मिलकर काला पदार्थ बना लेगा, इस वास्ते उसको पानीमें डालकर एकदम ठंडाकर लेते हैं और ठंडा तांबा ओषजनसे नहीं मिलता।

जब चीज़ बनकर तैयार हो जाती है तो वह कुछ कुछ काली व भद्दी सी होती है। और यदि सुनार उसको साफ़ करके ग्राहकको देता है तो उसका पीला रंग जो कि सोनेका प्राकृतिक रंग है ग्राहकको पसंद नहीं आता वह चाहता है कि रंगमें कुछ लालीपन अवश्य होना चाहिए-ग्रामोंमें यह काम सुनारही करते हैं परन्तु बड़े बड़े शहरोंमें रंग वाले इस कार्य्यको करते हैं। अब उसके पास २० या ३० तोले सोनेकी चीज़ें इकट्ठी हो-जाती हैं तब वह अपना कार्य्य आरम्भ करते हैं। सबसे पहिले वह सोनेकी चीजोंको कोयलेकी आगपर गर्म करता है इससे उनका कालापन बहुत कुछ दूर हो जाता है। उसके बाद एक मिट्टी के बरतनमें एक सेरके लगभग कच्ची इमलीको उबालता है और छानकर एक गाढ़ा रस निकाल लेता है। इस रसमें उन कोयलेकी आगपर गर्म की हुई चीज़ोंको डालकर उबालता है जबतक कि उनका रंग बिलकुल पीला न हो जावे, इनका रंग नीला पड़ जाता है। इस क्रियाकी व्याख्या यह है कि इमलीमें इमलीका अम्ल Tartaric Acid होता है वह ताम्र-ओषिद् Copper Oxide को घोल देता है और कालापनदूर हो जाता है। ताम्र-इम्लेत Copper Tartarate बननेके कारण उसका रंग नीला हो जाता है। सोनेके जोड़में चांदी व जस्तका प्रयोग होता है इस क्रियाके बाद जस्त तो घुल जाता है परन्तु चांदी नहीं घुलती और उसका सफेद रंग सोनेके पीले रंगके समाने बहुत चमकने लगता है।

दूसरी क्रियामें रँगवाला एक पाव खानेका नमक और एक पाव फिटकरीको बारीक पीस कर पानीके साथ लेप बनाकर सोनेकी चीज़ोंपर लगाता है और फिर उनको आगपर गर्म करता है। लेपके सुखनेपर उनको पानीसे धो डालता है। इस क्रियासे चीजोंमें और भी चमक आजाती है कारण यह है कि जो कुछ ताम्र-ओषिद Copper Oxide के परमाणु रह जाते हैं वह इस लेपसे दूर हो जाते हैं।

तीसरी क्रियामें रंगवाला एक मिट्टीके बर्त्तनमें कुछ पानी गर्म करता है और उसमें आध सेर कलमी शोरा (nitre), आधपाव नमक और आधपाव फिटकरी डाल देता है, पानी इतना होता है जितनाकि आधा मसाला घोल सके फिर उसमे उबाल आते हैं और उबलते हुए मसालेमें साफ़की हुई चीजें डाल दी जाती हैं। बार बार चीजोंको निकालकर देखा जाता है और जब सफेद चांदी बिलकुल सोने से ढक जाती है तब उनको-निकाल लिया जाता है और अच्छी तरह पानीसे धोया जाता है। इस क्रियाकी रसायनिक व्याख्या इस प्रकार करते हैं:—

यह मालूम है कि नमक और शोरेके तेजाबोंके मिलानेसे हरिण Chlorine उत्पन्न होता है।

$$HNO_3 + 3HCl = NOCl + 2H_2O + Cl_2.$$
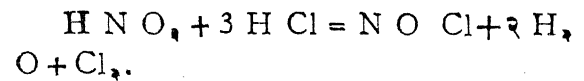
बजाय तेज़ाबोंके यहांपर उनके यौगिक Salts हैं और उनके बीचमें जो कार्य्यवाही होती है वह निम्नलिखित समीकरण equation से विदित होती है।

$$KNO_3 + 3NaCl + 2H_2O = N_2OCl + {}_2NaOH + KOH + Cl_2.$$
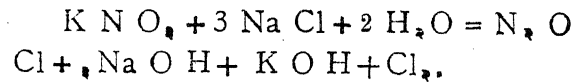
यही हरिण गैस सोनेको घोलकर स्वर्णहरिद् gold chloride बनाती है और स्वर्ण-हरिद gold chloride चांदी को हटाकर उसकी जगह सोनेकी तह लगा देता है और इसीसे सारी चीज़ पीली हो जाती है, फिटकरीका केवल काम यही है कि वह सोनेकी तहको मज़बूत करदे। इस आखिरी क्रियामें बहुत सोना चीज़ोंसे छुटकर पानीमें चला जाता है जोकि आंखोंसे दिखाई नहीं देता। वह एक द्विस्त-यौगिक double Salt, $AuCl_3$ $NaCl$, $_2H_2O$ की शकलमें रहता है, यह घोल एक और मनुष्य ले जाता है

जिसका नाम "जमकवाला" है, वह इसमेंसे सोनेको निकाल लेता है।

चौथी क्रियामें जो कि आखरी होती है रंगवाला एक मिट्टीके बर्तनमें इमलीका गूदा, कलमी शोरा, नमक और पानी लेना है और आगपर उबालता है, तब ज़राना गन्धक स्लेटपर पानीके साथ घिसकर उसमें मिला देता है; तत्पश्चात् सोनेकी साफ़ की हुई चीज़ें उसमें डाल दी जाती हैं। यही गंधक सोनेमें एक प्रकारका रंग पैदा करता है और इसी वास्ते इसको थोड़ा थोड़ा करके मिलवा जाता है जबतक कि जरूरी रंग चीज़ोंपर न आजावे। फिर वह उनको पानीसे खूब अच्छी तरह धोता है जिससे उनमें अच्छी चमक आजाती है इसकी रसायनिक व्याख्या यह है।

सोनेपर जो ललछहूं कासनी reddish violet रङ्ग आ जाता है वह स्वर्ण-गन्धिद gold sulphide की वजहसे नहीं है क्योंकि वह काला होता है परन्तु वह रजत ओषदि Aurous oxide की वजहसे है जोकि कासनी violet होता है और कासनी रङ्ग पीले पर पड़कर ललछहूँ कासनी प्रतीत होने लगता है। शोरे और नमकके मेलसे हरिण सोडाकास्टिक caustic soda और पोटास कास्टिक caustic potash बनते हैं जैसे कि तीसरी क्रियामें दिखा चुके हैं हरिण सोनेसे मिल कर स्वर्णहरिद gold chlorida बनाता है। इस जगह पर गन्धक मिला देते हैं और हरिण बजाय सोने से मिलनेके अब गंधकसे मिल जाता है और स्वर्ण हरेत auric chloride गर्मीकी वजहसे स्वर्ण-हरिद पोटास-कास्टिक aurous chloride, An, Cl; और हरिण विछिन्न हो जाता; हरिण तो गन्धक के साथ चली जाती है परन्तु स्वर्ण-हरिद सोडा कास्टिक aurous Chloride, aaustic Caou tic potash के मेलसे स्वर्ण ओषिक Soda व पोटास कास्टिक aurous oxide, Au o, बनता है—

2 Au Cl+2K O H=Au G+H Cl+H; G,
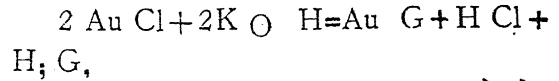
जोकि कुछ तो चीज़ों पर जम जाता है और बाकी बे-घुले नमकोंसे साथ बैठ जाता है।

आपने देखा है कि इन क्रियाओंमें सोनेका नुकसान होता है जो कि पानीमें रह जाता है इसको जमकवाला मोल ले जाता है और उसमेंसे सोना वापिस निकालता है। वह बड़े मिट्टीके बरतनमें सबको गर्म करता है ताकि सारा पानी निकल जावे उसके बाद यह थोड़ासा सुहागा और बहुकसा पुनूर (Poonoor) उसमें मिलाता है तब इसमें गायका गोबर मिलाता है और छोटी छोटी गेंद बनाकर सुखा लेता है। पुनूर वह वस्तु है जोकि चांदीको साफ़ करनेमें पीछे बच जाती है इसमें सीसा, तांबे, जस्त और कुछ कुछ चांदी व लोहा होते हैं। जमक वालेकी तीसरी क्रियामें एक मिट्टीका बड़ा बरतन कोयलेकी आगपर रक्खा जाता है और उसपर बुझे चूनेकी एक तह लगा दी जाती है, जब खूब गर्म हो जाता है तब गोलियें जोकि पहिले बनाई थीं उसमें डाल दी जाती हैं। धौंकनियोंसे खूब गर्म करते हैं और गर्म करनेसे सीसा पिघलकर नीचे बैठ जाता है उसमें। सोना, चांदी व तांबा सब घुल जाते हैं। इसके बाद ऊपरसे भी आग द्वारा गर्म करते हैं। सीसा लिथार्ज litharge बनकर उड़ जाता है और पीछे सोना, चांदी व तांबा रह जाते हैं आप देखते हैं कि कितनी मुश्किलसे जमकवाला सोना प्राप्त करता है। (Chemists) रासायनिकोंने एक तरकीब निकाली है जिसमें इतनी दिक्कत नहीं होती। हरा कसीस बाज़ारसे लाकर पानीमें घोलो और छानकर जमक (वह धोवन जोकि रंग वालेके यहां बचता है) में मिला दो। सोना नीचे तलीमें बैठ जावेगा। पानीको नितारकर उस सोनेको तपाकर एक ढेला बना लो-यह तरकीब कितनी आसान व सस्ती है। आशा है विज्ञानके पाठक इससे लाभ अवश्य उठायेंगे।

*राज्य-प्रबन्ध

(लेखक पं० शीतलाप्रसाद तिवारी 'विशारद' प्रयाग)

उपोद्घात

(केवल विज्ञान के लिए)

इस अवनीतल पर जन्म लेकर अपने जीवनमें रंकसे लेकर राजा तक को अपने अधीनस्थ सभी प्रकारके कार्य्यों को सुचारु रूपसे संपादित करनेके हेतु प्रबन्ध-नीतिके अनुसार सुव्यवस्था करनी पड़ती है। तब कहीं जाकर समस्त कार्यों की बागडोर एक सुविज्ञ शासन-कर्त्ताके हाथोंमें पड़कर फलती-फूलती है। जिससे रंकोंका कुटुम्ब तथा राजाओं-की प्रजा उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होते हुए इस सृष्टि में गौरवान्वित होती है। ग़रीब हो अथवा अमीर, चाहे व्यापारी हो एवं राजा, सभी को अपने व्यवसायको उन्नतिके शिखरपर पहुँचा देने-के लिए लालाइत और इच्छुक होना अनिवार्य्य है। किन्तु काल-चक्रके कुप्रभावसे यह उक्त समस्त बातें आधुनिक कालमें भारतीय राजाओं, व्यापारियों तथा प्रजा-वर्गमें स्वप्नमें भी दृष्टिगोचर नहीं होतीं। देश-कालानुसार यद्यपि इस बातके कई एक प्रधान कारण हैं। किन्तु सबसे मुख्य और वास्तविक कारण तो यह है कि हमारे देशमें भारतीय किसानोंके बच्चोंसे लेकर भारतीय-नरेशोंके लाडिलों तक को—इनकी किसानी तथा ज़मीदारी एवं ताल्लुकेदारी अथवा राज्य-प्रबन्ध के हेतु जो कुछ भी शिक्षा वर्तमान कालमें भारतीय गवर्नमेंटके शिक्षणालयोंमें दी जाती है। सर्व प्रथम तो वह अधूरी है; द्वितीय अंशमें विचार करनेसे सर्वाङ्ग रूपेण विदेशी-पद्धतिसे लथापथ है। जिसके ही कारणसे वर्तमान कालीन शिक्षणालयों मेंसे निकले हुए भारतीय-नरेशोंके लाडिले अधिकाशतः इसी रङ्गमें रंगे हुए देखे जाते हैं।

जिसके फलस्वरूप हमारे भारतीय नरेशोंमें अब अपने राज्य-प्रबन्धकी वह शक्ति नहीं पाई जाती है, जोकि अत्यन्त प्राचीन कालसे ही इन भारतीय-नरेशोंके पूर्वजोंमें पाई जाती थी; जिस शक्तिके द्वारा वह अपने राज्यका सुचारु रूपसे प्रबन्ध करते हुए स्वंय शक्तिशाली तथा समृद्धिशाली होते थे। इतनाही नहीं उनके राज्य-कोषकी श्री-वृद्धि निरन्तर दिन-दूनी रात-चौगुनी होती जाती थी; और वह राजा होते हुए भी धर्म्मराज तथा साधु–महात्माओंकी उपाधिसे विभूषित किए जाते थे। समस्त प्रजा उनका गुणानुवाद करती थी; उनके दुःख-सुखको अपना सुख-दुख अनुभव करती थी और राजाके राज्यकी रक्षाके हेतु प्राणपणसे जान निछावर करनेतक को तैयार रहती थी। राज्यके सारे कर्म्मचारी-गण राजा की व्यक्तिगत शक्ति तथा नीतिको देखकर सदा चौकन्ने और भयभीत रहते थे। जिससे राज्य-प्रबन्धका समस्त कार्य सब कोई अपना-अपना मुख्य कर्तव्य समझकर भली प्रकारसे नीति-पूर्वक संपादन करते थे। जिससे प्रजासे लेकर राज्यके किसी भी कर्म्मचारी तक-को किसीके कार्यमें कोई भी त्रुटि दृष्टिगोचर नहीं होती थी।

इतनाही क्यों? हमारे भारतीय नरेशोंके पूर्वजों की राज्य-प्रबन्धकी नीति तथा व्यवस्था सुसंगठित रूपमें इतनी विशद थी कि राज्यके अन्तर्गत किसी भी बात का बाहरके राजाओंको पता तक नहीं चलता था कि अमुक राज्यकी बाह्य तथा आन्तरिक अवस्था-व्यवस्था कैसी है। इस राज्यका राजा योग्य है, अथवा अमात्य क्योंकि राजा और अमात्यकी ही योग्यतापर राज्य-प्रबन्धकी सारी शक्ति तथा व्यवस्था निर्भर है। यदि राज्यका राजा स्वंय योग्य, नीतिज्ञ,

* लेखककी हस्तलिखित पुस्तक से।

बुद्धिमान, उत्साही, देशकालानुसार कार्य करने वाला, भविष्यका ज्ञाता, अर्थ-विज्ञानका वैज्ञानिक, साहित्य-कलामें प्रवीण, प्रत्येक विद्याओंमें कुशल धैर्यवान, क्षमा शील, विचारवान और राज्यकी उन्नतिके हेतु सदैव चिन्तित रहनेवाला, एवं राज्य-कोष (ख़ज़ाने) कीभली प्रकारसे देख-भाल करके निरन्तर उसकी वृद्धिमें तत्पर रहने वाला है, तब तो सोनेमें सुहागा है। ऐसी अवस्थामें उस राजाके प्रति उसकी, प्रबन्ध-नीतिके विषयमें क्या कहना, सुनना अथवा लिखना अवशेष हैं। क्योंकि इस प्रकारके राजाओंकी राज्य-श्री इस संसारमें सदैव उन्नतिके शिखरपर स्वयं चढ़ती चली जाती है, और एक न एक दिन वह अवश्य आता है। जबकि उसकी विजय-पताका समस्त संसारके ऊपर विराजमान होकर अपनी छत्रछायाका दिग्दर्शन कराते हुए—परिचय भी देती हैं।

वास्तवमें यदि राज्यका राजा उपर्युक्त गुणों से विभूषित है—तो वह अपनी विचक्षण बुद्धि के अनुसार राज्यके प्रधान-मन्त्री तथा मन्त्रि-मण्डल एवम् अन्यान्य कर्मचारियोंका इस प्रकारसे, चुनाव, सङ्गठन, और नियन्त्रण करेगा कि इनकी सहकारिता, मन्त्रणा, सहयोगसे राज्यकी राज्य-श्री सदैव बढ़ती ही चली जायगी, और राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और प्रशंसनीय होगा—जिसकी की तुलनामें स्यात् ही किसी राज्य का प्रबन्ध ठहर सके।

किन्तु दुर्भाग्यवश वर्तमान कालमें संसार के प्रत्येक देशोंके संघर्षण तथा मेल-जोलके कारण भारतीय नरेशोंकी प्रकृति परिवर्तित होकर ऐसी दुरावस्थाको प्राप्त हो चली है, जिसकी कि कभी स्वप्नमें भी आशा नहींकी सकती थी। प्राकृतिक नियमानुसार ज्यों-ज्यों भारत का सम्बन्ध संसार के अन्यान्य देशोंसे होता गया। त्यों-त्यों भारतीय नरेशों और प्रजा-वर्गमें भी घोर परिवर्तन होता गया। जिसका कि यह फल हुआ कि भारतीय-रजवाड़े अपनी पुरानी पद्धतियों और रीति-रिवाजों एवम् भारतीय-राजनीतिको क्रमशः क्रमशः भूल गये। जैसे-जैसे विदेशियोंके आक्रमण भारतमें होते गये, और भारत विदेशियोंके चंगुलमें फँसता गया। वैसे ही वैसे यहाँके नरेशों की समूह-शक्ति भी दिनोंदिन क्षीण होती चली गई। आपसके वैमनस्यके कारण भारतीय-नरेशों में यह भाव उत्पन्न ही न हो पाए कि किसी प्रकार से भारतीय-नरेशोंके वंशज भारतके किसी एक स्थान पर एकत्रित होकर अपनी अवनतिके कारणों पर विचार तथा परामर्श करते हुए उन्नतिके मार्गोंका पुनः से संचालन तथा संशोधन करके अपनी उन्नतिके मार्गोंको खोज सकें।

कालदेव ने अपनी महिमाका अटल परिचय दिया। जिसके फलस्वरूप भारत का राज्य यवनों के हाथमें चला गया; और भारतीय-नरेशोंके वंशज कठपुतलियोंकी तरह अधिकांशतः इन्हीं के इशारों पर नाचने लगे। इससे भारत की रही-सही इज्ज़त-आबरू भी इन्हींके हाथोंमें चली गई। भारतके राज्य-वंशज इनकी अधीनताको स्वीकार कर अपना जीवन भी येन-केन प्रकारेण बिताने लगे। इन प्राचीन राज्य-वंशजोंमें जिनमें कि कुछ भी स्वाभिमान और जातीयता एवम् राष्ट्रीयता विद्यमान थी, वह मौका पाकर जागृत भी हुई। किन्तु दालमें नमकके समान गलकर विलीन हो गई। जिससे कुछभी वास्तविक फल प्राप्त न हो सका।

प्रकृति-नटीने भारत के रङ्ग-मञ्च पर अपने अभिनयके दूसरे ही 'सीन' के दिखलानेकी आयोजना की। परदेके बदलतेही 'स्टेज' पर एक नवीन नट दिखलाई पड़ा। जिस नटकी खेलोंको देखकर लोग विमुग्ध हो गये। इस नटने आरम्भमें तो भारतके रङ्ग-मञ्चकी 'स्टेज' पर ऐसे-ऐसे अभिनय दिखलाये, जिसके कि सभी वशीभूत हो गए किन्तु अन्तमें इस नटने अपनी बाजीगरीके तमाशोंको दिखलाकर सभी भारतीयोंको चाहे

वह भारतके प्राचीन राज-वंशज रहे हों—अथवा विदेशी-राज-वंशजोंके वंशज होकर भारत के विदेशी राज-वंशज हुये हों। अपने वशीभूत कर लिया। अब क्या था? नटने अपनी बाजीगरी का तमाशा दिखलाकर सब की आंखों पर परदा डाल दिया। इतना ही नहीं "मिस्मरेज़म" की खेलोंको दिखलाकर भारतके शिक्षितों, वैज्ञानिकों, पण्डितों, राजनीतिज्ञों, धर्माचार्यों-अर्थात सभी को बेहोश करके अपने काबू में कर लिया खेलके खत्म होने पर, जब लोगोंको होश हुआ और उनके नेत्रों परसे पड़े हुए परदे हटे—तो लोगोंने एक दूसरे ही दृश्यका अवलोकन किया। वह दृश्य यह था कि वह नट वास्तवमें न तो नट था, न बाजीगर, न "मिस्मरेज़मिस्ट" वरन्—वह आंग्ल जातिका विदेशी-राजनीतिज्ञ था—जो कि आंग्ल राज्य-वंशका एक व्यापारी होते हुए भी राजनीतिमें धुरन्धर विद्वान तथा पटु था। इसने भारतके प्राचीन तथा विदेशी राज-वंशजों पर अपनी बुद्धिका चमत्कार दिखलाकर उनके हृदयों पर कब्ज़ा कर लिया।

हृदय और मस्तिष्क पर कब्ज़ा करनेके पश्चात् क्रमशः-क्रमशः थोड़े ही दिनोंमें आंग्ल-जातिके इस राजनीतिज्ञने भारतमें शासन करते हुए विदेशी राज-वंशजोंको अपनी राजनीतिज्ञताके बलसे ऐसी लथेड़ लगाई कि यवनोंका राज्य भारतमें छिन्न-भिन्न होकर चूर्ण-चूर्ण होगया। सुतराम्-भारतवर्षका शासन जिसप्रकारसे सामयिक चक्रके कारण भारतीय राज-वंशजोंके हाथोंसे निकलकर विदेशी राजवंशजोंके हाथोंमें आया था। उसी प्रकारसे यवनोंके हाथसे निकलकर क्रमशः-क्रमशः आंग्ल-राज्यवंशोंके हाथमें जाने लगा; और देखते ही देखते भारतवर्षके शासनकी बागडोर परिपूर्ण रूपेण आँग्ल राज्यवंशके हाथोंमें चली गई, और भारतके प्राचीन राज्य वंशज और विदेशी यवन राज्यवंशज एक दूसरेका मुँह ही ताकते रह गए।

जबसे आँग्ल राज्य-वंशका शासन भारतवर्षमें होने लगा तबसे भारतीय राज्य-वंशजोंकी रही सही वीरता-शूरता तथा जात्याभिमान भी धूलमें मिलकर विलीन हो गया। आंग्ल-राज्य वंशके शासनके साथ ही साथ वैज्ञानिक प्रभुता का शासन भी भारतमें अपना आधिपत्य जमा लिया अब क्या था? जिस प्रकारसे आंग्ल राज्य-वंशज का राज्यभारतमें उत्तरोत्तर उन्नति प्राप्त करने लगा। उसी प्रकार वैज्ञानिक प्रभुता रीति-रिवाज़ों मशीनों-यन्त्रोंका भी रङ्ग भारतमें जमता तथा चोखा होता चला गया।

आंग्ल राज्य-वंशके शासनका सारा दारोमदार वैज्ञानिक सामग्रियोंके ऊपर निर्भर है। उसी वैज्ञानिक-शक्तिके प्रभावसे वर्तमान-कालमें वह संसारके अधिपति हैं। उसीकी निरन्तर उन्नतिसे उनकीभी उन्नति निरन्तर होती चली जारही है। यद्यपि भारतवर्षके चक्रवर्ती राजा वर्तमान कालमें आंग्ल-राज्य-वंशके महाराज जार्जपञ्चम ही हैं। किन्तु तो भी उन्होंने अपनी दया और राजनीतिके कारण भारतके प्राचीन क्षत्रिय-राज वंशजों और विदेशी यवन राज्य-वंशजोंके हाथोंमें भारतके शासनकी बहुतसी शक्ति, जिसका कि नियंत्रण वह अत्यन्त प्राचीन कालसे करते चले आ रहे थे; दे रक्खी है। निस्सन्देह इन भारतीय नरेशोंके अधिकारमें कोई ऐसी प्रबल-शक्ति आंग्ल राज्यके राजनीतिज्ञोंने नहीं दे रक्खी है कि जिसके प्रयोगसे वह आंग्ल राज्यको ही भारतसे मटियामेट करदें। परन्तु तो भी इन प्राचीन राज-वंशजोंके अधिकारमें अपनी २ रियासतोंके प्रबन्धका परिपूर्ण अधिकार है। इनके राज्य-प्रबन्धकी देखरेख स्वयं आंग्ल-जातिके राज्यनीतिज्ञ किया करते हैं और उन्हींकी देखरेखमें और उन्हींकी सम्मति और सहयोगसे इन प्राचीन राज्य-वंशजोंको अपने राज्यका प्रबन्ध करना पड़ता है। जिसका कि वर्त्तमान कालमें यह फल हुआ है कि भारतके प्राचीन राज वंशज जिनके कि हाथोंमें अपनी

राज-व्यवस्थाके हेतु बहुत सा अधिकार भारत-सरकारने दे रक्खा था। उसेभी अपनी अयोग्यता के कारण खो दिया। वर्तमान कालमें—भारतवर्ष की अधिकांश देशी रियासतोंका प्रबन्धभी गवर्नमेंटके "कोर्ट आफ़ वार्डस" के विभाग द्वारा होता है। जिसे कि नैतिक दृष्टिसे विचार करनेसे यही कहना उचित होगा कि गवर्नमेंटके द्वारा ही होता है। क्योंकि "कोर्टआफ़ वार्डस्" का अधिकारी विभाग भी गवर्नमेंटका एक ख़ास विभाग है। वर्तमान कालमें भारतवर्षकी अधिकाँश देशी रियासतें ऋणके बोझसे दबी हुई हैं। जिसका कि यह परिणाम होता जा रहा है कि ऋणकी मर्यादा राज्यके मूल्यसे बढ़ी-चढ़ी जा रही है। ऐसी अवस्थामें गवर्नमेंटका अधिकारी वर्ग या तो स्वयं इन राजाओंको राज्यके अयोग्य ठहराकर स्वयं राज्यको "कोर्टऑफ़ वार्डस्"के अधिकारमें ले लेता है। या इन राजाओंकी अयोग्यताको देखकर इनके उत्तराधिकारी ही गवर्नमेंटसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे राजासाहब राज्यके अयोग्य हैं। अतएव! हे कृपालु !! सरकार !!! हमारी रक्षा करो ! रक्षा करो !! अर्थात हमारी रियासत अथवा राज्यको "कोर्टऑफ़-वार्डस्के" अधिकारमें लेकर सुव्यवस्था करो, जिससे हमें भविष्यमें भजा रोटियोंका तो सहारा रहे ? नहीं तो वर्तमान राजा साहब बेंच-खोंच कर चौपट कर देंगे, और हमारी सन्तान भूखों मरेगी।

कितने शोक तथा संतापकी बात है कि जिन भारतीय-नरेशोंके पूर्वज समस्त भूमण्डलका शासन और प्रबन्ध करते हुए भारतवर्षको सोने की चिड़िया बना रक्खे थे। उन्हींकी सन्तानें आज गुज़ारेके लिए पाई हुई नाम मात्रकी अपनी देशी-रियासतोंका प्रबन्ध और शासन करनेमें भी अयोग्य ठहराई जा रही हैं—अथवा सिद्ध होरही हैं; और इन रियासतोंका खर्च इतना बढ़ा-चढ़ा हुआ है कि कुछ तो ख़र्चके भारसे ही क़र्ज़में बिक गईं—कुछ क़र्ज़के बोझसे दिनोंदिन दबती चली जा रही हैं। इन्हीं समस्त अयोग्यता पूर्ण बातोंको देखकर भारतवर्षकी गवर्नमेंट इन देशी रियासतोंका प्रबन्ध और शासन भी अपने अधिकारमें लेती जा रही है; और इनको तथा इनके परिवार और व्यक्तिगत ख़र्च-बर्चके लिए पेन्शनके तौर पर—अथवा वेतनके रूपमें प्रत्येक मास नक़द रक़म मिला करती है, जिसके द्वारा यह अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

अरे! भारतीय नरेशो !! क्या यह जीवन तुम्हारे लिए सुखकर तथा मर्य्यादा पूर्ण जीवन है ? क्या आप इस जीवनको सुखमय मानते हुए सुखी हैं ? क्या आपके इस जीवनकी संसारमें कुछ महत्ता है ? "क्या ऐसा जीवन व्यतीत करनेके कारण आप संसारमें हेय नहीं समझे जारहे हैं !" आपके इस जीवनको देखकर संसारका राज्य-वंशज क्या आप पर कहकहे मारकर हँस नहीं रहा है ? क्या आपका यह दुःखदायी जीवन नरकसे भी बदतर नहीं है ? क्या इस जीवनके द्वारा आप जेलके एक क़ैदीके समान नहीं हैं ? क्या इस जीवनसे छुटकारा पानेकी आपकी इच्छा नहीं है ?

यदि आपकी इच्छा इस दुःखमय जीवनसे मुक्त होनेकी है—तो आइए जिस प्रकारसे आपने बिदेशी रईसों, राजाओं, ज़मींदारों, तालुक़ेदारोंके ऐशो-आरामकी हू-बहू नक़ल करके आपने अपनी यह दशा बनाली है, उसी प्रकारसे विदेशी राज्य-वंशजोंकी भाँति अपनी रियासतोंका प्रबन्ध कीजिए; और राज्य प्रबन्धमें उनकी उन समस्त नीतियों और रीति-रिवाज़ोंका जिसकेकि कारण वह सुखमय जीवन व्यतीत करते हुए भी सम्पत्तिशाली हैं, ग्रहण करिए। इतनाही नहीं जो आपके देशके लिए देश कालानुसार उपादेय हैं; उन्हें तो आप अवश्य ग्रहण कीजिए साथही साथ प्राचीन नीतिकी बातें भी जो कि वर्तमान कालमें भी देश कालानुसार उपयुक्त हैं। जिन्हें कि आप भूल गए हैं;और उसको भूल जानेके ही कारण आप इस अधोगतिको प्राप्त हुए हैं; और वह नीतियाँ आप

की पैतृक सम्पत्ति हैं। जिसके ही व्यवहारसे आपके पूर्वज संसारमें अपनी सत्ता जमाए हुए थे और सम्पत्तिशाली थे। उन्हें फिर से स्मरण करिए, और स्मरण करके अपने प्राचीन स्मृतिकारोंकी बताई हुई नीतियोंको प्रयोग करके व्यवहारमें लाइए। उसके द्वारा फिर से अपनी रियासतोंका प्रबन्ध करना आरम्भ कर दीजिए। जिससे आपकी रियासतें प्राचीन कालकी भाँति फिरसे सम्पत्तिशाली होते हुए लहलहा उठें। जिससे उन्हें इस बातका फिर से अनुभव होने लगे कि अब कलियुग का अन्त होगया। सतयुगका समय आ गया। ये हरिश्चन्द्र, राम, पांडवों, अशोक, भोज इत्यादिके वंशज फिर से अपने-अपने कर्तव्योंको समझकर राज्य-प्रबन्धमें दत्तचित्त हुए हैं। ऐसा करनेसे आज आपकी जो प्रजा आपको अपना शत्रु समझती है, और "कोर्ट ऑफ़ वार्ड्स" के ही प्रबन्धकी सराहना करते हुए उसके चिरकाल तक चिरजीवी होनेको भगवानसे सायं प्रातः काल प्रार्थना करती है। फिरसे आपको उसी श्रद्धा भरी हुई दृष्टियोंसे देखने लगेगी और अपना राजा समझ कर अपने कर्तव्योंको पूर्ण करनेमें दत्तचित्त हो जावेगी। जैसेकि प्राचीन कालमें करती थी।

अधिकतर लोगों के मस्तिष्कमें यह प्रश्न स्वभावतः उठा करता है कि वर्तमानकालमें जितनी देशी रियासतें हैं, उनकी कर-सम्बन्धी आय प्रायः प्राचीनकालसे आजकल अधिक है—तो इसका मुख्य कारण क्या है? कि इन्हीं रियासतों की कर-सम्बन्धी आयसे तो हमारे पूर्वज इतने सम्पत्तिशाली थे कि उसी आयसे अपनी रियासतोंकी सुव्यवस्था और प्रबन्ध करते हुए राज्यका सारा कार्य्य भार सँभालते थे, इतनाही नहीं राज्य कोषमें भी सदैव इतनी रक़म जमा रखते थे, जो कि उनके भविष्य-जीवनके लिए केवल पर्याप्त ही नहीं होती थी। वरन् इतनी अधिक होती थी, जिससे राज्य तथा राज्य-परिवार के अनेकों कार्य सुचारु रूपसे संपादित किये जाते थे। किन्तु आजकलके समयमें उन्हीं रियासतोंके उत्तराधिकारियोंकी यह हीनावस्था हो गई है कि वह ऋणके बोझसे दबे हुए हैं। जिसके कारण वह न तो भारतकी गवर्नमेंटकी ही दृष्टियोंमें प्रतिष्ठाके पात्र समझे जा रहे हैं; न अपनी प्रजा तथा भारतीय-नरेशोंकी ही मण्डलीमें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखे जा रहे हैं। प्रत्युत इसके ऋण बोझसे निरन्तर दबे जानेके कारण से वह हरेककी दृष्टियोंमें अयोग्य सिद्ध होकर अप्रतिष्ठा तथा अश्रद्धाकी दृष्टिसे देखे जाते हुयेभी अन्तमें इस अधोगतिको प्राप्त हो जाते हैं। कि रियासतके "कोर्ट आफ़वार्डस्" के अधिकारमें हो जानेसे अपनी धर्मपत्नी और बालबच्चों तथा नौकरों-चाकरोंकी दृष्टियोंमें भी तुच्छ जँचने लगते हैं, और संसारमें उनकी कुछभी वक़त नहीं रह जाती।

यह क्यों? इसका क्या प्रधान कारण है? जिसके कि कारण हमारे भारतीय-नरेशोंकी वर्तमान कालमें यह दुरावस्था है? इन प्रश्नों पर मैंने बहुत दिनोंसे भली प्रकारसे गवेषणा-पूर्वक विचार करते हुए अन्तमें यह निर्द्धारित किया, और परिणामतः यही बात उपयुक्त भी जँची और अधिकांशमें सत्यभी निकली कि वर्तमानकालमें हमारे देशी-नरेशोंका विदेशी-सरकारके अन्तर्गत रहनेके कारण तथा विशेष सम्पर्क हो जानेके कारण विदेशी-नरेशोंसे घना सम्बन्ध होगया है। क्योंकि भारतवर्षके शासन-विभागमें अधिकतर जितने उच्च कर्म्मचारी हैं। वह सब प्रायः योरपके लार्ड-वंशज हैं—इसके अतिरिक्त जो लार्ड-वंशज नहीं भी हैं, वह भी अधिकतर विदेशी रईस, रजवाडों, तालुक़ेदारों, ज़मीदारोंकी सन्तानें हैं जो कि बृटिश-पार्लमेंटके सदस्योंकी शिफ़ारिश और अनुमतिसे भारतवर्षके शासन-विभागके उच्च कर्मचारी नियुक्त होकर यहाँ आते हैं, और भारतवर्ष के शासनकी बागडोर अपने हाथोंमें ग्रहण करके शासनको गवर्नमेंटकी आन्तरिक नीतिके अनुसार सुचारु रूपसे सम्पादित करते हैं।

आश्चर्यजनक किरणें

[ले० श्री अमीचन्द्र विद्यालङ्कार]

बिजली के अविष्कारोंने संसारमें नया ही युग उपस्थित कर दिया है। जो काम हजारों आदमी वर्षोंमें भी नहीं कर पाते थे वही काम आज कल बिजलीसे मिनटोंमें हो जाता है। बिजलीकी सहायतासे कार्य करनेमें समय तो थोड़ा लगने ही लगा परन्तु साथ ही साथ इसके कई ऐसे प्रयोगोंका अविष्कार हो गया जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। उन्हीं अविष्कारोंमेंसे एक आश्चर्यजनक अविष्कारका वर्णन हम यहाँ करना चाहते हैं।

यदि वायु अथवा नत्रजनमेंसे बिजलीकी धारा गुजारी जाय तो वहाँ बड़ी विचित्र और सुन्दर मालूम होती है। बहुतसी गैसें दुर्वाहक होती हैं। उनमेंसे विद्युत्की धारा गुजर नहीं सकती परन्तु यदि उन गैसोंको एक नलीमें बन्द कर दिया जाय और उनका कुछ अंश उसमेंसे निकाल दिया जाय तो विरल गैसमें बिजली अच्छी तरह प्रवाहित होती हैं। इस प्रकार बिजली गुजारनेसे तरह तरहके सुन्दर रङ्ग दीख पड़ते हैं।

नलीमें गैस भरकर फिर उसे खाली करते हैं। उसे शून्य-नली (Vacuum Tube) कहते हैं इस नलीसे भिन्न भिन्न परीक्षण करते हुए एक प्रकारकी नई किरणोंका अविष्कार हुआ जिन्हें एक्सरेज़ (X-Rays) कहते हैं।

यदि गैससे भरी नलीको इतना खाली कर दें कि उसमें गैसका १० लाखवाँ भाग ही बच रहे तो उसमें बिजली गुजारनेसे कांचपर सुन्दर सेबका सा हरा रङ्ग आता है। इस नलीके एक ओर ऋण ध्रुव होता है। ऋण ध्रुवसे जो किरणें आती हैं उन्हें ऋण किरण (Cathode Rays) कहते हैं। यह चमक इन्हीं किरणोंके कारण होती है। श्रीयुत विलियम क्रुक्स ने इन नलियोंसे अनेक परीक्षण किए इसीलिए उनके नामपर इन लियों को क्रुक्स की नलियाँ भी कहते हैं।

कैथोड रेज जब किसी वस्तुसे टकराती हैं उस समय उन किरणोंके प्रभावके कारण उस वस्तुमेंसे भी किरणें निकलने लगती हैं। इन्हीं नई किरणोंमें एक्स रेज़ होती हैं। ये किरणें हमारे शरीरमें, दीवार में, दरवाजेमेंसे होकर पार निकल जाती हैं। इनका मार्ग सीसक या अन्य इसी प्रकारकी भारी धातुएं ही रोक सकती हैं।

सन् १८९५ में राञ्जन (Rontgen) अपनी प्रयोगशालामें क्रुक्सकी नलीसे परीक्षण कर रहे थे। नलीपर काला कागज लपेटा हुआ था ताकि उसमेंसे प्रकाश बाहर न निकलने पावे। पर उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि कुछ दूरीपर रखा हुआ पीले स्फटिकवाला पुट्ठा (Card board) चमक रहा है। उनने अनुमान किया कि सम्भवतः कोई ऐसी भी किरण हैं जो कि काले कागज को पार करके निकल गई हैं। उन्हीं किरणोंके प्रभावसे ये स्फटिक चमक रहे हैं। वास्तवमें यही एक्सरेज थीं। इस प्रकार इन किरणोंका आविष्कार हो गया।

उस पुट्ठेपर भारियम-प्लाटिनो सायनिदके स्फटिकोंका लेप था। इस यौगिकपर एक्सरेजकी किरणें पड़नेसे यह पदार्थ बड़ी दीप्तिसे चमकने लगता है। यह इस पदार्थका विशेष गुण है।

वैज्ञानिक राञ्जन ने जब यह देख लिया कि ये किरणें काले कागज़के पार आ गई तब तो शीघ्र ही उन्होंने अनेक परीक्षण किए। थोड़ी समयमें ही वे यह दिखानेमें सफल हुए कि ये किरणें मांसके भी पार जा सकती हैं। उन्होंने देखा कि यदि इस स्फटिक लिप्त पुट्ठेको अपने हाथके पीछे रख कर देखें तो इन किरणोंकी उपस्थितिमें हाथकी हड्डियाँ साफ दीख पड़ती हैं। ऐसा मालूम होता था कि मानों हाथ पार-दर्शक है।

अविष्कार होनेके साथ ही यह समाचार सारे संसारमें फैल गया। वैज्ञानिक जगत्में हलचल मच गई। लन्दनके कई वैज्ञानिकों ने इन किरणोंकी सहायतासे हाथकी हड्डियोंके फोटो भी लिये। उन्हें फोटो लेनेमें अच्छी सफलता हुई।

शल्य-चिकित्सामें आश्चर्य्यजनक क्रान्ति

एक्सरेजने वैज्ञानिकोंके आगे एक नया क्षेत्र उपस्थित कर दिया। शीघ्र ही यह मनुष्योंको यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। शीघ्रही लोगों ने यह अनुभव किया कि इन किरणोंकी सहायतासे निगले हुये सिक्के तथा पिन आदिका पता लगाया जा सकेगा कभी कभी हड्डी टूट जाने पर यह नहीं पता लगता कि वास्तवमें हड्डी टूटी भी है या नहीं। शल्य-चिकित्सा-शास्त्री कोई साधन न होनेसे निश्चय न कर सकते थे। परन्तु एक्सरेजके स्पष्ट पता लग जाता है कि हड्डी टूटी हुई है या नहीं। भारतवर्षमें भी इन किरणोंसे परीक्षा करनेके लिये जगह जगह प्रबन्ध है। भारतके भूतपूर्व वायसराय श्रीमान लार्ड हार्डिञ्जको बम लगानेके बाद इन्हीं किरणोंसे परीक्षाकी गई थी। इनकी सहायतासे उनके शरीरमें घुसे हुये लोहेके टुकड़े आसानीसे देखे गये थे। यदि ये किरणें न होतीं तो शरीरके अन्दर घुसे हुए टुकड़ोंका पता लगाना असम्भव नहीं तो नितान्त कठिन अवश्य था।

आज कल बड़ी बड़ी कानोंके मजदूरोंके शरीरकी इससे परीक्षाकी जाती है, जिससे वह पता लगता रहे कि उनका साथ स्वास्थ्य खराब तो नहीं हो रहा। शरीर की तरह मशीनों की भी इन किरणों से परीक्षा की जा सकती है। इस प्रकार मशीनों की परीक्षा करनेसे खराब मशीनोंके कारण होने वाली घटनायें बन्द हो जायंगी क्योंकि ऐसी मशीनोंकी खराबी का पहले ही पता लगजाया करेगा। इस तरह मशीन-संसारमें भी किरणें नया युग उपस्थित कर देंगी।

एक्सरेज़से फोटो लेना

क्रुक्सकी नली लीजिये। वह बीचमेंसे फूली होती है। उसके दोनों ओर दो सुवाहक लगे होते हैं। इन सुवाहकोंमेंसे एक ऋण (Cathode) होता है। इसके सामने परा-ऋण (Anti Cathode) लगा रहता है। इसका काम होता है ऋण किरणों (Cathfode) के प्रवाहको रोकना। यह उन किरणोंके समकोण पर मोड़ देता है। इस लिये ये किरणें कुप्पीसे बाहर निकल आती हैं कुप्पीकी हवा निकालिए। अब उसमें केवल १० लाखवाँ भाग ही हवा रह गई है। इसमें विद्युतकी धारा गुज़ारिये। विद्युत वायु शून्य स्थानमें प्रवाहित नहीं हो सकती। इस लिये इसमें उसकी धाराके प्रवाहके लिये बहुत प्रबल विद्युत्प्रवाहकी आवश्यकता होती है। साधारणतया धाराकी शक्ति १००,००० बोल्टेन होती है।

यदि इतनी शक्तिकी धाराकी चिंगारी वायुमें उत्पन्नकी जाय वह लगभग २०" लम्बी होगी। अब इस नली विद्युत गुजारिये। नलीमें अलक्तरणु (Electron) एक ध्रुवसे दूसरे ध्रुवकी ओर जाना चाहेंगे। पर बीचमें पराऋण (Anti cathode) उनके मार्गको रोके खड़ा है। वह न केवल उनकी दिशा को ही बदल देगा अपितु उनके स्वरूपको भी। अब ये किरणें उससे टकरा कर एक्सरेजके रूपमें नलीसे बाहर निकल फोटो लेनेके लिये रखी गई वस्तुपर पड़ेंगी। मान लीजिये कि आप घड़ीकी फोटो लेना चाहते हैं। घड़ीपर प्रकाश डालिये। एक्सरेज़ घड़ीके पतले भागोंको यों ही आसानीसे पार कर जायँगी। पतले भाग उसके लिये पारदर्शक हैं। डायल अङ्क इत्यादिके वे किरणें पार निकल जायँगी पर घड़ीके मोटे पुर्जोंके पार वे न निकल सकेंगी। बस यदि घड़ीके आगे फोटोग्राफीकी प्लेट रखी हो तो उसपर घड़ीके स्थानपर बीचकी मैशीनरीका फोटो आ जायगा।

एक्सरेज स्वयं अदृश्य होती हैं। जिस समय बल्बमें विद्युत् गुजारते हैं तब हलकी हरी चमकके सिवाय और कुछ नहीं दीखता।

इन किरणोंका शरीरपर हानिकारक प्रभाव होता है। वह प्रभाव ऐसा नहीं होता कि यदि थोड़ी देर देखें तो नुकसान न हो। वह प्रभाव जुड़ता रहता है। एक दिन ५ मिनिट तक एक एक्सरेज़ आपके शरीरपर पड़ें। इनसे कुछ हानि शरीरको पहुंचेगी। अब यदि आप फिर कभी देखें तो पहली हानिमें वह नई हानि जुड़ जायगी। इस प्रकार शरीर पर इनका हानिकारक प्रभाव जुड़ता रहता है और थोड़ा थोड़ा करके वह बहुत हो जाता है। प्रारम्भिक वैज्ञानिकोंको इसके हानिकारक प्रभावका ज्ञान था इसीसे कइयोंके स्वास्थ्यको बहुत धक्का पहुँचा। यहांतक कि कई आविष्कार वा वैज्ञानिक मृत्युके ग्रास भी हो गये। इसलिये आज कल एक्सरेज़से काम लेते वाले इस प्रकारके वस्त्र अथवा रक्षक उपयोगमें लाते हैं जिनसे एक्सरेज़के बुरे प्रभाव उनके शरीरपर न पड़ने पावें। इस कामके लिए सीसक (Lead) सबसे अच्छी धातु है। इसमें किरणें घुस नहीं सकतीं। रबर और सीसक का एक मिश्रण तयार किया गया है। इसी मिश्रण-के दस्ताने, कोट, तथा अन्य सुरक्षक वस्त्र बनाये जाते हैं, जिन्हें एक्सरेज़के प्रयोक्ता पहन लेते हैं। ऐसा काँच भी बनाया गया है जिसके पार ये किरण न जा सके। उसमें ⅔ भाग सीसकका होता है।

अधिक शक्तिशाली एक्सरेज़ (जिन्हें Hard कठोर किरण भी कहते हैं) की सहायताके बिना ही शल्य चिकित्साके अनेक रोगोंका इलाज किया जाता है। तम्बाकूकी फ़सलको नष्ट करने वाले कृमियोंको नष्ट करनेमें एक्सरेज़ बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। चुंगी वालोंके लिये अब यह एक आसान बात हो गई है कि संदूक बिना खोले ही वे कितनी ही चीज़ोंको देख लिया करेंगे और पता लगा लिया करेंगे कि किसीने कोई चुंगीके योग्य चीज़ छुपा तो नहीं रखी है। जूते पहनने वाले एक्सरेज़से पाँवकी हड्डियाँ देख कर पता लगा लेते हैं कि जूता पाँवमें ठीक बैठा है या नहीं।

एक्सरेज़से नकली हीरे भी पकड़े जा सकते हैं। असली हीरा एक्सरेज़के लिये पारदर्शक होता है। परन्तु नकली हीरा उसमें काला काला दीख पड़ता है।

एक्सरेज़से फ़ोटो लेनेमें मिनिटका हज़ारवाँ भाग भी नहीं लगता। इनकी सहायतासे हृदयकी गतिकी भी फ़ोटो ली गई है। इनकी कृपासे डाक्टरोंको तो मानों दिव्य-चक्षु मिल गये हैं, जिनसे वे शरीरके अन्दर जो कुछ हो रहा है उसे मज़ेमें देख सकते हैं।

अमेरिकाके डा० कूलिज (Dr. Coolidge) ने और भी अधिक प्रबल विद्युत् धारासे ऐसी एक्सरेज़ पैदा की हैं। जो कि लोहे के ३" या ४" मोटी चादरको पार कर सकती हैं। इनकी सहायतासे मशीनों तथा लकड़ियोंके अन्दरकी ख़राबियाँ, टूटे स्थान इत्यादि आसानीसे पता लग जाया करेंगे।

इसी प्रकार इन किरणोंसे धातुओंके जोड़की भी परीक्षा हो सकता है। यदि जोड़ ठीक न बैठा होगा तो वहाँ एक लकीर आएगी। जब धातुओंका मेल ठीक ठीक हो जायगा तब वहाँ रेखा न आएगी। इस तरह हमें पता लगता है कि इन किरणोंक सहायतासे धोखा बड़ी सुगमतासे पकड़ा जा सकता है।

वैज्ञानिकीय

(ले० अमीचन्द्र विद्यालंकार)

शीतकालमें मक्खियां कहाँ चली जाती हैं !

अनेकप्रकारकी मक्खियां वसन्त अथवा ग्रीष्म ऋतुमेंही जीती रहती हैं और उसके बाद मर जाती हैं। परन्तु उनमेंसे कुछ ऐसी भाग्यशील भी होती हैं जिन्हें अपने छुपनेके लिए कोई गर्म जगह मिल जाती है। घरके आस पास ही किसी ऐसे स्थानपर ये छुप जाती हैं और मरनेसे बच जाती हैं। खेतों, घरों और घुड़सालाओंमें ये ऐसी जगह छुपती हैं जहाँकि कोई इन्हें सुपनेमें भी ढूँढ नहीं सकता। वे कुछ खाती नहीं हैं। जिस प्रकार गिलहरी अपने घोंसले में सोती है उसी प्रकार ये मक्खियां एक रातही नहीं बल्कि सारी सर्दी भर सोये सोये बिता देती हैं। जब सर्दी बीतने पर उन्हें जरा २ सी गर्मी मालूम होती है तब उन्हें गर्मीसे उनकी नींद टूट जाती है। वे उठती हैं। उठने पर भूख मालूम होती है। अपनी भूखको शान्त करनेके लिए वे फिर इधर उधर उड़ने लगती हैं। जब सर्दी आती है तब ये सबकी सब फिर उसी तरह किसी गर्म स्थानमें छुप जाती हैं। इनमेंसे बहुत सी तो सर्दीके कारण मर जाती हैं हाँ, कुछ ऐसी अवश्य होती हैं जोकि फिर उसी तरह छुप जाती है। बहुत सी मक्खियोंको एक प्रकारका कीड़ा नष्ट कर देता है। वह कीड़ा उनके शरीरके ऊपर बैठ जाता है और अपने पैने भाग उनके शरीरमें गड़ा देता है। इस प्रकार मक्खियां मर जाती हैं और केवल उनका पञ्जर बचा रह जाता है। सर्दियोंके प्रारम्भमें ऐसे पञ्जर इधर उधर पड़े, हुए देखे जासकते हैं।

क्या मक्खी अण्डे देती हैं ?

आपने देखा कि हरसाल सर्दीके आनेपर प्रायः मक्खियां मर जाती हैं। थोड़ी सी ही उनमें से ऐसी होती हैं जोकि कहीं एकान्त स्थानमें छुप जाती हैं। आप पूछेंगे कि गर्मियोंके प्रारम्भमें न जाने फिर इतनी मक्खियां कहांसे आजाती हैं। मक्खियाँ अण्डे देती हैं। गर्मियोंके अन्तमें मादा मक्खी अंडे देती हैं। इस प्रकार लाखों करोड़ो मादा मक्खियाँ अण्डे देती हैं। ये अण्डे सर्दियों भरही यूँही पड़े रहते हैं। यदि सर्दियोंसे पहलेहो इनसे बच्चे पैदा हो जायँ तो वे सब सर्दीके मारे मर जायँ। सर्दियों के बाद इन अण्डोंसे बच्चे पैदा हो जाते हैं। सर्दियों में ये अण्डे भी ऐसेही बेकार पड़े रहा करते हैं। इन दिनोंमें अण्डोंसे बच्चे पैदा होनेके लिए जितनी गर्मीकी आवश्यकता होती है उतनी नहीं होती। ये अण्डे ऐसे स्थानपर दिये हुए होते हैं जहां कि इतनी गर्मी अवश्य रहती है कि ये सर्दीसे बिलकुल नष्ट न होजायं। बस जहां गर्मियाँ प्रारम्भ हुई कि ये फूटे। तब फिर चारों ओर मक्खीही मक्खी दीखनेलगती हैं। दूसरे वर्ष फिर मक्खियां कहाँसे आती हैः—

जब गर्मियां प्रारम्भ होती हैं तब वे अण्डे फूटते हैं। मक्खियां जब उनमेंसे निकलती हैं तब उनके पर गीले होते हैं। पर सूखने भरकी देर है कि वे पंख फड़फड़ाती हुई इधर उधर उड़ती दीखने लगती हैं।

यदि कहीं आपने बहुत सी मक्खियोंको बैठे हुआ देखा होगा तो उसमें छोटी बड़ी बहुत प्रकारकी मक्खियां आपने देखी होंगी। शायद आप समझते होंगे कि ये छोटी मक्खियाँ बड़ी मक्खियोंकी सन्तान हैं। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। अपने अण्डेको फोड़कर बाहर आनेसे पहिलेही मक्खियां पूरी तरह बढ़ चुकती हैं। जो मक्खियां आपने देखी हैं वे सब भिन्न भिन्न प्रकारकी हैं। छोटो मक्खियां अब बढ़कर बड़ी न हो जायंगी। वे तो अब इतनी ही बड़ी रहेंगी। सर्दियोंके शुरूमें बुड्ढी मक्खियां तो मर जाती हैं और शिशु मक्खियां अपने अण्डेके

मजबूत घरके अन्दरही बढ़ती रहती हैं। इसीलिये आप सर्दियोंमें मक्खियां देख नहीं पाते।

जो मक्खियां किसी गर्म स्थान पर छुपकर सो रहतीं हैं वे वसन्तके प्रारम्भ होतेही सौ से भी ऊपर अण्डे देती हैं। उन अण्डोंको वे एक या दो दिनमें ही से लेती हैं इस प्रकार पैदा हुई मक्खियोंमें दो चार दिनमें ही अण्डे देनेको शक्ति आजाती है। इस तरह थोड़ेही दिनोंमें लाखों करोड़ों मक्खियां इधर उधर भनभन करती हुई दीखने लगती हैं। जरा कल्पना तो कीजिये कि इन सारेके सारे अण्डों मेंसे मक्खियां पैदा हों और उनमेंसे कोई नष्ट न हो तो थोड़ेही दिनोंमें कितनी मक्खियां होजायं। दोचार दिन बादही एक मक्खीसे कई हज़ार मक्खियां पैदाहो जाती हैं। ये पैदा भी होती रहती हैं और नष्ट भी। मक्खियां कूड़े कर्कट या गन्दे स्थानपर अण्डे दिया करती हैं। यदि सफाई रक्खी जाय तो फिर उस जगह मक्खियां पैदा नहीं होने पातीं।

मक्खी हानिकारक क्यों हैं?

ये मक्खियां एक तो वैसेही बुरी मालूम होती हैं दूसरे इनसे एक बड़ी भारी हानि और भी है। वह यह है कि इनसे बीमारी बहुत फैलती है। एक तो न जानेये मक्खियां किन किन गन्दी वस्तुओं पर बैठकर आती हैं और दूसरे जहाँ ये बैठती हैं वहां स्वयं अपनी गन्द छोड़ जाती हैं। साथमें वह गन्द भी वहीं छोड़ जाती हैं जो दूसरे स्थानोंसे लाती हैं। चिकित्सा-शास्त्रके ज्ञाता कहते हैं कि बीमारियोंके मुख्य कारण कृमि (bacteria) हैं। बीमारियाँ कृमियोंसे फैलती हैं। यदि किसी रोग के रोगी अथवा किसी गन्दे कूड़े करकट आदिपर मक्खी बैठकर फिर हमारे पास आये, हमपर बैठे, हमारे भोजन पर बैठे, हमारे कपड़ों पर बैठे तो वह अपने ऊपर सवार कराके लाये हुए कृमियोंमेंसे कुछ को वहां उतार जाती है। बस इसी तरह रोगोंके बैक्टिरिया हम तक पहुँच जाते हैं और शीघ्र ही हमपर रोगका आक्रमण कर बैठते हैं।

इसलिए मक्खियोंके द्वारा फैलने वाली बीमारी से बचनेके लिए ऐसा प्रबन्ध करना आवश्यक है कि मक्खा हमारे घरमें न आवें।

अधिकतर मक्खी वहाँ पर ही बैठती है जहाँ सफाई न हो अथवा मीठी चीज़ पड़ी हो। इस लिए मक्खियोंसे बचनेके लिए निम्न उपाय काममें लाने चाहिएँ।

(१) घर प्रतिदिन अच्छी तरह सफा करना चाहिए। कहीं पर कोई वस्तु ऐसी न पड़ी रहे जो कूड़े कर्कटका काम करे घरकी मोरियोंको पानीसे अच्छी तर धो देना चाहिए।

(२) मीठा, दूध, शहद, आदि वस्तुओंको अच्छी तरह बन्द करके रखना चाहिए।

(३) घरके आस पास कूड़े कर्कटका ढेर न लगाना चाहिए।

(४) यदि आपके पास पशु हैं तो पशुओंके आस पास भी सफाई कर कूड़ा कर्कट, गोबर आदि दूर फैंक देने चाहिएं।

(५) यदि मकान कच्चा हो तो उसे जल्दी २ गोबर और मिट्टीसे लीपते रहना चाहिये।

(६) समय समय पर धूप, गुगुल, गन्धक आदि पदार्थ जलाते रहना चाहिये।

(७) भोजनके समय चौकेमें खूब सफ़ाई रखनी चाहिये। सब चीज़ोंको ढकनोंसे ढक कर रखना चाहिये ताकि खाद्य पदार्थों पर मक्खियाँ न बैठने पावें।

इन साधनोंके काममें लानेसे न केवल मक्खियों से ही बचाव होगा। बल्कि मनछरोंका कष्टभी जाता रहेगा गर्मियां शुरू होनेपर जिस तरह मक्खियां बढ़तो हैं वैसेही मच्छर भी। मच्छर गर्मियोंमें सीलके पास बहुत पैदा हो जाते हैं। इसलिये घरके आस पास पत्ते आदि सड़ने न देने चाहिये न कहीं पानी इकट्ठा होने देना चाहिये।

× × ×

छींकनेके समय कौन २ से मसल (Muscle) काम आते हैं।

शरीरमें लगभग ५० मसल हैं। छींकते समय उन सबको कुछ न कुछ उत्तेजना अवश्य मिलती है। इसी लिए छींकके बाद तबियत खिल जाती है।

× × ×

एक ही पदार्थ है। उसकी फोटोमें हमवे बातें क्यों नहीं देख पाते जोकि साधारणतया अपनी आँखोंसे देख सकते हैं ?

फोटोग्राफीके कैमरेमें फोकस बनानेके लिये जैसा उन्नतोदर ताल काम आता है ठीक वैसाही ताल हमारी आंखमें होता है। ग्राह्य वस्तुका प्रतिबिम्ब लेनेके साधन तो दोनों जगह समान हैं। पर भेद है उस वस्तु का जिस पर फोटो लिया जाता है। फोटोके कैमरेमें हम कांचकी पट्टी काम में लाते हैं जिस पर चांदीका समास (रजत-हरिद) लगा रहता है। पर हमारी आँखमें इस प्रकारकी प्लेट लगी हुई नहीं है। वहां तो ग्राहक है 'रैटिना' यह बहुत छोटे तन्तुओंसे बनी हुई है। इन छोटे छोटे तन्तुओंकी संख्या प्लेट पर लगे रजत लवणके करनोंकी संख्यासे कहीं अधिक है। यही कारण है कि हमारी आंख फोटोग्राफ़ीकी प्लेटकी अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म है।

× × ×

क्या कारण है कि कई लकड़ियां तैरती हैं और कई नहीं।

कुछ लकड़ियां अपेक्षा वृत दूसरोंके अधिक घनी होती हैं अर्थात् उनके कण अधिक पास पास होते हैं। उन लकड़ियोंका भार अपने समायतन जलके भारसे अधिक होता है। यदि उन्हें जलमें डाला जाय तो जितने जल को वे हटायेंगी उससे उनका भार अधिक होता है। इसलिये वे डूब जाती हैं। जिनका कम होगा वे तैरती रहेंगी।

+ × ×

जङ्ग लगनेसे बचानेके लिए लोहे पर निकलकी कलई की जाती है। फिर उसे जंगार क्यों खा जाता है।

निकल पर यद्यपि वायु ओषजनकी क्रिया जल्दी नहीं होती पर धीरे धीरे वह निकल ओष-जिदमें परिवर्तित होता जाता है साथही एक बात और भी है। इसकी कलई एक रस सब जगह नहीं होती। कहीं कहीं बीचमें खाली स्थान रह जाते हैं। जो हमें साधारणतया नहीं दीखते। इन्हीं रहे हुये स्थानों पर वायुको आक्रमण करने का मौक़ा मिल जाता है। बस, यहींसे जंगार लगना शुरू होता है और धीरे धीरे सारा लोहा खाया जाता है।

× × ×

ऊँचे पहाड़ पर उड़दकी दाल क्यों नहीं पकाई जासकती ?

पानीका खौलाव बिन्दु समुद्रतल पर १००°श अथवा २१२° फार्नहाइट होता है। ज्यों ज्यों ऊपर जाते है। वायुके दबावके सीधे अनुपातसे जलका खौलाव बिन्दु बदलता जाता है दबाव कम होता जायगा खौलाव-विन्दु भी नीचा होता जायगा। दबाव बढ़ेगा खोलाव-विन्दु भी ऊंचा होता जायगा। ऊँचे पहाड़ोंपर खौलाव-बिन्दु इतना नीचा होजाता हैकि उस जगह उतनी उष्णता पानीमें होनेही नहीं पाती कि उड़द उसमें गल सकें। उतनी उषणता होनेके पहलेही पानी भापबन कर उड़ जाता है।

+ + +

एक स्टोवकी ज्वाला नीली होती है और गैस लैम्पकी पीली। क्यों ?

जब कोई चीज जलती है तब वह वायुकी ओषजनसे मिल रही होती है। यदि तो ओषजन अच्छी तरह मिल गई तब तो वह वस्तु अच्छी तरह जल जायगी। उस समय उसकी ज्वालाका रङ्ग नीला होगा। यदि वायु काफ़ी न मिली तो उसमें कुछ कर्बन बिना जली रह जायगी। उस अवस्थामें वह कर्बन गर्म होकर पीली पीली चमकेगी। कर्बन के छोटे २ करण ज्वालामे गर्म होकर चमका करते हैं। उन्हींका पीलापीला प्रकाश होता है। बस अब कहनेकी आवश्यकता नहींकि स्टोव को जलने के लिए इतनी ओषजन मिल जाती है कि उसका

ज्वलन पूरा हो जाता है और गैस लैम्पको पर्याप्त ओषजन नहीं मिलती। इसीसे स्टोवकी ज्वाला नीली है और लैंम्प की पीली।

× × ×

सूर्यके अस्त होनेके समय प्रायः सूर्य लाल दीखा करता है। क्या आप बतला सकते हैं क्यों?

जिस समय आकाशमें बहुत धूल होती है उस समय आकाश लाल दीखा करता है। सायंकाल तथा प्रातःकाल सूर्यकी किरणोंको हम तक पहुंचनेके लिए अपेक्षाकृत मोटी तहमेंसे गुजरना पड़ता है। दुपहरको उतनी मोटी तहमेंसे नहीं गुजरना पड़ता। वायुमें कुछ न कुछ धूल अवश्य होती है। मोटी तहमें उसकी मात्रा इतनी होती है जोकि सूर्यकी किरणोंके लाल दीखनेके लिए पर्याप्त होती है।

× × ×

आकाश नीला क्यों दीखता है?

वैज्ञानिकोंका कथन है कि सूर्यका प्रकाश सात रंगोंके मेल से बना हुआ है। इसकी परीक्षा न्यूटनकी डिस्क अथवा एक पर्शुककी सहायतासेकी जासकती है। जब किसी वस्तु पर किरणें पड़कर हमारी आँखों तक पहुँचती है तब वह वस्तु हमें दीखती है। जिस वस्तुका जैसा रंग दीखता है वह वस्तु उस प्रकारकी किरणोंको छोड़कर शेष किरणोंको चूस लेती है। जब तक प्रकाश किसी वह वस्तु पर न पड़े तब तक दीखता नहीं। यही कारण है कि जब कमरेमें धूल होती है तभी प्रकाशका मार्ग देखा जासकता है। वायुमण्डलमें जल वाष्प हैं। इन जलवाष्पोंपरसे किरणें प्रतिदित होकर हम तक पहूँचती हैं। जल वाष्प नीले रंगकी किरणों को छोड़ कर शेष किरणोंको रोक लेता है। इसलिए आकाश नीला दिखाई पड़ता है। यदि आकाशमें धूलि तथा जल-वाष्प न हो तो आकाश बिलकुल कालाही काला दीखे। प्रकाशका अनुभव हमें तभी होता जब वह पृथ्वी पर किसी वस्तु पर पड़ता है।

× × ×

मक्खियाँ कितनी जल्दी जल्दी पंख फड़फड़ाती हैं?

अभी तक मनुष्य किसी भी ऐसी तेज गतिका अविष्कार नहीं कर सका जोकि मक्खियोंके पंख फड़फड़ानेका मुकाबला कर सके। कई वैज्ञानिकों ने मक्खियोंके पंख फड़फड़ानेकी आवाज़ से पता लगाया हैकि कई मक्खियाँ एक मिनिटमें २११२० बार पंख फड़ फड़ाती हैं अर्थात् १ सेकण्टमें ३५२ बार। शहदकी मक्खीके पंख फड़ फड़ानेकी गति और भी तेज है। वह एक मिनिटमें २६४०० बार पंख फड़ फड़ाती है अर्थात् एक सेकण्डमें ४४० बार। जब वह थक जाती है तब एक सेकण्डमें वह ३३० बार पंख फड़ फड़ाती है।

यह केवल निरी कोरी कल्पनाहीं नहीं है। इस बातको परीक्षाओंसे क्रियात्मक रूपसे भी सिद्धकरके दिखाया गया है।

× × ×

मनुष्य कितना भूलता है।

मनुष्यभी कितना भुलक्कड़ होता है इसका अनुमान इसीसे हो सकता है कि लण्डनके भुलक्कड़ोंकी भूली चीज़ोंके घरमें १६३६७६ वस्तुएँ पहुँची। चलते फिरते, कहीं बैठकर उठने, गाड़ी आदिकी सवारियोंमें प्रायः लोग अपनी चीजें भूल आया करते हैं। इन्हीं चीजोंके संग्रहके लिए एक संग्रहालय बना हुआ है। जो लोग भूलसे छूटी चीजोंको उस संग्रहालयमें पहुँचाते हैं उन्हें इनाम दिया जाता है। गतवर्ष इस तरहके इनाम १० हज़ार पौंडके लगभग व्यय हुए। उस संग्रहालय का व्यय है ६ हज़ार पौण्ड। ये १६ हज़ार पौण्ड भुलक्कडोंकी भूलसे वसूल हो जाता है भूलनेके बाद जब सुध आती है तब लोग उस आफ़िसमें पहुँचते हैं वहां वस्तुकी कीमत कुछ प्रतिशत देकर वे अपनी वस्तु ले आते हैं। इसी प्रतिशतके लेनेसे से उनको १६००० पौंड मिल जाते हैं। बल्कि कहीं इससे अधिक भी।

वास्तवमें हम अपने दैनिक जीवनमें इसी तरह कितनी ही आवश्यक बातोंको भूल जाते हैं जिससे

हमें बहुत क्षति उठानी पड़ती है। बहुतसे लोग इसे लिए भावीमें किये जानेवाले कार्यके लिए अपनी स्मरण शक्ति पर भरोसा नहीं रखते। उन्हें कुछ समय बाद जो काम करना होता है उसे या तो वे उसी समय कर लेते हैं अथवा यदि उस समय वह काम न किया जा सका तो उसे फौरन अपनी नोट बुक में लिख लेते हैं। इस तरह उस आवश्यक कामकी ओर उनका ध्यान रहता है और समय आनेपर वे चूकते नहीं।

क्या स्त्रीसे पुरुष होसकता है

हेल 'युनिवर्सि टीके' मान्त्र विज्ञानके सुप्रसिद्ध जानकार प्रो० ह्यूगो संलहीम कहते है कि पुरुषोंकी तरह बाल रखने, मर्दानी पोशाक पहनने और मनुष्यकी ताकतकी जरूरतवाले कामों और खेलोंमें भाग लेनेसे स्त्रियोंमें जो पुरुषोंकीसी विशेषताएँ आजाती है इनसे आधुनिक सभ्यताको भारी धक्का पहुँच सकता है। मानव विज्ञानकी अन्तर्राष्ट्रीय काँग्रेसमें उक्त प्रोफेसरने बतायाकि किस तरह ४३ वर्षकी अवस्थामें एक स्त्री सभी तरहसे एक पुरुषकीसी मालूम पड़ने लगी थी उसकी दाढ़ीपर बाल बढ़ने लगे उसका स्वर मर्दोंकासा होगया और उसका चेहरा पुरुषकासा प्रतीत होने लगा लड़के उसे देख 'डाइन' कह करके उसके चारों ओर जमा होजाते मुझे इसमें कुछ सन्देह नहींकि अगर वह स्त्री कई सौ वर्ष पहले होती तो जिन्दा जला दी गयी होती जिस तरहसे धीरे धीरे उस स्त्रीमें पुरुषके लक्षण प्रकट हुए हैं वैसेही दूसरी स्त्रियोंमें भी होसकते हैं प्रो० ह्यूगो संलहोमके इस व्याखयानसे औरतों में बड़ी सनसनी फैल गयी है।

× × ×

क्या दूरके तारेभी देखे जा सकते हैं।

माउण्ट विलसन पर सबसे बड़ी वेधिशाला (Observatory) है। उसके प्रतिक्षेपक का व्यास १०० इञ्च है। यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इसकी सहायतासे आकाश में ८४०,०००,०००००००० मी-दूरी पर स्थितिभी तारे देखे जा सकते हैं। आकाश गङ्गाके तारे हमारी पृथ्वी से प्रकाशके १४०००००० वर्ष की दूरी पर हैं। एक प्रकाशके वर्षका अभिप्राय है उस दूरीसे जितनी दूरी कि प्रकाश १८६००० मी० प्र० से० की चालसे चलता हुआ एक वर्षमें तै कर ले। इस प्रकार एक प्रकाशके वर्षकी दूरी लगभग ६०००००००००००० मील है।

नव-ग्रह

रात्रिमें हमें आकाशमें तारे ही तारे दीखते हैं। इन तारोंमें न जाने कितने तारे और छुपे हुए हैं। सामान्यतया हमें इनके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। इस विश्वमें एक ही सौरमण्डल नहीं है, अनेक सौरमण्डल हैं। परन्तु हममेंसे ऐसे बहुत थोड़े हैं जिन्हें अपने ही सौरमण्डलके सम्बंधमें कुछ विशेष ज्ञान है। अपने पाठकोंके ज्ञानके लिए हम कुछ प्रारम्भिक बातें यहाँ पर दे रहे हैं।

इस सौर मण्डलका केन्द्र है सूर्य। इस सूर्यके चारों और मुख्य रूप से ८ ग्रह घूमते हैं। सूर्य से इनकी दूर निम्नलिखित है:—

बुद्ध (Mercury)	...	३५९८८०००
शुक्र (Venus)	...	६७२४५०००
पृथिवी (Earth)	...	९२९९५०००
मंगल (Mars)	...	१४१६५००००
वृहस्पति (Jupiter)	...	४८३६७८०००
शनि (Saturn)	...	८८६७७९९००
यूरेनस (Uranus)	...	१,७८२००००००
अन्धतारा (Naptune)		२८०००००००००

× × ×

जितने समयमें ये सूर्य के चारों ओर अपनी परिक्रमा पूरी कर लेते हैं उस समयको उस ग्रहका वर्ष कहते हैं। इन सबकी परिक्रमाका समय भिन्न भिन्न होता है। यहाँ पर हम सबकी परिक्रमाका समय अपने दिन मानके हिसाब से देते हैं:—

ग्रह	दिन	घ०	मि०
बुद्ध	... ८७	२३	१५
शुक्र	... २२४	१६	४८
पृथिवी	... ३६	६	९
मंगल	... ६८६	२३	३१
वृहस्पति	... ४३३२	१४	२
शनि	... १०७५९	५	१६
यूरेनस	... ३०६८८	७	१२
अन्धतारा	... ६०१८०	२०	३८

× × ×

जितना ताप और प्रकाश सूर्यसे हमें इस पृथ्वी पर मिलता है यदि उसे १००० मान लिया जाय तो तो सब ग्रहोंको सूर्यका ताप और प्रकाश निम्न लिखित अनुपात से मिलेगा:—

बुद्ध	६८००	वृहस्पति	४०
शुक्र	१९००	शनैश्चर	१०
पृथिवी	१०००	यूरेनस	२
मङ्गल	४४०	अन्धतारा	१

× × ×

पृथिवीकी आकर्षणशक्तिको यदि १०० मान लिया जाय तो सूर्य तथा अन्य ग्रहोंकी आपेक्षिक आकर्षण शक्ति निम्न-लिखित होगी—

सूर्य	२७७०	मङ्गल	३८
बुद्ध	३८	वृहस्पति	२६१
शुक्र	८६	शनैश्चर	११९
पृथिवी	१००	यूरेनस	८८
		अन्धतारा ...	८८

× × ×

सूर्य, चन्द्रमा तथा इन ग्रहोंकी आकृति गोल है। इनके व्यास मीलोंमें निम्न लिखित हैं—

सूर्य	...	८६६५००
चन्द्र	...	२१६३
बुद्ध	...	२७६५
शुक्र	...	७६२६
पृथिवी	...	७९१८
मंगल	...	४३५२
वृहस्पति	...	९०१९०
शनैश्चर	...	७६४७०
यूरेनस	...	३४९००
अन्धतारा	...	३२९००

× × ×

सूर्यके चारों ओर घूमनेकी चाल (मीलोंमें)

नाम ग्रह	प्रतिसेकण्ड	प्रतिदिन
बुध	२९	२५०५०००
शुक्र	२१·७	१८७३०००
पृथिवी	१८	१५५५०००
मङ्गल	१४·९	१२८७०००
वृहस्पति	८	७७१०००
शनि	६·२	५३६०००
यूरेनस	४·३	३७२०००
अन्धतारा	३·१	२६८०००

बुद्धकी परिक्रमाके मार्गके घेरेको इकाई मान लीजिए। तो अन्य सबके परिक्रमाके चक्रोंका आपेक्षिक मान निम्न-लिखित होगा—

बुद्धके चक्रका मान	१	वृहस्पति ···	१३·४
शुक्र	१.९	शनैश्चर ···	२४·६
पृथिवी ···	२.६	यूरेनस ···	४६.५
मंगल ···	३.९	अन्धतारा ···	७७.५

× × ×

सूर्यके सम्बन्धमें कुछ आवश्यक अंक नीचे दिये जाते हैं—

सूर्यकी पृथिवीसे माध्यम दूरी	९२६६५००० मी०
" " से अधिकसे अधिक दूरी	९४५२४००० मी०
" " से कमसे कम दूरी	६१४०६००० मी०
सूर्यका द्रव्यमान (Mass) पृथ्वीसे	३३३००० गुना
" आयतन पृथ्वीसे	१३०५००० गुना

" सूर्य्यका आकर्षण पृष्ठ पर पृथ्वीसे २७·७२ गुना
" अपनी कीली पर घूमनेका समय २५ दिन ७ घंटा ४८ मिनिट।
अपने चारों ओर घूमनेकी गति ४४०७ मी० प्र० घंटे।
बाह्य पृष्ठ, २२८८६२१४६६००० वर्ग मील अर्थात् पृथ्वीसे १२००० गुना।
आयतन ३३६३०० ००० ००० ००० ००० घन मील
पृष्ठके प्रत्येक वर्गफीटसे निकली शक्ति१५००० अश्व-बल

तापमान १०००० अंश फ़ारेनहाइट।
द्रव्यमान (भार)—१६६८ ००० ००० ००० ००० ००० ००० ००००० टन
प्रकाश—१५७५ ००० ००० ००० ००० ००० ००० कैण्डल पावर (इतनी मोमबत्तियोंके बराबर)
पृष्ठ परसे उठने वाली कुछ ज्वालाओंकी ऊँचाई २८६००० मी०

× × ×

पृथ्वी के सम्बन्धमें कुछ आवश्यक अङ्क :—
ध्रुवोंवाला व्यास (Polar Diameter) ७८९९·६ मी०
भूमध्य रेखा वाला व्यास ७६२६·६ मी०
भूमध्य रेखा पर परिधि २४८६६ मी०
पृष्ठका क्षेत्रफल १६७०००००० व० मी०
आयतन २६० ००० ००० ००० घ० मी०
द्रव्यमान (भार) ६००० ००० ००० ००० ००० ००० ००० टन

सूर्यकी परिक्रमाका चक्र है ५८० ००० ००० मी०
सूर्यकी परिक्रमाकी चाल ६६००० मी० प्रति घण्टा
वायुमण्डलका भार ५८ ००० ०००००००००००० सेर
समुद्रका क्षेत्रफल १४२००० ००० व० मी०
स्थलका क्षेत्रफल ५५००० ००० व० मी०

× × ×

चन्द्रमाके विषयमें ज्ञेय अंक :—
व्यास २१६३ मी०
परिधि ६७९५ मी०
पृष्ठका क्षेत्रफल १४६६०००० व० मी०
आयतन ५३०० ००० ००० घ० मी०
द्रव्यमान ७८०००००० ००० ००० ००० ००० टन
पृथ्वीसे मध्यम दूरी २३८००० मी०
,, अधिकसे अधिक दूरी २५२०७० मी०
" कमसे कम " " २२१६०० मी०
चन्द्रमा के परिक्रमाके चक्रकी परिधि १५००६८० मी०
चाल २२८८ मी० प्र० घं० (३३५७ फीट प्रति सेकण्ड)

चन्द्रमाका प्रकाश सूर्यके प्रकाशका ६१८००० वाँ हिस्सा है।

सूर्यके प्रकाशका १७वां हिस्सा प्रतिच्छिप्त होता है
दिन का तापमान २००° फारेनहाइट
रात का तापमान—२००° "फारेनहाइट"
ऊँचेसे ऊँचे पहाड़की ऊंचाई २९४९७० फीट
पृथिवी के चारों ओर परिक्रमा करने का समय २७ दिन ७ घंटा ४३ मि० ११ सेकण्ड है। चन्द्रमामें आकर्ष पृथ्वीका $\frac{1}{6}$वां भाग है। पृथ्वी पर एक सेर भार वाले पदार्थ का चद्रमा में भार २$\frac{2}{3}$ छटांक होगा।

इस लेखमें आवश्यक अंक ही दिए गये हैं। सौर-मण्डल के सम्बन्ध में समय समय पर विज्ञान में लेख निकलते रहे हैं। यदि हो सका तो यथासमय सौर-मण्डल पर और भी अधिक प्रकाश डालनेका यत्न किया जायगा। यहाँ पर कुछ मोटी मोटी बातें ही दे दी गई हैं।

—अमीचन्द्र विद्यालङ्कार,

नापकी मूल इकाइयाँ

(Fundamental Units)

[ले० श्री० निहाल करण सेठी डी०, एस० सी०]

३—लम्बाईकी नाप

इकाई—सेंटीमीटर=अन्तर्जातीय मीटरका $\frac{1}{100}$ वां भाग

अन्तर्जातीय मीटर पैरिसके निकट सेवर्सके अन्तर्जातीय नाप तौलके दफ़्तरमें रखी हुई प्लेटिनम इरीडियमकी बड़ी छड़पर खिंची हुई दो रेखाओंके बीचकी लम्बाईका नाम है (तापक्रम

०°श)। पहिले यह लम्बाई यह समझ कर नियत की गई थी कि यह पृथ्वीकी परिधिके चतुर्थांशके ठीक १ करोड़वें भागके बराबर होगी। किन्तु अधिक अच्छी तरह नापनेपर ज्ञात हुआ कि परिधिके चतुर्थांशकी लम्बाई स्थिर नहीं है और उसका औसत वास्तव में १०,००२,१०० मीटर है।

यह अन्तर्जातीय मीटर कैडमियमके लाल प्रकाशकी १,५५३,१६४·१ तरङ्ग लम्बाइयोंके बराबर हैं (१५°श और ७६० मम० दबावपर)।

सेंटी मीटर	(सम०)		
मिली मीटर	(मम०)	=	०·१ सम०
मीटर	(म०)	=	१०० सम०
किलोमीटर	(कम०)	=	१००० म० = १०^{5} सम०
माइक्रन	(म्यू०)	=	·००१ मम० = १०$^{-4}$ सम०
मिलीमाइक्रन	(म्यूम्यू०)	=	·००१ म्यू० = १०$^{-6}$ मम० = १०$^{-7}$ सम०
ऑंग्स्ट्रोम	(ए. यू.)	=	१०$^{-8}$ सम०

अंग्रेजी नाप

प्रमाण-नाप—गज—बोर्ड आफ़ ट्रेड, लन्दनके दफ़्तरमें रखा है

१ गज़	=	३ फुट	=	३′
१ फुट	=	१२ इञ्च	=	१२″
१फ़रलांग	=	२२० गज़		
१ मील्	=	८ फरलांग	=	१७६० गज़ = ५२८० फुट
१ समुद्री मील	=	६०८२·६६फुट		
१ फैदम	=	६ फुट		
१ मिल्	=	·००१ इञ्च		

२—तौलकी नाप

इकाई—ग्राम = अन्जातीय किलोग्रामका $\frac{१}{१०००}$ वाँ भाग

अन्तर्जातीय किलोग्राम भी अन्तर्जातीय नाप तौलके दफ़्तरमें रखा हुआ प्लेटिनम-इरीडियमका एक बेलनाकार टुकड़ा है।

ग्राम (ग्र०)

सैंटीग्राम (सग्र०) = ·०१ ग्र०

मिलीग्राम (मग्र०) = ·००१ ग्र०

किलोग्राम (कग्र०) = १००० ग्र०

१ घन सैंटीमीटर शुद्ध जलकी ४°श पर तौल प्रायः १ ग्राम होती है।

अंग्रेज़ी नाप

ट्राय—दवा तौलनेका

६० ग्रेन = १ ड्राम

४८० ग्रेन = ८ ड्राम = १ आउंस

५७६० ग्रेन = १२ आउंस = १ पाउंड

अवाइर्ड्यू प य (अन्य वस्तुओंके लिये)

१ आउंस = ४३७·५ ग्रेन

१ पाउंड = १६ आउंस = ७००० ग्रेन

१ हंड्रेडवेट = ११२ पाउंड

१ टन = २० हंड्रेडवेट

१ ग्रेन (ट्राय) = १ ग्रेन (अवा)

३—समय की नाप

इकाई—सेकंड (से०)=नाक्षत्रिक दिनका $\frac{१}{८६,१६४·०९}$ वाँ भाग

=मध्य सौर दिनका $\frac{१}{८६,४००}$ वाँ भाग

नाक्षत्रिक दिन उतने समयका नाम है जितनेमें पृथ्वी स्थिर तारोंकी अपेक्षा अपनी अक्षका पूरा चक्कर (३६०°) लगा लेती है।

सौर दिन उतने समयको कहते हैं जितनेमें सूर्य ख मध्यसे चलकर फिर ख मध्यमें लौट आवे। सौर दिनका समय घटता बढ़ता है। इसके औसत मानको मध्य सौर दिन कहते हैं।

सौर वर्ष उतने समयका नाम है जितनेमें सूर्य एरीज़ (Aries) के प्रथम बिन्दुसे चलकर पुनः वहीं लौट आता है।

नाक्षत्रिक वर्ष उतने समयका नाम है जितनेमें पृथ्वी सूर्यके चारों ओर एक नाक्षत्रिक चक्कर लगा लेती है। अर्थात् इतनेमें सूर्य स्थिर तारोंकी अपेक्षा पूरा एक चक्कर लगा लेता है।

मध्य सौर दिन = ८६,४०० सेकण्ड = २४ घण्टे ० मिनट ० सैकंड

नाक्षत्रिक दिन=८६,१६४·०९०६ सैकंड = २३ घं० ५६ मि० ४·०९०६ से०

सौर वर्ष=३६५·२४२२ मध्य सौर दिन

नाक्षत्रिक वर्ष =३६५·२५६४ " "

=३६६·२५६४ नाक्षत्रिक दिन

३—नापकी व्युत्पन्न इकाइयां (सग्रास=C. G. S.) (Derived Units)

क्षेत्रफल—वर्ग सेंटीमीटर (व० सम०)

आयतन—१ घन सेंटीमीटर (घ० सम०)

२ लिटर (ल०)=१०००·०२७ घ० सम०

यह १ किलोग्राम स्वच्छ वायु रहित जलके अधिकतम घनत्वके तापक्रम (३°·९= श) और ७६० मम० दबावपर नापे हुए आयतनका नाम है।

[अंग्रेजी इकाई—गैलन। यह ६२°फ के तापक्रम और ३०" दबाव पर १० पाउण्ड आयतनका नाम है।

१ गैलन = ८ पांइट = १६० आउंस = १२८० ड्राम =२७७·२८०]

घनत्व (Density) ग्राम प्रति घन सैंटीमीटर—ग्र०/घ० सम०

वेग (Velocity) सैंटीमीटर प्रति सैकंड – सम०/सै०

[अंग्रेजी—मील/घंटा। नाट=समुद्रीमील/घं० =१·१५२ मील/घंटा]

वेगवृद्धि acceleration) सेंटीमीटर प्रति सैकंड प्रति सेकंड—सम०/सै०

आवेग (momentum) तौल × वेग—ग्राम सैंटिमीटर प्रति सैकंड—ग्र०सम० सै०

चाक्रिकवेग (angular Velocity)—रेडियन (५७°·२९६) प्रति सैकंड

चाक्रिकवेगवृद्धि (angular acceleration) रेडियन प्रति सेकंड प्रति सैकंड

चाक्रिक जड़त्व (moment of inertia) Σ त × द²। त=वस्तुके कणका तौल और द = उस कणसे अक्षकी दूरी। इकाई—ग्र० सम०²

चाक्रिकआवेग (angular momentum चाक्रिक जड़त्व × चाक्रिकवेग—ग्र० सम०², सै०

आवेगकाचाक्रिक प्रभाव (moment of momentum) आवेग × अक्षकी दूरी—ग्र० सम०² /सै०

शक्ति (Force)—इकाई—डाइन = यह वह शक्ति है जो एक ग्राममें १ सम०/से०² की वेगवृद्धि कर सकता है।—ग्र० सम०/सै०²

[अंग्रेजी इकाई—पाउंडल—एक पाउंडमें एक फुट प्रति सैकंड² की वेग वृद्धि करता है।

भार (Weight)—१ ग्राम का भार='ग' डाइन

चाक्रिकबल (couple, Torque) या चाक्रिक प्रभाव (Turning moment) = बल × आपेक्ष्य विन्दुसे दूरी/इकाई—डाइन सैंटीमीटर

काम (Work) (१) अर्ग=१ डाइनसैंटीमीटर= वह काम जो एक डाइन बलके द्वारा वस्तु को एक सम० खिसकानेमें होता है।

(२) जूल १ ०⁷ अर्ग

[अंग्रेजी इकाई—फुट पाउंड—एक पौंड भारको एक फुटानेमें जो काम होता है]

सामर्थ्य (Energy)--जितना काम कोई वस्तु अपनी गति (गत्यजसामर्थ्य Kinetic energy) या स्थिति (स्थित्यजसामर्थ्य Potential energy) के कारण कर सके।

इकाई —अर्ग (देखो "काम")

बोर्ड आफट्रेड यूनिट = १ किलोवाट-घंटा = ३.६ × १०⁵ वाट सेकंड (देखो सामर्थ्य)

बल (Power) जितना काम एक सेकंडमें कर सके। १ अर्ग से०

१ वाट=१०⁷ अर्ग/सै० = १ जूल/सै०

१ किलोवाट=१००० वाट = १·३४ अश्वबल (Horse-Power)

[अंग्रेजी—१ अश्वबल = ३३००० फुट पाउंड प्रति मिनट]

दबाव (pressure or Stress)—शक्ति प्रति वर्ग समऽ इकाई—१ डाइन/व० सम० = १ डाइन/ सम०^2

१ वातावरण (Atmosphere) = ७६० मम० पारद (० स और ४५° अक्षांश पर).

= १.०१३२×१०^6 डाइन/सम२०°

= १४·७ पाउंड/इञ्च^2

= ६·४ टन/फुट^2

४—परिवर्त्तन गुणक

(Conversion Factors)

अंग्रेज़ी		मीट्रिक	मीट्रिक		अंग्रेज़ी
लम्बाई :—					
१ इंच	=	२·५४०० सम०	१ सैंटीमीटर	=	·३९३७ इंच
१ गज	=	·९१४४ म०	१ मीटर	=	१·०९३६ गज
१ मील	=	१·६०९३ कम०	१ किलोमीटर	=	·६२१४ मील
क्षेत्र फल					
१ वर्ग इंच	=	६·४५१६ व० सम०	१ वर्ग सैंटीमीटर	=	·१५५० व० इंच
आयतन					
१ घन इंच	=	१६·३८७ घ० सम०	१ घन सैंटीमीटर	=	·०६१० घ० इंच
१ घन फुट	=	२८·३१७ ल० (लिटर)	१ लिटर	=	·०३५३१ घ० फुट
१ पाइंट	=	·५६८२ ल०		=	१·७५९८ पाइंट
१ गैलन	=	४·५४६० ल०		=	·२२०० गैलन
तौल					
१ ग्रेन	=	·०६४८ ग्र०	१ ग्राम	=	१५·४३२ ग्रेन
१ आउंस (अवा)	=	२८·३५० ग्र०		=	·०३५२७ आउस (अव)
१ पाउंड (,,)	=	·४५३६ क० ग्र०	१ किलोग्राम	=	·०३२१५ ,, ट्राय
१ टन	=	१०१६ कग्र०		=	२·२०४६ पा० (अव)
१ आउंस (ट्रा)	=	३१·१०४ ग्र०		=	·०००९८४२ टन
घनत्व					
१ पाउंड / घनफुट		·०१६०२ ग्र / सम^3	१ ग्राम / घन सैंटीमीटर		६२·४३ पाउंड / घनफुट
वेग					
१ मील / घंटा		४४·७० सम० / सै०	१ सैंटीमीटर / सैकंड		·०२२३७ मील / घंटा
बल					
१ पाउंडल		१३·८२५ डाइन	१ डाइन		$७·२३३ \times १०^{-5}$ पाउंडल
१ पाउंड भार	=	$४·४५ \times १०^5$ डाइन = $४·५३५ + १०^2$ ग्रामभार	१ ग्राम भार		$२·२०५ \times १०^{-3}$ पाउंडभार-

काम और सामर्थ्य

१ फुट—पाउंड	१·३५६ जूल	१ अर्ग	७·३७३ + १०⁻ फुट पाउंड
		१ जूल	·७३७३ फुट पाउंड

बल

१ अश्व-बल (हार्स-पावर)	·७४६ किलोवाट	१ किलो वाट =	१·३४ अश्व बल

दवाव

१ पाउंड / वर्ग इंच =	६८,९७१ डाइन / सम०²	१ डाइन / वर्ग सैंटीमीटर	१·४५···१०⁵ पाउंड / व० इंच
	= ७०·३१ ग्र / सम०²	१ ग्राम / वर्ग सैंटीमीटर	·०१४२२ " "
१ टन / वर्ग इंच =	१·५४५ / १०⁸ डाइन / सम०²	१ किलोग्राम/वर्ग मिलीमीटर	·६३४९ टन / इंच²

५—पृथ्वी

त्रिज्या (व्यासार्ध) ध्रुवीय	= ६,३५६,९०९ मीटर = ३९४९·९९२ मील	समुद्रकी औसत गहराई	= ३·८५ × १०⁵ सम० = १२६०० फुट
" " निरक्षीय	= ६,३७८,३८८ मीटर ३९६३·३३९ मील	समुद्रका आयतन	= १·४१ × १०²⁴ घन सम०
परिधि, ध्रुवीयका चतुर्थांश	= १०,००,१०० मीटर ६२१५·३०५ मील	समुद्रका तौल	= १·४५ × १०²⁴ ग्राम = १·४३ × १०¹⁸ टन
आयतन	१·०८३ × १०²¹ घन मीटर	सूर्यसे पृथ्वीकी दूरी औसत	= १·४९५ × १०¹¹ मीटर = ९·२८२ × १०⁷ मील
घनत्व	= ५·५२७ ग्रा/घ० सम०	सूर्यसे पृथ्वी तक प्रकाश पहुंचनेका समय	४९८·२ सैकण्ड ८ मिनट १८·२ सै०
तौल	= ५·९८ × १०²⁷ ग्राम ५·८७ × १०²¹ टन	चन्द्रमासे पृथ्वीकी दूरी औसत	३·८३८ × १०⁸ मीटर २·३८ × १०⁵ मील =६०·२७ × पृथ्वीका व्यासार्ध
स्थलका क्षेत्रफल	= १·४५ × १०¹⁸ वर्ग० सम० = ५·६० × १०⁷ वर्ग मील	चन्द्रमाका तौल	= १/८१·५६ पृथ्वीका तौल = ७·३३ + १०²⁵ ग्राम = ७·२ × १०¹⁹ टन
	= ३·६७ × १०¹⁸ वर्ग सम०		
समुद्रका क्षेत्रफल	= १४·१८ × १०⁷ = वर्ग मील		

७—सौर जगत्

(Solar System)

गुरुत्व गुणक (Gravitation Constant G) = ६·६५८ × $१०^{-८}$ (C. G. S.)

नाम ग्रह	निरक्षीय व्यासार्ध Equatorial Semi-diameter मील	पृथ्वी = १	तौल पृथ्वी = १	घनत्व जल = १	पृष्ठीय गुरुत्व (Gravity at Surface) पृथ्वी = १
सूर्य	४३२,८९०	१०९·२	३२९,३९०	१·३९	२७·६१
बुध	१३८७	·३५०	·३४	४·८६	·२८
शुक्र	३७८३	·९५५	>·८१८	>५·१०	>·९१
पृथ्वी	३९६३·३	१·०००	१·०००	५·५२७	१·००
मंगल	२१०८	·५३२	·१०६	३·९०	·३८
वृहस्पति	४३८५०	११·०६	३१४·५०	१·३६	२·५७
शनि	३८१७०	९·६३	९४·०७	·६३	१·०१
युरेनस	१५४४०	३·९०	१४·४०	१·३४	·९५
नेपच्यून	१६४७०	४·१५	१६·७२	१·२८	·९७

नाम ग्रह	कक्षका दीर्घव्यासार्ध Semi-majar axis of orbit पृथ्वी=१	करोड़ मील	अक्षीयभ्रमण का समय (Time of axial Rotation)	वर्षीय भ्रमण का समय (Sidereal Period) मध्य सौरदिनोंमें	चन्द्रमाओंकी संख्या
			दि० घं० मि०		
सूर्य	......	......	२५—९—७	......	......
बुध	·३८७	३६·०	?	८७·९७	०
			घं० मि० सै०		
शुक्र	·७२३	६७·२	२३—४०·	२२४·७०	०
पृथ्वी	१·०००	९२·९	२३—५६-४·९	३६५·२५६४	१ (अनुकूल)
मंगल	१·५२४	१४१·६	२४—३७-२२·७	६८६·९८	२ ,,
वृहस्पति	५·२०३	४८३·३	९—५६	४३३२·५९	८ (७ अनुकूल १ प्रतिकूल)
शनि	९·५३९	८८६·२	१०—१५	१०७५९·२	१० (९ अनुकूल १ प्रतिकूल)
यूरेनस	१९·१९१	१७८२·८	१३ ?	३०५८६·३	४ प्रतिकूल
	३०·०७१	२७९३·५	?	६०१८७·७	१ ,,

९—रेखांश और समयका सम्बन्ध

(Relation between longitude and Time)

रेखांश Longitude	समय *
१५″	१ सैकंड
१′	४ सैकंड
१५′	१ मिनट
१°	४ मिनट
१५°	१ घंटा
९०	६ घंटा

* पूर्वके स्थानोंके लिये ग्रीनिचके प्रमाण समयमें यह समय जोड़ना चाहिये और पश्चिमके स्थानोंके लिये उसमेंसे इसे घटाना चाहिये।

देश	प्रमाण समय ग्रीनचि की अपेक्षा Standard Time
ग्रेट ब्रिटन, फ्रांस, पुर्तगाल, बेलजियम, स्पेन, आयर्लैंड,	ग्रीनिचका समय
आस्ट्रिया, डेनमार्क, जर्मनी, इटली, नार्वे, स्विट्ज़र लैंड,	एक घंटा आगे
साउथ अफ्रिका, इजिप्ट, टर्की	१॥—२ घंटे आगे
भारतवर्ष	५॥ घंटे आगे
जापान	९ घंटे आगे
आस्ट्रेलिया	८-९-१० ” ”
न्यूज़ीलैंड	११॥ ” ”
केनाडा, और युनाइटेड स्टेट (अमेरिका)	४, ५, ६, ७ और ८ घंटे पीछे

१०—समय-समीकरण

(Equation of Time)

यह वह समय है जिसे प्रत्यक्ष सौर समय (apparent Solar time] में जोड़ने (+) या घटाने (।) से घड़ी का या मध्य सौर समय (mean Solar Time; निकलता है। इसमें प्रतिवर्ष कुछ सेकंडोंका अन्तर होता रहता है।

तारीख़	समय-समीकरण मि० सै०	तारीख	समय-समीकरण मि० सै०	तारीख	समय-समीकरण मि० सै०	तारीख	समय-समीकरण मि० सै०
१ जनवरी	+ ३ − ११	१ अप्रेल	+ ४ − १	१ जुलाई	+ ३ − ३२	१६ अक्टोबर	− १४ − २०
१६ ”	+ ९ − ३३	१६ ”	० − ०	२६ ”	+ ६ − १८	३ नवम्बर	− १६ − २१
१ फरवरी	+ १३ − ३७	१ मई	− ३ − ५७	१६ अग०	+ ४ − ११	१६ ”	− १५ − १०
१२ ”	+ १४ − २५	१५ ”	− ३ − ४९	१ सेप्टेम्बर	० − ०	१ दिसम्बर	− १० − ५६
१ मार्च	+ १२ − ३४	१ जून	− २ − २७	१६ ”	− ५ − ६	१२ ”	− ६ − १५
१६ ”	+ ८ − ५१	१५ ”	० ०	१ अक्टोबर	− १० − १६	२५ ”	० − ०

जिन अङ्कोंके नीचे रेखा खिची है वे समय-समीसरण के अधिकतम या न्यूनतम मूल्य हैं।

समीकरण मीमांसा भूमिका ।

भारतवर्ष में बीजगणित का अङ्कुर कब और पहिले कहां जमा यह अब स्पष्टरूप से जानना अत्यन्त कठिन है । तथापि जहां तक विचारसे अनुभव होता है यह जान पड़ता है कि इस देश में लिखने की विद्या प्रकट होने के पूर्व ही से बीजगणित का प्रचार था । पहिले के लोग जो कि अक्षरों के सङ्केत से अपरिचित थे अव्यक्त पदार्थों के मानने के लिये जुदे जुदे रङ्गों की गोलिओं का व्यवहार करते थे जब पीछे से लिखने की विद्या प्रचलित हुई तब बीजगणित की पोथिओं में उन्ही रंगों के सूचक शब्दों का व्यवहार होने लगा जैसा कि संस्कृतके बीजगणितों में अव्यक्तों के मान मानने के लिये जो यावत्तावत्, कालक, नीलक, पीतक, लोहितक, श्वेतक, चित्रक, कपिलक, पिंगलक, पाटलक, धूम्रक श्यामलक, मेचक इत्यादि शब्द रक्खे हैं उनसे स्पष्ट है । जिसको रचना काल का अनुसन्धान अभी तक स्पष्ट रूप से नहीं हो सका है ऐसे आर्षग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के देखने से यही अनुमान होता है कि बीजगणित भारतवर्ष में ही पहिले उत्पन्न हुआ फिर यहाँ से सर्वत्र फैला है । क्योंकि कोणशङ्कु (the Sine of the altitude of the sun when situated in the vertical circle of which the Azimuth distance is 45°) के आनयन के लिये इस ग्रन्थ में यह सूत्र

'त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रज्यावर्गोनाद्द्वादशाहतात् ।
पुनर्द्वादशनिघ्नाच्च लभ्यते यत् फलं बुधैः ॥
शङ्कुवर्गार्धसंयुक्तविषुवद्वर्गभाजितात् ।
तदेव करणीनाम तां पृथक् स्थापयेद्बुधः ।
अर्कघ्नीविषुवच्छायाग्रज्यया गुणिता तथा ।
भक्ता फलाख्यं तद्वर्गसंयुक्तकरणीपदम् ॥
फलेन हीनसंयुक्तं दक्षिणोत्तरगोलयोः ।
याम्ययोर्विदिशोः शङ्कुरेवं याम्योत्तरे रवौ ॥
परिभ्रमति शङ्कोस्तु शङ्कुरुत्तरयोस्तु सः ।

लिखा है जिसका अर्थ है कि त्रिज्या के वर्ग के आधे में अग्रा का वर्ग घटा कर शेष को १२ से गुण कर फिर १२ से गुण दो । इस गुणनफल में शङ्कुवर्ग के आधे अर्थात् ७२ युत पलभावर्ग से भाग दो । इससे जो भजनफल पाया जाय उसको करणी कह पण्डित इस करणी को अलग लिख रक्खे । फिर १२ गुनी पलभा को अग्रा से गुणने से जो गुणनफल हो उसमें उसी का अर्थात् ७२ युत पलभावर्ग का भाग दो । इस लब्धि को फल कहो । इस फल के वर्ग से युत करणी के वर्गमूल में से उस फल को यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो तो घटाओ और यदि सूर्य उत्तर गोल में हो तो जोडो । यही फल कोणशङ्कु होता है । इस सूत्र की उपपत्ति बीजगणित के विना हो ही नहीं सकती । इस बात की सत्यता प्रकट करने के लिये यहाँ ऊपर लिखे हुए सूत्र की उपपत्ति पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे दी जाती है:—

मान लो कि य = कोणशङ्कु ; प = पलभा (the equinoctial shadow)

अ = अग्रा (the sine of the amplitude)

क = करणी और फ = फल

तब $१२ : प :: य : \frac{प}{१२}$ य = शङ्कुतल

यदि दक्षिण गोल में सूर्य हो तो शङ्कुतल में अग्रा जोड़ देने से और यदि उत्तर गोल में हो तो घटा देने से भुज (the sine of the difference between the sun's place and the prime vertical) बनता है ।

$\therefore \frac{प}{१२} य \pm अ = भुज$

परन्तु जब कोणवृत्त में सूर्य रहता है तब उसका जितना अन्तर सममण्डल (the prime vertical circle) से रहता है उतना ही याम्योत्तर वृत्त (meridian) से रहता है। इस लिये तब दृग्ज्या (the sine of the zenith distance) अर्थात् नतांशों की ज्या कर्ण (hypotenuse) होती है। भुज और कोटि ये दोनों

$\frac{प}{१२} \pm अ$ इस भुज के तुल्य होते हैं।

$$\therefore दृग्ज्या^२ = २\left(\frac{प}{१२} य \pm अ\right)^२ = २\left(\frac{प^२}{१४४} य^२ \pm \frac{प\,अ}{३} \pm अ^२\right)$$

$$= \frac{प^२}{१२} य^२ \pm \frac{पअ}{३} + २\,अ^२ ।$$

परन्तु $शंकु^२ + दृग्ज्या^२ = त्रिज्या^२$

$$\therefore य^२ + \frac{प^२}{७२} य^२ \pm \frac{प\,अ}{३} + २\,अ^२ = त्रि^२$$

दृगम से $७२\,य^२ + प^२ य^२ \pm २४\,य\,प\,अ + १४४\,अ^२ = ७२\,त्रि^२$

वा $(प^२ + ७२)\,य^२ \pm २४\,अ\,प\,य = ७२\,त्रि^२ - १४४अ^२$

$(प^२ + ७२)$ इसका दोनों पक्षों में भाग दे देने से

$$^२ \pm \frac{२४अप}{य^२ + ७२} य = \frac{७२त्रि^२ - १४४अ^२}{प^२ + ७२} = \frac{१४४\left(\frac{त्रि^२}{२} - अ^२\right)}{प^२ + ७२}$$

$$वा \quad य^२ \pm २य\left(\frac{१२\,अ}{प^२ + ७२}\right) = \frac{१२ \times १२\left(\frac{त्रि^२}{२} - अ^२\right)}{प^२ + ७२}$$

यहां श्लोक के अनुसार $\frac{१२ \times १२\left(\frac{त्रि^२}{२} - अ^२\right)}{प^२ + ७२}$ इसकी करणी संज्ञा और $\frac{१२\,अ}{प^२ + ७२}$ इसकी फल संज्ञा की गई है।

$\therefore य^२ \pm २\,फय = क$

वा $य^२ \pm २\,फ\,य + फ^२ = फ^२ + क$

मूल लेने से $य \pm फ = \sqrt{फ^२ + क}$

$\therefore य = \sqrt{फ^२ + क} \pm फ$

यहाँ फलवर्गयुत करणी के वर्गमूल में से जबसूर्य दक्षिण गोल में हो तो फल को घटाओ और जब उत्तरगोल में हो तो जोड़ दो।

यदि $\sqrt{फ^२ + क}$ इस व्यक्त पक्ष का मूल ऋण मानों तो दोनों गोल में शङ्कुमान ऋण होगा अर्थात् तब सूर्य क्षितिज के नीचे कोणवृत्त में आवेगा।

ऊपर की क्रिया से यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष में सूर्य-सिद्धान्त के रचनाकाल के पूर्व ही से बीजगणित का प्रचार भली भांति था।

बीजगणित के समीकरणों में अव्यक्त पदार्थ के मान मानने के लिये सभी रङ्गवाची शब्दों ही का प्रयोग किया गया है। केवल प्रथम शब्द यावत्तावत् रंग वाची न होने से चित्त में कुछ शङ्का उत्पन्न होती है। संस्कृत में यावक महावरको कहते हैं जो कि लाह से बना हुआ लाल रंग का होता है। मंगल कार्यों में पुरुष और स्त्रियों के पैर इससे रंगे जाते हैं और पैर के नहों में भी इसी को भर देते हैं। रंगवाची ही सब शब्दों के प्रयोग से निश्चय होता है कि पहिले के लोगों ने यावक ही को ग्रहण किया था पीछे से भास्करादिकों ने इसके स्थान में लेखक-दोष से

अथवा स्वयं अपनी इच्छा से यावत्तावत् को रक्खा। क्योंकि पृथूदक चौबे की की हुई ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त की टीका में यावत्तावत् के स्थान में यावक ही मिलता है। भास्कराचार्य ने अपने बीजगणित के अनेकवर्णसमीकरण में ऊपर के अव्यक्त सूचक शब्दों को लिख कर यह भी कहा है कि अथवा आपस में जिसमें सब मान न मिल जाँय इस लिये अव्यक्त के मानों के लिये चाहो तो क, ख, ग इत्यादि अक्षरों ही को रक्खो।

यूरप में थोड़े समय से अब समीकरणों में य के स्थान में भिन्न भिन्न अव्यक्तों के उत्थापन देने का विशेष कर के प्रचार हुआ है जिससे बहुत ही सीधा समीकरण हो जाता है और बड़े लाघव से उत्तर निकल आता है। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतवर्ष में हजारों वर्ष पहिले से उत्थापन का यह प्रकार चला आता है जिससे बड़े कठिन प्रश्न भी सहज में हो जाते हैं। यही कारण है कि यहाँ के आचार्यों ने अव्यक्त पदार्थ के मान मानने के लिये यावत्तावत्, कालक, नीलक इत्यादि इतने शब्दों का प्रयोग किया है। अपने बीजगणित में भास्कराचार्य लिखते हैं कि

ब्रह्माह्वयश्रीधरपद्मनाभबीजानि यस्मादतिविस्तृतानि।
आदाय तत्सारमकारि नूनं सयुक्तियुक्तं लघु शिष्यतुष्टयै॥

अर्थात् ब्रह्मगुप्त श्रीधर और पद्मनाभ के बीजगणित बहुत विस्तृत हैं, इसलिये उनमें से उत्तम उत्तम पदार्थों का संग्रह कर विद्यार्थियों के संतोष के लिये मैं ने इस छोटे बीजगणित को बनाया है। ऊपर के श्लोक से स्पष्ट है कि भारतवर्ष में अनेक विद्वानों के बीजगणित की पोथियाँ थीं पर कालवश से वे सब प्रायः नष्ट हो गईं। केवल ब्रह्मगुप्त के बीजगणित का कुछ भाग मिला है जिसका अंगरेज़ी अनुवाद कोलब्रुक महाशय का किया हुआ विद्वानों में प्रसिद्ध है। इस बीजगणित को ब्रह्मगुप्त ने शक ५५० अर्थात् सन् ६२८ ई० में बनाया है। उसमें वर्ग-समीकरण के तोड़ने के लिये उसी युक्ति को लिखा है जो आज कल सर्वत्र प्रचलित है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते केवल अंगरेजी भाषा से परिचित हैं उन्हें चाहिए कि कोलब्रूक महाशय का किया हुआ उसका अंगरेजी अनुवाद देखें।

अपने बीजगणित के मध्यमाहरण में भास्कराचार्य लिखते हैं "न निर्वहश्चेद् घनवर्गवर्गेष्वेवं तदा ज्ञेयमिदं स्वबुद्ध्या" अर्थात् घन और चतुर्घात समीकरणों में अपनी बुद्धि से विचारो कि किससे गुणें, क्या जोड़ें जिसमें मूल मिले अथवा अपनी बुद्धि ही से अटकल करो कि समीकरण में अव्यक्त का मान क्या है। इस वाक्य से स्पष्ट है कि पूर्व आचार्यों के बीजगणित में घन और वर्ग-वर्ग अर्थात् चतुर्घात समीकरणों के तोड़ने की युक्ति नहीं लिखी थी। यदि ऐसी युक्तियाँ होतीं तो भास्कर अवश्य अपने बीजगणित में लिखते।

जिन समीकरणों में अव्यक्त के अनेक मान संभाव्य और अभिन्न धन आते हैं उन समीकरणों ही के ऊपर भारतवर्ष के प्राचीन आचार्यों का विशेष रूप से ध्यान था। इसीलिये अनेक वर्णमध्यमाहरण और भावित ये पृथक् पृथक् दो अध्याय उनके बीजों में लिखे गए। अव्यक्त के जिन मानों का उदाहरण लोक व्यवहार में दिखलाया जाना संभव था उन्हीं मानों पर भास्करादिकों का ध्यान विशेष था और जिन ऋण संख्याओं का लोक में व्यवहार नहीं हो सकता था अव्यक्तमान आने पर भी ये लोग उन संख्याओं का ग्रहण नहीं करते थे। यही कारण है कि वर्गसमीकरण में अव्यक्त के सर्वदा दो मानो में से ऋण मान को लोक में व्यवहार न होने से अस्वीकार करते हुए भास्कर ने पद्मनाभ के—

व्यक्तपक्षस्य चेन्मूलमन्यपक्षर्णरूपतः ।
अल्पं घनर्णगं कृत्वा द्विविधोत्पद्यते मितिः ॥

इस सूत्र का खण्डन ही कर डाला।

निदान ऋण संख्या पर विशेष ध्यान न देने से और गणित-लाघव के लिये विशेष साङ्केतिक चिन्ह न बनाने से भारतवर्ष के प्राचीन गणितज्ञ वर्गसमीकरण के आगे घनसमीकरणादिकों में विशेष विचार न कर सके। केवल भास्कराचार्य ने घनसमीकरण का एक उदाहरण $य^3 + १२य = ६य^2 + ३५$ यह देते हुए इसके उत्तर के लिये लिखा है कि ऐसे उदाहरणों के उत्तर के लिये कोई विधि नहीं। अपनी बुद्धि बल से कुछ जोड़, घटा कर उत्तर निकालो। उन्हों ने नीचे लिखे हुए प्रकार से उत्तर निकाला है:—

$य^3 + १२य = ६य^2 + ३५$

दोनों पक्षों में $(६य^2 + ८)$ इसको घटा देने से

$य^3 - ६य^2 + १२य - ८ = २७$

वा $(य - २)^3 = (३)^3$

घनमूल लेने से $य - २ = ३ \therefore य = ५$

बस य का यही एक मान निकाल कर रह गए हैं। आगे और दो मानों के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। अव्यक्त के और दो मानों के लिये इसी ग्रन्थ का २०८ पृष्ठ देखिए।

प्राचीन काल से अरब और ग्रीस देश के लोग किसी न किसी व्याज से भारतवर्ष में आया जाया करते थे। अधिक मेल जोल हो जाने से उन लोगों ने बहुत बातें हिन्दुओं से और हिन्दुओंने बहुत बातें उन लोगों से सीखी।

ऐसा कहा जाता है कि अलमामून खलीफा (८१३—८३३) ई० के राज्यकाल में रहने वाले मुहम्मद बिन अल ख्वारेज़मी राजशाही दूतों के संग अफ़ग़ानिस्तान गए और लौटती समय भारतवर्ष से होते हुए आए। आने के थोड़े ही समय के बाद सन् ८३० ई० में उन्होंने बीजगणित की एक पोथी लिखी। इस पोथी के विषय इन्हींके आविष्कार किए हुए नहीं मालूम पड़ते वरन् भारतवर्ष ही के ब्रह्मगुप्त, भट्ट बलभद्र या और किसी विद्वान् के बीजगणित से अनुवाद किए गए हैं या उसके आधार पर लिखे गए हैं।

भारतवर्ष में बीजगणित से (१) एक वर्ण समीकरण (२) अनेक वर्ण समीकरण (३) मध्यमाहरण और भावित ये चार प्रकार के समीकरणों ही को लेते हैं। भास्कराचार्य ने भी लिखा है कि 'प्रथममेकवर्णसमीकरणं बीजम्। द्वितीयमनेकवर्णसमीकरणं बीजम्। यत्र वर्णस्य द्वयोर्वा बहूनां वर्गादिगतानां समीकरणं तन्मध्यमाहरणम्। यत्र भावितस्य तद्भावितमिति बीजचतुष्टयं वदन्त्याचार्याः'।

दिए हुए तुल्य समीकरणों में से अव्यक्त और व्यक्तों को किस प्रकार से एक एक पक्ष में रख कर अव्यक्त के मानों को ले आना इसके लिये ब्रह्मगुप्त लिखते हैं:—

अव्यक्तान्तरभक्तं व्यस्तं रूपान्तरं समेऽव्यक्तः ।
वर्गाव्यक्ताः शोध्या यस्माद्रूपाणि तदधस्तात् ॥

इस पर पूज्यपाद पिताजी की टीका है—'समे एकवर्णसमीकरणे व्यस्तं रूपान्तरमव्यक्तान्तरभक्तमव्यक्तमानं व्यक्तं भवेत्। यत्पक्षादव्यक्तमानादन्यपक्षाव्यक्तमानं विशोध्याव्यक्तान्तरं साध्यते तत्पक्षस्थरूपाण्यन्यपक्षरूपेभ्यो विशोध्य यच्छेषं तद्व्यस्तं रूपान्तरमित्यर्थः। यस्मात्पक्षादव्यक्तो वर्गाव्यक्ता अव्यक्तवर्गश्च विशोध्यस्तदधस्तादितरपक्षाद्रूपाणि विशोध्यानि। एवमेकपक्षेऽव्यक्तवर्गोऽव्यक्तश्च। अपरपक्षे च व्यक्तानि रूपाणि। अर्थात् जिस पक्षवाले अव्यक्त में से दूसरे पक्षवाले अव्यक्त को घटा कर अव्यक्त का अन्तर साधन करते हैं उसी पक्ष के व्यक्त को दूसरे पक्षवाले व्यक्त में घटा कर जो शेष बचे उसमें अव्यक्त के अन्तर का भाग देने से

विशेष रूप से घनसमीकरण की ओर झुका। सीपिओ फेरिओ (Scipio Ferreo) ने $य^3 + मय = न$ इस घनसमीकरण के तोड़ने के लिये एक विधि को निकाला परन्तु जनता में नहीं प्रकट किया। सन् १५०५ ई० में अपने एक शिष्य फ्लारिडो (Florido) को उसने उस विधि को बतला दिया।

एक बार कोला (Colla) ने गणितज्ञ टार्टाग्लिआ (Tartaglia) से एक प्रश्न पूछा जिसका उत्तर $य^3 + प य^2 = ब$ इस घनसमीकरण के अव्यक्त मान के आधीन था। इसलिये विचारते विचारते टार्टाग्लिआ ने इस घनसमीकरण के तोड़ने की युक्ति सन् १५३० ई० में निकाली। इस बात को सुनकर फ्लारिडो ने भी अपने गुरू की युक्ति को जो $य^3 + मय = न$ इस घनसमीकरण के तोड़ने के लिये सीखी थी प्रकाश किया। इसके प्रकाश होने पर सन् १५३५ ई० में टार्टाग्लिआ ने कहा कि फ्लारिडो की विधि ठीक नहीं है और शास्त्रार्थ करने के लिये फ्लारिडो को ललकारा भी। परन्तु पीछे से स्वयं उस विधि को ठीक समझ कर चुप हो गया। यह विधि वही है जिसे आज कल लोग कार्डेन की रीति कहते हैं। अर्थात् फेरिओ ने $य^3 + म य = न$ इसके तोड़ने के लिये कल्पना की थी कि $य = \sqrt[3]{र} - \sqrt[3]{ल}$ ऐसा है (११२ वाँ प्रक्रम देखो)।

पश्चात् टार्टाग्लिआ ने अरबों के घनसमीकरण तोड़ने के लिये कई एक प्रकार निकाले। कार्डेन ने उन प्रकारों को जानने के के लिये उससे बहुत विनय की। अन्त में शपथ देकर कि उन प्रकारों को कहीं प्रकाश न करना टार्टाग्लिआ ने कार्डेन को अपना विश्वासयोग्य भक्त जन जान कर उन प्रकारों को बता दिया। कार्डेन ने उसके शपथ का कुछ भी ख्याल न कर सन् १५४५ ई० में अपने बृहद्ग्रन्थ (Ars Magna) आर्स मैगना में टार्टाग्लिआ के सब प्रकारों को छपवा कर प्रकाश कर दिया। इसके बाद टार्टाग्लिआ ने भी अपने सब प्रकारों को एक ग्रन्थ के आकार में छपवाने की इच्छा प्रकट की और सन् १५५६ ई० में छपवाना भी आरम्भ कर दिया। परन्तु सन् १५५९ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने से ग्रन्थ अधूरा ही छप कर रह गया। घनसमीकरण तोड़ने के सब प्रकार विना छपे ही रह गए। कार्डेन ही के अनुग्रह से वे सब प्रकार विद्वानों को विदित होने के कारण कार्डेन के आदरार्थ उसी के नाम से वे सब प्रकार प्रसिद्ध किए गए।

इसके अनन्तर यूरप देशीय गणितज्ञों का विचार चतुर्घात समीकरण की ओर झुका। घनसकीकरण तोड़ने के लिये विद्वानों के बीच कोला ने जिस प्रकार आन्दोलन मचाया था उसी प्रकार $य^4 + ६ य^2 + ३६ = ६० य$ इस चतुर्घात समीकरण को तोड़ने के लिये आन्दोलन मचाया। कार्डेन ने ऐसे चतुर्घात समीकरण के तोड़ने की कोई रीति निकालने के लिये बहुत प्रयास किया पर कुछ भी न कर सका। परन्तु उसके शिष्य फेरारी (Ferrari) ने इस बात में सफलता प्राप्त की और ऐसे समीकरण को तोड़ कर अव्यक्त के मान जानने का प्रकार भी निकाला (१२३ वें प्रक्रम का (१) प्रकार देखो)। बाम्बेली (Bombelli) का बीजगणित सन् १५६९ ई० में छपा है। उसमें भी चतुर्घात समीकरण को तोडने का वही प्रकार लिखा है जो फेरारी ने निकाला था। बहुतों का मत है कि यह प्रकार बाम्बेली का निकाला हुआ है। बहुत लोग कहते हैं कि यह प्रकार सिम्सन् (Simpson) का निकाला है। जो हो पर सिम्सन् का बीजगणित बहुत पीछे सन् १७४० ई० के लगभग छप कर प्रकट हुआ।

सन् १६३७ ई० में बीज के ऊपर डेकार्ट (Descartes) ने एक ग्रन्थ लिखा है जिसमें अनेक नये प्रकार पाए जाते

अव्यक्त का मान व्यक्त हो जाता है । जिस पक्ष से अव्यक्त और अव्यक्त वर्ग घटाए जाते हैं उस दूसरे पक्ष में व्यक्त को ले जाकर घटाना चाहिए । इस प्रकार एक पक्ष में अव्यक्त वर्ग और अव्यक्त और दूसरे पक्ष में व्यक्त रूप रह जाते हैं ।

भास्कराचार्य भी इसी आशय को लेकर लिखते हैं:—
तुल्यौ पक्षौ साधनीयौ प्रयत्नात्त्यक्त्वा क्षिप्त्वा वापि सङ्गुण्य भक्त्वा ।
एकाऽव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षाद्रूपाण्यन्यस्येतरस्माच्च पक्षात् ।
शेषाव्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषं व्यक्तं मानं जायतेऽव्यक्तराशेः ।

ऊपर कही हुई बातों को भली भाँति विचारने से यह स्पष्ट है कि अरब के ज्यौतिषिओं ने इसी लिये अपनी भाषा में बीज का अनुवाद अलजबर वल मुकाबिला किया । इस नाम के देखने से, अव्यक्त का बीज ही नाम रखने तथा अपनी बीजगणित की पोथियों में वर्गसमीकरण के दोनों मूलों की चर्चा करने से यह दृढ़ अनुमान होता है कि अरब के ज्यौतिषिओं ने भारतवर्ष ही से पहिले पहिल बीजगणित का ज्ञान पाया था । क्योंकि ग्रीस देश का रहने वाला डायोफैण्टस (Diophantus) के बीजगणित में इन सब की कुछ भी चर्चा नहीं पाई जाती ।

अरब के ज्योतिषी क्षेत्र रचना की युक्ति से वर्गसमीकरणको सिद्ध करना जानते थे । इसी युक्ति से इन लोगों ने घनसमीकरण को भी सिद्ध करने के लिये बहुत प्रयास किया । "किसी एक धरातल से किसी एक गोल को इस प्रकार से काटना कि उस गोल के दोनों खण्ड एक दी हुई निष्पत्ति में हों" इस प्रश्न को सब से पहिले बग़दाद का रहने वाला अलमहानी ने एक घनसमीकरण के स्वरूप में प्रकट किया । यद्यपि इस प्रश्न को अलकुही, अलहसन बिन अल हैतम् इत्यादिकों ने भी लिखा है तथापि अरब के ज्यौतिषिओं में से सब से पहिले इसकी उपपत्ति अबूजफर अल हाजिन ने की ।

किसी समसप्तभुज का ज्ञान $य^3-य^2-२ य+१=०$ इस घन समीकरण के आधीन था । बहुतों ने इसको सिद्ध करने के लिये प्रयत्न किया पर सब निष्फल हुआ । अन्तमें अबुलगूद ने इस घन समीकरण के तोड़ने की युक्ति निकाली । अन्तर खण्डित शङ्कुओं (by intersecting conics) की सहायता से सन् १०७९ ई० में उमर अल खय्यामी ने अनेक प्रकार के समीकरणों को सिद्ध करने को उत्तम विधियों को अपने बीजगणित में लिखा है परन्तु बीजगणित की सहायता से वास्तव में घनसमीकरण के तोड़ने की कोई युक्ति साधारणतः उस ग्रन्थ में नहीं दी गई है । क्षेत्ररचना ही की युक्ति से अबुल वफाने भी $य^4=अ$, $य^4+अ य^3=ब$ इन समीकरणों को सिद्ध किया है । ईशा की तेरहवीं शताब्दि के आसन्न में यूरप के इटली नामक प्रान्त में पीज़ा का रहनेवाला लेनार्डो (Lenardo of Pisa) ने अरबी बीज को अपनी भाषा में अनुवाद किया । जिसके कारण इटली के लोग इस विषय में प्रधान गिने जाते हैं और जब तक संसार में विद्या का प्रचार रहेगा तबतक इस बात के लिये उन लोगों का आदर होता रहेगा । सन् १४९४ ई० में लूकसपैसिओलस (Lucus Paciolus) जो बुर्गो का लूकस (Lucus de Burgo) इस नाम से प्रसिद्ध है उसने बीजगणित की एक पोथी लिखी जिसका नाम L'Arte Maggiore यह है । उस ग्रन्थ में अरबों के घनसमीकरण के ऊपर इस विद्वान् ने लिखा है कि जो बीजगणितीय विधियाँ आज तक ज्ञात हैं उनसे इन घनसमीकरणों का तोड़ना उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार एक वृत्त के तुल्य एक चतुर्भुज बनाना क्षेत्र-युक्तिसे असंभव है । लूकस की इस सूचना से गणितज्ञों का ध्यान

विशेष रूप से घनसमीकरण की ओर झुका। सीपिओ फेरिओ (Scipio Ferreo) ने $य^3 + मय = न$ इस घनसमीकरण के तोड़ने के लिये एक विधि को निकाला परन्तु जनता में नहीं प्रकट किया। सन् १५०५ ई० में अपने एक शिष्य फ्लारिडो (Florido) को उसने उस विधि को बतला दिया।

एक बार कोला (Colla) ने गणितज्ञ टार्टाग्लिआ (Tartaglia) से एक प्रश्न पूछा जिसका उत्तर $य^3 + प य^2 = ब$ इस घनसमीकरण के अव्यक्त मान के आधीन था। इसलिये विचारते विचारते टार्टाग्लिआ ने इस घनसमीकरण के तोड़ने की युक्ति सन् १५३० ई० में निकाली। इस बात को सुनकर फ्लारिडो ने भी अपने गुरू की युक्ति को जो $य^3 + मय = न$ इस घनसमीकरण के तोड़ने के लिये सीखी थी प्रकाश किया। इसके प्रकाश होने पर सन् १५३५ ई० में टार्टाग्लिआ ने कहा कि फ्लारिडो की विधि ठीक नहीं है और शास्त्रार्थ करने के लिये फ्लारिडो को ललकारा भी। परन्तु पीछे से स्वयं उस विधि को ठीक समझ कर चुप हो गया। यह विधि वही है जिसे आज कल लोग कार्डेन की रीति कहते हैं। अर्थात् फेरिओने $य^3 + म य = न$ इसके तोड़ने के लिये कल्पना की थी कि $य = \sqrt[3]{र} - \sqrt[3]{ल}$ ऐसा है (११२ वाँ प्रक्रम देखो)।

पश्चात् टार्टाग्लिआ ने अरबों के घनसमीकरण तोड़ने के लिये कई एक प्रकार निकाले। कार्डेन ने उन प्रकारों को जानने के के लिये उससे बहुत विनय की। अन्त में शपथ देकर कि उन प्रकारों को कहीं प्रकाश न करना टार्टाग्लिआ ने कार्डेन को अपना विश्वासयोग्य भक्त जन जान कर उन प्रकारों को बता दिया। कार्डेन ने उसके शपथ का कुछ भी ख्याल न कर सन् १५४५ ई० में अपने बृहद्ग्रन्थ (Ars Magna) आर्स मैगना में टार्टाग्लिआ के सब प्रकारों को छपवा कर प्रकाश कर दिया। इसके बाद टार्टाग्लिआ ने भी अपने सब प्रकारों को एक ग्रन्थ के आकार में छपवाने की इच्छा प्रकट की और सन् १५५६ई० में छपवाना भी आरम्भ कर दिया। परन्तु सन् १५५६ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने से ग्रन्थ अधूरा ही छप कर रह गया। घनसमीकरण तोड़ने के सब प्रकार विना छपे ही रह गए। कार्डेन ही के अनुग्रह से वे सब प्रकार विद्वानों को विदित होने के कारण कार्डेन के आदरार्थ उसी के नाम से वे सब प्रकार प्रसिद्ध किए गए।

इसके अनन्तर यूरप देशीय गणितज्ञों का विचार चतुर्घात समीकरण की ओर झुका। घनसकीकरण तोड़ने के लिये विद्वानों के बीच कोला ने जिस प्रकार आन्दोलन मचाया था उसी प्रकार $य^4 + ६ य^2 + ३६ = ६० य$ इस चतुर्घात समीकरण को तोड़ने के लिये आन्दोलन मचाया। कार्डेन ने ऐसे चतुर्घात समीकरण के तोड़ने की कोई रीति निकालने के लिये बहुत प्रयास किया पर कुछ भी न कर सका। परन्तु उसके शिष्य फेरारी (Ferrari) ने इस बात में सफलता प्राप्त की और ऐसे समीकरण को तोड़ कर अव्यक्त के मान जानने का प्रकार भी निकाला (१२३ वें प्रक्रम का (१) प्रकार देखो)। बाम्बेली (Bombelli) का बीजगणित सन् १५६६ ई० में छपा है। उसमें भी चतुर्घात समीकरण को तोड़ने का वही प्रकार लिखा है जो फेरारी ने निकाला था। बहुतों का मत है कि यह प्रकार बाम्बेली का निकाला हुआ है। बहुत लोग कहते हैं कि यह प्रकार सिम्सन् (Simpson) का निकाला है। जो हो पर सिम्सन् का बीजगणित बहुत पीछे सन् १७४० ई० के लगभग छप कर प्रकट हुआ।

सन् १६३७ ई० में बीज के ऊपर डेकार्ट (Descartes) ने एक ग्रन्थ लिखा है जिसमें अनेक नये प्रकार पाए जाते

हैं। जिनमें मुख्यतः समीकरण में अव्यक्त के धनर्णमान और असम्भव मान की मीमांसा और चिन्ह रीति हैं (४४ वाँ प्रक्रम देखो) डेकार्ट ने दो वर्गसमीकरण के गुणनफलरूप में एक चतुर्घात समीकरण को ले आने की युक्ति को भी दिखलाया है। यद्यपि यह युक्ति फेरारी के प्रकार से भी निकल आती है तथापि व्यवहार में उपयोगी है (१२४ वाँ प्रक्रम देखो)।

सन् १७७० ई० में आयलर (Euler) ने एक बीजगणित बनाकर प्रकाश किया। उसमें चतुर्घात समीकरण तोड़ने के लिये उत्तम प्रकार दिखलाया गया है और साथ ही साथ सिद्ध किया गया है कि चतुर्घात समीकरण का तोड़ना एक घनसमीकरण के आधीन है अर्थात् यदि उस घनसमीकरण के अव्यक्तमान विदित हो जायँ तो चतुर्घात समीकरणके अव्यक्तमान भी विदित हो सकते हैं (१२२ वाँ प्रक्रम देखो)। डेकार्ट और आयलर के प्रकारों को देख कर बहुतों की इच्छा हुई कि चतुर्घात से ऊपर के घातवाले समीकरण के तोड़ने का प्रकार निकालें। इसके लिये अठारहवीं शताब्दि तक प्रयत्न किया गया पर सब निष्फल हुआ। पश्चात् वाण्डरमाण्डे (Vandermonde) और लाग्राँञ्ज [Lagrange) ने भी क्रम से सन् १७७० और १७७१ ई० में इस विषय पर अत्यन्त उपयोगी बातों को अपने अपने लेखों में प्रकाश किए अन्त में आबेल (Abel) और वान्टसेल (Wantzel) ने सिद्ध किए कि चतुर्घात से अधिक घातवाले समीकरणों के तोड़ने साधारण बिधि बीजगणित की युक्ति से असम्भव है (the solution is not possible by radicals alone. Serret's Cours [,pAlgebre, Superieure Art 516 देखो)।

तत्पश्चात् यूरप के अनेक विद्वान अनेक नये नये सिद्धान्तों को उत्पन्न किए और आज तक करते ही जाते हैं जिनके कारण बीजगणितशास्त्र की उन्नति दिन दूनी और रात चौगुनी होती जाती है। उन्हीं कतिपय सिद्धान्तों के संग्रह से बीजगणित का यह समीकरणमीमांसा नाम का एक बड़ा ग्रन्थ हिन्दी भाषा में बन कर तयार हुआ है।

आसन्नमूल

स्वल्पान्तर से आसन्नमूल जनाने के लिये भारतवर्ष के आचार्यों ने बहुत प्राचीन काल से अनेक प्रकार निकाले हैं। परन्तु वे प्रकार ज्यौतिषसिद्धान्त के ग्रन्थों में प्रायः जीवा, कोटिज्या आदि सम्बन्धी समीकरणों ही में पाए जाते हैं (भास्कराचार्य्यकृत सिद्धान्तशिरोमणि के गणिताध्याय का त्रिप्रश्नाधिकार और सूर्य ग्रहण के समय का लम्बनसाधन; कमलाकररचित सिद्धान्ततत्वविवेक ग्रन्थ के स्पष्टाधिकार में चाप के त्रिभागादि का ज्यानयन देखो)।

अरबी भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण उनके ग्रन्थों के पढ़ने की योग्यता मुझ में नहीं है तथापि कमलाकर ने अपने ग्रन्थ तत्वविवेक के स्पष्टाधिकार में चाप के त्रिभाग की ज्या के आनयन के लिये मिर्ज़ा उलूक वेग का जो प्रकार लिखा है उससे स्पष्ट है कि अरब के लोग भी इस आसन्न मूल को जानने के लिये अनेक यत्न में तत्पर थे। यूरप में सब से पहिले सन् १६०० ई० में वीटा (Vieta) ने आसन्नमूल जानने के लिये कुछ प्रकारों को लिखा। उसने निश्चय किया कि अवश्य कोई एक प्रकार ऐसा होगा जिससे बार बार क्रिया करने से व्यक्त संख्या के वर्गमूल और घनमूल का तरह किसी समीकरण के एक अव्यक्त मान के व्यक्त संख्या के सब स्थानीय अङ्क क्रम से आते जायँगे। इसके लिये वीटा ने जो प्रकार निकाला उसमें महा प्रयास करने पर अव्यक्त मान का पता लगता था। पीछे से हैरिअट् (Harriot); आउट्रेड (Oughtred), पेल (Pell) और अन्य लोगों ने भी जहाँ तक बना

बीटा के प्रकार को कुछ सीधा किया। सन् १६६९ ई० में न्यूटन ने आसन्नमूल के लिये अपनी रीति प्रकाश की (१४४ वाँ प्रक्रम देखो) तत्पश्चात् सिम्सन, बर्नली, लाग्राँझ इत्यादिकों ने भी अपनी अपनी रीतियों को प्रकाश किए। परन्तु अन्त में सन् १८१९ ई० में हार्नर (Horner) ने इसके लिये जो रीति निकाली वही सब से बढ़कर हुई और वही अत्यन्त सुगम और लघु होने से सर्वत्र व्यवहार में प्रचलित हुई (१५४ वाँ प्रक्रम देखो)।

कनिष्ठफल

इस ग्रन्थ के १५ वें अध्याय में कनिष्ठफलों (Determinants) के अनेक सिद्धान्त लिखे हैं। इनकी चर्चा यूरप में बहुत है। गणित के नये ग्रन्थों में प्रायः लाघव के लिये गणितों के न्यास में कनिष्ठफल ही के रूप में सब वस्तु को लिखते हैं। इसी लिये इस कनिष्ठफल के विशेष उपयोगी सिद्धान्तों का पूज्यपाद पिताजी ने इस ग्रन्थ में समावेश कर दिया है।

यहां यह सूचित कर देना मैं उचित समझता हूँ कि वर्गप्रकृति के साधन में भास्कर ने जिसका नाम कनिष्ठफल रक्खा है उससे और इस ग्रन्थ के कनिष्ठफल से कोई संम्बन्ध ही नहीं है।

विशेषतः कनिष्ठफल के सिद्धान्तों को निकालने वाले यूरप के लोग हैं। सन् १६७३ ई० में इसकी चर्चा सबसे पहिले लाइबनिट्स (Leibnitz) ने की। फिर सन् १७५० ई० में क्रामर (Cramar) ने इसके पदों के धन, ऋण का ज्ञान किया १७९ वां प्रक्रम देखो) और १८ वीं शताब्दि के उत्तरार्ध में बेजू (Bezout), लाप्लास (Laplace), वाण्डरमाण्डे (Vandermonde) और लाग्राँझ (Lagrange) भी इस विषय की उन्नति करते ही गए। १८ वीं शताब्दि में गाउस (Gauss) और कोशी (Cauchy) ने इसको परमावधि तक पहुँचा दिए। इसका डिटर्मिनैन्ट्स Determinants यह नाम भी कोशी ही ने रक्खा है। पीछे से सन् १८४१ ई० में जैकोबी (Jacobi) ने इसके सब सिद्धान्तों को संग्रह कर सब के उपकारार्थ क्रेले के मासिक पत्र Crelle's Journal में छपवा दिया।

उपसंहार

समीकरण-मीमांसा ग्रन्थ के इस स्वरूप में प्रकट होने का सारा सुयश श्रीमान् माननीय सर आरबर्न (Sir R. Burn C. S. I. I. C. S.) महोदय को है। क्योंकि आप ही की कृपा तथा सदुद्योग से इस ग्रन्थ की छपाई के निमित्त आँके हुए संपूर्ण व्यय २५००) रूपयों में से आधा व्यय ऐसे मितव्यता के समय में भी पश्चिमोत्तर प्रदेश की न्यायशीला गवर्नमेन्ट ने देकर गुणग्राहकता का आदरणीय उदाहरण दिखलाई है। साथ ही साथ शेष आधे व्यय को लगा इस ग्रन्थ को छपाकर प्रयाग की विज्ञानपरिषत्‌ने हिन्दी साहित्य की सच्ची सेवा का प्रशसनीय परिचय दी है।

स्वर्गवासी पूज्यपाद पिताजी की कीर्ति-लतिका के सुन्दर विषय सुगन्धयुत इस ग्रन्थ-पुष्प के प्रकट होने में जिन जिन महानुभावों ने जिस जिस प्रकार की सहायता की है उन सभी को मेरा हार्दिक धन्यवाद है।

कहुँ अल्प मेरी बुद्धि वश वा जनित नैननि दोष सों।
यहि ग्रन्थ सम्पादन त्रुटिन तिन छमहि सबहि अरोष सों॥
करिलें ग्रहण गुण दुग्ध केवल नीर अवगुण छोड़ि के।
पदमाकरहु बुध हंस सों बिनती करत कर जोड़ि के॥

खजुरी, }
बनारस। } पद्माकर द्विवेदी।

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)
७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद
मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका श्रृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)
६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)
९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)
१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)
११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)
१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)
१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० बी०के मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥
१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)
१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.
भाग १ ... ... २॥)
भाग २ ... ... ४)
चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)
भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)
वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)
वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)
गृह-शिल्प— ... ... ॥)
खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री
विज्ञान परिषत्, प्रयाग।

दीवान बंशधारीलाल के प्रबन्धसे हिन्दी-साहित्य प्रयाग, में मुद्रित तथा विज्ञानपरिषद्से प्रकाशित

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१४५ Reg. No. A. 708

भाग २५ Vol. 25. वृष, संवत् १९८४ मई १९२७ संख्या २ No. 2

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] **विज्ञान-परिषत्, प्रयाग** [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

१—अम्लहरिद, अनार्द्रिद, और सम्मेल—
[ले० श्री सत्यप्रकाश एम. एस-सी. ... ४६
२—छूत—[ले० श्री डाक्टर रामचन्द्र भार्गव, एम. बी., बी. एस. ५३
३—फफूंदीसे मनुष्यको लाभ—[ले० श्री० कन्हैयालाल, एम. एस-सी. ५७
४—वन्द स्थान में वानस्पतिक जीवन—
[ले० पं० अमीचन्द्र विद्यालंकार और पं० इन्द्र विद्यालंकार ६०
५—गन्धक और गन्धिद—[ले० श्री० सत्य प्रकाश जी एम.एस-सी... ... ... ६४
६—पृथ्वीकी गुरुत्व शक्तिके प्रभाव—
[ले० श्री० कृष्णचन्द्र, बी. एस- सी. ... ६८
७—शीशा और शीशेकी चीजें बनाना—
[ले० श्री० डा० रामचन्द्र भार्गव, एम बी. बी. एस. ७१
८—व्यापारिक समितियाँ—[ले० श्री० विश्वप्रकाश, बी. ए., बिशारद ७६
९—जमीन का कांस निकालना [ले० श्री० शंकरराव जोशी, एल. ए जी. ८१
१०—एक साथ तस्वीर उतारना और सुनना—
[ले० श्री० अमीचन्द्र विद्यालंकार ... ८२
११—नापकी मूल इकाइयाँ—[ले० डा० निहाल करण सेठी डी. एस-सी. ... ...
१२—समालोचना—[ले० श्री कृष्णानन्द ... ९५

विज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २५ | वृष, संवत् १९८४ | संख्या २

अम्लहरिद, अनार्द्रिद, अमिद और सम्मेल

(Acid Chlrsides, auhydsides, awides andestes)

(लेखक श्री० सत्यप्रकाश एम. एस. सी.)

अम्लहरिद, र क ओ ह

म्लों पर स्फुर-त्रि हरिद या-पंचहरिद-के प्रभावसे जो यौगिक बनते हैं उन्हें अम्ल हरिद कहते हैं। सिरकाम्ल से सिरकील हरिद निम्न प्रकार बनाया जाता है:—

३ क उ$_3$ क ओ ओ उ + २ स्फु ह$_3$ = ३ क उ$_3$ क ओ ह + ३ उ ह + स्फु$_2$ ओ$_3$

क उ$_3$ क ओ ओ उ + स्फु ह$_5$ = क उ$_3$ क ओह + उ ह + स्फु ओ ह$_3$

एक स्रवण कुप्पीमें पेंचदार कीप, भभका, संचक आदि लगाओ। संचकको सैन्धका चूनाके स्तंभसे संयुक्त कर दो। सैन्धका चूना प्रयोगमें जनित उदहरिकाम्ल का अभिशोषण कर लेता है। कुप्पीमें १०० घन. श. म. हैम सिरकाम्ल लो और कीपसे ८० ग्राम स्फुर त्रिहरिद धीरे धीरे टपकाओ। कुप्पीको जलकुण्डी पर गरम करके तापक्रम ४०° – ५०° श तक रखो। जब उदहरिकाम्ल वायव्यका निकलना बन्द हो जाय तो तापक्रम बढ़ा दो जबतक द्रव उबलने न लगे। सिरक हरिद स्रवित होने लगेगा इसका क्वथनांक ५५° श है।

पिपीलील हरिद, उ क ओह, नहीं पाया जाता है। अग्रील हरिद, क$_3$ उ$_7$ क ओ ह, सिरकील हरिदके समान बनाया जा सकता है।

सिरकीलहरिद जल के संसर्ग से उदहरिकाम्ल और सिरकाम्ल में विश्लेषित हो जाता है—

क उ$_3$ क ओ ह् + उ ओ उ =

क उ$_3$ क ओ ओ उ + उ ह्

मद्यके संसर्गसे इसी प्रकार ज्वलील सिरकेत और उदहरिकाम्ल बनता है:—

क उ$_3$ क ओ ह् + उ ओ क$_2$ उ$_5$ =

क उ$_3$ क ओ ओ क$_2$ उ$_5$ + उ ह्

इसी प्रकार अमोनियासे सिरकामिद क उ$_3$ क ओ नो उ$_2$ बनता है:—

क उ$_3$ क ओ ह् + नो उ$_3$ = क उ$_3$ क ओ नोउ$_2$ + उ ह्

अम्लहरिद द्रव पदार्थ हैं।

अनार्द्रिद

पिघले हुए सैन्धक सिरकेत और सिरकील हरिदके प्रभावसे जो यौगिक बनते हैं उन्हें अम्ल अनार्द्रिद कह सकते हैं—

क उ$_3$ क ओ ह् + सै ओ ओ क. क उ$_3$ =

क उ$_3$ क ओ
क उ$_3$ क ओ > ओ + सै ह्

इन्हें अनार्द्रिद इस लिये कहते हैं क्योंकि इनके रूपसे यह प्रकट है कि अम्लके दो अणुओंमें से जलका एक अणु पृथक् कर लिया गया है।

क उ$_3$ क ओ ओ उ
क उ$_3$ क ओ—ओ उ = क उ$_3$ क ओ
क उ$_3$ क ओ > ओ + उ$_2$ ओ

अनार्द्रिदोंका रूप ज्वलकोंके रूपसे मिलता जुलता है। यदि ज्वलकको मद्यील ओषिद समझा जाय तो अनार्द्रिदोंको अम्लील ओषिद समझना चाहिये:—

क उ$_3$
क उ$_3$ > ओ
ज्वलक

क उ$_3$ क ओ
क उ$_3$ क ओ > ओ
अनार्द्रिद

जलके संसर्गसे अनार्द्रिद फिर अम्लोंमें परिणत हो जाते हैं:—

क उ$_3$ क ओ
क उ$_3$ क ओ > ओ + उ | ओ उ = क उ$_3$ क ओ ओ उ + क उ$_3$ क ओ ओ उ

मद्यके संसर्गसे ये अम्ल और ज्वलील सिरकेतमें परिणत हो जाते हैं—

क उ$_3$ क ओ
क उ$_3$ क ओ > ओ + उ | ओ क$_2$ उ$_5$ = क उ$_3$ क ओ ओ उ + क उ$_3$ क ओ ओ क$_2$ उ$_5$

इसी प्रकार अमोनियाके संसर्गसे सिरकामिद और सिरकाम्ल बन सकते हैं।

क उ$_3$ क ओ
क उ$_3$ क ओ > ओ + नो उ$_3$ = क उ$_3$ क ओ ओ उ + क उ$_3$ क ओ नो उ$_2$

ये भी अम्लील हरिदके समान द्रव होते हैं। इनके क्वथनांक तत्सम्बन्धी अम्लोंसे अधिक होते हैं।

अमिद

सिरकामिद, क उ$_3$ क ओ नो उ$_2$, का नाम ऊपर आ चुका है जिससे स्पष्ट है कि सिरकामिद सिरकील हरिद अथवा सिरकिक अनार्द्रिद पर अमोनिया के प्रभाव से बन सकते हैं।

मद्यील श्यामिद, र क नो, के थोड़े उदविश्लेषण-से भी अमिद बन सकते हैं। दारील श्यामिदसे सिर-कामिद निम्न प्रकार बनता है:—

क उ$_3$ क नो + उ$_2$ ओ = क उ$_3$ क ओ नो उ$_2$
सिरकामिद

पर अधिक जलके प्रभावसे सिरकामिद अमोनियम सिरकेतमें परिणत हो जाता है:—

क उ$_3$ क ओ नो उ$_2$ + उ$_2$ ओ =

क उ$_3$ क ओ ओ नो उ$_4$
अमोनियम सिरकेत

अमोनियम सिरकेतसे सिरकामिद सरलतासे बनाये जा सकते हैं। इसको गरम करके स्रवण करनेसे

जलका एक अणु पृथक् हो जाता है और सिरकामिद निम्न प्रक्रिया के अनुसार बन जाता है :—

$$\text{क उ}_3\text{क ओ ओ नो उ}_4 = \text{क उ}_3\text{क ओ नो उ}_2 + \text{उ}_2\text{ओ}$$
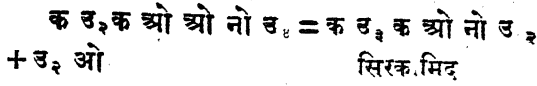
सिरकामिद

सिरकामिद ठोस पदार्थ है जिसका द्रवांक ८२° श और कथनांक २२२° श का है। इसमें चूहेकी सी गन्ध होती है। पिपीलामिद साधारण तापक्रम पर द्रव होता है।

स्फुर पंचोषिद द्वारा सिरकामिदमेंसे जलका एक अणु पृथक्कर लिया जा सकता है और दारील श्यामिद रह जाता है

$$\text{क उ}_3\text{क ओ नो उ}_2 = \text{क उ}_3\text{क नो} + \text{उ}_2\text{ओ}$$
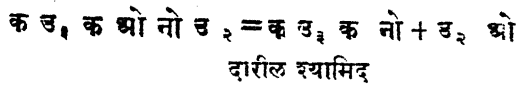
दारील श्यामिद

सैन्धक उदौषिद के साथ उबालने से सिरकामिद में से अमोनिया निकलने लगती है :—

$$\text{क उ}_3\text{क ओ नो उ}_2 + \text{सै ओ उ} = \text{क उ}_3\text{क ओ ओ सै} + \text{नो उ}_3$$
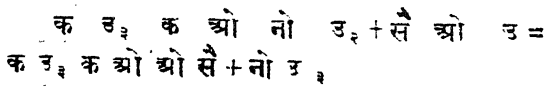
सिरकामिदकी परीक्षा इस प्रकारकी जा सकती है। परख नलीमें सिरकामिद और थोड़ासा सैन्धक उदौषिदका घोल डालकर गरम करो। अमोनिया निकलने लगेगी जिसकी गन्ध सूँघी जा सकती है।

अमोनियम सिरकेत, दारील श्यामिद और सिरकामिद तीनों एक दूसरेमें परिणत किये जा सकते हैं। अमोनियम सिरकेतको गरम करके स्रवण करनेसे सिरकामिद बनता है पर यदि अधिक स्फुरपंचौषिदके साथ गरम किया जाय तो यह दारील श्यामिद भी दे सकता है। सिरकामिद जब स्फुर पंचौषिदके साथ स्रवित किया जाता है तो दारील श्यामिद देता है, पर उदविश्लेषण द्वारा यह अमोनिया और सिरकाम्लमें परिणत हो जाता है। दारील श्यामिद उदविश्लेषण द्वारा पहले सिरकामिद और फिर अमोनियम सिरकेत देता है। ये प्रक्रियायें इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती है :—

$\text{क उ}_3\text{क ओ ओ नो उ}_4$ ⟶ $\text{क उ}_3\text{क ओ नो उ}_2$

अमोनियम सिरकेत ⟵ सिरकामिद

$\text{क उ}_3\text{क नो}$

दारील श्यामिद
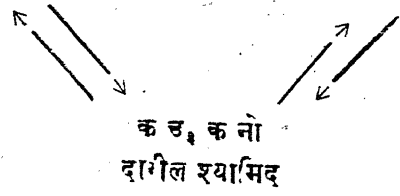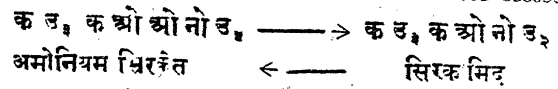
सम्मेल

जिस प्रकार अम्ल और भस्मोंके संसर्गसे लवण बनते हैं उसी प्रकार अम्लों और मद्योंके संसर्गसे जो यौगिक बनते हैं उन्हें सम्मेल कहते हैं।

$$\text{उ ह} + \text{सै ओ उ} = \text{सै ह} + \text{उ}_2\text{ओ}$$

सैन्धकहरिद

$$\text{क उ}_3\text{क ओ ओ उ} + \text{क}_2\text{उ}_5\text{ओ उ}$$

सिरकाम्ल ज्वलीलमद्य

$$= \text{क उ}_3\text{क ओ ओ क}_2\text{उ}_5 + \text{उ}_2\text{ओ}$$

ज्वलील सिरकेत

$$\text{क उ}_3\text{क ओ ओ उ} + \text{सै ओ उ} = \text{क उ}_3\text{क ओ ओ सै} + \text{उ}_2\text{ओ}$$

सैन्धकसिरकेत
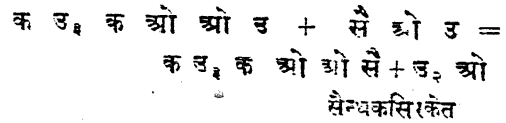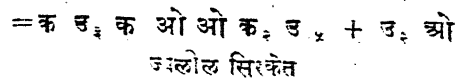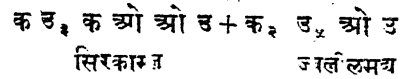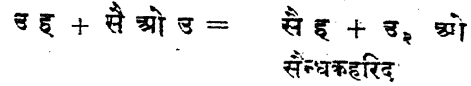
ज्वलील सिरकेत एक सम्मेल है। इसे सिरकिक सम्मेल कह सकते हैं। इसी प्रकार पिपीलिक सम्मेल $\text{उ क ओ ओ क}_2\text{उ}_5$, अम्लिक सम्मेल, $\text{क}_2\text{उ}_5\text{क ओ-ओ क}_2\text{उ}_5$, आदि हो सकते हैं। ज्वलील मद्यके स्थानमें दारील मद्य या कोई अन्य मद्य भी लिया जा सकता है—यथा दारील सिरकेत $\text{क उ}_3\text{क ओ-ओ क उ}_3$ है।

अम्लोंके रजत लवणोंपर मद्योल नैलिदोंके प्रभावसे सम्मेल बनाये जा सकते हैं:—

$$\text{क उ}_3\text{क ओ ओ र} + \text{क उ}_3\text{नै} = \text{क उ}_3\text{क ओ ओ क उ}_3 + \text{रनै}$$
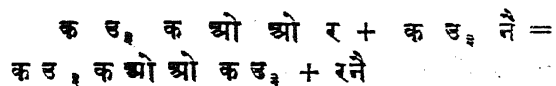
शुद्ध मद्य में शुष्क उदहरिकाम्ल वायव्य प्रवाहितकर अम्लोंके संसर्ग में रखनेसे भी सम्मेल बन सकते हैं।

क उ$_3$ क ओ ओ उ + क$_2$ उ$_5$ ओ उ $\rightleftarrows$ क उ$_3$ क ओ ओ क$_2$ ओ$_5$ + उ$_2$ ओ,

यह प्रक्रिया विपर्ययित है। यदि मद्य की मात्रा बहुत अधिक होगी तो सम्मेल अधिक मात्रा में बनेगा पर यदि जलकी मात्रा अधिक होगी तो सम्मेल बनना बन्द हो जायगा क्योंकि बना हुआ सम्मेल जल के प्रभाव से उदविश्लेषित होकर फिर अम्ल और मद्य देदेगा।

क उ$_3$ क ओ ओ क$_2$ उ$_5$ + उ$_2$ ओ $\rightarrow$ क उ$_3$-क ओ ओ उ + क$_2$ उ$_5$ ओ उ

सम्मेल बहुधा द्रव होते हैं और इनमें बहुत ही सुहावनी गन्ध होती है।

सम्मेलों की समरूपता भी ध्यान देने योग्य है। क$_4$ उ$_8$ ओ$_2$ रूप के निम्न यौगिक हो सकते हैं जो गुणों में परस्पर भिन्न हैः—

उ क ओ ओ क$_3$ उ$_7$ — अप्रील पिपीलेत
क उ$_3$ क ओ ओ क$_2$ उ$_5$ — ज्वलील सिरकेत
क$_2$ उ$_5$ क ओ ओ क उ$_3$ — दारील अप्रोनेत
क$_3$ उ$_7$ क ओ ओ उ — नवनीतिकाम्ल

ये सब उदविश्लेषण पर भिन्न भिन्न मद्य और अम्ल देते हैं। अप्रील पिपीलेत उदविश्लेषण पर पिपीलिकाम्ल और अप्रिक मद्य देता है। ज्वलील सिरकेत सिरकाम्ल और ज्वलील मद्य देता है दारील अप्रोनेत अप्रिकाम्ल और दारील मद्य देता है। नवनीतिकाम्ल सम्मेल नहीं प्रत्युत अम्ल है।

दारील मद्य और अन्य मद्य भी उदहरिकाम्ल, नोषसाम्ल, नोषिकाम्ल, गन्धकाम्ल आदि के साथ भी लवण दे सकते हैंः—

क उ$_3$ ओ उ + उ ह $\rightarrow$ क उ$_3$ ह + उ$_2$ ओ
दारील हरिद

क उ$_3$ ओ उ + उ नो ओ$_2$ $\rightarrow$ क उ$_3$ नो ओ$_2$ + उ$_2$ ओ
दारील नोषित

क उ$_3$ ओ उ + उ नो ओ$_3$ $\rightarrow$ क उ$_3$ नो ओ$_3$ + उ$_2$ ओ
दारील नोषेत

क उ$_3$ ओ उ + उ$_2$ ग ओ$_4$ $\rightarrow$ क उ$_3$ उ ग ओ$_4$ + उ$_2$ ओ
दारील उदजनगन्धेत

नोषो यौगिक—ज्वलील या दारील मद्य पर नोषसाम्ल का प्रभाव डालने से ज्वलील या दारील नोषित बनता है जैसा अभी ऊपर कहा गया है। पर दारील या ज्वलील नैलिद पर रजतनोषित के प्रभाव से भी एक वैसा ही यौगिक बनता है—

क$_2$ उ$_5$ नै + र नो ओ$_2$ = क$_2$ उ$_5$ नो ओ$_2$ + र नै

यह यौगिक ज्वलील नोषित से गुणों में भिन्न है। इसे नोषो ज्वलेन कहते हैं। नोषितों और नोषो यौगिकों के क्वथनांक भिन्न भिन्न हैं।

		क्वथनांक
क उ$_3$ नो ओ$_2$	दारील नोषित	-१२°
	नोषो दारेन	+१०१°
क$_2$ उ$_5$ नो ओ$_2$	ज्वलील नोषित	१६°
	नोषो ज्वलेन	११४°

पांशुज उदौषिद द्वारा उदविश्लेषण करने पर दोनों प्रकार के यौगिक भिन्न भिन्न पदार्थ देते हैंः—

क$_2$ उ$_4$ नो ओ$_2$ + पां उ = क$_2$ उ$_4$ पां नो ओ$_2$ + उ$_2$ ओ
नोषो ज्वलेन — पांशुज नोषो ज्वलेन

क$_2$ उ$_5$ नो ओ$_2$ + पां ओ उ = क$_2$ उ$_5$ ओ उ + पां नो ओ$_2$
ज्वलील नोषित — ज्वलील मद्य — पांशुज नोषित

नोषोज्वलेन अवकरण करने पर ज्वलीलामिन देता है पर ज्वलीलनोषित अवकरण करने से ज्वलीलमद्य और उदौषिल-अमिन, नो उ$_2$ ओ उ देता है।

क$_2$ उ$_5$ नो ओ$_2$ + ३ उ$_2$ = क$_2$ उ$_5$ नो उ$_2$ + २ उ$_2$ ओ
नोषो ज्वलेन — ज्वलीलामिन

क$_2$ उ$_5$ नो ओ$_2$ + २$_2$ = क$_2$ उ$_5$ ओ उ + नो उ$_2$ ओ उ
ज्वलील नोषित — ज्वलीलमद्य — उदौषिलामिन

इन कारणों से ज्वलील नोषित और नोषो ज्वलेन के संगठन अलग अलग दिखाये गये हैं।—

क उ$_3$ क उ$_2$ नो $\genfrac{}{}{0pt}{}{/\!/ \text{ओ}}{\backslash\!\backslash \text{ओ}}$ — नोषोज्वलेन

क उ$_3$ क उ$_2$ — ओ — नो = ओ — ज्वलील नोषित

छूत

लेखक—डाक्टर रामचन्द्र भार्गव।

क मनुष्य की एक समय एक लकड़ी वालेसे दुश्मनी हो ई वह उससे बदला लेनेकी दिन रात सोचने लगा। सोचते सोचते उसे एक बात सूझी। वह यह थी कि वह कुछ घुन पकड़ मँगवाए।

उसने यह घुन लकड़ी में छोड़ दिये। कुछ समय में इन घुनों ने बहुतसी लकड़ी खा खा के लकड़ी का बिल्कुल आटा बना दिया स्वस्थ लकड़ी अन्दरसे खोखली हो गई।

मनुष्यने तो केवल दो चार घुन मंगवाये थे परन्तु इन घुनोंसे अंडे और अंडेसे बच्चे, बच्चेसे घुन बन बन कर असंख्य घुन पैदा होगये और उन्होंने लकड़ियों को खा खा कर बिल्कुल आटा कर दिया इतनाही नहीं, ये घुन इतने फैले कि गाँव में लकड़ियोंका दुरुस्त रहना कठिन होगया। किवाड़ों तक में घुन लगने लगे इसका कारण यह था कि घुन पैदा अधिक होते थे परन्तु मरते कम थे। फिर इस गांवके निवासियोंने अनुभवसे यह मालूम किया कि घुनती लकड़ीको उबलते पानी या मिट्टीके तेल में तर कर देनेसे घुनना बन्द हो जाता है क्योंकि मिट्टी के तेल से घुन मर जाते हैं। इसमें यह ध्यान देने की बात है कि गिनतीके घुनोंने वृद्धि पाकर कितना तहलका मचा दिया। जीवोंमें जन्म औरमरण की परम्परा सदा लगी रहती है—और जन्म अधिक और मृत्युकम होती है तो हानिकारक थोड़े जीव भी बड़ी आफत मचा देते हैं। यदि हम अपनी लकड़ी की रक्षा करना चाहते हैं तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम उसमें एकभी घुन ना पहुँचने दें। यदि हम अपनी चारपाइयोंको दुःखदायी खटमलोंसे सुरक्षितरखना चाहते हैं तो चारपाईमें भी खटमल न घुसने दें। खटमलोंको एक एक मार कर चारपाईको खटमल रहित करना अत्यन्त कठिन है। इसके लिये भी यह आवश्यकता पड़ती है कि कोई ऐसी विधि उपयोगमें लावें कि जिससे सब खटमल एक साथ मर जाँय। यहाँ भी हम वही विधियें उपयोग में ला सकते हैं जो कि घुनी लकड़ीके लिये उपयुक्त सिद्ध हुई थीं। इसी प्रकार यदि कहींसे हमारे सिरमें दो चार जुंए आ जायें तो हमारे सिरमें आफत मचादें और बड़ी दुःखदायी सिद्ध हों क्योंकि ये तो बढ़कर असंख्य हो सकती हैं। इनके भी मारने के लिये मिट्टीका तेल उपयोग में लाया जा सकता है। उबलता पानी उपयोगमें यहाँ नहीं लाया जा सकता क्योंकि उससे सिर भी जल जायगा। पाठक गण अब सरलतासे समझ सकते हैं कि छूत क्या होती है। हानिकारक जीवों का स्वस्थ शरीर तक पहुँचना ही छूत कहलाता है। पाठकों में से कुछने रोटी अथवा अचार अथवा जूते में फफूँदन लगते अवश्य देखा होगा इसका कारण छूतही समझना चाहिये फफूँदनको पेड़के सदृश समझना चाहिये क्योंकि यह चल नहीं सकती है। किन्तु यह भी छूत पैदा कर सकती है क्योंकि यदि हम थोड़ी फफूँदन रोटी पर डालदें तो वह रोटीको खाकर सब रोटीको बिल्कुल खराब कर डालेगी।

जब थोड़ा दही दूधमें डाल दिया जाता है तो दूध कुल जम जाता है। दहीको यहाँ पर ऐसा समझना चाहिये जैसे लकड़ीका आटा कि जिसमें कुछ घुनके अंडे हो। जहां पर बुरादा लकड़ीमें छोड़ा कि फिर तो कुल लकड़ी खा डाली जायगी। इसी प्रकार जहां कुछ थोड़ा दही दूधमें छोड़ा कि कुल दूध दही हो जायगा। दूधको दही बनानेवाले जो जीव होते है वे केवल नग्न आखोंसेही नहीं देखे जा सकते। इन जीवों को केवल अणुवीक्षण यन्त्रमें शीशोंके तालों द्वारा देख सकते हैं क्योंकि यह जीव इतने छोटे होते हैं कि आँखोंसे नहीं देखे जा सकते हम उनको जीवाणु कहेंगे।

पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं कि क्या कोई ऐसे जीव नहीं हो सकते जो हमारे शरीर तक पहुंचकर वैसी ही आफत मचा सके जैसी कि दहीके जीवाणु दूधमें करते हैं, या फफूंदन के जीवाणु रोटीमें अथवा जूतेपर। अभिप्राय कहनेका यह है कि बहुतसे ऐसे जीवाणु होते हैं जो कि हमारे मृत अथवा जीवित शरीरमें सड़ना और अन्य अन्य रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इतनाही नहीं जीवाणु ऐसे विष उत्पन्न कर सकते हैं कि जो हमारेलिये जान लेवा सिद्ध हों। लकड़ी और मनुष्यमें एक अन्तर यह है कि लकड़ीकेलिये मिट्टीके तेल जैसी तेज़ दवाका प्रयोग हो सकता है परन्तु हमारे शरीर को यह तेज़ दवायें नहीं सह सकती। इसलिये छूतकी बीमारियोंका इलाज कठिन होता है और हमारे शरीरके भीतर ही जीवाणु न मार सकनेके कारण छूत फैलाना नहीं सरलता से बंद किया जा सकता। छूत से बचने के उपायों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये।

कीड़े और जीवाणु हमारे दुश्मन हैं इनमें और मनुष्य जातिमें लड़ाई होती रहती है।

कोई कीड़े हमारे नाज, शक्कर, कपड़े, और लकड़ियों को खाते हैं तो कोई हमारे जान लेवा सिद्ध होते है। कोई जीवाणु हमारी रोटी और अन्य खाने की चीजों को सड़ाते हैं तो कोई हमारे शरीरमें विष उत्पन्न करते है जो कि हमको तड़फा तड़फा कर मारते हैं। किन्तु कोई कीड़े और जीवाणु ऐसे होते हैं कि हम उन्हें पालते हैं और वे हमारी बड़ी सेवा करते हैं। लाख और रेशमके कीड़े और दहीके जीवाणुओंको हम अपने लाभके लिये पालते ही हैं। रेशमके कीड़े और ताऊनके पिस्सू में वही अन्तर है जो कि बैल और साँप बिच्छूमें होता है। उसी प्रकारका अन्तर दहीके जीवाणुओं और हैजेके जीवाणुओंमें होता है। अगले अध्यायोंमें हम वह विधियें बतलायेंगे कि जिनके प्रयोगसे हम इन दुश्मनोंके विमुख विजय प्राप्त कर सके और अपनी और औरोंकी जान बचा सके यह भी समझ लेना कि सब रोग जीवाणुओं और कीड़ोंसे नहीं होते जैसे कि दमा और बहुतसे रोग ऐसे होते हैं कि जिनसे छूत नहीं लग सकती है परन्तु परिचारिका को छूत के रोगोंसे बचनेके उपाय अच्छी तरह समझ लेना चाहिये जिससे वह स्वयम् बच सके और औरोंको बचा सके। चेचक इत्यादिक छूतके रोगोंमें घरके बहुतसे प्राणियों में रोग फैलनेकी सम्भावना रहती है और थोड़ी भी असावधानी से बड़ी आफत मच सकती है। परन्तु यदि परिचारिका नियमोंका पालन करे तो कोई खतरा न होगा। शरीरके भीतरके जीवाणुओंको नाश करना कठिन है क्योंकि तेज दवाओंसे शरीर को भी हानि पहुँचती है। इस कारण शरीर को जीवाणुओंकी छूतसे बचानेका महत्व बहुत बढ़ जाता है। इसलिये यह आवश्यक है कि हम जीवाणुओं को शरीरके बाहिर मारनेकी विधि जानें। जिस प्रकार कि चारपाईको यदि खटमलसे बचाना हो तो एक भी खटमल न घुसने देना चाहिये। यदि अपने को जुओंके आक्रमणसे बचाना है तो एक भी जूं न घुसने देना चाहिये। यदि दूध को खराब होनेसे बचाना है तो उसमें एक भी जीवाणु न घुसने देना चाहिये।

इस प्रकार यदि अपने शरीर को हम जीवाणुओं के आक्रमणसे बचाना चाहते हैं तो एक भी जीवाणु भीतर न घुसने देना चाहिये। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि छूत की बीमारियों में कितनी सावधानीकी आवश्यकता है! मिट्टीके तेलसे खटमल मर जाते हैं, ऐसे द्रव्यों को जो कीड़ों को मार सके उन्हें कीट नाशक कहते हैं। इसी प्रकार जो द्रव्य कि जीवाणु को नाश कर सकते हैं उन्हें जीवाणु नाशक कहते हैं।

साधारणतः दूध बहुत जल्दी अपने आप फट जाता हैं क्योंकि उसमें जीवाणुओंका प्रवेश वायुसे हो सकता है यदि हम दूध को उबाल कर उबाले हुये बरतनमें भर कर उबाले हुये ढक्कनसे ढक

दें तो दूध बहुत दिनों तक रखा जा सकता है। इस प्रकार ताप जीवाणुनाशककी एक उपमा है।

जब छूत लग जाती है तो रोग एक दम तो आरम्भ होता नहीं है। कुछ समय जीवाणुओं की संख्या बढनेमें लगता है। जब संख्या बहुत हो जाती है तो रोग लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं इस छूत लगने और रोग उत्पन्न होनेके बीचके समय को रोग पोषण काल कह सकते हैं। इस प्रकार एक आदमी एक चेचकके मरीजके पास इक्केमें बैठा तो उसे चेचक १० दिन पश्चात हुई यह दस दिन रोग के पकने में लगे। रोग पोषण काल में खफीफ लक्षण जैसे सुस्ती, सिर में दर्द इत्यादि उपस्थित रह सकते हैं।

इस रोग पोषण काल के पश्चात् आक्रमण अवस्था आती है। इसमें रोग बढ़ता है चेचक इत्यादि जिन रोगों में दाने निकलते हैं उन रोगों में दाने निकल आते हैं। जब रोग एक बार खूब बढ़ लेता है तो फिर घटने लगता है और अन्तमें बिल्कुल घट जाता है। इस अवस्थाको रोग निवारण अवस्था कह सकते हैं। परन्तु कुछ कमजोरी बाकी रह जाती है। इस अवस्था को वीत रोग्यता कहते हैं। हम यह भी यहाँ ही बतलाना चाहते हैं कि रोगी-में छूत रोग पोषण काल और बीतरोग्यतामेंभी उपस्थित रह सकती है और फैल सकती है।

कुछ छूतकी बीमारियाँ ऐसी होती हैं कि वे बहुत शीघ्र फैलती, और उनका समय समय पर आक्रमण होता है जैसे ताऊन, हैजा। बहुत ऐसी होती है कि विशेष मौसम में बहुत बढ़ जाती हैं ताऊन सर्दी में, मलेरिया अगस्त और सितम्बर में।

कुछ छूत की बीमारियां ऐसी होतीं हैं कि जिनका फैलाव सदा एकसा चला जाता है जैसे क्षय रोग।

कुछ छूत की बीमारियाँ ऐसी होती हैं कि शीघ्रत से फैलनेके कारण कुल दुनियामें फैल जाती है जैसे कि जंगी बुखार।

कुछ ऐसी होती हैं कि जो इतनी शीघ्र नहीं फैल सकती परन्तु अवसर पाकर लगभग सब जगह फैल सकती हैं जैसे ताऊन, चेचक, हैजा। कुछ छूत की बीमारियाँ केवल गरम देशोंमें पाई जाती हैं जैसे मलेरिया, हाथी पांव कुछ छूतकी बीमारियाँ विशेष देशोंमें सीमाबद्ध रहती हैं जैसे कि काला ज्वर बङ्गाल और आसाम में।

जीवाणु नाशक और जीवाणु नाशन—अब हम हमारे दुश्मनों को मारने की विधियें बतलाते हैं।

जीवाणु नाशक उसको कहते है जो कि जीवाणुओं को मार डाल सके—पानीके उबलनेकी गरमी पर कोई जीव जीवित नहीं रह सकता है। इसलिये पर्याप्त ताप जीवाणुनाशककी एक उपमा है।

जीवाणु तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं।

१—प्राकृतिक जीवाणुनाशक

२—भौतिक जीवाणुनाशक

३—रासायनिक जीवाणु नाशक

१—प्राकृतिक जीवाणु नाशक—शुद्ध वायु और धूपमें अधिकांश जीवाणुमें पहिले कमजोर हो जाते हैं और फिर मर जाते हैं।

हवा चलनेसे सूखा पैदा होता है और सूखा भी जीवाणु नाशक है। इस कारण कपड़ों को धूपमें डालना अत्यन्त लाभ कारी है। परन्तु किसी भीषण छूतके लिये हम इन प्राकृतिक जीवाणुनाशक पर बहुत निर्भर नहीं हो सकते क्योंकि इनका प्रभाव धीरे धीरे होता है।

२ भौतिक जीवाणु नाशक—ताप बड़ी ही सुगमता से प्राप्त हो सकता है।

ताप के उपयोग की भिन्न भिन्न विधियाँ यह हैः—अछूत लगी वस्तु को अग्नि में या मिट्टी के तेल से जलाना—यह विधि केवल उन ही वस्तुओं के लिये उपयोग में लाई जा सकती है जो बहुत दम की न हो या जल न सकें। छूत लगी वस्तु पर पहिले मिट्टी का तेल छिड़क देना चाहिये कि जिससे छूत बिलकुल निकल जाय हिन्दुओं में अग्नि से पवित्र करने की विधि बहुत प्राचीन है। यह विधि बर्तनों के लिये

बड़ी उपयुक्त है क्योंकि हमारे घरोंमें बरतन साधारणतः मिट्टी, पीतल लोहेके बने होते हैं। यदि फर्शपर मल, मूत्र, वमन गिर जाय तो भी मिट्टीका तेल डालकर, इन गन्दे द्रवों को वहीं पर मिट्टीका तेल डालकर जला देना चाहिये।

सस्ते कपड़े, चारपाईके बान इत्यादिक के भी यदि दामों का ख्याल न हो तो इन छूत लगो चीजों को भी जला दे सकते हैं अन्यथा नीचे लिखे अनुसार उबाल सकते हैं।

इ. उबालना—यह विधि कपड़ोंकेलिये बड़ी उपयुक्त है। थोड़ी देर तक कपड़ोंका पानीमें उबालनेसे छूत मर जाती है।

यदि कभी खानेपीने की वस्तुओंमें भी छूतका भय हो तो खूब गरम करने या उबालनेसे शुद्धकी जा सकती हैं। इसी कारण जब शहरमें कहीं हैजा या मोती ज्वर हों तो जल को या दूध को उबाल लेना चाहिये।

उ—गरम हवा दिखाना—हम इस विधि को केवल पुस्तकोंके लिये उपयुक्त समझते हैं। पुस्तकों को पर्याप्त समय तक गरम हवा दिखाना चाहिये और यह भी खयाल रखना पड़ता है कि पुस्तकों को हानि न पहुँचने पाये।

३—रासायनिक जीवाणु नाशक

अब हम रासायनिक जीवाणुनाशक अर्थात् जीवाणु नाशक दवाओंका वर्णन करेंगे।

जीवाणु नाशक दवायें तीन समुदायों में विभक्त हो सकती हैं।

१—घन (ठोस)

२—द्रव

३—वायव्य

ठोस जीवाणु नाशक

चूना—यह सब जगह मिल सकता है। यह जिस कमरेमें रोगी रहा हो उसकी दीवालोंकी पवित्रता केलिये अत्यन्त लाभकारी है। कमरेकी दीवालों को पहिले पानीसे खूब रगड़ रगड़के धोना चाहिये और फिर कमरेकी पुताई कराना चाहिये।

ताजा चूना अधिक जीवाणु नाशक होता है। इस लिये रोगी के कमरे की पुताई के लिये ताजा चूने का उपयोग करना चाहिये।

साबुन—इससे चर्मकी सफाई खूब होती है, इस लिये यह एक बड़ा अच्छा जीवाणु नाशक है। परन्तु इसमें उपस्थित जीवाणु नाशन शक्ति बहुत कम तीव्र होती है इसलिये इसकी जीवाणु शक्ति पर बहुत निर्भर नहीं हो सकते। इसलिये जब कभी छूतकी बीमारीका रोगी छुआ जाय तो पहिले हाथ साबुनसे धोने चाहिये और फिर हाथों को कम से कम ५ मिनट तक लाल दवाके घोल अथवा लाईसोलके घोल में हाथों को डाले रहना चाहिये।

लाल दवा (पांशुज परमांगनेत) इसे अंग्रेजी में पोटासियम परमैनगनेट कहते हैं। यह दवा बैंजनी रङ्गके दानोंके रूपमें बाजारमें बिकती है। इसके तेज घोलसे हाथ रङ्ग जाते हैं किन्तु इसमें बहुत जीवाणुनाशक शक्ति होती है। जब इसकी शक्ति समाप्त होजाती है तो इसका रङ्ग हरा होजाता है। यों तो एक लोटे पानी में दो चार दानेही पर्याप्त होंगे परन्तु हैजे, मोतीज्वर इत्यादि भीषण रोगोंमें अपने हाथ अथवा रोगी धोनेमें तीव्र घोलका ही प्रयोग करना चाहिये और हाथ रंगने का विचार न करना चाहिये क्योंकि उससे कोई हानि नहीं हो सकती इस लिये लोटेमें १५ या २० दाने तक छोड़ सकते हैं।

इस दवा से मुँह साफ करनेकेलिये कुल्ले भी किये जा सकते हैं और जखम भी धोये जा सकते हैं।

एक लोटेमें एक दाना छोड़नेसे पानी भी पवित्र हो जाता है और वह पिया जा सकता है। यदि उबला हुआ पानी पीनेकेलिये न मिल सके तो यही उपयोग में लानी चाहिये। एक आऊंस लाल दवा कुएंमें छोड़नेसे कुंएका पानी भी साफ होजाता है।

द्रव जीवाणु नाशक

लाइसौल—यह हाथ और जखम धोनेकेलिये अच्छी दवा है। १ चम्मच आधा सेर पानीमें इस्तेमाल करनी चाहिये।

फिनायल—यह फर्श धोने और पखाना सफा कराने और छूतकी बीमारियोंके मल मूत्रमें जीवाणुओंको नाश करनेकेलिये अच्छी दवा है।

सिलीन—इसका भी इस्तेमाल वही है जो कि फिनायल का है।

वायव्य जीवाणु नाशक

गन्धकट गन्धकके जलनेसे एक विशेष प्रकार की वायु पैदा होती है जो कि जीवाणुनाशक है। कमरेकी दीवार फर्श इत्यादि तर होने चाहिये और सब दरवाजे, खिड़कियां, और रोशनदान इत्यादिक हवा बाहिर जाने के सब रास्ते बन्द होने चाहियें।

गन्धकका प्रभाव पूरा हो इसलिये यह आवश्यक है कि वायुमें कुछ वाष्प उपस्थित हो। इस लिये उस कमरेमें एक खुले बर्तन में कुछ खौलता पानी आग पर रखा हुआ छोड़ देना चाहिये।

एक हजार घनफुट के लिये १ सेर गन्धककी आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् ३ गज लम्बे, ३ गज चौड़े और ४½ गज ऊंचे कमरेकेलिये एक सेर गन्धककी आवश्यकता पड़ेगी।

ये कमरेमें खटमल और ताऊनके पिस्सुओं को नाश करनेकेलिये काममें लाई जा सकती है।

विस्तर इत्यादिकको साफ करके फिर गन्धक जलाना चाहिये।

कीट नाशन

अब हम कीटोंसे लड़ाई करनेकी विधियें बतायेंगे। सब प्रकारके कीड़े भी आगमें और उबलते पानीमें मर जाते हैं। मिट्टीके तेलका वर्णन हम पहिलेही कर चुके हैं।

निम्न लिखित मिश्रण तैयार कर लेना चाहिये।

मिट्टी का तेल	८२ भाग
साबुन	३ भाग
पानी	१५ भाग,

साबुनको गरममें घोल लीजिये और फिर मिट्टीके तेल में मिलाकर खूब मिलाइये। इस मिश्रण में २० गुना पानी मिला कर उपयोग में लाइये।

तारपीन का तेल भी कीट नाशक है किन्तु यह बहुत मंहगा पड़ता है। यह मिश्रण ताऊन के पिस्सुओं के मारने के लिये बहुत उपयोगी है।

कीट नाशनमें नीमकी पत्ती भी जलाने से बहुत सहायता मिलती है।

"फफूंदी (Fungi) से मनुष्यको लाभ"

[ले० कन्हैयालाल, एम. एस-सी.]

निसन्देह फफूँदी मनुष्य, तथा वनस्पतिको हानिकारक है परन्तु अनेक प्रकारसे यह मनुष्यको लाभदायक भी है। लोग गत हजारों वर्षोंसे इसको औषधिके रूपमें खाते रहे हैं। वर्तमान कालमें विज्ञानके विकाशसे, जड़ी बूटियोंका सत भपके द्वारा खींचा जाता है और प्रत्येक औषधिको दूसरे के मेलसे स्वतंत्र रखनेपर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस कारण फफूँदी अब इस कार्य्य में बहुत कम आती है।

रीज़ (Rees) ने लिखा है कि चीनी व जापानी शरीरकी पीड़ा मिटानेके लिये बीछ (Beech) तथा अन्य बड़े वृक्षोंकी त्वचापर उगने वाली बड़ी जातिकी फफूँदीका सेवन करते हैं। जिस जगह पीड़ा हो वहाँ फफूंदीके शुष्क चूर्णको रखकर आग लगा देते हैं। इससे छाले पड़ जाते हैं। छालोंमेंसे पानी निकल जाता है और पीड़ा चली जाती है। Puff Balls पफबाल नामक फफूँदी भी इस काममें आती है।

फफूँदी द्वारा कई एक देशोंमें लोग सर्वरोग नाशक औषधियाँ (universal medicines) बनाते थे। यूनानी डाक्टर, डोसकोरीडेस, (Dioscorides) का कहना है कि "कुकरमुता अर्थात् छत्रीसे

सर्व रोग नाश होते हैं। ज्वर, दस्त, गठिया, फोड़ा, घाव, पीलिया, विष फैलनेमें इसका सेवन करना चाहिये। रोगीके बल तथा अवस्था नुसार मात्रा देनी चाहिये और प्रत्येक रोगमें अनु-पान बदल जाता है।" बोलीटस (Boletus edulis) एडूलिससे बहुतेरे रोग शान्त होते हैं। यह रीति बहुत दिनोंतक प्रचलित रहीं। इसके पश्चात् अरब (Arab) के हकीमोंने कुछ उन्नति की। वे केवल बनस्पतिसे ही अपनी औषधियाँ बनाते थे। जिरार्ड (Gerard) की पुस्तकमें लिखा है कि "अगेरिक (agaric) नामक औषधि सब रोगोंको दमन करती है। निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकारकी चिकित्सा कहाँतक लाभदायक हो सकती है।

सोलहवीं शताब्दीके अन्तसे लोग रसायनका प्रयोग धातुके लवणों (metallic salts),से औषधियाँ बनानेमें करने लगे। परन्तु फफूंदीका प्रयोग भी जारी रहा जुलाब लेनेके लिये लोग अगेरिक (Agarick) हाइफोलोमाफेसीकुलेयर (Hypholoma fascicwlare) चित्र १) तथा हिरनियोला ओरीकुला जुडा (HirneolaAuricula-gudae) (चित्र २) का सेवन करते थे। फोमेस फोमेन्टेरियस (Fomes fo mentarus) (चित्र ३) के लगाने से रुधिरका बहना बन्द हो जाता है।
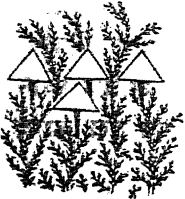
चित्र १
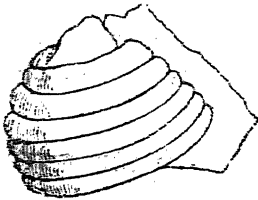
चित्र २ चित्र ३
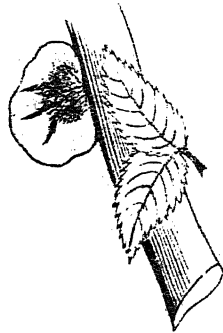
पश्चिमी ससेक्स (West Sussex) के निवासी जो मधुमक्खियोंको पालते हैं, छत्ते साफ़ करनेके समय पफ़वाल (Puff-ball) के धुएंसे छत्ते को भर देते हैं जिससे मक्खियाँ अचेत हो जाती हैं। अमानिटामस्केरिया (Amanita muscaria) गिरने से चौट लगने नथा रगोंकी बीमारीके लिये लोग खाते थे। अमानिटा फेलोयडिस (Amanita phaliodes) हैजा इकतरा व तिजारीके दूर करने-में देते थे। चीनी लोग कोरडीसेप्स साइनेनसिस (Cordiseps simencis) तथा लाइसूरसमोकूसिन (Lysurus Mokusin) से नासूर (Ulcer) की चिकित्सा करते हैं।

पंजाबमे लाइकोपरड़न जिमेटम (Lycoper don gematum) के स्फरोंको ठण्ड लग जानेकी अवस्थामें सेवन करते हैं। मलायामें पोलीपोरस सेसर (Polyporu's Sacer) जो चीतेके दूध (tigersmilk,) के नामसे प्रसिद्ध है तपेदिक रोगियोंको खिलाई जाती है।

स्त्रियोंकी चिकित्सामें क्लेरिसेप्स प्यूर्प्यूरिया (clairiceps purpurea) राईका अरगट (Ergot of Rye) बड़े कामकी वस्तु है। इसका इसक्लेरो-शियम (Sclerotium) बाहरसे काला व भीतर स्वेत होता है। १५ से ६० ग्रेनतक मात्रा देनेसे बच्चा पैदा करानेमें सुगमता होती है, कारण कि यह बच्चेदानी (Uterus) के पेशियों (muscles) में सुकडन पैदा कर देता है। गेहूँ व ज्वारका अर्गट भी इस काममें आता है। इसकी मात्रा कदापि अधिक न होनी चाहिये।

सेकरोमाइसीस सेरीविसाइ (Saccharmyces cerevisiae) मदिरा खींचनेके साथ साथ उत्पन्न होता है। यह खमीर झागदार, लिबलिबा, व पतला होता है। नासूरपर इसका लेप किया जाता है। डाय-बेटिज(Diabetes) का रोगी इसके सेवनसे कर्बोहदेत (carbohydrate) को सुगमता से हजम कर लेता है। खमीरकीट (yeast) को कुपच मिटाने, दस्त तथा टुबरकुलोसिसके क्षय रोगके रोगियोंको देते हैं।

पोलीपोरस ओफसिनेल (Polyporus officinale) का चूर्ण दस्तावर होता है, जिसकी मात्रा ५ से ३० ग्रेनतक है। इसके अधिक खा जाने से दस्त (Diarrhaea) अथवा मृत्यु हो जाती है। विज्ञान की उन्नतिसे चिकित्साशास्त्रमें बड़ा परिवर्तन हो गया है और फफूँदीको लोगोंने औषधिके काममें लाना बहुत कम कर दिया है।

व्यापारमें भी फँफूदीके बड़े काम निकलते हैं। खमीरण (Fermentation)में खमीरकीट (Yeast) के बिना काम नहीं चलता। अन्य फँफूदियोंके समान इसके कोष (Cell) सर्वदा वायुमें उपस्थित रहते हैं। अपने उगनेके लिये उचित वस्तु पाकर एक कोषसे लाखों कोष बन जाते हैं। यह कोष पृथक होते हैं अथवा एकके ऊपर दूसरे एक श्रेणीमें कई एक पुराने व नये जुड़े होते हैं। खमीरकीट ऐसी वस्तुओंमें जिनमें शर्करा (sugar) रहता है उग जाती है और शर्कराको मद्य (alchohol) तथा कर्बनद्विओषिद (carbon-dioxide) में परिणित कर देती है। खमीर कीटसे प्ररद (Zymase) रस निकलता है जो पृथक कर लिया जाता है और इस कार्यके लिये फिर काममें आ सकता है। डबल रोटी जिंजर शराब (Beer), अंगूर की शराब (port wine) इसकी सहायतासे बनते हैं।

सिरकाम्ल (acetic acid) जिसे सिका Vineger भी कहते हैं (mycoderma aeeti) माइको डरमा एसिटाईके द्वारा बनाई जाती है।

सूखी हुई पोलीपोरस (Polyporua) के दो टुकड़ोंको रगड़नोसे अग्नि उत्पन्न होजाती है। यूरोपमें यह फ़ोमेस फोमेन्टेरियसके नामसे प्रसिद्ध है। फफूंदीके पतले टुकड़े काटकर कूटे जाते हैं जिससे वे लचकदार हो जाते हैं। फिर उन्हें साल्टपीटर (Salt petre) के २½ प्रति शत घोलमें डुबाकर छायामें सुखा लेते हैं। एक बार फिर कूट कर ये अग्नि उत्पादक खर (Tinder) बन जाते हैं।

प्रकाश उत्पादक फफूँदी (Phosphores centfunji) को न्यू केलीडोनियाँ (New caledonia) की स्त्रियाँ सरपर गहनेकी तरह पहनती हैं। खलियानोंमें जहाँ दीपकसे आग लग जानेका भय होता है, यह फफूँदी सुरक्षितदीपक (Safety lamp) का कार्य्य करती है। फॉंगस इगनिअस (Fungus igneus) से बनोंमें मार्ग ढूढ़नेका काम लिया जाता है।

कुछ फफँदियां ऐसी हैं जो उस्तरेपर धार तीक्ष्ण करनेके काममें आती हैं जैसे (polyporus squoamosus) पोलीपोरस इस्के-मोसम। डडेलिया-कुअरसिना (Daedalea quer cina) से घोड़ोंपर खुरेरा किया जाता है। Curry co मनुष्य भी अपने बाल करी कून साफ कर सकता है। पोलीपोरस-इगनेटिअस तथा फोमेन्टेरि-अस (Poly porus gnatius curry and fomen tarius us) के चूर्ण का ओसलिएक्स लोग (Oslyacks) हुलास बनाते हैं।

(Polysaccum crossipes and tincto rum) पोलीसेकमक्रेसिपस तथा टिंकटोरमसे खाकी रंग बनता है जो इटलीमें रेशम रंगनेके काममें आता है। प० सलफ्यूरिअस (P. sulphureus) से पीला फोमेस इगनेरियस (Fomes igniarius) से काला, खाकी, रसूला (Russula) से लाल तथा ट्रेमेला-ल्यूटेसकेन्स (Tremellaelut-escens) से गुलाबी रँग बनता है। ऊन, चमड़ा इत्यादि इन रँगोंसे रँगे जाते हैं। कुपराइनस ऐटरामेन्टेरिअस (Coprinus atromentarius) से स्याही बनती है। स्वेडिनमें लोग पी नीडलेन्स (P. nidulans) से बोतलोंके काग बनाते हैं। इसके अतिरिक्त तसवीरके चौखटे, गहने व टोपी इत्यादि वस्तुयें भी बनती हैं।

रोमन लोग (Romans) कई प्रकारकी फँफूदीको खाते थे जिसमें मुख्य यह हैं:—अमानिटा सिसेरिया (Amanita caesarea), सेलिओटा-कम्पेसट्रस (P salliota cumpestris) तथा बोलिटस-ऐड्लिस (Boletus edulis)। इसके

अतिरिक्त ट्राफिल्स (Truffle) तथा पफबाल्स (Puffballs) को भी खाते थे। यूनानी फफूँदी पकानेमें बड़ा व्यय करते थे। इसको पकानेकी रीतियाँ पुस्तकोंमें लिखी हैं। जंगली जातियाँ भी बड़े हर्षसे इनको खाती हैं। आस्ट्रेलियन अपनी रोटी पोली पोरस-मिलिटी (Polyporus mylittae) से बनाते हैं।

खाने योग्य फफूँदी प्रत्येक स्थानपर उगती है। किसी किसी देशमें यह कम खानेमें आती है। फ्रांसिसी ऊपर लिखी फफूदियोंके अतिरिक्त लेपिओटा प्रेसिरा (Lepiota procera), गुच्छी (morchella) तथा अमानियाटा Am aniata) खाते हैं। पेरिस तथा दक्षिण फ्रान्समें खाने योग्य फफूँदीउगानेके लिये प्रसिद्ध कारखाने हैं। जँगलके समीप बसने वाले नगरोंमें फफूँदीकी हाट भरती है। लूसेन नगरमें ७८ प्रकारकी फफूंदी बिकती है और जेनेवाकी मंडीमें फफूँदीको छोड़ और कोई दूसरी वस्तु नहीं बिकती।
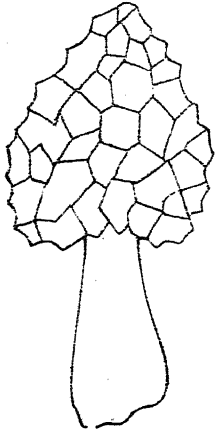
चित्र ५

संसार भरमें सबसे अधिक फफूंदी म्यूनिच (Munich-Germany) में बिकती है। क्लेविरिया-औरिया (claoaria aurea) क्लेवेरियाबोटरीटिस (D: Botrytis) क्ले फ्लेवा (C. flava) पोलीपोरस, हिडनम (Hydnum) लेक्टेरिअस (Lactarius) रसूला (Russula) सेलिओटा, गुच्छी तथा अन्य फफूँदियोंसे हजारों रुपयेका व्योपार होता है।

काशमीर व हिमालयमें गुच्छी (morchella. esculeuta) बहुत उत्पन्न होती है जो दूसरे देशोंको भेजी जाती है। इसके अतिरिक्त हेलबेलाक्रपसा (Helvella cripsa) तथा हे कोरेलोयडिस (H corallorides) को भी लोग खाते हैं। वर्षा ऋतुमें बर्मामें उगनेवाली एलीफेन्टग्रास (Elephant grass) की जड़ोंपर "केंगू" (Keing-u) नामक खाने योग्य फफूंदी मिलती है। ट्रफल (Truffle) खसिया पर्वत पर उगने वाले पाइनस (Pinus Khasya) की जड़ों पर उगती है। झेलमके निवासी "शिखिन" तथा केरकी घाटी वाले "बतबकरी" के नामसे खाने योग्य फफूँदीको पुकारते हैं। भूटानी हाइपोजीलन नरनीकोसम (Hypoxylon Neruicotsum) को बड़े आनन्दसे खाते हैं। तिब्बत में (Cortinoriuse-nodensis) "अंगलाचमौ" के नामसे बिकती है।

जापानी (Japanese) "शाइटेक" तथा "मस्तटेक" नामक फफूंदीको खाते हैं। चीनी विशेष कर Hirneola Auriculajudoe jews' ear "यहूदीकान" नामक फफूंदी खाते हैं। विलायतमें भी अभीतक यह खानेमें आती है, परन्तु कभी कभी ठीक पहचानमें न आने तथा विषैली फफूंदीके खा जानेसे लोग मर गये हैं। इस कारण वहाँ इसका खाना कम होगया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फफूँदी कई एक कामोंमें आती है। यदि इसको पहचान कर एकत्रित कर लिया जाय तो इसके व्यापारसे भारतवासी भी लाभ उठा सकते हैं।

बन्द स्थान में वानस्पतिक जीवन

प्राय: सब प्राणी कुछ कम या अधिक आवश्यकता और अपनी परिस्थिति के अनुसार अपने आपको ढाललेते हैं। परन्तु जानवर तथा मनुष्य आदि जीवित प्राणियों का किसी बन्द स्थानमें जीवित रहना कठिन है। यदि बाह्य वायु, और जल आदिसे उनका सम्बन्ध हटा दिया जाय तो वे जीवित ही नहीं रह सकते, चाहे ताप और प्रकाश उन तक पहुँचते रहें। परन्तु यदि ताप और प्रकाश

पहुँचता रहे तो हरी वनस्पति विशेष परिस्थितियोंमें जीवित रह सकती हैं।

सब प्राणी कुछ वायु अन्दर ले जाते हैं और कुछ भिन्न २ मार्गों से बाहर निकालते हैं। यदि हम चाहते हैं कि कोई प्राणी बन्द बर्तनमें देर तक जी सके तो हमें ऐसा प्रबन्ध करना पड़ेगा कि उसके भोजन और परित्यक्त पदार्थमें समता तथा चाक्रिक सम्बन्ध हो। उनके लिए आवश्यक सामग्रीकी कमी न होने पावे। यह तो स्पष्ट है कि ऐसी जगहमें कोई भी प्राणी देर तक नहीं जी सकता क्योंकि उसे जीवन धारण करनेके लिये भोजन, हवा जल इत्यादि शक्तिदायक पदार्थोंकी आवश्यकता होगी। नहीं तो वह भूख प्यास से सताया हुआ श्वास के घुट जाने से मर जायगा।

पौदे कैसे श्वास लेते हैं

हरी वनस्पितियोंमें नित्य दो क्रियायें होती रहती हैं। इन्हीं क्रियाओंपर बन्द घरमें उनका जीवन सम्भव है। पहली क्रिया है श्वास लेने की इस क्रिया के द्वारा वनस्पतियों का इकट्ठा किया हुआ भोजन फटता है। यह क्रिया प्राणियों की श्वास-क्रिया से बिलकुल मिलती है, यद्यपि वृक्षों में यह बहुत धीरे धीरे होती है। दूसरी क्रिया है प्रकाश-संश्लेषण (Photo synthesis) की। इस क्रिया से सूर्य के प्रकाश में पौदे कर्बनिकाम्ल गैसे लेते हैं और उसके जल के साथ मिलने से उनमें कर्बोद्रित (Carbohy rdates) बन जाता है।

कई पौदों में प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया श्वास-क्रिया से कई गुना अधिक तेज़ होती है। कई पौदों में तो ४० गुना अधिक होती है। यह क्रिया एक तरह से वायु में से पौदों के भोजन करने की है। हमारे तथा पशुओं के खाने के काम में आनेवाले भोजन इसी क्रिया के परिणाम हैं। प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया होने के समय ओषजन निकला करती है। कभी कभी विज्ञान के प्रारम्भिक विद्यार्थी यह समझने लगते हैं कि पौधे श्वास में कर्बनिकाम्ल गैस अन्दर ले जाते हैं और निश्वास में ओषजन छोड़ते हैं। पर यह ठीक नहीं। पौदे हमारी तरह श्वास में ओषजन लेते हैं। उस ओषजन की उनके अन्दर उपस्थित कर्बोद्रित, चर्बी आदि पर क्रिया होती है। उस क्रिया के फलस्वरूप पौदे भी निश्वास में कर्बनिकाम्ल गैस छोड़ते हैं।
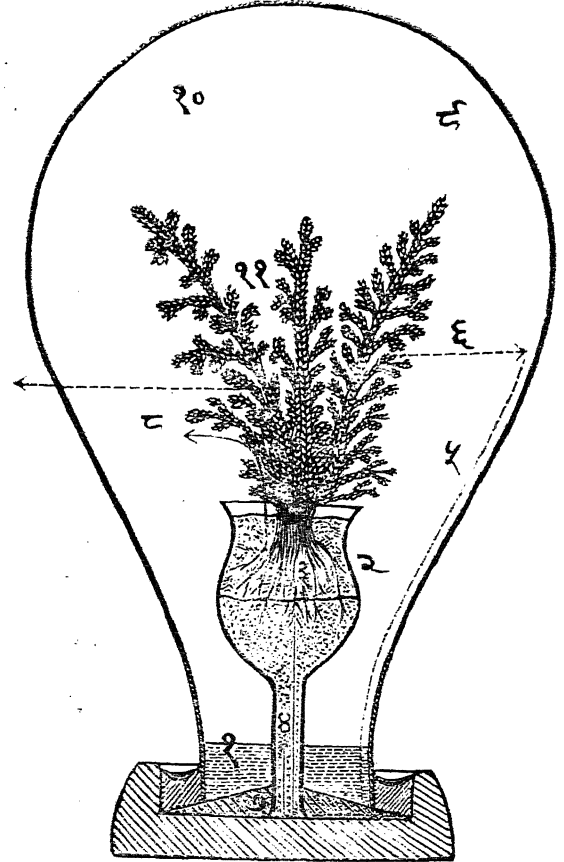
१ प्लास्टर आफ पेरिस २ पीक ३ मिट्टी ४ छिद्राकर्षण ५ जल का बूंदों में बनना (घनीभवन) ६ जल उड़ना ७ प्लास्टर आफ पेरिस ८ मिट्टी के कृमि ९ श्वास क्रिया १० प्रकाश संश्लेषण ११ पौदा।

इन दोनों क्रियाओं की तुलना से यह स्पष्ट हो जायगा कि किस तरह पौदों का एक बन्द बर्तनमें जी

सकना सम्भव है। संक्षेपमें हम यूँ कह सकते हैं कि श्वास-क्रिया बराबर है—

कर्बोद्रित + ओषजन = कर्बनिकाम्ल गैस + जल + शक्ति इस क्रियामें शक्ति छूटती है

और प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बराबर हैं।

कर्बनिकाम्ल गैस + जल + प्रकाश (शक्ति) = कर्बोद्रित + ओषजन; इस क्रियामें भोजनके रूप में शक्तिका भण्डार इकट्ठा होता जाता है। यदि श्वासक्रियासे निकली कर्बनिकाम्ल गैस की मात्रा प्रकाश-संश्लेषण में निकली ओषजन के बराबर हो तो

$\frac{\text{श्वास क्रिया}}{\text{प्रकाश संश्लेषण}} = \frac{१}{१} = १$ होगा। यह स्थिर होना चाहिए। यदि अनुपात इकाई हुआ तो उस बन्द बर्तनमें गैसका दबाव भी स्थिर होगा।

प्रकाश और अँधेरे का प्रभाव

सब प्राणी श्वास तो सभी समय लेते हैं चाहे प्रकाश हो चाहे अन्धकार। परन्तु प्रकाश-संश्लेषण एक तो केवल हरे पौदों में ही होता है और वह भी प्रकाश में। इस क्रिया के लिये प्रकाश जल और कर्बनिकाम्ल गैस का होना आवश्यक है। अन्धेरेमें यह क्रिया नहीं होती। पौदे भी हर समय श्वास लियी करते हैं परन्तु सूर्यके प्रकाशकी उपस्थितिमें बड़ तेज़ीसे कर्बनिकाम्ल गैस को प्रकाशकी शक्तिसे पौदे कर्बोद्रितमें बदलते रहते हैं। इस प्रकार बन्द बर्तन में भोजन और ओषजनका चक्र बन सकता है। अन्धेरेमें कर्बनिकाम्ल गैस की मात्रा बढ़ती जाती है और ओषजनकी घटती। परन्तु प्रकाशकी उपस्थिति में ओषजन बढ़ती है और कर्बनिकाम्ल गैस घटती जाती है। एक बढ़ता है तो दूसरा घटता है। इस प्रकार उनमें समता रहती है।

इस प्रकार सिद्धान्त के अनुसार तो यह स्पष्ट मालूम होता है कि इस प्रकारकी समता सम्भव है परन्तु अभी तक किसी ने इसके अनुसार परीक्षण नहीं किये थे। कभी कभी ऐसा होता है कि परीक्षण किया तो जाय किसी उद्देश्यसे और उससे पता लग जाय ऐसी बात जिसका अनुमान भी न हो। बन्द बर्तनमें पौदोंका हरा भरा रहनाभी इसी प्रकारके परीक्षणोंसे पता लगा है। कुछ परीक्षण प्रकाश देनेवाली गैसोंका पौदोंपर प्रभाव देखनेके लिए किये जा रहे थे। उन परीक्षणों के करते करते अचानक इसका भी अनुमान हो गया कि पौदे बन्द बर्तन में हरे भरे रह सकते हैं।

परीक्षण करने के लिए एक घिसे काँच की पट्टी पर वैसलीन लगा कर उलटा घंटा बर्तन कस दिया गया। इस प्रकार उसमें वायु का आना जाना रुक गया उनके अन्दर पौदे रखे हुए थे। अवसर ऐसा हुआ कि उन्हे खोलकर न देखा जा सका। वे देर तक बन्द के बन्द पड़े रहे। एक महीने के बाद भी वे हरे भरे थे। उनको किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँची। यह देखकर परीक्षण करने वालोंकी उत्सुकता बढ़ी। उन्होंने उन पौदों को उसी तरह बन्द रहने दिया। ७ महीने के बाद भी वे पौदे उसी तरह हरे भरे तथा सुन्दर थे। आगे वह कब तक रह सकते यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि अचानक गल्ती से वे खोल दिये गये। इससे यह भी अनुमान हुआ कि यदि बड़े पौदे बड़े बर्तनों में हरे भरे रह सकते हैं तो छोटे पौदे में छोट बर्तन में रह सकते हैं।

जैसा चित्र में दिखाया गया है ऐसा उपकरण इस परीक्षण के लिए तैयार किया गया। इसके मुख्य ३ भाग हैं।

१, बल्ब (गोल कुप्पी) २. आधार ३. एक पौदा लगाने का पात्र जो कि इस उपकरणमें पीकका ऊपर का सिरा है। पीकमें मिट्टी भर कर उसमें पौदा लगाया गया है। अब इसे इस प्रकार बन्द कर दिया कि इसमें न तो बाहर से कुछ अन्दर जासके और न अन्दर से बाहर आ सके। बन्द करने से पहले पौदेके अनुरूप उसमें थोड़ासा जल भी डाल दिया जाता है। अब इसे संभाल कर रखनेके सिवाय और किसी सावधानी की आवश्यकता नहीं रही। हाँ, प्रतिदिन इसे धूप में अवश्य रखते रहना चाहिये।

श्वास-क्रिया और प्रकाश-संश्लेषण के सिवाय एक और भी वस्तु है जिस पर कि हमें विचार करना है। वह है जल। इसका भी अपना अलग चक्र होता है। यह चक्र भी अपने आप बनना चाहिये। यदि आवश्यक पानी न मिला तो पौदा जलके अभाव में जीवित नहीं रह सकता। चाहे वायुमें कितना भी पानी क्यों न हो परन्तु ऐसा ख्याल किया जाता है कि पौदे वायुमेंसे पानी को नहीं चूसते। इन कुप्पियों (बल्ब) में बन्द हुये पौदोंके पत्तों और मिटटी में से पानी उड़ता रहता है। यह पानी कुप्पी के कांच पर जमा हो जाता है वहांसे वह बह कर नीचे आधार पर पहुँच जाता है। वहाँ प्लास्टर आव्ह परिस पड़ा रहता है। उसमें वह समा जाता है। फिर यही मिटटीमें छिद्राकषण शक्तिको सहायतासे चढ़ता है। इस मिट्टीमें से पौदेकी जड़ें उसे ले लेती हैं। इस प्रकार वह फिर वहीं पहुँच जाता है जहाँसे कि वह वाष्पीभवन द्वारा उड़ कर आया था।

हवा तथा जलके चक्रसे हमें यह तो पता लग गया कि किस प्रकार बन्द बर्तन में भी पौधा जीवित रह सकता है। परन्तु अभी हमें एक और भी बात सोचनी है और वह यह है कि पौदा बढ़े किस तरह? हम जानते हैं कि मिट्टीमें एक प्रकार के कृमि होते हैं जो कि मिट्टीमें उपस्थित खाद पर क्रिया कर उसे फाड़ देते हैं। उनके इस प्रकार फाड़ने से खादमेंसे कर्बनिकाम्ल गैस और जल निकलते हैं। यदि ऐसी मिट्टीका जिसमें ऐसी खाद बहुत हो इस परीक्षामें उपयोग किया जाय तो उसे बढ़नेके लिए आवश्यक भोजन—कर्बनिकाम्ल गैस और जल मिलते रहेंगे।

कई पौदोंमें इस प्रकारकी मिट्टी डालनेसे वृद्धि हुई। वृद्धि का प्रमाण यह है कि उनमें नये पत्ते निकल आये। कई पौदोंमें एक और विचित्र चक्र देखा गया। पुराने पत्ते सूख कर गिर गये। उन्होंने खाद का काम दिया। नये पत्ते निकल आये। पुराने गिर गये। पौदा फिर हरा भरा हो गया। यह क्रिया विशेष कर फर्न में बहुत स्पष्ट दीख पड़ी। नये पत्ते मजबूत और पुष्ट होते हैं। मिट्टी कीखादके कारण निकले नये पत्ते पुराने कमजोर पत्तों को हटा कर उनके स्थान पर आ गये। (Survival of the fittest) का सिद्धान्त यहाँ कितना ठीक उतरता है।

इस प्रकार सभी पौदे बन्द करके रख नहीं जा सकते। तीस प्रकारके पौदों पर परीक्षण करनेसे पता लगा कि ५० प्रति शतक पौदों ने अपने आपको अपनी स्थिति के अनुकूल बना लिया।

वे इस प्रकार बन्द किये जाने पर भी हरे भरे बने रहे। जो पौदे इसप्रकार नहीं रह सकते उसका कारण है श्वासक्रिया तथा प्रकाश-संश्लेषण के अनुपात का इकाई न हो। इस अवस्थामें आवश्यक ओषजन या कर्बनिकाम्ल गैसके न मिलनेके कारण भूखसे वा श्वास घुट जानेसे उन पौदों की मृत्यु हो जाती है। यदि कुप्पीके वायुमण्डलमें जल वाष्पकी अधिक मात्रा हो तो उसमें कई पौदे जीवित नहीं रह सकते। यदि जीवित रहते हैं तो वे पीले पड़ जाते हैं। कभी कभी मिट्टी में ऐसे कृमि होते हैं जो कि पौदेके लिये संघातक होते हैं। उस अवस्थामें भी पौदेकी मृत्यु हो जाती है।

कुछ पौदे ऐसे होते हैं जो सूर्यके प्रकाश (धूप) में अच्छे बढ़ते हैं और कुछ छायामें। इन दोनों प्रकारके पौदों पर इस अवस्थामें भिन्न भिन्न क्रिया होती है। धूपमें जीवित रहने वाले पौदे, जैसे तम्बाकू, को तेज प्रकाश देनेकी आवश्तकता होती है। इसके उलट छायामें पलनेवाले पौदों को तेज प्रकाशमें रख जाय तो वे मर जायँ। उन्हें हलका मन्द मन्द प्राकाश देना पड़ता है। धूप वाले पौदे इस प्रकार आसानी से रखे नहीं जा सकते क्योंकि धूप के साथ जो गर्मी आती है वह बाहर तो निकल नहीं सकती इसलिये उस गर्मीका पौदेके पत्तों पर हानिकारक प्रभाव होता है।

सब प्रकारके पौदोंका इस तरह परीक्षण किया गया। परीक्षण करने से पता लगा कि वे पौदे इस प्रकार बन्द किये जाने पर अधिक अच्छी तरह जीवित रहते हैं जो कि शुष्क

वायु-मण्डलमें पलने वाले पौदोंकी अपेक्षा अधिक नमी वाली वायु चाहते हैं। बहुतसे पौदे ऐसे होते हैं कि जब उन्हें हरी भरी हालतमें इस प्रकार बन्द करके रखा जाय तो उनके पत्ते एकदम झड़ जाते हैं। कुछ समय बाद उनमें फिर नये पत्ते निकल आते हैं। ये पत्ते नमीमें अधिक अच्छी तरह स्थिर रह सकते हैं। अभी तक ऐसा तो नहीं देखा गया कि पौदेसे बीज और फिर बीजसे पौदा भी निकल आये और इस प्रकार वहाँ हमेशा वानस्पतिक जीवन मरणका चक्र बना रहे पर यदि विचारकी दृष्टिसे देखा जाय तो हमारी यह कल्पना असंगत नहीं कही जा सकती। ऐसा भी चक्र बन सकता है। इसके लिए अभी आगे परीक्षा करनेकी आवश्यकता है।

इस प्रकार बाहरसे बिलकुल अपना सम्बन्ध छोड़कर जीना पौदोंकी ही विशेषता है। मनुष्य तथा अन्य जन्तु इस प्रकार जीवित नहीं रह सकते। इस प्रकार पौदोंका अपने आप को परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेना इस बातको कुछ अंशोंमें पुष्ट करता है कि प्राणिजगत् से पहले वानस्पतिक जगत् की रचना हुई।

पं० अमीचन्द विद्यालङ्कार

पं० इन्द्र विद्यालङ्कार M. B. H.

गन्धक और गन्धिद

(Sulphur and Sulphides)

(ले० श्रीसत्यप्रकाश एम० एस० सी०)

प्राप्ति स्थान

वर्त्त संविभागके छठे समूहमें ओषजनके बाद गन्धकका स्थान है। गन्धकके विषयमें आजसे ही नहीं अपितु अतीत कालसे ही लोगों को कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य रहा है। ज्वलन्त अथवा शान्त ज्वालामुखी पर्वतोंके समीपवर्ती स्थानोंमें यह स्वच्छ रूपमें प्राप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त, यह धातुओंसे संयुक्त भी पाया जाता है। दो प्रकार के यौगिक बहुधा पाये जाते हैं जिनमें गन्धककी मात्रा होती है।

१—गन्धिद, जैसे सीस गन्धिद, सीग, (गैलीना) पारद गन्धिद, पाग (सिनेबार), लोह गन्धिद, लोग$_२$ इत्यादि।

२—गन्धेत जैसे जिप्सम या खटिक गन्धेत, ख ग ओ$_४$ २ उ$_२$ओ तूतिया या ताम्रगन्धेत, ताग ओ$_४$ ५ उ$_२$ ओ; कसीस अर्थात लोहसगन्धेत, लो ग ओ$_४$. ७ उ$_२$ ओ; ग्लौबर लवण, या सैन्धक गन्धेत सै$_२$ ग ओ$_४$ १० उ$_२$ ओ।

बहुतसे खनिज-स्रोतोंके जलमें एक वायव्य घुला होता है जिसे उदजन गन्धिद, उ$_२$ ग कहते हैं। यह उदजन और गन्धकसे युक्त यौगिक है।

ज्वालामुखी पर्वतों पर गन्धक पाया जाता है। यह गन्धक वास्तवमें दो वायव्योंकी प्रक्रियासे उत्पन्न होता है। भूमिके अन्दरसे उदजन गन्धिद उ$_२$ ग और गन्धक द्विओषिद ग ओ$_२$ नामक वाष्प ऊपर आती हैं और इन दोनों में निम्न प्रकार संयोग होता है:—

२ उ$_२$ ग + ग ओ$_२$ = २ उ$_२$ ओ + ३ ग इस प्रकार गन्धक उपलब्ध होता है।

गन्धकका शुद्धिकरण

खनिजोंसे प्राप्त गन्धकमें अनेक अशुद्धियाँ विद्यमान रहती हैं। इनके दूर करनेकी साधारण विधि यह है कि गन्धकको एक ढालू भट्टीके अन्दर गरम करते हैं, ऐसा करनेसे कुछ गन्धक तो गन्धक द्विओषिद वायव्यमें परिणत होकर उड़ जाता है पर अधिकांश गन्धक द्रवीभूत हो जाता है। भट्टी के एक विशेष छिद्र द्वारा यह द्रव गन्धक बाहर बहा लिया जाता है जहाँ यह ठण्डा होकर ठोसाकार हो जाता है। यह गन्धक साधारण उपयोग के लिये काफी स्वच्छ होता है।

यदि इसे औरभी अधिक स्वच्छ करना हो तो निम्न विधि का उपयोग किया जासकता है। गन्धक को एक विशेष भभकेमें आगसे गरम करते हैं। इसक

वाष्पें एक ईंटोंकी ठण्डी कोठरीमें ठण्डीकी जाती हैं। यहाँ यह गन्धक ठोसाकार हो जाता है। इस कोठरीका तापक्रम यदि ११५° से कम हो तो गन्धक की वाष्पें शुद्ध पीले रवादार चूर्णकेसे रूप में जम जाती हैं। इस गन्धकको गन्धकका चूर्ण कहते हैं। यदि तापक्रम ११५° से ऊपर हो तो ये वाष्पें द्रवरूप में हो जायंगी, द्रव गन्धकको सांचोंमें ढालकर तैयार कर लिया जाता है। इस प्रकारके गन्धकको गन्धक की पथरी कह सकते हैं। क्षारों के व्यवसाय में बहुत सी ऐसी सामग्री प्राप्त होती है जिसमें गन्धक की पर्याप्त मात्रा होती है। आजकल बहुधा गन्धक इसीविधिसे व्यापारिक मात्रामें तैयार किया जाता है। इसविधि का अब प्रचार बढ़ रहा है और ज्वालामुखी के गन्धक की उपयोगिता कम हो रही है।

गन्धक के बहुरूप

ओषोनका वर्णन करते हुए हम बहुरूपी शब्द का उपयोग करचुके है। ओषोन ओषजनका बहुरूपी पदार्थ है। इस प्रकारकी बहुरूपता ठोस पदार्थोंमें औरभी अधिक पाई जाती है। गन्धक कई रूपका उपलब्ध हो सकता है। इनका वर्णन अब यहा किया जावेगा।

(१) साधारण ज्वालामुखीगन्धक—यह बड़े बड़े अष्टफलीय सम चतुर्भुजिक सुन्दर रवों के रूप में होता है।

(२) सूच्याकार गन्धक—यह भी रवेदार गन्धक होता है। इसको इस प्रकार बनाया जा सकता है। मिट्टीकी एक घड़ियामें साधारण गन्धक लो। इसे दग्धकसे गरम करो। जब यह पूर्ण रूपसे पिघल जाय तो घड़ियाको लौ से हटा लो और ठण्डा होने दो। थोड़ी देरमें अब गन्धकके ऊपर एक पपरी जम जायगी। पर पपरीके नीचे का कुछ गन्धक अब भी द्रव ही होगा। पपरीमें सुई से दो छेद कर दो और घड़िया को उलट कर अन्दर के द्रव गन्धकको शीघ्रता से निकाल दो। थोड़ीही देर में पपरीके छेदोंमेंसे देखनेसे पता चलेगा कि अन्दर सुइयोंके आकारके कुछ सुन्दर पारदर्शक रवे हैं। यह रवे अस्थायी होते हैं। २४ घंटे के बाद ये अपार दर्शक हो जायंगे और पहले प्रकारके ज्वालामुखी रवे में परिणत हो जायँगे। गन्धककी ठोस सुइयों को तोड़कर सूक्ष्म दर्शक यन्त्रसे देखनेपर पता चलेगा कि रवे भी अब ज्वालामुखी रवों के समान अष्टफलीय सम चतुर्भुजी होगये हैं। साधारण गन्धक का गुरुत्व २·०५ होता है पर सूच्याकार गन्धक का १·९६ ही होता है। साधारण गन्धक का द्रवांक ११४°·५ है पर इसका १२० है।

(३) लचलचा गन्धक—कुछ गन्धक को परख नली में गरम करो। पिघल जाने के पश्चात् भी इसे और गरम करो जब तक गन्धक का पीला स्निग्ध द्रव बिलकुल गहरा लाल ठोस सा न हो जाय। २२०° तापक्रम के लगभग यह काला पड़ जायगा। इसको यदि ठण्डे पानी में धार के रूप में छोड़ें तो रबर के समान लचलचा चपचपा पदार्थ प्राप्त होगा। इसे लचलचा गन्धक कहते हैं। खींचकर इसके तार बनाये जा सकते हैं। पर थोड़ी ही देर में इसका रंग पीला पड़ने लगता है और यह भंजनशील हो जाता है। इस प्रकार यह भी साधारण गन्धक में परिणत हो जाता है।

गन्धक के गुण

गन्धक पीले रंग का ठोस पदार्थ होता है। यह ४४४·५° शपर उबलने लगता है, और इसकी वाष्पों का रंग घोर लाल होता है ये वाष्पें अधिक गरम करने पर पीली पड़ जाती हैं। ये ठंडी करके स्रवित की जा सकती है। जब गन्धक खुला गरम किया जाता है तो इसमें आग लग जाती है और यह नीली लपक से जलने लगता है। यह प्रकिया शुद्ध ओषजन में अधिक तीव्रतासे होती है। गन्धकके जलनेसे गन्धक द्विओषिद, ग ओ$_2$, बनता है जो बेरंग का वायव्य है। इसमें बड़ी तीक्ष्ण गन्ध होती है। गन्धक

जल में अघुल है पर मद्य में थोड़ा सा घुल जाता है कर्बन— द्वि गन्धिद में यह पूर्णतः घुलनशील है।

उदजन गन्धिद $उ_2 ग$

यदि गोलाकार नलिका में जलत हुये गन्धक के ऊपर उदजन वायव्य प्रवाहित किया जाय, तो एक या दो प्रतिशतक के लगभग मात्रा में उदजन गन्धक से संयुक्त होकर उदजन गन्धिद नामक वायव्य बनावेगा। छन्ना कागज को सीसशिरकेत के घोल में भिगोकर उदजनगन्धिद गैस के सामने लाने से इसका रंग काला पड़ जायगा क्योंकि सीसगन्धिद काला होता है—

$उ_2$ ग + सीस सिरकेत = सी ग + सिरकाम्ल
(सीस गन्धिद)
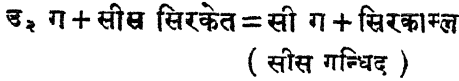
उदजन गन्धिद के पहिचान के लिये यह विधि बहुत ही उत्तम है।

उदजन गन्धिद बनाने की विधि—१ किसी धातु-गन्धिद के ऊपर अम्ल के संयोग करने से उदजन गन्धिद वायव्य बहुत सरलता से उपलब्ध हो सकता है। यह धातु गन्धिद जिनका वर्णन आगे दिया जायगा, खनिज पदार्थों के रूप में प्राप्त होते हैं और धातुओं को गंधक के साथ पिघला कर भी बनाये जा सकते हैं। उदजन गन्धिद बनानेके लिये लोह गन्धिद, लोग, और गन्धकाम्लका बहुधा उपयोग किया जा सकता है। गन्धिदके ऊपर हलका गन्धकाम्ल छोड़ने से यह वायव्य बहुत शीघ्रतासे निकलने लगता है। गन्धकाम्लके स्थानमें उदहरिकाम्ल भी लिया जा सकता है। प्रक्रियायें इस प्रकार हैः—

लो ग + २ उ ह = लो $ह_2$ + $उ_2$ ग

लो ग + $उ_2$ ग $ओ_4$ = लो ग $ओ_4$ + $उ_2$ ग
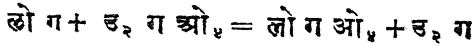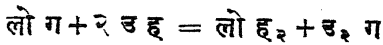
इस प्रकार उदहरिकाम्लके साथ लोह हरिद, $लोह_2$, और गन्धकाम्लके साथ लोह गन्धेत, लो ग-$ओ_4$, बनता है।

इस गैसको अधिक मात्रामें बनानेके लिये एक विशेष यन्त्र बनाया गया है। जिसे 'किप्स का यन्त्र' कहते हैं। इससे लाभ यह है कि जिस समय जितना उदजन गन्धिद चाहिये, बना लिया जा सकता है, और शेष बचा हुआ अम्ल और गन्धिद व्यर्थ नहीं होता है। इसमें काँचके तीन गोले होते हैं। नीचे के दो गोले एक नलिकादार गर्दनसे जुड़े होते हैं और तीसरे गोलेकी लम्बी नली दूसरे गोलेके मुँहमें ठीक जम कर बैठ जाती है। इस ऊपर वाले गोलेकी नली इतनी लम्बी होती है कि यह सब से नीचेके गोलेकी पेंदीके लगभग पहुँचजाती है। बीच वाले गोलेमें लोह-गन्धिदके टुकड़े रखते हैं, ऊपर वाले गोलेके मुँहमें कीप लगा कर हल्का गन्धकाम्ल नीचेके गोलेमें तब तक छोड़ते हैं, जब तक नीचेका गोला पूरा न भर जाय और कुछ गन्धकाम्ल लोह गन्धिदके ऊपर न आजाय। बीचके गोलेमें एक सूराख होता है, जिसमें एक पेंचदार नलिका लगी होती है। उदजन गन्धिद इसी पेंचके खोलनेसे बाहर निकलने लगता है और जब गैसकी आवश्यकता न हो तो पचको बन्द करदेते हैं। जो कुछ गैस अन्दर जमा हो जाती है उससे दबावके कारण गन्धिदके ऊपरका अम्ल नली द्वारा होकर ऊपरके अम्लमें पहुँच जाता है। इस प्रकार गन्धिद अम्लके प्रभावसे बच जाता है। इस प्रकार जब जितनी गैसकी आवश्यकता हो तब उतनी ही गैस बना ली जाती है और शेष गन्धिद बिना परिवर्तित हुए ही बच रहता है।

२—यह गैस पूर्णतः शुद्ध नहीं होती है क्योंकि खनिज लोहगन्धिदमें बहुत सी और अशुद्धियाँ विद्यमान रहती हैं। लोह गन्धिद में लोहके चूर्ण भी विद्यमान रहते हैं जो अम्ल द्वारा उदजन उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार उदजन गन्धिद वायव्यके साथ थोड़ा सा उदजन वायव्य भी मिला होता है जिसका अलग करना अत्यन्त कठिन है।

यदि पूर्णतः शुद्ध उदजन गन्धिद बनाना हो तो खनिज आञ्जन-गन्धिद, $आ_2 ग_3$ और उदहरिकाम्लका उपयोग करना चाहिये। यह गन्धिद पूर्णतः शुद्ध होता है। इस प्रक्रियाके लिये गन्धिदको अम्लके साथ

गरम करनेकी आवश्यकता होती है। यह प्रक्रिया इस प्रकार है:—

आ$_{२}$ ग$_{३}$ + ६ उ ह = २आ ह$_{३}$ + ३ उ$_{२}$ ग
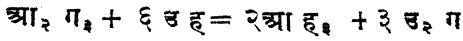
उदजन गन्धिदके गुण—यह बेरंगका वायव्य है। इसका स्वाद मीठा सा होता है। इसमें सड़े अण्डोंके समान तीक्ष्ण और कटु दुर्गन्ध होती है। यह विषैला होता है और यदि शुद्ध अवस्थामें सूँघ लिया लिया जाय तो मूर्च्छना पैदा कर देता है, बहुत देर तक सूँघने से मृत्यु तक हो सकती है। इस हेतु किप्स-यन्त्र को या तो बन्द अलमारी या खुली हवामें रखना चाहिये।

उदजन गन्धिद वायव्य को एक बेलनमें गरम पानीके ऊपर संचित करो। बेलनके मुँहके पास एक दियासलाई जला कर लाओ। गैस नीली लपकसे जलने लगेगी। इस प्रक्रियामें उदजन-गन्धिद वायुके ओषजन से संयुक्त होता है। इसका उदजन पानीमें परिणत हो जाता है, और कुछ गन्धक का गन्धक द्विओषिद बन जाता है। प्रक्रियायें इस प्रकार हैं:—

२ उ$_{२}$ ग + ओ$_{२}$ = २ उ$_{२}$ ओ + २ ग ... (१)

२ उ$_{२}$ग + ३ ओ$_{२}$ = २ उ$_{२}$ ओ + २ ग ओ$_{२}$ ... (२)
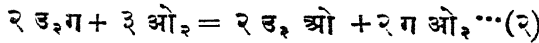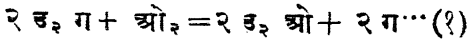
अन्य वायव्योंके समान इस वायव्य का भी द्रवीकरण हो सकता है। अकेले दबावसे या तापक्रम के कम करने से ही यह द्रव हो जाता है। अगर यह —६२° तक ठंडा किया जाय तो यह बेरंगका द्रव हो जायगा। पर तापक्रम—८५° कर देने से यह बर्फके समान ठोस हो जाताहै। केवल दबावसे द्रवीभूत करनेके लिये १७ वायु मंडल (वाता वरण) दबावकी आवश्यकता होगी।

गन्धिद

यह पहिले लिखा जा चुका है कि लोह चूर्णको गन्धकके पीले चूर्ण के साथ गरम करनेसे लोह गन्धिद बनता है। इसी प्रकार तांबेके बुरादे, और गन्धक चूर्णके मिश्रणको गरम करनेसे ताम्र गन्धिद, ताग, बनता है। यह काले रंग का होता है।

गन्धक और ओषजनके यौगिकोंमें बहुत समता है। जिस प्रकार धातु ओषजनसे संयुक्त होकर ओषिद बनाते हैं उसी प्रकार गन्धक उसे संयुक्त होकर गन्धिद बनाते हैं। नीचेकी सारिणीमें ओषिदों और गन्धिदोंके रूप की समता प्रदर्शित की जाती है।

ओषिद—उ$_{२}$ ओ, क ओ$_{२}$, स्फु$_{२}$ ओ$_{५}$ पां उ ओ, ख ओ, लो ओ।

गन्धिद—उ$_{२}$ ग, कग$_{२}$ स्फु$_{२}$ ग$_{५}$, पां ग उ, ख ग, लो ग

गन्धिदोंको उदजन गन्धिद नामक क्षीण अम्ल का लवण भी माना जा सकता है। जिस प्रकार उदहरिकाम्ल और खटिक उदौषिद मिल कर खटिक हरिद बना सकते हैं उसी प्रकार उदजन गन्धिद और खटिक उदौषिद मिलकर खटिक गन्धिद बना सकते हैं।

ख (ओ उ)$_{२}$ + २ उ ह = ख ह$_{२}$ + २ उ$_{२}$ओ

ख (ओ उ)$_{२}$ + उ$_{२}$ ग = ख ग + २ उ$_{२}$ ओ
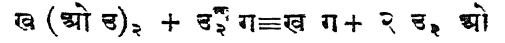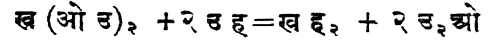
गन्धक ऋणात्मक द्विशक्तिक है, यह भिन्न भिन्न-शक्तिक तत्त्वों से यौगिक निम्न प्रकार बनाता है—

पां$_{२}$ ग, ख ग, स्फ$_{२}$ ग$_{३}$, स्फु$_{२}$ ग$_{५}$
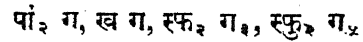
खनिजों के रूप में बहुत से गन्धिद उपलब्ध होते हैं। जैसे गेलीना, सीग; सिनेबर, पा ग; दस्तम् ब्लैंडी द ग; लोह पाइरायटीज़, लोग$_{२}$; ताम्र पाइरायटीज़, ता$_{२}$ ग; लो$_{२}$ ग$_{३}$; इत्यादि।

प्रयोगात्मक रसायनकी विश्लेषिक परीक्षाओंमें गन्धिदोंका बड़ा उपयोग होता है। धातुओं को कई समूहों में विभक्त किया गया है। पारदम्, सीसम् विशद, ताम्रम्, संदस्तम्, आञ्जनम्, संक्षीणम् और वङ्गम् धातुओं के घुलनशील लवणों के घोल में थोड़ा सा हल्का उदहरिकाम्ल डाल कर उदजन गन्धिद वायव्य प्रवाहित करनेसे केवल इन धातुओंके गन्धिदों का ही अवक्षेप प्राप्त होगा, अन्य का नहीं। ये अवक्षेप भिन्न भिन्न रंगों के होते हैं जैसा कि नीचे दिया जाता है।

पारद गन्धिद, पा ग—आरम्भ में कुछ पीला पर फिर काला हो जाता है।

सीस गन्धिद्, सी ग—काला
ताम्र गन्धिद, ता ग—श्याम भूरा
विशद गन्धिद, $वि_2$ $ग_3$—काला
संदस्त गन्धिद, सं ग—पीला
संक्षीण गन्धिद, $क्ष_2$ $ग_3$—पीला
आंजन गन्धिद, $आ_2$ $ग_3$—नारंगी रंग
वंग गन्धिद, व ग—श्याम भूरा
व $ग_2$—पीला

इस प्रकार अवक्षेप का रंग देख कर यह पता लगता है कि घोल में किस धातु का लवण है।

यदि घोलमें अमोनिया डाल कर उद्‌जन गन्धिद प्रवाहित किया जाय तो नक़लम्, कोबल्टम्, मांगनीज़ और दस्तम् के गन्धिद अवक्षेपित हो जाते हैं। ये गन्धिद, काले रंगके होते हैं; दस्तम्का गन्धिद श्वेत रंगका होता है:—

न ग, को ग, मा ग, द ग

उद्‌जन द्वि गन्धिद, $उ_2$ $ग_2$

दो भाग गन्धक पुष्पको १३ भाग पानी और ३ भाग पानीसे बुझाये गये १ भाग चूनेके साथ उबालने के पश्चात् ऊपरके स्वच्छ द्रवको निथार लेने से लाल-पीला सा द्रव प्राप्त होता है। इस द्रवमें खटिक द्विगन्धिद, ख $ग_2$ नामक एक यौगिक होता है। इस द्रव को यदि ठंडे संपृक्त उदहरिकाम्लमें धारसे छोड़ा जाय तो पीले तैलके समान एक पदार्थ पृथक् होने लगता है। इसे उदजन द्विगन्धिद कहते हैं—

ख $ग_2$ + २ उ ह = ख ह + $उ_2$ $ग_2$

इस यौगिकका संगठन बिल्कुल वही है जो उदजन-परौषिद $उ_2$ $ओ_2$ का था। यदि द्योतक पत्र litmus इसमें छोड़ा जाय तो इसका रंग उड़ जायगा इसमें कटु दुर्गन्ध होती है। गरम करने पर उदजन गन्धिद और गन्धक में विश्लेषित हो जाता है।

$उ_2$ $ग_2$ = $उ_2$ ग + ग

पृथ्वी की गुरुत्व शक्ति के प्रभाव

तुमने 'सीधा' और 'टेढ़ा' यह साधारण दो शब्द अवश्य सुने होंगे। किसी वस्तु को जब तुम सीधी खड़ीकर देते हो तो वह खड़ी रहती है और यदि वह तनिक भी टेढ़ी होती है तो गिर जाती है। झंडा या निशान टांगनेके लिये यदि हमको कोई बाँस खड़ा करना होता है तो हम उसको बिल्कुल सीधा खड़ा करनेका प्रयत्न करते हैं। राज जब मकानोंकी दीवार बनाते हैं तब भी उस दीवारको वह बिल्कुल सीधी ऊपर लेजानेकी चेष्टा करते हैं। क्या तुमने कभी विचार किया है कि यह सीधी दिशा कौनसी होती है और इसको ठीक ठीक कैसे नापा जाता है? 'सीधा' शब्दका चाहे तुम ठीक २ अर्थ न समझते हो परन्तु उसका क्या तात्पर्य्य है यह तुम बराबर अपने व्यवहारमें जानते हो। यदि कोई झंडे का बाँस तुम्हारे सामने गड़ा हो और वह टेढ़ा हो तो तुम तुरन्त देखकर बता सकोगे कि वह सीधा नहीं है और तुम यदि चाहो तो उसको सीधा करनेकी भी कोशिश कर सकोगे—

४५.सीधी ठीक वह दिशा है जिस दिशामेंकिहमारी यह पृथ्वी किसी पदार्थको अपनी गुरुत्व शक्ति द्वारा खींचती है। आओ हम इसको किसी साधारण परीक्षण द्वारा परीक्षा करके देखें। किसी मकानकी छत परसे अपने हाथमेंसे यदि तुम किसी ढेलेको नीचेको गिरा दो तो क्या होगा? तुम कहोग वह तुरन्त पृथ्वी पर नीचे आकरगिर पड़ेगा। ऐसा क्यों हुआ! पृथ्वीकी गुरुत्व शक्ति ने उसे अपनी ओरको खींच लिया। अब यदि नीचे खड़े होकर तुम ध्यान पूर्वक इस गिरते हुये ढेलेको देखो तो तुमको मालूम होगा कि ढेला ठीक उसी दिशा में गिर रहा है जिसकोकि तुम सीधी दिशा कहते हो। इससे हमको परीक्षा हो गई कि पृथ्वी प्रत्येक पदार्थको ठीक सीधी दिशामें नीचेकी ओरको खींचती है।

किसी बहुत लम्बे चौड़े कागज़पर तुम अपनी पेंसिलसे बहुत बड़ा व्यास लेकर कोई बहुत बड़ा वृत्त बनाओ। इस वृत्तकी परिधिके सहारे कोई बहुत छोटी सीधी रेखा खींचो तो तुम देखोगे कि परिधिका भाग और तुम्हारी सीधी रेखा बिल्कुल एकही होंगे। रेखाके ऊपर कोई बिन्दु 'अ' लो और उससे कई एक सीधी रेखा 'ब स' पर खींचो तो इनमें से 'ब स' पर कौन सी रेखा सीधी खड़ी दिखाई देती है? तुम कहोगे 'अ द' बिल्कुल 'ब स' के ऊपर सीधी खड़ी है। अब यदि 'अ द' रेखाको बढ़ाते हुये आगे लेते जाओ तो तुम देखोगे कि तुम्हारे वृत्तका जो केन्द्र है उससे जाकर वह मिल जावेगी यदि किसी बहुत बड़ी गोलाकार पोली गेंद का हम तनिकसा हिस्सा काटकर अलग रख कर देखें तो वह हमको सर्वथा चपटा ही दिखाई देगा। उसमें हमको तनिक भी गोलाई दृष्टि गोचर नहीं होगी। हमारी पृथ्वी भी सीधी रेखा ही दिखाई देता है इसी प्रकार एक गोला है जिसका व्यास बहुत बड़ा है और जिसकी गोलाई २५००० मील है। एक दृष्टिमें हमको इस पृथ्वीके पृष्ठका जो भाग दिखाई दे सकता है वह उसके कुल पृष्ठके मुकाबिले में बहुत ही थोड़ा है। इस दृष्टान्तसे हमारी समझ में आ जाता है कि पृथ्वी गोलाकार होते हुये भी हमको प्रत्यक्ष उसका पृष्ट क्यों चपटा दिखाई देता है।

ऊपरके उदाहरणसे अब तुमको ज्ञात होगया होगा कि हमारी पृथ्वीकी पृष्टके ऊपर भी सीधी खड़ी रहने वाली रेखायें वही होंगी जो कि आगे बढ़ाये जानेपर हमारी पृथ्वीके केन्द्रसे जाकर मिल जावेंगी। इससे हमको विदित हुआ कि जब हम यह कहते हैं कि पृथ्वीकी गुरुत्व शक्ति किसी पदार्थको सीधी दिशामें खींचती है तो उसका यही तात्पर्य होता है कि पृथ्वी प्रत्येक पदार्थको अपने केन्द्रकी तरफ खींचती है, क्योंकि वही रेखायें पृथ्वी-के पृष्टपर सीधी खड़ी होंगी जो आगे बढ़ाये जाने-पर उसके केन्द्रसे मिल जावेंगी। इससे हमको पृथ्वीकी गुरुत्व शक्तिके सम्बन्धमें एक और बात यह मालूम हुई कि वह प्रत्येक पदार्थको अपने केन्द्र-की ओर खींचती है। यदि हम किसी ढेलेको ऊपरसे गिरावें तो वह ठीक उस रेखाके मार्गपर से गिरता हुआ जावेगा जो रेखा उसके केन्द्रसे जाकर मिल जावेगी।

पृथ्वीकी गुरुत्व शक्तिका मार्ग ही यदि हमारी वह दिशा है जिसको हम सीधी खड़ी (vertical) कहते हैं तो उस दिशाकी परीक्षा करनेके लिये उपाय भी हम गुरुत्व शक्तिके आधारपर ही निकाल सकते हैं। तुमने राज लोगोंको दीवार चिनते हुये बहुधा देखा होगा कि वह किस प्रकार अपनी दिवार-के सीधापनकी परख करते जाते हैं। उनके पास एक रस्सीमें उसके एक सिरेके द्वारा बंधी हुई कोई भारी गोलाकार गेंद होती है जिसे साहुल कहते हैं। इस गेंद बंधे हुये तागेके एक सिरेको हाथसे पकड़कर राज लटका लेता है लटकते हुये तागेकी सीध खड़ी सीधी रेखा हो जाती है, इसमें तनिक सा भी अन्तर कभी नहीं पड़ता।

अब हमको यह देखना है कि उपर्युक्त प्रकार लटकते हुये तागेकी रेखा क्यों ठीक खड़ी सीधी रेखा होती है हमने पहिले यह जान लिया है कि पृथ्वी प्रत्येक पदार्थको सीधी खड़ी रेखामें ही खींचती है अथवा वह अपने केन्द्रकी ओर ही खींचती है। हमारे उपर्युक्त तागेसे बँधी गेंदको पृथ्वी सीधी खड़ी रेखामें अपनी अदृश्य गुरुत्व शक्तिके द्वारा खींच रही है, और वह गेंद जो लटक रही है वह इस गुरुत्व शक्तिके ही कारण ऐसा कर रही है. इसलिये वह उसी दिशामें लटकती दिखाई देगी जिसमें कि पृथ्वी उसको खींच रही है, यही कारण है कि तागेकी लाइन सीधी खड़ी रेखा होती है। यदि इस लटकती हुई गेंदके तागेको तुम बीचमेंसे एकदम काट दो और फिर ध्यान पूर्वक गेंदके नीचे गिरनेकी दिशाको देखो तो तुमको मालूम होगा कि गेंद ठीक उसी रेखामें नीचेको गिरती है जिस रेखामें कि तागा लटका हुआ था। इससे यह परिचित हो गया कि तागा

के लटकनेकी रेखा पृथ्वीकी गुरुत्व शक्तिकी रेखा ही होगी जो रेखा कि 'सीधी खड़ी रेखा' है। तुमको अपने नित्यप्रतिके व्यवहारमें बहुधा सीधी खड़ी दिशाकी परख करनी पड़ती है और वह, अब तुमको ज्ञात हुआ, इस सीधे साधे उपर्युक्त यन्त्रसे अच्छे प्रकार मालूम कर सकते हो, जैसे कि एक राज अपनी दिवारकी चिनाई को परख करता है।

गुरुता केन्द्र (Centre of Gravity)

जब तुम किसी पदार्थको पकड़कर खींचते हो तो तुमको अपने अनुभव ज्ञानसे विदित है कि वह पदार्थ अवश्यमेव उसी दिशामें चला जावेगा जिसमें कि तुम्हारा बल उसको खींचनेकी कोशिश कर रहा है, यदि तुम उसपर उस पदार्थके उपयुक्त बल लगा सको। इससे तुमको ज्ञात हुआ कि जब तुम किसी पदार्थको खींचनेके लिये बल लगाते हो तो तुम्हारे उस बलके काम करनेकी कोई दिशा होती है और तुमको यह भी मालूम है कि ठीक उस बलकी दिशामें ही पदार्थ खींचेगा। ठीक यही बात पृथ्वीके गुरुता बलके लिये है। उसके भी काम करनेकी दिशा होती है और ठीक इसी दिशामें पदार्थ इसके आकर्षणके कारण गति करते हैं, और वह दिशा 'सीधी खड़ी रेखा' का मार्ग है।

बल जब किसी पदार्थपर लगाया जाता है तो उसके काम करनेकी एक दिशा होती है, दूसरे यह भी होता है कि बल पदार्थके किस स्थानपर लगाया गया है। तुम किसी अपने साथी विद्यार्थीको यदि पकड़ कर खींचो तो तुमको अवश्य उस विद्यार्थीके किसी न किसी भाग विशेषको पकड़ना होगा अथवा उसी भागपर अपना बल लगाना होगा। बलके काम करनेके सम्बन्धमें अब एक यह बात और हुई कि किसी पदार्थपर जब बल लगाया जाता है तो एक ही समयमें वह बल पदार्थके प्रत्येक भागपर नहीं लगाया जाता किन्तु उस पदार्थके एक बिन्दु विशेष पर बल का प्रयोग किया जाता है और उस बिन्दु विशेषपर ही लगानेसे वह सब का सब पदार्थ उस बलके वशीभूत हो जाता है। उदाहरण रूपमें यदि तुम किसी विद्यार्थीको धक्का देना या खींचना चाहो तो यह आवश्यक नहीं कि विद्यार्थीके प्रत्येक भागपर ही तुमको बल लगाना पड़े, बल्कि तुम उस विद्यार्थीके किसी बिन्दु पर बल लगा कर अपना काम कर सकते हो। तुम उसकी एक अंगुलीको ही पकड़ कर खींच सकते हो। और उसीसे वह विद्यार्थी खिंच आवेगा। इससे यह ज्ञात हुआ कि बल जब किसी पदार्थपर काम करता है तो उसका प्रयोग उस पदार्थके एक बिन्दु विशेषपर ही किया जाता है।

जिस प्रकार तुम्हारे बलके प्रयोगका कोई बिन्दु विशेष होता है ठीक उसी प्रकार पृथ्वीकी गुरुताके बलके प्रयोगका भी कोई बिन्दु विशेष होता है। प्रत्येक पदार्थपर इस प्रकृतिमें यह गुरुताका बल काम कर रहा है। इस लिये प्रत्येक पदार्थमें एक बिन्दु विशेष होता है जिसपर कि पृथ्वी अपने गुरुता-बलको लगती है। किसी पदार्थके इसी बिन्दुको हम 'गुरुता केन्द्र' कहते हैं। हम पहिले देख चुके हैं कि पृथ्वीकी इस गुरुता शक्तिके प्रत्येक पदार्थपर लगे रहनेका एक प्रमाण हमको यह दिखाई देता है कि प्रत्येक पदार्थमें बोझ होता है। अब हमको यह ज्ञात हुआ कि पृथ्वीका यह गुरुत्व बल प्रत्येक पदार्थके एक विशेष बिन्दु पर ही लगता है; इससे हम यह भी कह सकते हैं कि किसी पदार्थका गुरुता केन्द्र उस पदार्थका वह बिन्दु है जिसपर कि उस पदार्थका समस्त बोझ केन्द्रित रहता है। यह गुरुता केन्द्रकी दूसरी परिभाषा हुई।

शीशा और शीशेकी चीजें बनाना।

[ले० डा० रामचन्द्र भार्गव एम० बी., बी.एस.]

जो ओषिद कि शीशा बनानेमें साधारतः काममें लाये जाते हैं यह है:आम्लिक-शैलओषिद (Silica) टंकिक अम्ल (boricacid) क्षारिक: सैन्धक ओषिद (सै$_2$ ओ, Na_2O) पांशुज ओषिद पा$_2$ ओ, K_2) भारं ओषिद (SaO) चूना, मगनीस ओषिद (MgO) मानगनीज (Mn) के ओषिद, सीसं ओषिद स्फट ओसिद Alumina और लोहके ओषिद।

इनके अतिरिक्त संक्षीर्ण (Arsenia) शोण (Lithium) वंग और जिरकुन ओषिद प्रवाहिन् (Flourine) शशिम् (Selenium) खास खास मतलब से मिलाए जाते हैं। रंगीन शीशा बनानेके लिए नकल (cnickel) रागं (Chromium) ताम्र,पिनाक (vranivm) के ओषिद और तत्वों में कर्बन, गन्धक, रजत; और स्व मिलाये जाते हैं।

संसार भरमें शीशेका लगभग ९९ प्रतिशत शैल ओषिद और एक क्षार (पांशुज अथवा सैन्धव ओषिद) और सोसं ओषिद अथवा चूनाके मेलसे बनाया जाताहै। ९०% शीशा शैल ओषिद, सैन्धक ओषिद और चूनेके ही मेलसे बनाया जाता है। कभी कभी स्फट ओषिद शीशे की मजबूती बढ़ानेके विचारसे मिलादिया जाता है। बोहीमीयन शीशा शैल ओषिद पांशुज ओषिद और चूना मिलाकर बनाया जाता है। गिलास प्याले बिजली की बत्ती इत्यादिक के लिये चकमक शीशा शैल ओषिद, सीसं ओषिद और सैन्धक ओषिद और पाँशुज ओषिदसे बनाया जाता है। कभी कभी मगनीस ओषिद और भारं ओषिद चूनेकी जगह इस्तेमाल किया जाता है। सीस ओषिदकी जगह भारं ओषिद कभी कभी प्रयोग किया जाता है।

शीशे जो कि विशेष रससे खराब न हो या शीशे जो तापक्रम के अकस्मात् परिवर्तनको सह सके इत्यादि ऐसे विशेष गुणों के शीशे बनाने के लिये मगनीस ओषिद दस्ता ओषिद स्फर-ओषिद मिला दिये जाते हैं और शैल ओषिदके भाग के स्थानमें टंकिक अम्ल मिला दिया जाता है। शैल ओषिदके बिना बनाये हुए शीशे साधारण इस्तेमालके लिये बिल्कुल अनुपयुक्त होते हैं।

१ शैल ओषिद शीशेमें अधिकतर रेतके रूपमें ही मिलाया जाता है। शीशा बनानेके लिये उपयुक्त रेत बहुत जगह मिलती है। शीशा बनानेके काममें लाई जाने वाली रेतमें लौह नहीं रहना चाहिये और रेतके दाने एक समान होने चाहिये बोतलके शीशेके लिये दानों की एक समानता अधिक आवश्यक है। और लौहके मिश्रणसे कुछ खराबी नहीं होती। परन्तु रंग हीन सफेद शीशा बनानेके लिये रेतके दानोंकी समानता और रासायनिक शुद्धता दोनों आवश्यक हैं। रेतके ९०% दाने ०.५ - ०.१ सहस्रांश मीटरके व्यासके होने चाहिये बहुतसी रेतोंके ९९% दाने तक इसी प्रकारके होते हैं।

इससेभी अधिक समानताके दाने हों तो और भी अच्छा है। बोतल बनानेके लिये अधिक स्फर ओषिदकी रेत इस्तेमालकी जाती है।

२ क्षार सैन्धक ओषिद ले ब्लोंक या आमोनिया सोडा विधिसे बनाये हुए सैन्धक कर्बनेतसे या लेब्लांक विधिसे बनाये हुए सैन्धक गन्धेतसे निकाला जाता जाता है। अभी कुछ दिनों ही पहिले सैन्धक गन्धेतके सस्ते होनेसे सैन्धक ओषिद बनानेमें अधिकतर इसीका प्रयोग होता था परन्तु इसके प्रयोगमें कुछ हानि भी हैं। व्यवहारिक सैन्धक गन्धेतमें कुछ न कुछ हरिद और कुछ मुक्त गन्धिकअम्ल भी मिला ही रहता है और शीशा बनाते समय कुछ गन्धेतोंका निका-

ल देना बड़ा कठिन होता है। हरिद् और गन्धेतों के रहनेसे शीशा कुछ दूधिया हो जाता है सैन्धक गन्धेतके विश्लेषके लिये बहुत ऊँचे ताप क्रम की आवश्यकता पड़ती है। घानमें कर्बन मिलानेसे उसके विश्लेषमें कुछ सहायता मिलती है। परन्तु कर्बन मिलानेसे फिर रंग नाशकोंके प्रभावमें कठिनता पड़ती है। एक और हानि गन्धेतके इस्तेमालमें यह है कि आधे गले हुए घानके ऊपर जमा हुए क्षारके कारण जहाँ जहाँ भट्टी शीशेकी पृष्ठ-रेखासे मिलती है वहाँ भीत खाली जाती है। अब सैन्धक कर्बनेतसे गन्धेतके सस्ते हो जानेके कारण और गन्धेतमें ऊपर कही हानियाँ होनेके कारण अब अधिकतर सैन्धक कर्बनेत ही इस्तेमाल होता है। परन्तु शैल ओषिद और चूनेके साथ मिलाने से घानमें ऊपर तलछट जम जाना रोकना कठिन होता है। इसलिये अधिकतर यह किया जाता है कि तलछट बनना रोकनेके लिये कमसे कम आवश्यक गन्धेतकी मात्रा भी मिला देते हैं। जैव द्रव्य और लौहस लौहको ओषिदित करनेके लिये कुछ सैन्धक नोषेत भी घानमें मिला देते हैं। सीसं ओषिद मिले हुए घानोंमें सैन्धक नोषेत छोड़ने का एक लाभ यह है कि सीसं ओषिद अनोषिदित बहुत शीघ्रतासे होता है और सैन्धक नोषेत इसको रोके रहता है।

पांशुज कर्बनेत राखके सतके रूपमे मिलाया जाता है यह बाजारमें पर्याप्त शुद्धताकी अवस्थामें मिल सकता है। पांशुज कर्बनेत बड़ाजल आकर्षक होता है इसलिये एक समानका शीशा बनाना हो तो पांशुज कार्बनेतकी जाँच करते रहना चाहिये। थोड़ा थोड़ा पांशुज नोषेत (शोरा) भी मिलाया जाता है।

क्षेत्र स्फटिका felspar का प्रयोग उस समय किया जाता है जब कि स्फट ओषिदकी उपस्थिति से कुछ हर्ज नहीं मालूम होता। सस्ती बोतलोंके लिये कभी कभी ग्रैनाइट और बैसाल्ट भी प्रयोग होते हैं।

चूना पिसे हुए खटिक, चूर्ण स्फटिक Lime-spar या चूर्ण शिला Lime stnoe के रूपमें मिलाया जाता है यदि मगनीस मिला शीशा बनाना हो तो डोलमटि भी चूनेका एक अच्छा स्रोत है क्योंकि इसमें मगनीस और चूना दोनों होते हैं। यदि बहुत शुद्धताकी आवश्यकता है तो precipelated तलछट करण द्वारा बनाया खटिक का प्रयोग किया जा सकता है।

भार ओषिदका सबसे सस्ता स्रोत विथेराईट Witherite भक ओ $_2$ है। दवाईकी शीशी इत्यादि कई प्रकारके शीशोंके बनानेके लिये यह पर्याप्त शुद्धतामें मिल सकता है। ताल बनानेके लिये तलछट करण द्वारा बनाया भार कर्बनेत या नोषेत प्रयोग किया जाता है।

सीसंओषिद्—यह सिन्दूरके रूपमें मिलाया जाता है। सिंदूर सी ओ और सी$_2$ ओ$_3$ का मिश्रण होता है, इसका सूत्र लगभग सी$_3$ ओ$_4$ होता है सिंदूरकी बनावट कुछ भिन्न भिन्न होती है और कभी कभी इसमें सीसं गन्धेत मिला होता है। सिंदूरमें नमी भी भिन्न भिन्न मात्रामें उपस्थित रहती है। जहाँ तक हो सके सी$_3$ ओ$_4$ की मात्रा अधिक होना अच्छा है।

सी ओ भी कभी कभी घानमें मिला दिया जाता है। किन्तु ओषनकी मात्रा इसमें कम होनेसे ऐसा करना अच्छा नहीं है।

मगनीस ओषिदः—मगनीस ओषिदके स्रोत डोलोमीट और मगनीसी$_2$ हैं यह दोनों खनिज पर्याप्त शुद्धतामें मिल सकते हैं और बहुत प्रयोग किये जाते हैं। खास खास मतलब के लिये मगनीस ओषिद भी प्रयोग किया जाता है।

कीमती शीशोंके लिये स्फट ओसिदके स्रोत बहुत से हैं, जैसे कि चीनी मिट्टी, क्षेत्रस्फटिक (फेल्स्पार) इत्यादि। किन्तु सस्ती बोतलोंके शीशेके लिये क्षेत्रस्फटिक नहीं इस्तेमाल किया जासकता। यह बड़े दुःखका अवसर है क्योंकि स्फट ओसिद से शीशा बड़ा मजबूत हो जाता है।

टंकिक ओषिद-यह तालके शीशोंमें मिलाया जाता है और टंकिक अम्ल या बिड (सुहागे) के रूप में प्रयोग होता है।

और और कई विविध उपादानः—उबल शीशा बनाने के लिये प्लव स्फटिक (फ्लोरस्पार) और करायालाइट (स्र३ ३सैल्ल ३३ सैल्ल) इस्तेमाल होते हैं। खटिक स्फुरेत भी इस काम के लिये प्रयोग किया जाता है। और और पदार्थ खास खास थोड़ी मात्रामें इस्तेमाल किये जाने वाले शीशों के बनानेमें प्रयोग होते हैं। क्योंकि इनमें कीमत का कोई ख्याल नहीं होता।

संक्षीण—संखिया (मनः शिला) ही शीशेके शिल्प में संक्षीण का प्रधान स्रोत है। संक्षीण अनोषिदितकारी ओषिदितकारी दोनों प्रकार के घानोंमें मिलाया जाता है। संक्षीण मिलाने से वायु के बुद बुद शीशे में से शीघ्रतासे निकलते हैं और रंग साफ करने में भी आसानी होती है। ओषिदितकारी घानोंमें संखिया नीचे तापक्रमों पर $स_२ ओ_५$ बन जाता है और ऊँचे तापक्रमों पर इस $स_२ ओ_५$ का विश्लेषण होकर $स_२ ओ_३$ और ओषजन बनजाता है। यह ओषजन अपने साथ वायु के बुद बुदोंको भी निकालता ले जाता है। यह ओषजन और लोह को भी ओषिदित कर देता है इसी कारण शीशा फिर सफलता पूर्वक रंगहीन बनाया जा सकता है। अनोषिदित कारी घानोंमें प्रायः शीशं रंगनाशनके लिये प्रयोग किया जाता है। संखिये का कुछ भाग संक्षीणं बन जाता है और यह गैस बन कर वायुके बुद बुदे अपने साथ निकाल ले जाता है। यह संक्षीणं गैस शशिको ओषिदित होने से भी बचाता है।

नोषेत मिले हुए घानोंके विश्लेषणसे ज्ञात होता है कि संक्षीणंका कोई १० २० |० उड़ जाता है और बचे हुए संक्षीणं का ९० | भाग $स_२ ओ_३$ की दशामें होता है। बिना नोषेत मिले हुए शीशों में से कोई ३०°|० संक्षीणं उड़ जाता है और बचे हुएका केवल ६०°| भाग $स_२ ओ_५$ की दशामें होता है।

शीशा बनाना

घानकी तैयारी—गलानेके लिये उपयुक्त परिमाणमें मिलाये हुए उपादानों को घान कहते हैं। गलनकी सफलता और शीशेकी श्रेष्ठता घानकी तैयारीमें की हुई सावधानीपर ही निर्भर है। उपादान अच्छी प्रकार पिसे होने चाहिये। दानोंकी समानता दानोंकी बारीकीसे कम आवश्यक नहीं है। रेत और कभी और भी उपादान सुखा लिये जाते हैं। किसी किसी कारखाने रेतको पहिले भून लेते हैं। भिन्न भिन्न उपादान तोल कर एक मिलाने की मशीन (यन्त्र) में दे देते हैं। यह मशीन छने और मिले हुए उपादानोंको एक बरतनमें डालती जाती है। कुछ उन्नति शील कारखानोंमें तोलना, मिलाना इत्यादि सब कुछ अपने आप मशीनोंसे हो जाता है। बहुत कारखानोंमें उपादानोंका अनुमान उनके घनफलको देख कर ही कर लेते हैं और फिर हाथसे उन्हें मिला लेते हैं।

भट्टी और गलाना

गलानेके बिलकुल दो भिन्न विधियें हैं। एकमें शीशा पात्रमें रखा जाता है और दूसरीमें एक तालाबमें। १. पात्र भट्टी—शीशा गलानेके पात्र दो प्रकारके होते हैं एक खुले और एक बन्द। खुला ५ फीट व्यास का ५ फीट ऊँचा एक प्यालेनुमा बर्तन होता है।

बन्द पात्र भी ऐसे ही होते हैं। केवल अन्तर इतना ही होता है कि उनका मुँहभी ढका होता है और इस ढक्कन में एक छेद होता है।

इसी छेदमें शीशेके उपादान डाले जाते हैं और बना बनाया शीशा निकाला जाता है। यह ढक्कन शीशेको भट्टीकी गैसों से खराब होने से बचाता है। एक भट्टीमें २—२० तक कितने ही बर्तन रखे जा सकते हैं। इन भट्टियोंमें अधिकतर Producer gas प्रोड्यूसर गैस जलाई जाती है किन्तु

कोयला जलाने वाली भट्टियें भी कहीं कहीं पर प्रयोगकी जाती हैं।

इन बरतनोंके बनानेमें बड़ी सावधानी करनी चाहिये। यह बड़ी सावधानीसे जाँची हुई अग्निमृत्तिका (आत्शी मट्टी) से बनाई जाती है। कच्ची मट्टी में कुछ पक्की मट्टी भी मिला दी जाती है इस का अभिप्राय यह है कि गरम होनेपर बहुत ज्यादा सिकुड़न न हो। इस मट्टीके मिश्रणमें पानी मिला कर कुछ महीने तक पकनेके लिये रख देते हैं। फिर हाथसे इसका बर्तन बनाया जाता है। पहिले पेंदे का चक्कर बना लिया जाता है फिर दीवारें खड़ी की जाती है। ६ इञ्चसे अधिक दीवार एक साथ नहीं बनाई जा सकती क्योंकि गीली मट्टीमें बहुत बोझ सहनेकी सामर्थ्य नहीं होती। इस लिये बर्तन एक दो दिन ठहर ठहर कर पूर्ण किया जाता है। कहीं कहीं कच्चे बरतनको सहारा देनेके लिये लौह या लकड़ी के ढाँचे इस्तेमाल किये जाते हैं। खुले बरतन कभी कभीं ढालके भी बना लिये जाते हैं। जब बर्तन पूरा हो जाता है तो उसे बरतनोंके कमरेमें सूखनेके लिये छोड़ देते हैं। कमरेका तापक्रम देखते रहते हैं। तापक्रम आवश्यकतानुसार घटाना बढ़ाना पड़ता है। बरतनोंके सूखनेमें कई महीने लगते हैं। जब बरतन सूख जाते हैं तो जब उनकी आवश्यकता होती है तब निकाल कर भट्टे में पका लेते हैं। भट्टेमें पकाते समय बड़ी सावधानीसे करनी चाहिये। तापक्रम बढ़नेकी गतिको विशेषतः आरम्भमें ठीक रखना चाहिये। तापक्रम बढ़ानेकी सबसे अच्छी गति मिट्टी मिट्टीके लिये अलग होती है। भट्टेका तापक्रम कारखानेमें अलग अलग होता है किन्तु अधिकतर भट्टेका तापक्रम ६००° श से अधिक नहीं होता है। जब भट्टेमें अधिकसे अधिक तापक्रम पहुँच जाता है तो बरतनको शीघ्रता शीशे बनानेकी भट्टीमें ले जाकर रख देते हैं। इसके लिये शीशे बनानेकी भट्टीको दीवारमेंसे कुछ ईंट हटाकर दर्वाज़ा बना लेते हैं जब बरतन भट्टीमें पहुँच जाता है तो दरवाजेको बन्द कर देते हैं। असिलमें तो बरतनको शीशेके गलनेके तापक्रमसे अधिक तम कर लेना चाहिये। इसीसे बर्तनका जीवन बढ़ता है। परन्तु अधिकतर बहुतसे कारखानोंमें ऐसा नहीं किया जाता है। जहाँ पात्र शीशेके गलनेमें तापक्रम पर पहुँचा कि उसमें शीशा डाल देते हैं। इस कारण इन पात्रोंकी दीवारें व्यर्थ खाई जाने लगती हैं ।

उपादानोंमें उन्हीं उपादानोंसे बना हुआ पहिलेका कुछ शीशा (खेरीज) मिला देते हैं। इससे गलनमें बड़ी सहायता मिलती है। जब पात्र भरने के लिये तैयार हो जाता है तो उसमें कुछ पिछली खेरीज डालकर उसके अन्दरके पृष्ठपर सब जगह लगा देते हैं। इस प्रकार सब जगह शीशा लगा देनेसे पात्रकी कच्चे उपादानोंके द्वारोंसे रक्षा होती है। फिर पात्रमें खेरीज और कच्चे उपादान डालते हैं। उपादानोंके गलनेसे उनके घनफलमें बहुत कमी हो जाती है इसलिये उसमें उपादानोंके कई भरत डालते पड़ते हैं। उपादानोंके पात्रकी भित्तीसे छूनेसे ठंडक पहुँच कर पात्रोंको नुकसान पहुँचनेका डर रहता है। इसके लिये सावधानी करनी पड़ती है। इसलिये उपादानोंके ढेर पात्रमें शकु अर्थात् मुट्ट-के आकारमें लगाते जाते हैं।

ठंडे उपादानोंके पात्रके भित्तीसे स्पर्शमें आनेके कारण पात्रमें तड़कन पड़ जाती है। यह भरत दर भरत बढ़ती जाती है और इनके कारण पात्र टूट तक जाता है।

जिस तरतीबमें कि रसायनिक परिवर्तन होता है उस तरतीबमें परिवर्तन नीचे दिये जाते हैं। पहिले पहिल जो नमीया पानी रहता है वह निकल जाता है।

पांशुज और सैन्धव-नोषतका गलन होता है ३२०° पर
मगनीस कोयलेतका विश्लेषण ३५०° पर,
सिंदूर का विश्लेष होकर लिथार्ज सीसं ओषिद
बनना ५००° पर
टंक ओषिद का गलन ५७७° पर

भार कर्बनेत का गलन	७६५°
पांशुज कर्बनेत का विश्लेष	८२५°
खटिक ,, ,, ,,	८२५°
सैन्धक ,, ,, गलन	८४६°
का गलन	८८७°
पांशुज औषिदका गलन	८८०°

इसलिये सब सम्भव रसायनिक और भौतिक परिवर्तन बर्तनके भिन्न-भिन्न भागोंमें एक साथ होते रहते हैं और वाष्प कर्बन द्विओषिद इत्यादि के बुदबुदे उत्पन्न हो जाते हैं। शीशेके कच्चे उपादान अन्तमें सब घुल जाते हैं और बुदबुदे सब पृष्ठ की ओर उठने लगते हैं। बुदबुदोंके ऊपर उठनेकी तीव्रता उनके व्यासके वर्गपर और शीशेके गाढ़ेपन पर निर्भर होती है। कच्चे मालकी सावधानीसे जांच करनेसे और गलनका तापक्रम उपयुक्त करनेसे ऐसा प्रबन्ध करना सम्भव है कि गलने पर केवल बड़े बड़े बुदबुद ही अवशेष रहें और यह भी थोड़ी देर बाद ऊपर उठकर फूट जाँय। यदि किसी कारणसे छोटे छोटे बुदबुद अवशेष रह जांये तो उनको निकालनेके लिये शीशेमें बड़े बुदबुद मिलाने पड़ते हैं। जिससे कि छोटे छोटे बुदबुद भी इनके साथ निकल आयें। इस अभिप्राय से एक लोहेकी छड़के अन्त एक आलू लगाकर पात्रके पैंदे तक डुबोते हैं। इससे जो वाष्प और जैव द्रव्य जोर से निकलते हैं तो उनके साथ छोटे छोटे बुदबुदे भी अच्छी तरह निकल आते हैं। कभी कभी नोषेत और संखिया भी इसी मतलब से मिला दिये जाते हैं।

बुदबुदोंके निकलनेके लिए भट्टीका तापक्रम भी बढ़ा दिया जाता है। शीशेके गाढ़ेपन में कमी आनेके कारण पात्र अधिक खाया जाने लगता है। पात्रकी भीतके पासका शीशा पात्रके द्रव्योंको घुला लेता है, इस लिए यहाँका शीशा पात्रके और भागोंके शीशेसे अधिक घनत्वका हो जाता है। पात्रकी भीतके पास शीशेका घनत्व अधिक हो जानेसे धारायें उत्पन्न हो जाती हैं। अधिक घनत्वका शीशा नीचेकी ओर गिरता है और नीचे का शीशा ऊपर की ओर उठता है और जैसे जैसे यह शीशा ऊपर आता है पात्रका कुछ द्रव्य घुलाता जाता है। ऊपर आते आते उसमें पात्रका द्रव्य बहुत कुछ घुल चुकता है इस लिये इसमें और अधिक घुलानेकी शक्ति नहीं रहती। इसलिये पात्रका ऊपरी भाग बहुत कम खराब होता है और पैंदे बहुत अधिक। पात्रके खाये जानेका और एक कारण तापक्रमका वितरण है। कहीं एक जगह अधिक ताप हो जानेसे वाहन धारायें उत्पन्न हो जाती हैं। पात्रके घोलका वेग इन प्रवाहन धाराओं द्वारा पात्रकी समीपतासे शीशेके हटने के वेगपर, और नये शीशेके पात्रको समीपता में आनेके वेगपर निर्भर है। यदि वे प्रवाहन धारायें न चलें तो पात्र वर्षों चल सकता है और परन्तु बात तो यह है कि प्रवाहन धारायें बनती हैं और इस कारण पात्र केवल महीनों चलते हैं।

सिलीमनीट (Sillimanite स्फ$_2$ ओ$_3$ शै ओ$_2$) के रवे बन जानेसे घोलके वेगमें कुछ वृद्धि ही होती है। बुदबुद निकालते समय एक होशियार मनुष्य एक लोहेकी छड़से पात्रमें शीशा निकाल २ कर देखता जाता है। उसे यह मालूम हो जाता है कि शीशा ठीक होगया कि नहीं। जब शीशा ठीक हो जाता है अर्थात उसमें कोई बुदबुद या कच्चा माल नहीं बच रह जाता तो तापक्रम कम करने लगते है। तापक्रम इतना ही कम करते हैं कि शीशा निकालनेका लायक गाढ़ा हो जाये। इस समय भी शीशा एक समान नहीं होता है। नीचेका भाग ऊपरके भागसे अधिक घनत्वका होता है। भीत की पासके शीशेमें शैल ओषिद और स्फट ओषिद अधिक होते हैं किन्तु तालके बनानेके अतिरिक्त शीशा और सब मतलबोंके लिये ठीक समझा जाता है।

तालाव भट्टी—सस्ता शीशा बनानेके लिये जहाँ एक साथ बहुतसा शीशा बनाना होता है अधिकतर इसी प्रकारकी भट्टी इस्तेमाल होती है।

वह ईंटोंकी बनी होती है और आवश्यकतानुसार ५० मनसे २०,००० मन शीशे तककी ग्रहण सामर्थ्यके आकारकी बनाई जा सकती है। लम्बाईसे चौड़ाईका सम्बन्ध ६:३ होता है। औसद आकार यह होते हैं, चौड़ाई १२-१८ फीट लम्बाई २४—३६ फीट और गहराई ३०—४४ फीट और गहराई ३०—४४ फीट पैदा और दीवारें आतिशी ईंटकी बनी होती है और ऊपरका भाग शैलओषिदकी ईंटका। गैस और वायु तालाबकी बगलमें छेदोंसे प्रवेश करते हैं और शीशेके पृष्ठ पर जाके जलते हैं।

तालाबके आकारका और तापक्रमके फैलाव का ऐसा प्रबन्ध किया जाता है कि एक ओर कच्चा माल डाला जाता है और जब तक वह दूसरी ओर जाके पहुँचता है वह कामके लायक बिलकुल तैयार हो जाता है।

यह विधि पात्रोंकी विधिसे सस्ती पड़ती है क्योंकि इसमें सीधी शीशापर ही आग जलती रहती है। इस विधिसे निरन्तर रात दिन काम किया जा सकता है। आतिशी ईंटे बहुत दिनोंतक चलती है क्योंकि भट्टी की भीतें भरे हुए शीशे से ठंडी रहती है। पात्र विधिमें पात्र शीशेसे भी गरम रहते हैं क्योंकि गरमी उनकी दीवारमेंसे पहुंचाई जाती हैं।

अधिकतर भट्टीकी दीवारे पानीसे ठंडी रखी जाती है। इस कारण दीवारोंके नजदीकका शीशा गाढ़ा हो जाता है और दीवारोंकी हानिसे रक्षा होती रहती है।

इन भट्टियों में गरमी ऊपर से पहुँचाई जाने के कारण केई वाहन धाराएं नहीं उठती और इस कारण शीशेके पृष्ठके पास की ईंटे ही पहले खराब होती हैं। इस लिये पैंदेकी ईंटे बहुत वर्षों तके तक चल सकती हैं किन्तु दीवार की ईंटे लगभग एक साल तक चलती है। सफेद शीशा बनानेको भट्टोमें दीवार शीशेके पृष्ठके १८ इञ्चसे २ फीट नीचे तक खराब हो जाता है। हरा या अम्बरी शीशा बनानेमें शीशेके पृष्ठसे ८ या १० इञ्च से अधिक नीचेकी दीवार बहुत खराब नहीं होती है।

पात्र और तालाब दोनोंमें शीशे पर कुछ पपडी आ जाती है। पात्रोंमें शीशा निकालनेके पहिले यह पपड़ी हटा दी जाती है। तालाब भट्टीमें बीचमें एकपुल बना देते हैं। इसपुलसे उसके ऐसे दो हिस्से हो जाते हैं कि एकमें शीशा गलाया जाता है, दूसरे भागमें आने पर निकाल लिया जाता है। यह पुल जो कि शीशेकी सतहसे कुछही ऊपर निकला रहता है पपड़ी और ऊपरके शीशेको रोक लेता है और उसके नीचेसे शीशेको निकाल-नेके भागमें आने देता है।

त्रुटियें जो रह सकती हैं।

(१) पत्थर बन जाना—यही सबसे अधिक रहजाने वाली त्रुटि है। इस रोगका एक कारण शीशे में ऐसे टुकड़ोंकी उपस्थिति है जो कि गलते नहीं हैं। ऐसे टुकड़े भट्टीके ऊपरी भागसे टूटकर गिर सकते हैं, या भट्टीके दीवारोंसे उत्पन्न हो सकते हैं। भट्टीके एक हिस्सेके शीशेके बहुत अधिक ठंडे हो जानेसे भी शीशेमें वे बनना आरम्भ हो जाते हैं। यह भी पत्थर बननेका एक कारण हो सकता है, क्योंकि बननेके बाद उनका घुलन बहुत कठिन होता है। घानमें बहुत चूनेके पत्थर और कोई बड़े टुकड़ोंका शामिल किया जाना भी बहुत साधारण कारण है।

(२) धारी—दूसरी साधारणबीमारी शीशेमें धारियां पड़ जाना होती है। इनधारियोंका कारण उन जगहोंमें अधिक प्रकाश वक्री भवन·········Refractive Index के शीशेकी उपस्थिति होती है असलमें यह धारियाँ तालके शीशेके अतिरिक्त सब शीशोंमें कुछ न कुछ उपस्थित रहती है किन्तु केवल देखने भरसे नहीं मालुम हो सकती। यहरोग घानको अच्छी तरहसे न मिलानेसे या शीशेमें पात्र अथवा तालाबके दीवारसे मिलावट हो जानेसे

होता है। पत्थरोंकी उपस्थितिसे यह रोग अवश्य होता है। यदि भट्टी अकस्मात् गलनके समय ठंडी हो जाय तो शीशेके गाढ़े हो जानेसे उपादान ठीक तरह नहीं मिल सकते हैं और इस कारण धारी रोग हो जाता है।

बुदबुद—इस बीमारीका कारण या तो तापक्रमको ठीक न रखना या भट्टीकी सामर्थ्यसे अधिक शीशा बनानेकी कोशिशसे होती है।

कभी कभी शीशेसे सब बुदबुद एकबार निकल जानेके बाद भी फिर बुदबुद पैदा हो जाते हैं यह उस अंबरी शीशेमें अकसर हो जाता है जिसमें कि कर्बनका रंग दिया जाता है। कभी कभी तापक्रमके बढ़ा देनेसे या शीशेको चलानेसे भी गैस पैदा हो जाती है। किसी किसी शीशेकी गैस ऊँचे तापक्रमोंपर अधिक घुलन-शील मालूम पड़ती है, इसलिये ठंडा करते समय बुदबुद पड़ जाते हैं। कई दफ़े गरम करके ठंडा करनेसे गैसकी मात्रा बहुत कम की जा सकती है। साधारण शीशोंमें बहुत काफ़ी गैस घोलनेकी शक्ति होती है। उदाहरणके लिये ऐलन और ज़ीस ने ६·५ ग्राम शीशेमेंसे ६·५. घ·श·मी· गैस निकाला। उसमे ओषजन ६४·२ कर्बन द्विओषिद २३·२०% कर्बन एक ओषिद ३·५% उदजन ३·१% वोषजन ४·१% थे।

ऐसी ऐसी उपमायें दी जा सकती हैं कि जिनमें शीशेके घनफलके कई गुने घनफलके बराबर गैस निकली। साधारतः बनाये हुए शीशेमें सबसे अधिक मात्रा जल वाष्पकी होती है। यह शीशेको कम किये हुए दबावमें ३००°—४००° श पर गरम करनेसे काफ़ी मात्रामें निकल आती है।

"शून्य बुदबुद" शीशेके पृष्ठको शीघ्रतासे ठंडा करने से बनते हैं। ऊपर ऊपरके शीशेमें पपड़ी पड़ जाती है लेकिन अन्दरका शीशा गरमका गरम रहता है। जब फिर अन्दरका शीशा सुकड़ता है तो छोटे छोटे बुदबुद भी बहुत बड़े हो जाते हैं।

रंग—रंगहीन शीशा बनानेमें कभी कभी बड़ी कठिनाइयां पड़ती हैं। कच्चे मालमें लौह थोड़ा बहुत सदा ही उपस्थित रहता है। जब कभी लौहकी मात्रा कुछ भी अधिक हो जाती है तो शीशेका रंग लौहेके ओषिदत्वकी अवस्था और शीशेके उपादानोंके अनुसार शीशेका रंग हरा या नीलाई मायल होने लगता है। रंगकी बीमारीका सबसे अच्छा पूर्वोपाय लौहरहित कच्चा माल लेना ही है। किन्तु ये मामूली मतलबके लिये क़ीमती पड़ते हैं। इसलिये लोहेके रंगको छिपानेके लिये नीलाईमायल गुलाबी रंग उत्पन्न करनेवाला कोई पदार्थ मिला दिया जाता है। इस प्रकारके रंग-नाशकोंमें सबसे अधिक प्रयोगमें आनेवाले मांगनीज़ (ओषिदकारी घानोंमें) और शशिम् (अनोषिदकारी घानोंमें) हैं। प्रायः इनमें रागं नकलं और कोबल्ट भी मिलाना पड़ता है। लौहिक अवस्थामें लौहके रहनेसे रंगत कम आती है इसलिये घानमें नषोत मिला देनेसे रंगत बहुत कम हो जाती है क्योंकि लौहसे लौहका लौहिक लौह बन जाता है। ०२% से अधिक लौहिक लोहे लौ२ओ३ के रूपमें अनुमानित वाले शीशेको रंगहीन बनानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये। इससे अधिक लौहिक लोहेका रंग नाश करनेके प्रयत्नोंमें शीशीमें भूरी रंगत आजायगी।

सज्जीखार और चूनेसे बनाये सफेद शीशेमें ११% लौ२ ओ३ तक लोहा हो सकता है और सीसक मिलाकर बनाये हुए सफेद शीशेमें ·०३% तक लौहिक लोहा हो सकता है।

संक्षीण भी रंग नाशकोंकी सहायताके लिये मिलाया जाता है।

तालोंका शीशा

ताल बनानेका शीशा बनाना बड़ा कठिन होता है। इसमें जिस गुणकी आवश्यकता है वह यह है कि शीशा बिलकुल एक समान होना चाहिये। ऐसा शीशा बनानेके लिये शीशेको

मथना पड़ता है फिर भी यदि किसी पात्र-में से २० % भी ऐसा शीशा निकल आए तो बहुत है। मथनेके लिये पात्रमें जब शीशा ठीक हो जाता है तो एक मट्टीका मथना डाल देते हैं, और इस मथनेसे धीरे धीरे शीशेको मथते हैं। यह मथना मशीनसे चलता है। जबतक कि मथ सकें मथते रहना चाहिये। फिर मथनेको या तो निकाल कर अलग रख देते हैं या मथनेको पात्रमें ही एक तरफ़ रख देते हैं। मथनेको उपयुक्त वेग भिन्न भिन्न होता है और जैसे जैसे शीशा ठंढ़ा हो जाता है मथनेका वेग भी ठीक करते रहना पड़ता है। मथना ठहरानेके बाद शीशेको बहुत जल्दीसे निकालते हैं और जल्दी-से ठंडा हो जाने देते हैं। किसी किसी जल्दी खराब होने वाले शीशेको पात्रपर पानी डाल कर ठंडा करना पड़ता है। जब शीशा काफ़ी ठंडा हो जाता है तो पात्रको तोड़ कर शीशेकी जाँच की जाती है। जिन टुकड़ोंको एक समान समझते हैं फिर गला कर या तो चौकोर टुकड़ोंके रूप-में या ता.के रूपमें ढाल देते हैं।

शीशेकी चीज़ें बनाना।

बर्तन और चिमनी इत्यादि बनाना—यह सब फूंक कर बनाये जाते हैं। बहुतसे कारखानों-में बहुत सी चीजें बनानेके लिये फूंकनेकी मशीनोंका प्रयोग होता है किन्तु हाथकी सी सफ़ाई मशीनसे चीज़ें बनानेसे नहीं आ सकती। दस्ते-दार शीशेकी सुराही गिलास इत्यादि कुछ कठिन चीज़ें तो बिलकुल हाथसे ही बनाई जाती हैं।

कोई भी ज़रा बड़ी चीज़ बनानी होती है तो कई आदमियों (जमायत) की आवश्यकता पड़ती है, अधिकतर जमायतमें दो मनुष्य और दो लड़के रहते हैं। यदि जमायतमें अधिक मनुष्य हों और सब अपना अपना विशेष कार्य करते रहें तो वे अपने काममें बड़े हुशियार हो जाते हैं और इस प्रकार काममें सफ़ाई भी बढ़ जाती है।

फूंकने वाला एक खास क़िस्मकी कुर्सीपर बैठता है। इस कुर्सी परख दोनों ओर बाजू लगे होते हैं और ये बाजू तिपाईके आगे और पीछे दोनों ओर निकले रहते हैं।

जमायतका एक आदमी पहले लोहेकी धौं-कनी लेता है। यह धौंकनी कोई पांच फुट लम्बी होती है। यह धौंकनी पहिले गरम कर ली जाती है। फिर इसका एक सिरा शीशेमें डुबोते हैं। डूबते समय धौंकनीको घुमाते जाते हैं। इससे धौंकनीपर शीशेका एक लट्टू लग जाता है। फिर वही मनुष्यको एक लोहेकी तख़्तीपर घुमाता है। इसका यह अभिप्राय होता है कि धौंकनीपर लगे शीशेकी आकृति सब ओर एक समान हो जाये। इतने समयमें शीशा कुछ सख़्त हो जाता है। इस शीशेको फिर बर्तनमें डुबोते हैं, इससे उस शीशेपर कुछ और शीशा चिमट जाता है। इसकी आकृति फिर तख्तीपर ठीक करनी पड़ती है। ऐसा कई बार करनेसे जितना बड़ा भी शीशा चाहें धौंकनीपर लगा सकते हैं। समय समयपर वह ही मनुष्य धौंकनीमें फूकता रहता है जिससे कि शीशा तुमड़ीकी शकलका हो जाता है।

अब यह मनुष्य लोहेकी धौंकनी जमायतके मुखियाको दे देता है। वह इस धौंकनीको कुर्सीके बाजूपर रखके उसे घुमाता जाता है। यह घुमानेकी आवश्यकता यों होती है कि शीशा इस वक्त नरम होता है, उसे एक जगह रखनेसे उसकी आकृतिमें गड़बड हो जानेका डर रहता है। यह सब मुखियाको एक ही हाथसे करना पड़ता है, दूसरे हाथसे वह अपने यन्त्रों द्वारा शीशेकी शकल बना देता है।

मुखियेके यन्त्र ये होते हैं—एक क़ैंची, एक लकड़ीकी तख्ती, चिमटा, नापनेकी पटरी, कैलीपर एक लोहेकी रेती।

सुराहा इत्यादि खोखली चीज़ोंके फूकनेमें मुखिया धौंकनीको जबतक तूमड़ी न हो जाय

कुर्सीके बाजू पर रखकर उसमें तब तक फूंकता है। फिर वह इस तुमडोकी शकल ठीक करनेके लिये धौंकनीको घुमाता है। फिर वह सुराहीको तख्ती पर दबाकर मन समझौती आकृतिका कर लेता है और फिरसे वह उसके आकारकी जाँच कर लेता है।

जब मुखिया सुराहीका पेंदा इस प्रकार ठीक कर चुका है तो एक दूसरा आदमी लोहेकी छड़में कुछ शीशा लगा लेता है और वह इस शीशेको पेंदेके बीचों बीच लगा देता है। शीशा वहां लग जाता है। साथ साथ ही मुखिया धौंकनीके सिरेके लगे हुए सुराहीके हिस्से को एक ठंडी छड़से छू देता है। सुराही धौंकनीसे अलग हो जाती है किन्तु छड़से जुडी रहती है। यह सुराही फिर एक छोटी भट्टीमें रख कर गरम की जाती है। जब उसका शीशा कुछ नरम हो जाता है तो वह फिर मुखियेको दे दी जाती है। मुखिया फिर उसे कुर्सीके बाजूपर रख कर घुमाता है। घुमाव-की शक्तिके कारण सुराहीका मुंह (जो कि धौंकनीसे लगा था) चौड़ा होने लगता है। मुखिया फिर मुंहको कैंचीसे कतर कतर कर और घुमाघुमाकर अपने चिमटेकी सहायतासे हर किस्मकी शीशेकी खोखली चीजें बना लेता है। बहुत सी चीजें बनानेमें लोहेके ढाँचेसे भी बड़ी सहायता मिलती है। ढाँचा दो हिस्सोंका बना होता है और ऊपरसे खुला होता है और ढाँचे ऐसे बनाये जाते हैं कि मुखिया इनके लगी हुई एक बड़ी डांडीको पैरसे दबा कर इन्हें खोल लेता है। पहिले एक तुमड़ी बना लिया जाता है और फिर उसे कुछ थोड़ी देर लटकाये रहते हैं जिससे कि उसकी गर्दन लम्बी हो जाये। वह इस तुमड़ीको खुले ढाँचेमें रख देता है और फिर ढाँचेको बन्द करके वह उसमे फूंकता है। शीशा सख्त हो जाता है तो चीज़ निकाल ली जाती है और उसे तोड़ कर धौंकनीसे छुड़ा लेते हैं। फूंकते समय धौंकनी-को घुमाते जाते हैं जिससे ढाँचेके दोनों भागों-के जोड़का निशान शीशेपर न उतर आए। जो वस्तु कि इस तरह नहीं घुमाई जाती है उनमें जोड़ मिलता है।

व्यापारिक-समितियां

TRADE UNIONS

[ले०—श्री विश्वप्रकाश बी० ए० विशारद]

आवश्यकता

पाश्चात्य देशोंमें व्यापार बहुत ही उन्नत अवस्थामें है। वहां पर अनेकों नये नये अन्वेषण होते रहते है जिससे कि व्यापारकी वृद्धि हो। व्यापारके लिये यह आवश्यक है कि श्रम-विभाग भी उत्तम हो क्योंकि वस्तुओंके निर्माण में मनुष्यका बहुत बड़ा भाग है और बिना उत्तम मनुष्योंके उत्तम कार्य्य नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यापारके दो विभाग होते हैं:— (१) काम लेने वाला (२) काम करने वाला। कामलेने वाले प्रायः पूंजीके मालिक होते हैं, उन्होंने अपना धन उसकी वृद्धि करनेके लिये लगाया है लखपति करोड़पति होनेकी अभिलाषा रखता है और इसी अभिलाषा से प्रेरित होकर वह अपना धन लगाता है। ऐसे मनुष्यकी सदा यही लालसा रहती है कि अधिकसे अधिक लाभ उठाया जाय। जिस मजदूरको वह ॥।) प्रतिदिन देता है, उसीको ॥) देना चाहेगा—दूसरा विभाग है काम करने वाले का। काम करने वाला इतना स्वाधीन नहीं है जितना कि पूँजी वाला। उसके मार्गमें अनेकों बाधाएं हैं। वह बहुत दिनों तक बिना व्यवसायके नहीं रह सकता। उसको कार्य्य शीघ्र मिलना चाहिये क्योंकि उसके पास इतनी पूंजी नहीं होती जिससे वह कुछ दिनों तक खा सके।

इसी कमजोरीके कारण व्यवसायिकोंकी दशा बड़ी शोचनीय हो जाती है। पूंजीवाले अपने

मजदूरोंको इतना भी नहीं देते कि वे पेट भरके भोजन कर सके। इस बाधा को दूर करनेके लिये सरकारकी शरण लेनी पडती है । यदि सरकारकी राज्य-व्यवस्था अच्छी होती है तो वह पूंजीवालोंको अधिक लाभसे रोकती है। इंग्लैंडकी शासन प्रणाली ऐसी उत्तम है कि वहां मजदूरोंके लाभके लिये राज्य नियम बने हुये हैं। जैसे मनुष्य १० घंटेसे अधिक, स्त्रिया ८ घंटेसे अधिक काम नहीं कर सकते। अधिक कामलेनेसे मजदूरोंकी अवस्था बड़ी शोचनीय हो जाती है और उनके स्वास्थ्य पर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है—अधिक कार्य्य करनेसे कार्य्य-शक्ति में अन्तर पड़ जाता है। जब मनुष्य कमजोर हो जाते हैं तो उनकी सन्तान उनसे भी अधिक कमजोर हो जायगी। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इससे जातिका भी बड़ाही पतन हो जाता है। बहुत सी जातियां इस धरातल से इस कारण उठ जाती हैं कि बलवान जातियों ने उनसे अधिक कार्य्य लिया।

व्यापारिक समितियां

पाश्चात्य देशोंमें इसके रोकनेके लिये व्यापारिक समितियाँ बना ली गई हैं । व्यापारिक-समितियें क्या है? एक व्यापार या बहुतसे व्यापारोंके मजदूर मिलकर एक समिति बना लेते हैं। जैसे कपड़ेको लीजिये। कपड़ा का देखने से तो एक ही व्यापार मालूम होता है पर वास्तवमें कई व्यापारोंसे मिलकर कपड़ा तैयार होता है। कपड़े बनानेमें रुई धुनने, रुई के कातने, सूत रंगने, और कपड़े बिनने का काम होता है। यह सब भिन्न २ व्यापार है। इनकी समितियाँ या तो अलग अलग या कई एक साथ मिल कर बना ली जाती हैं।

समितियों का कार्य्यः— इन समितियों के दो उद्देश्य होते हैं (१) मजदूरों को नौकरी निश्चित मजदूरी पर दिलवाना। उनको उत्तम मजदूर बनाना (२) आपत्तिमें अपनी समितिके सभासदों की सहायता करना।

हर एक समिति के सदस्य बनाये जाते हैं। वे मिल कर समिति का एक कोष बनाते हैं। समिति इस बात का निश्चय करती है कि व्यापार में मजदूर को प्रति दिन कितना मिलेगा। कोई भी सभासद उससे अधिक या कम नहीं लेता। यह समितियाँ नौकरी काभी प्रबन्ध करती है। पूंजीके मालिकोंसे उन्हें झगड़ा करना पड़ता है। पूंजीके मालिक यदि उतनी मजदूरी नहीं देना चाहते तो सबके सब मजदूर उसके यहाँसे काम छोड़ देते हैं। इस दशामें उनका पालन पोषण समितिही करती है क्योंकि मजदूर यदि अधिक नहीं पाते हैं तो थोड़ा ही लेना स्वीकार कर लेते हैं। समितिका कोष ऐसी अवस्थाओंमें काम आया करता है। कामके छोड़ देनेको अंग्रेजी में स्ट्राइक (Strike) के नाम से पुकारते हैं।

काम अन्य अवस्थाओंमें भी छोड़ दिया जाता है। यदि पूंजीके मालिक मजदूरोंसे अधिक काम लेते हैं। तो समितियें इस बात पर भी उनसे झगड़ती हैं। कम समय करानेमें इनको बड़ी सफलता मिली है। इंग्लैण्ड, अमरीका आदि देशोंमें मजदूरोंके काम करनेका समय कम होगया है।

यह समितियाँ शिक्षाका कामभी करती हैं। सभासदों के आचार व्यवहारमेंभी सुधार किया जाता है। यह समितियाँ इस प्रकारकी शिक्षा देती हैं जिससे कि मजदूर औरभी अधिक कमा सके। बुरी आदतोंके छुड़ानेका भी भर सक प्रयत्न किया जाता है। शराब या अन्य नशीली वस्तुओंका जिनसे मनुष्यका स्वास्थ्य खराब होजाता है, सेवन रोका जाता है। इग्लैंड आदि देशोंमें यह देखा जाता हैकि जो मजदूर इन समितियोंके सभासद होते हैं वे प्रायः अधिक सदाचारी होते हैं।

यह समितियां आपत्तिमें भी सहायक होती है। नौकरी दिलानेके अतिरिक्तवे अन्यभी सहायता देती है। जब मजदूर बीमार होजाते हैं तो ऐसे समयमें उनके कुल का पालन पोषण समिति ही करेगी। यदि मजदूर की मृत्यु हो जाय तो उस अवस्थामें उसकीस्त्री

और बालबच्चों के लिये धन मिलता है। जब तक बच्चे कमाने योग्य नहीं होजाते तबतक यह सहायता मिलती रहती है। मजदूर के क्रिया कर्म के लिये यदि धन न हो तो वह भी देदिया जाता है। आकस्मिक घटना जैसे घरमें आग लग जाना आदिमें भी समितियां सहायक होती हैं। इस प्रकार इनके सभासद होजाने से अनेकों लाभ होते हैं।

समितियोंका संगठन— अनेकों छोटी २ समितियों से एक बड़ी समिति बनती है। स्थानीय समितियों के कार्य्य कर्ता मिलकर एक बड़ी समिति बनाते हैं। यह बड़ी समिति सब समितियों के लिये नियम बनाती है और सबको इन्हीं नियमों का पालन करना पड़ता है। स्थानीय समितियां आपत्ति के समय सहायता करती हैं। वस्त्र तथा भोजन बांटती है। पर बिना बड़ी समिति की स्वीकृति के वे हड़ताल नहीं करा सकती। मजदूरोंसे यहकहदेना सरल हैकि काम छोड़ दो। मजदूर काम भी फौरन छोड़ देंगे क्योंकि उनको भोजन तो मिलता ही रहेगा। पर हड़ताल तो ऐसे समयमें करनी चाहिये जबकि अधिक लाभ की आशा हो। मान लीजिये कि मजदूरों को १) प्रति दिन मिलता है। समिति कहती है कि १।) सेकम नहीं मिलना चाहिये। पूंजीके मालिक आसानीसे उनका वेतन नहीं बढ़ा देंगे। इस अवस्थामें हड़ताल करनी पड़ेगी। परन्तु वेतन उसी अवस्थामें बढ़ सकता है जब कि उस व्यापारमें अधिक लाभ होता हो। यदि उसमें लाभ नहीं होता तो ऐसी अवस्थामें हड़ताल करनेमें मूर्खता ही होगी। समिति का रुपया भी व्यर्थ ही नष्ट होजायगा। यही कारण है कि स्थानीय छोटी समितियों को यह अधिकार नहीं दिया जाता कि वे इस कार्य्य को करें। इस कार्य्य को करने के लिये विशेष योग्यता की आवश्यकता होती है और ऐसे मनुष्य बड़ी समितियों ही में पाये जाते हैं।

ज़मीनका काँस निकालना

मध्यभारतमें, खासकर मालवा और बुन्देलखंडमें खेतोंमें काँस बहुत अधिक पाया जाता है जिससे काश्तकारोंको बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। इस कांसको निकालनेके लिए अनेकों उपाय किये जाते हैं किन्तु किसीको अभीतक इस काममें उतनी सफलता नहीं मिली है। आजकल खोदकर काँस निकालनेका तरीक़ा ही सबसे अच्छा साबित हुआ है। परन्तु लेखकका निजका अनुभव है कि प्रति एकड़ ६-१० रुपया खर्च लगता है। इसलिए गरीब लोग इस तरकीबसे विशेष फायदा नहीं उठा सके हैं। बड़े बड़े लोहेके हलोंसे और सन आदि फसलें बोनेसे भी फायदा नहीं हुआ। अब इन्दौरके मि० हावर्डने एक नया हल तैयार किया है जो चार बैलोंसे चलाया जाता है। कहा जाता है कि इस हलका उपयोग करनेसे ५) रुपया फी एकड़ खर्च आता है और खेतोंका काँस साफ़ हो जाता है मि० हावर्ड यह बात जोर देकर कहते हैं कि उनको अच्छी सफलता मिली है और प्रयोगोंसे यह बात साबित भी हो गई है कि इस हलका उपयोग करनेसे एक ही बर्षमें खेत साफ़ हो जाता है। यदि यही बात है, तो हम मालवीय किसानोंको हावर्ड साहबका कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि काँसके मारे प्रतिबर्ष ३३ सैकड़ाके करीब फसल मारी जाती है जिससे प्रति बर्ष हज़ारों रुपयोंका नुक़सान उठाना पड़ता है।

यह तो हम भी मानते हैं कि यह हल अभी थोड़े ही दिन हुए तैयार किया गया है इसलिए संभव है कि इसमें कुछ दोष हों और अनुभवसे वे दोष दूर किये जा सकेंगे।

कई कारणोंसे एंजिनसे चलाये जाने वाले हल बड़े बड़े लोहेके हल आदि औजार मालवेकी जमीनके लिये उतने फ़ायदे मंद नहीं हो सकते और उनकी कीमत भी ज्यादा होती है। इस हलकी कीमत ४०) रुपया है। हमारे ख्यालसे हल, जुआ आदि सम्पूर्ण

औजार की कीमत उतनी अधिक नहीं है जो मध्यम वित्तके काश्तकार खरीद न सकते हों।

इस हलमें चार बैल एक के पास एक जोते जाते हैं। साथमें इस हलका चित्र दिया गया है और दूसरा चित्र उस जुएका है जिसमें चार बैल जाते हैं।

कपासकी जमीनमें गहरी जुताई करना फायदेमन्द है और कहा जाता है कि इस हल से ९-१० इंच की गहराईतक जुताई हो सकती है। हमारे ख्यालसे मालवेकी जमीनके लिये इतनी गहरी जुताई काफी है। इस हलको खरीदनेसे कम खर्चमें अच्छा काम हो सकता है। आशा है, हमारे कृषकबन्धु प्लेट ब्रिडिंग इन्स्टीटयूट, इन्दौर जाकर इस हलके कामको देखकर लाभ उठावेंगे।

—शंकर राव जोशी

एक साथ तस्वीर उतारना और सुनना

मोवीटोन या सुननेवाला केमरा

[ले०—श्री अमीचन्द्र विद्यालङ्कार]

बतक केमरा सिर्फ पदार्थोंका फोटो या छाया चित्र ही लिया करता था, हाल ही में अमेरिकाके न्यूयार्क शहरकी फाक्सकेस कंपनीने एक ऐसा केमरा निकाला है जो बाह्य दृश्यके साथ शब्दकी छाय भी लिया करेगा।

यह एक साधारण सिनेमा केमरा है, जिसमें एक बिजलीकी रोशनी देने वाला बल्ब लगा हुआ है। यह एक विशेष प्रकारके फिलमपर दृश्य और शब्द दोनोंको अंकित करता है। डेवलपमेंट (फोटो प्रस्तुत करनेकी क्रिया) भी यथा रीति ही होती है। इसमें "एक्सपोज़र" की भी उतनी ही आवश्यकता होतीहै जितनी एक सादे कैमरेमें। ब्रोडवेमें लोगोंने पहले ही पहल इस कैमरेसे प्रस्तुत फिलम द्वारा एक साथ देखने और सुननेका आनन्द अनुभव किया है। इसमें संयुक्त राज्य अमेरिकाके वेस्ट प्वाइंट नामक सैनिक शिक्षालयके कार्योंका एक दिग्दर्शन है। पहले एक बिगुल देने वाला आदमी वेस्ट प्वाइंट बिल्डिंगके प्रधान फाटकपर बिगुल देता दिखलाई पड़ता है, और साथही बिगुलकी आवाज़ भी सुनाई पड़ती है। इसके बाद कमांडिंग आफिसर प्रकट होता है और एक छोटा सा भाषण देता है।

इन सब नवीनताओंके कारण इस कैमरेमें एक और विशेषता है. इसका फिलम खुले मैदानमें लिया जाता है और बाइटाफोनके फिलम बन्द कमरेमें लिए जाते हैं। इस कैमरेको ऐसे बक्समें बन्द करना पड़ता है जिसमें बाहरका अनावश्यक शब्द भीतर प्रवेश न करने पावे, अन्यथा कैमरेके चलनेका शब्दभी फ़ोनोग्राफसे रिकर्डपर अंकित होजायगा। नये आविष्कारका नाम 'मोवीटोन' है। वेस्टप्वाइंटमें जो मोवीटोन फिल्म बनाया गया है, उसके द्वारा बैंडकी आवाज़ भी सुनाई पड़ती है।

'डेली न्यूज़'के न्यूयार्क स्थित संवाद दाताका कहना है कि इसकी कार्य विधि बहुत सरल है। बिजलीके सब सामानके साथ इसे एक छोटेसे मोटर टपपर रख कर एक जगहसे दूसरी जगह ले जासकते हैं। इसे १५ मिनटमें कामके लिये ठीककर लिया जा सकता है। इसमें शब्दको किसी तरहसे ठीक करनेकी आवश्यकता नहीं होती। टैलीफोटो लैंस द्वारा चिड़ियाके आक्रमण और शब्दका चित्र लिया जासकता है किसी सभा या भीड़का कोलाहल पूर्ण शब्द कैसे सुनाई पड़ता है जैसे किसी एक आदमीका शब्द सुनाई पड़ता है।

फौक्स फिल्म कंपनीके प्रधान मि० विलियम फोक्सका कहना है कि 'न्यूज़रील' द्वारा संसारके शब्द सुनाई पड़ेंगे और दृश्य दिखलाई पड़ेंगे। कुछ ही दिनोंमें नियाग्राजलप्रपातका भी फिलम लिया जायगा, जिससे वे लोग भी जिन्होंने इसे नहीं देखा है, उसके शब्दायमान दृश्योंको देखेंगे।

यद्यपि मोवीटोनकी क्रिया सहज है, तथापि मि० केस और उनके सहायक ई० आई० स्पैनेबुलको इसके तैयार करनेमें १२ वर्ष लगे हैं। इसकी क्रिया

इस प्रकार है। कैमरेके साथ दूर दूर तक आवाज़ पहुँचाने वाली साधारण माइक्रोफोन आवाज़ ले लेता है। पीछे माइक्रोफोनसे जो बिजलीकी लहर चलती है वह घनीभूत हो जाती है और कैमरेमें फिल्मके पीछे लगे हुए बल्बमें जा पहुँचती है। बिजलीकी लहर जैसी मन्द या तेज़ रहती है, उसी अनुपातसे बल्ब रोशनी देता है और फिल्म जैसे जैसे आगे बढ़ता है, वैसे ही बल्बकी रोशनी उसके कोरपर भिन्न भिन्न घनताकी रेखायें अंकित करती है।

तमाशा दिखलाते समय इसके प्रतिकूल क्रिया होती है। ज्यों ही फिल्म साधारण प्रोजेक्टर (प्रकाश विस्तारक) होकर घूमने लगता है त्योंही फिल्मकी कोरपरकी रेखाओंसे होकर रोशनी फोटो इलेक्ट्रिक बल्बपर जा टकराती है। यह वही बल्ब है जिसने कितनी असंभव बातोंको संभव किया है और दूर दूर-के दृश्योंका दिखाना इसीकी करामत है। जितने ज़ोरसे इसपर रोशनी टकराती है उतनी ही तेज विद्युद्-गति इससे निकलती है। बल्ब और तेज़ बोलनेवाली मशीन इसी कामके लिये खासतरीकेसे तैयार की गयी है। एक खास तरहका पर्दा भी तैयार किया गया है जिससे सीधे चित्रसे ही आवाज़ निकले।

इन सब कार्योंके सम्पादनमें बहुतसी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी है। जिसके द्वारा रोशनीका फोटो उतरता है वह एक छोटासा टुकड़ा है और उसे भी तैयार करनेमें वर्षों लगे हैं। यह ऐसा तैयार किया गया है कि इसका आकार प्रकार बदले नहीं और हज़ारों फीटके फोटो लेने वाले फिल्म इसपर होकर जायं, पर यह ज्योंका त्यों बना रहे। अब सिनेमा देखनेवालोंको अभिनय देखनेका पूरा आनन्द मिलेगा। तमाशा भी देखेंगे और नाना प्रकारकी गानविद्या भी सुनेंगे।

× × ×

बनस्पति घी

असली घीके बजाये काममें नहीं आ सकता

एक विद्वान् डाक्टरकी राय

पञ्जाब सरकारके रसायन विभागके बड़े डाक्टरकी ओर से १९२६ ईस्वीकी जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उसमें कहा गया है कि इस वर्ष एक बहुत ही महत्व पूर्ण कार्य यह हुआ है कि वनस्पति घीकी जाँचकी गयी कि खानेकी दृष्टिसे वह कैसा है। आज कल बाजारोंमें यह बहुत बिकता है। जिस वनस्पतिघी-की जाँचकी गयी वह 'लिली, ब्राँड (कमल छाप) था यह हालेन्डसे हिन्दोस्तानमें आता और उसे वनस्पति तेलोंमें सर्वोत्तम गिना जाता है। जाँच करनेपर मालूम हुआ कि वह वनस्पतियोंसे तैयार किया हुआ शुद्ध द्रव्य है। खानेकी दृष्टिसे उसकी उपयोगिताकी परीक्षा करनेके लिये बिल्लीके दो बच्चोंपर उसका प्रयोग किया गया जिनका वज़न और शरीर प्रायः समान था।

एक बच्चेको ताज़ा दूध दिया गया जिसमें एक परिमाणमें मक्खन था। उसके विपरीत दूसरे बच्चेको मक्खन निकाला हुआ दूध दिया गया पर इसमें वनस्पति घी उतने ही परिमाणमें मिला हुआ था जितना पहिले बच्चेके दूधमें मक्खन था। इस प्रयोगको एक महीने तक किया गया जिसका फल यह हुआ कि पहले बच्चेका वजन बढ़ा और दूसरे-का कम होगया। एक महीने बाद प्रयोग बदल दिया गया और पहिले बच्चेको मक्खन निकले हुये दूधमें एक नियत परिमाणमें वनस्पति घी मिला कर दिया गया और दूसरेको मक्खन समेत दूध दिया गया। इससे पहिले बच्चेका वज़न कम होगया और दूसरेका बढ़ गया। इसपर रिपोर्टमें बड़े डाक्टरने अपनी सम्मति दी है कि यह साफ मालूम होता है कि मनुष्य-की वृद्धि और पुष्टिके लिये जो द्रव्य अवश्यक होते हैं वे असली घीमें होते हैं परन्तु वनस्पति घीमें नहीं। फलतः असली घीकी जगह वनस्पति घी काममें नहीं लाया जा सकता, विशेषतः बच्चों और माताओंके काममें। यह वनस्पति घीमें असली घी अच्छी तरह मिल जाता है और खाना पकानेके काम-में घीके बजाय लाया जा सकता है।

× × ×

मिट्टीमें कृमि

लोग धरतीकी मिट्टीको एकदम निर्जीव समझते

हैं। पर वास्तवमें सत्य यह है कि इस मिट्टीमें इतने अधिक जीव निरन्तर उछल कूद मचाते रहते हैं जितने इस दुनियांमें और कहीं नहीं हैं। उन जीवों-में उनके शरीरको देखते हुए असाधारण तेजस्विता भरी हुई है। उनके कुछ भाग तेज खुर्दबीनके सहारे देखे जा सकते हैं और अधिकतर भाग किसी भी तरहसे नहीं देखे जा सकते। इन जीवाणुओंको युरोपके वैज्ञानिकों ने ४ भागोंमें बांटा है:—

(१) वेकटिरिया, (२) फंगी, (३) लअजी और (४) स्प्रोटोजोवा इनमें स्प्रोटोजोवा सबसे बड़े आकारके होनेपर भी एक इंचके २५०००वें भाग हैं और बाक़ीके आकार एक इन्चके ५०००० वें भाग तक हैं। इनकी संख्याका कुछ अन्दाजा इस बातसे मिलेगा कि यदि एक चम्मच भर मिट्टी कहींसे भी उठा ली जाये, तो उसमें कमसे कम ४ करोड़ ६० लाख जीवाणु मिलेंगे। पृथ्वीके प्रायः सभी प्रान्तोंकी मिट्टीको लेकर वैज्ञानिकोंने जाँचा पड़ताला है। कहींकी भी मिट्टीमें उतनेसे कम जीवाणु नहीं देखनेमें आये। केवल मिश्र देशकी एक क़बरके अन्दरकी मिट्टीको पड़तालने से उसमें जीवाणु नहीं मिले। वह क़बर ३००० वर्षों तक बन्द थी।

× × ×

खेत काटनेकी कल

अलबर्टा नामक स्थानके दो किसानोंने मिल कर एक ऐसी कल बनाई है, जिसको पके खेतमें चलानेसे तमाम फसल काटी जाती है। फसलको काटनेमें उस कलको चलानेके सिवाय हाथसे और कोई काम नहीं करना पड़ता। काटी हुई फसल उसके अन्दर आ जाती है, जो कलको खलिहानमें लाकर उसके अन्दरसे निकाल ली जाती है। उस कलकी सफलतासे उत्साहित होकर वे दोनों एक और कल ऐसी बनाने लगे हैं जो फसलके सिर्फ बालीको ही काटकर ऐसी झाड़ झूड़ देगी, कि झाड़ते समय अन्नके दाने मिट्टी पर न गिराये जायें। मिट्टीपर गिरनेसे दानोंके साथ इतनी मिट्टी कङ्कड़ी आदि मिल जाती हैं, कि उनसे आगे अन्नको साफ़ करनेमें बड़ी बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ती है। यह दूसरी कल भी प्रायः पूरी बन गई है। इससे एक दिनमें ४० एकड़ ज़मीनकी फ़सल काट कर उठा लाई जायेगी। खेतमें पीछे केवल भूसेके योग्य शुष्क बनस्पति ही रह जायगी। जिसे पुरानी मैशीनसे काट कर भूसा बना लिया जाया करेगा।

× × ×

प्रतिवर्ष मस्तिष्कमें ६ बार परिवर्त्तन

मस्तिष्क अथवा भेजा एक नर्म, श्वेत रङ्गका अंग है जो खोपड़ीके भीतर झिल्लियोंमें बन्द है। यह शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंको गतिमय और क्रियाशील बनाता है। मस्तिष्क खोपड़ीमें त्रिभुजाकार होता है, आधार सामने और भुजायें दायें-बायें तथा शीर्ष कोण पीछेकी ओर होता है। मस्तिष्कके तीन भाग होते हैं—प्रधान भाग, मध्यम भाग और अंतिम भाग। प्रत्येक मानवीय मस्तिष्क वर्ष भरमें ६ बार परिवर्तित होता है। प्रत्येक बारका मस्तिष्क अपने पहलेके मस्तिष्कसे गुणमें भिन्न होता है। कारण यह है कि भिन्न भिन्न प्रकारका मस्तिष्क उत्पन्न होता है। सेब मस्तिष्कके लिये बहुत लाभदायक है। स्त्रियोंका मस्तिष्क पुरुषोंके मस्तिष्कसे तौलमें पाँच औंस कम होता है। परन्तु गुणों के विचारसे पुरुषके मस्तिष्कसे उत्तम होता है। एक औसत दरजेकी स्त्रीका मस्तिष्क जिसकी आयु साठ वर्षकी हो, इसी दरजे और इसी आयुके पुरुषके मस्तिष्कसे बीस प्रतिशत अच्छा होता है।

× × ×

धुएँसे हानि

"बङ्गाल स्मोक नूसेन्स" कमीशनकी सन् १९-२७ ई० की जो वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उसमें कलकत्तेमें धूएँके कारण होनेवाली हानियों तथा उन्हें कम करनेके उपायोंके संबन्धमें अच्छा प्रकाश डाला गया है। कलकत्ता जैसे विशाल नगरमें वर्ष भरमें जितने मनुष्य मरते हैं उनमेंसे पञ्चमाँश तो स्वाँसकी बीमारीके कारण मरते हैं और धुएंके कारण ही श्वासमें विकार होता है। यहांके अस्पतालके अधिकारियों-का भी कहना है कि धुएंके विकारसे ही जीवनकी सभी स्थितियोंमें अर्थात् सभी उम्रके लोगोंकी इस प्रकारकी बीमारियां होती हैं और यहांकी मृत्यु

संख्यामें वृद्धि होती है। इसी विकारके कारण लोगों-का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता और अन्य प्रकार-की बीमारियां होनेकी आशंका भी सदैव बनी रहती है।

इसके सिवाय धुएंके कारण ज़मीनकी उपज आधीसे भी अधिक घट जाती है और जो खाद्य द्रव्य उपजते भी हैं वे प्रायः विषैले हो जाते हैं। धूम्र पीड़ित ज़िलोंमें गायोंके खानेकी घास और खरतक भी दूषित हो जाते हैं जिससे गायोंकी दूध देनेकी शक्ति शीघ्र ही नष्ट हो जाती है और ऐसा होनेसे दूध महंगा मिलने लगता है। जो थोड़ा बहुत मिलता है वह भी दूषित हो जाता है और ऐसे दूधसे बच्चोंकी हड्डियाँ पुष्ट नहीं होने पातीं। ये सब विकार केवल वहींतक आबद्ध नहीं रहते जहाँ कि धुँआ एक बहुत बड़ी राशिमें फैलता है बल्कि हवाके ज़रियेसे इसकी विषैली गैस बहुत दूर तक फैल जाती है और आसपासके दिहातोंपर भी असर डालता है।

यूरोपके नक़रोंमें चिमनियोंके द्वारा धुंआ ५० से १०० फीटतक ऊपर फेंका जाता है जिससे स्वांस लेनेके लिये नीचेकी हवा विकार रहित रह जाती है लेकिन कलकत्तेमें तो प्रत्येक घरमें रसोई बननेसे, हज़ारों चायके चूल्हे जलनेसे, हलवाईके चूल्होंसे तथा अन्य कारणोंसे धुएंकी बड़ी राशि नीचे ही फैल जाती है। विशेषकर जाड़ेमें तो शामके वक्त इस प्रकार धुआँ फैल जाता है कि निकट जाते हुए मनुष्य भी नहीं दीख पड़ते हैं। इस धुंएसे और साधारण फैक्टरियोंके धुंएसे कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि रविवारको भी, जिस दिन फैक्टरियाँ बन्द रहती हैं, यही दशा रहती है।

जबतक यह दशा नहीं बदली जाती तबतक कलकत्तेमें श्वास दोषसे होने वाली बीमारियोंसे जो मृत्यु हो रही है उनकी संख्या नहीं घट सकती। इससे त्राण पानेके लिये एक उपाय यह है कि वहाँ धुंआ रहित गैसका व्यवहार किया जाय।

पुतली घरोंकी बेतहाशा वृद्धि होनेके साथ ही साथ धुएँका प्रश्न कई दृष्टियोंसे बड़ा गम्भीर प्रश्न होता जा रहा है। धुआँ वास्तवमें वह पदार्थ है जो जल सकता है परन्तु उचित प्रबन्ध न होनेके कारण जल नहीं पाता। यदि हम आर्थिक दृष्टिसे विचार करें तो हम कितना अधिक ईंधन अपने अज्ञानसे निरर्थक ही खो रहे हैं। वैज्ञानिक इसीलिए उसका उपयोग करनेके लिए उचित साधनोंके आविष्कारमें लगे हुए हैं। दूसरी बात यह है कि धुएँमें गन्धककी गैसें होती हैं। इन गैसोंका हमारे मकानोंपर हमारे दरवाज़ों-पर तथा और हमारी बाहरकी चीज़ोंपर बहुत असर पड़ता है। धुएँकी कालखसे मकान काले पड़ जाते हैं। दरवाज़ोंकी वार्निश खराब हो जाती है। उन्हें फिरसे ठीक करनेके लिए बहुत खर्च करना पड़ता है। दुनिया भरके टैक्स अदा करके यह एक नया 'धुआं टैक्स' और अदा करना पड़ता है। तीसरी बात यह है कि इससे स्वास्थ्यको गहरा धक्का लगता है जिसका वर्णन हम अभी ऊपर कर चुके हैं। एक तो हमारे श्वासके साथ विषैली गैसें अन्दर जाकर श्वास प्रणालीको बंद करती हैं। दूसरे, आकाशमें धुएँके रहनेसे सूर्यकी अत्यन्त उपयोगी, उपकासनी (Ultra-violet) किरणें हमारे पासतक पहुंचने नहीं पातीं। उपकासनी किरणोंसे रहित सूर्यकी किरणोंसे वह लाभ नहीं होता जो उन किरणोंसे हो सकता है। सूर्यके प्रकाशका अत्युपयोगी अंश इस तरह हमारे-तक नहीं पहुँच पाता। एक अंग्रेज़ी कहावत है कि All diseases come in the dark and are cured in the sun.—बीमारियाँ अन्धेरेमें आती हैं और सूर्यसे उनका इलाज होता है। पर जब सूर्यकी इलाज करने वाली किरणें हमतक पहुँचने ही न पायें तो उनसे इलाज कैसे होगा। दवा मिलेगी तब तो इलाज होगा, बिना दवा मिले दवाके नाम लेते रहनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता। गुड़ २ कहनेसे कभी किसीका मुँह मीठा नहीं होता। चौथी बात यह है कि इस धुएँका वन-स्पतियोंपर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। अमे-

रिका के कानोंकी समिति परीक्षण करके पता लगाया है कि धुएँमें वनस्पति पनपती नहीं है। इसके सम्भवतः दो कारण हैं। एक तो यह है फिर पत्तोंपर कालख बैठ जानेसे वनस्पतियोंकी श्वासेन्द्रिय कार्य ही नहीं कर सकती। दूसरे यह है कि उसकी श्वास क्रिया सूर्यके उचित प्रकाशमें ही ठीक हो सकती है। जब प्रकाश ही काफी न मिले तो क्रिया कैसे ठीक हो सकती है। जो क्रिया होती भी है उसके लिए शुद्ध वायु नहीं मिलती। गन्दी हवाके श्वास द्वारा अन्दर जानेसे उनके स्वास्थ्यपर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार धुएँका प्रश्न भी एक बहुत जटिल प्रश्न होता जा रहा है मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये जल्दीसे जल्दी वैज्ञानिकोंको इसका ढूंढ़ निकालना चाहिये।

× × ×

बर्फके चट्टानके अन्दर जीवन

डा० फ्रेजर हैरिसने चैम्बर जर्नलमें एक लेख लिखकर प्राणी विज्ञानके सम्बन्धमें बहुत सी नई नई बातें बताई हैं। आपने सिद्ध किया है कि बहुतसे प्राणी ऐसे होते हैं जो बर्फके चट्टानके अन्दर जीवित रह सकते हैं। अधिक ठण्डे देशोंमें जब किसी नदी या तालका पानी जमकर बर्फ हो जाता है तब बहुतसे प्राणी मेंडक, घोंघा, सीप, मछली आदि उसके अन्दर पड़ जाते हैं। ऐसी अवस्थामें वे कभी कभी महीनोंतक पड़े रहते हैं, पर उनकी मृत्यु नहीं होती है। बर्फके गलनेके बाद मछलियाँ तैरने लगती हैं। मेंडक कूदने लगते हैं, घोंघे रेंगने लगते हैं। यह तो हुई जलचरोंकी बात। बहुतसे थलचर भी ऐसे होते हैं जो अधिक दिनोंतक खाये पिये बिना ऐसेही ठंडकमें पड़े रहते हैं। बहुतसे भालू, साही, आदि जानवर जो ठंडे देशोंमें रहते हैं, जाड़के आरम्भमें अपने शरीरमें अधिक चर्बीका संग्रह कर लेते हैं और फिर बर्फमें पड़े रहते हैं। कभी कभी देखा जाता है कि मनुष्य अधिक समय तक मूर्च्छित रहता है। लोगोंके दो दो तीन तीन महीने सोये रहनेकी बात सुनी जाती है। कितने ही साधु बक्समें बन्द होकर महीने महीने जमीनमें गड़े रहे, पर पीछे फिर जीवित ही पाये गये, पंजाब केसरी महाराज रणजीतसिंहने भी एक साधुको इसी प्रकार बन्द कर परीक्षा की थी। मेंडक, मक्खी आदिकी इस प्रकारकी अवस्थाके अनेक प्रमाण मिल सकते हैं। इस अवस्थाको मूर्च्छा या सुषुप्ति कह सकते हैं। इसमें जो स्थिति मनुष्यकी होती है वही स्थिति बर्फके अन्दर बन्द हुए उपर्युक्त प्राणियोंकी सम्भवतः होती होगी।

× × ×

अन्धे होनेसे बचाना

लण्डनके रायल ओपथेलमिक अस्पतालके डाक्टरोंका कथन है कि उपकासनी किरणोंकी सहायतासे खराब आँख वालोंका इलाज कर उन्हें अन्धे होनेसे बचाया जा सकता था। लण्डनका स्वास्थ्यविभाग वहाँपर बढ़ते हुए अन्धेपनको देख कर चिन्तित था। प्रति वर्ष अन्धोंकी संख्यामें आश्चर्यजनक वृद्धि होती जारही थी। उसे देखते हुए यह अनुमान होने लगा कि जल्दी ही लण्डन निवासियोंका बहुत बड़ा भाग अन्धा हो जायगा। इसका कारण ढूंढनेपर पता लगा कि लण्डन शहरपर धुआँ छाया रहता है उस धुएँके कारण शहरमें उपकासनी (ultra violet) किरणें नहीं पहुंच पातीं इसी लिए अन्धोंकी संख्या बढ़ रही है। डाक्टरोंने इन्हीं किरणोंके प्रयोगसे इलाज किया। वे इस परिणामपर पहुँचे कि यद्यपि इन किरणोंसे अन्धेको सुजाखा नहीं बनाया जासकता तो भी अन्धे होने वालेको अन्धेपनसे बचाया जा सकता है।

इन किरणोंको सहायतासे अन्य रोगोंका इलाज भी किया जा रहा है। इसी दशामें जो परीक्षण होरहे हैं उनसे यह भी पता लगता है कि इन किरणोंसे शरीरमें अपूर्व शक्तिका संचार होता है। विशेष प्रकारकी पोशाक पहन कर विशेष विशेष स्थितियोंमें इन किरणोंका सेवन किया जाता है।

———

क्या पृथिवीकी सतह अस्थिर है

इस वर्षकी कई घटनाओंको देखते हुए प्रसिद्ध वैज्ञानिक इस परिणामपर पहुँचे हैं कि पृथ्वीको सतह स्थिर नहीं, अस्थिर है। चिली और आर्जेण्टाइन रीपब्लिकमें एक साथ भूकम्प आया। एण्डीजके दोनों ओर एक साथ भूकम्प आया। एक ओरसे ज़मीन धँसकर दूसरी ओर अन्दरसे बाहर निकला। चेनके दक्षिण और मराकोके उत्तरमें एक साथ तूफ़ान आया। यूरोप और अमेरिकाके बीच टेलीफोन और तारमें गड़बड़ होना आदि इस बातके प्रमाण हैं कि पृथ्वीकी सतह स्थिर नहीं है। जब एक स्थानपर कुछ हलचल होगी तब उसके प्रतितुलित (Balanced) करनेके लिये दूसरी जगह भी हलचल होनी आवश्यक है। इस वर्षके चिन्होंसे पता लगता है कि इस वर्ष भूचाल अधिक आयेंगे और सतहमें अधिक परिवर्त्तन होगा।

नापकी मूल इकाइयां

[ले० श्री० निहाल करण सेठी डी०, एस० सी०]

१३—अक्षांश, रेखांश, ऊंचाई और गुरुत्व

(Latitude, Longitude, Height and Gravity)

किसी स्थानका गुरुत्व निकालनेके लिये निम्न लिखित सूत्रका उपयोग करना चाहिये :—

ग = ९८०·६१७ — २·५९३ कोज्या २ अ — ·०००३०८६ ऊ

(ग = गुरुत्व, अ = अक्षांश, ऊ = समुद्रसे ऊंचाई मीटरोंमें)

स्थान	रेखांश (Longitude)	अक्षांश (अ) (Latitude)	ऊंचाई (ऊ) समुद्र पृष्ठसे ऊपर फुटोंमें	गुरुत्व "ग" (Gravity "g")
ध्रुव (Pole)	...	९०° ०′ ०″	—	९८३·२१०
४५° अक्षांश		४५° ० ०	—	९८०·६१७
निरक्ष (भूमध्य रेखा)	...			
(Equator)	...	० ० ०	—	९७८·०२४
भारतवर्ष				
अजमेर	७४° ३८′ ३०″	२६ २७ ३०		९७८·९०१
अमृतसर	७१° ५४ ३०	३१ ३८ १०		
अलाहाबाद	८१ ४९ २०	२५ २७ ३०	२८८	९७८·९५४
अलीगढ़	७८ ० ३१	२७ ५३ ३२	६१२	९७९·०७५
आगरा	७८ १ ७	२७ १० २०	५३५	९७९·०५६
इंदौर	७६	२२ ४५ ०		
कलकत्ता	८८ २१ ३०	२२ ३२ ५४	६	९७८·७९०

स्थान	रेखांश (Longitude)	अक्षांश (अ) (Latitude)	ऊंचाई (ऊ) समुद्र पृष्ठसे ऊपर फुटोंमें	गुरुत्व "ग" (Gravity "g")
कानपुर	८० २१ ०	२६ २८ ०	४१२	९७८ ७७६
कोलाबा बम्बई	७२ ४८ ४७	१८ ५३ ४५	३४	९७८·६३१
ग्वालियर	७८ १२ ४९	२६ १३ ५७	६५८	९७८·९५८
जबलपुर	७९ ५९ ०	२३ ८ ५४	१४९७	९७८·७१९
जयपुर	७४ ३० ०	२६ १५		
जोधपुर	७३ २४ ०	२५ २५		
झांसी	७८ ३३ ४३	२५ २७ २	८५८	९७८ ९१०
ढाका	९० ९४ २४	२३° ४३′		
देहरादून	७८ ३ १५	३० १९ २९	२२३९	९७९·०६३
देहली	७७ १३ ०	२८ ३९ ०		
नागपुर	७९ ७ ०	२१ ९ ०	९०० १०००	
पटना	८५ १० ०	२५ २७ ०		
फैजाबाद	८२ १० ०	२६ ४७ ०	३००	
बड़ौदा	७३ ११ ०५	२२ १८ ३५	१०९	९७८ ७४९
बनारस	८३ १	२५ १८	२५२	
मद्रास	८० १४ ५४	१३ ४ ८	२०	९७८·२७९
मंसूरी	७८ ४ ३२	३० २७ ३५	६९२४	९७८·७९२
मेरठ	७७ ४१ ४०	२९ ० २६	७३४	९७९·१५१
मैसोर	७६ ४० २०	१२ १८ ५२	२५०१	९७८·०४५
रंगून	९६ ९ ८	१६ ४७ ५५	१६४	९७८·४६७
लखनऊ	८०·९५°	२६·४५°		
लाहौर	७४·२६°	३१.२७°		
शिमला	७७ ९ ५०	३१ ६ १९	७०४३	९७८·८४०
हैदराबाद	६८·°४५°	२५.°१५°		
अन्य				
ग्रीनिच	० ० ०	५७ २८ :८	४७	९८१·१८४
न्यूयार्क	७३ ५९ ९	४० ४३ ४९	९६	९८०· २०
पैरिस	२ २० १४	४८ ५० ११	५९	९८०· ९५
बर्लिन	१३ १९ ०	५२ ३१ ०	३०	९८१·२८७
लंडन	० २० ११	५१ २५ २०	१०	९८१·१९५

पेंच (Screws)

अधिकतर बृटिश धातु पेंचोंमें जो $\frac{१}{४}$ इञ्च या अधिक व्यासके होते हैं, व्हिट वर्थ चूड़ी होती है। इससे छोटे आकार वालोंमें बृटिश-एसोसियेशन-चूड़ी होती है। ढालोंके बीचका कोण व्हिट वर्थ चूड़ीमें ५५° और बृटिश एसोसियेशन चूड़ीमें ४७·५° होता है।

अक्षके सामानान्तर नापी गई एक ही लपेटकी दो पास पास वाली चूड़ियोंकी दूरी को अन्तर (pitch) कहते हैं। एक इञ्च (या एक सहस्रांश मीटर जैसी अवस्था हो) में चक्करोंकी जितनी संख्या होगी उसका व्युत्क्रम अन्तर होगा। अधिकतम पूर्णाच्छादित व्यासको पूर्ण व्यास कहते हैं।

माइक्रोमीटर पेंच—इ॰ में प्रति इञ्च (या स॰ म॰) १०० चूड़ियोंके गुणक अथवा अवान्तर गुणक होते हैं।

लकड़पेंच—ये लोहे या पीतलके होते हैं। इनकी गणना इस प्रकार होती है—संख्या ४ का व्यास $\frac{१}{८}$ इञ्च होता है और प्रत्येक उत्तरोत्तर संख्या केलिये पेंचके व्यास में $\frac{१}{६४}$ और जोड़ते चलते हैं। प्रत्येक लम्बाइयोंके लिये यही नियम है। वक्रीय पेंचों की लम्बाई सब ओर नाप करली जाती है, गोल शिरीय पेंचोंकी शिरेके नीचे से।

आदर्श व्हिटवर्थ				बृटिशएसोसियेशन								
पूर्णव्यास	प्रतिइञ्चचूड़ी	पूर्ण व्यास	प्रतिइञ्चचूड़ी	संख्या	पूर्ण व्यास	कोटि	संख्या	पूर्ण व्यास	कोटि	संख्या	पूर्ण संख्या	कोटि
इञ्च					स·म	स·म		स·म	स·म·		स·म·	स.म
१ $\frac{३}{४}$	५	$\frac{३}{४}$	१०	०	६·०	१·०	९	१·९	·३९	१८	·६२	.१५
१ $\frac{५}{८}$	५	$\frac{११}{१६}$	११	१	५·३	·९	१०	१·७	·३५	१९	·५४	.१४
१ $\frac{१}{२}$	६	$\frac{५}{८}$	११	२	४·७	·८१	११	१·५	·३१	२०	४८	.१२
१ $\frac{३}{८}$	६	$\frac{९}{१६}$	१२	३	४·१	·७३	१२	१·३	·२८	२१	·४२	.११
१ $\frac{१}{४}$	७	$\frac{१}{२}$	१२	४	३·६	·६६	१३	१·२	·२५	२२	·३७	·१०
१ $\frac{१}{८}$	७	$\frac{७}{१६}$	१४	५	३·२	·५९	१४	१·०	·२३	२३	·३३	.०९
१	८	$\frac{३}{८}$	१६	६	२·८	·५३	१५	·९	·२१	२४	·२९	.०८
$\frac{७}{८}$	९	$\frac{५}{१६}$	१८	७	२·५	·४८	१६	·७९	·१९	२५	·२५	·०७
$\frac{३}{४}$	१०	$\frac{१}{४}$	२०	८	२·२	·४३	१७	·७०	·१७			

मात्राका घूर्ण (Moment of Inertia)

त = वस्तु की तौल

वस्तु	भ्रमणाक्ष	मात्राका घूर्ण
एक रस पतली छड़ (लम्बाई ल)	(१) केन्द्रसे होकर, लम्बाई पर लम्ब (२) सिरेसे होकर, लम्बाई पर लम्ब	$त\frac{ल^2}{१२}$ $त\frac{ल^2}{३}$

वस्तु	भ्रमणाक्ष	मात्रा का घूर्ण
आयताकार तल (भुज क, ख)	(१) गुरुत्व केन्द्र से होकर, धरातल पर लम्ब (२) गुरुत्व केन्द्रसे होकर, ख भुजके समानान्तर	$त\frac{क^2+ख^2}{१२}$ $त\frac{क^2}{१२}$
वृत्ताकार तल (अर्द्ध व्यास अ)	(१) केन्द्र से होकर, धरातल पर लम्ब (२) कोई व्यास	$त\frac{अ^2}{२}$ $त\frac{अ^2}{४}$
ठोस बेलन (अर्द्ध व्यास अ, लम्बाई ल	(१) बेलन का अक्ष (२) गुरुत्व केन्द्रसे होकर, बेलन के अक्ष पर लम्ब	त $त\left(\frac{ल^2}{१२}+\frac{अ^2}{४}\right)$
खोखला बेलन (अन्दरका अर्द्ध-व्यास अ और बाहरका अर्द्ध-व्यास आ, लम्बाई ल)	(१) बेलनका अक्ष (२) गुरुत्व केन्द्र से होकर, अक्षपर लम्ब	$त\frac{आ^2+अ^2}{२}$ $त\left(\frac{ल^2}{१२}+\frac{आ^2+अ^2}{२}\right)$
ठोस गोला (अर्द्ध व्यासअ)	केन्द्रसे होकर	$\frac{२अ^2}{५}$
खोखलागोला (अन्दर-का अर्द्धव्यास अ और बाहरका आ)	केन्द्र से होकर	$त\left(\frac{२}{५}\frac{आ^5-अ^5}{आ^3-अ^3}\right)$
कड़ा (कड़ेका-मध्यम अर्द्ध व्यास आ, मध्यच्छेदका अर्द्धव्यास अ)	(१) केन्द्रसे होकर; कड़े के धरातलपर लम्ब (२) कोई व्यास	$त\left(आ^2+\frac{३\ ^2}{४}\right)$ $त\left(\frac{आ^2}{२}+\frac{५अ^2}{८}\right)$

बर्तनोंकी पानी अथवा पारदसे आयतन सम्बन्धी नाप ठीक करना ।

त° तापक्रम पर बर्तनकी आयतन समाई = $या_त$ = $भा_त$ $य_त$ = $भ_त$ (फ), यदि

$भ_त$ = भरे हुए पानी (अथवा पारद) का त° श तापक्रम पर ग्राममें दृष्ट भार (वायुमें पीतलके बाटोंकी अपेक्षासे)

$भा_त$ = उस द्रवका शून्यमें भार (अर्थात् वायुकी प्लवन शक्तिकी अपेक्षासे शोधित)

$य_त$ = १ ग्राम द्रवका त° श तापक्रम पर आयतन

(फ) = विशिष्ट आयतन और प्लवन शक्तिके शोधनके लिये आवश्यक फलक

नीचेकी सारिणीमें (फ) फलकके भिन्न भिन्न मान दिये जाते हैं:—

तौलनेका तापक्रम (त)	१०° श	११°	१२°	१३°	१४°	१५°	१६°	१७°
फलक (फ) का मान — उ₂ओ	१·००१३३	१.००१४३	१.००१५४	१.००१६६	१.००१७९	१'००१९३	१·००२०८	१'००२२६
फलक (फ) का मान — पा	·०७३६८३	'०७३६९७	'०७३७१०	'०७३७२४	.०७३७३७	'०७३७५०	'०७३७६४	.०७३७७७
तौलनेका तापक्रम (त)	१८°	१९°	२०°	२१°	२२°	२३°	२४°	२५°
फलक (फ) का मान — उ₂ओ	१.००२४४	१.००२६३	१.००२८३	१.००३०५	१·००३२७	१'००३५०	१·००३७५	१'००४००
फलक (फ) का मान — पा	.०७३७९०	'०७३८०४	.०७३८१७	·०७३८३१	'०७८३४४	'०७३८५७	'०७३८७१	'०७३८८४

इससे तौलने के तापक्रम त° श पर बर्तन की आयतन समाई $या_त$ ज्ञात हो सकती है। किसी दूसरे तापक्रम त′ पर आयतन

$$या_{त'} = या_त \{ १ + ग (त' - त) \} = या_त \ (फ)$$

होगा। बर्तन की वस्तु के घनीय विस्तार का गुणक ग है। कांच के बर्तनों के लिये (ग = '००००२५) फलक (फ) का मान निम्न सारिणी से ज्ञात हो सकता है।

(त′—त)	२° श	४°	६°	८°	—२° श	—४°	—६°	—८°
फलक (फ) का मान	१'००००५	१'०००१०	१'०००१५	१'०००२०	'९९९९५	'९९९९०	'९९९८५	·९९९८०

उदाहरण—किसी बर्तन में १०°श पर भरे हुए पानी की तौल= १० ग्राम, अतः बर्तन का १०°श पर आयतन =१० × १'००१३३। अगर यह बर्तन काँच का है तो इसमें १६°श पर १० × १'००१३३ × १'००-०१५ =१०·०१४८ घन. श.म. जल आवेगा।

पारे के स्तम्भ का सूचिकत्व शोधन

(Capillarity correction of Mercury columns)

नतोदरता (meniscus) की ऊँचाई और सूचिक अवपतन नली के छिद्र, पारे की स्वच्छता और नली की दीवारों की अवस्था पर निर्भर हैं। जिन नलियों का व्यास २५ स. म. से अधिक है उनके लिये किसी शोधन की अवश्यकता नहीं है। नीचे की दी हुई सारिणी में भिन्न २ व्यास की काँच की नलियों के लिये शोधन की मात्रा दी हुई है जिसे ऊंचाई में जोड़ना चाहिये।

नली का छेद	स. म. में नतोदरता की ऊंचाई								नलीका छेद	स. म. में नतोदरता की ऊंचाई					
	·४	·६	·८	१·०	१·२	१·४	१.६	१·८		·८	१·०	१·२	१·४	१·६	१·८
स. म.									स.म.						
४	·८३	१.२२	१·[illegible]४	१·९८	२·३७	—	—	—	९	·२१	·२८	·३३	·४०	·४६	·५२
५	·४७	·६५	·८६	१·१९	१·४५	१·८०	—	—	१०	·१५	·२०	·२५	·२९	·३३	·३७
६	·२७	·४१	·५६	·७८	·९८	१·२१	१·४३	—	११	·१०	·१४	·१८	·२१	·२४	·२७
७	·१८	·२८	·४०	·५३	·६७	·८२	·९७	१·१३	१२	·०७	·१०	·१३	·१५	·१८	·१९
८	—	·२०	·२९	·३८	·४६	·५६	·६५	·७७	१३	·०४	·०७	·१०	·१२	·१३	·१४

दबाव-मापक के दृष्टांकों को ०° श के अनुकूल करना

(Reduction of Baromeler Readings to 0°C)

शोधित ऊंचाई ऊ.=ऊ $\left\{ १ - \frac{(ब - अ)त}{(१ + बत)} \right\}$, यदि ऊ और त क्रमशः दबाव मापक की ऊँचाई और तापक्रम हों, ब='०००१८१८, पारद के घनीय विस्तार का गुणक, अ='००००८५, कांच के लम्ब विस्तार का गुणक अथवा पीतल के लिये '००००१८४. ।उद्जन तापक्रम माप।

(आदर्श अंग्रेजी दबावमापकता में पारद ३२°फ पर कर लिया जाता है और माप ६२°फ पर। निम्न सारिणी में दोनों हिमांक पर परिणत कर लिये गये हैं।)

तापक्रम (त)	स. म. में शोधन जिसे घटाना चाहिये									
	कांच माप					पीतल माप				
	स. म. में अशोधित ऊँचाई					स. म. में अशोधित ऊँचाई				
	७००	७२०	७४०	७६०	७८०	७००	७२०	७४०	७६०	७८०
	स. म.									
२°श	'२४	'२५	'२६	'२६	'२७	'२३	'२४	'२४	'२५	'२५
४	'४८	'४९	'५१	'५३	'५४	'४६	'४७	'४८	'५०	'५१
६	'७३	'७५	'७७	'७९	'८१	'६९	'७१	'७२	'७४	'७६
८	'९७	'९९	१'०२	१'०५	१'०८	'९१	'९४	'९७	'९९	१'०२
१०	१'२१	१'२५	१'२८	१'३१	१'३५	१'१४	१'१७	१'२१	१'२४	१'२७
१२	१'४५	१'४९	१'५३	१'५८	१'६२	१'३७	१'४१	१'४५	१'४९	१'५३
१४	१'६९	१'७४	१'७९	१'८४	१'८९	१'६०	१'६४	१'६९	१'७३	१'७८
१६	१'९४	१'९९	२'०५	२'१०	२'१६	१'८२	१'८८	१'९३	१'९८	२'०३
१८	२'१८	२'२४	२'३०	२'३६	२'४३	२'०५	२'११	२'१७	२'२३	२'२९
२०	२'४२	२'४९	२'५६	२'६२	२'६९	२'२८	२'३४	२'४१	२'४७	२'५४
२२	२'६६	२'७३	२'८१	२'८९	२'९६	२'५१	२'५८	२'६५	२'७२	२'७९
२४	२'९०	२'९८	३'०६	३'१५	३'२३	२'७३	२'८१	२'८९	२'९७	३'०५
२६	३'१४	३'२३	३'३२	३'४१	३'५०	२'९६	३'०४	३'१३	३'२१	३'३०
२८	३'३८	३'४७	३'५७	३'६७	३'७७	३'१९	३'२८	३'३७	३'४६	३'५५
३०	३'६२	३'७२	३'८३	३'९३	४'०३	३'४१	३'५१	३'६१	३'७१	३'८०
३२	३'८६	३'९७	४'०८	४'१९	४'३०	३'६४	३'७४	३'८५	३'९५	४'०५
३४	४'१०	४'२१	४'३३	४'४५	४'५७	३'८७	३'९८	४'०९	४'२०	४'३१

तौलों को शून्य के अनुकूल करना

(Reductions of Weighings to Vacuo)

प्लवनशक्तिक (buoyancy) शोधन=ता घ (१/ड-१/ग)=ता क, यदि वायु में वस्तु की प्रत्यक्ष तौल ता ग्राम हो, घ =ग्राम प्रति घ० स०म० में वायु का घनत्व, ड= वस्तु का घनत्व, और ग = बाटों का घनत्व। निम्न सीमान्तों तक यह शोधन ४°/₀ तक ठीक होता है: ७४० स० म० दबाव, १° से २२° तक; ७६० स०म० दबाव, ८° – २९°; ७८० स०म०, १५° से३५° तक। यदि इतने से भी अधिक शुद्धता की आवश्यकता हो तो नीचे दिये हुए क के मानों को घ′ /'००१२ से गुणा करो, जिसमें तौलने के समय के तापक्रम और दबाव पर वायु का सत्य घनत्व घ′ है। कार्ट्ज़ के बाटों के लिये शोधन वही है जो स्फटम् के लिये।

+ से तात्पर्य यह है कि तौलों में यह मात्रा जोड़नी चाहिये।

तौली गई वस्तु का (ड)घनत्व	शोधन फलक (क) स० ग्र० में			तौली गई वस्तु का घनत्व(ड)	शोधन कलका (क) स. ग्र. में		
	पीतल के बांट	प के बांट ग=२१'५	स्फ के बांट ग=२'६५		पीतल के बांट म=८.४	प के बांट ग=२१.५	फ के बांट ग=२.६५
'५	+२'२६	+२'३४	+१'९५	१'६	+'६१	+'६९	+'३०
'५५	+२'०४	+२'१३	+१'७३	१'७	+'५६	+'६५	+'२५
'६	+१'८६	+१'९४	+१'५५	१ ८	+'५२	+'६२	+'२१
'६५	+१'७०	+१'७९	+१'३९	१'९	+'४९	+'५८	+'१८
'७	+१'५७	+१'६६	+१'२६	२	+'४६	+'५४	+'१५
'७५	+'१४६	+१'५५	+१'१५	२'५	+'३४	+'४३	+'०३
'८	+१'३६	+१'४४	+१'०५	३	+'२६	+'३४	–'०५
'८५	+१'२७	+१'३६	+ '९६	३'५	+'२०	+'२९	–'११
'९	+१'१९	+१'२८	+ '८८	४	+'१६	+'२४	–'१५
'९५	+१'१२	+१'२१	+ '८१	५	+'१०	+'१९	–'२१
१	+१'०६	+१'१४	+ '७५	६	+'०६	+'१४	–'२५
१·१	+ '९५	+१'०४	+ '६४	८	+'०१	+'०९	–'३०
१'२	+ '८६	+ '९४	+ '५५	१०	–'०२	+'०६	–'३३
१'३	+ '७८	+ '८७	+ '४७	१५	–'०६	+'०३	–'३७
१'४	+ '७१	+ '८०	+ '४०	२०	–'०८	+'००४	–'३९
१'५	+ '६६	+ '७५	+ '३५	२२	–'०९	+'००१	–'४०

गैसों के आयतन को ०° श और ७६० स० म० दबाव के अनुकूल करना।

शोधित आयतन $य_0$ ={ य/(१ +'००३६७.त) } . द/ ७६०, यदि य , त और द क्रमशः गैस के दृष्ट आयतन, तापक्रम और दबाव (पारद स० म० में) हैं। गुरुत्व ग = ९८०'६२ श० म० प्रति से° रैग्नाल्ट द्वारा प्रयुक्त गुणक= '००३६७।

(१ + .००३६७ त) के मान

तापक्रम (त)	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९
०°श	१·००००	१·००३७	१·००७३	१·०११०	१·०१४७	१·०१८३	१·०२२०	१·०२५७	१·०२९४	१·०३३०
१०	०३६७	०४०४	०४४०	०४७७	०५१४	०५५०	०५८७	०६२४	०६६१	०६९७
२०	०७३४	०७७१	०८०७	०८४४	०८८१	०९१७	०९५४	०९९१	१०२८	१०६४
३०	११०१	११३८	११७४	१२११	१२४८	१२८४	१३२१	१३५८	१३९५	१४३१
४०	१४६८	१५०५	१५४१	१५७८	१६१५	१६५१	१६८८	१७२५	१७६२	१७९८
५०	१८३५	१८७२	१९०८	१९४५	१९८२	२०१८	२०५५	२०९२	२१२९	२१६५
६०	२२०२	२२३९	२२७५	२३१२	२३४९	२३८५	२४२२	२४५९	२४९६	२५३२
७०	२५६९	२६०६	२६४२	२६७९	२७१६	२७५२	२७८९	२८२६	२८६३	२८९९
८०	२९३६	२९७३	३००९	३०४६	३०८३	३११९	३१५६	३१९३	३२३०	३२६६
९०	३३०३	३३४०	३३७६	३४१३	३४५०	३४८६	३५२३	३५६०	३५९७	३६३३
१००	३६७०	३७०७	३७४३	३७८०	३८१७	३८५३	३८९०	३९२७	३९६४	४०००
११०	४०३७	४०७४	४११०	४१४७	४१८४	४२२०	४२५७	४२९४	४३३१	४३६७

क्रमशः

समालोचना

(समालोचक—कृष्णानन्द)

(१) दोहावली सटीक—मूल्य १)

(टीकाकार—सुप्रसिद्ध विद्वान् लाला भगवानदीन)

प्रकाशक—साहित्य भूषण कार्यालय काशी।

गोस्वामी तुलसीदास कृत दोहावली पर यह बहुत उत्तम और मनोहारिणी टीका छपी है। प्रत्येक दोहेकी टीकाका क्रम इस प्रकार है (१) कठिन शब्दोंका अर्थ (२) दोहेका पूरा अर्थ लिखकर अलंकार भी समझा दिया है। आरम्भमें १११ पृष्ठकी विस्तृत भूमिकामें लालाजीने गोस्वामीजीकी कविताकी आलोचना और उनके अनेक सिद्धान्तों जैसे माया और जीव, सगुण, निर्गुण रूप, भक्ति, ज्ञान, प्रेम, नीति, राजनीति आदिकी विवेचनाकी है अनेक कवियोंके पद्योंसे गोस्वामी जीके पद्योंकी समता और तुलनाकी गई है। यह विस्तृत भूमिका और विस्तृत टीका देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। श्रीरामचन्द्र जीके भक्तोंसे और गोस्वामी जीके प्रेमियोंसे साग्रह निवेदन करूँगा कि इस सटीक दोहावलीको पढ़कर ज्ञान और आनन्द प्राप्त करें।

(२) सत्य हरिश्चन्द्र नाटक—मूल्य ।=)

राजसंस्करण १) (लाला भगवानदीन और विश्वनाथ मिश्र सम्पादित)

प्रकाशक—साहित्य भूषण कार्यालय—काशी।

यह टिप्पणी विशेषकर विद्यार्थियोंके लिए ही लिखी गई है। प्रत्येक पृष्ठके नीचे कठिन शब्दों का अर्थ और यथास्थान टिप्पणी हैं। आरम्भमें एक विस्तृत भूमिका है जिसमें रूपक व नाटकके सम्बन्धमें बहुत सी जानने योग्य बातें लिखकर इस नाटकके पात्रोंकी आलोचनाकी गई है। पुस्तकके अन्तमें जो परिशिष्ट है वह विद्यार्थियोंके बड़े काम की है। उसमें नाटकके सब छन्दोंके कठिन शब्दोंका अर्थ, भावार्थ और अलंकार व छन्दभेद बहुत अच्छी तरह समझाया है। भूमिका और परिशिष्ट बड़ाही महत्वपूर्ण है। मेरा निश्चय है कि प्रथमाके विद्यार्थियोंके लिए इस नाटकका इससे अधिक उत्तम कोई संस्करण नहीं निकला। जितनी बातें परीक्षाके लिए जाननी चाहिएँ वह सब इसमें मौजूद हैं।

(३) भारतवर्षका इतिहास—(लेखक—पांडेय रामावतार शर्मा बी० ए०) प्रकाशक—रामचन्द्र वर्मा साहित्य रत्न माला कार्यालय बनारस। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १॥)

आजकल स्कूलों में जो इतिहास पढ़ाये जाते हैं उनमें सबसे बड़ा दोष यह होता है कि भारतीय दृष्टिसे वे नहीं लिखे रहते। बड़े हर्षकी बात है कि पांडेय रामावतार बी० ए० ने यह इतिहास मैट्रिकुलेशन परीक्षार्थियों के लिये तैयार किया है। इसमें वह दोष नहीं है। यद्यपि अंग्रेजी पुस्तकोंके आधार पर तैयार किया गया है तदापि बहुत जगह उन्होंने स्वतंत्र विचारसे काम लिया है। पुस्तक तीन भागोंमें विभक्त हैं (१) प्राचीन भारत (२) मध्यकालीन भारत (३) वर्तमान भारत। प्राचीन भारत में धार्मिक, सामाजिक राजनैतिक, विद्या, कला, सभ्यता, आदि सभी बातोंका वर्णन बहुत रोचक ढंगसे किया गया है। मध्यकालीन भारत विदेशी आक्रमणोंके शासनकालसे और वर्त्तमान भारत अंग्रेजी शासनकालसे आरंभ किया है। किसी घटना पर परदा नहीं डाला है और न किसी दोषको छिपाया है। मुख्य मुख्य शासकोंके शासन और चरित्र का, तथा बड़ी बड़ी घटनाओंका जैसा निष्पक्ष, रोचक और शिक्षाप्रद वर्णन इसमें है ऐसी किसी भी स्कूल प्रचलित इतिहासमें देखा नहीं गया। अंग्रेजी शासनका भी वर्णन अच्छे ढंग से करके अन्तमें अंग्रेजी शासनके लाभ लिखे गये हैं। पुस्तकमें बहुतसे चित्र व मानचित्र (नकशे) और वंशावलियाँ हैं। यद्यपि इसमें संस्कृत शब्दों

का बाहुल्य है तदापि यह इतिहास मैट्रिकके विद्यार्थियोंके लिये सर्वथा उपयोगी है।

यू० पी० टेक्स्ट बुक कमीटीके मेम्बरोंसे निवेदन है कि इसे मैट्रिक परीक्षामें नियुक्त करनेकी कृपा करें, जिससे विद्यार्थियोंका विशेष हित हो और शिक्षकोंसे मेरा अनुरोध है कि इसकी एक प्रति अपने पास रखकर लाभ उठावें।

जन्मेजयका नागयज्ञ (लेखक—जयशंकर 'प्रसाद') प्रकाशक—रामचन्द्र वर्मा, साहित्य रत्नमाला कार्यालय बनारस। मूल्य ।=)

इस ऐतिहासिक नाटकको पढ़कर मुझे बड़ा हर्ष इस बातका हुआ कि विद्वान् लेखक ने हमारे पौराणिक भाइयोंकी तरह अन्धविश्वास से काम नहीं लिया है। अन्धविश्वासी लोग समझते हैं कि नाग लोग सर्प थे जिन्हें जन्मेजय ने यज्ञकी आहुतियोंमें झोंककर समाप्त कर डाला। परन्तु यह बड़ी भूल है। मनुष्योंकी एक जातिका नाम नाग था। इस नाटकमें यह दिखलाया गया है कि इस समय आर्योंके मनमें वृथाभिमानका अंकुर उग चुका था और आर्य व नाग दोनों जातियोंमें परस्पर कितना द्वेष और विरोध था और फिर दोनों जातियों किस प्रकार मैत्री व एकता स्थापित हुई। इन सब बातोंका इतना रोचक वर्णन है कि बिना समाप्त किये पुस्तक छोड़नेको जी नहीं चाहता। बीच बीचमें बड़े उच्च भाव दरसाये गये हैं जिनसे लेखक की प्रतिभा झलकती है। यह नाटक शिक्षाप्रद और रंग मंचपर खेलने योग्य है आर्यसमाजी और सनातनधर्मी सज्जनोंसे प्रार्थना है कि इस नाटक को पढ़नेकी कृपा अवश्य करें।

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

मध्यमाधिकार ... ... ॥=)

स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)

त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ारस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... =)

१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० ... बी० के मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

भाग १ ... ... २॥)

भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग।

मुद्रक—दीवान वंशधारीलाल हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१४७ Reg. No. A. 708

भाग २५ Vol. 25. मिथुन, १९८४ जून १९२७ संख्या ३ No. 3

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस. सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

गन्धकके ओषिद और अम्ल—[ले० श्रीसत्य-
प्रकाश एम. एस. सी. ९७
अग्नि—[ले० श्रीसत्यप्रकाश ए. एस. सी. ... १०५
संश्लेषण—युग—[ले० श्री० सत्यचन्द्र
विद्यालंकार १०८
भारत वासियों के साधारण भोजन पदार्थों में
रासायनिक गुणों का कुछ परिचय—
[ले० श्री विमल कुमार मुकर्जी एम० एस० सी० १०९
मगनीसम और जल—[ले० श्री प्रकाश चन्द्रजी
एम० एस० सी. १११
शारीरिक प्रक्रियाओं पर तापक्रमका प्रभाव
और सहनशीलता का प्रश्न—[ले० श्री०
डाक्टर नीलरत्न धर डी० एस० सी, आई० ई० एस ११३
वैज्ञानिक परिमाण—[ले० श्री डा० निहाल करण
सेठी डी. एस-सी. ११७
पानी—[ले० श्री रामलाल विशारद हायजिन
इंस्पेक्टर १२५
खपत—[विश्वप्रकाश, बी-ए., बिशारद ... १३०
पृथ्वीकी गुरुत्व शक्तिके प्रभाव—[ले० श्री०
कृष्णचन्द्र, बी. एस- सी. १३३
गुब्बारे—[ले० श्री० डा० शिखिभूषण दत्त डी०
एस० सी० ... ... १४३

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग २५ | मिथुन संवत् १९८४ | संख्या ३

गन्धकके ओषिद और अम्ल

(ले० श्री सत्य प्रकाश, एम० एस० सी०)

गत अध्यायमें गन्धकके कुछ गुणों और उद्जनगन्धिदके विषय में लिखा जा चुका है। गन्धक ओषजनसे संयुक्त हो कर भिन्न भिन्न प्रकारके यौगिक बनाता है। इन यौगिकों में से गन्धक-द्विओषिद, ग ओ$_2$ और गन्धक-त्रिओषिद, ग ओ$_3$, अधिक उपयोगी हैं। इनका ही वर्णन अब यहां दिया जावेगा।

गन्धक द्विओषिद, ग ओ$_2$

गन्धक द्विओषिद का थोड़ा बहुत ज्ञान तो बहुत दिनों से लोगोंको है पर सबसे प्रथम प्रीस्टले (सं० १८३१ वि०) ने इसे शुद्ध रूपमें प्राप्त किया था। यह तीव्र द्रावकाम्ल, उ$_2$ ग ओ$_4$ है, जिसका वर्णन आगे दिया जावेगा, पारद् के साथ गरम करके प्राप्त किया गया था। सं० १८३४ वि०में फ्रेञ्च वैज्ञानिक लवाशिये ने इसका संगठन निश्चित किया। इसका सूत्र ग ओ$_2$ है।

जब गन्धक वायु में जलाया जाता है तो यह पिघलने लगता है, और फिर ज्यों ज्यों तापक्रम में वृद्धि होती है, धीरे धीरे यह जलने लगता है। इस समय यदि अंधेरे में देखा जाय तो इसमें हलकी सी दीप्ति प्रत्यक्ष होगी। इसका कारण यह है कि २६०°श तापक्रमके लगभग गन्धककी वाष्पों का ओषदीकरण होने लगता है। ३६३° के निकट गन्धक में आग लग जाती है और यह नीली लपक से जलने लगता है। इस समय कुछ गन्धक द्विओषिद ग ओ$_2$ और कुछ गन्धक त्रिओषिद ग ओ$_3$ जनित होता है।

गन्धक द्विओषिद के बनाने की मुख्य विधियाँ नीचे दी जाती हैं।

(१) प्रयोग शालाओं के उपयोग के लिये गन्धक द्विओषिद् ताम्रके छीलन या चूर्ण और संपृक्त गन्धकाम्ल को गरम करके बनाया जाता है। एक कुप्पी में ताम्र चूर्ण (छीलन) रखो और उसके ऊपर संपृक्त गन्धकाम्ल डालदो। कुप्पीके मुंह मे एक काग लगाओ जिसमें दो छेद हों। एक छेद में पेंचदार कीप और दूसरे में वाहक नली लगादो। पेचदार कीप में गन्धकाम्ल और भर दो कुप्पी को वाष्प कुंडी पर सावधानी से गरम करो। जब गन्धक द्विओषिद् निकलने लगे तो फिर धीरे धीरे गरम करो जिससे गैस का वेग नियमित रहसके। इसको गैस भरने के बेलनों में भरलो अथवा पानी में प्रवाहित करके संपृक्त घोल बना लो। यह पानी में काफी घुलन शील है।

इस प्रयोगकी प्रक्रिया इस प्रकार है—

$ता + २ उ_2 गओ_4 = ता ग ओ_4 + २उ_2ओ + गओ_2$

२. ताम्रके स्थानमें पारद, अथवा रजत का भी उपयोग किया जासकता है। इन धातुओंको तीव्र गन्धकाम्ल के साथ गरम करनेसे भी गओ$_2$ प्राप्त हो सकता है।

$पा + २उ_2गओ_4 = पा गओ_4 + २उ_2ओ + गओ_2$

$२र + २उ_2गओ_4 = र_2 गओ_4 + २उ_2ओ + गओ_2$

३. कोयलेको तीव्र गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे कोयला कर्बन द्विओषिदमें परिणत होजायगा और गन्धक द्वि-ओषिद् प्राप्त होजायगा—

$क + २उ_2गओ_4 = २ गओ_2 + क ओ_2 + २उ_2ओ$

४. यदि यह वायव्य व्यापारिक मात्रामें उत्पन्न करना हो तो गन्धक या लोह पाइरायटीज़, लोग$_2$, को गरम करना चाहिये। गन्धकाम्लके बनानेमें इस विधि का उपयोग किया जाता है जिसका वर्णन आगे दिया जावेगा।

५. गन्धक और तीव्र गन्धकाम्ल को साथ साथ गरम करनेसे शुद्ध गन्धकद्विओषिद् बनाया जा सकता है:—

$ग + २उ_2 गओ_4 = ३गओ_2 + २उ_2ओ$

६. गन्धितों और अर्धगन्धितों को तीव्र गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे भी गन्धकद्विओषिदकी शुद्ध मात्रा प्राप्त होसकती है। सैन्धक अर्धगन्धित सै-उगओ$_3$ इस कामके लिये अत्यन्त उपयोगी है:—

$सै उ गओ_3 + उ_2 ग ओ_4 = सै उगओ_4 + उ_2 ओ + गओ_2$

सैन्धक गन्धित, सै$_2$ गओ$_3$ के उपयोग करनेमें प्रक्रिया निम्न प्रकार होगी—

$सै_2 ग ओ_3 + उ_2गओ_4$
$= सै_2गओ_4 + उ_2ओ + ग ओ_2$

गन्धकद्विओषिदके गुण—यह कटु दुर्गन्ध वाला नीरंग विषैला वायव्य है। गन्धकके जलानेमें जो दुर्गन्ध प्रतीत होती है वह इसी वायव्य के कारण है। यह वायुकी अपेक्षा २·२६४ गुणा भारी है। यह किसी वस्तुके जलनेमें साधक नहीं होता है। पांशुजम् धातु इसमें जल उठती है। निम्न प्रकिया इस जलउठनेका कारण है:—

$४ पां + ३गओ_2 = पां_2गओ_3$ (गन्धित) $+ पां_2 ग_2 ओ_3$ (गन्धकीगन्धेत)

यह वायव्य जलमें बहुत घुलनशील है। ०° श तापक्रम पर १ भाग (आयतनसे) जलमें यह ८० भागके लगभग घुलजाता है। पर यह पारद के ऊपर संचित किया जा सकता है। रोगाणुनाशक होनेके कारण यह ओषधिके रूपमें उपयुक्त होता है।

अन्य वायव्योंकी अपेक्षा यह वायव्य अधिक सुगमतासे द्रवीभूत किया जा सकता है। तापक्रमको केवल ८°श तक ठंडा करनेसे ही यह द्रव हो जायगा अथवा १·५३ वातावरण दबाव डालनेसे तो यह ०°श पर भी द्रवीभूत हो सकता है। इस प्रकार यदि कुप्पीमें बनते हुए गन्धक द्विओषिदको द्रावक मिश्रण में रखी हुई कांचकी चक्करदार नलीमें प्रवाहित किया

जाय तो यह द्रवीभूत हो जायगा। द्रावक मिश्रण (freezing mixture) २ भाग बर्फ में १ भाग साधारण नमक मिलाकर बनाया जाता है। इस मिश्रण द्वारा तापक्रम—१८° श तक कम किया जा सकता है।

द्रव गन्धक द्विओषिद नीरंग पदार्थ है जिसका क्वथनांक −८° है। यदि तापक्रम −७६° कर दिया जाय तो यह पारदर्शक ठोस पदार्थ हो सकता है।

संगठन—विशेष प्रकार के आयतन मापकमें ओषजन भर कर उसमें गन्धक जला कर यह प्रदर्शित किया जा सकता है, कि उसी दबाव पर जो आयतन ओषजन का था वही आयतन उतने ओषजनसे जनित गन्धकका द्विओषिद्का होगा। इससे स्पष्ट है कि गन्धक द्विओषिद्में अपने आयतनके बराबर ही ओषजनका आयतन है। यह भी मालूम किया गया है कि यह वायव्य उदजनकी अपेक्षा ३२ गुणा भारी है। अतः २२·४ लिटर गैसका भार ३२×२ = ६४ ग्राम हुआ। पर इतने ही ओषजनका भार ३२ ग्राम होता है। अतः इस वायव्यमें शेष ३२ ग्राम (६४ − ३२ = ३२) गन्धक हुआ। इस प्रकार इसके एक अणुमें गन्धकका एक परमाणु है जिसका परमाणु भार ३२ है और दो परमाणु ओषजनके हैं। इस प्रकार इसका सूत्र ग ओ₂ हुआ।

गन्धसाम्ल (Sulphurous Acid)—उ₂गओ₃ यह कहा जा चुका है कि गन्धक द्विओषिद जलमें घुलनशील है। यह जलीय घोल नील द्योतक पत्रको लाल कर देता है। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि जलमें कोई अम्ल विद्यमान है। वास्तवमें गओ₂ जलके संसर्ग से निम्न प्रक्रियाके अनुसार गन्धसाम्ल बनाता है—

$$ग ओ_2 + उ_2 ओ = उ_2 ग ओ_3$$
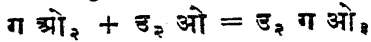
यदि अम्लीय घोल को गरम किया जाय तो गओ₂ फिर निकलने लगेगा।

$$उ_2गओ_3 = उ_2ओ + गओ_2$$
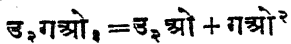
यह अम्ल निबल अम्ल है। यदि ३° श तापक्रम पर जल इस वायव्य द्वारा संपृक्त कर दिया जाय तो एक रवेदार-पदार्थ जमा होने लगेगा जिसे गन्धसाम्ल का उद्देत (hydrate) कहते हैं।

गन्धित—(Sulphites) अन्य अम्लों के समान यह अम्ल भी लवण बनाता है। इन लवणों को गन्धित कहते हैं। जैसे गन्धसाम्ल और दाहकक्षार, सैन्धक उदोषिद के संसर्ग से सैन्धक गन्धित—

$$२ सै ओउ + उ_2 गओ_3 = सै_2 गओ_3 + २उ_2ओ$$

एक बात ध्यान रखने योग्य है। गन्धसाम्ल में उदजन के दो परमाणु ऐसे हैं जिन्हें हम धनात्मक मूलों द्वारा स्थापित कर सकते हैं। पर यह आवश्यक नहीं है कि दोनों उदजन स्थापित हो ही जायँ। ऐसा भी होगा कि कभी कभी १ उदजन के स्थान में तो सैन्धकम् आदिका एक अणु आ जाय पर दूसरा उदजन अपरिवर्तित रह जाय। जिस अम्लमें इस प्रकार दो स्थापनीय उदजन परमाणु होते हैं उन्हें द्विभस्मिक (dibasic) कहते हैं। निम्न सूत्रों द्वारा गन्धसाम्ल द्वारा प्रदत्त अर्धगन्धित और गन्धितों का भेद स्पष्ट है—

$$\begin{matrix}उ \\ उ\end{matrix}>गओ_3 \quad \begin{matrix}सै \\ उ\end{matrix}>गओ_3 \text{ या } सैउगओ_3 \quad \begin{matrix}सै \\ सै\end{matrix}>गओ_3$$
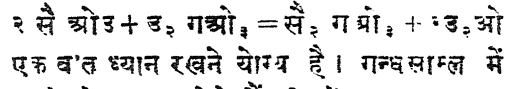
गन्धसाम्ल — सैन्धकअर्धगन्धित — सैन्धकगन्धित

सैन्धक अर्ध गन्धित को अम्ल सैन्धक गन्धित कहते हैं। अर्द्ध गन्धित का अम्लीय मूल-उगओ₃′ एक-शक्तिक है, पर गन्धितों का अम्लीयमूल-गओ₃″ द्विशक्तिक है। उनमें विद्युत् पृथक्करण निम्न प्रकार होता है।

$$सैउगओ_3 \rightleftharpoons सै^{\cdot} + उगओ_3{}'$$

अर्धगन्धित

$$सै_2गओ_3 \rightleftharpoons २सै^{\cdot} + गओ_3{}''$$
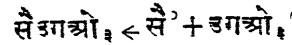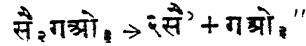
गन्धित

खटिकगन्धित और अर्धगन्धित निम्न प्रकार प्रदर्शित किये जावेंगे।

$$ख=गओ_3 \qquad \begin{matrix}उ \\ ख \\ उ\end{matrix}\begin{matrix}>गओ_3 \\ >गओ_3\end{matrix} \text{ (अर्धगन्धित)}$$
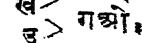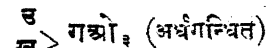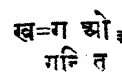
गन्धित

यह अर्धगन्धित रोगाणुनाशक-क्रियाओं में अधिक उपयुक्त होते हैं। पांशुज और सैन्धक गन्धित और अर्धगन्धित दोनों फोटोग्राफी के काम में भी उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

गन्धकत्रिओषिद ग ओ$_3$

बनाने की विधियां :—

(१) यदि किसी नली में रक्त तप्त (५०० श) पररौप्यम् स्पंज अथवा पररौप्यिद ए बेस्टसके ऊपर गन्धक द्विओषिद ग ओ$_2$ और ओषजनका मिश्रण प्रवाहित किया जाय तो गन्धक त्रिओषिद ग ओ$_3$ नामक वायव्य प्राप्त होता है जिसमें घनी श्वेत वाष्पें होती हैं :—

२ ग ओ$_2$ + ओ$_2$ = २ ग ओ$_3$

यह त्रिओषिद यदि द्रावक मिश्रणमें प्रवाहितकर ठंडा किया जाय तो श्वेत रेशमी सुइयोंके आकारके लम्बे सुन्दर रवे प्राप्त होंगे। इनके प्राप्त करनेके लिये यह परमावश्यक है कि यन्त्रका प्रत्येक भाग शुष्क होना चाहिये। यदि थोड़ी सी भी नमी होगी तो द्रव गन्धकाम्ल बना जायगा।

(२) गन्धक द्विओषिद और ओषोन ओ$_3$के मिलनेसे एक दम त्रिओषिद बन सकता है:—

३ ग ओ$_2$ + ओ$_3$ = ३ ग ओ$_3$

(३) तीव्र गन्धकाम्लमें स्फुर पंचौषिद मिलाकर गरम करनेसे भी यह प्राप्त हो सकता है। स्फुर पचौषिद गन्धकाम्लमेंसे जलका एक अणु पृथक् कर लेता है :—

उ$_2$ ग ओ$_4$ + स्फु$_2$ ओ$_5$ = ग ओ$_3$ + २उस्फु ओ$_3$

(४) नार्डहौसनके गन्धकाम्लको सावधानीसे स्रवित करनेसे भी यह प्राप्त हो सकता है। वस्तुतः नार्डहौसनका गन्धकाम्ल गन्धकाम्ल और गन्धक त्रिओषिदका सम्मिश्रण होता है।

ग ओ$_3$ के गुण - यह दो प्रकारका होता है—एक तो द्रव जिसका क्वथनांक ४४.५२° है। ठोस होने पर इसके पारदर्शक रवे प्राप्त होते हैं जिनका द्रवांक १६.८° है। इसका घनत्व २०° पर १.९२५५ है। यही त्रिओषिद यदि थोड़ेसे जल कण की (नमी में) विद्यमानता में कुछ समय के लिये रख छोड़ा जाय तो एसबेस्टस के समान रेशमी रवे बन जायँगे। इसे दूसरे प्रकार का गन्धक त्रिओषिद कह सकते हैं। ५०° श तक गरम करनेसे यह फिर पहले प्रकारके गन्धकत्रिओषिदमें परिणत हो जायगा।

संगठन—जब गन्धकत्रिओषिद रक्तत प्तनलिकामें प्रवाहित किया जाता है तो बराबर आयतनका गन्धक द्विओषिद और आधे आयतनका ओषजन जनित होता है। इस वायव्यका वाष्प घनत्व ४० है अतः परमाणुभार ८० और इस प्रकार सूत्र ग ओ$_3$ हुआ।

२ ग ओ$_3$ = २ ग ओ$_2$ + ओ$_2$
२ आय' २आय' १ आय'

गन्धकाम्ल उ$_2$ ग ओ$_4$

गन्धकाम्लके समान अधिक उपयोगी अम्ल कोई भी नहीं है। इसकी उत्पत्ति पर ही अन्य अम्लों की उत्पत्ति निर्भर है। जो देश जितना ही अधिक यह अम्ल उत्पन्न कर सकेगा उतनीही उसकी अधिक वृद्धि होगी।

गन्धकाम्ल की उत्पत्ति के लिये ४ पदार्थों की आवश्यकता है।

( ) गन्धक द्विओषिद ग ओ$_2$

(२) भाप

(३) वायु

(४) नोषिकाम्ल की वाष्पें

इन चारों का मिश्रण एक बड़े कमरे में जिसका फर्श और अस्तर सीसम् का हो प्रवाहित किया जाता है।

प्रक्रियायें इस प्रकार सुगमता से समझी जा सकती हैं। गन्धक द्विओषिद जल वाष्प से संयुक्त हो कर पहले गन्धकाम्ल बनाता है:—

उ$_2$ ओ + ग ओ$_2$ = उ$_2$ ग ओ$_3$

यह गन्धसाम्ल वायुके ओषजन द्वारा ओषदीकरणकी प्रक्रियासे गन्धकाम्लमें परिणत हो जाता है।

$\text{उ}_2\text{ ग ओ}_3 + \text{ओ} = \text{उ}_2\text{ ग ओ}_4$

देखनेमें तो ये प्रक्रियायें बहुत ही सरल ज्ञात होती हैं पर व्यापारिक सफलता प्राप्त करनेके हेतु यह इतना सुगम कार्य नहीं है। यह ओषदीकरण वायुमंडलमें बहुत धीरे धीरे होता है।

इस प्रक्रिया को सफलीभूत बनाने के हेतु नोषिकाम्ल का आश्रय लिया जाता है। इनकी प्रक्रियायें आगे लिखी जांयगी।

(क) गन्धक अथवा लोह पाइरायटीजको जला कर गन्धक द्विओषिद बनाया जाता है।

(ख) चिली के शोरे, सैन्धक नोषेत सै नो ओ_3 पर गन्धकाम्लके प्रभाव से नोषिकाम्ल उ नो ओ_3 बनाया जाता है—

$\text{उ}_2\text{ ग ओ}_4 + 2\text{ सै नो ओ}_3 = 2\text{ उ नो ओ}_3 + \text{सै}_2\text{ ग ओ}_4$

(ग) गन्धक द्विओषिद ग ओ_2 और नोषिकाम्लका मिश्रण साथ साथ प्रवाहित किया जाता है जिससे नोषिकाम्ल का निम्न प्रकार अवकरण होता है।

$\text{ग ओ}_2 + 2\text{ उ नो ओ}_3 = \text{उ}_2\text{ ग ओ}_4 + 2\text{ नो ओ}_2$

$\text{नो ओ}_2 + \text{ग ओ}_2 + \text{उ}_2\text{ ओ} = \text{उ}_2\text{ ग ओ}_4 + \text{नो ओ}$

इस प्रकार गओ_2 का गन्धकाम्ल बनता है और नोषिक ओषिद, नो ओ, आगे काम आता है।

(घ) नोषिक ओषिद वायुके ओषजनसे तत्क्षण संयुक्त होकर फिर नोषजन द्विओषिद अथवा नो ओ_2 में परिणत हो जाता है —

$2\text{ नो ओ} + \text{ओ}_2 = 2\text{ नो ओ}_2$

$2\text{ नो ओ} + \text{ओ}_2 = \text{नो ओ}_2$

(ङ) यह नो ओ_2 फिर पूर्ववत् गन्धकद्विओषिदसे प्रक्रिया करके गन्धकाम्ल बना देता है—

$\text{नो ओ}_2 + \text{ग ओ}_2 + \text{उ}_2\text{ ओ} = \text{उ}_2\text{ ग ओ}_4 + \text{नो ओ}$

इस प्रकार यह प्रक्रिया लगातार होती रहती है, और आरम्भमें थोड़ेसे ही नोषिकाम्लकी आवश्यकता होती है। नोषिकाम्लकी वाष्पका काम गन्धक द्विओषिदको वायुके ओषजन द्वारा ओषदीकरण करानेका है। वायुमंडलका जो ओषजन सीधी तरहसे ग ओ_2 से संयुक्त नहीं होता था वह इस टेढ़ी प्रक्रिया द्वारा उपयुक्त हो जाता है।

यदि भापका उपयोग इस प्रक्रियामें न किया जाय तो एक प्रकारके श्वेत रवे प्राप्त होते हैं, जिनका सूत्र $\text{उ ग ओ}_3(\text{नो ओ}_2)$ है। इसे सीस-कमरेके रवे कहते हैं।

$$2\text{ उ नो ओ}_3 + 2\text{ ग ओ}_2 = 2\text{ ग ओ}_2 < \begin{matrix}\text{ओ उ}\\ \text{नो ओ}_2\end{matrix}$$

यह पदार्थ ऐसा गन्धकाम्ल ही समझना चाहिये जिसमें एक उदोषिल मूलके स्थानमें एक नोषो मूल —नो ओ_2 स्थापित कर दिया गया हो।

$$\underset{\text{गन्धकाम्ल}}{\text{ग ओ}_2 < \begin{matrix}\text{ओ उ}\\ \text{ओ उ}\end{matrix}} \qquad \underset{\text{श्वेतरवे}}{\text{ग ओ}_2 < \begin{matrix}\text{ओ उ}\\ \text{नो ओ}_2\end{matrix}}$$

जब इन रवों पर भाप प्रवाहित की जाती है तो गन्धकाम्ल और नोषसाम्ल (जिसमें लालवाष्पें निकलती हैं) बन जाता है—

$$\text{ग ओ}_2 < \begin{matrix}\text{ओ उ}\\ \text{नो ओ}_2\end{matrix} + \text{उ}_2\text{ ओ}$$

$$= \underset{\text{गन्धकाम्ल}}{\text{ग ओ}_2 < \begin{matrix}\text{ओ उ}\\ \text{ओ उ}\end{matrix}} + \underset{\text{नोषसाम्ल}}{\text{उ नो ओ}_2}$$

गन्धकाम्लको व्यापारिक मात्रामें उपलब्ध करनेके हेतु यह परमावश्यक है कि सब वायव्यों—१. गन्धक द्विओषिद २. नोषिकवाष्पें, ३. वायु ४. भाप—का अनुपात ठीक रखा जाय। यदि कमरोंमें बहुत भाप प्रवाहित कर दी जायगी तो वे बहुत गरम हो जायँगे और उपलब्ध गन्धकाम्ल हल्का भी पड़ जायगा।

यदि नोषिक वाष्पें कम होंगी तो गन्धक द्विओषिद का ओषदीकरण भी पूर्णतः न होगा। यदि वायु आवश्यकता से अधिक प्रविष्ट करा दिया गया तो अन्य वायव्यों के हल्के पड़ जानेसे प्रक्रिया उचित तीव्रतासे न होगी। तात्पर्य्य यह है कि सब वायव्योंके अनुपात ठीक होने चाहिये।

एक लम्बी ऊंची चिमनी में वायु गरम किया जाता है। इसके झोंके से वायव्य मिश्रण (गन्धक द्विओषिद+वायु+नोषिक ओषिद) सीस धातुके कमरोंमें प्रवाहित किया जाता है। इस विधिमें वायुके साथ मिली हुई नोषसवाष्पें कमरोंके दूसरी ओर निकलने लगती हैं और इस प्रकार व्यर्थ जाती हैं। अतः कमरोंके दूसरे सिरे पर एक मीनार बनाई जाती है जिसे गेलूजक-स्तम्भ कहते हैं। यहाँ ये लाल नोषस वाष्पें अभिशोषित हो जाती हैं। इस स्तम्भमें ठंडा तीव्र गन्धकाम्ल बूंद बूंद टपकता रहता है। यह गन्धकाम्ल नोषस वाष्पों द्वारा नोषीभूत होकर पूर्वोल्लेखानुसार गओ२ ओउ नोओ२ बन जाता है। यह नोषीभूत गन्धकाम्ल दूसरे स्तम्भमें जिसे ग्लोवर स्तम्भ कहते हैं टपकाया जाता है। इस ग्लोवर स्तम्भमें पाइरायटीज की भट्टीमेंसे जनित गन्धक द्विओषिद प्रवाहित होता रहता है। यह गओ२ दो काम करता है। उपर्युक्त नोषीभूत गन्धकाम्लके साथ मिश्रित नोषस वाष्पोंको यह पृथक् कर देता है और साथ साथ सीस धातुके कमरेमें प्रविष्ट होनेसे पूर्व ही गरम गैसें ठण्डी पड़ जाती है। इसी समय हलका अम्ल पानीके दूर होजानेसे जो भापके रूपमें प्रविष्ट हुआ था धीरे धीरे सपृक्त हो जाता है। इस प्रकार यह गन्धकाम्ल की उत्तरोत्तर उत्पत्ति में सहायक होता है।

सीस-कमरेमें बना हुआ गन्धकाम्ल हलका होता है जिसका घनत्व १·६ है। इस अम्ल को संपृक्त करनेके लिये इसे सीसम् धातुके बने हुए कड़ाहों में गरम कर वाष्पीभूत करते हैं जब तक घनत्व १·७२ न हो जाय। इस अम्लका नाम 'तूतियेका भूरा तैल' तू-भू. तै. (B. O. V-Brown oil of vitriol) है। इसको और अधिक संपृक्त करनेके लिये सीसम् धातु के बर्तनोंका उपयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि अधिक संपृक्त अम्ल सीसम् को खा जाता है तू. भू. तै. को अतः परगौप्यम् अथवा काँचके बर्तन में वाष्पीभूत करना चाहिये। इस प्रकार प्राप्त अम्ल अधिक शुद्ध नहीं होता है। इसमें नोषस वाष्प और गन्धकद्वि ओषिद तो होता ही है पर लोह पायराइटीज़ में वर्तमान अशुद्धि संक्षीणम् भी इसमें मिली होती है और साथ ही साथ सीसम् कमरों की और विशेषतः सीस कड़ाहों का कुछ सीसगन्धेत भी होता है। अतः शुद्ध अम्ल प्राप्त करनेके लिये इसे फिर स्रवित करना चाहिये। पहले स्रवित पदार्थमें सब उड़नशील अशुद्धियाँ होंगी, तत्पश्चात् शुद्ध संपृक्त अम्ल होगा। इस अम्लमें नोषस वाष्प, संक्षीणम् सीसम् आदि कुछ न होंगे और न कार्बनिक पदार्थ की ही अशुद्धियाँ होंगी।

गन्धकाम्ल की संपर्क-विधि

(Contact Process of sulphuric acid)

आजकल व्यापारिक मात्रा में गन्धकाम्ल सम्पर्क विधि के उपयोग से बनाया जाता है। लोह पाइरायटीज़ को जलाकर ७ प्रतिशतक गओ२, और १० % ओषजन और ८३ % नोषजन के मिश्रण को अत्यन्त सावधानी से धोकर, ठण्डा करके सुखा लेते हैं इस प्रकार वायव्यों के मिश्रण में से संक्षीणम् और अम्ल एवं जल कण सभी पृथक कर लिये जाते हैं। इस गैस-मिश्रण को फिर लोहे की नलियों मे भरे हुए पर रौप्यिद एसबेस्टस पर प्रवाहित करते हैं जो बहुत जोरों से गरम किया जाता है। ३००°श ताप क्रम के लगभग गओ२ और ओषजन में संयोग आरम्भ होता है। अब इसके बाद बाहर से गरम करनेकी कोई अवश्यकता नहीं होती है क्योंकि संयोग-प्रक्रिया द्वारा जनित तापही उत्तरोत्तर संयोगके हेतु समुचित होता है। गन्धक त्रिओषिद निम्न प्रकार बन जाता है:—

$$२गओ_२ + ओ_२ = २गओ_३$$
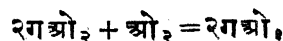
यह त्रिओषिद तीव्र गन्धकाम्ल में अभिशोषित किया जाता है और समय समय पर जल की आवश्यक

मात्रा इसमें छोड़ते जाते हैं। इस प्रकार बहुत तीव्र अम्ल उपलब्ध हो जाता है:—

गओ₃ + उ₂ओ = उ₂गओ₄
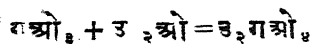
गओ₃को तीव्र गन्धकाम्ल में प्रवाहित करने से वाष्पितगन्धकाम्ल (fuming sulphuric Acid बन सकता है।

गन्धकाम्ल के गुण:—

स्रवित होने के उपरान्त भी गन्धकाम्ल में २% के लगभग जल विद्यमान रह जाता है जो इस प्रकार पृथक् नहीं किया जा सकता है। परन्तु गन्धकाम्ल को ठण्डा करने में उ₂गओ₄ के रवे प्राप्त होते हैं जिनका द्रवांक १०·५°श है। तीव्र गन्धकाम्ल तैल के समान द्रव है जिसका ० श पर घनत्व १·८५४ होता है।

शुद्ध अम्ल गरम करने से ३०°श पर वाष्पित होने लगता है जिसका कारण यह है कि इसका कुछ भाग गओ₃ और उ₂ओ में विभाजित हो जाता है। इस विभाजनकी मात्रा तापक्रम की वृद्धिके अनुसार बढ़ने लगती है। ३३८° पर यह उबलने लगता है। इस तापक्रम पर अम्लकी शुद्धता होती ६६·४ से ९८·८% तक के लगभग होती है और तदुपरान्त यह विना परिवर्त्तित हुए ही स्रवित होने लगता है।

जब गन्धकाम्लकी बूँदे रक्ततप्त परौष्यम् की बनी हुई कुप्पी में टपकाई जाती हैं जिसमें झाँवा पत्थर भी रखे होते हैं तो यह अम्ल गन्धकद्वि ओषिद, जल और ओषजनमें विभाजित होजाता है।

२ उ₂ ग ओ₄ = २ उ₂ ओ + २ ग ओ₂ + ओ₂

इस प्रकार जल और ग ओ₂ का अभिशोषण करके ओषजन संचित किया जा सकता है।

तीव्र गन्धकाम्लका जलके प्रति अधिक आकर्षण है। जल और संपृक्त अम्लके मिलानेसे बहुत ताप जनित होता है और आयतनमें भी संकोच होता है। इससे स्पष्ट है कि जल और गन्धकाम्ल में कोई रासायनिक प्रक्रिया हो रही है। इसमें ताप इतना जनित होता है कि अम्लमें जल डालना सर्वदा हानिकारक है। गन्धकाम्ल और जलका घोल बनानेके लिये सदा जल में अम्ल डालना चाहिये न कि अम्लमें जल। ऐसा करने से दुर्घटना होनेकी कम आशंका है। जलकी उपयुक्त मात्रा लेनी चाहिये और धीरे धीरे अम्लको बूँद बूँद कर सावधानीसे डालना चाहिये मिश्रण को कांचकी ठोस नलिका से टारते रहना चाहिये।

गन्धकाम्ल जलको अत्यन्त तीव्रतासे अभिशोषित कर सकता है। अतः इसका उपयोग वायव्योंको शुष्क करनेके काममें होता है जिस वायव्यको शुष्क करना हो उसे तीव्र गन्धकाम्लमें होकर प्रवाहित करना चाहिए। चूर्णों को सुखानेके लिये अथवा जलवाष्पसे सुरक्षित रखनेसे लिये रस-शोषक यन्त्र (dessicator) बनाये गये हैं। इनकी पैंदीमें तीव्र गन्धकाम्ल और उससे भीगे हुए झांवा पत्थरके टुकड़े पड़े होते हैं। इसके ऊपर एक चलनी होती है जिस पर मिट्टीका त्रिकोण रखा होता है, जिस पर चूर्ण काँच की तश्तरी में रखकर रख दिया जाता है। ऊपर से ढकनी दाब दी जाती है। अच्छी अच्छी तराजुओं में भी गन्धकाम्ल किसी पात्रमें भर कर रख देते हैं, जिससे अन्दर की हवा शुष्क बनी रहे।

यह अम्ल बहुतसे कार्बनिक यौगिकोंमेंसे भी जल के अणु पृथक् कर लेता है; इसलिये इसका उपयोग प्रयोगोंमें बहुत किया जाता है।

धातुओं पर प्रभाव—ठण्डा तीव्र अम्ल धातुओंपर बहुत कम प्रभाव डालता है पर गरम करनेसे बहुत से धातु इसका विश्लेषण कर देते हैं। गरम करने पर पारद, ताम्रम्, कांजसम्, विशद, वंगम्, सीसम् और रजतम्का अम्ल पर निम्न प्रकार प्रभाव होता है—

२ ता + २ उ₂ग ओ₄ = ता ग ओ₄ + २ उ₂ओ + ग ओ₂

२ र + २ उ₂ गओ ४ = र₂ग ओ₄ + २ उ₂ओ + ग ओ₂
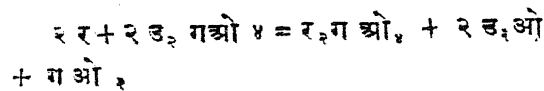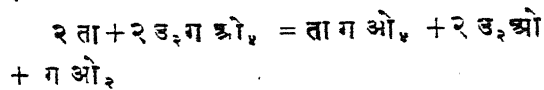
स्वर्णम् और पररौप्यम् पर गरम करनेसे भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। दस्तम्, लोहम्, मगनीसम् आदि धातु हल्के अम्लके साथ गन्धेत और उद्‌जन देते हैं पर जब तीव्र अम्ल के साथ गरम किये जाते हैं तो उनका प्रभाव उसी प्रकार होता है जैसे ताम्रम् अथवा रजतम्‌का।

स्फुर पंच हारिद, स्फुह$_5$, के प्रभावसे इस अम्ल से निम्न पदार्थ मिलते हैं—

$$ग\ ओ_2 < {ओ\ उ \atop ओ\ उ} \quad + \quad स्फुह_5 \rightarrow$$

गन्धकाम्ल

$$ग\ ओ_2 < {ह \atop ओ\ उ} + स्फ\ ओ\ ह_3 + उह$$

$$\downarrow स्फुह_5$$

$$ग\ ओ_2 < {ह \atop ह} + स्फुह_3 + उह$$
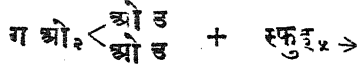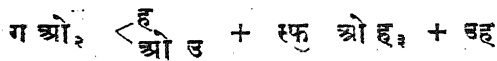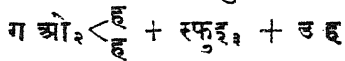
गन्धकीय हरिद

गन्धेत (Sulphates)

जिस प्रकार गन्धसाम्ल द्विभस्मिक अम्ल है उसी प्रकार गन्धकाम्ल भी द्विभस्मिक अम्ल है। इसके अम्लीय और सामान्य दोनों प्रकारके लवण बनेंगे—

$${उ \atop उ} > ग\ ओ_4 \qquad {सै \atop उ} > ग\ ओ_4 \qquad {सै \atop सै} > ग\ ओ_4$$
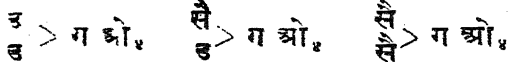
गन्धकाम्ल	सैन्धक उदजन गन्धेत	सैन्धक गन्धेत

इस प्रकार ताम्रगन्धेत और अमोनियमगन्धेत निम्न सूत्रों द्वारा प्रदर्शित किये जायंगे—

ता=ग ओ$_4$ (नो उ$_4$)$_2$ ग ओ$_4$

प्रकृतिमें बहुतसे गन्धेत खनिजरूपमें विद्यमान हैं। जैसे—

जिप्सम (हरसौंठ)—खटिकगन्धेत, ख ग ओ$_4$, २ उ$_2$ओ

भारीस्पार - भार गन्धेत, भ ग ओ$_4$,

एप्सम लवण – मगनीसगन्धेत, ता ग ओ$_4$, ७ उ$_2$ओ

तूतिया—ताम्रगन्धेत, ता ग ओ$_4$, ५ उ$_2$ओ

ग्लौबरलवण—सैन्धकगन्धेत, सै$_2$ ग ओ$_4$· १० उ$_2$ ओ

कसीस—लोहगन्धेत, लो ग ओ$_4$· ७ उ$_2$ ओ

भार गन्धेत और सीस गन्धेत जलमें अघुल हैं, खटिक और स्त्रंशम थोड़ा सा घुलनशील है। अन्य सब गन्धेत जलमें घुल जाते हैं।

गन्धेतों की पहिचान

(१) गन्धेतोंके घुलनशील लवणमें भार हरिद, भह$_2$ का घोल डालनेसे भ ग ओ$_4$ का अवक्षेप प्राप्त होता है—

$$सै_2\ ग\ ओ_4 + भह_2 = भ\ ग\ ओ_4 + २\ सैह$$
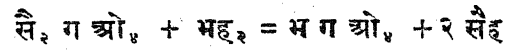
क्योंकि भ ग ओ$_4$ जलमें अघुल है। इस प्रकार घोलोंमें गन्धेतकी परीक्षा बड़ी सुगमतासे की जा सकती है।

(२) यदि अघुल पदार्थ हो तो उसे सैन्धक कर्बनेत सै$_2$ क ओ$_3$ की अधिक मात्राके साथ ज़ोरों से उबालना चाहिये। ऐसा करनेसे सैन्धक गन्धेत बन जायगा जिसमें उदहरिकाम्ल डालकर, भार हरिद डालनेसे श्वेत अवक्षेप प्राप्त होगा।

$$ख\ ग\ ओ_4 + सै_2\ क\ ओ_3 = ख\ क\ ओ_3 + सै_2\ ग\ ओ_4$$

$$सै_2\ ग\ ओ_4 + भ\ ह_2 = भ\ ग\ ओ_4 + २\ सह$$

(अवक्षेप)
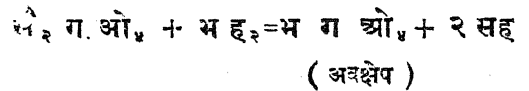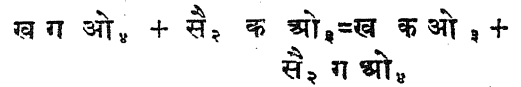
अमिन (Amines)

(ले० श्रीसत्यप्रकाश एम० एस-सी०)

अमोनिया नो $उ_३$ के एक, दो अथवा तीनों उदजन परमाणुओंके स्थानमें मद्यील मूल (जैसे दारील क $उ_३$, ज्वलील $क_२$ $उ_५$ आदि) स्थापित करनेसे जो यौगिक बनते हैं उन्हें अमिन कहते हैं । ये अमिन गुणोंमें अमोनिया अथवा चारों से बहुत मिलतेजुलते हैं अतः इन्हें कार्बनिक-भस्म कह सकते हैं । अमिन स्थापित अमोनिया हैं । यदि अमोनियाका एक ही उदजन मद्यीलमूल से स्थापित किया जाय तो जो अमिन प्राप्त होगा उसे प्रथमअमिन कहते हैं, पर दो उदजन परमाणु दो मद्यील मूलों द्वारा स्थापित करने से द्वितीय अमिन मिलते हैं । तीनों उदजनोंको तीन मद्यील मूलोंसे स्थापित करनेसे तृतीय अमिन मिलते हैं ।

नो < उ, उ, उ …… अमोनिया

नो < क $उ_३$, उ, उ …… दारील अमिन (प्रथम अमिन)

नो < क $उ_३$, क $उ_३$, उ — द्विदारील अमिन (द्वितीय अमिन)

नो < क $उ_३$, क $उ_३$, क $उ_३$ — त्रिदारील अमिन (तृतीय अमिन)
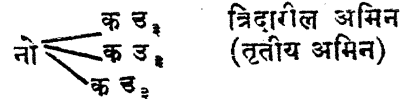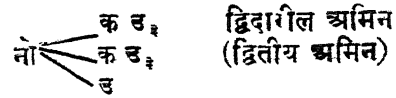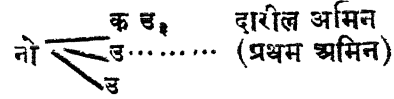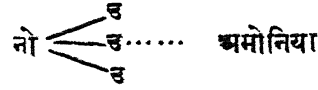
इसी प्रकार नो $उ_२$ ($क_२$ $उ_५$) ज्वलील अमिन है; नो (क $उ_३$) ($क_२$ $उ_५$) द्वितीय अमिन-दारील ज्वलील अमिन है । नो (क $उ_३$) ($क_२$$उ_५$) ($क_३$ $उ_७$) तृतीय अमिन-दारील ज्वलील अग्नील अमिन है ।

अमिन के साधारण गुण

यह कहा जा चुका है कि अमिन गुणों में अमोनिया और चारोंसे मिलते जुलते हैं । ये अमोनियाके समान उदहरिकाम्ल, नोषिकाम्ल और गन्धकाम्ल से संयुक्त होकर हरिद, नोषेत और गन्धेत बनाते हैं ।

नो $उ_३$ अमोनिया	नो $उ_३$ उ ह अमोनियम हरिद	नो $उ_३$ उ नो $ओ_३$ अमोनियम नोषेत	(नो $उ_३$) $_२$ $उ_२$ग $ओ_४$ अमोनियम गन्धेत
नो $उ_२$ क $उ_३$ दारिल अमिन	नो $उ_२$ क $उ_३$ उ ह दारीलामिन उदहरिद	नो $उ_२$क $उ_३$ उ नो $ओ_३$ दारीलामिन नोषेत	(नो $उ_२$ क $उ_३$)$_२$ $उ_२$ग$ओ_४$ दारीलामिन गन्धेत

ये अमिन पररौप्यम् स्वर्णम् और पारदम् धातुओंके हरिदोंसे संयुक्त होकर द्विगुण लवण बनाते हैं । दारीलामिन-हरो पररौप्येत अमोनिया हरोपररौप्येत-के समान रवेदार पीला होता है, इसका सूत्र यह है ।

(नो $उ_२$ क $उ_३$ उ ह)$_२$ प $ह_४$

इसके बनानेकी विधि यह है कि अमिनको संपृक्त उदहरिकाम्लमें घोलो और फिर पररौप्यिक हरिद-का थोड़ा सा घोल डालो । ऐसा करनेसे धीरे धीरे पीला रवेदार पदार्थ अलग होने लगेगा ।

दारिलामिन, द्विदारीलामिन और त्रिदारीलामिन साधारण तापक्रम पर वायव्य हैं । ये जलमें घुलनशील हैं । पर ज्वलीलामिन नवनीतीलामिन द्रव अथवा ठोस पदार्थ हैं जैसा कि निम्न सारिणीसे स्पष्ट है—

अमिन	प्रथम (क्वथनांक)	द्वितीय (क्वथनांक	तृतीय (क्वथांनक)
दारीलामिन	—६°	७	३५°
ज्वलीलामिन	१६°	५६°	९०°
अग्रीलामिन	४९°	९८°	१५६°
नवनीतीलामिन	७६°	१६०°	२१५°

प्रथम, द्वितीय, और तृतीय अमिनोंमें भेद

यह कहा जाचुका हैकि अमोनिया के एक उद्जनके स्थानमें एक मद्यील मूल स्थापित करनेसे प्रथम अमिन बनता है। अतः प्रत्येक प्रथम अमिनमें —नो उ₂मूल अवश्य होगा। द्वितीय अमिनोंमें दो मद्यीलमूल और एक उद्जन होता है अतः प्रत्येक द्वितीय अमिनमें =नो उ मूल अवश्य रहता है। इसे इमिनो मूल कहते हैं। तृतीय अमिनोंमें अमोनिया का एक भी उद्जन नहीं होता है। अतः प्रत्येक तृतीय अमिन में ⋮ नो मूल समान रहता है।

—नो उ₂	=नो उ	≡नो
प्रथमया अमिनो समूह	द्वितीय या इमिनो समूह	तृतीय समूह

कोई अमिन प्रथम है, अथवा द्वितीय या तृतीय —यह नोषसाम्ल उ नो ओ₂ द्वारा पता लगाया जा सकता है।

प्रथम अमिन नोषसाम्लसे संयुक्त होकर घुलनशील नोषित बनाते हैं। इनका जलमें घोल गरम करने पर अमोनियम नोषतके समान विभाजित हो जाता है। अमोनियम नोषितका घोल गरम करनेपर नोषजन और जल देता है पर दारीलामिन नोषितका घोल गरम करनेसे नोषजन और दारील मद्य देता है।

$$\begin{matrix} \text{उ} & \text{नो} & \text{उ}_2 \\ \text{ओ उ} & \text{नो} & \text{ओ} \end{matrix} = \text{उ}_2\text{ ओ} + \text{नो}_2 + \text{उ}_2\text{ ओ}$$

अमोनियम नोषित

$$\begin{matrix} \text{क उ}_3 & \text{नो} & \text{उ}_2 \\ \text{ओ उ} & \text{नो} & \text{ओ} \end{matrix} = \text{क उ}_3\text{ ओ उ} + \text{नो}_2 + \text{उ}_2\text{ ओ}$$

दारीलामिन नोषित

यह क्रिया इस प्रकारकी जा सकती है। परख-नलीमें अमिन (नीलिन) या अमिन हरिद् लो और इसमें थोड़ा सा उदहरिकाम्ल डालकर सैन्धक नोषित का घोल डालो। थोड़ासा गरम करनेसे बुलबुले निकलगे और नोषजन निकलने लगेगा। घोलमें दारीलमद्यकी परीक्षाकी जा सकती है।

यदि इसी प्रकारकी प्रक्रिया द्वितीय अमिन से की जाय और उदहरिकाम्ल और सैन्धक नोषित डालकर गरम किया जाय तो नोषजन नहीं निकलेगा। धीरे धीरे पीले तैल सा पदार्थ पृथक् होने लगेगा, जिसे नोषोसामिन कहते हैं। इसका वाष्पस्रवण किया जा सकता है। द्विदारीलामिनसे द्विदारील-नोषोसामिन बनता है।

$$(\text{क उ}_3)_2 \text{ नो उ} + \text{ओ उ नो ओ}$$
$$= (\text{क उ}_3)_2 \text{ नो, नो ओ} + \text{उ}_2\text{ ओ}$$

द्विदारीरिल नोषोसामिन

दारील नीलिन $\text{क}_6\text{ उ}_5$ नो उ. क उ_3 को हलके उदहरिकाम्ल में घोलकर सैन्धक नोषितकी कुछ बूंदे डालनेसे $\text{क}_6\text{ उ}_5$ नो (क उ_3) (नो ओ) नोषोसामिनका तैलीय मिश्रण प्राप्त होगा।

तृतीय अमिनों पर नोषसाम्लका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय अमिनोंके मिश्रणमें से तृतीय अमिन नोषसाम्ल द्वारा पृथक किया जा सकता है।

प्रथम अमिनकी पहिचान कर्बामिन प्रक्रिया से भी की जासकती है। प्रथम अमिन (जैसे दारीलामिन या नीलिन् $\text{क}_6\text{ उ}_5$ नो उ_2) को हरोपिपील (क्लोरोफार्म) और पांशुज उदौषिद्के मद्यील घोलके साथ गरम करनेसे समश्यामिदकी दुःखदायी दुर्गन्धि सूँघाई पड़ेगी।

$$\text{क उ}_3\text{ नो उ}_2 + \text{क उ ह}_3 + 3\text{ पां ओ उ}$$
$$= \text{क उ}_3\text{ नो क} + 3\text{ पां ह} + 3\text{ उ}_2\text{ ओ}$$

(दारीलसमश्यामिद)

द्वितीय अथवा तृतीय अमिनोंसे समश्यामिद नहीं बनते हैं।

चत्वारिक अमोनियम यौगिक

तृतीय अमिनोंकी यह विचित्रता है कि मद्यील नैलिदके एक अणुसे संयुक्त होकर एक युक्त यौगिक बनाते हैं। इन यौगिकों को चत्वारिक अमोनियम नैलिद कहते हैं। ये ठोस स्थायी पदार्थ हैं और चारोंके साथ उबालने पर विभाजित नहीं होते हैं। त्रिदारीलामिन और दारील नैलिद संयुक्त होकर चतुर्दारील अमोनियम नैलिद निम्न प्रकार बनाते हैं:—

नो (क उ$_3$)$_3$ + क उ$_3$नै = नो (क उ$_3$)$_4$ नै

नम रजत ओषिद (अर्थात् रजत उदौषिद) के साथ उबालनेसे चतुर्दारील अमोनियमनैलिद चत्वारिक अमोनियम उदौषिद में परिणत हो जाता है—

नो (क उ$_3$)$_4$ नै + र ओ उ = नो (क उ$_3$)$_4$-ओउ + र नै

चतुर्दारील अमोनियम उदौषिद

अमिनोंमें नोषजन त्रिशक्तिक है पर चत्वारिक अमोनियम यौगिकोंमें नोषजन पंचशक्तिक है।

नो < (क उ$_3$, क उ$_3$, क उ$_3$)   (क उ$_3$, क उ$_3$, क उ$_3$) > नो < (क उ$_3$, नै)

अमिनों के बनाने की विधि

(१) हाफमैनने अमिनोंके बनाने एक उपयोगी विधि निकाली है—अमोनिया द्वारा मद्य को संपृक्त करके इसमें मद्यील नैलिद मिला कर बन्द मजबूत नलिका मेंदबावके अन्दर गरम करो। ऐसा करनेसे तीनों प्रकारके अमिन और चत्वारिक अमोनियम यौगिक बन जाते हैं। प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

नो उ$_3$ + क उ$_3$ नै = क उ$_3$ नोउ$_2$ उ नै

दारीलामिन उदनैलिद

क उ$_3$नो उ$_2$ + क उ$_3$नै = (क उ$_3$)$_2$नो उ उ नै

द्विदारीलामिनउदनैलिद

(क उ$_3$)$_2$ नो उ + क उ$_3$नै = (क उ$_3$)$_3$ नो उ नै

त्रिदारीलामिनउदनैलिद

(क उ$_3$)$_3$ नो + क उ$_3$ नै = (क उ$_3$)$_4$ नो नै

चतुर्दारीलामिनअमोनियमनैलिद

(२) दारील श्यामिदके मद्यिक घोलको सैन्धकम् द्वारा अवकरण करनेसे ज्वलीलामिन बन सकता है—

क उ$_3$ नो क + २ उ$_2$ = क उ$_3$ क उ$_2$ नो उ$_2$

दारील श्यामिद   ज्वलीलामिन

(३) सिरकामिदको अरुणिन् और पांशुजउदौषिद द्वारा प्रभावित करनेसे दारीलामिन बन सकता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है।

क उ$_3$ क ओ नो उ$_2$ + रु$_2$ + ४ पां ओ उ
= क उ$_3$ नो उ$_2$ + २ पां रु + पां$_2$क ओ$_3$
+ २ उ$_2$ ओ

अब हम यहाँ एक विधि देते हैं जिसके उपयोग से दारील मद्य ज्वलील मद्यमें और ज्वलीलमद्य दारीलमद्यमें परिणत किया जा सकता है—

क उ$_3$ ओ उ
दारीलमद्य
↓ उ नै
क उ$_3$ नै
↓ पांकनो
क उ$_3$ कनो
↓ २ उ$_2$
क उ$_3$ क उ$_2$ नो ओ$_2$
ज्वलीलामिन
↓ उ नो ओ$_2$
क$_2$ उ$_5$ ओ उ
ज्वलीलमद्य

क$_2$ उ$_5$ ओ उ
ज्वलीलमद्य
↓ ओ$_2$
क उ$_3$ क ओ$_2$ उ
सिरकाम्ल
↓ नो उ$_3$
क उ$_3$ क ओ नो उ$_2$
सिरकामिद
↓ रु$_2$ + पाँ ओ उ
क उ$_3$ नो उ$_2$
दारीलामिन
↓ उ नो ओ$_2$
क उ$_3$ ओ उ
दारीलमद्य

———

संश्लेषण-युग

[ले० अमीचन्द्र विद्यालंकार]

कोई समय था जब पत्थर के औजार ही काममें लाये जाते थे। वह समय पत्थरका युग (stone age) कहालाता था। उसके बाद पीतलका समय (Bronze age) आया। उस समय लोग पीतल का उपयोग करना सीख गये। वर्तमान समय लोहे और इस्पात (Iron and steel age) का युग कहाता है। आजकल जिस राष्ट्रके पास लोहा और कोयला है वह यह समझता है कि व्यापार की कुञ्जी उसके हाथमें है। पर रसायन शास्त्रियों (Chemists) का कथन है कि अब यह युग भी निकल गया अब तो संश्लेषण-युग (Syntheticage) आगया है। अब हमें किसी भी आवश्यकताके लिए प्रकृत्तिका मुँह न ताकना पड़ेगा। सभी चीजें प्रयोगशालाओंमें तय्यार की जा सकेंगी।

अमेरिकामें विलियम्स टाऊननामक शहरमें अभी हालही में कितने ही रसायनज्ञ अपने अपने शुण्डा-यन्त्र, परीक्षा नली तथा अन्य ऐसे उपक्रम लेकर इकट्ठे हुए थे। उन वैज्ञानिकोंका दावा है कि अब ऐसा समय आगया है जबकि हम सारी आवश्यकतायें अपने रसायन शास्त्रके आधार पर संश्षेणात्मक विधिसे पूरी कर सकेंगे।

ईंधन और शक्ति

अभी हाल ही में कोयले और लकड़ीके बुरादे या अन्य ऐसीही निकम्मी समझी जाने वाली चीजों से जलानेके लिए गैसोलीन गैस तय्यारकी गई है। श्री० डीन गेरल्डका दावा है कि वह समय शीघ्रही आनेवाला है जब हम परमाणुकी अक्षय शक्ति भण्डार को काममें ला सकगे। एक साधारण ईंधनसे रेडियम (रश्मिम्) में १००००००० गुणा अधिक शक्ति होती है। यूरेनियम (पिनाकम्) से भी शक्तिकी बहुत बड़ी राशि प्राप्त की जा सकती है जिससे संसारका काम चल सकेगा। इसके एक पौण्डमें १६० टन कोयलेके बराबर शक्ति होती है। २ टन यूरेनियमसे सारे न्यूयार्क शहरमें प्रकाश होसकता है। यूरेनियम पृथिवीमें सर्वत्र है और पर्याप्त मात्रामें है।

श्री हेनरी डोहर्टीका दावा है कि यदि किसी कारण वश हम परमाणु (atom) की शक्ति काममें न भी लासके तो हम सूर्यसे शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। जबतक सूर्य है तब तक हमें शक्तिके लिए चिन्तित न होना चाहिए।

संश्लेषणात्मक भोजन

पेट्रोलियम (शुद्ध मिट्टीका तेल) और एसिट लीन से (सिरकीलिन आजकल भी मक्खन, चर्बी आदि पदार्थ तय्यार कियेजाते हैं पर बड़े पैमाने पर नहीं और सुगमतासे नहीं। अभी एक अंग्रेज वैज्ञानिकने जल और कर्बनिकाम्ल गैससे शक्कर तय्यार की है। उसमें नोषजन मिलाकर नोषजन पदार्थ (प्रोटीन) तय्यार करनेका भी यत्न किया जा रहा है। अमेरिकन वैज्ञानिकोंने लकड़ीके बुरादे और गेहूँसे भी शक्कर तैयार की है। वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि निकट भविष्य में मनुष्यके लिए आवश्यक भोजन खेतोंमें नहीं प्रयोग शालाओं और कारखानोंमें तय्यार किये जाया करेंगे।

डा० बर्नर्नका कहना है कि इस प्रकार कारखानों में ३० आदमी उतना भोजन पैदाकर सकेंगे जितना भोजन एक हजार आदमी ७५००० एकड़ ज़मीनमें पैदाकर पाते हैं।

वैज्ञानिक पौदोंकी वृद्धि तथा फलने फूलनेकी वैज्ञानिक क्रियाका भी अध्ययन कर रहे हैं। उन्हें आशा है कि वे उसका ज्ञान प्राप्तकर थोड़े ही समय में सूर्यके प्रकाश और वायुकी नोषजनकी सहायतासे बहुत थोड़े समयमें फलफूल पैदाकर लिया करेंगे।

संश्लेषणात्मक कपड़े

रेशम (कृत्रिमरेशम) तो बड़े पैमाने पर सब जगह ही तय्यार होने लग गया है। जर्मनीने अभी हालमें कृत्रिम रुई भी तय्यार की है और इटली ने

कृत्रिम ऊन। इङ्गलैण्डमें भी वृक्षोंके रेशोंसे ऊन तय्यार की जा रही है।

संश्लेषणात्मक रंग

पहिले रंग फलों फूलों अथवा छालोंसे निकाला जाता था पर आजकल सब रंग नीलिन या अन्य ऐसे ही एलिजरीन मंजिष्ठत आदि रसायनिक पदार्थोंसे तैयार किये जाते हैं और वे भी एक तरहकी नहीं उनमें एक एक रंगमें हजारों भेद तैयार किये गये हैं जो पहले कभी देखनेमें भी नहीं आतेथे। किसी समयमें भारत वर्षमें बहुत नील तैयार होता था। नीलके लिए १० लाख एकड़ जमीनमें खेती होती थी। पर अब जब से कारखानोंमें नील तैयार होने लगा तबसे यह खेती बन्द सी होगई है। जो होती भी है वह न के बराबर है।

अन्य पदार्थ

कपूर भी अब प्रयोग शालाओंकी चीज नहीं रही। यह अब बड़े पैमाने पर कारखानोंमें तैयार होने लगा है। लकड़ी, पत्थर, रंग, वार्निश, कपड़े आदि सभी पदार्थ इस प्रकार तैयार किये जा रहे हैं। १५०००००००० मन धातु प्रतिवर्ष कम होती है। हिसाब लगाकर देखा गया कि लोहा तो २००, ३०० वर्षके लायक है पर ताँबा कलई आदि अन्य इतनी ही हैं कि ३० वर्ष तकही उनसे हमारा काम निकल सकेगा। इसलिए आजकल वैज्ञानिक ऐसे मेल तैयार कर रहे हैं जिन पर मुर्चा लगा ही नहीं करेगा और इस प्रकार धातु मुर्चेसे नष्ट न हुआ करेंगी। मैग्नेलियम और ड्यूरेलुमिन [Magnalium, duralumin] इसी प्रकारकी आश्चर्यप्रद धातुएँ हैं। वैज्ञानिक यह यत्नभी कर रहे हैं कि रद्दी कूड़े कर्कटसे भी धातुएं निकाल ली जाया करें। पर जब एकदिन ये धातुएं भी समाप्त हो जायँगी तब क्या होगा? मान लीजिए कि टिन न रहे। तब पीपे आदि किसके बनेंगे? वैज्ञानिकोंका कथन है कि उस समय एक प्रकार का कागज काममें आयेगा जिसपर पानी आदिका असर न हो उसे सख्तकर उसके पीपे आदि बनाये जायँगे।

जर्मनीमें कृत्रिम चमड़ा भी तैयार किया गया है। फ्रांसपर सड़कोंके लिए कठोर रबर तैयार किया गया है। पेट्रोलसे रबर बनानेमें भी कुछ कुछ सफलता मिल रही है। तरह तरह की सुगन्ध तरह तरह के खाने पीनेके पदार्थ, तरह तरहके कपड़े; तरह तरहकी दवाइयाँ और न जाने कितने पदार्थ इसी प्रकार बनाये जा रहे हैं। इनकी गिनती करना बहुत कठिन है।

एक समय आयेगा जब हमारे कमरेकी दीवारें, फर्श, मेज, कुर्सी, कपड़े साज सामान, भोजन, इत्यादि सभी पदार्थ जो हमारी आँखोंके आगे आयेंगे संश्लेषणसे तैयार किये हुए होंगे।

वैज्ञानिक जिस गतिसे आगे बढ़ रहे हैं उसे देख कर तो यही पता लगता है कि ब्रह्माके बाद दूसरी सृष्टि बनाने वाले विश्वामित्र ऋषि पाश्चात्य देशोंमें शीघ्रही बड़ी संख्यामें पैदा होने वाले हैं।

भारतवासियों के साधारण भोजन पदार्थों में

रासायनिक गुणों का कुछ परिचय

ले० श्री विमल कुमार मुकर्जी एम० एस—सी०

चावल, रोटी और दाल भारतवासियोंके प्रधान भोजन पदार्थोंमें गिने जाते हैं। मैं इस लेखमें इनमें से प्रत्येककी विशेषता और गुणोंका संक्षेपतः विवरण दूँगा।

चावल अग्निकर, रोचक और लघुपाक होने पर भी रोटीके समान सारवान खाद्य नहीं है। रोटीमें भात से नोषजनित पदार्थ (protein) द्विगुण रहता है और मक्खन जातीय सार (Fat) पदार्थ तथा विटामिन (Vitamin) भी अधिक परिमाण में रहता है। चावलका प्रधान दोष यही है कि उसमें नोषिजनित (protein) पदार्थ का भाग कम और शर्करा जातीय पदार्थ (carbohydrates) का परिमाण अधिक होता है। दैहिक उन्नतिके लिये

"प्रोटीन" बहुत आवश्यक है इसी कारण केवल चावल ही के भोजन करनेसे देह बलवान होनेकी सम्भावना कम रहती है। यदि चावलके दाने अधिक छंटे हों—अर्थात् (polished) हों तो वे एक प्रकारसे असार हो जाते हैं और इस प्रकारके छंटे हुए चावल अधिक दिन खानेसे बेरीबेरी नामक रोग होता है। चावलके दानेके ऊपरके आवरण पर विटामिन और लवण सार पदार्थ समूह रहते हैं—इसी कारण जो चावलके दाने अधिक छंटे होते हैं उस पर इस आवरणके न होने से स्वास्थोन्नतिका कोई उपादान नहीं रहता।

भातमें सार पदाथ कम रहता है परन्तु खिचड़ी खूब सारवान् और स्वादिष्ट खाद्य है। चावलमें नोषजनित तथा मक्खन जातीय सार पदार्थों की जो कमी रहती है वह खिचड़ीमें दाल तथा घी के संयोगसे पूर्ण हो जाती है। भातमें माड़ की उपस्थिती से खिचड़ी और भी सारवान बन जाती है। चावलके साथ दूध, चीनी और नाना प्रकारके मेवे मिश्रित होनेपर खीर बनती है। यह खीर बहुत ही स्वास्थकर और स्वादिष्ट खाद्य है।

दाल मांसकी तरह प्रोटीन (नोषजनित) पेशी गठक (muscle forming) खाद्य है। अन्नमें नोषजनित पदार्थों की कमी दूध घी तथा दालके खानेसे पूर्ण हो जाती है परन्तु दूध घी इत्यादि अब मंहगे होनेके कारण हमारे इस गरीब देश के साधारण लोगोंके लिये इन सारवान पदार्थोंका खाना सम्भव नहीं है। दैहिक गठनके लिये यथोचित परिमाणमें "प्रोटीन" हमको दालसे मिल सकता है। विशेष कर जो लोग मांसाहारी नहीं है उनको दाल पर स्वास्थोन्नतिके लिये बहुत कुछ निर्भर रहना पड़ता है।

अत्यन्त अधिक परिमाणमें दाल भोजन करनेसे अजीर्ण तथा पेटमें पीड़ा उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है परन्तु परिमित मात्रामें दाल खानेसे हानिकी कोई आशंका नहीं है। दाल भली भाँति न पकनेसे दुस्पाच्य होती है। इसलिये उत्तम प्रकारसे दालका गलना आवश्यक है।

दालका प्रधान गुण यह भी है कि साधारणतः इसमें मांसकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें "प्रोटीन" रहता है और मांसमें प्रायः जो नाना प्रकारके कृमि (parasitic worms) व विषाक्त पदार्थ (ptomaines) पाये जाते हैं उनके दालमें रहनेकी कोई सम्भावना नहीं रहती।

मसूर और मूंगकी दालोंमें सर्वपेक्षा अधिकतर "प्रोटीन" रहता है तथा चनेके दालमें मक्खन जातीय पदार्थ (Fat) विशेष कर होता है। अरहर की दालमें 'प्रोटीन" सब दालोंसे कम रहता है परन्तु लावणिक पदार्थ समूह (Salts) अत्यन्त अधिक परिमाणमें पाये जाते हैं।

दालकी परिपाच्यता तथा अन्यान्य गुणोंके सम्बन्धमें खाद्यतत्वविनोद डाक्टर हचिनसन ने निम्नलिखित सम्मति दी है:—

If properly prepared, the pulses (various forms of Dol) are absorbed into the intestines very thoroughly. Thus the proteid of pea is all taken up except about 8 or 9 percent when 200 grammes (about 3/2 chattaks) are given daily The proteid of pulses, if given in fine division, is capable of very good absorption, considerably better than the proteid of bread.

As a cheap and efficient method of supplementing the deficiency of nitrogen (i. e. protein) in a purely vegetable diet, the use of pulse (dal) is strongly to be recommended, and it is a pity that they are not more largely taken advan tage of by those to whom economy is of importance, for unquestionably pulses are amongst the cheapest foods,

and a given sum will yield more protein if invested in then than in any other way."

यदि भलीभांति तैयार की जावें तो दालें अंतड़ियों में अच्छी तरह से पचजाती हैं। जैसे, मटर का सब प्रोटीड (नोषजनित पदार्थ) यदि डेढ़ छटांक दाल नित्य खाई जाय तो बारहवां हिस्सा रहकर शेष सब हजम हो जाता है। और यदि चूर्ण रूप में दी जावे तो दाल का प्रोटेड रोटीके प्रोटीडसे भी अच्छी तरह हजम होता है। दालसे बढ़कर वनस्पति-पदार्थों में नोषजनित पदार्थों की कमी को भलीभांति दूर करने वाली दालसे सस्ती और कोई चीज नहीं है। शोक की बात है कि जिन लोगोंको सस्ती चीजोंकी जरूरत होती है वे इससे पूरा फायदा नहीं उठाते। क्यों कि दाल खाद्य, पदार्थों में सबसे सस्ती है। एक पैसेकी दालमें जितना प्रोटीन प्राप्त होता है उतना एक पैसे की किसी चीज में नहीं प्राप्त हो सकता।

साबुत चना मूंग व मटरको दो दिन पानीमें भिगो रखनेसे उनमें अंकुर निकल आते हैं इस अवस्थामें इन सबोंमें वाइटामिन 'बी" (Vitamin B) अधिकतर उत्पन्न होता है। इन अङ्कुरित चने इत्यादि के भोजनसे स्वास्थकी बहुधा उन्नति होसकती है। तथा बेरी-बेरी जातीय रोगोंसे मुक्त रहनेकी भी सम्भावना रहती है।

मगनीसम (Magnesium) और जल

[ले० श्री प्रकाशचन्द्र जी एम० एस-सी०]

आई० मैण्डीलीफ ने १८६९ में सब तत्वों (elements) को परमाणु-भार (atomic wieght) के अनुसार भिन्न भिन्न समूहों (groups) में बाँट दिया। प्रायः सब रसायन जानने वालों को मैण्डीलीफ महोदयके आवर्त संविभागसे परिचय है। मैं इस लेखमें मैण्डलीफ की बुद्धिकी समालोचना करना नहीं चाहता। कौन वैज्ञानिक इस महाशयके नामसे परिचित न होंगे।

भिन्न भिन्न समूहोंके भिन्न भिन्न लक्ष्य और गुण होते हैं जैसा कि आर्य्य-जाति "अहिंसा परमो धर्म्मः" के लक्ष्य को आगे रख कर माँस भक्षण पाप समझती है परन्तु यवन जाति गो-माँस-भक्षण से भी घृणा नहीं करती। वैसेही प्रथम समूह के तत्व कई रासायनिक तत्वसे भलीभांति मिलते हैं किन्तु द्वतीय समूहमें यह गुण नहीं मिलते। दृष्टान्त के तौर पर सैन्धकम् पाशुजम् जो कि प्रथम समूह मे हैं ओषजन से तुरन्त ही मिल जाते हैं। परन्तु सप्त श्रेणी वाले लवणजनका ओषजनसे प्रेम नहीं है। यदि तीव्र दृष्टिसे देखें तो प्रतीत होता है कि सब तत्व अपना अपना कार्य्य मर्यादा पूर्वक करते रहते हैं। मनुष्य तो कई अवसरों पर अपने लक्ष्य से गिर जाता है परन्तु यह प्रकृति देवी मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकती। इस बात का ध्यान रखते हुए मैंने द्वतीय समूह के तत्वों (Elements) के भिन्न भिन्न गुणों पर विचार करना आरम्भ किया। एक गुण जिसकी ओर मेरा ध्यान गया वह यह थाकि प्रथम समूह के तत्व तो जल को शाघ्र

ही विभाजितकर देते हैं और उदजन निकलने लगता है जैसे

$$२सै + २उ_२ओ = २सैओउ + उ_२$$
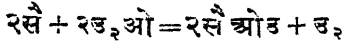
अब दूसरे समूहमें प्रथम समूह यह गुण इतना स्पष्ट नहीं है परन्तु यह पता है कि खटिकम् (Calcium) गरम पानीको विभाजित कर देता है। दस्तम् (Zinc) की लीला ही निराली है। साधारणतया दस्तम्का पानी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु दस्तम्के साथ यदि ताम्रम् (Copper) मिला दिया जावे तो दोनोंका मेल दस्तताम्रमिथुन (Zinc—Copper couple) पानीको विभाजित कर देता है मैंने विचार किया कि सम्भव है कि यहाँ ताम्रम् एक उत्प्रेरक (Catalyst) का कार्य्य कर रहा हो! यदि यह बात दस्तम् में पाई जाती है तो इस समूहकी (Typical metal) विशिष्ट धातु मगनीसम्में भी होनी चाहिये। अब यह साधारण बात है कि मगनीसम्को साधारण जल में डालने से कुछ नहीं होता। प्रश्न होता है कि क्या किसी अवस्थामें भी मगनीसम् पानी को नहीं विभाजित कर सकता। इसी हालत में मुझे अपने प्रिय विद्यार्थी महाशय वेद प्रकांशचन्द्रका प्रयोग विवरण भी लिखना है! उन्होंने मुझे दिखलाया कि यदि फिटकरीके घोलमें मगनीसम् डाल दिया जावे तो बड़े वेगके साथ उदजन निकलता है। हमारे खयाल में विश्लेषणसिद्धान्त के आधार पर फिटकरीअम्ल (acid) की तरह है परन्तु दूसरी व्याख्या यह भी हो सकती है कि फिटकरी उत्प्रेरकका कार्य्य करती है।

मैंने इस बात पर भिन्न २ लवणोंके साथ प्रयोग करना शुरू कर दिया। कुछ लवणोंके नाम, जिनके होनेसे मगनीसम् में यह शक्ति आजाती है कि यह जल विभाजित कर सके, दिये हैं। पूरी सूची आगामी अङ्कमें दी जायगी।

इन प्रयोगोंमें विशेष बात यह देखी है कि यह सब लवण जिनके होनेसे मगनीसम्को जल विभाजित करनेका साहस होता है, पानीमें शीघ्रही घुल जाते हैं। न घुलने वाला लवण एक भी नहीं।

उन लवणोंकी सूची निम्न प्रकार है।

सैन्धक कर्बनेत

पांशुज उदजन गन्धेत या पांशुज स्फुरेत

ताम्र हरिद

पारद हरिद

पारद नोषेत

फिटकरी alum

सीस नोषेत व सीस सिरकेत

बिशद हरिद

राग हरिद

राग गन्धेत

मांगनीज गन्धेत

मांगनीज हरिद

अवकृत लोहा

लोहिक हरिद (Ferric Chloride)

लोहस गन्धेत (Ferrous Sulphate)

लोहे और अमोनीयम का गन्धेत (हीराकसीस)

लोह फिटकरं (Iron alum)

नकल हरिद

नकल गन्धेत इत्यादि

(नोट) यह केवल आधी ही सूची है।

पूरे तौर पर अपना प्रयोग और उसकी विस्तृत व्याख्या आगामी अंकमें लिखी जायगी। और अपना सिद्धान्त स्थिर करनेका यत्न किया जायगा।

शारीरिक प्रक्रियाओं पर तापक्रमका प्रभाव
और
सहन शीलताका प्रश्न

(Influence of temperature on metabolism & problem of acclimatization)

(ले० डा० नीलरत्नधर डी. एस. सी. आई. ई. एस.)

यह सब जानते हैं कि उष्णरक्त (Warm blooded) प्राणियों के शरीरका सामान्य तापक्रम स्थिर रहता है चाहे वाह्य परिस्थितिका तापक्रम घटकर ३०°फ या ३५ फ ही क्यों न होजाय। मनुष्य के शरीरका सामान्य तापक्रम ९८°.५ फ या ३६°.८ श है। शीत रक्त प्राणियों (Cold blooded) के शरीरका तापक्रम तात्कालिकपरिस्थितिके तापक्रमसे कुछ ही अधिक होता है। ऐसे प्राणियों की शारीरिक प्रक्रियायें तापक्रम पर इस प्रकार निर्भर होती हैं कि ज्यों ज्यों तापक्रम बढ़ता जाता है त्यों त्यों श्वास-विनिमय (respiratory exchange) भी बढ़ता है यद्यपि यह वृद्धि कुछ अनियमित होती है और भिन्न भिन्न प्राणियोंके लिये इसकी मात्रा भी भिन्न भिन्न है। शिशिर ऋतुमें कीचड़में मेढक की शारीरिक प्रक्रियायें ४°श पर कुछ और ही होती हैं और ग्रीष्म ऋतु में जब वह नदीके किनारे धूपमें विहार करता है तब कुछ और ही।

रोह्गि और ज़ुन्ज़ नामक वैज्ञानिकोंने सर्व प्रथम यह प्रदर्शित किया था कि कमरेके साधारण तापक्रम पर ऐसे उष्णरक्तप्राणियोंमें जिनमें विषका सञ्चार करा दिया गया हो शरीरके तापक्रम को स्थिर रखनेकी शक्तिक्षीण होजाती है, और तदनुकूल शारीरिक प्राक्रियाओंकी प्रबलता भी कम हो जाती है। विषके कारण क्रियाशील स्नायु तन्तुओंका प्रेरक आवेग (motor impulse) रुक जाता है। उष्ण रक्त प्राणियोंमें तापक्रम एक निश्चित मात्रा पर स्थायी रहता है चाहे जलवायु परिस्थिति कुछ भी क्यों न हों और यह बात नाड़ी और स्नायुओं की संचालन शक्तिके लिये उपयोगी सिद्ध हुई है। यदि मनुष्यका जीवन परिस्थिति के तापक्रम पर निर्भर होता तो सचमुच बड़ी कठिनाई पड़ती।

उष्णरक्त प्राणियोंमें परिस्थिति-तापक्रमके कम होजानेसे श्वास विनिमय कम नहीं होता है प्रत्युत बराबर बढ़ता जाता है जिसका कारण रासायनिक तापका नियमित होना है। रूबनर ने इस विषयका विशद अध्ययन किया है। शूकर (guineapig) पर प्रयोग करके उसने निम्न फल उपलब्ध किये हैं:—

वायुका तापक्रम °श	प्रति घंटे और हजार ग्राममें क ओ₂ की मात्रा (ग्राममें)
०	२.९१
११	२.१५
२१	१.७७
२६	१.५४
३०	१.३२
३५	१.२७
४०	१.४५

३५° श पर नियम खंडित हो जाता है और तापक्रम की उत्तोत्तर वृद्धि पर श्वास विनिमय कम होने के स्थान में बढ़ने लगता है जैसा कि उपर्युक्त सारिणी के अन्तिम अंक से स्पष्ट है।

हम पहिले किसी लेख में यह दिखा चुके हैं कि आदर्श परिस्थिति में जिसमें नाड़ी-प्रभाव का निराकरण कर दिया गया हो तापक्रम की वृद्धि के अनुसार उष्ण और शीतरक्त प्राणियों-दोनों में

शारीरिक प्रक्रियायें (metabolism) बढ़ जाती हैं।

बहुत से प्राणियों का अध्ययन करके रूबनर ने यह सिद्ध किया है कि सब प्राणी जन्म से स्वाभाविक मृत्यु तक प्रति हज़ार ग्राम शरीर के भार की अपेक्षा से लगभग एक बराबर ही सामर्थ्य (energy) का उपयोग करते हैं। रूबनरने इसकी औसत मात्रा १९१६०० कलारी निर्धारित की है; यह मात्रा भिन्न भिन्न जातियों में १४१०९१ से २६५५०० कलारी तक परिवर्तित होती रहती है । छोटे प्राणी जिनमें शारीरिक प्रक्रियायें अति तीव्रता से होती हैं अल्प काल तक जीवित रहते हैं और सुस्त शारीरिक प्रक्रियाओं वाले दीर्घकाय प्राणी बहुत समय तक जीवित रहते हैं। रूबनर का यह सिद्धान्त है कि शारीरिक प्रक्रिया (metabolism) और प्राणीका उपरिक्षेत्रफल समानुपाती हैं।

एरबिन वोअट ने कुछ प्राणियों के लिये सामान्य परिस्थिति तापक्रम पर निम्न अंक उपलब्ध किये हैं।

प्राणी	हज़ारग्राम में भार	उपलब्धकलारी	
		प्रति हज़ार ग्राम	प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र फल
घोड़ा...	४४१	११·३	९४८
शूकर...	१२८	१९·१	१०७८
मनुष्य...	६८·३	३२·१	१०४२
कुत्ता...	१५·२	५१·५	१०३९
खरगोश...	२·३	७५·१	७७६
हंसी...	३·५	६६·७	९६९
चूहा...	·०१८	२१२·०	११८८

इस सारिणीसे रूबनरका उपर्युक्त सिद्धान्त स्पष्ट हो जाता है।

वोअट ने यह भी दर्शाया है कि कबूतर की शारीरिक प्रक्रिया पंखों के अलग कर लेनेसे दुगुनी हो जाती है । रूबनर के प्रयोगोंसे पता चलता है कि मज्जिक त्वचा (adipose tissue) और गरम लोमों (बालों) का भौतिक-व्यवस्था (physical regulation) के बढ़ाने और शरीर तापक्रम सम्बन्धी रासायनिक अवस्थाके रोकनेमें एकसा ही प्रभाव पड़ता है । छोटे कुत्तके तापक्रमकी भौतिक व्यवस्था मात्री उसके लम्बे बालों के कारण है। यह बाल कतर देने के पश्चात् शारीरिक प्रक्रिया में जो परिवर्त्तन हो जाता है उससे सिद्ध है। रूबनर की निम्न सारिणी से यह स्पष्ट हैः—

तापक्रम	प्रति हज़ार. ग्रा. कलारी	
	बालों से युक्त	बाल कतर देने पर
२०°	५५·९	८२·३
२५°	५४·२	६१·२
३०°	५६·२	५२·०

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस कुत्तेकी भौतिक व्यवस्थाकी शक्ति २०° और ३०° के बीचमें समाप्त हो गई। जैसे ही उसके बाल कतर लिये गये। उस की शारीरिक प्रक्रिया शूकरके समान होगई अर्थात् ३०° से नीचे तापक्रम की कमी पर बढ़ने लगी। यह रासायनिक व्यवस्था का उदाहरण है।

मज्जाकी संरक्षिणी सतहका प्रभाव निकालनेके लिये रूबनर ने छोटे बालों वाले कुत्त को उस समय भूखा रख कर शारीरिक प्रक्रिया पर तापक्रमका प्रभाव देखा जब वह दुबला हो रहा हो और फिर इसकी तुलना उस समय भूखा रख कर की जब वह मोटा हो गया।

कुत्ता (दुबला)		वही कुत्ता (मोटा)	
तापक्रमम	प्रतिह.ग्र.कलारी	तापक्रम	प्र.ह. ग्र. कलारी
५.१	१२१.३	७.३	१२०.५
१४.४	१००.९	१५.५	८३.०
२३.३	७०.७	२२.०	६७.०
३०.६	६२.०	३१.०	६४.५

इससे यह पता चलता है कि निम्न तापक्रम पर दोनों अवस्थाओंमें कुत्ते की शारीरिक प्रक्रिया एक सी ही थी पर जब कुत्ते में मज्जा की संरक्षिणी सतह थी तो २२° तापक्रम होने पर शारीरिक प्रक्रिया करीब करीब न्यूनतम होने लगी। कुत्तेके पतले होने पर यह बात न रही।

कुछ ऐच्छिक कर्मो से भौतिक व्यवस्था बढ़ाई जा सकती है। जब आदमी या कुत्तेको को ठंड लगती है तो वह लेट जाता है। और अपने को इस प्रकार सिकोड़ लेता है कि जितना हो सके उसके अङ्ग कम खुले रहें। पर जब गर्मी पड़ती है तो कुत्ता या आदमी अपने पैर फैला कर लेटता है जिससे ताप का निराकरण अधिक से अधिक हो सके।

वोअट ने मनुष्यको ६१ घंटे उपवास रखा कर शारीरिक प्रक्रिया पर तापक्रम का प्रभाव निम्न प्रकार प्रदर्शित किया।

तापक्रम	ग्राम में का ओ$_2$
४·४°	२१०·७
६·५°	२०६·०
६.०°	१६२·०
१४.३°	१५५·१
१६.२°	१५८·३
२३.७°	१६४·८
२४.२°	१६६.५
२६.७°	१६०.०
३०.०°	१७०·०

वोअटका विश्वास था कि त्वचा पर शीत की जितनी कम उत्तेजना होगी उतनी ही शारीरिक प्रक्रियामें वृद्धि होगी क्योंकि इससे स्नायुछिद्रों की शारीरिक प्रक्रिया करने वाली शक्ति बढ़ जाती है।

तापकी व्यवस्था कपड़े पहनने पर भी निर्भर है। शीत प्रधान देशोंमें रहने वाली कुछ जंगली जातियाँ कपड़े नहीं पहिनती हैं। संवाददाताओं का कथन है कि टेरा-डेल-फ्यूगो के आदि निवासी कपड़े पहनने के बजाय शरीर में तैल लगाते हैं। ऐसी जातियोंमें भौतिक व्यवस्था अधिकतम मात्रा तक बढ़ाने की आवश्यकता होती है। सभ्य देशोंमें रासायनिक व्यवस्थाके प्रभाव का निराकरण करनेके हेतु शरीर को कपड़ोंसे ढका जाता है। उनके केवल २०°/॰ अंग ही खुले रहते हैं। कपड़ोंका सबसे उपयोगी अंग उनके तन्तुओं में स्थित वायु है, जो कपड़ेके तन्तुओंसे भी अधिक बुरा "ताप का चालक" है। रूबनर द्वारा निर्दिष्ट दो प्रयोग शारीरिक प्रक्रिया पर वस्त्रोंके प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं। एक मनुष्य ११° और १२° तापक्रमके बीच में रखा गया और भिन्न समयमें उसे भिन्न भिन्न वस्त्र पहनाये गये, उसके द्वारा क ओ$_2$ और जलका त्याग निम्न मात्राओं में हुआ—

	प्रति घंटे ग्राममें क ओ$_2$	वक्तव्य
गरमीके कपड़े	२८.४	ठंडकभीर कांपना
गरमीके कपड़े और जाड़ेका ओवर कोट	२६.९	खूब शीत
गरमीके कोट और ऊनी कोट	२३.६	समुचित गरम (आराम)

जब मनुष्य आराम से था, तो तापक्रम की रासायनिक व्यवस्था का निराकरण हो गया।

यह भी पाया गया है कि दुबले मनुष्योंकी अपेक्षा मोटोंमें श्वासप्रक्रिया कम होती है। वेनेडिक्ट और स्मिथने खेलाड़ियों और उन्हीं की ऊँचाई और भार वाले न खेलने वाले व्यक्तियों की तुलना करके प्रदर्शित किया है कि खेलाड़ियों की शारीरिक प्रक्रिया न खेलने वालों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है।

यह देखा गया है कि छोटे जानवरों का प्रति इकाई बोझ श्वास-विनिमय लम्बे जानवरों की अपेक्षा अधिक होता है। रूबनर ने शारीरिक प्रक्रिया पर आकारका प्रभाव अच्छी प्रकार दिखाया है। उन्होंने ३०.४ से ३.४ हज़ार ग्राम तकके बोझ वाले कुत्तों पर प्रयोग किये। उन्होंने यह सिद्ध किया कि ज्यों ज्यों आकार कम होता जाता है, प्रति हज़ार ग्राम शारीरिक प्रक्रिया उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। पर यदि उपरि-क्षेत्रफल के आधार पर गणना की जाय तो सबोंमें प्रतिवर्ग क्षेत्रफल एक ही सी रासायनिक प्रक्रिया होती है।

केटनरने भिन्न भिन्न आयु और भारोंके शूकरों पर प्रयोग करके पता लगाया है कि प्रति हज़ार ग्राम प्रति घंटा शारीरिक प्रक्रिया त्यों त्यों घटती जाती है ज्यों ज्यों भार बढ़ता जाता है पर प्रति वर्ग मीटर परिणाम आकार पर निर्भर नहीं हैं। पर अभी कुछही काल हुए कि बेनेडिक्ट आकार और शारीरिक प्रक्रियामें किसी प्रकारका निश्चित सम्बन्ध स्वीकार नहीं करता है। उपरितलके क्षेत्रफल को तो वह बिलकुल भी तुलनाके योग्य नहीं समझता है। पर उसके दिये हुए अंक और नक़शे स्वयं इस बातके द्योतक हैं कि इस प्रकारके सम्बन्ध निकाले जा सकते हैं, और ज्यों ज्यों भार बढ़ता है त्यों त्यों प्रति हज़ार ग्राम शारीरिक प्रक्रिया कम होती जाती है।

जानवरका उपरितल क्षेत्रफल क्ष लगभग उसकी लम्बाईके वर्गके समानुपाती है और उसका बोझ भ, लगभग लबाईके घनके समानुपाती है। अतः क्ष = कभ$^{\frac{2}{3}}$, । इसमें स्थिर मात्रा क का मान भिन्न भिन्नति के प्राणियों पर प्रयोग करके निकाला गया है। भिन्न २ रूपोंके आकारोंमें भी इसका मान बहुत परिवर्त्तित नहीं होता है। मनुष्य और कुत्तेके लिये क = १०.३, खरगोशके लिये १२.९, घोड़ेके लिये ९.०, चूहेके लिये ९.१ और शूकरके लिये ८.६।

यह भी सर्वथा सम्भव है कि कभ$^{\frac{2}{3}}$ में दिया हुआ क्षेत्रफल भिन्न-भिन्न प्राणियोंकी तुलना करते समय उपयुक्त न प्रमाणित हो। पर मुख्य बात यह है कि उष्णरक्त प्राणियोंमें शारीरिक प्रक्रिया भार भ के समानुपाती नहीं है प्रत्युत भ^{न} के समानुपाती है। यहाँ 'न' का मान $\frac{2}{3}$ में अधिक भिन्न नहीं है।

सब बातों पर सामान्य दृष्टिसे देखनेसे पता चला है कि रूबनरका उपरितल क्षेत्रफलका सिद्धान्त उष्णरक्त प्राणियोंकी शारीरिक प्रक्रियाओंके विषयमें तो ठीक है।

(क्रमशः)

वैज्ञानिक परिमाण

(लेखक श्री डा० निहाल करण सेठी डी. एस. सी.)

२१—तत्व (Elements)

तत्वों के नाम	संकेत	Symbol	परमाणु संख्या	परमाणु भार	घनत्व	द्रवाङ्क	कथनांक	आपेक्षिक ताप: ताप क्रम	आपेक्षिक ताप: आ० ताप
१ अन्यजन	अ	Xe	५४	१३०.२	३'५/द्र	—१४०°श	—१०६°श	—	—
२ अरुणिन्	रू	Br	३५	७९'९२	३'१०२/२५°	—७'३	६३	१३से४५	'१०७
३ आञ्जनम्	आ	Sb	५१	१२०'२	६'६२	६३०	१४४०	१७से९२	'०५०८
४ आलसीम	ल	A	१८	३९'९	१'४/—१८५°	—१८८	—१८६	—	—
५ इन्द्रम्	इ	Ir	७७	१९३'१	२२'४१	२२९०	२५५०?	१८से१००	'०३२३
६ उदजन	उ	H	१	१'००८	'०७/क	—२५९	—२५२'७	—	—
७ परबम्	प	Er	६८	१६७'७	४'७७?	—	—	—	—
८ ओषजन	ओ	O	८	१६	१'२७/—२३५°	—२३५	—१८२'९	—	—
९ आड्रम्	ड्र	Rh	४५	१०२'९	१२'४४	१९०७	२५००?	१०से९७	'०५८
१० कर्बन	क	C	६	१२'००५	३'५२/हीरा	४०००?	—	- ५०	'०६४
११ कोबल्टम्	को	Co	२७	५८'९७	८'६	१४६४	—	१५से१००	'१०३
१२ खटिकम्	ख	Ca	२०	४०'०७	१'५५/२९°	७८०	—	०से१००	'१४९
१३ गन्दलनम्	ग	Gd	६४	१५७'३	—	—	—	—	—
१४ गन्धक	ग	S	१६	३२'०६	२'०७	११५	४४४'५	१७से४५	'१६३
१५ गालम्	गा	Ga	३१	७०'१	५'९५	३०'२	—	१२से२३	'०७९
१६ गुप्तम्	गु	Kr	३६	८२'९२	२'१६/द्र	—१६९	—१५१'७	—	—
१७ जर्मनम्	ज	Ge	३२	७२'५	५'४७	९००?	—	०से१००	'०७४
१८ जिरकुनम्	जि	Zr	४०	९०'६	४'१५	१३००	—	०से१००	'०६६
१९ टंकम्	ट	B	५	१०'९	२'५?	२०००-२५००	३५००?ऊर्ध्वप	०से१००	'३०७
२० टरबम्	ट	Tb	६५	१५९'२	?	—	—	—	—
२१ टिटेनम्	टि	Ti	२२	४८'१	३'५४	२५००	—	०से१००	'११३
२२ तन्तालम्	त	Ta	७३	१८१'५	१६'६	२९१०	—	५८	'०३६

द्र=द्रवांक, क=कथनांक, ऊर्ध्वप=ऊर्ध्वपतन (Sublime)

तत्वों के नाम	संकेत	Symbol	परमाणु संख्या	परमाणु भार	घनत्व	द्रवाङ्क	क्वथनांक	आपेक्षिक ताप	
								तापक्रम	आ० ताप
२३ ताम्रम्	ता	Cu	२६	६३'५७	८'९३	१०८४°	२३१०°	२० से १००°	'०९३६
२४ थलम्	थ	Te	५२	१२७'५	६'२५	४५०	१३९०	१५से१००	'०४८
२५ थूलम्	थू	Tm	६९	१६८'५	—	—	—	—	—
२६ थैलम्	थै	Tl	८१	२०४'०	११'९	३०१	१२८०?	२०से१००	'०३२६
२७ थोरम्	थो	Th	९०	२३२'१५	११'३	१६९०	—	०से१००	'०२८
२८ दस्तम्	द	Zn	३०	६५'३७	७'१	४१८	९१८	२०से१००	'०९३
२९ दारुणम्	दा	Dy	६६	१६२'५	—	—	—	—	—
३० नकलम	न	Ni	२८	५८'६८	८'९	१४५२	२३३०?	१८से१००	'१०९
३१ नीलम्	नी	In	४९	११४'८	७'१२	१५५	१०००?	०से१००	'०५७
३२ नूतन	नू	Ne	१०	२०'२	?	—	—२३९	—	—
३३ नैलिन्	नै	I	५३	१२६'९२	४'९५	११३	१८४'४	९से९८	'०५४
३४ नोषजन	नो	N	७	१४'००८	'७६/-१६६	—२१०'५	—१९५'७	—	—
३५ नौलीनम्	नौ	Nd	६०	१४४'३	६'९६	८४०	—	—	—
३६ परौप्यम्	प	Pt	७८	१९५'२	२१'५	१७१०	२४५०	१८से१००	'०३२४
३७ पलाशलीनम्	श्ल	Pr	५९	१४०'९	६'४८	९४०	—	—	—
३८ पारद	पा	Hg	८०	२००'६	१३'५६/१५°	—३८'८०	३५६'७	२०	—
३९ पांशुजम्	पां	K	१९	३९'१०	'८६२	६२'५	७५८	—७८से२३	'१६६
४० पिनाकम्	पि	U	९२	२३८'२	१८'७	—	—	०से९८	'०२८
४१ पैलादम्	पै	Pd	४६	१०६'७	११'४	१५४९	२५४०	१८से१००	'०५९
४२ पोलोनम्	पो	Po	८४	२१८	—	—	—	—	—
४३ प्लविन्	प्ल	F	९	१९'०	१·११/—१८७°	—२२३	—१८७	—	—
४४ बलदम्	ब	V	२३	५१'०	५'५	१६२०	—	०से१००	'११५

तत्वों के नाम	संकेत	Symbol	परमाणु संख्या	परमाणु भार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक	आपेक्षिक ताप	
								तापक्रम	आ० ता
४५ बेरीलम्	बे	Be	४	९·१	१·९३	१४३०°	—	०से१००°	·४२५
४६ भारम्	भ	Ba	५६	१३७·३७	३·७५	८५०	—	—१८५से२०	·०६८
४७ मगनीसम्	म	Mg	१२	२४·३२	१·७४	६५३	११२०	१८से९९	·२४६
४८ मांगनीज़	मां	Mn	२५	५४·९३	७·३९	१२०७	१९००	१४से९७	·१२२
४९ मैसूरम्	मै	Ma	४३	?	—	—	—	—	—
५० यित्रम्	य	Y	३९	८९·३३	३·८?	—	—	—	—
५१ यीत्रबम्	यी	Yb	७०	१७३·५	?	—	—	—	—
५२ यूरोपम्	यू	Eu	६३	१५२·०	—	—	—	—	—
५३ रजतम्	र	Ag	४७	१०७·८८	१०·५	९६२	१९५५	१५से१००	·०५६
५४ रश्मिम्	रि	Ra	८८	२२६·०	?	—	—	—	—
५५ रागम्	रा	Cr	२४	५२·०	६·५०	१४८९	२२००	१००°	·११२
५६ रुथेनम्	थे	Ru	४४	१०१·७	१२·२	१९००?	२५२०?	०से१००	·०६१
५७ रैनम्	रे	Re	७५	—	—	—	—	—	—
५८ लालम्	ला	Rb	३७	८५·४५	१·५३२	३८·५	६९६	—	—
५९ लीनम्	ली	La	५७	१३९·०	६·१२	८१०	—	०से१००	·०४५
६० लुटेशम्	लु	Lu	७१	१७५·०	—	—	—	—	—
६१ लोहम्	लो	Fe	२६	५५.८४	७·८६	१५०५	२४५०	२०से१००	·११९
६२ वंगम्	व	Sn	५०	११८·७	७·२९	२३२	२२७०	१९से९९	·०५५२
६३ वासम्	वा	Os	७६	१९०·९	२२·५	२२००	—	१९से९८	·०३१
६४ विशद	वि	Bi	८३	२०८·०	९·८०	२६९	१४२०	२२से१००	·०३०४
६५ वुल्फामम्	वु	W	७४	१८४·०	१७ से १८·८	३०८०	३७००	२०से१००	·०३४
६६ व्योमम्	वो	Cs	५५	१३२·८१	१·८७	२६·४	६७०	०से२६	·०४८
६७ शशिम्	श	Se	३४	७९·२	४·५	२१७	६९०	२२से६२	·०८४

तत्वों के नाम	संकेत	Symbol	परमाणु संख्या	परमाणु भार	घनत्व	द्रवांक	कथनांक	आपेक्षिक ताप	
								तापक्रम	आ० ताप
६८ शैलम्	शै	Si	१४	२८·३	२·३	१२००°?	३५००?	५७°	·१८३
६९ शोणम्	शो	Li	३	६·९४	·५३४	१८६	>१४००	०से१००	१·०९३
७० संक्षीणम्	च	As	३३	७४·९६	५·७३	वाष्पीभूत	४५०	२१से६८	·०८३
७१ संदस्तम्	सं	Cd	४८	१·२·४०	८·६४	३२१	७७८	१८से९९	·०५५
७२ सामरम्	सा	Sa	६२	१५०·४	७·८	१३५०	—	—	—
७३ सीसम्	सी	Pb	८२	२०७·२०	११·३७	३२७	१५२५	२०से१००	·०३०५
७४ सुनागम्	सु	Mo	४२	९६·०	८·६	>श्वेतताप	३२००?	१५से९१	·०७२
७५ सृजकम्	सृ	Ce,	५८	१४०·२५	६·६८	६२३	—	०से१००	·०४५
७६ सैन्धकम्	सै	Na	११	२३·००	·९७१	९७·०	८७७	१०	·२९७
७७ स्कन्दम्	स्क	Sc	२१	४५·१	?	—	—	—	—
७८ स्त्रंशम्	स्त	Sr	३८	८७·६३	२·५४	९००	—	—	—
७९ स्फटम्	स्फ	Al	१३	२७·१	२·६५	६५७	१८००	१५से१८५	·२१९
८० स्फुर	स्फु	P	१५	३१·०४	१·८३पीला२·२लाल	४४·१	२८७	१३से३६	·२०२
८१ स्वर्णम्	स्व	Au	७९	१९७·२	१९·३२	१०६३	२५३०?	१८से९९	·०३०३
८२ हरिन्	ह	Cl	१७	३५·४६	२·४९/०°	—१०२	—३३·६	०से२४	·२२६
८३ हिमजन	हि	He	२	४·००	·१५/क	—२७० के नीचे	—२६८·६	—	—
८४ हेफनम्	हे	Hf	७२	१७८?	—	—	—	—	—
८५ हौलमम्	हौ	Ho	६७	१६३·५	—	—	—	—	—

२२. सामान्य पदार्थों के घनत्व

सामान्य तापक्रम पर ग्राम प्रति घ. श. म. में औसत घनत्व

पदार्थ	घनत्व	पदार्थ	घनत्व	पदार्थ	घनत्व
		लकड़ी		द्रव	
[illegible]—ढला हुआ —	७·[illegible]—७·७	राख—महोगनी	·६—·८	मधुरिन (ग्लैसिरिन)	१·२६
—पिटवां	७·८—७·९	बांस	·४		
—तार	७·७	सागवान	०·७—०·९	दारीलितमद्य (मिथिलेटेड स्पिरिट)	·८३
इस्पात	७·७—७·९	चीड़	०·५—०·७		
पीतल (साधारण) (६६ भाग तांबा ३४ भाग दस्तम्)	८·४—८·७			दूध	१·०३
कांसा (तांबा + वंग)	८·७—८·९	खनिज		नफथा	·८५
सिक्के (अंग्रेजी)		अगेट, स्लेट	२·५—२·७	तैल-अंडी	·९७
" कांसा (९५ ता, ४ व, १द)	८·९६	एसबेस्टस	३·०	" अलसी	·९१—·९३
		" —तख्ता	१·२	" जैतून	·९१—·९३
" सोने के (९१⅔ स्व, ८⅓ ता)	१७·७२	कोयला	·३—·६	पैट्रोल	·६८—·७२
				समुद्र का पानी	१·०१-१·०५
" चांदी (९२½ र, ७½ ता)	१०·३१	पत्थरका कोयला	१·२—१·५	तारपीन	·८७
		ग्रेनाइट	२·५—३	अन्य	
[illegible]टनटन		सङ्गमरमर	२·५—२·८	हड्डी	१·८—२·०
[illegible] ४० न)	८·८८	झांवा पत्थर	·४—·९	काग	·२२—·२६
		कार्ट्ज (स्फुटिक)	२·६६	एबोनाइट	१·८
[illegible], १५ न, २५द)	८·९	बालू (चांदी)	२·६३	जिलेटिन (सरेस)	१·२७
[illegible] (८४ ता, १२ म, ४ न)	८·५			कांचबिल्लूरी	२·९—४·५
स्फुर कांसा (९२½ ता, ७ब, ½ स्फु)	८·७—८·९			"—क्राउन	२·४—२·६
				बर्फ	·९१६८
				इंडियारबर	·९२—·९७
				चमड़ा	·८५—१
				कागज	·७—१·१
				चीनी मिट्टी	२·२—२·४
				कोलतार	१·०२
				मोम	·८७—·८८
				लाख	१·८

२३. घनत्व मापन विषयक शोधन

पानीमें तौलकर किसी वस्तुके घनत्व निकालने में, पानीके घनत्व और वायुकी प्लवन शक्ति का विचार रखकर वास्तविक घनत्व घ (घा—ग)+ग होगा यदि वस्तु का अशोधित घनत्व घ हो, पानी का घनत्व घा और वायुका घनत्व ग हो। नीचे दी हुई सारिणी में वह शोधन मान दिया गया है जो घ में करना आवश्यक है। घा का मान ·९९९२ (१०° से १८° श तक के बीचमें २००० भाग में १ भाग तक शुद्ध) लिया गया है; और ग का मान ·००१२ है।—से तात्पर्य यह है कि शोधन मान को घ के मानमेंसे घटाना चाहिये।

घ	शोधन	घ	शोधन	घ	शोधन	घ	शोधन	घ	शोधन	घ	शोधन
०·५	+·०००२	४·०	—·००६८	७·५	—·०१३८	८·४	—·०१५६	९·५	—·०१७८	१६·०	—·०३०८
१·०	—·०००८	४·५	—·००७८	७·८	—·०१३४	८·५	—·०१५८	१०·०	—·०१८८	१७·०	—·०३२८
१·५	—·००१८	५·०	—·००८८	७·९	—·०१४६	८·६	—·०१६०	११·०	—·०२०८	१८·०	—·०३४८
२·०	—·००२८	५·५	—·००९८	८·०	—·०१४८	८·७	—·०१६२	१२·०	—·०२२८	१९·०	—·०३६८
२·५	—·००३८	६·०	—·०१०८	८·१	—·०१५०	८·८	—·०१६४	१३·०	—·०२४८	२०·०	—·०३८८
३·०	—·००४८	६·५	—·०११८	८·२	—·०१५२	८·९	—·०१६६	१४·०	—·०२६८	२१·०	—·०४०८
३·५	—·००५८	७·०	—·०१२८	८·३	—·०१५४	९·०	—·०१६८	१५·०	—·०२८८	२२·०	—·०४२८

२४. नम वायु का घनत्व

$ग = ग_{श} (ह — ०·३७८ द)/ह$ इस समीकरण से नम वायुका घनत्व निकाला जासकता है, यदि ह स. म. दबाव पर शुष्क वायुका घनत्व $ग_{श}$ हो, और वायुमें जल वाष्प का दबाव द हो।

२५. घनत्व मापक

साधारण—घनत्व = अंश /१०००

बौमे—१५° पर घनत्व = १४४·३/(१४४—बौमे के अंश)

ट्वैडल—घनत्व = $१ + \frac{\text{ट्वैडल के अंश}}{२००}$

साइक्स—एक अंश = औसत में ·००२ का घनत्व अन्तर

२६ जल का घनत्व

ग्राम प्रति सहस्रांश मीटर में। शुद्ध वायुशून्यजल १ वातावरण दबाव पर स्थिर आयतन पर तापक्रम-उद्जन माप। जलका अधिकतम घनत्व ३·९८° पर होता है। वातावरणोंमें मापित भिन्नभिन्न दबावों (द) पर अधिकतम घनत्व का तापक्रम $त_{न}$ = ३·९८—·०२२५ (द—१)

विशिष्ट आयतन घनत्वका व्युत्क्रम होता है।

—१०° पर जलका घनत्व = ·९९८१५ —५° पर= ·९९९३०

तापक्रम	०	२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८
०°श	·९९९८७	·९९९९७	१·०००००	·९९९९७	·९९९८८	·९९९७३	·९९९५३	·९९९२७	·९९८९७	·९९८६२
२०°	·९९८२३	·९९७८०	·९९७३२	·९९६८१	·९९६२६	·९९५६७	·९९५०५	·९९४४०	·९९३७१	·९९३०
४०	·९९२२	·९९१५	·९९०७	·९८९८	·९८९०	·९८८१	·९८७२	·९८६२	·९८५३	·९८४३
६०	·९८३२	·९८२२	·९८११	·९८०१	·९७८९	·९७७८	·९७६७	·९७५५	·९७४३	·९७३१
८०	·९७१८	·९७०६	·९६९३	·९६८०	·९६६७	·९६५३	·९६४०	·९६२६	·९६१२	·९५९८
१००	·९५८४	—	—	—	—	·९५१	—	—	—	—

घनत्व १५०° पर = ·९१७, २००° पर = ·८६३, २५०° पर= ·७९, ३००° पर= ·७०

२७ अमोनियाका घनत्व नो $उ_३$ ओ उ. जलीय

१५°श पर ग्राम प्रति. घ. श. म.

घनत्व	घोलके १००ग्रा·में	घोलके १लिटरमें	±१° के लिये घनत्व परिवर्तन	घनत्व	घोलके १००ग्रा·में	घोलके १लिटरमें	±१° के लिये घनत्व परिवर्तन	घनत्व	घोलके १००ग्रा·में	घोलके १लिटरमें	±१° के लिये घनत्व परिवर्तन
	ग्राम नो $उ_३$				ग्राम नो $उ_३$				ग्राम नो $उ_३$		
·९९६	·९१	९·१	·०००१९	·९५६	११·०३	१०५·४	·०००३१	·९१६	२३·०३	२१०·९	·०००४९
·९९२	१·८४	१८·२	·०००२०	·९५२	१२·१७	११५·९	·०००३३	·९१२	२४·३३	२२१·९	·०००५१
·९८८	२·८०	२७·७	·०००२१	·९४८	१३·३१	१२६·२	·०००३५	·९०८	२५·६५	२३२·९	·०००५३
·९८४	३·८०	३७·४	·०००२२	·९४४	१४·४६	१३६·५	·०००३७	·९०४	२६·९८	२४३·९	·०००५५
·९८०	४·८०	४७·०	·०००२३	·९४०	१५·६३	१४६·९	·०००३९	·९००	२८·३३	२५५·०	·०००५७
·९७६	५·८०	५६·६	·०००२४	·९३६	१६·८२	१५७·९	·०००४१	·८९६	२९·६९	२६६·०	·०००५९
·९७२	६·८०	६६·१	·०००२५	·९३२	१८·०३	१६८·१	·०००४२	·८९२	३१·०५	२७७·०	·०००६०
·९६८	७·८२	७५·७	·०००२६	·९२८	१९·२५	१७८·६	·०००४३	·८८८	३२·०५	२८८·६	·०००६२
·९६४	८·८४	८५·२	·०००२७	·९२४	२०·४९	१८९·३	·०००४५	·८८४	३४·१०	३०१·४	·०००६४
·९६०	९·९१	९५·१	·०००२९	·९२०	२१·७५	२००·१	·०००४७	·८८०	३५·७०	३१४·२	·०००६६

२८. गन्धकाम्ल का घनत्व $उ_{२}ग ओ_{४}$ जलीय

१५° श पर ग्राम प्रति घ. श. म. में; °/₀ गओ₃ = ·८१६ × °/₀ $उ_{२}ग ओ_{४}$ (भार से)

घनत्व	घोलके		घनत्व	घोलके		घनत्व	घोलके	
	१० ग्रा. में	१ लिटरमें		१०० ग्रा. में	१ लिटरमें		१०० ग्रा. में	१ लिटर
	ग्राम. $उ_{२}$ गओ₃			ग्राम. $उ_{२}$ गओ₃			ग्राम $उ_{२}$ गओ₃	
१·०२	३·०३	३१	१·४४	५४·१	७७९	१·८२२	९०·४	१६४७
१·०४	५·९६	६२	१·४६	५६·०	८१०	१·८२४	९०·८	१६५६
१·०६	८·७७	९३	१·४८	५७·८	८५६	१·८२६	९१·२	१६६६
१·०८	११·६०	१२५	१·५०	५९·७	८९६	१·८२८	९१·७	१६७६
१·१०	१४·३५	१५८	१·५२	६१·६	९३६	१·८३०	९२·१	१६८५
१·१२	१७·०१	१९१	१·५४	६३·४	९७७	१·८३२	९२·५	१६९५
१·१४	१९·६१	२२३	१·५६	६५·१	१०१५	१·८३४	९३·०	१७०६
१·१६	२२·१९	२५७	१·५८	६६·७	१०५४	१·८३६	९३·८	१७२२
१·१८	२४·७६	२९२	१·६०	६८·५	१०९६	१·८३८	९४·६	१७३९
१·२०	२७·३	३२८	१·६२	७०·३	११३९	१·८४०	९५·६	१७५९
१·२२	२९·८	३६४	१·६४	७२·०	११८१	१·८४०५	९५·९	१७६५
१·२४	३२·३	४००	१·६६	७३·६	१२२२	१·८४१०	९७·०	१७८६
१·२६	३४·६	४३५	१·६८	७५·४	१२६७	१·८४१५	९७·७	१७९९
१·२८	३६·९	४७२	१·७०	७७·२	१३१२	१·८४१०	९८·२	१८०८
१·३०	३९·२	५१०	१·७२	७८·९	१३५७	१·८४०५	९८·७	१८१६
१·३२	४१·५	५४८	१·७४	८०·७	१४०४	१·८४००	९९·२	१८२५
१·३४	४३·७	५८६	१·७६	८२·४	१४५१	१·८३९५	९९·४	१८३०
१·३६	४५·९	६२४	१·७८	८४·५	१५०४	१·८३९०	९९·७	१८३४
१·३८	४८·०	६६२	१·८०	८६·९	१५६४	१·८३८५	९९·९	१८३८
१·४०	५०·१	७०२	१·८१	८८·३	१५९८			
१·४२	५२·१	७४०	१·८२	९०·०	१६३९			

पानी

[ले० श्री० रामलाल विशारद हायजिन इंस्ट्रक्टर]

ईश्वरने संसारमें जबसे मनुष्य उत्पन्न किये हैं तभीसे उसकी इच्छा यही रही है कि सब सदा अच्छे रहें। मनुष्य मात्र भी यही चाहता रहा है कि उसको शारीरिक मानसिक और नैतिक शक्तियोंकी पूर्ण वृद्धि हो। इसका मर्म यह है कि हम सबको स्वास्थ्य प्रिय है. पर हमारे आचरण दिन दिन ऐसे बुरे हो रहे हैं कि यही प्रिय वस्तु हमसे रुष्ट होकर समुद्रपार जारही है। हमारा शरीर प्रायः तीन वस्तुओंके बल पर बढ़ता और टिकता है। वे अन्न, पानी और हवा हैं। इन तीनोंकी शुद्धता पर हमारा स्वास्थ्य निर्भर रहता है। इनमेंसे किसी भी एककी अशुद्धता हानिकारक है। महाकवि कालिदासने कहा है 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' अर्थात् धर्मका साधन प्रथम शरीर ही है वा शरीर रक्षा ही प्रथम धर्म साधना है। शरीरके बिना हम चारों लक्ष्योंमें से किसी एकको भी नहीं पा सकते। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यही मुख्य लक्ष्य हैं। जब तक शरीर स्वस्थ न रहेगा तब तक इन का पाना असंभव है। अस्तु, शरीरकी स्वच्छताके हेतु पानी ही व्यवहारमें लाया जाता है, शरीर को मल लग जावे, अशौच (सूतक) होजावे चोट लगने से खून निकल आवे, आदि घटनाओंके दोषको दूर करनेके लिए पानी ही काममें आता है। वस्तुओंको भी साफ करनेके काममें पानीही मुख्यतः आता है पानीही स्वच्छता साधन का मुख्य हेतु है। पानीके कई नामोंमें से 'जीवन' भी एक है। यही नाम सार्थक है। पानी ही जीवन दाता है। जिस वस्तुमें पानीका अंश नहीं वह निर्जीव होजाती है। धूलमें अनेक वस्तुओंके बीज रहते हैं, पर वे पानी पड़ने पर ही अंकुरित होते हैं। पानी अर्थात् जीवन उनमें आजाता है और वे धीरे धीरे बढ़ने लगते हैं। चाहे वे वनस्पति हों या प्राणी हों। यदि हम स्वास्थ्य लाभ करना चाहते हैं तो हमें पानीके संबंधमें बहुत सावधान होना चाहिए। पानीको प्रायः बहु संख्यक लोग तत्व समझते हैं पर वास्तवमें वह जिसे हम व्यवहारमें लाते हैं, दो भिन्न तत्वोंके मिश्रणसे बना है। जो तत्व रूप में है वह केवल 'उद' कहलाता है। यही शब्द देश काल-परिवर्तनके चक्करमें पड़कर अंग्रेजीमें हाईड्रोजन' कहलाता है। वास्तवमें यह 'उद' रस है जो सर्वत्र व्याप्त है। वस्तुओंका जो आकार परिमित है, वह इसी 'रस' के कारण है और उनका जो रूप दृष्टिमें आता है वह 'उष' 'अग्नि'के कारण है। पानीको निर्मित करने वाले दो तत्व उद (हाईड्रोजन) और (उष) अग्नि (ओषजन) हैं। इनका प्रमाण २:१ है। अर्थात २ परमाणु 'उदके' और १ परमाणु (उष) अग्निका है, पर वजनमें 'उद' से (उष) अग्नि आठ गुनी है। इसका अनुपात २:१६ से प्रकट किया जाता है। यथार्थ पानी स्वच्छ, चमकदार, स्वाद और गंध रहित होता है। यह शून्य अंशपर ०° जम जाता है, और १००° पर उबलने लगता है। प्रायः सब वस्तुएं ठंडसे सिकुड़ती और गर्मीसे फैलती हैं पर पानी दोनों दशामें फैलता है। उसका अधिकतम घनत्व ४° अंशपर रहता है और इसी स्थितिमें वह अन्य वस्तुओंका घनत्व मापनेके हेतु मान मानाजाता है। इसका मुख्य गुण प्रायः वस्तुओं को घुलाना है। कुछ वस्तुएं तो इसमें पूर्ण रूपसे घुल मिल जाती है यथा शक्कर, फिटकरी नमक, दूध, मदिरा आदि और कुछ इसकी सतहपर उतराती या इसकी पेंदीमें बैठ जाती है यथा तेल. घी, लकड़ी, पत्थर, कोयला आदि। इसको दबाकर कम नहीं कर सकते। दो सेर पानीको किसी भी बलसे दबाकर कम मानके बर्तनमें भर रखना असंभव है। यदि बर्तनमें दो चार छिद्र हों तो कहीं एक ओर दबाव डालने वह सब पानी पर एकसा पहुँचेगा और पानी छिद्रोंसे बाहिर निकलने लगेगा। यदि किसी प्रकारकी रुकावट न हो तो यह सदा नीचेकी दिशामें बहता रहेगा। यह रन्ध्रोंके द्वारा ऊपर चढ़नेकी भी शक्ति

रखता है जैसे जड़ोंसे होते हुए वृक्षोंकी शिखरके पत्तों में पहुँचता है।

पानी यद्यपि भोजन सामग्रीमें नहीं गिना जा सकता तथापि वह सब प्राणी तथा वनस्पतिके जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ है। शरीरको इसकी साधारण आवश्यकता रहती है पर सभ्यताके साथ इसका उपचार कई कारणोंसे बढ़ गया है। यह घरमें रसोई बनाने, वस्त्र धोने, स्नान करने, और फर्श आदि साफ करनेके काम आता है। शरीरमें यह जाकर खाद्य पदार्थोंको घुलाकर आत्म सात् करनेमें, रक्त संचार ठीक २ होनेमें और दूषित पदार्थोंको यथा पेशाब, पसीना बाहर निकलनेमें सहायकारी होता है। इसके सिवाय इसीके उपयोगसे दवाखाने, कारखाने, गटरें, सड़कें, सराय, धर्मशाला आदि स्थान साफ सुथरे रहते हैं। इसके उपयोगमें यदि कृपणता की जावे तो स्वच्छतामें भारी धक्का बैठता है और जिसका प्रायश्चित लोगोंको व्याधियां भुगतकर करना पड़ता है। यह निश्चितरूपसे नहीं कहा जासकता कि किसको कितना पानी आवश्यक होगा। इसका प्रमाण लोगोंकी बान, परिस्थिति, और स्वच्छता प्रबन्ध पर निर्भर है। यहाँ साधारण अनुमान दिया जाता है जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता जान सकता है। घरमें पीनेके लिए १½ सेर; रसोईमें ३ सेर शौचादि क्रियामें २० सेर; बर्तन, फर्श आदि धोनेमें १२ सेर, कपड़ोंके लिए १२ सेर; टट्टी सफा करनेको २० सेर; व्यापारिक प्रयोजनके लिए २० सेर, ऐसा कुल ८८½ सेर पानी चाहिये।

सामाजिक कामोंमें भी पानीका बहुत काम पड़ता है। सड़कोंको सींचने, गटरोंको धोने आग बुझाने, बगीचे लगाने और फव्वारे आदिके चलानेमें पानीकी आवश्यकता है। ये सब काम समाजके स्वास्थ्यकी रक्षा के हेतु हैं। किसीभी प्रकारकी उपेक्षा विपतिको उत्पन्न कर देती है। दवाखानोंमें रोगियोंके लिए १६० से २०० सेर तक पानी चाहिये। यह प्रमाण ऋतुके अनुसार कम बढ़ हो सकता है। मवेशियों को उनके डील और ऋतुके अनुसार ४८ से ६० सेर तक पानी आवश्यक है।

पानी संसारमें तीन अवस्थाओं पाया जाता है। ऊंचे २ ठंडे पर्वतोंकी शिखरोंपर बर्फके रूपमें, मैदानों में नदियोंके प्रवाहमें साधारण तरल रूपमें, और हवा में भाफके रूपमें समाया रहता है। समुद्र ही पानीका मूल भंडार है। समुद्र सतह पर प्रति वर्गमूलके विस्तार में प्रति मिनिटमें २८०० सेर पानी भाफ रूपमें बन कर उड़ता रहता है। यही हवाकी गतिसे ठंडे देशभागोंमें पहुँचकर, वर्षा, बर्फ, कुहरा ओस, ओले आदि के रूपमें पृथ्वीपर आजाता है। इस तरह अपरोक्ष रूपसे पानी हमें हवाकी, सूर्यकी गर्मीकी और समुद्र की कृपासे मिलता है। पर प्रत्यक्ष रूपमें हम कई हेतुओंसे उसे प्राप्त करते हैं।

पानी प्राप्त होनेका प्रथम हेतु वर्षा ही है और प्रकृतिमें यही शुद्धतम रहता है। भूतल पर आते ही कुछतो भाफ बनकर हवामें मिल जाता है। कुछ नदियों नालों और झीलों आदिमें भर जाता है और कुछ भूमिमें पैठ जाता है। वातावरण पार करते समय पानी उसमें अनेक पदार्थोंके यथा नोषजन ओषजन कुछ कर्बन, खारी वस्तुएं, सामान्य नमक, गधेत, काजल, धूल, कीटाणु आदि घुलाकर भूमि पर ले आता है और भूमिमें पैठते २ तद्गत कर्बन आत्मसात् कर लेता है। जिस स्थानमें लोगोंके हेतु बहता हुआ पानी इकट्ठा करना हो तो उसे चूने समान पदार्थोंसे पक्का करना चाहिये।

कारखानोंके पास वर्षाका पानी इकट्ठा करना भला नहीं क्योंकि वातावरण ऐसे स्थानोंमें गंधक खार गंधेत काजल आदि पदार्थोंसे दूषित रहता है। कहीं २ छप्परोंका बहता हुआ पानी ओलतीके नीचे बर्तन रखकर इकठा करते हैं। पर पहिला पानी पक्षियोंकी बीट, धूल, कीड़ों, उनके अंडों तथा काजल आदि पड़ेहुए पदार्थोंसे हानि कारक बन जाता है। जब तक छप्पर दो तीन बार साफ न धुलजावे जबतक पानी मनुष्यके व्यवहार योग्य नहीं होसकता

जिन स्थानोंमें पानीका ठीक २ मिलना कठिन है वहां पूरी सावधानीसे इकट्ठा किया हुआ वर्षका पानीही पीनेके काममें लाया जा सकता है। वास्तवमें यह पानी विशूचिका तथा विषमज्वरके कीटाणुओंसे दूषित नहीं रहता। वायुका अंश अधिक घुला हुआ होनेसे यह पानी अधिक स्वादिष्ट होता है, पर सीसम् सरीखी धातुओं पर बहुत असर करता है, अतः ऐसी धातुओंके बर्तनों में रखनेसे उनके कण पानीमें मिलते रहते हैं जो मनुष्यको हानिकारक हैं।

पानी मिलनेका दूसरा साधन हिम तथा बर्फ है। यह पानी साधारणतः शुद्ध रहता है, पर यदि बर्फ दूषित स्थानके पानीसे निर्मित है तो पानीके बुरे होनेका भय है। इसका व्यवहार अत्यन्त ठंडे देशों में होता है या कभी २ कुछ अंशमें जहाजोंमें किया जाता है।

तीसरा साधन सतहका बहता हुआ पानी है जो स्वाभाविक झीलोंमें या कृत्रिम बधानोंमें एकट्ठा हो जाता है। यह बहुधा पहाड़ी स्थानोंमें पाया जाता है। यदि पहाड़ोंकी सतह पर झाड़ियां या अभ्रक आदि खनिज पदार्थ हुए तो वे सब बह बह कर पानीमें आकर घुल मिल जाते हैं। इनके कारणोंसे दस्तकी व्याधि हो जाती है। पानी कुछ अंतर तक रेतीले भागमेंसे बहता हुआ आकर इकट्ठा होवे तो ये कण अनायास दूर हो सकते हैं और पानी भी स्वच्छ बन सकता है। यदि इन दोषोंसे रहित हो तो यह पानी वर्षा पानीकी समता रखता है।

चौथा साधन झरने तथा सोते हैं। जहां तक भूतल भाग फुसफुसा रहता है वहाँ तक पानी बराबर पैठता हुआ जाता है और कड़ी सघन चट्टानके आने पर रुक जाता है। इस तरह पैठकर इकट्ठा हुआ पानी नीची दिशामें बहता है और तत् समान सतह वाले भूभागपर पहुँचते ही फव्वारे रूपमें निकलने लगता है। येही सोत या झिरने कहलाते हैं। ये कई प्रकारके होते हैं। कई तो लगातार वर्ष भरतक बहते हैं, जो जीवित या स्थायी कहलाते है और कई वर्षान्तमें ही बन्द हो जाते हैं जो जीवन रहित या अस्थायी कहलाते है। स्थायी झरनोंका संबंध गहरे पैठे हुए पानीसे रहता है और अस्थायी झरनोंका भूतलसे लगे हुए उथले पानीसे रहता है। जिन झरनोंका संबंध गंधककी चट्टानोंसे तथा स्तब्ध ज्वालामुखी पर्वत विभागसे रहता है उनका पानी बहुधा गर्म रहता है। इस प्रकारके झिरने भारतमें सीता कुंडके नामसे विख्यात हैं। पानी जितना गहरा पैठेगा उतना अधिक छनता जायगा और स्वच्छ चमकदार बनेगा। यह पानी बहुधा ठंडा और सुस्वादु रहता है, क्योंकि इसमें कर्बन का अंश अधिक घुला हुआ रहता है। दबावके कारण इसमें चूना और अन्य धातुज नमक भी घुल जाते हैं जिनसे यह भारी बन जाता है और धोनेके तथा रसोईके कामके अयोग्य होजाता है। ऐसा पानी वस्तुओंमें बराबर नहीं भिदता जिससे वे कच्ची रह जाती हैं। इनका पानी स्वच्छ रखनेके हेतु आस पासकी भूमि ढालू हो ताकि निस्तारमें आया हुआ पानी बहकर दूर चला जावे।

झरनेके आस पास दिवाल बनाकर ऊपरसे ढक्कन लगा देना और नल लगाकर पानी लेनेका प्रबंध कर देना सबसे अच्छा काम हैं।

पांचवाँ साधन कुए हैं। भारतवर्षमें देहातोंमें विशेषतः इन्हीं से पानी प्राप्त किया जाता है। यह वास्तव में कृत्रिम गड्ढे हैं जिनमें भूमि में पैठा हुआ पानी झीर द्वारा आकर इकट्ठा हो जाता है। ये उथले (सतहसे लगे हुए) गहरे और आर्टिजन प्रकार के होते हैं।

उथले कुएं फुस फुसी जमीनमें खोदे जाते हैं और उनकी गहराई १५' या २०' फीटसे अधिक नहीं रहती इनमें झीर पहिली चट्टान के ऊपर ही रहती है और विशेषतः आस पासकी भूमि में पैठा हुआ पानी आता है। यह पानी कदापि स्वच्छ नहीं होता, इसमें नाना प्रकार की अशुद्धियाँ रहती हैं। यदि इनमें कीटाणु सम्बंधी दोष प्रविष्ट हो जावें तो इनका पानी अत्यन्त हानिप्रद होता है। ये कुएं बहुधा कच्ची नालियों या सड़े हुए नालों अथवा टट्टियोंके निकट रहते हैं, जिससे इन अस्वच्छ स्थानोंमें पैठा हुआ पानी झीरद्वारा पहुंच जाता है और अपने साथ लाये हुए दूषितकणों को कुए के पानी में मिला देता है। इन दोषों से बचाने

केलिए कुएंकी दिवारोंको पक्की बनाना चाहिये। कहीं काम चलानेके लिए नलीके कुएं बनालेते हैं। एक फौलादी नोकवाली नली भूमिमें गाढ़ देते हैं और उसमें दूसरी नलियां जोड़कर पेचके समान घुमाकर भूमिमें धसाते जाते हैं। पानी की सतह आजाने पर वह नली द्वारा ऊपर आने लगता है। मेलेके समय इस तरह नलीद्वारा पानी निकालते हैं। ऐसेकार्यों के लिए ये नली। कुए बहुत उपयोगी रहते है, पर ये केवल नर्म भूमि या नदी के किनारेही सुलभतासे खड़े कियेजा सकते हैं। कड़ी चट्टानों में नलीकी नोक टूटने का और गारे की भूमि में नलके छिद्र बंद हो जाने का भय लगा रहता है।

गहरे कुएं फुसफुसी मट्टीके बाद चट्टानको फोड़कर अधिक गहरे किये जाते हैं। कमसेकम दो चट्टानें को फोड़कर गहरे बनाये हुए कुएं उत्तम रहते हैं। ये दूसरी चट्टान तक पक्के बाँधे जाते हैं, जिससे पानी सदा ३०' वा ३५' फीट गहरी झीर से आतारहे। इतना गहरा पैठा हुआ पानी छनते २ कीटाणु तथा खनिज आदि दोषोंसे मुक्त हो जाता है। इनका पानी कुछ अधिक स्वास्थ्यप्रद होता है।

आर्टिजन कुंए दो कड़ी चट्टानों के बीच से झरते हुए पानी को एक नालीद्वारा वहाके फव्वारे रूप में भूतल पर छोड़कर बनाये जाते हैं। पानी निकलने के स्थान की सतह पानी की झीर के रंध्र की सतहसे अधिक ऊंची होती है। इस प्रकार के कुएं अर्टाइसमें ही प्रथम निर्माण कियेगये थे अतः इनका यह नाम रक्खा गया है। कुए की गहराई से चौगुनी भूमि मेंभी यदि मलमूत्र या निस्तार का पानी पैठा तो वह निस्संदेह पैठकर कुओं में पहुँच जाता है। ऐसे प्रमाण से यह निश्चित किया जाता है कि इतने विस्तार के भाग में कुछ भी टट्टी, नाली, कूड़ेके ढेर न हों नहीं तो उनके कण भिदकर पानी में आमिलते हैं।

कुओं का पानी बिगड़ने के मुख्य कारण गंदेपानी के होज, बंपुलिस, कच्चीनालियां, कूड़े कचरेके ढेरऔर सड़े हुएनाले हैं। विशेष कर इन के कण बरसात में पहुँचते हैं। पैठे हुए पानी की गड़े हुए मुर्दोंके शरीर तक पहुँचने पर श्मशान भूमि के कुओंका पानी बिगड़ जाता हैं। आस पासकी भूमिमें दरारे, गड़े होने से भी उनमें नाना प्रकार के दूषित पदार्थ भरजाते हैं, और इसतरहवे पदार्थ पैठकर पानी में आमिलते हैं। वृक्षोंकी जड़ें भूमिको पोली फुसफुसी बना देती हैं जिससे सतह पर निस्तार का बहता हुआ पानी बराबर पैठकर कुओं के पानी में मिलता रहता है। इसी प्रकारका दोष चूहोंके बिल या पक्षियोंके घोंसले होने से आता रहता है। दूषित पानी भारी होता है और व्यवहारके अयोग्य रहता है। पानी के दोष को जांचनेके लिये संदिग्ध स्थानों पर (हौज नाला नाली टट्टी आदि) यदि नमकोन घोल डाले जावेंतो वे पैठते २ पानी में आमिलेंगे, जिससे यह प्रमाणित हो जायगा कि अमुक स्थान के कण भिदकर पानीमें आते रहता हैं।

कुओं की जांच करते समय यह ध्यान से देखना चाहिये कि २०० या ३०० फीट के विस्तार में पानी को दूषित करने का कोई कारणतो नहीं है। कुएकी दिवालें उत्तम छपी हुई हैं या उनमें दरारे तथा गड्ढे पड़गये हैं जो पक्षियों का आश्रय दे रहे हैं। कुंए की पूर्ण गहराई तथा तद्गत पानीकी गहराई कितनी है। और आसपासकी भूमि किसप्रकार की है कुआं किस काम में आता है और उसमें से पानीका कितना उठाव होता है। उसके भोगलेने वाले लोगोंका स्वभाव कैसा है, निस्तार का पानी किसतरह दूर कियाजाता है। सांप्रतमें वर्षा तो नहीं हुई और यदि हुई तो कितना? यदि कुछ इंच पानी निकाल कर देखा जाव कि पूर्व सतह की रेखा तक पानी आने में कितना समय लगता है तो इस पर पानी की आमदका हिसाब लगाया जा सकता है।

आदर्श कुंआ बनाने के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है यथाः-वह साफ सुथरी भूमिमें खुदा हो, सिमिट समान अभेद्य वस्तुसे १ इंच का तह तक सर्वतः छपा हो और पानीकी भीर केवल पेंदीमें रहे। बाहरी भाग कूटकर दृढ़ बना दिया जावे ताकि सतह का पानी भिदकर भीतर न जा सके। पनघटका

चबूतरा ढालूहो जिससे पानी कुएं में न जाकर दूर बह जावे। वहाँ नल लगा दिया जावे या डोल व डोरी रक्खी जावें, और चाहे जो मनुष्य अपना निजी डोल व डोरी पानी भरनेको न लावें। कमसे ६ फीटके विस्तारमें कुएंके चारों ओर भूमि पक्की बाँध दी जावे और किसीको वहाँ कपड़े वगैरा न धोनेदे। यदि चूहोंके बिल, दरारें, या सड़ते हुए तालाब, ढबरे आदि पास हों तो कूटकर भर दिये जावें और झाड़ भी काट डाले जावें। मुंह पर ढक्कन रहे जिसमें हवाके आने जानेके लिए एक दो जालीदार द्वार बना दिए जावें। साफ करनेको उतरने चढ़नेके लिए दिवालमें अकोड़े लगा दिये जावें। ऐसा कुआँ खुली नालीसे, खत्तियों, और बस्तीसे २५० फीट दूर रहे। सब कुएं वर्षमें एक दो बार साफ किये जावें। इस कामके लिए सबसे उत्तम समय ग्रीष्म ऋतु हैं, जब पानी बहुत कम हो जाता है। साफ करते समय दिवालोंको व पेंदीको खरोंच डालना चाहिये और चूनेसे छाप देना चाहिये। जो कुए कई दिनोंसे वैसे-ही पड़े हों उनका पानी उपयोगमें लानेके पहिले निकाल कर फेंक देना भला है, क्योंकि ऐसे पानीमें कीटाणु आदि दूषित करनेकी सामग्री प्रचुर रहती है। कुएं को साफ करनेके लिए उतरनेके पहिले ही बत्ती जलाकर जाँच लेना चाहिए कि उसमें कहीं कर्बन तो अधिक इकट्ठा नहीं हो गया है। यदि अधिक होगा तो बत्ती बुझ जायगी। ऐसे कुओंमें उतरना बुद्धिमानी का काम नहीं है।

छठा साधन तालाब हैं। कई ग्रामोंमें स्वाभाविक तलैयें या कृत्रिम (बंधे हुए) ताल, तालाब काममें आते हैं। यदि इनका पानी दोष रहित हो तो ये उत्तम जलाशय है, पर खेद है, कि लोग नहा धोकर या इनके प्रवाहमें शौचादिकर इनके पानीको बिगाड़ते रहते हैं। कहीं २ लोग बाल, राख आदि वस्तु तालाबोंमें डाल देते हैं। वृक्षोंके पास होनेमें उनकी पत्तियाँ भी पानीमें गिरकर सड़ा करती हैं, और यदि उन पर पक्षियोंके घोंसले हुए तो उनके अंडे, बीट आदि पदार्थ भी पानीमें गिर जाया करते हैं। लोगों की गंदी आदत (पानीमें ही थूकना, कुल्ला करना, शौच करना आदि) ढोरोंको नहलाना; सन अम्बाड़ी बांस आदि सड़ाना, सड़ी गली पत्तियाँ तरकारी भाजी, टट्टी व नालीका पानी आदि तालाबोंके पानी को बिगाड़नेके सामान्य कारण हैं।

यदि तालाबोंका पानी पीनेके काममें लेना हो तो इन बातों पर ध्यान दिया जावे कि वे अच्छी भूमि में हों, आसपास फुसफुसी रेतीली जगह या कूड़ा कचरा भरकर बनी हुई जमीन न हों। वे विस्तृत, समान और गहरे हों पानीका विस्तार १ एकड़ रहे। तीरकी भूमि ढालू और घाससे ढकी रहे। उसके ऊपरी किनार आसपासकी जगहसे ऊँचे रहे जिससे वर्षाऋतुमें सतह का बहता हुआ पानी तालाबमें न आजावे। उनके आसपास तार लगा देना और धूल, मक्खी, मच्छर आदिको दूर रखनेके लिये कुछ अन्तर पर वृक्ष कतारमें लगा देना आवश्यक है। उनमें नहाना तथा कपड़े बर्तन धोना मना किया जावे और किसी प्रकारका घाट बनाया जावे। दूरी पर एक नल लगा देना या एक मनुष्यको पानी निकालने के लिए बाल्टी देकर नियुक्त कर देना उत्तम है। पानीके पास तक कोई न जाने पावे। एक चबूतरा बना दिया जावे जहाँसे खड़े होकर पानी निकाला जावे। उनमें सदैव छोटी जातिकी मछलियाँ पाली जावें,जो मच्छरोंकी इल्लियोंको और अन्य कीटाणुओं को खाकर पानी को स्वच्छ रखती हैं। उनमें न मछलियाँ मारी जावें न किसी प्रकार का जलविहार किया जावे। काई कंजी, नील आदि सूक्ष्म पौधे लगतेही हटा दिये जावें और पांच दस वर्षमें एक दो बार पानीके कम होतेही वर्षा ऋतुके पहिले वे फिरसे खोदे जावें।

बिना इतना प्रबन्ध किये तालाबोंका पानी व्यवहारके योग्य नहीं होता। इनका पानी ग्रीष्ममें जीव विवर्तन से बिगड़ जाता है और वर्षामें नये पानीके घोलसे सुधर जाता हैं। काई साधारण प्रमाण पर होनेसे पानी को स्वच्छ रखती है, पर पौधोंको हटातेही दूर कर देना चाहिये, न कि वे वहीं पड़े २ सड़ाये जावें।

क्रमशः

खपत (Consumption)

(ले०—श्री विश्वप्रकाश बी० ए० विशारद)

खपत और उत्पादन का सम्बन्ध

उत्पादनके ऊपर गत लेखोंमें प्रकाश डाला जा चुका है। उनके पढ़नेसे यह पता चलता है कि किसी वस्तुका उत्पादन यों ही नहीं हो जाता। वस्तु उसी समय उत्पन्नकी जाती है जब कि उसकी आवश्यकता हो। जब लोगोंको अन्नकी आवश्यकता होती है तभी लोग उसको बोते हैं। वस्त्रोंकी जब आवश्यकता होती है तभी कपास बोई जाती है। आवश्यकतासे अधिक भी उत्पादन नहीं किया जाता। यह उत्पादनके लेखोंमें बताया जा चुका है कि जितनी वस्तुकी आवश्यकता होगी उतनी ही वस्तु उत्पन्न की जावेगी। इन दो बातोंसे यह पता चलता है कि खपत और उत्पादनमें विशेष सम्बन्ध है। खपत होती है इसी लिये उत्पादन होता है। इस कारण खपत, उत्पादन विभाजन आदिका आधार है।

खपत के विभाग

इसके अन्तर्गत दो बातें आती हैं (१) इच्छायें (२) माँग। वास्तवमें इन दोनों शब्दोंमें बहुत थोड़ा सा ही अन्तर है। केवल शब्दोंका ही फेर है। इच्छासे तात्पर्य है किसी वस्तुकी वाञ्छा करना। आप भूखे हैं आपको रोटीकी आवश्यकता होगी। यदि आपके पास वस्त्र नहीं है तो वस्त्रोंकी इच्छा होगी। किसीको हम अपनेसे अच्छे कपड़े पहने देखते हैं तो हमें एक प्रकारका द्वेष सा होता है—हमारे पास भी ऐसे ही वस्त्र क्यों नहीं हो जाते। किसीको मोटरमें बैठे देखकर हम भी उसके प्राप्त करनेका यत्न करने लगते हैं। ये सब इच्छा ही है। परन्तु माँगमें थोड़ा सा अन्तर होता है। एक गरीब भिखारी मोटरमें बैठनेकी इच्छा तो कर सकता पर उसको उस वस्तुकी माँग नहीं। महलोंमें रहनेका स्वप्न देख सकता है पर उसको उस वस्तुकी माँग नहीं हो सकती। माँगमें इच्छाके अतिरिक्त एक बातकी और आवश्यकता होती है। यदि वह मोटर लेना चाहता है तो उसे स्वयं भी कुछ व्यय करना चाहिये। परन्तु वह कितना व्यय करे? थोड़ा सा धन देनेसे उसको मोटर नहीं मिल सकती। उसको तो इतना व्यय करना पड़ेगा जितने पर मोटर वाला उसे मोटर दे सके। यदि वह उतना दे सकता है तो उसे उस वस्तुकी माँग है।

इच्छाओंके गुण।

(१) इच्छायें वृध्यात्मक होती हैं। मानुषी सभ्यता के विकासके देखनेसे इच्छाओंकेइस गुणका अनुमान हो सकता है। मानसिक वृद्धिके साथ साथ सदासे भोग की सामग्रियोंमें भी वृद्धि होती रही है। बीसवीं शताब्दीके एक नागरिकको दशा उस आदिम जंगल निवासीसे बिलकुल विपरीत पाई जाती है। उनके भोजन उनके वस्त्र, उनके रहन सहन आदिमें जमीन आसमान का अन्तर है। जंगलमें रहने वाले मनुष्यकी आवश्यकतायें बहुत ही परिमित थीं। फल जड़ आदिके मिल जाने से उसका पेट भर जाता था और जीवन बहुत सुखसे व्यतीत होता था। वस्त्रोंकी अधिक आवश्यकता उसको न थी। यदि वर्षा और शीतसे शरीरकी रक्षा हो जाती तो स्वर्गका अनुभव उसको प्रतीत होता था। पर आवश्यकताओंकी परिमित अवस्था न रही और शीघ्र ही अनेक वस्तुओंकी कमी प्रतीत होने लगी। भोजनमें विशेषता, विशेष स्वाद, बनानेकी विशेष विधियाँ निकल आईं। वस्त्रोंके भिन्न २ रूप निकल आये। इच्छायें अब परिमित नहीं हैं, प्रत्युत उनका विशाल सागर है। उसका वारापार नहीं—दिन ब दिन उसकी वृद्धि होती जाती है।

धन अधिक होने पर सबसे पहले भोजनमें विभिन्नता आती है। मनुष्यकी भूख स्वाभाविक तौरसे परिमित है। कोई मनुष्य उससे अधिक

नहीं खा सकता। जिस मनुष्यकी भूख ४ रोटियों की है, यदि उसको पूरियाँ खानेको दी जाँय या मिठाई खानेको दी जाय, तो वह उतना ही खा सकेगा। प्रायः यह देखा जाता है कि धनी पुरुषों की भूख गरीबोंसे बहुत कम होती है। अमीर लोग भोजनमें धन और प्रकारसे व्यय करते हैं। एक तो वह बढ़ियासे बढ़िया भोजन बनवाते हैं। दूसरे उनके यहाँ उनके मित्र, उनके सम्बन्धी तथा अन्य अतिथि आया करते हैं।

भोजनसे भी अधिक इच्छा सम्मानकी होती है। बचपनसे लेकर मृत्यु तक यह लालसा विद्यमान रहती है। मूर्खसे मूर्ख भी यही चाहता है कि लोग उसका आदर करें, जिधरसे वह निकल जाय लोग उसका सत्कार करें। कोई भी उनकी बुराई न करे। सम्मानके लिये लोग धनको पानी के समान बहाते हैं। सुन्दर मकान में रहना, उत्तम वस्त्र धारण करना, सवारी पर चलना सभी सम्मानके लिये है। भारतवर्षमें विवाहादि अवसरों पर हज़ारों रुपया इसलिये बहाया जाता है कि लोग उनकी क्षणिक प्रशंसा ही करें।

उत्तम वस्त्रोंके पहननेकी कौन लालसा नहीं रखता। वास्तवमें वस्त्रोंका जन्म शरीरकी रक्षाके विचारसे हुआ है। इसी कारण भिन्न २ देशोंके लिये भिन्न २ वस्त्रोंकी भी आवश्यकता हुई। गरम देशमें साधारण कपड़ोंसे ही काम चल सकता है। पर शीत प्रधान देशमें बिना उनके काम नहीं चल सकता। परन्तु आधुनिक सभ्यतामें शरीर रक्षा या कपड़ेकी मजबूती आदिपर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। फैशन ही मुख्य ध्येय है। पाश्चात्य देशोंमें लोग फैशनों का प्रतिदिन अन्वेषण किया करते हैं और साधारण शिक्षित स्त्रियाँ भी इस कामको सरलता से कर लेते हैं। कोट, लेस, जाकेट, साया, आदि में प्रतिदिन परिवर्त्तन, होता रहता है। एक महीने पहले के बना हुआ वस्त्र रद्दी हो जाता है क्योंकि फैशन उस समयमें उन्नति कर जाता है। भरत-वर्षमें यह बाततो संभव नहीं क्योंकि यहाँकी परिस्थितिमें बहुत भेद है। यहां पर इतना धन नहीं कि लोग भोजन तक कर सकें, फैशन करना तो बहुत दूर है।

अच्छे घर का होना भी स्वास्थ्यके लिये बहुत ही आवश्यक है। गरीब और अमीर दोनोंको इसकी समान आवश्यकता होती है। गन्दे घरमें रहनेसे स्वास्थ्य खराब हो जाता है और सब शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारकी शक्तियोंपर इसका प्रभाव पड़ता है।

(२) इच्छायें परिमित होती हैं। प्रत्येक इच्छा की सन्तुष्टि हो सकती है। और इसके लिये एक परिमाणसे अधिकको अवश्यकता नहीं पड़ती। किसी मनुष्यको प्यास लगी उसको एक गिलास जलकी बहुत ही आवश्यकता है जिससे कि उसकी प्यास बुझ जाय। यदि उसे दो गिलास पानी मिले तो उसका प्यास बिल्कुल बुझ सकती है। पर इससे अधिक जलकी उसको आवश्यकता नहीं, अस्तु इससे अधिक जल निमूल्य ही होगा। यदि उसे और अधिक जल मिल जायगा तो वह पीने के काममें उसे नहीं ला सकता, क्योंकि उसकी प्यास बुझ चुकी है।

(३) इच्छाओंमें स्पर्धा होती है। एकही समय में अनेकों इच्छायें मनुष्यको हुआ करती है। एक ही क्षण मिठाई और खिलौने दोनोंकी इच्छा होती है। दो ही नहीं प्रत्युत किसी समय अनेकों इच्छायें एक ही समय हुआ करती हैं। पर सभी इच्छाओंको सन्तुष्ट करनेके साधन हमारे पास नहीं होते और हमें स्पर्धा करनी पड़ती है। मान लीजिये कि आपके पास १००) है। इन रुपयोंको हम कई प्रकारसे व्ययकर सकते हैं। कुर्सी मेज़ खरीदी जासकती है, दिल्लीकी सैर की जा सकती हैं, पुस्तकें लीजा सकती हैं, दावतमें भी यह रुपया व्यय हो सकता है. किसी संस्थाको भी यह रुपया दिया जासकता है। प्रत्येककार्य के करनेमें १०० रु० ही व्यय होगा। ऐसे समयमें यह प्रश्न उठता है कि हम किस तरह उसको व्यय करें। हम व्यय करनेमें स्वतन्त्र भी है।

ऐसी अवस्था में हम अधिक उपयोगिता का स्थान रक्खेंगे। जो कार्य अधिक उपयोगी होगा उसे ही हम करेंगे। पर एकको करनेसे अन्य इच्छाओंकी सन्तुष्टि नहीं हो सकती।

(४) कुछ इच्छाओंकी सन्तुष्टि एक साथ ही हुआ करती है। भोजनके साथ २ जलकी इच्छा होती है। गाडी बिना घोड़ेके नहीं चल सकती।

(५) इच्छाओंकी सन्तुष्टि धीरे २ होती है और एक समय ऐसा आता है जब कि पूर्ण सन्तुष्टि हो जाती है। यदि सन्तुष्टि होनेपर भी वह वस्तु मिलती ही जाय तो वही वस्तु सन्तुष्टि के स्थान में दुःखका कारण हो जाती है। मान लीजियेकि आप पावभर मिठाई खा सकते हैं। यदि आपको पाव भर मिठाई मिलजाय तो आपकी सन्तुष्टि हो जायगी। उससे यदि कम मिलेगी तो आपका पेट नहीं भर सकता। यदि उस मात्रासे अधिक मिले तो आपको उसके पानेकी कोई प्रसन्नता न होगी।

इच्छा और उद्यम का सम्बन्ध

इच्छा और उद्यममें बहुत बड़ा सम्बन्ध है। वास्तवमें यदि देखा जाय तो सारे कार्य इच्छासे ही प्रेरित होकर किये जाते हैं। जिस वस्तुकी इच्छा होती है उसके पाने का प्रयत्न कियाजाता है और जैसी प्रबल इच्छा होती है वैसा ही प्रबल प्रयत्न भी होता है। आपको जलकी आवश्यकता हुई तो आप यत्न करेंगे कि जल कहींसे मिल जावे क्योंकि उसके मिलनेपर ही आपकी प्यास बुझ सकती है। मनुष्य सभ्यताके विकासको देखनेसे पता चलता है कि इच्छाओं ने उद्यम को कितना प्रेरित किया है। आरम्भमें बहुत कम इच्छायें थी उस समय उद्यम भी अधिक न था। ज्यों ज्यों इच्छायें होने लगी उद्यम भी बढ़ने लगा। पहले फल या पशु आदिसे ही पेट भर लिया जाता था। उनके पाने के लिये रात दिन प्रयत्न करना पड़ता था परन्तु भूमिके जोतनेकी क्रिया जान लेनेपर यह कार्य सरल होगया। अब जो समय बचता उसका उपयोग करनेकी आवश्यकता पड़ी। बचा हुआ समय खेलने या मित्रोंके साथ सहभोजमें बीतने लगा पर इस उद्यम ने इच्छाओंको उत्पन्न किया। इच्छा होनेसे फिर उद्यम आरम्भ हो गया। अब बहुतसे लोग भोजन बनाने या मन बहलावकी वस्तुयें निर्माण करने लगे। इस प्रकार प्रथम तो इच्छाओंसे उद्यम आरम्भ होता है, फिर उद्यम नवीन इच्छाओंको प्रेरित करता है और नई इच्छायें फिर उद्यम उत्पन्न करती है। इस प्रकार एक चक्र चलता रहता है।
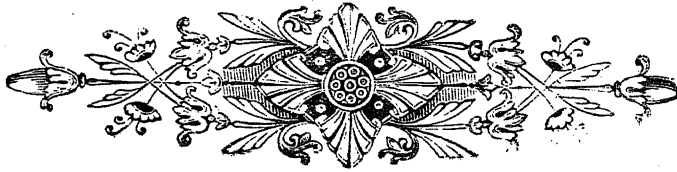
पृथ्वी की गुरुत्व शक्ति के प्रभाव

(क्रमागत)

[ले० श्री कृष्णचन्द्र बी. एस-सी.]

(५) पदार्थों की समतुल्यता या समत्व

५३. यदि किसी ईंटको तुम मेज या जमीन पर सीधी खड़ी कर दो तो वह तुम्हारे छोड़ने पर भी खड़ी ही रहेगी, परन्तु यदि तुम तनिक भी अब खड़ी हुई ईंटको अपने हाथसे इधर उधर कर के टेढ़ी करो तो स्यात् थोड़ी टेढ़ी करने पर तो वह छोड़ने पर फिर अपनी पहिली सीधी खड़ी स्थिति में आ जावे और फिर वैसे ही पूर्ववत् खड़ी रहे, परन्तु एक निर्दिष्ट सीमा तक टेढ़ी करने पर ही वह ऐसा कर सकेगी अर्थात् इस सीमा के अन्दर ही टेढ़ी करने पर वह छोड़ने पर फिर अपनी पहिली स्थिति में आकर सीधी खड़ी रह जावेगी, परन्तु यदि तुम इस सीमा के बाहिर उसको टेढ़ा कर दोगे तो वह छोड़ने पर फिर अपनी स्थिति पर न आ सकेगी वरन् छोड़ने पर गिर पड़ेगी। इस प्रकार जब ईंट सीधी खड़ी रहती है तो हम कहते हैं कि वह ईंट समत्व में है अर्थात तुली हुई है। उपर्युक्त सीमा बाहिर टेढ़ी करने पर ईंटका समत्व बिगड़ जाता है इससे वह गिर पड़ती है। कोई भी पदार्थ जब स्थित दशामें हो अर्थात इधर उधर न हिलता हो तो हम कहते हैं कि वह समत्व में है।

५४-कोई ढेला यदि तुम ऊपरसे नीचेको गिराओ तो जब तक वह ढेला गिरता रहेगा तब तक वह समत्व में न होगा जब वह जमीन पर आकर एक स्थान पर ठहर जावेगा और बिल्कुल स्थित हो जावेगा तो हम कहेंगे कि अब समत्वमें आ गया। और तीसरा उदाहरण लीजिये; तुम्हारी दवात क़लमदानमें रक्खी हुई समत्व में है परन्तु यदि कोई बच्चा उसको इधर उधर हिलावे तो उसी समय उसका स्यात् समत्व जाता रहे। एक और उदाहरण लीजिये। एक लोहेका छोटासा गोला तागेके द्वारा तुम्हारे कमरेकी छत के कड़ेसे बँध कर लटक रहा है। इस लटकते हुए गोलेको यदि तुम तनिक भी इधर उधर कर दो तो वह थोड़ी देर तक इधर उधर को घूमता रहेगा और जब तक वह इस प्रकार झूलता रहेगा हम उसको तब तक यह नहीं कह सकते कि वह समत्व में है, परन्तु जब थोड़ी देर तक वह इस प्रकार झूलता झूलता अन्तमें अपने बीचके स्थानपर स्थिर होकर फिर लटकने लगेगा और तनिक भी इधर उधर को न डोलेगा; तो हम कहेंगे कि वह गोला अब समत्वमें आ गया। इन सब उदाहरणोंसे आशा है कि तुम समत्वका अर्थ भले प्रकार समझ गये होगे।

५५. पदार्थोंका समत्व दो प्रकारका होता है (१) स्थायी (२) अस्थायी। ऊपर लिखे गये सबसे पहिले उदाहरण में जब हमने ईंट को मेज पर सीधा खड़ा किया था तो हमने देखा था कि थोड़ी ही टेढ़ी करनेसे उस ईंट के समत्वमें इतना अन्तर पड़ गया था कि वह फिर अपनी खड़ी स्थितिमें न आ सकी थी किन्तु गिर पड़ी थी, इस लिये वह ईंटका समत्व अस्थायी था। अस्थायी समत्व वह है जिसमें पदार्थ तनिक भी इधर उधर को विचलित होने पर उसका समत्व इतना बिगड़ जावे कि फिर वह पदार्थ अपनी स्थिति पर आकर रुक ही न सके बल्कि गिर ही पड़े। यदि तुम इस ईंट को पड़ी हुई दशा में मेज पर रख दो और अब इसको पूर्ववत विचलित करो तो तुम देखोगे कि चाहे अब तुम इसको कितना भी इधर उधर को टेढ़ा कर दो परन्तु तो भी वह ईंट बराबर अपने स्थान पर जमी ही रहेगी अर्थात् उसका समत्व न बिगड़ेगा। पड़ी हुई दशामें ईंट का स्थायी समत्व है।

५६. चित्र नम्बर(३) के अनुसार तुम एक लकड़ीकी हल्की पटड़ी का टुकड़ा लो और उसके ऊपरी भाग में जो चित्रमें एक छेद दिखाया गया है उसमें कील डाल कर उस कीलके द्वारा उस पटड़ीको दीवारमें गाड़ दो, परन्तु कील बहुत अधिक मत ठोको बल्कि इतनी रहने दो कि पटड़ी इधर उधर को आसानीसे कीलके सहारे घुमाई जा सके।

अब इस पटड़ीको चाहे एक ओर को और चाहे दूसरी ओर को तुम अपने हाथसे घुमाओ तो तुम देखोगे कि छोड़ने पर पटड़ी फिर अपने पहिले ही स्थान पर आकर स्थिर हो जावेगी, सम्भव है कि यह थोड़ी देर तक उधर झूलती रहे परन्तु अन्तमें अवश्यमेव वह अपने पुराने स्थानपर आकर स्थिर हो ही जावेगी। इससे ज्ञात हुआ कि इस प्रकार लटकनेकी दशामें पटड़ी स्थायी समत्वमें है।
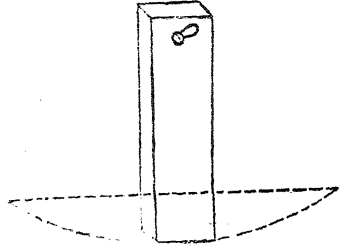
चित्र (३)

पटड़ी को घुमा कर एक दम यदि तुम सीधी ऊपर की ओर खड़ी कर दो जैसा कि चित्र नं० (४) में है और इसी स्थितिमें उसको स्थिर करके धीरे-छोड़ दो तो पटड़ी इस ऊपरकी खड़ी हुई स्थितिमें ही स्थिर रह जावेगी अब नीचेको गिर कर वह अपनी पहिले चित्र (३) वाली स्थितमें न आवेगी तो हम कहेंगे कि पटड़ी अब इस चित्र (४) वाली स्थितिमें ही समत्व में है। अब जब कि पटड़ी चित्र (४) वाली स्थितिमें है तुम इसे तनिक भी इधर उधरको विचलित करो तो वह एक दम नीचे गिर कर चित्र (३) वाली स्थितिमें ही आ कर स्थिर हो जावेगी। इससे ज्ञात हुआ कि चित्र (४) वाली दशा में पटड़ी अस्थायी समत्व में है।
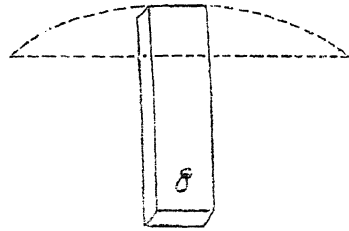
चित्र (४)

दोनों ही स्थितियों में चित्र ३ व ४ पटड़ी समत्वमें है और दोनों ही स्थितियोंमें पटड़ी को तनिक भी इधर उधर को विचलित करने से उसका समत्व बिगड़ जाता है परन्तु अन्तर इतना ही है कि चित्र (३) की स्थिति में विचिलित करने पर यद्यपि थोड़ी देर के लिये पटड़ी समत्व अवश्य जाता है और वह इधर उधर को झूलती रहती है। परन्तु थोड़ी देर के पश्चात् अन्तमें फिर वह अपनी पहिली ही स्थितिमें आ कर स्थिर हो जाती है अर्थात् समत्वमें आजाती है। इससे इस स्थितिमें इसका समत्व स्थायी है। परन्तु चित्र ४ की स्थितिमें पटड़ी थोड़ी ही विचिलित होनेपर उसका समत्व इतना बिगड़ जाता है कि फिर वह कभी भी अपने आप अपनी पहिली स्थितिमें नहीं आती, किन्तु नीचे गिर कर चित्र ३ की दशामें आकर स्थिर हो जाती है। इससे इस दशामें पटड़ीका समत्व अस्थायी है।

५९. अस्थायी समत्वके अन्य बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक लम्बी लकड़ी को तुम अपनी उँगली पर साध सकते हो। इसके लिये तुम को तनिक चेष्टा करनी होगी। कभी लकड़ीका कोई बिन्दु उंगली पर रक्खोगे और कभी कोई। इस प्रकार करते करते एक बिन्दु लकड़ीका ऐसा निकल आवेगा जिस पर वह ठीक सध जावेगी। लकड़ीका यह बिन्दु ही उसका गुरुता केन्द्र है—परन्तु इस सधी हुई दशा में यद्यपि लकड़ी समत्वमें है किन्तु वह समत्व अस्थायी है स्थायी नहीं, क्योंकि तनिकसी भी विचलित होनेपर लकड़ी गिरही पड़ेगी। देखो चित्र (५)

गुरुता केन्द्र और समत्व equilibrium

६०. पहिले हम पदार्थोंके समत्व पर विचार कर चुके हैं अब हम को यह विचार करना है कि पदार्थोंका समत्व किसपर निर्भर रहता है अर्थात् कब कोई पदार्थ समत्वमें होगा और कब नहीं और यह भी कि कब किसी पदार्थका समत्व स्थायी होगा और कब अस्थायी रहेगा।

६१. पदार्थोंका समत्व उनके गुरुताके केन्द्र पर ही निर्भर है; गुरुता केन्द्रकी ही स्थिति पर यह

भी निर्भर है कि समत्व स्थायी होगा अथवा अस्थायी। सबसे पिछले उदाहरण में जब हमने पड़ी हुई स्थिति में एक लकड़ी को अपनी अँगुली अथवा पेंसिल की नोकपर साधना चाहा था तो हमने देखा था कि एक दम हम उसको अपनी अंगुली पर अधर न कर सके थे, लकड़ी तब ही हमारी अगुली पर सध सकी थी जब कि उसका एक बिंदु बिशेष हमारी अगुलीपर रक्खा गया था, इस बिंदु के अतिरिक्त अन्य किसी बिंदु को अंगुली पर रखने से लकड़ी न सध सकेगी और लकड़ीके इस बिंदु विशेष को हमने बार बार उसको साधनेकी चेष्टा करके ही पाया था। चित्र [५] में लकड़ी इस
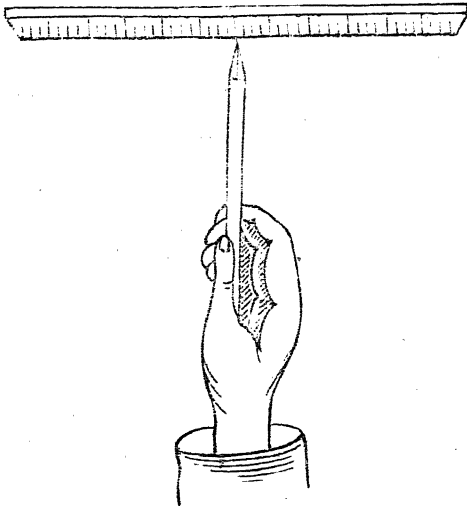
चित्र ५

प्रकार आधार परसधी हुई दशामें दिखाई गई है] इस लकड़ी का वह बिन्दु विशेषही जिसपर कि वह अधर साधी जा सकती है इस लकड़ीका गुरुता केन्द्र है। लकड़ीकी गुरुता केन्द्र के बिंदु जब तुम्हारी अंगुलीपर होगी तब ही वह सध सकेगी अन्यथा नहीं। इसी गुरुता केन्द्रके बिंदु परही लकड़ी क्यों सध सकती है ? अन्य किसी बिंदुपर क्यों नहीं सध सकती ?

६२. गुरुता केन्द्रके सम्बन्धमें तुमको बताया जा चुका है कि गुरुता केन्द्र किसी पदार्थका वह बिन्दु है जिस पर कि पृथ्वीकी आकर्षण शक्ति उस पदार्थको पृथ्वीकी ओर खींचनेके लगायी हुई समझी जा सकती है। लकड़ी जब हमारी अंगुली पर चित्र ५ में सधी हुई है तो उस सधी हुई दशामें पृथ्वीकी गुरुत्व शक्ति उसको अपनी और खींचने का अर्थात् नीचे गिराने का प्रयत्न कर रही है, परन्तु जिस बिन्दु को पकड़ कर पृथ्वी खींचर ही है वही बिन्दु हमारी अँगुली पर ठहरा हुआ है. वह बिन्दु हमारी अँगुलीके आधार पर रुका हुआ है और हम अपनी अँगुलीके आधार द्वारा लकड़ीके उस बिन्दु को ऊपर रोके रखने की चेष्टा कर रहे हैं अर्थात हम अपनी अँगुलीके आधारसे उस बिन्दुपर जो पृथ्वीकी गुरुत्व शक्तिका बल उस लकड़ीका समत्व नष्ट करनेकेलिये लगा हुआ है उस बलका अपनी शक्तिसे मुक़ाबिला कर रहे हैं। यही कारण है कि पृथ्वीका आकर्षण बल हमारी मुकाबिला करनेकी शक्तिके विरोधी शक्तिसे दबकर अपना कार्य्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, इसीलिये लकड़ी अधर सधी रह सकती है और पृथ्वीकी गुरुत्व शक्ति उसपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती परन्तु यदि लकड़ीका गुरुता केन्द्र हमरी अँगुलीपर न सधा हो बल्कि दूसरा बिन्दु लकड़ीका हमारी अंगुलीपर हो तो पृथ्वीकी गुरुत्व शक्ति अपना आकर्षण बल गुरुता केन्द्रपर लगा कर लकड़ीको अपनी ओर को खींच सकेगी अर्थात गिरा सकेगी क्योंकि उस दशामें हमारी अँगुलीका आधार लकड़ीके गुरुता केन्द्र पर न होनेसे पृथ्वीके गुरुता शक्तिका मुक़ाबिला करके उसको न दबा सकेगा लकड़ी जब हमारी अंगुलीके आधारसे अधर तुली हो तब यदि लकड़ीके किसी सिरेको पकड़ कर ऊपर नीचे को कर दो तो थोड़ा ऊपर नीचे को करनेसे तो लकड़ीका गुरुता केन्द्र जो हमारी अंगुलीके आधार पर है अँगुलीके सहारे रहा आवेगा; परन्तु लकड़ी के सिरेको अधिक ऊपर नीचे

करने से उसका गुरुता केन्द्र जो हमारी अँगुलीके आधार पर था उस आधारसे यातो इतना ऊपरको उठ आवेगा या इतना नीचे को आवेगा कि लकड़ी का सिरा छोड़नेपर वह गुरुता केन्द्र फिर हमारी अँगुलीके आधारपर न आ सकेगा तबही लकड़ी पर पृथ्वीकी गुरुत्व शक्ति तुरन्त अपना प्रभाव डाल कर लकड़ी को गिरा देगी इससे मालूम हुआ कि इस प्रकार सधी हुई लकड़ीका समत्व क्यों अस्थायी है। उसका यही कारण है कि इस प्रकार तुली हुई लकड़ीको विचलित करनेपर उसके गुरुता केन्द्रके नीचेजो अँगुलीका आधार है उस आधार से वह गुरुता केन्द्र हट जाता है। अर्थात् पदार्थ तब अस्थायी समत्वमें होता है जब कि उसका गुरुताकेन्द्र उसको विचलितपर अपने आधारके ऊपर से हट जावे।

६३ यदि इसी मोटे डण्डे को हम अब सीधा अपने हाथ या किसी अन्य चपटे आधार पर खड़ा करें जैसा कि चित्र (६) में दिखाया है तो डंडेकी
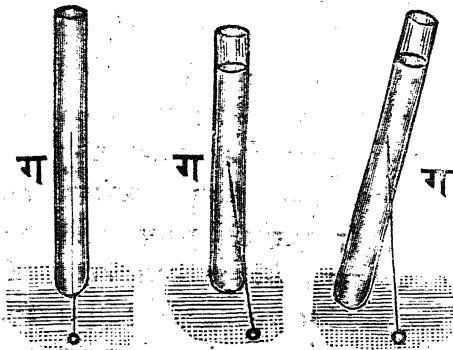
चित्र (६) (७) (८)

नीचेकी समस्त तली हमारे हाथके आधार पर आश्रित होगी इस लिये यह सबकी सब तली आधार का क्षेत्र होगी न कि केवल उसका एक बिन्दु विशेष जब इस प्रकार डंडा अपनीतलीके आधार पर तुम्हारे हाथपर अधर खड़ा हो तो इस स्थित में वह समत्व में है। अब यह क्यों समत्व में है? क्या इस डण्डेका गुरुता केन्द्र अब हमारे हाथके आधारपर हथा हुआ अधर है जैसा कि पहिले परीक्षण पड़े डंडेके हमारी अँगुली पर तुले रहनेकी दशामें था? नहीं, अब डण्डे का गुरुता केन्द्र स्वयं तो हमारी हथेलीके ऊपर ठहरा हुआ नहीं है, क्योंकि डण्डे का गुरुता केन्द्र बिन्दु उससे सिरे पर नहीं हो सकता। गुरुता केन्द्र किसी पदार्थ का जहाँ पर होता है वहीं रहता है। वह अपना स्थान नियत रखता है उसे बदलता नहीं: और हम देख चुके हैं कि जब हमने इस डण्डेको पड़ी हुई दशामें अपनी अंगुलीके आधारपर तोल कर रक्खा था तो उसका गुरुता केन्द्र जब हमारी अँगुली पर रक्खा गया था तब ही वह अधर रह सका था अन्यथा नहीं और यह गुरुता केन्द्रका बिन्दु जिसको अँगुलीपर रखने से डंडा तुल सका था डंडेके ठीक बीचका बिन्दु था जिसको हमने बार बार चेष्टा करने पर मालूम कर पाया था। तो अब जबकि वही डण्डा हमारी हथेली पर सीधा अधर खड़ा है तो अब भी उसका गुरुता केन्द्र तो ठीक डंडेके बीचमें ही होगा जैसा कि चित्र (६) में 'ग' बिंदु दिखाया है और यह बिंदु अब हमारी हथेली पर नहीं रक्खा है बल्कि उसके ऊपर है, इसलिये प्रश्न यह होता है कि अब डंडा क्यों समत्व में है जब कि उसका गुरुता केन्द्र आधार पर नहीं डटा हुआ है? यदि तुम ध्यान पूर्वक देखो तो तुम को मालूम होगा कि डंडे का गुरुता केन्द्र 'ग' यद्यपि अब ठीक हमारी हथेली के आधार पर तो नहीं है, परन्तु वह आधार के ऊपर ठीक 'सीधी खड़ी रेखा' (vertical line) में है अर्थात् यदि गुरुता केन्द्र के बिंदु 'ग' से नीचे की ओर को सीधी खड़ी रेखा खींचे तो वह रेखा जैसा कि चित्र में दिखाया है डंडेकी नीचेकी तलीके क्षेत्र जो कि हथेलीके आधारपर है उस क्षेत्र के अन्दर ही अन्दर आती है अर्थात् वह डंडे के 'आधार क्षेत्र' की सीमाके अन्दर ही रहती है। यदि डंडा तनिक भी टेढ़ा भी है परन्तु अधिक टेढ़ा नहीं जैसा कि चित्र (७) में है तो भी यह सीधी खड़ी रेखा डंडे के

आधार क्षेत्र के अन्दर ही रहती है। परन्तु अधिक टेढ़ा होने पर जैसा कि चित्र (८) में है यह सीधी रेखा डंडे के आधार क्षेत्र के अन्दर नहीं पड़ती बल्कि बाहिर निकल जाती है। पहिली दोनों दशाओं (चित्र ५ व ६) में डंडा समत्वमें रहेगा, किन्तु तीसरी दशामें (चित्र ७) डंडा समत्व में न रह सकेगा बल्कि गिर जावेगा, डंडे को तनिक सा टेढ़ा करने पर भी जैसा कि चित्र (६) में है वह अधर खड़ा ही रहेगा अर्थात् उसका समत्व न बिगड़ेगा, परन्तु अधिक टेढ़ा करने पर जैसा कि चित्र (७) में है उस का समत्व नष्ट हो जावेगा और वह गिर पड़ेगा? यह क्यों?

६४. हम पहिले देख चुके हैं कि पृथ्वीकी गुरुत्व शक्ति किसी पदार्थ के गुरुता केन्द्र पर ही अपनी शक्ति लगाती है। हमारे इस डंडेके उदाहरणमें पृथ्वी की गुरुत्व शक्ति 'ग' विंदु पर ही लग रही है और इस शक्तिके कार्य करने की दिशा सीधी खड़ी रेखा है। अर्थात् पृथ्वी डंडे के 'ग' विंदु कोंहकड़कर सीधी खड़ी रेखा में नीचेकी ओर को खींच रही है, परन्तु इसी ओर में हमारी हथेलीके आधारकी शक्ति पृथ्वीकी गुरुत्व शक्तिका मुकाबिला कर रही है। चाहे हमारी हथेली के आधार की शक्ति ठीक बिंदु 'ग' पर नहीं लग रही है, परन्तु वह डंडे के किसी उस परमाणु पर लग रही है जो हमारी हथेली पर टिका है और वह शक्ति उस परमाणुको सीधी खड़ी दिशा में ऊपर को ढकेल रही है। डंडे के इस परमाणु के ऊपर जो दूसरा परमाणु है उसको वह परमाणु धक्का दे रहा है और यह दूसरा परमाणु अपने ऊपर वाले तीसरे परमाणु को, इस प्रकार हमारी हथेली का बल परमाणु परमाणु के सहारे अवश्य बिंदु 'ग' तक पहुँच रहा है। पृथ्वी इसीलिये अपने गुरुत्व शक्तिका कोई प्रभाव डंडे के समत्व पर नहीं डाल सकती। परन्तु जब डंडा अधिक टेढ़ा हो जावे जैसा कि चित्र (७) में है तो चूंकि डंडे के गुरुता केंद्र 'ग' से सीधी खड़ी दिशा में खींची हुई रेखा हमारी हथेली के आधार क्षेत्र के अन्दर नहीं पड़ती बल्कि बाहिर निकल जाती है इसलिये हमारी हथेली के आधार की शक्ति गुरुत्व शक्ति का मुकाबिला नहीं कर सकती तुमने यह भी इस उदाहरण में देख लिया कि इस सीधी खड़ी हुई दशा में डंडे का समत्व अस्थायी है स्थायी नहीं। थोड़ा टेढ़ा होने पर तो वह समत्व बना रहता है परंतु तनिक भी अधिक टेढ़ा होने पर जैसा कि चित्र (७) में हो गया है उसका समत्व नष्ट हो जाता है और वह गिर पड़ता है। इससे तुम को ज्ञात हुआ कि जब कोई पदार्थ ऐसी स्थिति में रक्खा हो कि उस स्थिति से थोड़ा ही अधिक विचलित होने पर उसके गुरुता केन्द्रसे खींची हुई सीधी खड़ी रेखा उसके आधारक्षेत्रके बाहिर चली जावे तो उस स्थितिमें पदार्थका समत्व बहुत स्थायी न होगा। इसी प्रकार सीधी खड़ी हुई ईंट का समत्व अस्थायी ही है परन्तु इस सीधे खड़े डंडे से अधिक स्थायी है क्योंकि ईंट की तली अधिक चौड़ी होने से उसका आधार क्षेत्र बड़ा है इसीसे उसके गुरुताकेन्द्र से खींची गई सीधी खड़ी रेखा ईंट के टेढ़ा होने परभी बहुत सीमा तक उसके आधार क्षेत्रके अन्दर ही पड़ती रहेगी। पदार्थों का समत्व स्थायी करने के लिये हमको उनका आधार क्षेत्र बड़ा रखना चाहिये जब किसी डंडे को तुम्हें जब चाहो तब खम्भे की नाई सीधा खड़ा रखना हो जैसे दिया रखने के लिये तुम दीवट बनाते हो तो दीवार की नाई तुमको उसका आधारक्षेत्र बडा ही रखना होगा। इसी कारण दीवट की तली चौड़ी मोटी लकड़ी की होती है।

छोटी और लम्बी खड़ी वस्तु—तुम्हारी खड़ी हुई वस्तु यदि अधिक लम्बी न हो, जैसे कि तुम्हारी दीवट का डंडा होता है तो थोड़े ही चौड़े आधार लगानेपर वह सीधी खड़ी ठहर सकती है क्योंकि टेढ़ा होनेपर भी उसके गुरुता केन्द्र से खींची गई सीधी खड़ी रेखा उसके आधारक्षेत्रके अन्दरही आजावेगी परन्तु यदि तुम्हारा डंडा बहुत लम्बा हो तो उसमें तुमको आधार काफी लम्बा चौड़ा लगाना

होगा। छोटे आधार से काम न चल सकेगा चित्र ९ व १० में तुम देखते हो कि छोटा डंडा यदि अधिक
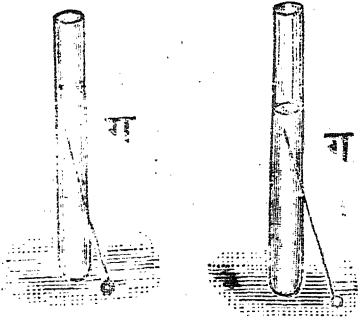
चित्र (९) (१०)

टेढ़ा भी हो जावे तब भी उस के गुरुता केन्द्र वाली खड़ी रेखा आधार क्षेत्र के अन्दर ही आ कर पड़ती है चित्र १० में लम्बा डन्डा है और उसमें तुम देखते हो कि यदि वह तनिक भी टेढ़ा हो जावे तो उसके गुरुता केन्द्र की खड़ी रेखा उसके छोटे आधार क्षेत्र के बाहिर निकल जावेगी यही कारण है कि लम्बे बाँस को सीधा खड़ा रखना आसान नहीं है क्यों कि तनिक भी हवा का झोंका जो कि सर्वदा ही रहता है उसको गिरा देगा।

दीवार को जब राज चिनते हैं तब उसको वह इसी कारण सीधी खड़ी दिशा में चिनने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि यदि वह टेढ़ी हो जावे तो उसके गुरुता केन्द्र-की सीधी खड़ी रेखा उसकी नींव जो, उसका आधार क्षेत्र है उससे बाहिर निकल जावेगी। उस रेखाके आधार क्षेत्र-से बाहिर निकल जाने पर वह दीवार समत्वमें न रह सकेगी, बल्कि गिर जावेगी। तुमने देखा होगा कि दीवार कभी कभी वर्षा या भूचालके कारण थोड़ी टेढ़ी भी यदि हो जाती है तो भी खड़ी रहती है, गिरती नहीं। परन्तु वह तब ही तक खड़ी रहेगी जब तक कि इतनी टेढ़ी न हो जावे कि उसके गुरुताकेन्द्रकी खड़ी रेखा उसकी नींव के बाहिर निकल जावे, जब वह इतनी टेढ़ी हो जावेगी कि यह रेखा आधार क्षेत्र के बाहिर निकल जावेगी तब ही वह गिरपड़ेगी। यही कारण है कि मकान बनाने में राज दीवारों की नींव को काफी चौड़ी रखते हैं ताकि यदि वह कभी किसी कारणसे तनिक टेढ़ी भी हो जावे तब भी यह सीधी रेखा उनकी नींवसे बाहिर न निकलने पावे; नहीं तो वह तनिक सी भी किसी कारणवश टेढ़ा होने पर तुरन्त गिर जावेगी। यह भी तुम अब अच्छे प्रकार समझ सकते हो कि छोटी दीवार का छोटी ही नींव से काम चल जाता है। परन्तु यदि दीवार बहुत ऊँची हो तो उसकी नींव भी काफी चौड़ी होनी चाहिये, क्योंकि लम्बी दीवार के तनिक सी भी टेढ़ी होने पर उसके गुरुता केन्द्र की खड़ी रेख उसकी छोटी नींव के बाहिर निकल जावेगी जैसा कि ऊपर के चित्र (९) से विदित है। यही कारण है कि जब बहुत ऊँची मीनार बनाई जाती है जैसी कि देहली में कुतब मीनार है तब पहिले उस को काफी लम्बो चौड़ी ही रखते हैं फिर धीरे धीरे ऊपर को उसे तंग करते जाते हैं जिससे कि उसका आधार क्षेत्र काफी लम्बा चौड़ा रह जावे।
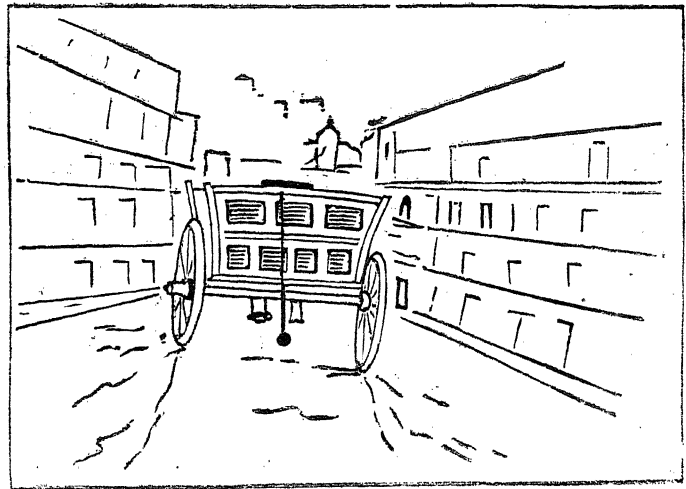
चित्र ११

ऊपर चित्र ११ में तुमको एक गाड़ी दिखाई गई

है। बताओ उसका आधार क्षेत्र कौन सा है? किसी वस्तु का आधार क्षेत्र वह भाग होता है जिसके सहारे कि वह ठहरी होती है अर्थात् समत्व में होती है। गाड़ी निस्सन्देह ही अपने दोनों पहियों पर ठहरी हुई है; इस लिये उसके दोनों पहियों के बीच का समस्त भाग ही उसका आधार क्षेत्र है। गाड़ीके गुरुता-केन्द्र का बिन्दु भी कहीं गाड़ी पर अवश्य होगा। जब गाड़ी समत्व में है अर्थात् ठहरी हुई है तब अवश्य ही उसके गुरुता केन्द्र की खड़ी रेखा उसके आधार क्षेत्रके अन्दर ही होगी अर्थात् उसके पहियों के बीचमें कहीं पड़ेगी। सीधी खड़ी गाड़ी तो अवश्य ही समत्व में रहेगी। हाँ यदि गाड़ी टेढ़ी हो जावे जैसा कि ऊँची नीची भूमि पर चलने में कभी कभी वह होजाती है तो यह देखना पड़ता है कि वह इतनी टेढ़ी न हो जावे कि वह उलट जावे अब यह विचारना है कि कितनी टेढ़ी होने पर गाड़ीका समत्व क़ायम रहेगा। जब तक कि गाड़ी के गुरुता केन्द्र की खड़ी रेखा उसके आधार क्षेत्र के अन्दर रहेगी अर्थात् उसके पहियों के बीच में रहेगी तब तक तो वह उलटेगी नहीं जैसा कि चित्र (१२) में दिखाया है परन्तु यदि तनिक भी यह खड़ी रेखा आधार क्षेत्रके बाहिर निकल जावेगी तो तुरन्त गाड़ी उलट जावेगी जैसा कि चित्र (१३) में दिखाया है। इस कारण गाड़ी बनाने वाले को उसके गुरुता केन्द्रका काफ़ी ध्यान रखना पड़ता है। एक अच्छी गाड़ी का गुरुता केन्द्र बिलकुल आधार क्षेत्र के बीचों बीच होना चाहिये। यदि वह किसी ओर भी अधिक झुका हुआ होगा तो जब कहीं वह ऐसी टेढ़ी भूमि पर जावेगी जहाँ कि उस पहिये को जिधर को कि गुरुता केन्द्र अधिक झुका है ऊँचा उठना पड़ेगा तब ही उसके उलट जानेका डर होगा।
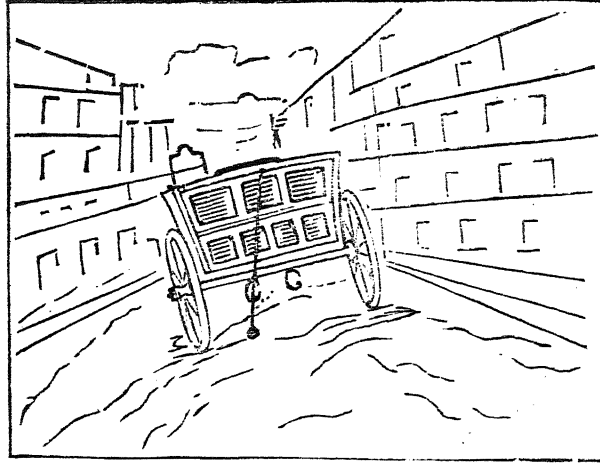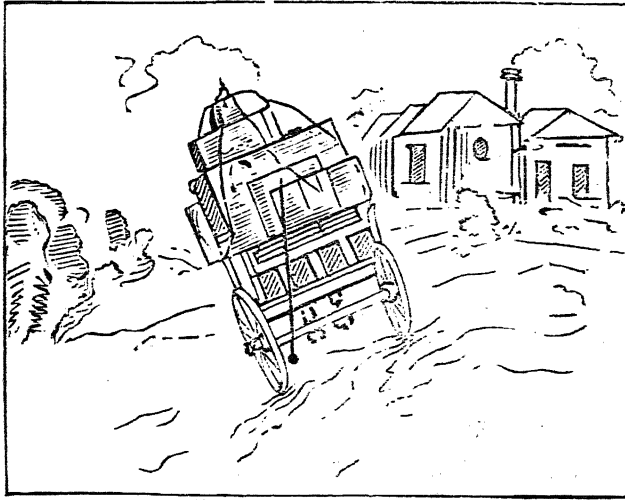
चित्र १२

चित्र १३

६८. गाड़ी के समत्व के सम्बन्धमें एक और बात है कि एक गाड़ी जिसमें लोहे आदिका कोई भारी बोझ भरा हो तो वह अधिक टेढ़ी भूमि पर भी चल सकेगी और उसके उलट जाने का कोई भय नहीं होगा, क्योंकि भारी वस्तु के भरे होने

से गाड़ी अधिक ऊँची न होवेगी। यदि उसमें कोई हलका बोझ बहुत ऊपर तक भरा हो जैसा कि रुई या भुस आदि (देखो चित्र १४) तो वह गाड़ी

चित्र १४

बहुत ऊँची हो जावेगी और तुम पहिले चित्र (१०) में देख चुके हो कि ऊँचे पदार्थ के तनिक भी टेढ़ा होने से उसके गुरुता केन्द्र की खड़ी रेखा आधार क्षेत्र से बाहिर निकल जाती है। इसी कारण ऊँची भरी हुई गाड़ी का समत्व बहुत ही अस्थायी होगा। तनिक सी टेढ़ी भूमि पर चलने से उसके उलट जाने का भय रहेगा। तुमने प्रायः सुना होगा कि भुस से भरी हुई गाड़ियाँ बहुधा लौट जाया करती हैं। इसी प्रकार टप्पदार गाड़ी भी ऊँची होगी और उसके भी उलट जाने का ज्यादा भय रहेगा।

६९ अब हमको यह विचार करना है कि किसी लटकते हुये पदार्थ का आधार क्षेत्र कौन सा होता है और उनके समत्वके सम्बन्ध में क्या नियम लागू होते हैं।
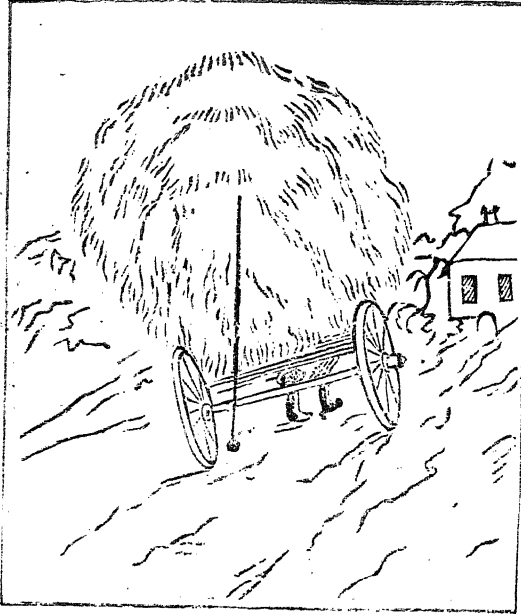
७० पहिले हमने लकड़ी की पटडों के एक सिरे पर कील लगा कर दीवार में टाँगा था जो कि फिर अब हम चित्र १४ में दिखाते हैं। इस दशा में हम पहिले देख चुके हैं कि पटड़ी स्थायी समत्व में
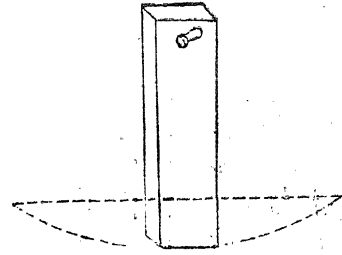
चित्र १५

होगी इधर उधर पटड़ी को घुमाने से पटड़ी थोड़ी देर तक झूलती कर फिर अपने स्थान पर आ कर स्थित हो जावेगी इसी लिये हमने बतलाया था कि इस प्रकार लटकती हुई दशा में पटड़ी का समत्व स्थायी है पटडी को यदि अब हम ऊपर को उठा दें जैसा कि चित्र १६ में है तो हम पहिले

चित्र १६

विचार कर चुके हैं कि इस दशा में पटड़ी का समत्व अस्थायी रहेगा। तनिक भी इधर उधरको करने से वह नीचे आ कर फिर चित्र १५ की दशा मे आजावेगी। यहाँ पर बताओ पटड़ीका आधार क्षेत्र क्या है, अर्थात् किसके सहारे से पटड़ी ठहरी हुई है पटड़ी कीलके सहारे से समत्व में है। यदि कील न हो तो गुरुता शक्ति पटडी पर प्रभाव डाल कर उसका समत्व नष्ट करके उसे नीचे गिरा देगी। कील ही यहाँ पर पटड़ी का आधार विन्दु है। 'ग' बिन्दु पटड़ी का गुरुता केन्द्र है। पटड़ी

समत्व में हो सकती है जब कि 'ग' बिन्दु या तो आधार बिन्दु के ठीक ऊपर हो जैसा कि चित्र (१६) में है या ठीक नीचे हो जैसा चित्र (१५) में है अन्य किसी भी दशामें पटड़ी समत्वमें न रहेगी। अब जब कि पटड़ी लटकी हुई है तुम उसको तनिक इधर उधर को कर दो तो दोनों ही दशाओं में उसका गुरुताकेन्द्र 'ग' आधार बिन्दु की ठीक सीधी खड़ी रेखा में न रहेगा इसीसे पटड़ी का समत्व नष्ट हो जावेगा; परन्तु पहिली दशा में (चित्र १५) पटड़ी थोड़ी देर तक झूलती कर फिर अपनी पुरानी स्थिति में आकर समत्व में हो जावेगी किन्तु दूसरी दशामें वह फिर अपनी पहिली स्थिति में न आ सकेगी।

७१ चित्र (१५) की दशा में पटड़ी का समत्व स्थायी है इस दशा मे यदि तुम पटड़ी को तनिक भी टेढी करो तो उसका समत्व जाता रहेगा और उसका गुरुताकेन्द्र ऊपर को हो जावेगा। अब तुम यदि पटड़ी को बराबर टेढ़ा करते ही जाओ तो गुरुताकेन्द्र भी बराबर ऊपर को उठता ही जावेगा यहाँ तक कि जब पटड़ी टेढ़ी होते २ चित्र (१६) की दशा में पहुँच जावेगी तो उसका गुरुताकेन्द्र बिलकुल ऊपर पहुँचकर आधार बिन्दु के ठीक ऊपर हो जावेगा। इससे ज्ञात हुआ कि पटड़ी के गुरुता केन्द्र की स्थिति सब से नीचे तब ही है जब कि वह चित्र (१५) की दशा में है और इसी दशा में उसका समत्व स्थायी है। इससे हमको लटकते हुये वस्तुओं के सम्बन्ध में यह बात ज्ञात हुई कि उनका समत्व उस दशा में स्थायी होगा जब कि उनका गुरुताकेन्द्र सब से नीचे की स्थिति में हो। तराजू हमारी इसी प्रकार की लटकती हुई चीज है। उसका आधार बिन्दु उसकी डंडी में वह बिन्दु 'प' (चित्र १७) है जहाँ कि उसमें तागा बँधा होता है जिसके सहारे से कि वह हमारे हाथ के द्वारा लटकी रहती है। इस दशा में तराजू का समत्व स्थायी है, क्योंकि यदि उसके किसी पलड़े को तनिक ऊपर नीचे को करदिया जावे तो वह थोड़ी देर हिलकर फिर स्थायी हो जावेंगे। तराजू का गुरुताकेन्द्र आधारबिन्दु के ठीक नीचे ही कहीं होगा। तराजू का गुरुताकेन्द्र आधार बिन्दु के ऊपर नहीं हो सक्ता क्योंकि उस दशा में
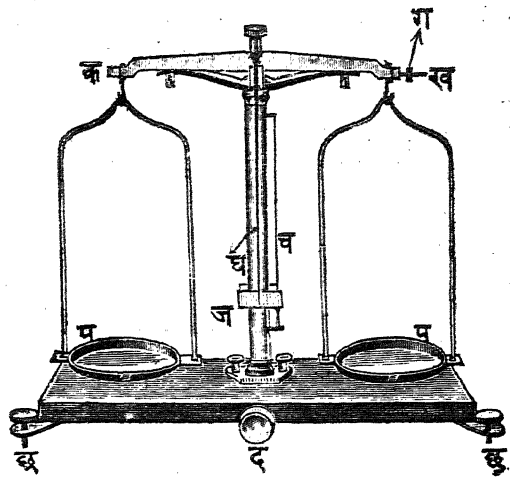
चित्र ७

तराजू का समत्व जैसा कि हम ऊपर हमदेख चुके हैं स्थायी न रहेगा।

वस्तुओं का गुरुता केन्द्र बिन्दु निकालने की रीतियां

यदि हम एक तख्ते का टुकड़ा लें जैसा कि चित्र १८ में दिखाया है और उस को मेज़ के ऊपर रख लें और फिर उसको धीरे धीरे मेज़ के तख्तेके बाहिर ढकेलते जावें तो वह थोड़ी देर तक नहीं गिरेगा। तख्ते का टुकड़ा जब मेज़ के तख्तेसे इतना बाहिर निकल जावे कि उससे तनिक भी आगे को करने से वह तुरन्त नीचे गिर जावे तब उस दशा में हम कहेंगे कि वह ठीक सधा हुआ है। उस दशा में तख्ते के टुकड़े की जो रेखा मेज़ के तख्ते के कोने पर है, अवश्यही उसी रेखा में तख्तेका का गुरुताकेन्द्र है, इस रेखा क
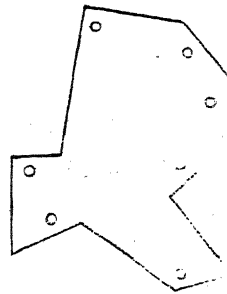
चित्र १८

हम पेंसिल या खड़िया चाक से तख्ते के टुकड़े पर अंकित करलें। अब तख्ते को उलट कर उसके किसी और सिरे को यदि हम इसी प्रकार मेज़ पर रख कर उसको धीरे धीरे आगेको सरकाना आरम्भ करें तो फिर हम उस रेखा पर पहुंच जावेंगे जिससे तनिक भी आगे को करने पर तख्ता तुरन्त नीचे गिर पड़ेगा इस रेखा को हम फिर पूर्ववत् खड़िया या पेंसिल से अंकित करलें। इस रेखामें भी अवश्य तख्तोंका गुरुताकेन्द्र होगा। पहिले हम एक रेखा बना चुके हैं और फिर यह दूसरी हमने बनाई इन दोनों ही रेखाओं में तख्ते का गुरुताकेन्द्र है। इस लिये जहां पर यह दोनों रेखा एक दूसर को काटेंगी वही बिन्दु गुरुताकेन्द्र होगा। इस प्रकार हम किसी टेढ़े मेढ़े आकार के चपटे तख्तेका गुरुता केन्द्र निकाल सकते हैं। किसी टेढ़ेमेढ़े चपटे पदार्थोंका गुरुताकेन्द्र निकालने की सबसे अच्छी रीति निम्न प्रकार है:—चित्र १६ में टेढ़ा मेढ़ा एक लोहे की चादर का टुकड़ा है उसके एक कोनेमें छिद्र करके उसमें तागा बाँध कर उसको लटका रहने दो। यह एक लटका हुआ पदार्थ है जिसका आधार विन्दु वह छिद्र है जिसमें कि तागा बाँधा है। हम
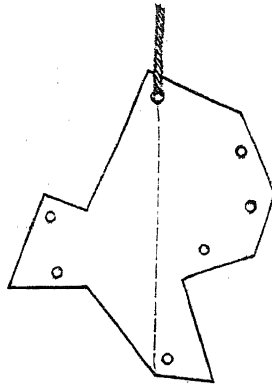
चित्र १६

पहले देख चुके हैं कि लटके हुए पदार्थ का गुरुताकेन्द्र यदि उसका समत्व स्थायी हो तो उसके आधार बिन्दु के ठीक नीचे होता है अर्थात् वह आधार बिन्दु की सीधी खड़ी रेखामें आधार बिंदुके नीचे होता है। इसलिये यदि यह छिद्र से चादर के टुकड़े पर खड़िया अथवा पेंसिलसे हम सीधी रेखा बनालें तो इस रेखा में अवश्य गुरुता केन्द्र होगा। वह भी हम पहिले देख चुके हैं कि लटकते हुये पदार्थके तागेकी रेखा सीधी खड़ी रेखा होती है (पेज ४८)। इसलिये छिद्रसे सीधी खड़ी रेखा बनानेके लिये हम लटकते हुये तागे की सीध में ही चादर के टुकड़े पर रेखा अङ्कित करते जावेंगे, जैसा कि चित्र में किया है और वही सीधी खड़ी रेखा हो जावेगी। अब इसी टुकड़ेके किसी दूसरे कोने में छिद्र करके उसमें हम तागा बाँध कर पूर्ववत् टांगेंगे जैसा कि चित्र [२०] में किया है और उसी प्रकार फिर अब छिद्र से तागे की रेखाकी लाइन चादर के टुकड़े पर रेखा अंकित करेंगी। यह हमारी दूसरी रेखा हो जावेगी। इन दोनों रेखाओंमें से प्रत्येकमें गुरुता केन्द्र है, इसलिये जहाँ पर यह दोनों रेखा एक दूसरेको काटेंगी वह काटनेका बिंदु चादरके टुकड़ेका गुरुता केन्द्र होगा।
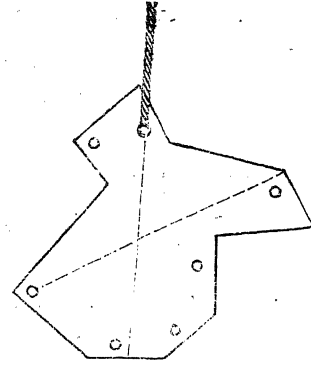
चित्र २०

७४. इस प्रकार यदि हम एक वृत्ताकार चादर के टुकड़े का गुरुता केन्द्र मालूम करें तो हम देखेंगे कि वृत्तका केन्द्र ही गुरुता केन्द्रका बिन्दु होगा। इसी प्रकार (Square) वर्गक्षेत्र आदि समस्त समक्षेत्रों का केन्द्र बिंदु ही उनका गुरुता केन्द्र होगा। किसी समक्षेत्र (Regular) का गुरुता केन्द्र निकालने की हमको आवश्यकता नहीं; उन सब में तो जो उनका केन्द्र बिन्दु होता है वही गुरुता केन्द्र का भी बिन्दु होता है और वह हम रेखागणित के व्यवहार से सरलता से निकाल सकते हैं।

७५. परन्तु यदि कोई पदार्थ चपटा क्षेत्र रूप न हो बल्कि ऐसा ठोस पदार्थ हो जिसकी मोटाई भी हो जैसा कि पत्थर का कोई टेढ़ा मेढ़ा टुकड़ा या किसी वृक्ष के गुद्धे का कोई भाग तो उसका गुरुता केन्द्र हम उपर्युक्त रीति से नहीं निकाल सकते। क्योंकि यदि हम उसके एक कोने में छिद्र करके उसको तागेसे

टाँगे तो तागेकी सीधकी रेखा वस्तुके अन्दर पड़ेगी। अर्थात् उसका गुरुता केन्द्र उसके किसी ऊपरी क्षेत्र पर न होगा बल्कि उसके अन्दर कहीं होगा। इसी प्रकार यदि किसी अपने सहपाठी साथी विद्यार्थीका तुम गुरुता केन्द्र निकालना चाहो तो उसके किसी कोने से रस्सी बाँधकर तुम उसे जब टाँगोगे तो रस्सी की सीध की रेखा विद्यार्थी के शरीर के अन्दर को जावेगी उसके ऊपरी पृष्ठ अर्थात् उसकी खाल पर नहीं पड़ेगी। उसका गुरुता केन्द्र उसके शरीर के भीतर कहीं होगा, जिसको तुम उपर्युक्त रीति से नहीं निकाल सकते।

गुब्बारे

[ले० श्र० डा० शिखिभूषण दत्त डी० एस० सी०]

मेरा यह विचार है कि आधुनिक वैज्ञानिक उन्नतिमें मनुष्यने वायु यानोंके निर्माणमें जिस अपूर्व कौशलका परिचय दिया है उतना अन्य किसी कार्यमें नहीं। लगभग १४३ वर्ष पूर्व सन् १७८३ ई०में दो फ्रान्सीसी भाइयों ने यह बात देखकर कि चिमनीका धुआँ ऊपर उठता है गुब्बारोंके विधान की आयोजना की थी। इस प्रकार वायुमार्गमें भ्रमण करनेका सब से पहला प्रयोगात्मक प्रयत्न इन्होंने किया। उन्होंने कागजके गुब्बारेमें हवा और प्रज्वलित अग्निसे निकला हुआ धुँआ भरा। स्वयं इस गुब्बारेमें बैठनेके स्थानमें उन्होंने कुछ पशुओंको आकाशमें उड़ाया। पाइलेट डि रोजियर सबसे पहला व्यक्ति था जो आकाश मार्गमें मोण्टगोलफाइर गुब्बारेमें ऊपर उठा। अधरमें वह लगभग २५ मिनट तक ठहर सका। उस समय की परिस्थितिके अनुसार यह घटना अवश्य आश्चर्यप्रद थी दो वर्ष पश्चात्ही बेचारा डि रोजियर गुब्बारेमें आग लगजाने के कारण एक चैनल को पार करते हुए मृत्यु का ग्रास बना। इस महान् यज्ञमें यह प्रथम बलिदान था पर वैज्ञानिक क्षेत्रके प्रेमी इस प्रकार के वीर कार्य्योंसे भयभीत नहीं हुए प्रत्युत और भी अधिक उत्साहसे आगे बढ़े।

इंगलैंडमें सबसे पहले आकाशमें उड़ने वाले व्यक्ति नेपोलियनके लण्डनस्थ दूत-मंत्री विंसेंट लुनार्डो, चिवेलियर विगेन, और श्रीमती सेज थे। यह सबसे पहली अंग्रेजी महिला है जिसने इस कार्य्यमें भाग लिया। मूरफील्डके आर्टीलरी क्षेत्रमें १५ सितम्बर १७८४ को यह समूह ऊपर उड़ा था। इसके कारण जनतामें विचित्र सनसनी फैलगई। उस समय एक कान्फ्रेंस होने वाली थी पर राजाने उसे स्थगित कर दिया और प्रधानमंत्री विलियम पिट और अन्य दरबारियोंके साथ दूरबीनसे इस कौतूहलप्रद दृश्यको देखनेको प्रस्तुत हुआ। इसके देखनेके लिये एक जज इतना उत्सुक था कि उसने तत्काल बहस मुबाहिसा छोड़कर जल्दीसे प्रस्तुत दोषीको निर्दोषी बताकर छोड़दिया, और लुनार्डोको देखनेके लिये आगे बढ़ा। आक्सफोर्ड गलीके एक गिरजेमें यह गुब्बारा प्रदर्शनीके रूपमें रक्खा गया जिसे देखनेके लिये झुंडके झुंड लोग आने लगे। इस समय लुनार्डो अपने साथ एक बिल्ली, एक कुत्ता और एक कबूतर भी लेगया था। इसके पश्चात् अन्य लोगोंने भी आकाश मार्गमें भ्रमण करनेका प्रयास किया। वोक्सालके उपवनोंमें कुछ लोग घोड़ों पर आरूढ़ होकर गुब्बारोंके सहारोंसे उड़े थे।

प्रसिद्ध आकाश विहारी चास-ग्रीन ५२६ बार आकाशमें उड़ा था। कभी कभी वह घोड़ी पर चढ़कर उड़ता था तो घोड़ी भी अत्यन्त आनन्दसे परिप्लावित होजाती थी।

सबसे पहले फ्रान्सीसियों ने ही गुब्बारों का अन्वेषण किया था और उन्हींने युद्धमें सबसे पहले इनका उपयोग किया। जब राज्यक्रान्ति सम्बन्धी युद्ध आरम्भ हुआ तो म्यूडनमें विमान विद्याका शिक्षणालय खुला और सेनाके उपयोग के लिये चार गुब्बारे बनाये गये। १७९४ के फ्लयूरसके युद्धमें इनसे समाचार मंगानेका काम लिया गया और वस्तुतः उस समयकी फ्रान्सीसी विजयमें इनके लाये हुए समाचारोंने बड़ी सहायता प्रदान की थी। आजकलकी सेनाओंमें बन्धी गुब्बारोंका बड़ा उपयोग किया जाता

है और उनकी आवश्यकता अनिवार्य्य समझी जाती है। अफ्रीकाके बोअर युद्धमें अंग्रेजोंने, पोर्ट आर्थर पर जैपानने, मोरोक्कोमें स्पेननिवासियोंने और जर्मन महा युद्धमें जर्मनोंने इनका आश्रय लिया था।

अट्ठारहवीं शताब्दिके अन्त तक मोंगोलफाइर अग्नि गुब्बारे ही सब कामोंके लिये उपयुक्त होते थे। पर उन्नीसवीं शताब्दिके आरम्भमें जब कोलगैसका अन्वेषण किया गया तो पता चला कि यह वायुकी अपेक्षा अधिक हलकी है, और इसकी प्लवनशक्तिकी उपयोगितापर लोगोंका तत्क्षण ध्यान गया। इस कारण सब जगह गुब्बारोंमें इस गैसका उपयोग किया जाने लगा क्योंकि इसमें दुर्घटनाओंकी भी कम आशङ्का थी और कोलगैससे भरे गुब्बारे बहुत ऊंचाई तक उड़ सकते थे और वहाँ ठहर भी अधिक समय तक सकते थे। १८७०-७१के फ्रान्सीसी जर्मन युद्धमें पैरिसके आक्रमित प्राणियोंकी रक्षामें इन्होंने बहुत काम दिया। इस समय एक स्थानसे दूसरे स्थान तक समाचार पहुँचानेके एक मात्र साधन ये गुब्बारेही थे। गुब्बारों का एक नियत स्थान बनाया गया जहांसे नगरवासियों के पत्र आदिक व्यवहारही न किये जाते थे प्रत्युत कबूतर भी एक स्थानसे दूसरे स्थानसे भेजे जाते थे। नाविकों द्वारा इनका संचालन होता था और इस समय लगभग ६२ के गुब्बारे छोड़े गये।

कल्पना कीजिये कि हम गुब्बारेमें यात्रा करनेके लिये प्रस्तुत हैं। आरम्भमें हम केवल एक चिपटा पदार्थ पृथ्वीपर पड़ा पावगे। इस पदार्थमें धीरे धीरे गैस भरा जानेलगा। चिपटे पदार्थका स्वरूप सुडौल होता जारहा है, यह अब बड़े गालेके रूपमें होगया और धीरे धीरे आकाशमें उठने वाला है। गुब्बारे से लगी हुई गाड़ीमें हम बैठ गये। मन्द मन्द वायु गुब्बारे पर लहरा रही है। थोड़ी देर में गुब्बारेके संचालककी घोषणा होती है—'बस हम चलें, एकदम हवारुक जातीहै, वायुमण्डल स्थिर होजाताहै और जमीन पैर तले छूट जाती है। कमसे कम ऐसा विचार होता है क्योंकि गति का अनुभव तो वहां होताही नहीं क्यों कि गुब्बारा स्वयं वायुका अंगहोजाता है। ऊपर जाते जाते हम ऐसे स्थानमें पहुँच जाते हैं जिससे और ऊपर हमारा गुब्बारा नहीं जा सकता है। नीचे सब वस्तुएँ ओझल दिखायी पड़ती हैं। अजीब दृश्य होता है। एकान्त नीरवता का साम्राज्य छाजाता है। उस समय की दिव्य ज्योति और सूर्यका तेजोमय प्रकाश चित्तके अन्दर कौतूहल जनक उत्साह उत्पन्न करदेता है। हमने कुछ देर तक इस दृश्य का आनन्द लूट लिया। चलो अब नीचे उतरें। गुब्बारे की टांटी खोल दी जाती है, गैस धीरेधीरे निकलने लगी और लीजिये हम नीचे उतरने लगे।

वर्तमान शताब्दि के आरम्भ में गुब्बारों की दौड़ कराके यूरोपके धनी लोग अपना आमोद करते थे। गौरडनबेनेट-दौड़ वर्षमें एक बार होती थी गुब्बारोंके प्रति उत्साह रखने वाले व्यक्तियोंके लिये यह अत्यन्त मनोरञ्जक अवसर होता था और बहुतसी जनता इसकी ओर आकृष्ट होती थी। एकबार मोटरके कारखानोंके अध्यक्ष श्रीमान् रौल्सको बर्लिनसे नारफाक तक एकहजार मीलसे अधिक की दौड़में प्रथम पारितोषिक भेंट किया गया था।

उपवनमें अथवा सरिताओंके वक्षस्थल पर विहार करते हुए हमने प्रीति भोजनका आनन्द कईबार अनुभव किया है, पर बादलों में प्रीतिभोजन का अवसर बहुत कम व्यक्तियों को मिला होगा। सेण्टोस डूमोण्ट नामक प्रसिद्ध फ्राँसीसी विमान संचालक इसके विषय में कहता है—गोल गुब्बारोंमें बैठकर बादलोंमें प्रीतिभोज करने से अधिक और आमोद प्रद क्या बातहो सकती है-कोईभी भोजनालय इससे अधिक अद्भुत नहीं हो सकता है!

पर आकाश विहारियों का जीवन सर्वदा ऐसाही आनन्दमय नहीं होता है। उन्हें अनेक दुर्घटनाओं का शिकार भी होना पड़ता है क्योंकि गुब्बारोंको सदा वायु परिस्थिति के आश्रित रहना पड़ता है। कौन जानता है कि इस आमोदमय आकाश यात्राका अन्त किसी हिमाच्छादित समुद्रमें ही हो जहाँ मृत्युके अतिरिक्त और कोई आश्रयदाता न मिले।

(अनूदित)

मुद्रक—दीवान वंशधारीलाल हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
पूर्ण संख्या—१४८ *Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708

भाग २५ Vol. 25. कर्क, १९८४ संख्या ४ No. 4

जूलाई १९२७

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

व्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय सूची

१—वायुयान—[लें० श्री० डा० शिविभूषणदत्त डी० एस-सी० ... ... १४५

२—शारीरिक प्रक्रिया पर तापक्रम का प्रभाव—[ले० श्री डा० नीलरत्नधर डी० एस-सी० आई० ई० एस. १४८

३—नोषजन और अमोनिया—[श्री सत्य प्रकाश एम० एस-सी० ... ... १५२

४—वैज्ञानिकीय—[ले० श्री शंकर लाल जिंदल एम० एस-सी० ... ... १६०

५—मेडेम क्यूरी—[ले० श्री कुंजविहारी मोहनलाल बी०-एस-सी० ... ... १६३

६—पानी—[ले० श्रीरामलालजी विशारद ... १६८

७—श्यामजन यौगिक—[ले० श्री० सत्यप्रकाश एम० एस०सी० ... ... १७४

८—वैज्ञानिक परिमाण—[ले० श्री० डा० निहाल करण सेठी डी० एस०सी० ... ... १८१

९—सूर्यसिद्धान्त—[ले० श्री० महावीरप्रसाद बी० एस०सी० एल०टी० विशारद १९१

ज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २५ | सिंह संवत् १९८४ | संख्या ३ ४

वायुयान

(लेखक श्री डा० शिखिभूषण दत्त, डी० एस० सी०)

२ संयमितयान (Dirrigible)

युमार्ग में विहार करने का प्रथम प्रयास विशेष प्रकारके गुब्बारों द्वारा किया गया जो वायुसे हलके होनेके कारण आकाशमें ऊपर उठने लगते थे। परन्तु इनमें एक त्रुटि थी। गुब्बारोंके संचालक इनको यथेच्छ दिशा में घुमा फिरा नहीं सकते थे। लोगोंने इस कमी को दूर करने के लिये यत्न करने आरम्भ किये, और 'संयमितयानों' का निर्माण किया गया, सन् १८५२ ई० में हेनर गिफर्ड ने एक ऐसाही यान बनाया जिसकी प्रगति यथेच्छ वशमें की जा सकती थी। गैसके थैलेको लम्बी नोकीली आकृति दी गई जिससे बहुत कम अवरोध पड़े और एक छोटा सा वाष्प इंजिन गाड़ी में प्रोपेलरको चलाने केलिया लगाया गया। (प्रोपेलर यन्त्र का वह विशेष भाग होता है जिससे यान आगे बढ़ाया जासकता है।) यह इंजिन ३ अश्व बलका था और कभी कभी एक घंटे में ६ मील तक जा सकता था। सन् १८८४ में रेनल्ड और क्रेब्स द्वारा बनाया गया 'ला-फ्रांस' नामक गुब्बारा गिफर्डकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत था और यह बाददाले गुब्बारों के निर्माणमें सदा आदर्श माना जाने लगा। यह वार्निश लगे हुए चीनी रेशम का बनाया गया और इसकी आकृति सिगार के रूपकी होती थी। इसमें बांसकी खपचटोंकी बनी हुइ एक लम्बी गाड़ी होती थी और इसमें ऊपर उठाने और आगे बढ़ाने दोनों की अयोजना की गई थीं। इसमें ९ अश्वबल वाली विद्युत् मोटरभी थी। यह यान १४ मील प्रतिघंटा चल

सकता था। वास्तवमें, आकाश यात्रा सबसे पहले इसी यानद्वारा की गई।

सैण्टोस डूमोण्टने इसमें एक और उन्नतिकी। उसने विद्युत् मोटर के स्थान में १६ अश्वबल के पैट्रोलमोटर का उपयोग किया। इसमें वस्तुत: यह क्रान्तिकारी परिवर्त्तन था। वायुयानमें यह सबसे पहला था जिसमें इतनी शक्ति का पैट्रोल इंजिन उपयुक्त किया गया था। अक्तूबर १९०१ ई० में ऐफेल मीनार के चारो ओर परिभ्रमण करने के उपलक्षमें इसे ४०० पौण्ड (अर्थात् ६ हजार रुपये) का पारितोषिक भेंट किया गया।

अब हम जर्मनी के जगत् प्रसिद्ध वायुयान का वर्णन करेंगे जिसका निर्माण जेपलेन ने किया था। इस महान् व्यक्ति ने सन् १८०० ई० में अपनी बहुतसी सम्पत्ति व्यय करके फ्रोडरिशचेफन में एक गुब्बारा बनाया। जेपलिन के आविष्कृत यानों का नामभी जेपलिन पड़ गया है। जेपलिन में लम्बेलम्बे गर्डर होते हैं और गैसके थैलेको पकड़ने के लिये आँकड़े होते हैं। इनके ढांचे पहले लकड़ी के बनाये जाते थे फिर स्फटम् के (Aluminium) बनाये जाने लगे। पर अब द्रुप-स्फटम् (Duraluminium) के बनाये जाते हैं जो स्फटम् और मगनेसम् का धातुसंकर है। इस धातुसंकर में इस्पात का आधा बल होता है पर भार चौथाई ही। इसगुण के कारण इसे अधिक उपयोगी समझा जाता है। गैसका लम्बा थैला लगभग ९०० फीट लम्बा और ७८ फीट आधा व्यास का होता है। इसमें १७ ऐसे एक दूसरेसे पृथक् विभाग होते हैं जिनमें उदजन गैस भरी रहती है। बाहरसे देखने में यह बहुभुजी त्रिपार्श्व की आकृति का दिखाई देता है। आरम्भमें इन जेपलिनों में दुर्घटनायें अधिक होतीं थीं पर इनके निर्माणमें जिस कला कौशलका उपयोग किया गया था उस पर कौन मुग्ध न होगा। यथेच्छ दिशाओंमें घुमाने फिरानेकी सफलता इनमें दृष्टिगत होती थी। युद्धमें इन्होंने बहुत काम दिया।

जैपोलिन के रखनेके लिये बाड़ा बनानेका प्रश्न विकट था। जलके ऊपर इनके बाड़े बनाये गये जिससे यह हर दिशाओंमें सरलता में फिराये जा सकें। इनके चलाने के लिये ४ मेबक (Maybach) इंजिनों का जिनमें १२० अश्वबल की शक्ति होती है उपयोग किया जाता है। जेपलिन ८० मील प्रतिघंटे चलसकते हैं।

सन १९०८ ई० में लेबाण्डी ने दूसरे प्रकारके विमान बनाये जिनका प्रचार फ्रैञ्च सरकार ने कराया। ऐसे एक विमान का नाम 'ला-लिबर्टे' था। इनमें से कुछ की लम्बाई ३०० फीट होती थी और १४० अश्वबल वाले इंजिनों का उपयोग इनमें किया जाता था। इसी प्रकार का एक विमान 'ला रिपब्लिक' अपने बाड़े को लौटने के समय गैसके थैले के फट जानेसे ऐसी दुर्घटना का शिकार हुआ कि वह अपने स्थान से ५०० फीट दूरी पर जाकर गिरा और उसके ४ संचालक उसी स्थान पर मर गये।

'क्लैमेण्ट बायर्ड' दूसरी प्रकारका फ्रैञ्च विमान है। अधिक नियमित करनेके लिये इसमें छोटे छोटे चार गुब्बारों की अयोजना की गई है।

सन् १९०७ ई०में श्री वेलमेन महोदयने वायुयान द्वारा उत्तरीध्रुव पहुँचने का साहस पूर्ण प्रयास किया दैवयोग से ऐसी भयावह ध्रुवी हवा चली कि उनका विमान ध्रुवी हिम सरिता में जाकर पड़गया और बेचारे वेलमेन को पैदल ही वहां से वापस आना पड़ा।

इन संयमित यानों का गत महायुद्धमें बहुत उपयोग किया गया था। अगस्त १९१७ को इनकेद्वारा जर्मनोंने लण्डन नगर पर आक्रमण किया था और और हेलीगोलैण्ड की लड़ाईमें इन्होंने अपना विशेष उत्साह प्रदर्शित किया था।

विमान (ऐरोप्लेन)

अबतक हमने ऐसे यानों का वर्णन किया है जो हवा से हलके होनेके कारण अपनी प्लवन शक्तिद्वारा ऊपर उड़ाये जाते थे। अब हम ऐरोप्लेन का वर्णन

करेंगे जो वायु से भारी होते हैं। ये आकाश में अपने तीव्र वेग के कारण विहार करते हैं। बहुत दिन हुए प्रोफेसर लैङ्ले ने सन् १८९० ई० में गणितका हिसाब लगाकर और प्रयोग द्वारा भी यह दिखाया था कि यदि कोई समतल बहुत वेगसे वायुमें चलाया जाय तो यह धीरे धीरे ऊपर उठने लगेगा। इसमें ऊपर उठने की शक्ति जनित होने लगती है जो पृथ्वीकी गुरुत्व शक्तिके विरुद्ध वायुमें ठहर सकती है। उनका गणित का यह सिद्धान्त ही ऐरोप्लेन का मूलमन्त्र सिद्ध हुआ। इसको प्रयोगात्मकरूप विलवर राइट और विलराइट नामक दो भाइयोंने सन १९०५ में दिया। उनकी पहली मशीनमें दो समतल तख्ते थे और एक लम्बी पूंछ भी थी। नीचे उतारनेके लिये विशेष आयोजना थी। इसमें २० अश्वबलके पैट्रोल-मोटरका प्रयोग किया गया था। वे एक बार अमरीकाकी सुपीरियर झीलके चारों ओर तीन मीलके लगभग उड़े जिससे सारे देशमें बड़ी सनसनी फैल गयी। १९०८ ई० में विलबर राइट अपनी मशीनको यूरोपमें लाया और फ्रान्स के लीमान्स, पाओ और एनबर्मके क्षेत्रमें उड़कर उसने जनतामें विशेष कौतूहल उत्पन्न करा दिया।

इस ओर दूसरा प्रयत्न जो हुआ वह लैथमका था, जिसने उड़कर इंगलिश चैनल पार करना चाहा। इस प्रयत्न में दो बार उसे असफलता रही। एक बार तो वह केवल १० मील जासका और दूसरी बार जब वह फ्रान्सके तटसे केवल १ मीलकी दूरी पर था जब उसके इञ्जिनने बाधा उपस्थित की।

एम. ब्लेरिअट सबसे पहला वीर था जिसने इंगलिश चैनल को पार किया (सन १९०९)। इसमें उसे पंद्रह हजार रुपये भेंट किये गये। लण्डन में इसके उपलक्ष रूप उसका धूमधामसे स्वागत किया गया और पैरिसकी जनताने भी उसका अभिनन्दन किया। उसका विमान नेशनल म्यूजियम में इतिहास उपयोगिता के प्रमाण स्वरूप रखा गया। इसका विमान मौलिक आदर्श विमानथा जिसके अनुरूप अन्य विमान बनाये जाने लगे।

अक्टूबर १९०९ में फार्मनने सबसे पहले अपने देशके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक अर्थात् मैञ्चेस्टरसे ब्लैकपूल तक की विमान यात्रा की जिसके उपलक्ष में उसे २०० पौंड का पारितोषिक दिया गया।

प्रसिद्ध फ्रैञ्च विमान-यात्री पाल्हम सब से पहला पहला व्यक्ति था जिसने लंडनसे मैञ्चेस्टर तक की ३५० मील की यात्रा की (सन् १९१०)। मैंचेस्टर गार्जियन नामक अंग्रेजी पत्र ने उसे इस कार्यकी प्रतिष्ठामें दसहजार पौण्ड (अर्थात डेढ़ लाख रुपया) भेंट किया।

सन १९११ में मि० रौल्सने बिना कहीं रुके हुये इंगलिश चैनल को पार किया। लंडन के टाइम्स नामक समाचार पत्र ने ५००० पौंड उसको उपहार रूप दिये।

वायुयानोंमें एक या एक से अधिक 'हल' होते हैं जो हवामें इंजिन की सहायता से चलाये जाते हैं। इंजिन इस वेगसे काम करता है कि वायु विमान में जोरों से धक्का मारती है और यान ऊपर उठने लगता है। इनकी पूँछ भी विशेष महत्व की होती है। यह दिशाओं के परिवर्तनमें अर्थात् घुमाने फिराने में सहायक होती है।

जो ऐरोप्लेन जमीन पर उतरने के स्थान में पानी पर उतरते हैं उन्हें सी-प्लेन कहते हैं।

आजकल की आकाश यात्राओं में निम्न यात्रायें विशेष महत्व की हैं।

(१) नोर्ज नामक यानद्वारा कप्तान अमण्डसन उत्तरीध्रुव के ऊपर स्पिट्ज़बर्जन से अलास्का तक उड़ा।

(२) सर एलन कोबहम का सी-प्लेन जो लण्डन से आस्ट्रेलिया गया और वहाँ से फिर वापस आया। इससे पूर्व इतनी लम्बी यात्रा किसीने न की थी।

(३) स्पेन का 'सेनोरिटा' जो वायु में ठीक ऊपर उड़ता गया और एक घंटे तक चक्कर लगाता रहा।

(४) 'ट्रान्स-कौन्टीनेण्टल एक्सप्रेस' जो कई ऐरोप्लेनों का समूह है। इसमें लंडनसे पैरिस और

पैरिस से लंडन के यात्री आते हैं। २५ यात्री, ३ मशीन चलानेवाले, एक दर्शक, और एक माँझी के बैठनेकी इसमें जगह है। लेखक भी एक बार इसमें सवार होकर लंडनसे पैरिस आया था। इस यात्रा में अत्यन्त आनन्द का अनुभव हुआ। आरम्भ में जब इञ्जिन चलाये गये और यान ४० मील की प्रगति से चला तो कुछ कष्ट अवश्य प्रतीत हुआ पर जब वह आकाश में ऊँचा उठ गया तो फिर आनन्द ही आनन्द आने लगा। मशीनों के चलने में इतना शोर होता था कि कान बिल्कुल बहरे हो गये। उतरने पर जब मशीन रुकी तो ऐसा प्रतीत हुआ कि न जाने किस दुनिया में आगये। ५००० फीट की ऊँचाई पर अत्यन्त शीत प्रतीत होता था। तापक्रम—२६° का था। कुछ भी हो यात्रा मनोरञ्जक थी।

(अनूदित)

शारीरिक प्रक्रियापर तापक्रमका प्रभाव और सहनशीलताका प्रश्न

(Influence of temperature on metabolism & problem of Acclimatisation)

[ले० श्री डा० नीलधर डी० एस-सी०, आई. ई. एस.]

(गतांक से आगे।)

अब आगेके पृष्ठों में यह दिखानेका प्रयत्न किया जायगा कि रूबनरके सिद्धान्तकी भौतिक उपयोगिता क्या है और उष्ण तथा शीत-रक्त प्राणियोंकी शारीरिक प्रक्रिया पर तापक्रमका क्या प्रभाव पड़ता है। इसकी भी मीमांसा की जायगी। उष्णरक्त प्राणियों की शारीरिक प्रक्रियाके प्रश्न पर विचार करनेके लिये निम्न बातोंके ध्यान रखनेकी आवश्यकता है।

(१) उष्ण रक्त प्राणियोंका शरीर तापक्रम सामान्यतः परिस्थिति तापक्रमसे कहीं अधिक होता है। गौरय्या, मुर्गी आदि चिड़ियोंका शरीर तापक्रम ४२° के लगभग है. खरगोशका ३६°.६ और कुत्तेका ३६°.२।

(२) प्रयोग परिणामोंसे पता चलता है कि प्राणि शरीरमें मुख्यतः विकरण (radiation) द्वारा ताप-विसर्जन होता है। कल्पना करो कि धातुकी बनी एक गेंदका अर्धव्यास व है और धातुका घनत्व घ। यह त' तापक्रमकी वायुमें रक्खा हुआ है। मानलो कि गरम करके इसका तापक्रम त पर स्थिर कर दिया गया है। त तापक्रम त' से अधिक है इस तापक्रम पर गेंद को स्थिर रखनेके लिये यह आवश्यक है कि इसे बाहर से बराबर गरमी पहुँचायी जाती रहे नहीं तो यह तापविसर्जन करके धीरे धीरे ठण्डी हो जायगी और वायुका तापक्रम त' ग्रहण कर लेगी। स्टीफेनके विकरण सिद्धान्त से यह ज्ञात होता है कि यह ताप विसर्जन सामर्थ्य—

$$= 4 \pi व^2 फ (त^4 - त'^4)$$

जिसमें $4 \pi व^2$ गेंदका उपरितल क्षेत्रफल है, और फ स्टीफनको स्थिर मात्रा है। अतः प्रति इकाई भारके लिये गेंदके तापक्रमको त पर स्थिर रखनेके उद्देश्यसे निम्न दरसे ताप देनेकी आवश्यकता होगी:—

$$\frac{= 4 \pi व^2 फ (त^4 - त'^4)}{\frac{4\pi}{3} व^3 घ} = \frac{3 फ (त^4 - त'^4)}{व घ}$$

इससे यह स्पष्ट है कि प्रति इकाई भार आवश्यक तापकी दर और गेंदके अर्द्धव्यासमें व्युत्क्रम अनुपात है। दूसरे शब्दोंमें, एकही धातुकीबनी हुई छोटी गेंद के लिये इकाई भारकी अपेक्षासे अधिक ताप देनेकी आवश्यकता होती है। अब हम इसी सिद्धान्तका उपयोग प्राणियोंकी शारीरिक प्रक्रियाके विषयमें करेंगे। साधारणतः उष्ण-रक्त प्राणी ऐसी वायुसे पराच्छादित रहते हैं जिसका तापक्रम उनके शरीरके

तापक्रमसे कम होता है। अतः ये प्राणी मुख्यतः विकिरण द्वारा अपना ताप विसर्जन करते रहते हैं। अतः उनके शरीरतापक्रम को स्थिर रखनेके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि शारीरिक प्रक्रिया बढ़ जाय। उपर्युक्त सिद्धान्त को लक्ष्यमें रखकर यह कहा जा सकता है कि प्राणीका शरीर जितना ही छोटा होगा उतनाही इकाई भारकी अपेक्षासे ताप विसर्जन अधिक होगा। वस्तुतः प्रयोगसे भी यही सिद्ध होता है अतः भौतिक नियमोंसे यह स्पष्ट है प्राणीका शरीर जितना ही छोटा होगा उतनी ही शारीरिक प्रक्रिया भी अधिक होगी और प्रति इकाई भार ताप विसर्जन भी अधिक होगा।

उपर्युक्त सम्बन्धसे यह भी स्पष्ट है कि प्रति इकाई भार आवश्यक ताप शरीर और परिस्थितवायु के तापक्रमोंके अन्तरके समानुपाती हैं अर्थात यह तापक्रम अन्तर जितना ही अधिक होगा उतना ही प्रति इकाई भार आवश्यक ताप भी अधिक होगा। अतः जब उष्ण रक्त प्राणी ऐसे वायुमें रखा जाय जिसका तापक्रम उस वायु तापक्रमसे जिसमें वह सामान्यतः रहता है कम हो तो आवश्यक ताप और अतः उसकी शारीरिक प्रक्रिया दोनों बढ़ जायगी। यही कारण है कि तापक्रमके कम हो जानेसे उष्ण रक्त प्राणियोंकी शारीरिक प्रक्रिया बढ़ जाती है।

हम अभी यह दिखा चुके हैं कि उपरि तलसे ताप विसर्जन = ४π व² फ (त⁴ - त'⁴) अतः इकाई उपरितल क्षेत्रफलके लिये ताप विसर्जन =फ(त⁴—त'⁴)। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ताप विसर्जन का शरीर के आकार—अर्द्धव्यास आदि से कोई सम्बन्ध नहीं है और प्रति इकाई क्षेत्रफल ताप विसर्जन शरीर-तापक्रम और परिस्थिति-तापक्रम के अन्तर पर ही निर्भर है। रूबनर ने शूकर पर किये गये अपने प्रयोगों से यह बात स्पष्ट करदी है।

तापक्रम		कओ₂
८°	...	२.६१
११°	...	२.१५
२१°	...	१.७७

यदि फ (त⁴—त'⁴) इस सम्बन्ध से शारीरिक प्रक्रिया की गणना की जाय तो ८° और ११° शूकर शारीरिकप्रक्रियाओं की निष्पत्ति १.२ के लगभग है, और प्रयोग के अंकों से यह निष्पत्ति १.३ के लगभग होती है २१° और २६° के बीच में गणना से यह मान १.३८ और प्रयोगसे १'२ निकलता है। इस गणना में शूकर का औसत तापक्रम ३८°'२ माना गया है। इसस रूबनर के सिद्धान्त की भौतिक उपयोगिता स्पष्ट ही है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि रूबनर का सिद्धान्त मुख्यतः उष्ण रक्त प्राणियों पर ही उपयुक्त हो सकता है क्योंकि परिस्थितिका तापक्रम चाहे कुछ भी क्यों न हो उनके शरीरका तापक्रम इससे अधिक ही रहता है ऐसी अवस्था में विकिरण सिद्धान्तका उपयोग किया जा सकता है।

शीत-रक्त प्राणियोंके शरीरका तापक्रम परिस्थिति तापक्रमसे कुछही अधिक होता है। अतः पूर्व निर्दिष्ट बातोंका उपयोग नहीं किया जा सकता है। रूबनर का सिद्धान्त शीत-रक्त प्राणियोंके लिये ठीक नहीं है।

यह कहा जा चुका है कि शरीरके इकाई भारकी अपेक्षा से छोटे प्राणियों की शारीरिक प्रक्रिया बड़े प्राणियों की अपेक्षा अधिक होती है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि भारके हिसाबके छोटे जानवरोंमें उत्प्रेरक (Catalyst) अथवा प्रेरक-जीव (enzymes) बड़े जानवरोंकी अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं। यह अजीब मालूम होता है कि कुत्तेके शरीरमें स्थित प्रेरक जीवोंकी शक्ति मनुष्यमें स्थित प्रेरकजीवोंकी अपेक्षा अधिक होती है, अन्यथा यह मानना पड़ेगा कि छोटे जानवरोंमें बड़े जानवरोंकी अपेक्षा प्रति इकाई भार उत्प्रेरककी मात्रा कहीं अधिक होती है। विवेचना करके अब आगे यह दिखानेका प्रयत्न किया जायगा कि दूसरी धारणा की अपेक्षा पहली धारणा अधिक युक्ति संगत है। अतएव हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि भौतिक शक्ति और

शरीर के प्रति इकाई भार ओषदीकरण की मात्रा कुत्ते के लिये मनुष्यकी अपेक्षा कहीं अधिक है। पालतू जानवरों पर साधारण दृष्टि डालनेसे ही यह पता चल जाता है कि छोटे प्राणी बहुधा उतने दिनों जीवित नहीं रहते हैं जितने दिन बड़े प्राणी। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि बड़े जानवर छोटोंकी अपेक्षा प्रौढ़ होनेमें अधिक समय लेते हैं और इससे यह परिणाम निकाला गया है कि जितनाही अधिक समय प्रौढ़ होनेमें लगेगा उतनी ही आयु भी अधिक होगी। अतः अधिक शारीरिक प्रक्रिया वाले छोटे प्राणी सापेक्षतः कम समय तक जीवित रहते हैं। सुस्त शारीरिक प्रक्रिया वाले बड़े प्राणी अधिक समय तक जीवित रहते हैं। हम अभी कह चुके हैं कि रूबनरका विचार यह है कि जीवित शक्ति या सामर्थ्य परिवर्तन की निश्चित मात्रा परही जीवनका शारीरिक अन्त निर्भर है।

प्राणि-शरीर सम्बन्धी इन बातोंके समान ही रासायनिक उदाहरण भी मिलते हैं। सेबेतिअर और उसके सहयोगियोंने यह प्रदर्शित कर दिया है कि जब धातु नकलम् जो उदजनी करण विधिमें उत्प्रेरक (Catalyst) के रूपमें उपयुक्त होता है, उपयुक्त अवस्थाओंमें जितना सम्भव हो उतने कम तापक्रम पर तैयार किया जाता है, उसकी उत्प्रेरण शक्ति अत्यन्त अधिक होती है, पर यह शक्ति बहुत शीघ्र ही क्षीण होजाती है। अन्य उत्प्रेरकों पर किया गया अनुभव हमें यह बताता है कि अत्यन्त शक्तिवान उत्प्रेरकउपरितल बहुत शीघ्र ही क्षीण होजाता है। दूसरे शब्दोंमें अत्यन्त शक्तिवान् उत्प्रेरक उपरितल साधारण शक्तिवालों की अपेक्षा बहुत जल्दी विष-ग्रस्त और परिवर्तित हो जाते हैं।

अतः यह कल्पना की जा सकती है कि शारीरिक प्रक्रियाओंमें सहयोग देने वाले अत्यन्त शक्तिवान् उत्प्रेरक निर्बल उत्प्रेरकोंकी अपेक्षा अधिक शीघ्र क्षीण हो जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है ओषदीकरण सम्बन्धी शारीरिक प्रक्रिया को तीव्र करने वाले उत्प्रेरक कुत्तेके शरीरमें प्रति इकाई समय अधिक ओषदीकरण करते हैं और मनुष्य शरीरके निर्बल उत्प्रेरक कम ओषदीकरण करते हैं। परन्तु छोटे प्राणियोंके शरीरस्थ शक्तिवान उत्प्रेरक अत्यन्त शीघ्र क्षीण और विष ग्रस्त हो जाते हैं और मनुष्यके शरीर में निर्बल उत्प्रेरक अधिक समय तक क्रियावान् रहते हैं। यही कारण है कि शक्तिवान उत्प्रेरक वाले छोटे प्राणी निर्बल उत्प्रेरकों वाले बड़े प्राणियोंकी अपेक्षा अधिक शीघ्र मृत्युके ग्रास होजाते हैं इस सम्बन्धमें स्लोनेकर द्वारा चूहे पर किये गये निम्न प्रयोग मनोरञ्जक सिद्ध होंगे:—

स्लोकनेरने ४ चूहे इस प्रकारके लिये जिनके बाल और त्वचा बहुत श्वेत थे और आँखकी पुतली लाली लिये हुये थी (Albin rat)। इन्हें पुरानी चाल के घूमते हुए गिलहरीके पिंजड़ेके समान पिंजड़ोंमें रक्खा। पिंजड़ेकी धुरीसे एक उपयुक्त चिह्नित चक्कर-मापक (Odometer) लगा दिया गया था जिससे यह नापा जा सके कि प्रत्येक चूहा सम्पूर्ण जीवनमें कितनी दौड़ लगाता है।

परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि चूहे जीवन भरमें अत्यन्त मात्रामें गति करते हैं। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि एक चूहा जीवन भरमें ५४४७ मील की दौड़ लगाता है। इन चारों चूहोंके जीवन कालका औसत २९·५ मास था। ३ चूहोंको बन्धनमें ऐसे पिंजड़ोंमें रक्खा गया जिसमें वे बहुत ही कम चल फिर सकते थे पर तापक्रम आदि अन्य परिस्थिति घूमने वाले पिंजड़ोंके समान ही पूर्ववत् रक्खी गई। इन चूहों का औसत जीवन काल ४८·२ मास निकला। सब चूहे वृद्धताके कारण मरे थे, अन्य किसी दुर्घटना से नहीं। इस प्रयोगसे यह स्पष्ट ही है कि जितना ही अधिक काम किया जायगा और जितनी अधिक शक्ति जनित होगी, आयु भी उतनी ही कम होगी और जितना कम काम किया जायगा उतनी ही आयु अधिक होगी।

इस बात को ध्यानमें रखकर अब उष्ण रक्त प्राणियों की सहन शीलता (Acclimatisation) की सम्भावना की व्याख्या करनेका हम प्रयत्न करेंगे।

जैसा अभी कहा जा चुका है कि जब कभी परिस्थिति तापक्रममें कमी होती है, उष्णरक्त प्राणियोंकी शारीरिक प्रक्रिया बढ़ जाती है। दूसरे शब्दोंमें जब उष्ण रक्त प्राणी गरम जलवायु से ठंडे जल वायुमे लाया जाता है इसकी शारीरिक प्रक्रिया और शरीरकी उत्प्रेरक शक्ति बढ़ जाती है। अर्थात् शरीरमें एक प्रकारका तनाव (Strain) होता है। मनुष्योंके विषय में भी यही बात है। पहले कहा जा चुका है कि साधारणतः मनुष्य शरीरका २०% अँग खुला रहता है और ८०% अङ्ग कपड़ेसे ढका रहता है, अतः इस २०% खुले अङ्ग पर ही विचार करना चहिये। यद्यपि सापेक्षतः बहुत थोड़ा अंग खुला है, तथापि परिस्थिति तापक्रमके कम होने पर शारीरिक प्रक्रिया अवश्य बढ जाती है। अतः शरीरके उत्प्रेरकोंकी शक्ति बढ़जाती है। लेकिन जैसा रूबनरने प्रदर्शित किया है आदर्श शारीरिक प्रक्रियामें शीघ्र परिवर्तन नहीं होसकता है क्योंकि छिद्र कोष्ठ (Cells) की ओषद्-कारक-शक्ति ताप विसर्जनके विषयमें सामान्य स्थितिके अनुकूल रहता है और उन परिस्थितिओंके परिवर्तित होनेसे बहुतही कम बदलती है। अतः मनुष्य अथवा अन्य प्राणीका शरीर गरम प्रदेशसे ठंडे प्रदेशमें लाने पर तनाव की अवस्था में रहेगा।

शीत रक्त प्राणियों के विषयमें यह स्पष्ट है कि उनमें उष्णरक्त प्राणियोंकी अपेक्षा शारीरिक प्रक्रिया बहुत धीमी होती है। अतः उनके शरीरमें स्थित प्रेरक जीवोंकी उत्प्रेरण-शक्ति उतनी अधिक नहीं होती जितनी उसी आकारके उष्णरक्त प्राणियोंके शरीरमें स्थित प्रेरकजीवोंकी होती है। अतः शीत रक्त प्राणीका जीवनकाल उतने ही आकार वाले उष्ण-रक्त प्राणीके जीवन कालसे अधिक होता है। जीव-विज्ञानसे भी इसीका समर्थन होता है क्योंकि प्रयोगों द्वारा सिद्ध है कि शीत रक्त प्राणी उतने आकार वाले उष्ण रक्त प्राणियोंकी अपेक्षा अधिक कालतक जीवित रहते हैं।

जब उष्णरक्त प्राणी गरम प्रदेशसे शीत प्रदेशमें भेजदिये जाते हैं शारीरिक प्रक्रिया बढ़ जाती है, इसका प्रभाव यह होता है कि प्रेरक-जीवोंको प्रतिइकाई समय अधिक ओषदीकरण करनेके लिये उत्प्रेरण शक्ति बढ़ानी पड़ती है।

मैं अभी बलपूर्वक यह कह चुका हूं कि जब कभी उत्प्रेरकको अपनी सामान्य गति की अपेक्षा से अधिक तीव्रतासे काम करना पड़ता है तो उत्प्रेरकका जीवन काल कम होजाता है। अतः उष्ण रक्त प्राणीको गरमसे ठंडे प्रदेशमें भेज देनेसे पहला प्रभाव यह होता है कि शरीरके प्रेरक जीवोंको अधिक तीव्रतासे काम करना पड़ता है जिससे उनका जीवन काल कम हो जाता है।

चाहे परिस्थितिका तापक्रम कुछ भी क्यों न हो, उष्णरक्त प्राणियोंका तापक्रम एक मात्रा पर स्थिर रहता है। अतः परिस्थिति तापक्रमकी अवहेलना करके उत्प्रेरकको सदा एकही तापक्रम पर काम करना पड़ता है। अतः उष्णरक्त प्राणीके विषयमें तापक्रम की वृद्धिका प्रभाव उत्प्रेरकके शक्ति काल पर कुछ भी नहीं पड़ता है। अतः उष्णरक्त प्राणीको गरम प्रदेशसे शीत प्रदेशमें भेजनेसे मुख्य प्रभाव यह पड़ता है कि शरीरके प्रेरक जीवोंकी शक्ति बढ जाती हैं, और शारीरिक प्रक्रिया बढ़जाती है अतः जीवन काल कमहो जाता है। अब यदि वे प्रेरक जीव जिनको गरम जल वायु में कम ताप उत्पन्न करनेकी आदत थी, ठंडे जल वायुमें अधिक ताप उत्पन्न करने पर बाध्य किये जाँय तो यह स्वाभाविक ही है कि वे धीरेधीरे थकने लगेंगे और उनकी शक्ति क्षीण पड़ जायगी। इनके शरीरकी तनाव-मात्रा भी बहुत बढ़ जायगी। अतः गरम देश से ठंडे देशमें भेजा गया प्राणी उत्तरोत्तर वर्ष व्यतीत होने पर और भी अधिक ठंड अनुभव करेगा।

इसके विपरीत यदि उष्णरक्त प्राणी ठंडे प्रदेश से गरम प्रदेशमें भेजदिया जायतो ज्योंहिं वह गरम वायुमंडलमें आजायगा, उसके शरीरकी शारीरिक प्रक्रिया को कम होना पड़ेगा। फलतः, उसके शरीर के प्रेरक जीवों को गरम देशमें ठंडे देश की अपेक्षा कम काम करना पड़ेगा। अतः उसके जीवन-काल बढ़ जाने की अधिक सम्भावना है जब वह ठंडे प्रदेशसे गरम प्रदेश में भेजदिया जायगा, हां, बाह्य तापक्रम शरीरतापक्रमसे अधिक न होना चाहिये।

अतः मेरी व्यक्तिगत यह सम्मति है कि यह अधिक लाभप्रद है कि शीत-देशस्थ-मनुष्य गरम देशमें चलाजाय पर गरम देशस्थ मनुष्यको शीत देशमें जाना उपयोगी नहीं है। जब उष्ण रक्त प्राणी को ऐसे प्रदेश में रहना पड़ता है जहाँ वाह्यतापक्रम शरीर-तापक्रमसे अधिक हो तो प्राणी बड़ी जल्दी बुड्ढाहो जायगा और उसकी मृत्यु भी शीघ्र हो जायगी, क्योंकि उच्च तापक्रम पर शरीरके उत्प्रेरक बहुत जल्दी क्षीणहो जायंगे। अतः उष्णरक्त प्राणी की यह अवस्था शीतरक्त प्राणीके समानहो जायगा।

इस विवेचना में मैंने 'क्लेद (Humidity) का प्राणियों पर प्रभाव' इस सम्बन्ध की सदा अवहेलना की है।

त्वचा के रंगका भी प्रभाव पड़ता है। जिस प्राणी की त्वचा जितनी ही अधिक काली होगी उतना ही ताप विकरण अधिक तीव्रता से होगा। गोरे रंगके प्राणियों में तापविकरण इतनी शीघ्रतासे नहीं होता है।

इस बात परमैं जोरदे चुका हूँ कि शीतरक्त प्राणियों की शरीर प्रक्रिया एकसी ही परिस्थितिमें उष्णरक्त प्राणीकी अपेक्षा कम होती है। दूसरे शब्दोंमें शीत रक्त प्राणियों में स्थित-प्रेरकजीव उतने शक्तिवान नहीं होते हैं, जितने उष्णरक्त प्राणियों के शरीर में स्थित होते हैं। यह भी कहा जा चुका है कि शीतरक्त प्राणीका शरीर-तापक्रम परिस्थितवायु के तापक्रम से कुछ ही अधिक होता है और ज्यों ज्यों परिस्थित तापक्रम बढ़ता जाता है त्यों त्यों शीतरक्त प्राणी की शारीरिक प्रक्रियाभी बढ़ती जातीहै।

अब यह देखना चाहियेकि जब गरम प्रदेशमें रहने वाला शीतरक्त प्राणी ठंडे देश में लेजाया जायगातो क्या होगा। शरीरकी शारीरिक-प्रक्रिया कमहो जायगी और उसका जीवन सुस्त पड़जायगा। उसे ऐसी अवस्था आराम भी कम मिलेगा। प्रेरकजीवों को कम ताप उत्पन्न करना होगा अतः उनका जीवन काल बढ़ जायगा। और ठंडी परिस्थिति में वह अधिककाल तक जीवित रहेगा। उसके शरीरके उत्प्रेरकभी उतनी जल्दी क्षीण न होंगे जितनी जल्दी गरम प्रदेशमें होते। अतः ये दोनों बात उसकी जीवन वृद्धि में सहायक होंगी जब वह गरम देश से ठंडे देश में भेजदिया जायगा।

पर, जब वह शीतरक्त प्राणी जिसे ठंडी परिस्थितिमें रहने का स्वभाव होगया है गरम देशमें भेजदिया जायगा, उसकी प्रतिइकाई समय शारीरिक प्रक्रिया बढ़ जायगी और शरीरके उत्प्रेरकों को अधिक काम करना पड़ेगा अतः उत्प्रेरक का शक्तिकाल कम हो जायगा। यद्यपि इस प्राणी का जीवन अधिक चुस्त और फुर्तीला होगा तोभी जीवन काल कमहो जायगा। गरम प्रदेशमें शरीरस्थ उत्प्रेरक ठंडे प्रदेशकी अपेक्षा बहुत शीघ्र क्षीण होने लगेगा। अतः इनदोनों बातों का प्रभाव यह होगा कि बुढ़ापा और मृत्यु बहुत शीघ्र आजायंगे यदि शीतरक्त प्राणी को ठंडे प्रदेशसे गरम प्रदेश में लेजाया जाय।

(अनुवादक सत्यप्रकाश)

नोषजन और अमोनिया

(Nitrogen and Ammonia)

[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०]

नोषजन-परमाणुभार १४·०१ संकेत-नो

१८२९ वि० में सबसे पहले शिले नामक वैज्ञानिक ने यह बात प्रदर्शितकी थी कि वायु दो गैसोंका मिश्रण है, इस मिश्रणमें एक गैस तो ऐसी है जो वस्तुओं के जलने में साधक होता है और दूसरी गैस साधक नहीं है इस दूसरी गैसका नाम हम नोषजन रखते हैं (न + ओषजन)। साधक गैस ओषजन का वर्णन पहले किया जा चुका है। वायु में ओषजन और नोषजन के अतिरिक्त कर्बनद्वि ओषिद, जलवाष्प, आलगोम्, नूतनम्, अन्यजन आदि

अनेक वायव्य थोड़ी थोड़ी मात्रा में विद्यमान हैं। भिन्न भिन्न स्थानों की वायुमें ये पदार्थ भिन्न भिन्न मात्रामें पाये जाते हैं। कर्बन द्विओषिद और जलकण का निराकरण करने पर वायुमें ये पदार्थ निम्न मात्रामें पाये जाते हैं:—

	भारमें	आयतनमें
नोषजन	७५.५	७८.०६
ओषजन	२३.२	२१.००
आर्गसीम आदि	१.३	०.९४

वायु के अतिरिक्त बहुतसे लवणों में नोषजन संयुक्त अवस्था में पाया जाता है जैसा अमोनिया, नोउ$_3$ और इसके लवणोंमें पांशुज और सैन्धक नोषेत, पाँना ओ$_3$, सै नो ओ$_3$ अर्थात् शोरामें इसी प्रकार नोषितों से नो ओ$_2$ मेंभी होता है। अण्डसित आदि प्रत्यमिन (Proteins) पदार्थोंमें भी यह होता है। लगभग जितने अच्छे और प्रबल विस्फुटन-पदार्थ (Explosive) हैं उन सबमें नोषजनकी समुचित मात्रा रहती है। बहुतसे रंगोंमेंभी यह होता है।

नोषजन की उपलब्धि

(१) यह कहा जा चुका है कि नोषजन अन्य वायव्योंके साथ हवामें लग भग $\frac{4}{5}$ भाग विद्यमानहै। एक बन्द बर्तनकी वायुमें स्फुरका छोटा टुकड़ा लेकर जलाओ। स्फुरके जलनेसे वायुका सम्पूर्ण ओषजन समाप्त हो जायगा क्योंकि इस प्रक्रियामें स्फुर पंचौषिद, स्फु$_2$ ओ$_5$ बनता है। नोषजन शेष रह जायगा। स्फुर पंचौषिद की श्वेत वाष्पें जलमें पूर्णतः घुलन शील हैं।। उनको घुलाकर नोषजन प्राप्त किया जा सकता है।

स्फुरके स्थानमें नम लोह चूर्ण भी लिया जा सकता है। बन्द वायुमें रखनेसे इसमें जंग लग जायगा अर्थात् वायु का ओषजन लेकर यह औषिदमें परिणत हो जायगा और नोषजन शेष रह जायगा।

(२) यदि अधिक स्वच्छ नोषजन प्राप्त करना हो तो वायु को पहले पांशुज उदौषिद पां ओ उ$_3$, के संपृक्त घोलमें प्रवाहित करो, ऐसा करनेसे इसका कर्बनद्विओषिद इस घोलमें अभिशोषित हो जायगा इसके पश्चात् इस वायुको तीव्रसंपृक्त गन्धकाम्लमें प्रवाहित करो जिससे इसके जलकण दूर होजांय। अब इस वायुको काँचकी एक लम्बी नलीमें जिसमें ताम्र-छीलन रक्त तप्त हो रहा हो प्रवाहित करो, ऐसा करने से वायुका ओषजन, ताम्र लेलेगा और ताम्र ओषिद में परिणत हो जायगा। स्वच्छ नोषजन रह जायगा जिसे गैस भरनेके बेलनोंमें भरा जा सकता है।

(३) अब तक जो विधियां बताई थीं वे वायुके नोषजनसे सम्बन्ध रखती थीं। रासायनिक लवणोंसे नोषजन प्राप्त करनेकी कुछ विधियां यहाँ दी जायेंगी—

(क) अमोनियम नोषित, (नो उ$_4$) नो ओ$_2$ के संपृक्त घोल को गरम करनेसे स्वच्छ नोषजन प्राप्त हो सकता है। यह लवण नोषजन और जलमें विभाजित हो जाता है।—

$$\text{नो उ}_4\ \text{नो ओ}_2 = \text{नो}_2 + २\ \text{उ}_2\text{ओ}$$
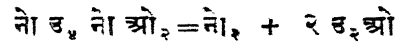
(ख) काँचकी एक कुप्पीमें ५० घ. श. म. के लगभग संपृक्त अमोनिया लो और इसमें रंग विनाशक चूर्णके २० ग्राम और थोड़ासा चूनेका पानीही पेंचदार कीपद्वारा डाल दो। थोड़ा सा गरम करो, नोषजन निकलने लगेगा—

$$३\ \text{ख}(\text{ओह})_2 + ४\ \text{नो उ}_3 = ३\ \text{खह}_2 + ६\ \text{उ}_2\text{ओ} + २\text{नो}_2$$
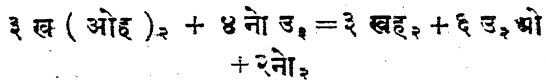
(ग) अमोनियामें केवल हरिन् गैस प्रवाहित करनेसेभी नोषजन उपलब्धहो सकता है। इस प्रक्रियामें उदहरिकाम्ल, उह, जनित होता है जो अधिक अमोनियाके साथ अमोनियम हरिदमें परिणत हो जाता है:—

$$२\ \text{नो उ}_3 + ३\text{ह}_2 = \text{नो}_2 + ६\text{उह}$$
$$\text{उह} + \text{नो उ}_3 = \text{नो उ}_4\text{ह}$$
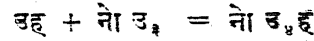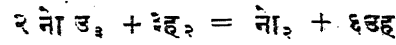
नोषजन के गुण

यह स्वाद-तथा गन्धक रहित नीरङ्ग वायव्य है जो वस्तुओं के जलनेमें साधक नहीं होता है और ओषजनके विना यह प्राणवायुके योग्य भी नहीं है।

पर यह विषैला नहीं है। यह कर्बन द्विओषिदके समान चूनेके पानीको दूधिया नहीं करता है। यह पानीमें थोड़ासाही घुलन शील है। इस घोलका द्योतकपत्र परकोई प्रभाव नहीं पड़ता है। दबाव डालकर ठण्डा करनेसे यह द्रव भी किया जासकता है। इसका विपुल तापक्रम −१४७.१३° और विपुल दबाव ३३·४६ वातावरण है। यह द्रव नोषजनभी नीरंग है जिसका क्वथनांक—१९५·८१° और क्वथनांक पर घनत्व ०·८०४२ होता है। क्षीण दबावमें वेगसे वाष्पीभूत करनेमे यह बर्फके समान ठोस हो जाता है जिसका ८६ स. म. (mm) पर द्रवांक—२१०·५° है। स्वच्छ नोषजन गैसका घनत्व १·२५०७ ग्राम प्रति लीटर है। पर वायुके नोषजनका घनत्व १·२०५७ ग्राम प्रति लीटर है।

ओषजनके गुणोंकी तीव्रताको मन्द करने के लिये यह हवामें रखा गया है। यदि वायुमें नोषजन न होता और केवल स्वच्छ ओषजन हीहोता तो ओषदी करणकी प्रक्रियायें इतनी प्रबलतासे होतीं कि वनस्पति और अन्य प्राणियों का जीवन असम्भवहो जाता

वायुके कुछ गुण

जीवनके लिये वायु पानी और भोजनसे भी अधिक आवश्यक पदार्थ है। वायुमें भार होता है। कांचके गोलेको वायु को शून्यक पम्प द्वारा निकाल लो और इसे तौलो। फिर इसमें वायु भरकर तौलो। इन दोनों तौलोंका अन्तर ज्ञात होनेसे वायु का भार पता चल जायगा। ०°श और ७६० स. म. दबाव पर एक लीटर शुष्क वायु का भार लंदन में समुद्रीसतह पर १·२९३ ग्राम है।

वायु हमारे ऊपर दबाव भी डालता है। समुद्र-सतह पर यह औसत दबाव पारदके ७६० स. म. अर्थात् २९·९२२ इञ्चके बराबर है। पारदका घनत्व १३·५ है। अतः ३५ फीट पानीके दबावके बराबर इसका दबाव है। यह दबाव प्रति वर्ग शतांश-मीटर पर १·०३३' किलो ग्राम (हज़ार ग्राम) अथवा प्रति वर्ग इञ्च १६·७३ पौण्ड है। इस प्रकार मनुष्य के शरीर को कई मन वायु का बोझ सहना पड़ता है यदि ऐसा नहो तो हमारे शरीरकी नसें एक दम फट जायँ। जब हम गुब्बारेमें वायुमें ऊपर उठते हैं तो धीरे धीरे यह दबाव कम होने लगता है। दबाव मापक यन्त्र (barometer) द्वारा जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है दबाव नापा जा सकता है।

ज्यों ज्यों हम ऊपर उठते हैं वायु का घनत्व भी कम होता जाता है। यह कहा जाता है कि ४० या ४५ मील ऊपर तक तो वायु थोड़ा बहुत पाया जाता है। पर इससे भी अधिक ऊपर जानेसे वायु नहीं मिलेगा वहां केवल आकाश मात्र रह जावेगा।

जितना हम ऊपर बढ़ेंगे, वायुका ताप क्रम भी कम होता जायगा। प्रयागके वायु मण्डलका सामान्य तापक्रम लगभग १६°—४०° श के रहता है पर हिमालयकी चोटीपर यह तापक्रम ०°श के लगभग हो जाता है। उत्तरी देशोंमें समुद्र तलका तापक्रम ही०°—४°श के लगभग हो जाता है।

एक बात विशेष जानने योग्य है। वह यह कि वायु ओषजन नोषजन आदि गैसोंसे बना हुआ रासायनिक यौगिक नहीं हैं यह तो केवल इन गैसोंका मिश्रण मात्र है। बहुत दिन हुए जब लोग इस बात पर सन्देह करते थे पर इसका मिश्रण होना निम्न बातों से स्वयं सिद्ध है:—

(१) जब दो गैसे संयुक्त होकर रासायनिक यौगिक बनाती हैं तो बहुधा ताप जनित होता है और कभी कभी आयतनमें भी परिवर्तन हो जाता है। यदि हम ओषजन और नोषजनको उस अनुपातमें मिलावें जिसमें वे वायुमें हैं तो न तो ताप-परिवर्तन ही होता है और न आयतनमेंही कोई भेद पड़ता है। इतना होनेपर भी यह मिश्रण वायुके समान ही गुणों का हो जाता है। अतः वायु-भी मिश्रण ही है।

(२) गैस अपने परमाणुभारों अथवा परमाणुभार के गुणकों की निष्पत्ति में संयुक्त होती हैं। वायुमें

ओषजन और नोषजन का जो अनुपात है वह इनके संयोगभारों अथवा गुणकों का अनुपात नहीं है।

(३) यद्यपि सामान्यतः वायुमें ओषजन और नोषजन का अनुपात स्थिर है पर पूर्णतः यह स्थिर नहीं है भिन्न भिन्न स्थलों की वायुमें यह अनुपात कुछ भिन्नता से अवश्य पाया जाता है।

(४) वायु के मिश्रण सिद्ध करनेमें सबसे प्रबल प्रमाण यह है:—यदि हम वायुको जलके साथ हिलायें तो कुछ वायु जलमें अभिशोषित हो जायगा वायु संपृक्त जल को यदि अब हम गरम करें तो घुला हुआ वायु फिर बाहर निकल आवेगा। इस मुक्त वायुकी कई बार परीक्षा की गई है जिससे पता चलता है पूर्व वायुकी अपेक्षा जल द्वारा अभिशोषण करके मुक्त वायुमें ओषजनकी प्रतिशतक मात्रा अधिक है साधारणतः वायुमें २१% ओषजन पाया जाता है पर जलमें अभिशोषित वायुमें ३४% के लगभग ओषजन रहता है जैसा कि निम्न अंकोंसे स्पष्ट है:—

	जलमें बिना घुला हुआ वायु	जलमें घुला हुआ वायु
नोजषन	७९·०४	६६·३६
अषजन	२०·९६	३३·६४
	१००·००	१००·००

अर्थात् पहले तो वायु के ओषजन और नोषजन में १:४ के लगभग की निष्पत्ति थी पर जलमें घुले हुए वायुमें यह निष्पत्ति १:२ ही रहजाती है। अगर वायु मिश्रण न हो कर यौगिक होता तो इस प्रकार की घटना कभी सम्भव न थी

(५) एक और भी प्रमाण इसी बात को सिद्ध करता है। यदि द्रव वायुको धीरे धीरे क्षीण द्रवात्र में वाष्पीभूत किया जाय तो पहिले नोषजन निकलता है और बादको ओषजन। इससे भी सिद्ध है कि द्रव वायु भी द्रव ओषजन और नोषजन का मिश्रण है। यदि यह यौगिक होता तो दोनों गैसें साथ साथ निकलतीं नकि अलग अलग।

वायुकी विश्लेषण-परीक्षा—

वायुमें निम्न पदार्थ विद्यमान है जिनकी मात्रा निकालनेकी विधियाँ यहाँ दी जायंगीः—

१ ओषजन
२ नोषजन
३ कर्बनद्वि ओषिद
४ जलकण

सूक्ष्मतः यह विधि इस प्रकार है। वायुको पहले पांशुज उदौषिद, पां ओ उ, घोलसे भरे हुए गोलेमें प्रवाहित कर इसका कर्बनद्विओषिद अभिशोषित कर लेते हैं, इसके पश्चात् यदि इस वायुको तीव्र गन्धकाम्लमें होकर प्रवाहित किया जाय तो इसके जलकण इस अम्लमें अभिशोषित हो जायंगे। अब जलकण और कर्बनद्विओषिद रहित वायुको एक लम्बी काँचकी नलीमें प्रवाहित करो जिसमें ताम्रचूर्ण भरा हो। ताम्रचूर्ण को गरम करके रक्ततप्त कर लो। वायुका शेष यह नोषजन एक नोषजन मापक यन्त्र (Nitrometer) में जाने दो जिससे नोषजनकी मात्रा ज्ञात हो जायगी हो जायगी अथवा एक एक गोलेकी वायुको शून्यकपम्पसे निकाल लो। इसगोलेमें शेष नोषजन भर कर तौल लो। इस प्रकार नोषजनकी मात्रा भी ज्ञात हो जायगी। इस प्रयोगके लिये यह आवश्यक है कि निम्न वस्तुओंका प्रयोगसे से पूर्वका और पश्चात्का अलग २ भार ज्ञात हो—

१. पांशुज उदौषिद के गोलेका पूर्वभार
,, ,, पश्चात्,, > ओक$_2$
२. गन्धकाम्ल-गोलेका पूर्वभार
,, ,, पश्चात् > उ$_2$ओ
३. ताम्र नलीका पूर्वभार
,, ,, पश्चात्,, > ओ$_2$
४ शून्य गोलेका पूर्वभार
,, ,, पश्चात्,, > नो$_2$

वायुमें जलकणकी मात्रा ऋतुपरिवर्तनके हिसाबसे बदलती रहती है। एक घनमीटर वायु को जल वाष्पसे संपृक्त करनेके लिये भिन्न भिन्न

तापक्रमों पर भिन्न भिन्न जलकी मात्रा आवश्यक है—

ताप क्रम	जल
० शंपर	४.८७१ ग्राम
५° ,,	६.७९५ ,,
१०° ,,	९.३६२ ,,
१५° ,,	१२.७३६ ,,
२०° ,,	१७.१५१ ,,
३०° ,,	३०.१९५ ,,
४०° ,,	५१.७०० ,,
१००° ,,	५८८.७३ ,,

हमारे जीवनके लिये ओषजनकी बड़ी आवश्यकता पड़ती है, हम श्वास द्वारा इसे अपने शरीरमें ले जाते हैं। इसके द्वारा शरीरस्थ भोजन आदि ओषदीकृत होकर शरीरके अन्य अंग बढ़ते हैं और साथ २ शरीरको गरमी भी प्राप्त होती है। जिस प्रकार लकड़ीके जलनेसे कर्बनद्विओषिद निकलता है उसी प्रकार शरीरके भोजन के ओषदीकरण होने पर भी क ओ$_2$ निकलता है। हम श्वास द्वारा इस गैसको बाहर निकालते हैं। वायुमें जो कुछ क ओ$_2$ विद्यमान है वह या तो आग जलनेके कारण या हमारे श्वास द्वारा निकाले हुए वायु के कारण है। कर्बन द्विओषिदकी अधिक मात्रा हमारे जीवनके लिये हानिकारक है। प्रकृतिमें वृक्षोंका निर्माण परमात्मा ने इस प्रकार किया है कि वायुमें कर्बन द्विओषिद अधिक संग्रहीत न होने पावे। वृक्षलताओं की हरियालीमें एक पदार्थ होता है जिसे क्लोरोफील कहते हैं। इसकी सहायतासे वृक्ष कर्बन द्विओषिद को प्राणवायुके रूपमें ग्रहण करते हैं और क ओ$_2$ को विभाजित करदेते हैं:—

२ क ओ$_2$ + क्लोरोफील —> २क + २ ओ$_2$
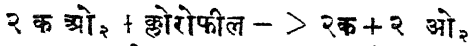
इस प्रकार कर्बन द्विओषिदका कर्बन तो वृक्षोंके शरीर बनानेके काममें आता है। लकड़ी अधिकाँश कर्बन होती है वृक्ष ओषजनको बाहर उसी प्रकार निकालते हैं जिस प्रकार हम कर्बन द्विओषिद को निकालते हैं। यह स्वच्छ ओषजन फिर वायुमें आजाता है और हमारे लिये प्राणवायुका काम देता है। इस प्रकार हमारे जीवनसे वृक्षोंका जीवन और वृक्षोंके जीवनसे हमारा जीवन चलता रहता है। वृक्ष, उपवन, आदि लगाने का यही तात्पर्य है।

यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वृक्ष क्लोरोफी द्वारा कर्बन द्विओषिद को प्रकाश की विद्यमानता में ही विभाजित कर सकते हैं। रात्रिके समय यह प्रक्रिया इस प्रकार नहीं होती है। रातमें वृक्ष भी ओषजन को प्राणवायुके रूप में ग्रहण करते हैं और कर्बन द्विओषिदका त्याग करते हैं। अतः रात के समय वृक्षों के नीचे सोना हानिकारक है।

नोषजन और उदजन के यौगिक-

अमोनिया, नो उ$_3$

नोषजन और उदजन मिलकर कई यौगिक बनते हैं जैसे अमोनिया नो उ$_3$

उदाजीविन नो$_2$ उ$_4$ (Hydrazine) अजीव-इमिद, नो$_3$उ (Azoimide)

इन यौगिकोंमें से अमोनिया ही अधिक उपयोगी है अतः इसका ही वर्णन यहाँ किया जावेगा।

थोड़ासा अमोनिया वायुमंडलमें ही विद्यमान है। तीव्र उदहरिकाम्लसे भरी हुई बोतलोंके मुंहके पास बहुधा श्वेतचूर्ण जमा हो जाता है जिसे अमोनियम हरिद कहते हैं; यह वायुके अमोनिया और उदहरिकाम्ल वाष्पके संयोगसे बनता है। अमोनियम हरिद नोउ$_4$ह; और अमोनियम गन्धेत, (नोउ$_4$)$_2$ गओ$_4$ ज्वालामुखी प्रान्तोंमें पाये जाते हैं। कार्बनिक पदार्थ अर्थात् सींघ, हड्डी, वृक्ष, पत्ती आदिके भंजक स्रवणसे भी यह प्राप्त होता है। यदि सैन्धका चूना (Soda-lime) और मिलाकर स्रवण कियाजायतो अमोनिया की अधिक मात्रा प्राप्त होगी। एक परख नलीमें थोड़े से पंख लो और उसमें थोड़ासा सैन्धका चूना मिलाओ और गरम करो। जो गैस निकलने लगेगी उसकी निम्न प्रकार परीक्षा करो—(क) लालद्योतक पत्र (red-litmus) को भिगोकर इसके सामने लाओ—यह नीला पड़ जायगा-इससे गैसकी क्षारता सिद्ध है।

(ख) कांचकी नलीमें संपृक्त उदहरिकाम्लकी एक दो बूंदे लगाकर इस गैसके सामने रखो—श्वेतवाष्पें उठने लगेंगी। ये अमोनियम हरिद की वाष्पें हैं जो इस गैस और उदहरिकाम्लके संयोग से बना है।

अमोनियम हरिद, नोउ$_4$ह को नौसादर या साल अमोनिक भी कहते हैं। अरब देशवालोंने लिबयान मरुभूमिमें स्थित जूपिटर अमोन (Jupiter Ammon) के मन्दिरके निकट सबसे पहले तैयार किया था। इस मन्दिरके नामपरही 'अमोनिया' नाम पड़ा है।

मूत्रको सड़ाकर स्रवण करनेसे अमोनियम कर्बनेत (नोउ$_4$)$_2$ कओ$_3$लवण का घोल प्राप्त होता है।

अमोनिया की उपलब्धि—(१) नोषजन और उद्जन के मिश्रणमें विद्युत् संचार करनेसे कुछ अमोनिया प्राप्त होसकता है—

नो$_2$ + ३उ$_2$ = २नोउ$_3$
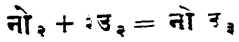
(२) जब खटिक कर्बिद, खक$_2$ को ११०० तक गरम करके नोषजन प्रवाहित किया जाता है तो खटिक श्यामामिद (Calcium Cyanamide) खकनो$_2$ प्राप्त होता है—

खक$_2$ + नो$_2$ = खकनो$_2$ + क
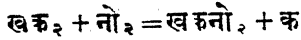
खटिकश्यामामिद जल वाष्पके संसर्गसे अमोनिया देता है।

खकनो$_2$ + ३उ$_2$ओ = खकओ$_3$ + २नोउ$_3$
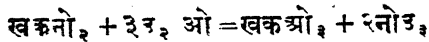
(३) प्रयोगशालामें अमोनिया नौसादर नोउ$_4$ह अथवा अमोनियम गन्धेतको शुष्क बुझेहुए चूनेके साथ गरम करके बनायी जाती है—

२नोउ$_4$ह + ख(ओउ)$_2$ = खह$_2$ + २नोउ$_3$ + २उ$_2$ओ
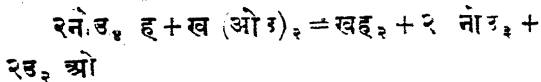
अमोनिया गैस जलमें घुलनशील है अतः इसे पारदके ऊपर इकट्ठा करना चाहिये। अमोनिया वायु की अपेक्षा हल्की होती है अतः बहक नलीपर गैस का बेलन उलटा रखकर बेलनमें यह भरी जा सकती है। भीगा लाल द्योतक पत्र बेलनके मुंहके पास लाकर रखनेसे यदि नीला हो जाय तो समझना चाहिये कि बेलन गैससे भर गया है। अथवा उदहरिकाम्ल की कुछ बूंदे काँचकी छड़में लगाकर मुंहके पास रखिये। यदि अमोनियम हरिद की श्वेतवाष्पें निकलने लगें तो समझ लीजिये कि बेलन अमोनिया से भर गया है।

(४) किसीभी अमोनियम लवणको सैन्धक उदौषिद या पांशुजउदौषिदके घोलके साथ गरम करनेसे अमोनिया निकलने लगेगी।

(नोउ$_4$)$_2$ गओ$_4$ + २सैओउ = सै$_2$गओ$_4$ + २नोउ$_3$ + २उ$_2$ओ

अमोनियम गन्धेत
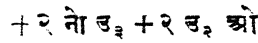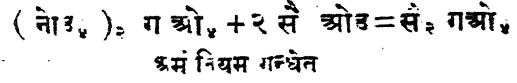
अमोनिया के गुण—यह वायुसे हल्की नीरंग गैस है वायुकी अपेक्षा इसका घनत्व ०.५९६७१ है। प्रतिलीटर भार ०.७७० ग्राम होता है। इसमें विचित्र तीव्र गन्ध होती है। यदि स्वच्छ अमोनिया जोरसे सूंघली जाय या द्रव अमोनिया पी ली जाय तो मृत्यु तक हो सकती है। पर जलमें इसका हल्का घोल सूंघना अच्छा मालूम होता है और जुकाम आदिके अवसरों पर ऐसा करना लाभकर है।

यह जलमें बहुत घुलनशील है। ७६० स० म० दबाव पर एक आयतन जलमें ०° श पर ११४८ आयतन, और २०° श पर ७४१ आयतन घुलनशील है। यह घोल क्षारीय है अर्थात् लाल द्योतकपत्र को नीला कर देता है। जलमें घुलकर यह अमोनियम-उदौषिद में परिणत होजाता है।

नोउ$_3$ + उ$_2$ओ = नोउ$_4$ओउ = नोउ$_4^+$ + ओउ$^-$
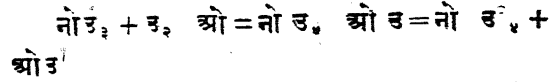
यह मद्यमें भी घुलनशील है। ०° श पर लीटर मद्यमें १३० ग्राम अमोनिया घुलनशील है।

अमोनिया ठंढ अथवा दबाव द्वारा सुगमतासे द्रवीभूत की जासकती है। द्रव अमोनिया नीरंग पदार्थ है जिसका क्वथनांक-३३.४° है, यह ७७.७° पर बर्फके समान ठोस होजाता है। इसका विपुल तापक्रम १३२.५° और विपुल दबाव ११२.३० वातावरण है। बर्फ और रवेदार खटिक हरिदके मिश्रणि द्वारा ठंडा करनेके यह द्रवीभूत होजाती है। व्यापारिकमात्रामें तैयार करनेके लिये इसे इस्पातकी नलिकाओंमें अधिक दबाव पर पानीद्वारा ठंडा करके द्रव

कर लेते हैं। २५ ५०, अथवा १०० पौंड अमोनिया (अनार्द्र) के पीपे बाजारमें बेचनेके लिये भेजदिये जाते हैं।

अमोनिया द्वारा बर्फ बनाना—यह साधारण सी बात है कि जब भाप पानीमें परिणत होती है तो बहुत सा ताप जो इसे वाय्व्यावस्था में रखने के लिये आवश्यक था मुक्त हो जाता है और इसी प्रकार जब पानी भाप में परिणत होता है तो ताप अभिशोषित होता है यह बात पानी और भाप के लिये ही नहीं है। कोई भी गैस जब द्रव होगी तो ताप मुक्त होगा और जब कोई द्रव गैस होगा तो अभिशोषित होगा। इस सिद्धान्तके आधारपर अमोनिया द्वारा बर्फ जमाने की विधि निकालीगई है। इसकामके लिये लोहेके दो बर्तनोंकी अवश्यकता होती है जो परस्परमें लोहेकी नालिकासे संयुक्त रहते हैं। इनमेंसे एकमें ०° श पर अमोनिया द्वारा संपृक्त जल घोल रक्खा जाताहै। सम्पूर्ण यन्त्र पूर्णत: बन्द कर दिया जाता है। कहीं भी वायु प्रवेशके लिये एकभी छिद्र नहीं रहता है। यदि बर्फ बनाने की जरूरत हो तो दूसरे बर्तनके भीतर जो खोखला है पानी भरो। इस बर्तन को पानीसे भरे हुए एक टब में डुबोदो। इस यन्त्रको स्रवण करनेका यन्त्र समझा जा सकता है पहले बर्तनको भभका मानलो, नलीको वाहक नली और दूसरे बर्तन को संचक। भभकाको गरम करो। ऐसा करनेसे घोलमेंसे अमोनिया उठेगा और यह संचकमें जाकर इकट्ठा होने लगेगा। धीरे धीरे संचक में अमोनियाका दबाव १० वातावरणके लगभग हो जायगा, इस दबाव पर गैस अमोनिया द्रव हो जायगा जो खोखले संचकमें इकट्ठा हो जायगा। जैसे ही भभके का जल घोल गरम हो जाय दोनों बर्तनों का स्थान परिवर्तन कर दिया जाता है। भभके को ठंडे पानीमें रखदेते हैं, और संचकको हवामें फलालेन से ढककर रखते हैं। ठंडे पानीमें अब फिर अमोनिया अभिशोषित होने लगता है और इसीलिये संचकका द्रव अमोनिया वाष्पीभूत होने लगता है। इसवाष्पीभूतहोनेमें इतना ताप अभिशोषित होताहै कि संचकके अन्दर भरे हुए पानीको भी अपना ताप देदेना पड़ता है और पानी बरफ बन जाता है। व्यापारिक मात्रामें इस विधिका उपयोग करनेके लिये जलमें अमोनियाका संपृक्त घोल बनाना अधिक उपयोगी नहीं होता है। अधिक दबाव द्वारा अमोनिया द्रव कर लिया जाता है और इसके उपयोगसे कई मन पानी थोड़ेसे ही व्ययमें बर्फ बना लिया जाता है।

अमोनियाका संगठन—(१) यदि अमोनिया गैसको आयतन मापक (eudiometer) में भर कर विद्युत् संचार करें तो ज्ञात होगा कि ऐसा करनेके उपरान्त इसका आयतन दुगुना हो गया है। अब ओषजन मिलाकर इसमें फिर विद्युतसंचार किया जाय या दोनोंके मिश्रणको २००° श तक गरम किये गये पैलादम पर प्रवाहित किया जाय तो जल बनता है और आयतनकी कमीका दो तिहाई उद्जनके आयतन के बराबर है। निम्न अंकोंसे यह स्पष्ट है:—

अमोनियाका आयतन=२० घ. शम.
विद्युत् संचारके बाद गैसका आयतन=४० घ. शम.
ओषजन मिलानेपर आयतन=१५७·५ ”
फिर विद्युत् संचारके आयतन=११२·५ ”
∴ ओषजन मिलानेकेबाद विद्युत् संचार करनेपर आयतनमें कमी=(१५८·५—११२·५)=४५ घ. शम.
∴ उद्जन का आयतन = ४५ × २/३ = ३० घ. शम.
∴ नोषजन का आयतन=४०—३०=१० ”

अतः १ आयतन नोषजन और तीन आयतन उद्जन मिलकर २ आयतन अमोनिया बनाते हैं।

नो₂ + ३ उ₂ = २ नोउ₃

१ आयतन ३ आय. २ आय.

इस प्रकार अमोनियाका सूत्र नोउ₃ है।
अमोनिया का सूत्र नो उ₃ है।

(२) इस संगठनके निकालनेकी एक विधि इस प्रकार है। एक लम्ब नली लो जो एक ओर बन्द हो और दूसरे सिरेके कुछ नीचे एक पेंच लगा हो। पेंचके नीचेके नलीके भागको रबरकी

चूड़ियों द्वारा ३ बराबर भागमें विभक्त करदो और इसमें हरिन गैस भरदो। पेंचके ऊपरके नलीके भाग केदो तिहाई में अमोनियाका संपृक्त घोल भर दो। पेंचघुमा कर बून्द बून्द करके अमोनियाको हरिन् गैसमें टपकाओ। प्रत्येक बूंदके पड़ते ही पीत—हरी ज्वाला दिखाई पड़ेगी और अमोनियम हरिद की श्वेत बाष्पें दिखाई पड़ेंगी, क्योंकि प्रक्रिया निम्न प्रकार होरही है।

पेंच
१
२
३

$$२ नोउ_३ + ३ह_२ = ६ उह + नो_२$$

$$उह + नोउ_३ = नो उ_४ ह$$
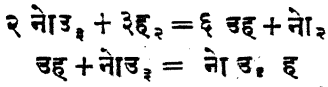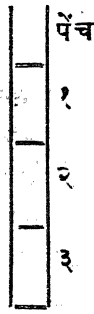
जब सब हरिन् समाप्त होजाय तो थोड़ासा हलका गन्धकाम्ल छोड़ दो जिससे अवशिष्ट अमोनिया अलग हो जाय।

एक बड़े पीपेमें पानी भर कर नलीको ठंडा कर लो और पेंचको खोलकर नलीको पानीके बर्तनमें उल्टा खड़ा कर दो। नलीके भीतर पानी घुसने लगेगा। नलीके तीन भागमेंसे २ भाग तक पानी आजायेगा केवल एक भाग नोषजन गैससे भरा रह जायगा।

३ भाग हरिन् ३ भाग उद्जनसे संयुक्त होकर उद्हरिकाम्ल बनाता है। १ भाग नोषजन अन्तमें अवशिष्ट रह गया है। इससे स्पष्ट है कि अमोनियामें एक भाग नोषजनके साथ ३ भाग उद्जन मिला होगा और यही ३ भाग उद्जन ३ भाग हरिन् से संयुक्त होकर उद्हरिकाम्ल बन गया है। अतः अमोनिया का सूत्र नोउ₃ है।

वाष्प घनत्व निकालकर इस सूत्रकी पूर्णतः सिद्धि होजाती है। अमोनिया का उद्जनकी अपेक्षा ८·५ घनत्व है अतः २२·४ लीटर अमोनिया का भार २×८·५=१७ ग्राम होगा। क्योंकि अमोनिया में आधा भाग नोषजन और १½ भाग उद्जन है अतः इसमें ११·२ लीटर नोषजन हुआ जिसका भार १४ ग्राम हुआ और ३३.६ उद्जन है जिसका भार ३ ग्राम हुआ। अतः अमोनिया के एक अणुमें १ परमाणु नोषजन का और ३ परमाणु उद्जन के हैं।

अमोनियाके लवण—हम कह चुके हैं कि अमोनियाका जलमें घोल क्षारीय होता है। जलके संसर्गमें अमोनियाका रूप नो उ₄ ओ उ हो जाता है:—

$$नो उ_३ + उ_२ ओ = नो उ_४ ओ उ$$

$$—नो उ_४^{\circ} + ओ उ'$$
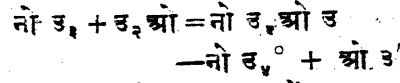
इसे अमोनियम उदौषिद कहते हैं। जिस प्रकार पांशुज उदौषिद पां ओउ, या सैन्धक उदौषिद, सै ओउ, होते हैं उसी प्रकार इसे भी समझना चाहिये। भेद केवल इतना है कि सैन्धकम् से, तो उदौषील मूल ओउ, से अलग पृथक करके सैन्धकम् धातु, स, दे सकता है पर अमोनियम् उदौषिद, नो उ₄ ओउ में से-ओउ मूल पृथक् करने पर जो नो उ₄-मूल शेष रहा वह कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। नो उ₄ को अमोनिय मूल कहते हैं। जिस प्रकार सैन्धकम्के लवण होते हैं वैसे ही अमोनियम के भी लवण होते हैं।

सैन्धक हरिद, सैह	अमोनियम हरिद, नोउ₄ह
,, गन्धेत, उ₂ गओ₄	,, गन्धेत (नो उ₄)₂गओ₄
,, नोषेत, सै नो ओ₃	,, नोषेत, नो उ₄नो ओ₃

सैन्धक उदौषिद जब उद्हरिकाम्ल से प्रक्रिया करके सैन्धक हरिद बनाता है तो जलका एक अणु पृथक् होजाता है—

$$सै ओ उ + उह = सैह + उ_२ ओ$$
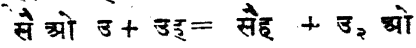
पर अमोनिया, नोउ₃, जब उद्हरिकाम्ल से संयुक्त होगा तो युक्त-यौगिक बनेगा जल का अणु पृथक् न होगा

$$नो उ_३ + उह = नोउ_३ उह$$

$$= नोउ_४ ह$$
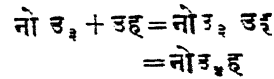
(अमोनियम हरिद)

इसी प्रकार गन्धकाम्ल से संयुक्त होकर यह युक्त यौगिक अमोनियम गन्धेत देगा—

$$२ नोउ_३ + उ_२ गओ_४ = (नो उ_३)_२ . उ_२ गओ_४$$

$$= (नोउ_४)_२ गओ_४$$
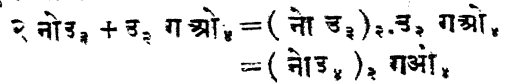
अमोनियम हरिद—यह उदहरिकाम्ल के घोलके अमोनियासे शिथिल करके वाष्पीभूत करके बनाया जासकता है। प्रकृतिमें अमोनियम गन्धेत अधिक पाया जाता है। इसे नमक अर्थात् सैन्धक हरिद के घोलके साथ उबालने से भी अमोनियम हरिद बनाया जा सकता है;

(नोउ$_४$)$_२$ गओ$_४$ + २सैह = २नोउ$_४$ह + सै$_२$गओ$_४$

सैन्धक गन्धेत रवा बनाकर पहले अलग हो जाता है और फिर अधिक ठंढा होने पर अमोनियम हरिद के रवे बन जाते हैं। यह श्वेतरंग का रवेदार पदार्थ है। यह जलमें भलीप्रकार घुलनशील है और घुलने पर पानी को ठंढा कर देता है। मद्यमें बहुत कम घुलता है। गरम करने पर इसकी वाष्पें नोउ$_३$ और उह में विभाजित हो जाती हैं।

अमोनियम गन्धिद—(नोउ$_४$)$_२$ ग—यदि अमोनिया गैस और उदजन गन्धिद उ$_२$ग गैस के उपयुक्त मिश्रण को ठंढा किया जाय तो अमोनियम गन्धिदके रवे बन जायंगे। अमोनियम के कई प्रकार के गन्धिद उपलब्ध होते हैं।

अमोनियम गन्धेत, (नोउ$_४$)$_२$ गओ$_४$-अमोनिया और गन्धकाम्लसे तो यह बनवाही जा सकता है पर इससे भी उपयोगी विधि इस प्रकार है- खटिक गन्धेत के घोलमें अमोनिया अभिशोषित कराते हैं और फिर कर्बनद्विओषिद प्रवाहित कर देते हैं जिससे खटिक कर्बनेत अवक्षेपित हो जाता है, अमोनियम गन्धेत घोल में रह जाता है जिसे छान कर गरम करके रवोंमें परिणत कर लेते हैं:—

खगओ$_४$ + २नोउ$_३$ + कओ$_२$ + उ$_२$ओ
= खकओ$_३$ + (नोउ$_४$)$_२$ गओ$_४$

यह भी श्वेत रवेदार पदार्थ है।

अमोनियम नोषेत-नोउ$_४$नोओ$_३$ -- नोषिकाम्ल और अमोनिया गैस से बनाया जा सकता है। अमोनियम गन्धेत और सैन्धक नोषेत के संसर्ग से भी प्राप्त होसकता है-

(नोउ$_४$)$_२$गओ$_४$ + २ सैनोओ$_३$ = २नोउ$_४$नोओ$_३$ + सै$_२$ गओ$_४$

अमोनियम कर्बनेत. (नोउ$_४$)$_२$ कओ$_३$—२भाग खड़िया, और १ भाग नौसादर, नोउ$_४$ह के मिश्रण का लोहे के भभकों में ऊर्ध्वपतन (Sublimation) करके सीसम् धातु के संचकोंमें इसे इकट्ठा किया जासकता है—

२नोउ$_४$ह + खकओ$_३$ = (नोउ$_४$)$_२$कओ$_३$ + खह$_२$

—:o:—

वैज्ञानिकीय सामर्थ्य में भार है

Energy has mass

सापेक्षावाद सिद्धान्तके पहले यह माना जाता था कि किसी चीजके भार और उसकी गति में कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु सापेक्षावादका सिद्धान्त यह कहता है कि किसी पदार्थ का भार उसकी गति (velocity) के अनुसार बदलता है ज्यों ज्यों गति बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसका भार भी बढ़ता जाता है यहाँ तक कि यदि उसकी गति रोशनीकी गति (१८६००० मील फी सेकण्ड) के बराबर हो जावे तो उसका भार अनन्त हो जावेगा यह बात हमको पहिले इस कारणसे नहीं मालूम हुई थी कि पृथ्वी पर जो गतिएं हम जानते हैं वे रोशनीकी गतिके सामने कुछ भी नहीं हैं alpha और beta कणोंकी गति रोशनीके गतिके मुक़ाबिलेकी है और जब ये कण मालूम हो गये तब यह बात भी मालूम हो गई।

यदि म एक स्थिर विद्युतकण का भार है तो १.१५ म उसका भार रोशनीकी आधी चाल पर होगा, २.३ म, $\frac{९}{१०}$ पर, ७ म, $\frac{९९}{१००}$ पर और रोशनी की चाल पर अनन्त होगा, इससे यह सिद्ध

होता है कि सामर्थ्य में भी भार होता है यह साबित हो सकता है कि सामर्थ्य में घूर्ण होता है और घूर्ण रखनेके गुणको भार कहते हैं वास्तव में किसी पदार्थ के भारको नापनेका अर्थ उसकी सारी सामर्थ्य नापनेका है प्रकृतिके एक छोटेसे टुकड़ेमें बड़ी भारी सामर्थ्य भरी है अगर वह गतिमान् हो जाता है तो उसका भार गतिके कारण बढ़ जाता है परन्तु यह बढ़ती बहुतही कम होती है जिसको कि साधारण तौर पर मालूम नहीं कर सकते। रासायनिक क्रियाओंमें प्रायः गर्मी निकला करती है सो इस सिद्धान्तके अनुसार जो यौगिक बना है उसका भार कुछ कम हो जाता है यह कमी इतनी तुच्छ होती है कि आम तौर पर इसको नाप नहीं सकते इसी वजह-से मात्रा की नियतताकी सत्यतामें साधारणतया कोई विशेष विकार नहीं आताहै फिरभी एक मिसाल ऐसी है जिसमें यह कमी मालूम हो जाती है। हिमजनका धन केन्द्र चार उदजन केन्द्रों और दो ऋणविद्युत्कणसे बनाहै और स्थायी भी बहुत ही ज्यादा है इसकी स्थिरतासे यह बात ज़ाहिर होती है कि इसके बननेमें बहुत ज्यादा सामर्थ्यका विकास हुआ करता है ताकि इसको छिन्न भिन्न करनेमें बड़ी भारी शक्तिकी आवश्यकता पड़गी। हिमजनका परमाणु-भार ४ हैं और उदजनका १.००८ है। १.००८का चार गुना ४.०३२ होता है सो ०.०३२का अन्तर आता है इसका उत्तर यह दिया जाता है कि चार उदजन धनकेन्द्रके मिलनेसे जो एक हिमजन धनकेन्द्र बनता है उसमें जो सामर्थ्य निकलती है उसका भार ०.०३२ है यह नम्बर देखनेमें तो बहुत छोटा मालूम होता है परन्तु एक मामूली रासायनिक क्रियाके सामर्थ्यके ६२० लाख गुनाके बराबर है।

आज कलके वैज्ञानिक इस अनुसन्धानमें लगे हैं कि इस परमाणुविकसामर्थ्यसे किन तरह फ़ायदा उठावें यह हमको मालूमही है कि पानीकी भाप और बिजलीकी शक्ति द्वारा जो आजकल कार्य्य हो रहे हैं वे जानवरोंकी शक्तिसे जो कार्य्य होते थे उनके मुक़ाबिलेमें कितने आश्चर्य जनक हैं देहलीसे लेकर कलकत्ता २२ घंटोंमें पहुँच जाते हैं यदि बैलगाड़ी-पर सवार होते तो न मालूम कितने दिन लग जाते और अब एक आदमीको १५ या १६ रुपया किराया का देना पड़ता है यदि परमाणविक सामर्थ्यको मनुष्य ने क़ाबूमें कर लिया तो समयभी बहुत बच जावेगा और रुपयेमें तो इतनी किफ़ायत होगी कि शायद एक आदमीको केवल चार पैसेही देने पड़ें। ईश्वरसे यही प्रार्थना है कि वह दिवस शीघ्रही लावे।

[शंकर लाल जिंदल एम० एस-सी०]

पांच तत्व।

हिन्दू ऋषियों ने पाँच तत्वोंको माना था जिनसे कि सारी सृष्टि बनी है उनके नाम आकाश, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी हैं। यूनान वाले केवल चारही तत्व मानते थे—उन्होंने आकाशको सम्मिलित नहीं किया था—उन लोगोंने इन तत्वों की बाबत हिन्दुओंसे ही सीखा था—यूनानके विद्वानोंके अनुसार चार तत्वोंके गुण नीचे लिखे जाते हैं:—

अर्थात् जल गीला और शीतल होता है, वायु गीली और गर्म होती है, अग्नि गर्म और शुष्क होती है और पृथ्वी शीतल और शुष्क होती है।

यह सिद्धांत तब ही तक चलता रहा जब तककि यह न मालूम हुवा कि पानी ओषजन और उदजन के मिलनेसे बनता है, हवामें ओषजन और नोषजन हैं, पृथ्वी भी कई वस्तुओंके मिलनेसे बनी है और अग्नि सामर्थ्य (energy) का रूप है, अब इस

सिद्धन्त को कोईभी आधुनिक वैज्ञानिक नहीं मानता है, एक बात और यह है कि हिन्दू लोग आकाशका गुण शब्द मानते थे परन्तु यह भलीभाँति मालूम है कि शब्द वायुके द्वारा चलता है।

जहाँतक मालूम होता है प्राचीन विद्वान् तत्वका वह अर्थ नहीं मानते थे जोकि आजकल के विद्वान मानते हैं:—

पृथ्वीसे उनका आशय सारे ठोसपदार्थों (solids) का, जलसे सारे द्रवों (liquids) का, वायुसे सारी वायव्यों (gases) का और अग्नि से सामर्थ्य (energy) का था। कुछ लोगोंका यह भी विचार है कि मात्रा (matter) के विशेष गुणों को इन चार तत्वोंके द्वारा प्रकाशित करते थे जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं।

राबर्टबायलने सबसे पहिले तत्वकी आधुनिक परिभाषा की—उसके अनुसार तत्व वह है जिससे और पदार्थ बनें परन्तु वह किसी से न बनें अर्थात् उससे दो वा अधिक भिन्न पदार्थ प्राप्त नहीं कर सकते:—

इस प्रकार वैज्ञानिकोंने लगभग ६० तत्व मालूम किये जिससेकि सृष्टिके सारे पदार्थ बने हैं परन्तु रेडियोशक्ति (Radioactivity) की खोजके पश्चात् यह मालूम हुआकि एक तत्व दूसरे तत्वमें तबदील हो जाता है और बहुत कुछ अनुसन्धान करनेपर अब यह निश्चय हुआ है कि सारे तत्व केवल विद्युत्-ऋणकण और धनकण के भिन्न भिन्न सम्बन्धोंके द्वारा बने हैं।

कुछ वैज्ञानिक यह भी कल्पना करते हैं कि विद्युत ऋणकण और धनकण भी आकाश (ether) से बने हैं सारांश यह है। कि सारी वस्तुएं जोकि हम सृष्टिमें देखते हैं केवल एकही वस्तुसे बनी हैं। यही विचार हम हिन्दु ऋषियों का पाते हैं। प्रकृति शब्द उसी एकहा वस्तुका नाम है जैनी लोग उसको पुद्गल कहते हैं।

अंतर इतना है कि हिन्दुओंके अनुसार प्रकृतिसे सृष्टिके आरम्भमें पहिले आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पाँच महा तत्व बनते हैं और इन पाँच के भिन्न भिन्न संबन्धोंसे सारे पदार्थ जोकि हम देखते हैं बनते हैं और आजकल के विद्वानोंके अनुसार पहिले विद्युत्-ऋणकण और धनकण तब उनसे तत्व और फिर पदार्थ बनते हैं।

(श्री शङ्करलाल जिंदल M. Sc.)

कच्चेफलों के पकाने का कृत्रिम उपाय

डाक्टर हार्वे ने मालूम किया है कि (उवलीलिन) ethylene या (अग्रीलिन) propylene गैसके प्रयोगसे कच्चे फल उसी प्रकारसे पक जाते हैं जैसे कि वे पेड़ पर सूर्य्यकी गर्मीसे पकते हैं। उन्होने गर्म और सामान्य जलवायु वाले देशोंके लगभग सब ही फलोंको पका कर अनुभव किया है। इस बातसे यह लाभ होगा कि ठंडे देशोंको गर्म देश वाले कच्चे फल भेज दिया करेंगे और वहाँ पर इस गैसके द्वारा इनको पकाया जावेगा उनको इन फलोंमें उतना ही आनन्द आवेगा जितना कि गर्म देश वालोंको पके फल खानेमें अपने ही देशमें आता है एक और लाभ यह होगा कि पक्के फल भेजने में रास्तेमें बहुत ज्यादा सड़ जाया करते थे परन्तु अब कच्चे फल भेजनेसे इतनी खराबी न होगी। उवलीलिन (ethylene) गैस ही अधिकतर प्रयोगमें लाई जाया करेगी कारण कि अग्रीलिन (propylene) जोकि उससे ज्यादा तेज़ है और अच्छा स्वाद भी पैदा करती है व्यापारिक मात्रामें नहीं बनाई जाती है। सिरकीलिन (Acetylene) जोकि बहुत आसानोसे बन सकती है एक विषैली वस्तु है और इसमें गंधभी बहुत ही बुरी होती है उवलीलिन (propylene) में न तो कोई बदबू है और न यह विषैली है।

पकाने के लिए एक कमरेकी आवश्यकता है जो इस प्रकार बना हो कि उसमें से कहींसे भी गैस

निकलने न पावे इस कमरेमें कच्चे फल रख दिये जावेंगे और उसका तापक्रम ६५ से ७० डिगरी फैरनहीट होना चाहिए, कच्चे से कच्चे फल इस क्रिया द्वारा केवल ४८ घण्टेमें पककर तैयार हो जावेंगे यह गैस फलोंकी अधिक खटाईको भी दूर करनेके काममेंलाई जासकती है।

बहुत ही कच्चे टमाटर जिनका व्यास केवल एक ही इन्च हो इस गैस द्वारा ६ या ७ दिनमें पकाये जा सकते हैं और बड़े टमाटर तो २४ से ६० घण्टों तकमें पक कर तैय्यार हो जाते हैं जो टमाटर इस तरह पकाए गये उनका स्वाद स्वयं पके हुओंसे अधिक अच्छा था।

इस अविष्कारसे हम देखते हैं कि समय की और धन की बचत होती है और स्वाद भी स्वयं पके हुए फलोंसे कहीं अच्छा होता है।

[श्री शंकरलाल जिंदल, एम. एस-सी.]

योरुप की यात्रा वाण द्वारा

आविष्कारकका कहना है कि ऐसे वायुयान द्वारा अमरीका से पेरिस ६० मिनट में पहुँच सकते हैं।

इस विस्मयजनक वस्तुके आविष्कारक जर्मनीके प्रसिद्ध उड़ाके ज्योतिषी मैक्स वैलियर (Max Valier हैं। इनका कथन है कि ऐसे वायुयान जिसमें दोनों परों पर वाण (आतशबाजी) लगे हों और जो मशीन द्वारा न चले परन्तु उन वाणोंकी शक्ति द्वारा, हवामें उड़े, जिनमें कि बारूद भरी हो, यात्रियों सहित ऐटलाण्टिक महासागर (Atlantic ocean) को इतने थोड़े समयमें पार कर सकता है। उन्होंने ऐसा हवाई जहाज बनाया है और उनका विश्वास है कि वह वायुमें ५० मील ऊँचे तक चढ़ सकेगा जहां पर कि उसकी चाल १ मील प्रति सैकेंड होगी इस वायुयान का रूप सिगार का सा है जिसके दोनों तरफ एक एक बाण लगा है यात्री सिगार रूपी हिस्सेके बीचमें बैठते हैं।

समुद्र पार करने के लिये—आविष्कारकके कथनानुसार आपको सिगार रूपी हिस्सेके बीचमें बैठना होगा जिसमें कि यात्री व असबाब रखनेकी जगह है और मशीन भी लगे है जोकि इस आश्चर्य जनक जहाज़ को काबूमें रखती हैं।

जहाज़ को चलानेके लिये उड़ाका एक पुरजेको केवल ज़रा सा हिला देगा और बातकी बातमें वह विशाल वायुयान सीधा ऊपरकी ओर उड़कर ५० मील पृथ्वीसे ऊपर वायुमें पहुँच जायगा। जहां पर कि उड़ाका अब उसको सीधा चलाने लगेगा। इस स्थान पर अब यान पूर्ण चाल पर चलाया जा सकता है क्योंकि यहां परअब वायु इतनी अधिकतेज़ी चलतीहै कि उसके जलनेका भय नहीं। केवल सवा घंटेके उपरान्त ही वायुयान पेरिसनगरके ऊपर पहुँच जायगा जहाँ पर अब उसको मशीन द्वारा धीरे धीरे पृथ्वी पर सावधानीसे उतार लेंगे। शायद रास्तेमें १ जगह सामग्री लेनेके लिये वायुयान को पृथ्वी पर उतरना पड़ेगा।

आविष्कारक का कथन है कि ऐसा वायुयान यात्रियोंके अतिरिक्त आपने से तीन गुणी भारी जलानेकी सामग्री भी रख सकता है।

परन्तु बारूद जो बाणोंमें प्रायः काममें लाई जाती है बहुत भारी होती है। हाल ही में इस बातका भी आविष्कार हुआ है कि बाणोंमें (fluids) भी काममें लाये जा सकते हैं; जिसके लिये एक नये प्रकार के (दाहक विधान) (Ignition system) की जरूरत पड़ती है। आविष्कारक का कहना है कि द्रव ओषजन तथा उद्जन अत्यन्त दबाव पर भी काममें लाई जा सकती हैं और जिससे काफी चाल भी हो सकती है। क्योंकि जब यह दोनों गैसें आपसमें मिलती है तो बड़े जोर का धमाका होता है जिससे कि वायुयान तुरन्त ही ऊपर को उठने लगता है। आशाकी जाती है कि यह दोनों गैसें पानीके रूपमें पूर्ण रूपसे काम दे जाँयगी।

उड़ाका मशीनों द्वारा अपनी इच्छानुसार जब चाहेगा बाणों को चला सकेगा और जब चाहेगा रोक सकेगा। इसमें एक यंत्र ऐसा होगा जो कि दिशा बत-

लायेगा और यान को अधिक ऊंचे जानेसे रोकेगा।

उनका कहना है कि पहले इसके कि मनुष्य पूरे आकारके वायुयानमें उड़कर अपनी जान खतरेमें डाले, इस बातकी सत्यता देख लेना आवश्यक है कि मनुष्य ऐसे यंत्र द्वारा यानको बसमें कर भी सकता है या नहीं। और यदि इस प्रकारके कार्यमें वह उत्तीर्ण होंगे तो बाणवाले वायुयान शीघ्र ही बनाये जायंगे।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि इस यान की चाल ८ मील प्रति सैकेंड हो जाय तो वह पृथ्वीके आकर्षण केंद्र (earths gravity) के बाहर हो जायगा और चन्द्रमाकी ओर यात्रा करने लगेगा। पर इस स्थान पर एक नया प्रश्न उत्पन्न होता है—क्या मनुष्य पृथ्वीकी आकर्षण केन्द्रकी शक्तिके बाहर जीवित रह सकता है ?

केवल पृथ्वीके ऊपर ही चढ़नेमें वायुको मोड़ तथा घुमाव पर सावधानीके साथ चलाना पड़ेगा। पिछली वायुयानोंकी दौड़में ऐसा देखा गया था कि मोड़ तथा घुमावपर उड़ाके बेहोश होगये थे। परन्तु यानकी अपनी शक्तिके अन्दर रखना मनुष्य की योग्यताके बाहर नहीं है।

श्री चन्द्रमोहन शर्मा विद्यार्थी

—:०:—

मेडेम क्यूरी।

[लेखक श्री कुञ्जविहारी मोहनलाल बी० एस-सी०]

सा मनुष्य शायदही कोई होगा जिसने रेडियम का नाम न सुना हो। रेडियमकी घड़ियाँ तो भारतवर्ष में भी बहुत प्रचलित हो गई हैं। रेडियम के विज्ञानने वैज्ञानिकोंमें भारी हलचल करदी थी और उनके बिचारोंमें अनेक बड़े परिवर्तन कर दिये हैं—पहले यह माना जाता था कि अणु (atom) के टुकड़े नहीं हो सकते और एक तत्व (element) दूसरे तत्व (element) में नहीं बदल सकता है—पर रेडियमके निकलने पर इस विषय में खोज होनेपर यह मालूम हुआ कि रेडियम जोकि एक तत्व है आपही आप बदल कर दूसरा तत्व बनता है। और यह तत्वभी चारही दिवसके उपरान्त बदल जाता है—इस तरह कुछ और तत्वोंके बाद ये मामूली सीसा बन जाता है इस तरहके परिवर्तनमें रेडियम के परमाणु (atom) के टुकड़े हो जाते हैं और उसमेंसे तीन प्रकार की किरणें निकलती हैं—एक किरण तो मामूली एक्स रशिम (X-rays) सी होती है, दूसरी बिजलीके कणों एक्स रशिम के समूह जो बहुतही तेज चालसे चलते हैं और तीसरी हिमजन (Helium) गैसके (charged) बिजलीमय कणों का समूह—यहभी बड़े शीघ्रगामी होते हैं—इन सबसे परमाणु (atom) के भीतर का भी रहस्य खुला है—

इस रेडियमको संसारसे परिचित करानेवाली एक स्त्री है—उनका नाम है मेरि स्क्लोडाउस्का क्यूरी। इसका जन्म पोलेण्ड देशकी राजधानी वारसा नगरमें ७ नवम्बर १८६७ में हुआ। इनके पिता डाक्टर स्क्लोडाउस्की वहाँकी पाठशालामें मास्टर थे। इनकी माताका स्वर्गवास इनकी बाल्यावस्थाही में हो गया जिससे भाइयोंकी देखभाल इन्हीं पर पड़ी। इनके पिताकी विज्ञानमें बहुतही रुचि थी और इस विषयको अति रुचिसे पढ़ाते-वे विद्यार्थियोंको प्रयोग दिखाना अत्यन्त आवश्यक समझते थे-पर उनका हेडमास्टर इसको बच्चोंका खेल समझता था और यंत्रोके लिये रुपया भी नहीं देता था पर डाक्टर स्क्लोडाउस्की इसतरह काम करनेवाले नहीं थे। वे अपने पाससे रुपया लगा कर यन्त्रोंको लाते व कक्षामें प्रयोगोंको दिखाते थे। वे मामूली हैसियत के आदमीथे—वह यन्त्रोंको साफ करने व रखनेको शायद नौकर नहीं रखसकते थे। मेरि वहाँ रोज जाया करती थीं-इनको उन्होंने यह कार्य्य सौंपा, यह उनको बड़ी अच्छी तरह साफ करतीं। पिताका ख्याल था कि जैसे लड़कियाँ गुड़योंको ठीक

साफ रखनेमें बड़ी रुचि लेती हैं उसी तरह यहाँभी यह उनको यहीखेल समझेंगी- पर उनको यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि मेरि इन बातोंके समझनेकी कोशिश करती है और उसको इस विषयमें बड़ी रुचिहै । फिर उन्होंने उसको उचित रीतिसे पढ़ाना शुरू किया। स्कूल जानेपर भी यह क्रम जारी रहा और इसतरह पर उनको विज्ञानकी शिक्षा मिलती रही।

पोलेण्डका देश उनदिनोंमें रूसके आधीन था। जारकी यह पालिसी थी कि पोलेण्डकी सभ्यता की सारी बातें नष्टकर दी जायं । जिससे इसके फिर कभी स्वतन्त्र होनेकी सम्भावना न रहे स्कूलोंमें पोलेण्डकी भाषा बन्द करदी गई-राष्ट्रीय गान व कलाकी मनाई हो गई पर ऐसी पालिसी का फल यह हुआ कि वहाँ के मनुष्योंके हृदयमें राष्ट्रीय प्रेम जाग्रित हो उठा। लोग देशी चीजोंको अपनाने लगे और उनपर प्राण तक न्योछावर करनेको उतारू होगये राष्ट्रीय संगीत व कलाका हर जगह प्रचार होनेलगा स्कूलमें विद्यार्थी पोलभाषाकी किताबें रूसी भाषा की किताबोंके नीचे रखकर पढ़नेलगे । वारसा पोलिश सभ्यताकी केन्द्रथी। वहाँ ऐसे क्रान्तकारी बहुतथे, मेरिका हृदयभी राष्ट्रीय प्रेमसे भरगया वह और कारावास दंड, तथा मृत्युकी अवहेलना कर क्रान्तकारी दलमें जा मिली । इसदलमें डाक्टर स्क्लाडाउस्कीके बहुतसे विद्यार्थी थे । अभाग्यवश पुलिसको इसदलका पता लगगया उसके नेताओंको देशनिकाला व कारावास हुआ। इस घटनाका परिणाम यह हुआ कि मेरि स्क्लोडाउस्काने वारसा छोड़कर अन्यत्र जानेका विचारकिया। पहले तो उन्होंने क्रेकाओ जानेका विचार किया। क्रेकाओ आस्ट्रियाके आधीनथा, वहाँ इतनी सख्तियाँ नहींथीं, पोलिश भाषा पढ़ानेका निषेध नहींथा। सुनते हैं जब मेरिने वहाँ-पर भौतिक व रसायनकी कक्षामें भरती होनेकी आज्ञा मांगीतो उत्तर मिला कि यह विषय लड़कियोंको नहीं पढ़ायेजाते, उसका नाम खाना पकानेवाले विषयमें लिखसकता है। यह ठीक हो या न हो पर बादमें उन्होंने पैरिस जाना ही उचित समझा।

जब वह पैरिस पहुँची तो वहाँ उसका कोई परिचित नहीं था। उसके पास रुपये की भी बड़ी कमी थी, इससे उन्होंने पैरिस के पूर्वी भाग में जहाँ गरीब आदमी रहते हैं, एक छोटासा कमरा ले लिया वह कमरा चौथी मंजिल पर था। अपना सारा काम आपही करना पड़ता था-भोजन सस्ते से सस्ता होता था। इस तरह इनका प्रतिदिन का खर्चा पाँच आने था-इसके लिये इनको ट्यूशन करना व मास्टान की भट्ठियाँ और शीशियाँ साफ करना पड़ता था।

वह इन छोटेसे तुच्छ कामोंको ऐसी सफाई से करतीं कि वहाँ के दो प्रधान पुरुषोंको इनका विशेष हाल जानने की इच्छा हुई वे थे जैब्रिल लिपमैन और हेन्रि पोंकारे । जैब्रिल लिपमैन भौतिकके प्रसिद्ध प्रोफेसर थे और पोंकारे एक बड़े गणितज्ञ थे। लिपमैन ने इनके पिता को लिखकर मेरिकी देख भाल का भार पियरेक्यूरीको सौंपा। पियरेक्यूरी लिपमैन का शिष्य रह चुका था और लिपमैन उन को बहुत मानते थे। वह उन दिनों School of Industrial Physics and Chemistry भौतिक और रसायन के स्कूल में प्रयोग शाला के प्रधान अध्यक्ष थे—यह पैरिसके एक नामी डाक्टरके छोटे पुत्र थे—१६ वर्षकी अवस्था में भौतिकमें सर्वोच्च परीक्षा पास करके सारबानमें सहायक अध्यापक होनेके बाद शूजनबरगरके नीचे प्रयोग शालाके अध्यक्ष होगये थे— इनके पिताको कभी कभी चिन्ता हो जाती कि अभी इनको आचार्य (D.s.c) पद नहीं मिला—पर उनको ऐसे सांसारिक बातोंकी कोई अभिलाषा न थी—पर उनके हृदयमें यही एक आकांक्षा थी कि उनको ऐसी सहगामिनी मिले जो कि उनकी हृदेश्वरी भी हो और सहायक भी। जो कि उनके विचारोंको समझ कर उनको अपना सके—एक ऐसी सहचरी मिलने की उनको किञ्चित भी आशा नहीं थी— पर जब उन्होने मेरिया स्क्लोडाउस्का को देखा तो उनकी आशायें पूरी हुईं— मिलनेके थोड़े ही दिनों बाद पियरे क्यूरी मेरिके प्रेमपाशमें बंध गये— उन्होंने उस से व्याह का प्रस्ताव किया—

मेरि ने भी उसको मान लिया। उनका ब्याह ८९५ में हुआ उस समय मेरिकी अवस्था २८ सालकी और पियरेकी अवस्था ३६ सालकी थी।

पियरे का स्वभाव कुछ बातों में अपनी स्त्री से मिलता था और कुछ में ऐसा भिन्न था कि उनने इसके जीवन को प्रेममय बना दिया, दोनों की रुचियां एक सी थीं दोनोंही विज्ञान व सत्यके बड़े प्रेमी थे- दोनो एक दूसरेके घरपर व प्रयोगशालामें हरप्रकार सहायता करते थे-कभीकभी घरपर पियरे कूरी झाड़ू लगाते हुए मिलते और मेरि रोटी बनाती हुई-ब्याहके पहले पियरे आदर्श मनुष्य थे। ब्याहके उपरान्त उनके गुण दशगुने बढ़गये ब्याहके तीनसाल बाद मेडमक्यूरीने गणित और भौतिककी परीक्षा Licentiate in Physics &Mathematics बड़ी योग्यता से पास की १८९८ में उनके एक पुत्री हुई-इसका नाम इरीन रक्खा गया-अब उन्होंने प्रान्टसोरिस पार्क के निकट एक घर ले लिया जिसमें वह बड़े आनन्दसे जीवन व्यतीत करनेलगे-संध्या को वह चुने हुए मित्रों से विज्ञान सम्बंधी रोचक विषयों पर वार्तालाप करते-फिजूल की बातों से उनको चिढ़ थी।

१८७९ में सरविलियम क्रुकस ने मालूम किया कि बिजली जब एक (Gas at low Pressure) क्षीण दबावकी वायु में होकर चलती है तो एक प्रकारकी किरणें निकलती हैं—सर जोज़ेफ टामसन ने यह सिद्ध कर दिया कि यह किरणें बिजलीके कणों की हैं—इन कणोंका बोझ उदजन कणका $\frac{1}{1845}$ है—१८९५ में रोनजन ने दिखा दिया कि जब यह किरणें किसी चीज पर पड़ती हैं तो उनमें से (X-rays) एक्स किरणें जिनको अब रोनजन किरण कहते हैं निकलती हैं—इन किरणोंमें मामूली अपार दर्शी वस्तुओं जैसे मांस आदिको पार करने की शक्ति है— १८९६ में बेकरलको एक नयी बात मालूम हुई- वह ऐसी वस्तुओं की परीक्षा कर रहा था जो कि रोशनीमे रखनेके बाद अंधेरेमें रोशनी देती हैं जैसे हीरा—या घड़ीका मसाला। इन वस्तुओमें यूरेनियमके कुछ लवण भीथे—संयोग वश उसने वह लवण और कैमरेके प्लेट साथही छोड़ दिये—सुबहको प्लेट खराब हो गये थी—इस पर उसने अनुसंधान करके पता लगाया कि यूरेनियम के लवणमेंसे भी रोनजन किरण जैसी किरणें निकलती हैं—

इन्ही दिनों मेडेम क्यूरी आचार्य्यकी डिग्रीकी कोशिश कर रहीं थीं— उन्होने सारे तत्व और उनके यौगिकों (Compound) की परीक्षा शुरुकी कि कोई और तो तत्व ऐसी किरणें तो नहीं देता—इन किरणोंमे खास बात है कि वह वायुको विद्युतके प्रवाह योग्य बना देती हैं— इससे यदि कोई बिजली से भरी वस्तु इस हवामें रख दें तो उसकी सारी बिजली बह जाती है—जितनी अधिक किरणें होंगी उतनी ही जल्द बिजली बह जायगी—इस से इस बात का पता लग जाता है कि इसमें ऐसी किरण देने वाली वस्तु कितनी है—जब मेडेम क्यूरी ने पिचब्लेण्ड नामी एक खनिज पदार्थकी परीक्षा की तो मालूम हुआ कि इसमें किरण देने वाली वस्तु का मान उसमें के पिनाकम् (यूरेनियम)से कहीं अधिक है— इससे उन्होंने अनुमान किया कि इसमें कोई ऐसा तत्व है जिसको अभी लोग नहीं जानते और जिसमें ऐसी किरण देनेकी शक्ति पूरे नियमसे भी कहीं अधिक है—उस समय पियरे क्यूरी और विषयमें अनुसंधान कर रहे थे पर अब वह अपनी पत्नीकी सहायता करने लगे—और दम्पति ने उस नये तत्वकी खोज शुरू की। हिसाब लगा कर देखा तो मालूम हुआ कि यह तत्व बहुत ही छोटी मिकदारमें होगा— इससे काफी मिकदार निकलानेको उनको पिचब्लेण्डकी एक बड़ी मिकदारकी आवश्यकता हुई—परउनके पास इतना रुपया कहां कि इतनी मिकदार खरीदे— पर इसी समय उनकी परमात्माने सहायताकी और आस्ट्रियन गवर्नमेन्ट ने उनको एक टन पिच ब्लेण्ड जिसमेंसे यूरेनियम निकाला जा चुका था मुफ्तदे दिया—इससे यह अपना काम शुरू कर सके।

यह काम सचमुच बड़े धैर्य्य व साहस का था— एक तो इसी बातमें बड़ा संदेह था कि कोई नया

मिल चुका है—छोटी ईव को विज्ञानका बड़ा शौक नहीं है। वह कलामें बहुत रुचि रखती है—मेडेम क्यूरी ने एक रेडियम इन्स्टीटूट वारसामें भी बनवा कर अपने प्रगाढ़ स्वदेश प्रेम का परिचय फिर दिया है।

इस प्रकार रेडियम निकालकर मेडेम क्यूरी ने विज्ञान में बिलकुल नया विषय पैदा कर दिया है। इसकी उन्नति आज कल दुनियाके बड़े बड़े मनुष्य कररहे हैं—जितनी उन्नति इस विषयकी इतने समयमें हुई किसी और विषयकी कभी नहीं हुई।

पानी

(गतांक से आगे)

(ले० श्री० रामलालजी विशारद)

सातवाँ साधन नदीनाले हैं। इनमें सतह और झीलके पानीका मिश्रण रहता है और दोनोंके दोष आजाते हैं। जहाँ पानीका बहाव तेज होता है और टाँकियोंमें छननेके लिए रोकाजाता है, और स्वच्छ पानी अधिक ध्यानसे छाना जाता है, वहाँ ठीक पानी का मिलना सुलभ है। खातोंके ढेर, खेत, और व्यावसायिक दूषित पदार्थ नदियोंके पानीको बिगाड़ने के मुख्य कारण हैं। खनिज और वायुमंडलके दोषोंके सिवाय कर्बनिक वस्तुओंके कणभी नदियोंके पानीमें गिरकर सड़ाकरते हैं। हिन्दु लोग मुर्दोंको इनके किनारे जलाकर उनकी राख (खाई) नदियोंमें डाल देते हैं या कभी अनाथ मुर्दे वैसेही फेंक दिये जाते हैं। ये सब कारण नदीके पानीको बिगाड़ने वाले हैं। जो नदियाँ खेतों परसे या बस्तीमें से बहती हैं वे अपने साथ इन स्थानों का कूड़ा कचरा तथा टट्टियों का मलमूत्र आदि गंदी वस्तुएं बहा ले जाती है। ऐसी नदियोंका पानी पीनेके अयोग्य रहता है।

बड़ी २ बड़ी नदियोंकी मध्यधारका पानी संतोषदायक रहता है। गहरा पानी सदा स्वच्छ रहता है। पीनेके लिए किनारेसे २०-३० फीट दूर जाकर पानी लेना चाहिये। इस कामके लिए एक डोंगी रक्खी जावे या एक चबूतरा बना दिया जावे या एक नल मध्यधारसे संबन्ध रखता हुआ बैठाला जावे। भारतवर्षमें बहुत सी नदियाँ सूख जाती हैं। इसलिये उनके बीच २ में बन्धान या पाल बाँधकर पानी रोक कर नदीको तालाबोंके रूपमें बनालिया जावे। किनारे से बस्ती दूर रहे और पानी लेनेके घाट पर मछली मारने, जलक्रीड़ा करने तथा ढोरोंको नहलानेकी रोक टोक रहे।

आठवां साधन भाफनिर्मित पानी है। जहाजोंमें पानी न मिलनेसे समुद्रका पानी गर्म किया जाता है और उसकी भाफको रबर, कांच या अन्य वस्तुकी नलीमें इकट्ठी कर ठंडी करते हैं जिससे वह फिर पानी के रूपमें होजाती है। इस तरह बूंदों को एक बर्तन में इकट्ठा करलेते हैं। इसमें कर्बनका अंश कम होने से स्वाद की कमी होती है इसलिए काममें लानेके पहिले वायु मिश्रण करलेते हैं। यह पानी जस्ते, शीशे और तांबेके बर्तनोंमें इकट्ठा न किया जावे, क्योंकि इन धातुओं पर इसका बहुत असर होता है जिससे उनके कण घुसकर पानीमें मिलजाते हैं और पीनेवालोंको हानि पहुंचाते हैं।

भारतवर्ष में कुछही महीनेमें वर्षा होती है, बाकी के माह सूखेही जाते हैं। इस कारण बहुधा ग्रीष्म ऋतुमें बहुतसे जलाशय सूख जाते हैं। इन दिनोंमें लोगोंकी मांग पूरी करनेके लिए पानीका एकत्र कर रखना आवश्यक है। शहरोंमें बड़े २ तालाब बना दिये जाते है, और नलों द्वारा घरोंतक पानी पहुँचाया जाता है। यदि नल सीसेके हुए और पानी स्वच्छ तथा, ओषजन युक्त हो जैसाकि वर्षा या सतह का होता है अथवा नोषेत या हरिद युक्त हो अथवा मटीला (पूरका पानी) हो अथवा भाफ निर्मित हो तो सीसेकी नलोंपर असर करता है। चारसेर पानीमें १० रत्ती सीसेके कणहुए तो ऐसा पानी पीनेके अयोग्य है। यह कोयले द्वारा छाननेसे साफ हो सकता है। पानी ग्रामोंमें सबको पूरा २ मिलना आवश्यक है। यदि कोई मनुष्य इधर उधर का अस्वच्छ पानी पीकर संक्रामक रोगसे पीड़ित हुआ तो ग्रामभरमें वह रोग फैल जायगा। कहीं २ शहरोंमें पीनेके लिए

अलग और अन्यनिस्तार के लिए अलग पानी दिया जाता है। यह प्रथा ठीक है क्योंकि इसमें स्वच्छ पानी का दुरूपयोग नहीं होता। खेड़ोंमें भी लोग पीनेके लिए कुएसे पानी लेते हैं और अन्य निस्तार नदियों पर जाकर करते हैं। घड़ोंके हिसाबसे पानी नलों द्वारा देना साधारण दृष्टिसे मितव्यय दीखता है पर खाली नलोंमें गंदी वायु रंध्रों द्वारा प्रवेश कर जाती है और पानीमें घुसकर उसे दूषित बना देती हैं। पानीमें अशुद्धियाँ कई स्थानों में हो जाती हैं। निकास स्थानपर यदि चूने या लोहे के कण हैं तो वे पानीमें मिलजाते हैं। श्मशानभूमिमें कई प्रकारके प्राणीजन्य दोष रहते हैं जो सब घुलकर पासके कुएंमें चले जाते हैं। घनी बस्तीके कुओंमें कई प्रकार के नमक घुले हुए रहते हैं। नालियों का पानी या टट्टियोंका मलमूत्र बह कर तालाबोंमें पहुँचजाता है। लोग बहुधा जलाशयोंके किनारे मलमूत्र त्याग करते, नहाते धोते और ढोर को भी नहलाते हैं। कभी कभी लोग इतने असावधान हो जाते हैं कि जहाँसे वे पीनेका पानी लेते हैं, वहीं नहाते, थूकते और कुल्ला वैगैरा करते हैं।

निकास स्थान से भंडारतक आते २ पानीके बिगड़ जाने की संभावना रहती है। खुलीनहरोंमें कभी २ नाली का पानी भिदकर पहुँचजाता है अथवा ढोर वगैरा लोट कर पानी गंदा कर देते हैं। यदि इसमें काई होतो पानी शुद्ध होता रहता है। हवास्पर्श भी पानीको कुछ अंशमें शुद्धि कर देता है।

पानी कितनीहो सावधानी से रखाहो तोभी उसमें अशुद्धियाँ आ जाती हैं और वह स्वादरहित हो जाता है। पानी कई प्रकारके बर्तनों में भरा जाता है जैसे मिट्टीके घड़े, सुराही, कठौते, सोसकी बाल्टी, कोठी, ताँबे के चरवे, पीतलकी बटलोई आदि जब पानी धातुओंके बर्तनमें रखाजाता और ठीक रीतिसे ढाँका जाता है तब वह साफ तो रहता पर हवाका स्पर्श ठीक २ न रहनेसे स्वादमें अंतर पड़ जाता है सुराही तथा मिट्टीके घड़ोंमें छिद्र होनेसे पानी तो ठंडा रहता है पर उनके द्वारा धूलभी भिदसकती है औरये पात्र भीतरसे साफ नहीं हो सकते।

बाटने के समय पानी हाथोंहाथ बहुत बिगड़ जाता है, मशक और छागल बहुधा पानी लेजानेके काममें आती हैं, पर ये बहुत गंदी रहती है और भीतर कभी नहीं धोयी जासकती। सीसेया अन्य धातुओंके नलोंद्वारा पानीघर २ पहुंचाया जाता है, पर वहभी उत्तम उपाय नहीं क्योंकि पानी इनपर असर पहुँचा कर कणोंको घुला लेता है।

लोग बहुधा कई दिनों तक दूषित पानी का उपयोग करते रहते हैं और तिसपरभी किसी प्रकारकी व्याधिसे ग्रस्त नहीं होते किन्तु उसके उपयुक्त बनजाते हैं। यदि उसी पानीको अन्य मनुष्य जो कि पहिले शुद्धतर पानी पीते रहते हैं, काम लावे तो तुरन्त व्याधिग्रस्त हो जाते हैं। वास्तवमें पानीसे अशुद्धि को पूर्णतासे दूर करना दुष्कर है और कुछ अंशतक अशुद्धि स्वास्थ्य नाशकभी नहीं और न अरुचिकरही है। पूर्णशुद्धजल स्वादमें भद्दा और स्वास्थ नाशक होता है। स्वाद, गंध और रंगरहितचमकदार पानी जिसमें अधिक दृढ़पदार्थ न घुलेहुएहों मनुष्योंके लिए वाँछनीय है।

वनस्पतिजन्य दोष पानीमें रहनेसे मनुष्योंको मरोड़, पेचिस, अतिसार, संग्रहणी समान कठोर रोग लग जाते हैं।

खनिज संबंधी दोष होनेसे मरोड़ या आँवकी बीमारी होजाती है। अभ्रकके कण निसन्देह इसव्याधिको उत्पन्नकर देते हैं। मेगनेशियाकेकण से कंठमाल होती है सीसे और जस्तेकेकण जठर अग्निको मन्द करदेते हैं। लोहेके कणोंसे कुपच हो जाता है।

प्राणीजन्य दोष बहुत भयंकर होता है, विशेषकरके जब पानी पीड़ितमनुष्योंके मलमूत्र से दूषित होता रहता है। हैजा (विषूचिका) बहुधा ऐसेही जलसे बढ़ता और फैलता है। यह विशेषता नदियोंके किनारे बसे हुए गाँवोंमें होता है। यह व्याधि मेले तथा तीर्थ स्थानोंमें लोगों के एकत्रहोनेसे फूट पड़ती है, क्योंकि लोग असावधानीसे पवित्रभूमिके पानीको विगाड़देते हैं। विषमज्वर (मोतीझिरा) रुग्ण मनुष्यों के मलमूत्र से दूषित जलही द्वारा अन्य मनुष्यों को होता है इसीतरह आँव और पेचिस भी फैलजाती है।

मच्छरोंकी उत्पति के लिए पानी आवश्यक है अतः अपरोक्षरीतिसे दूषितपानी ही फसली (जूड़ी) बुखारका कारण माना जा सकता है। पेटमें नानाप्रकारके कृमि यथा चिनुना, पटाद, वक्रकृमि, तथा नारू रवाज, खुजली, दद्रु आदि रोग दूषित पानीके व्यवहारसे ही होते हैं।

सारांश पानी यथेष्ट न मिलनेसे अस्वच्छता फैलती है और परिणाममें नानाप्रकार की चर्मतथा नेत्र व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। पानीकी कमीसे प्यास तोभड़कती ही है किन्तु पेशियोंकी शक्ति और मानसिक उमंग घट जाती हैं।

पानीमें घुली हुई या उतराती हुई अशुद्धियोंको दूरकरनाही उसकासाफ करना कहलाता है. अशुद्धियाँ कई प्रकारकी होती हैं यथाः—

- अशुद्धियाँ
  - उतराती हुईवस्तुएं — यांत्रिक रीतिसे आसानीसे दूर होती हैं
    - निरेंद्रिय
      - खनिजपदार्थ
      - रेत, धूलआदि
    - सेंद्रिय
      - प्राणीज पदार्थ
      - उद्भिजाणु,
      - कीटाणु
  - घुलीहुई वस्तुएं — रासायनिक रीति से दूर होती हैं
    - गेस यथाकर्वनद्विओषिद
    - (वायुदयी)
    - हरिद इत्यादि
    - दढ़ सेंद्रिय, निरेंद्रिय, खनिज

स्वाभाविकशुद्धिः—बड़े जलाशयों-नदी; नाला; ताल; सरोवर और तालाब झील,—का पानी ओषजन की क्रिया से शुद्ध होता है। ज्योंही गंदा पानी बहकर जलशयमें मिला त्योंहीसब पानी में घुलजाता और तद्गत ओषजन कीटाणुओंकी सहायतासे गंदगी पर असर करने लगता है इसके खर्चहो जातेही पानी तुरंत हवा से ओषजन खींचने लग जाता है जिससे यह कमी पूरी होजाती है। पानीमें रहनेवाले उद्भिजभी ओषजन छोड़ते रहते हैं। और अन्य गैसोंको आत्मसात् कर लेते हैं। इनके सिवाय मच्छलियाँ और अन्य छोटे छोटे जन्तु तथा उद्भिज सेन्द्रिय पदार्थोंके कणोंको खाकर पानी को साफ किया करते हैं। यदि धार मंद हुई या पानी स्थिर हुआ तो तलछटके साथ उतराती हुई वस्तुएं जाकर पेंदीमें इकट्ठी होजाती हैं। सूर्यकी किरणें भी पानीकी शुद्धि में यथार्थ सहायता देती हैं।

कृत्रिम शुद्धि कई युक्तियोंसे की जाती है यथा भौतिक रीति अर्थात् गर्मीसे पानी निर्दोष बनाना यह दो तरह से हो सकता है। भाफ बनाकर पानीका उड़ाना और फिर कम तापमानके प्रभावसे उसको पानीरूप में बदल कर इकट्ठा करना है। यह काम बहुधा जहाजों पर किया जाता हैं। बड़े प्रमाण पर इस तरह पानी साफ करना बहुत कठिन है। यह पानी बहुत सुस्वादुभी नहीं होता और तांबा, जस्ता, लोहा और सीसा समान धातुओं पर तुरन्त असर करता है।

दूसरी रीति पानीको उबालना है। इससे कीटाणु नष्ट होजाते हैं और चूनेके नमक पेंदीमें बैठजाने से अस्थायी भारीपन दूर हो जाता है। व्यावहारिक कामों के हेतु पानीको थोड़ा उबालना हीठीक है क्योंकि इससे बीमारी पैदा करने वाले कीटाणु सब मर जाते हैं उबालनेसे स्वाद मारा जाता है इसलिए हवाका संस्कार करके पीनेको काममें लाना चाहिये।

रसायनिक उपायों से :—

तलछट बैठालने वाले पदार्थ का उपयोग करनेसे पानी ठीक होजाता है। चूना और मगनीसम् लवणों से (क्षारों से) पानी भारी होजाता है। जिस पानी में चूने और मगनीसम्के कर्बनेत रहते हैं वह अस्थायी भारी होता है और यह भारीपन उबालने से दूर हो

जाता है। क्योंकि गर्मीसे कर्बन द्विओषिद निकल कर हवामें मिलजाता है और कर्बनेत पेंदीमें बैठजाते हैं। जब भारीपन उबालनेसे दूर नहीं होता और गंधेतके कारण न कि कर्बन द्विओषिदके कारण होता है तब उसे स्थायी करते हैं। यह चूनेका दूध (ऊपर का पानी) वा सोडाकर्बनेत मिलानेसे दूर होता है चार कार्बनद्विओषिदके साथ मिल जाता है, चूनेका कार्बनेत पदीमें चला जाता है।

फिटकरी खटिक कर्बनेत संयुक्त पानी पर असर करके बहुतसे दूषित अंशको पेंदीमें बैठाल देती है। इसके मिलाने का साधारण प्रमाण ४ सेरमें ६ रत्तीका है। यदि इसके मिलानेके उपरान्त ५ रत्ती चूना मिलाया जावे तो शुद्धि बहुत ठीक होती है। यद्यपि फिटकरीमें जलोद्भिजाणुओं को मारने की शक्ति है परउसका प्रभाव विशूचिका और मोतीझिरा ज्वरके कीटाणुओं पर कुछ नहीं पड़ता।

वर्षाऋतुमें मटीले पानीको साफ करनेके हेतु कई स्थानोंमें नीरमलीके बीज काममें लाये जाते हैं। ये बर्तनके भीतर एक दो मिनट तक रगड़ दिये जाते हैं और बर्तन अलग रख दिया जाता है। थोड़े समय में तलछट बैठजाती है और पानी साफ हो जाता है।

लाल दवाई (पांशुजपरमाँगनेत) विशेषतः कीटाणुको नष्ट करनेके कामकी वस्तु हैं। इससे सेंद्रिय पदार्थ जिनपर उद्भिजाणु गुजर करते हैं, नष्ट होजाते हैं। यह बहुधा हैजेके समय दूषित कुएं तालाब, बावलियोंमें डाला जाता है। एक बाल्टीमें कुछ दवाई मिलाकर उस बाल्टीको कुएंमें डालकर खूब हिलोड़ते हैं जिससे वह दवाई मिश्रित पानी सब पानीमें मिल जावे। जबतक पानी फीका गुलाबी हो जावे तबतक दवाई मिलाते रहना चाहिये। तालाबोंमें हरातूतिया (कापरसल्फेट-ताम्रगंधेत) मिलाने से उद्भिजाणु दूर होजाते हैं। इसका घोल १:२०००० केअनुपातसे मिलाना आवश्यक है।

नेस्फीलड साहेबकी बनाई हुई टिकियोंसे विशूका और विषम ज्वरके कीटाणु भी नष्ट होजाते हैं। यथार्थमें ये सब युक्तियां साधारणतः ठीक हैं न कि संतोषदायक, उबालना ही एक सर्वोत्कृष्ट युक्ति है जिससे पानी शुद्ध होता है। इसमें किसी प्रकारसे संदेह नहीं रह जाता।

इसके सिवा पानी यंत्रोंके द्वारा छाना जाता है। साधारण रेतके योगसे छानना मंदगतिका होता है और यंत्रोंके योगसे शीघ्र गतिका होता है।

छानने का मुख्य हेतु रोगोत्पादक कीटाणुओं को नष्टकर पानीको हलका बनाना है। अतः छाननेके माध्यम् उपयुक्त पदार्थ होना चाहिये। लकड़ीका कोयला छिद्रयुक्त होनेसे अशुद्धियोंको छिद्रोंमें रोक रखता है जिससे उद्भिजाणुओं और कीटाणुओंको पोषण मिल जाता है। रेत और कंकड़ काममें लाये जाते हैं। ये अशुद्धियोंको पार नहीं जाने देते, इनकी सतह पर वे जमजाती हैं जो धोने वा खरोचनेसे अलग हो जाती हैं। छाननेके स्थान पक्के बनाये जाते हैं जिससे इधर उधरका गंदा पानी मिलकर न आजावे। दो फीट तक कंकड़ भर दिये जाते हैं और उन पर दो या तीन फीट तक रेत बिछाई जाती है। जब तक तीन चार दिनमें रेतकी सतह पर उद्भिजाणु निर्मित पतली झिल्ली नहीं होजाती तब तक पानी ठीक ठीक साफ नहीं होता अर्थात् यह काम तीन चार दिनके उपरान्त संतोष दायक होने लगता है। जब यह झिल्ली खूब मोटी होजाती है तब उसके अभेद्य हो जानेसे पानी छननेका काम ठीक ठीक नहीं होता। अतः इसको खरोंच कर दूर करना पड़ता है। इसके साथ हरबार २ इंच रेत भी निकाल कर फेंकना पड़ता है। जो पानी सेंद्रिय कणोंसे दूषितहै वह कितने ही छानने पर भी पीने योग नहीं होता।

शीघ्र गतिसे छाननेके यंत्र फौलादके बने हुए गोल होते हैं जिनका ८" इंच से १ फुट तक रहता है। इस यंत्रसे २४ घंटेमें ६००००० सेर पानी छनजाता है। टांकियोंमें पहले फिटकरी मिलादेते हैं जिससे यंत्र की सतह पर झिल्ली बन जाती है। यह झिल्ली कीटाणुओंको रोक रखती है और पार

नहीं जाने देती। इस तरह छना हुआ पानी यंत्रके अतरिक्त नलोंमें प्रवेश करता है। ये नल खिलिका (एक पदार्थ जिससे काँच तैयार किया जाता है) और रेतसे भरे रहते हैं। नलोंके द्वारा आया हुआ पानी चुंगियोंमें गिरता है। इन चुंगियोंके मुंह पर छिद्रयुक्त ढक्कन रहते हैं और भीतर कंकड़ भरे रहते हैं। इसतरह छना हुआ पानी पंपोंमें लगे हुए नल द्वारा हौजमें इकट्ठा किया जाता है। इस प्रकारके यंत्र अंग्रेजीमें फिल्टर कहलाते हैं। इन यंत्रोंसे लाभ ये हैं कि ये कमखर्चमें सरलतासे तैयारहो जाते हैं। छानने का काम लगातार हुआ करता है। रेत कंकड़ आदि बारबार बदलना नहीं पड़ते और पूरा यंत्र१०-११२' में धोया जासकता है। ये सस्ते उपयोगी होते और थोड़ी सी जगहमें खड़े किये जा सकते हैं।

घरेलू फिल्टर दृढ़ और सरल गढ़नके हों ताकि उनको साफ करने तथा फिरसे जमानेमें कठिनाई न हो। वे ऐसे पदार्थके बने हों कि पानी पूरा साफ हो सके और बहुत दिन काम दे सकें। वे सस्ते हों और उनमें छानने की शक्ति बहुत दिनों तक टिकी रहे। ऐसे यंत्र पाश्चुर चेम्बरलेड, बेकरफील्ड आदि महाशयों ने बनाये हैं।

ऐसे यंत्रोंमें नलीको गर्म पानीसे धोना आवश्यक है नहीं तो पानी ठीक र साफ नहीं होता। पाश्चुरका यंत्र अधिक विश्वसनीय और टिकाऊ है पर इससे पानी बहुत मन्द गतिसे छनता है और विशेष दबाव से ही काम करसकता है। बर्कफील्डके यत्रमें इस दबावकी आवश्यकता नहीं और पानीभी शीघ्रगतिसे छनता है पर छिद्रोंके अधिक खुलजाने पर कीटाणु पार चले जाते हैं। मिट्टीके बने होनेके कारण अधिक फूटते भी हैं।

चार घड़े रखकर छाननेकी विधि भारतवर्षके ग्रामोंमें बहुत प्रचलित है। बांसके बने चौखट पर चारघड़े एक पर एक रख दिये जाते हैं। प्रत्येककी पेंदीमें छिद्र रहता है जिसमें रुई लगी हुई रहती हैं। सबसे ऊपरके घड़ेमें पानी डाल दिया जाता है जो रूईद्वारा छनकर दूसरे घड़ेमें आता है। दूसरा घड़ा कोयलेसे आधा भरा हुआ रहता है। तीसरे घड़ेमें कंकड़ और रेत भरदेते हैं। चौथे घड़ेमें छना हुआ पानी इकट्ठा होता है। रेतको माहभरमें एक दोबार सुखाना और कोयले व कंकड़ोंको हफ्तेमें साफ करना आवश्यक है। कभी फिल्टरोंके छिद्र दूषित कणोंसे भरजाते हैं जिससे कीटाणुओंके रहने व बढ़नेका अच्छा स्थान मिल जाता है। ऐसी दशामें छाना हुआ पानी अत्यन्त हानिकारक होता है। अतः छनेहुए पानीको उबालनाही ठीक है।

पानीकी परीक्षाके हेतु एक बोतल लेकर उसे उस पानीसे दोतीन बार धोकर भरलेना चाहिये। यदि नदीका लेना हो तो बीचधारसे या किनारेसे कुछ दूर हटकर लेना चाहिये। शहरोंमें नलसे लेना चाहिये बोतलके साथ यह सूचना देना आवश्यक है कि पानी कहाँसे लिया गया। यदि कुंएका है तो उसकी गहराई कितनी है! किसकाममें आता है! कुँएका व्यास कितना है? आसपासकी भूमि कैसी है? उसमें अशुद्धियाँ पहुँचनेकी क्या सम्भावना है? खेतोंसे, मलमूत्रके हौजोंसे, पायखानोंसे, और नालियोंसे कितनी दूरी है? आस पास कहीं सक्रामक रोग है क्या?

भौतिक परीक्षा करनेमें निम्न बातोंका विचार किया जाता है यथाः—

रंग—दो फीटकी नलोमें पानी भरकर देखो। यदि पानी शुद्ध होगा तो उसका रङ्ग कुछ नीला या हरा दीखेगा और यदि पीलिया भूरा देखा तो उसमें नालियोंसे आये हुए सेंद्रिय पदार्थोंके कण हैं या वनस्पति अथवा खनिज धातुओंके कण घुलेहुए हैं।

स्वच्छता—हिलोड़ने पर पानी धुंधला दीखे तो अस्वच्छ है। भारी कण शीघ्रतासे पेंदीमें पैठते हुए दृष्टि गोचर होंगे।

चमक—अस्वच्छ पानी मलीन दीखता है। स्वच्छ चमकीले पानीमें कर्बनद्विओषिद और हवाका मिश्रण रहता है।

स्वाद—जिस पानीका स्वाद बुरा अरुचिक रहो वह पीने योग्य नहीं।

गंध—यदि उबालने पर उदजन गंधिदकी गंध आवे तो पानी दूषित समझा जाता है।

रासायनिक परीक्षामें देखा जाता है कि उसका असर खारोंके या धातुओंके समान है। साबुन रगड़नेसे फेन बहुत निकले तो पानी स्वच्छ है अन्यथा स्थायी या अस्थायी रूपसे भारी है हरिद केवल भाफ निर्मित पानीमें नहीं रहता और सब पानीमें रहता है। यदि इसका अस्तित्व है तो चाँदीका नोषेत घोल मिलानेसे तलछट जम जायगी। नोषित का अस्तित्व गंधक के तेजाबसे प्रमाणित होता है। मिश्रणका रङ्ग पीला हो जाता है। यदि अमोनिया है तो नेसलर साहिब का बनाया हुआ घोल मिलाने पर पीला या भूरा रङ्ग हो जाता है।

तांबा, शीशा, लोहा आदि धातुएं पोटास संबंधी घोल मिलाने पर प्रकट हो जाती हैं। यदि कुछ बर्तन में पानी रखके भाफ बनाकर उड़ाया जावे तो पदार्थोंके कण पेंदीमें रह जायंगे, जो पहिले पानीमें घुलेहुए थे पानीको उबालने पर रेत (व घूनके कण पदीमें जाते हुए स्पष्ट दीखेंगे।) सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे रूई, ऊन बाल, निशास्ताके रवे देखे जासकते हैं।

पानीमें विषमज्वर, हैजा, पेचिस आदि रोगोत्पादक बीजाणु और कीटाणु रहते हैं। जल बीजाणु पानीसे अलग नहीं हो सकते चाहे कितनाही वह शुद्ध क्यों न किया जावे। भूमि बीजाणु पानीमें सतह पर बहनेसे आजाते हैं। मलमूत्र-बीजाणु पशु-पक्षी और मनुष्यों के मल मूत्र अथवा नालियोंका पानी मिल जानेसे पानीमें आजाते हैं। एक नलीमें १० घ. शम. टिमिटर 'ऐगार' लेकर पिघलाया जाता है और जब वह ४०° तापमार्ग पर आजाता है तब उसमें १ घ. शम. पानी परीक्षार्थ मिला दिया जाता है। ३७ तापमानमें तीन या चार दिन तक यह मिश्रण रक्खा जाता है। इतने अवसर में बीजाणु वा कीटाणु के समुदाय प्रकट हो जाते हैं।

प्रायः बहुतसी औषधियों में पानी का मिश्रण कियाजाता है अतः इसका शुद्ध होना नितान्त आवश्यक है। इसी सिद्धान्त पर चिकित्सालयों में जहां तक हो गर्म अथवा भाफ निर्मित पानी काम मेलाते हैं। कई व्याधियों में पानी का उपचार या जल चिकित्साही भला उपाय है। शुद्ध जल यदि उषः काल में उठकर थोड़ा २ (घूंट२) पीया जावे तो अमाशय की गर्मी शान्त हो कर मल शुद्धि ठीक होजाती है। गर्म पानी की सेंक से आंतड़ियोंका आंखो का कर्णों का और गले आदि अवयवों का विकार, शूल, शोथ दूर होती है। बच्चों को सूखी होवेतो जलमें कुछ समय तक बैठालकर कमरके ऊपर का भाग मला जावे तो उनका शरीर सशक्त होजाता और उनकी पाचन शक्ति बढ़ जाती है। चोट लगकर खून निकले तो ठंडे पानीसेधोकर ठंडे पानी की पट्टी लपेटने से ही घाव अच्छा हो जाता है। यदि शिरमें गर्मी छाजावे तो प्रातःकाल उठकर और सोनेके समय ठंडा पानी डालनेसे तुरन्त उसका शमन होता है। यदि पेशाब करते समय गर्मऋतुमें तड़क या जलन हो तो कानोंमें थोड़ा २ ठंडा जल छोड़ने से यह व्यथा दूर हो जाती है। गर्मीमें नाकके खून निकलने पर तालू और कपाल पर पानी डालने का उपचार प्रायः सर्व विदित है। पानी और शहद मिलाकर पीनेसे शीतलता, रक्तशुद्धि और पाचन शक्तिकी वृद्धि होती है। दूध और पानी बराबर मिलाकर पीनेसे अपच हट जाता है। पानीमें फिटकरी घोलकर धोनेसे आँखें साफ होती हैं। साबुन कम पानीमें घोलकर दाँत धोने से दाँत साफ होते और मसूड़ोंके कीटाणु मरजाते हैं जिससे दांतोंकी दृढ़ता बनी रहती है। इस तरह यह अमूल्य पदार्थ मनुष्योंकी सेवामें लगा रहता और उनका उपकार किया करता है।

श्यामजन यौगिक

(Cynogen Compounds)

(ले० श्रीसत्यप्रकाश, एम० एस० सी०)

अब हम श्यामजन यौगिकोंका वर्णन करेंगे। इन यौगिकोंमें श्यामजन नामक एक सामान्य मूल होता है। यह मूल कर्बन और नोषजन के एक एक अणुके योगसे बनता है। इनका नाम श्यामजन इसलिये पड़ा है क्योंकि इनका एक यौगिक जिसे पांशुज-लोहो श्यामिद कहते हैं, लोह लवणोंके साथ श्याम या नील रंग देता है। यहाँ हम निम्न मुख्य यौगिकों और तत्सम्बन्धी पदार्थों का वर्णन करेंगे—

१. श्यामजन गैस—(कनो)$_२$
२. उदश्यामिकाम्ल—उकनो और श्यामिद
३. द्विगुण श्यामिद
४. श्यामिकाम्ल- उक नोओ, और श्यामेत
५. गन्धको श्यामेत

श्यामजन (कनो)$_२$

(Cyanogen)

गे-लूजक ने पारद-श्यामिद और रजत-श्यामिद नामक पदार्थोंको गरम करके इसे उपलब्ध किया था। पारद श्यामिद, पा (कनो)$_२$ पारद ओषिदको जलीय उदश्यामिकाम्लमें घुलाकर बनाया गया था। संपृक्त घोलमेंसे इसके रवे पृथक कर लिये गये। पारद श्यामिदको पारद नलीमें गरम करनेसे एक गैस निकलती है जो नलीके मुंहपर जलायी जा सकती है। उसकी ज्वाला गुलाबी लाल रंग की होती है—प्रक्रिया इस प्रकार है—
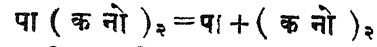
पा (क नो)$_२$ = पा + (क नो)$_२$
पारदिक श्यामिद (श्यामजन)

यह नीरङ्ग गैस है जिसमें अत्यन्त विषैली दुर्गन्ध होती है। यह जलमें घुलनशील है अतः पारद पर संचित करना चाहिये। जलने पर यह लाल रङ्गकी ज्वाला देती है। और नोषजन और कर्बन द्विओषिद में परिणत हो जाती है—

(क नो)$_२$ + २ ओ$_२$ = २ क ओ$_२$ + नो$_२$
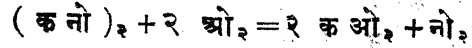
दबाव डालकर यह द्रवीभूतकी जा सकती है। द्रव श्यामजन का क्वथनांक—२० है और—३४ पर यह ठोस हो जाता है।

इसका जलीय घोल धीरेधीरे विभाजित होने लगता है। पानीके संसर्गसे अमोनियम काष्ठेत बनजाता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

```
         उ  | ओ उ                              + नोउ३
  कनो + उ  | ओ
  |         |
  क नो + उ  |           क ओ ओउ
 श्यामजन उ  | ओ उ          |
         उ  | ओ         क ओ ओ उ    + नोउ३
         उ  | जल        काष्ठिकाम्ल  अमोनिया
```
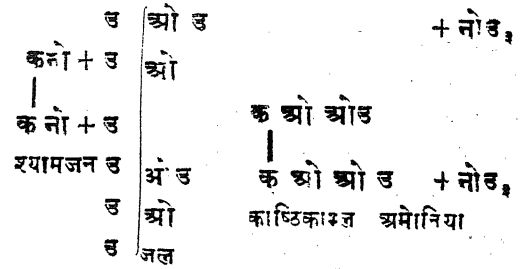
अमोनिया और काष्ठिकाम्ल मिलकर अमोनियम काष्ठेत बनजाते हैं—
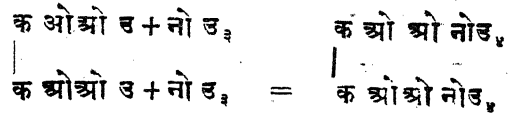
```
क ओओ उ + नो उ३          क ओ ओ नोउ४
|                        |
क ओओ उ + नो उ३    =     क ओओ नोउ४
                        अमोनियमकाष्ठेत
```

काष्ठामिद (क ओ नो उ$_२$)$_२$ को स्फुर पंचौषिद के साथ स्रवण करनेसे भी श्यामजन प्राप्त हो सकता है जिसप्रकार सिरकामिद को स्फुरपंचौषिदके संसर्गसे दारील श्यामिद (क उ$_३$ क नो) प्राप्त किया गया था—

```
क ओ नोउ२            क नो      + २ उ२ ओ
|         ———————>  |
क ओ नो उ२           क नो
  काष्ठामिद           श्यामजन
```
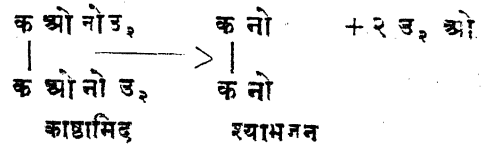
पांशुज उदौषिद के घोलमें इसे प्रवाहित करनेसे पांशुज श्यामिद और पांशुज श्यामेत प्राप्त होते हैं। इस गुणमें यह हरिन गैसके समान है जो पांशुज उदौषिदमें प्रवाहित करने पर पांशुज हरिद और पांशुज हरेत देती है—

२ पांओ उ + ह$_2$ = पांह + पांह ओ + उ$_2$ ओ

२ पां ओ उ + (क नो)$_2$ = पां कनो + पां कनोओ + उ$_2$ ओ

पांशुज श्यामिद पांशुज श्यामेत
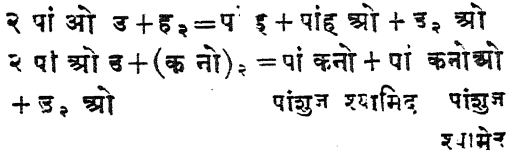
उदश्यामिकाम्ल, उकनो

Hydro-Cyanic acid.

यह बहुतसे पौधोंमें पाया जाता है, कड़वे बादामों में भी यह विद्यमान रहता है। इन सबमें यह युक्त अवस्थामें तो नहीं होता है प्रत्युत दाक्षशर्करा, बानजावमद्यानार्द्र आदिसे संयुक्त रहता है, और हल्के गन्धकाम्ल द्वारा उदविश्लेषण करने पर अथवा प्रेरक जीवोंके प्रभावसे यह युक्त हो सकता है। हल्का उदश्यामिकाम्ल पांशुज लोहोश्यामिदको हल्के गन्धकाम्लके साथ स्रवण करने से प्राप्त हो सकता है। भभकेमें १० भाग पांशुज लोहो श्यामिद (Potassium ferrocyanide) का चूर्ण लो और ७ भाग संपृक्त गन्धकाम्ल को १० या २० भाग जलसे हल्का करके इसमें मिलाओ। भभके को बर्फ द्वारा ठंडे किये गये स्रावक और संचक से संयुक्त करदो। स्रवण करने पर उदश्यामिकाम्ल का जलीय घोल संचक में आजायगा। प्रक्रिया इस प्रकार है—

२ पां$_4$ लो (क नो)$_6$ + ३ उ$_2$ ग ओ$_4$ = ६ उकनो

पांशुजलोहोश्यामिद उदश्यामिकाम्ल

+ पां$_2$ लो" लो (क नो)$_6$ + ३ पां$_2$ गओ$_4$

पांशुज लोहस लोहोश्यामिद

जलके संसर्गसे उदश्यामिकाम्ल, उकनो, अमोनियम पिपीलेतमें परिणत होजाता है।

उकनो + २ उ$_2$ ओ = उ क ओ ओ नोउ$_4$

अमोनियम पिपीलेत
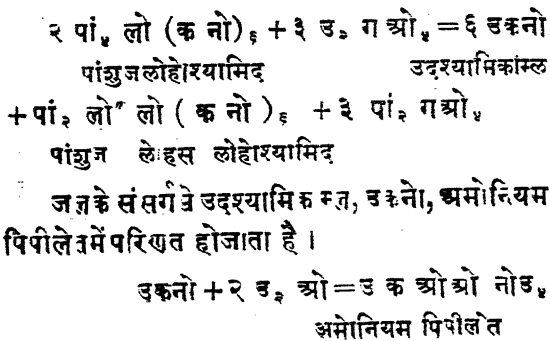
स्वच्छ अनार्द्र उदश्यामिकाम्ल पांशुज श्यामिद, पांकनो, को संपृक्त गन्धकाम्लके साथ गरमकरके और वाष्पोंको खटिकहरिद द्वारा भरी हुई चूल्हाकार नलिकाओंमें प्रवाहित करके बनाया जा सकता है—

२ पां क नो + उ$_2$ ग ओ$_4$ = पां$_2$ ग ओ$_4$ + २ उ क नो
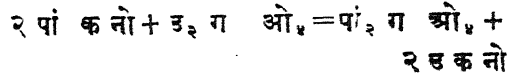
यह नीरंग द्रव है, जो २६° पर उबलने लगता है और —१४° पर ठोसकार हो जाता है। यह ज्वलनशील वायव्य है जो वैंजनीरङ्गकी ज्वालासे जलता है। इस गैससे अधिक तीव्र विषैली गैसें बहुतही कम हैं। अतः इस गैससे काम करते समय यह परमावश्यक है कि अत्यन्त सावधानी का ध्यान रखा जाय।

उदश्यामिकाम्ल तीव्र उदहरिकाम्ल के संसर्गसे पहले पिपीलामिद और फिर पिपीलिकाम्लमें परिणत होजाता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

उ क नो + उ$_2$ ओ = उ क ओ नो उ$_2$

पिपलामिद

उ क ओ नो उ$_2$ + उ$_2$ ओ + उह = उ क ओ ओ उ + नो उ$_4$ ह

पिपीलिकाम्ल
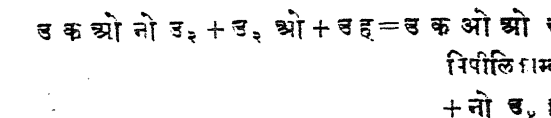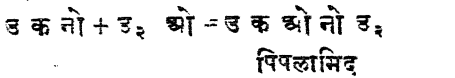
यह प्रक्रिया उदविश्लेषण का एक उदाहरण है। स्फुर पंचौषिदके साथ स्रवण करनेसे पिपालामिद उदश्यामिकाम्ल दे सकता है—

उ क ओ नो उ$_2$ = उ क नो + उ$_2$ ओ

उदश्यामिकाम्ल के मद्यिक घोल को सैन्धक धातु द्वारा अवकृत करनेपर दारीलामिन प्राप्त होता है—

उ क नो + २ उ$_2$ = क उ$_3$ नोउ$_2$

दारीलामिन
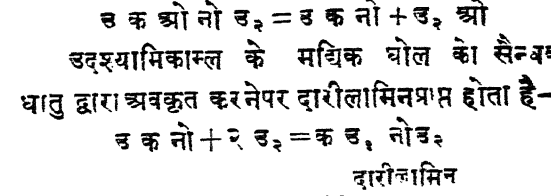
श्यामिद Cyanides

जिस प्रकार उदहरिकाम्ल के लवण हरिद कहलाते हैं उसी प्रकार उदश्यामिकाम्लके लवणों को श्यामिद कहते हैं। पांशुज श्यामिद, पांकनो और सैन्धक श्यामिद, सैकनो इनमें अधिक उपयोगी हैं।

(१) पांशुज लोहो श्यामिद, पां$_4$ लो (क नो)$_6$ को पिघलानेसे पांशुज श्यामिद प्राप्त हो जाता है— पिघलाने पर परिवर्तन निम्न प्रकार होता है।

$$\text{पां}_4 \text{ लो (क नो)}_6 = 4 \text{ पां क नो} + \text{लो क}_2 + \text{नो}_2$$

पांशुजश्यामिद

पांशुज कर्बनेतकी उपस्थितिमें यह प्रक्रिया अधिक उत्तम होती है—

$$2 \text{ पां}_4 \text{ लो (क नो)}_6 + \text{पां}_2 \text{ क ओ}_3 \text{ ५ पां कनो} + \text{पां ओ क नो} + \text{क ओ}_2 + \text{लो}$$

पांशुजश्यामेत

(२) व्यापारिक मात्रामें प्राप्त करनेके लिये सैन्धक लोहो श्यामिद को सैन्धकम् धातुके साथ गरम करते हैं जिससे सम्पूर्ण पदार्थ सैन्धकश्यामिदमें परिणत हो जाता है—

$$\text{सै}_4 \text{ लो (क नो)}_6 + \text{सै}_2 = 6 \text{ सै क नो} + \text{लो}$$

इसमें से लोहकण छानकर अलग कर लिये जाते हैं।

(३) अमोनियाको गरम सैन्धकम् पर प्रवाहित करनेसे सैन्धकामिद बनता है जिसे पिघलाकर रक्त तप्त कोयले के संसर्गमें लानेसे सैन्धक श्यामिद बन-जाता है। इस प्रक्रियामें पहले सैन्धक-श्यामामिद $\text{सै}_2 \text{ क नो}_2$ नामक यौगिक बनता है जो फिर सैन्धक-श्यामिदमें परिणत हो जाता है—

$$2 \text{ नोउ}_3 + \text{सै}_2 = 2 \text{ सै नो उ}_2 + \text{उ}_2$$

सैन्धकामिद

$$2 \text{ सै नो उ}_2 + \text{क} = \text{क नो नो सै}_2 + 2 \text{ उ}_2$$

सैन्धक श्यामामिद

$$\text{क नो. नो सै}_2 + \text{क} = 2 \text{ सै क नो}$$

सैन्धक श्यामिद

श्यामिदों की उपयोगिता अब बहुत बढ़ गई है। प्रतिवर्ष लगभग १० सहस्र टन यह तैयार किया जाता है। स्वर्ण धातुके निष्कर्षणमें इससे सहायता मिलती है जिसका कुछ वर्णन आगे दिया जायगा।

द्विगुण श्यामिद

रजतनोषेत के घोलमें पांशुजश्यामिद का घोल डालने पर पहले तो एक प्रकारका अवक्षेप प्राप्त होता है। इस अवक्षेपमें यदि पांशुजश्यामिद का और अधिक घोल डाला जाय तो अवक्षेप घुलने लगता है और धीरे धीरे सब घुल जाता है। इस समय एक द्विगुणश्यामिद बन जाता है।

$$2 \text{ नो ओ}_3 + \text{पां क नो} = 2 \text{ क नो} + \text{पां नो ओ}_3$$

रजत श्यामिद

अवक्षेप

$$2 \text{ क नो} + \text{पां क नो} = 2 \text{ क नो. पां क नो} = \text{पां र (क नो)}_2$$

(पांशुज रजत श्यामिद)

इस प्रकार के श्यामिद रजत के ही नहीं प्रत्युत लोह, ताम्र, स्वर्ण आदि धातुओंके भी होते हैं। इन धातुओंके घुलनशील लवणोंके घोलोंमें पांशुज-श्यामिद का घोल डालनेसे पहले तो सामान्य धातु श्यामिदोंका अवक्षेप प्राप्त होगा जो पांशुजश्यामिद की अधिक मात्रामें धीरे धीरे घुलने लगेगा। इस समय इन धातुओंके द्विगुण लवण बनजायंगे। कुछ द्विगुणश्यामिद नीचे दिये जाते हैं—

(१) पां र (क नो)_2, पांशुज रजतश्यामिद

(२) पां स्व (क नो)_2, पांशुज स्वर्ण श्यामिद

(३) $\text{पां}_2 \text{ द (क नो)}_4$, पांशुज दस्त श्यामिद

(४) $\text{पां}_3 \text{ लो (क नो)}_6$, पांशुज लोही श्यामिद

(५) $\text{पां}_4 \text{ लो (क नो)}_6$, पांशुज लोहोश्यामिद

स्वर्णके निष्कर्षण के लिये खनिज पदार्थमें जिसमें स्वर्ण के अति सूक्ष्म कण बिखरे होते हैं, पांशुज या सैन्धक श्यामिदका बहुत हल्का घोल डाला जाता है। इस प्रक्रियामें वायुका ओषजन ओषदीकरण का काम करता है। ऐसा करनेसे पांशुज स्वर्णश्यामिद नामक यौगिक बनता है—

$$4 \text{ पां क नो} + 2 \text{ स्व} + \text{उ}_2 \text{ ओ} + \text{ओ} = 2 \text{ पां स्व (क नो)}_2 + 2 \text{ पां ओ उ}$$

इस द्विगुण श्यामिद का विद्युत् विश्लेषण करके स्वर्ण धातु अलग किया जा सकता है, अथवा दस्तम् धातुके मिलानेसे पांशुज दस्तश्यामिद बनजाता है और स्वर्ण पृथक हो जाता है—

$$2 \text{ पां स्व (क नो)}_2 + \text{द} = \text{पां}_2 \text{ द (क नो)}_4 + 2 \text{ स्व}$$

लोहस गन्धेत के घोलमें पांशुज श्यामिद का घोल डालने पर पहले तो लोहस श्यामिद बनेगा जो फिर पांशुज लोहोश्यामिद में परिणत हो जायगा। यह पीले रङ्ग का घोल देता है। इस घोलमें हलका उदहरिकाम्ल डालनेसे लोहस श्यामिद का कोई अवक्षेप प्राप्त नहीं होगा पर यदि संपृक्त तीव्र उदहरिकाम्ल डाला जाय तो श्वेत रङ्गका अवक्षेप प्राप्त होता है जो उद-लोहो श्यामिकाम्ल का होता है। प्रक्रिया इस प्रकार है—

लो (क नो)$_2$ + ४ पां क नो = पां$_4$ लो (क नो)$_6$
पांशुजलोहोश्यामिद

पाँ$_4$ लो (क नो)$_6$ + ४ उह = उ$_4$ लो (क नो)$_6$ + ४ पांह
उद लोहोश्यामिकाम्ल

कोबल्टम् और नकलमके भी इसी प्रकार द्विगुण श्यामिद होते हैं—

पाँ$_4$ को (क नो)$_6$, पाँशुज कोबल्टोश्यामिद
= ४ पाँ क नो + को (क नो)$_2$

पाँ$_3$ को (क नो)$_6$, पाँशुज कोबल्टी श्यामिद
= ३ पाँ क नो + को (क नो)$_3$

पाँ$_2$ न (क नो)$_4$, पाँशुज नकल श्यामिद
= २ पाँ क नो + न (क नो)$_2$

इनमें पाँशुज लोहो श्यामिद सबसे अधिक उपयोगी है। लोहिक लवणों की पहिचान में यह काममें आता है। लोहिक लवण जैसे लोहिक हरिद, लोह$_3$, के घोलमें इसके घोल की बूंदें डालने से प्रशियन नीला रङ्ग दृष्टिगत होता है जो लोहिक लवणकी विद्यमानता का सूचक है। इस प्रक्रिया में पाँशुज लोहो-लोहिक श्यामिद, लो''' पाँ [लो'' (क नो)$_6$] बनता है।

लोह$_3$ + पाँ$_4$ क लो'' (क नो)$_6$
= लो''' पाँ [लो'' (क नो)$_6$] + ३ पाँह

पाँशुजलोहोश्यामिद के घोलमें हरिन् गैस प्रवाहित करनेसे ओषदीकरण होनेके कारण पाँशुज लोहीश्यामिद, पाँ$_3$ लो (क नो)$_6$ बनजाता है—

२पाँ$_4$ लो (क नो)$_6$ + ह$_2$ = २पाँ$_3$ लो (क नो)$_6$ + २ पाँह
पांशुज लोहीश्यामिद

पाँशुजलोहश्यामिद के घोलमें लोहस लवणों का घोल डालनेसे भी प्रशियन नीला रङ्ग दृष्टिगत होता है। इस प्रक्रियामें पाँशुज लोहिक लोहोश्यामिद बनता है—

लो ग ओ$_4$ + पाँ$_3$ लो (क नो)$_6$
= लो'' पाँ [लो''' (क नो)$_6$] + पाँ$_2$ ग ओ$_4$
लोहस गन्धेत

पांशुज लोहो लोहिक श्यामिद और पांशुज लोहिक-लोहो श्यामिद वस्तुतः एकही पदार्थ है। इस प्रकार पांशुजलोहोश्यामिदसे लोहिक लवणों की परीक्षा और पांशुज लोही श्यामिदसे लोहस लवणों की परीक्षा की जासकती है।

श्यामिकाम्ल, उ क नो ओ

Cyanic acid

मूत्रिया, क ओ (नो उ$_2$)$_2$ को गरम करने से श्याम-मूत्रिकाम्ल (Cyanuric acid) प्राप्त होता है—

३ क ओ (नो उ$_2$)$_2$ = क$_3$ नो$_3$ ओ$_3$ उ$_3$
श्याममूत्रिकाम्ल + ३ नो उ$_3$

यह परमस्थायी पदार्थ है और बिना परिवर्त्तित हुए ही गन्धकाम्ल में घुल जाता है, जब इसे स्रवण करते हैं और इसकी वाष्पों को द्रावक मिश्रण में ठंडा करते हैं तो श्यामिकाम्ल उकनोओ, नामक एक द्रव प्राप्त होता है। यह अस्थायी पदार्थ है, और साधारण वायुके तापक्रम पर ही विस्फुटन के साथ परिवर्त्तित हो जाता है।

पर श्यामिकाम्ल के लवण बहुत स्थायी होते हैं। इन्हें श्यामेत (Cyanate) कहते हैं। निम्न श्यामेत मुख्य है—

१. पां क नो ओ—पांशुज श्यामेत
२. (नो उ$_4$) क नो ओ-अमोनियम श्यामेत
३. पा (क नो ओ)$_2$—पारद श्यामेत
या पारद विस्फुटक

१ पांशुज श्यामिदको सीसपरौषिद या मांगनीज परौषिदके साथ मिलानेसे पाँशुज श्यामेत प्राप्त होता है। इस प्रक्रियामें परौषिद का अवकरण हो जाता

है और पाँशुज श्यामिद ओषदीकृत होजाता है—

पाँ क नो + ओ = पाँ क नो ओ

पांशुज श्यामेत

२. मूत्रिया का ज्वलकीय घोल द्रावक मिश्रणमें श्यामिकाम्लके संसर्गमें लानेसे अमोनियम श्यामेत, (नो $उ_४$) क नोओ, बन जाता है। इसके जलीय या मद्यिक घोलको गरम करनेसे फिर यह मूत्रिया में परिणत हो जाता है। अतः यह प्रक्रिया विपर्येय है—

क ओ < नो $उ_२$ / नो $उ_२$ ⇄ नो $उ_४$ क नोओ

मूत्रिया — अमोनियम श्यामेत

३. वूह्लर की विधि में पाँशुजश्यामेतसे मूत्रिया निम्न प्रकार बनाते हैं—आरम्भिक पदार्थ पाँशुज श्यामिद होता है।

पांशुज श्यामिद, उ क नो
↓ सीस ओषिद
पांशुज श्यामेत, उ क नो ओ
↓ अमोनियम गन्धेत
अमोनियम श्यामेत, नो $उ_४$ क नो ओ
↓
मूत्रिया क ओ (नो $उ_२$)$_२$

२५ ग्राम स्वच्छ पांशुजश्यामिदको लोहेकी थालीमें बड़े बुन्सन दग्धक पर गरम करो और धीरे धीरे करके ७० ग्राम सीस परौषिद (लाल सीसा) डाल दो। इसके संसर्गसे इतना ताप जनित होगा कि श्यामिद गल कर श्यामेतमें परिणत हो जायगा—

४ पां क नो + $सी_३$ $ओ_४$ = ४ क नो ओ पां + ३ सी

इस मिश्रणको लोहेकी थालीमें डाल कर ठण्डा करो और पीस कर १०० घ. श. म. जलमें घोलकर छानकर, पांशुज श्यामेतका घोल पृथक करो। इसमें ८५ ग्राम अमोनियमगन्धेत जलमें घोल कर डालो। मिश्रणको जलकुण्डी पर गरम करके सुखालो। सूखे पदार्थको २५ घ. श. म. दारीलित मद्यके साथ उबाल कर छान लो और द्रवको स्फटिकीकरणके लिये रख दो। धीरे धीरे ठण्डा होने पर मूत्रिया के रवे पृथक होने लगेंगे।

३. पारद विस्फुटक—पारदिकनोषितको नोषिकाम्लमें घोल कर मद्यके संसर्गसे पारदविस्फुटक, पर (क नो ओ)$_२$ + ½ $उ_२$ओ, के रवे प्राप्त होते हैं। मद्य पहले विस्फुटिकाम्ल (Fulminic acid) उ ओ नो: क में परिणत होता है और फिर पारद-विस्फुटक बनता है। प्रक्रिया क्लिष्ट है।

यह विस्फुटक शुष्क होने पर शक्तिशाली विस्फुटक का काम करता है। इस कार्य्यके लिये इस का बहुत उपयोग किया जाता है।

गन्धकोश्यामेत (Thiocyanate)

पांशुज श्यामिद को गन्धकके साथ गरम करनेसे पांशुज गन्धको श्यामेत, पां क नो ग, प्राप्त होता है—

पां क नो + ग = पां क नो ग

कर्बनद्विगन्धिद, $कग_२$ और अमोनिया को अत्यन्त दबाव में गरम करने पर पहले तो अमोनियम गन्धको कर्बमेत बनता है जो जल वाष्पके संसर्गसे अमोनियम-गन्धको श्यामेतमें परिणत किया जा सकता है।

प्रक्रिया निम्न प्रकार है :—

क $ग_२$ + २ नो$उ_३$ = ग क < नो $उ_२$ / ग उ. नो$उ_३$

अमोनियमगन्धको कर्बमेत

ग क < नो $उ_२$ / ग उ नोउ$_३$ = क न ग (नो $उ_४$) + $उ_२$ग

अमोनियम गन्धको श्यामेत

इन गन्धकोश्यामेतों पर उदहरिकाम्ल आदि खनिज अम्लों केप्रभावसे गन्धकोश्यामिकाम्ल, उ क नो ग जनित होता है, जो दुर्गन्धयुक्त वायव्य है। इसे द्रावक मिश्रण द्वारा ठंडा करनेसे द्रवभी किया जा सकता है।

पां क नो ग + उह = पां ह + उ क नो ग

मद्यील श्यामिद और समश्यामिद

Alkyl cyanides & iocyanides

उदश्यामिकाम्ल, उ कनो, को दो रूप में प्रकट कर सकते हैं—

उ — क : नो और उ — नो : क
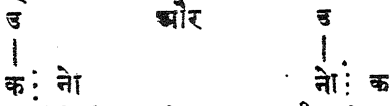
इन दो रूपोंमें से एक में उदजन कर्बन से संयुक्त है और दूसरेमें नोषजनसे व एकमें नोषजन त्रिशक्तिक है और दूसरेमें पंचशक्तिक। वस्तुतः उदश्यामिकाम्ल एक ही प्रकारका उपलब्ध होता है पर इस अम्लके मद्यील सम्मेलन दो प्रकारके उपलब्ध होते हैं। दोनों प्रकारके मद्यील यौगिकोंके गुण परस्परमें भिन्न हैं। उदाहरणतः दारील श्यामिद दो प्रकारके होते हैं, इनमेंसे दूसरे प्रकारके श्यामिद का नाम समश्यामिद रखा गया है—

क उ$_3$ — क : नो (दारील श्यामिद) और क उ$_3$ — नो : क (दारीलसम श्यामिद)
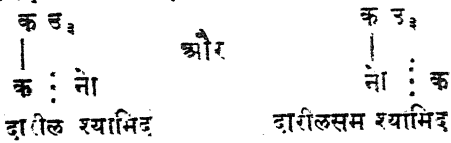
दारील श्यामिद को सिरको नोषिल भी कहा जाता है।

पांशुज श्यामिद और दारील नैलिद के संसर्ग से दारील श्यामिद अर्थात् सिरको नोषिल बनता है—

क उ$_3$ नै + पां क नो = क उ$_3$ क नो + पां नै

सिरको नोषिल सिरकामिद को स्फुर पंचौषिदके साथ करने स्रवणसे भी प्राप्त होसकता है—

क उ$_3$ क ओ नो उ$_2$ = क उ$_3$ क नो + उ$_2$ ओ

इसके में तीव्र पर कटु गंध नहीं होती है। यह सिरकोनोषिल नीरंग द्रव है और जलमें कुछ थोड़ा सा घुलन शील है। ये मद्यील-श्यामिद क्षार अथवा अम्लों द्वारा उद-विश्लेषित होने पर मज्जिकाम्लोंमें परिणत हो जाते हैं—जैसे सिरको नोषिल सिरकाम्ल देता है—

क उ$_3$ क नो + २ उ$_2$ ओ
= नो उ$_3$ + क उ$_3$ क ओ ओ उ

अवकृत करने पर यह अमिनों में परिणत हो जाते हैं जैसे दारील श्यामिद अवकरण द्वारा ज्वलामिन देता है—

क उ$_3$ क नो + २ उ$_2$ = क उ$_3$ क उ$_2$ नो उ$_2$
ज्वलीलामिन

समश्यामिद—दारील सम श्यामिद बनाने के लिये यह आवश्यक है कि दारीलामिन, हरोपिपील और मद्यिक पांशुज उदौषिद का मिश्रण स्रवित किया जाय—

क उ$_3$ नो उ$_2$ + क उ ह$_3$ + ३ पां ओ उ
= क उ$_3$ नो क + ३ पां ह + ३ उ$_2$ ओ
मद्यील समश्यामिद
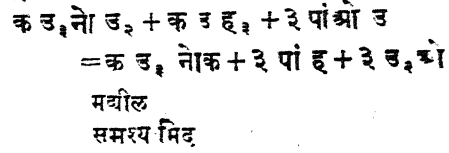
रजत श्यामिद और मद्यील नैलिद का मिश्रण स्रवित करके भी यह बनाया जा सकता है—

क उ$_3$ नै + र क नो = क उ$_3$ नो क + र नै
समश्यामिद
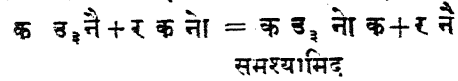
ये समश्यामिद अत्यन्त तीक्ष्ण दुःखदायी गन्धके द्रव पदार्थ हैं। इनके क्वथनांक तद्रूपी श्यामिदों के क्वथनांक से कम होते हैं। उदहरिकाम्ल द्वारा उदविश्लेषित होने पर ये अमिन और पिपिलिकाम्ल देते हैं (सम श्यामिदों और श्यामिदों की भिन्नता इस गुणसे स्पष्ट है)। दारीलसम श्यामिद उदविश्लेषित होने पर पहली प्रक्रियामें दारील पिपीलामिद, क उ$_3$ नो उ. क उ ओ, देता है जो दूसरी प्रक्रियामें दारीलामिन और पिपीलिकाम्ल में परिणत हो जाता है—

१. क उ$_3$ नो क + उ$_2$ ओ = क उ$_3$ नो उ. क उ ओ
दारीलपिपीलामिद

२. क उ$_3$ नो उ. क उ ओ + उ$_2$ ओ
= क उ$_3$ नो उ$_2$ + उ क ओ ओ उ
दारीलामिन पिपीलिकाम्ल
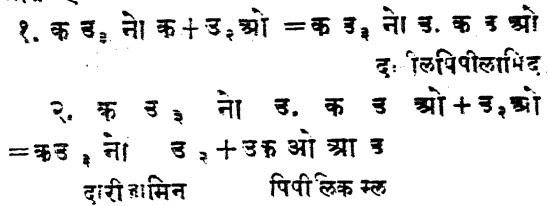
इससे सिद्ध है कि समश्यामिदोंमें मद्यीलमूल नोषजनसे संयुक्त रहता है जो उदविश्लेषण करने पर

भी नोषजन का साथ नहीं छोड़ सका है पर श्यामिदों के संगठनमें नोषजन मद्यील मूलसे संयुक्त नहीं है, क्योंकि उदविश्लेषण पर नोषजन पृथक हो जाता है पर कर्बन मद्यील मूलसे संयुक्त रहता है—

कउ₃ ——उ₂ ओ——> कउ₃ + नो उ₃
|
क नो — क ओ ओ उ
श्यामिद

कउ₃ ——उ₂ओ——> कउ₃ + उकओ ओउ
|
नोक — नो उ₂
समश्यामिद
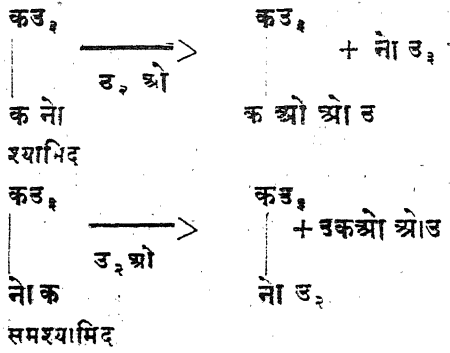
मद्यीलश्यामेत और समश्यामेत

जिस प्रकार उदश्यामिकाम्ल के मद्यील सम्मेल श्यामिद और समश्यामिद होते हैं, उसी प्रकार श्यामिकाम्लके मद्यीलसम्मेल श्यामेत और सम श्यामेत कहलाते हैं।

श्यामजन हरिद, क नो ह, को सैन्धक मद्येतके साथ प्रभावित करनेसे मद्यील श्यामेत बनते हैं। दारील मद्येतसे दारील श्यामेत निम्न प्रकार बनता है:—

क नो ह + सै ओ क उ₃ = नो क ओ क उ₃ + सै ह
मद्यील श्यामेत
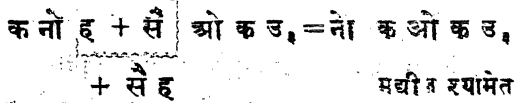
ये नीरंग द्रव हैं जिनमें ज्वलकीय गन्ध होती हैं। ये अस्थायी पदार्थ हैं।

समश्यामेत अधिक स्थायी होते हैं। वुर्जने दारील पाँशुज गन्धेत, क उ₃ पां ग ओ₄ को पांशुज श्यामेत के साथ स्रवण करके इसे बनाया था—

क उ₃ ओ. ग ओ₃ पाँ + पाँ नो क ओ
= क उ₃ नो क ओ + पाँ₂ ग ओ₄
दारीलसमश्यामेत
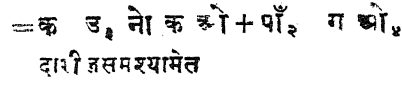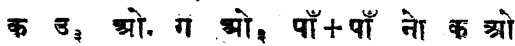
रजत श्यामेत और दारीलनैलिद के मिश्रणको भी गरम करनेसे यह प्राप्त होसकता है—

कउ₃ नै + र नो क ओ = क उ₃ नो : क ओ + र नै
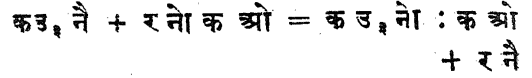
ये उड़नशीलद्रव हैं जिनमें दम घुटाने वाली तीव्र गन्ध होती है। चारोंके साथ उबालनेसे ये अमिनोंमें निम्न प्रकार परिणत हो जाते हैं—

क उ₃ नो : क ओ + उ₂ ओ = क उ₃ नो उ₂ + क ओ₂
दारील सम श्यामेत — दारीलामिन
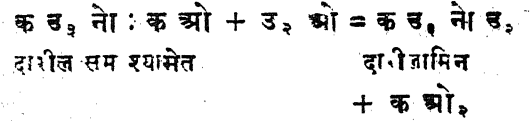
दारीलनैलिद और पाँशुजगन्धकोश्यामेत के प्रभावसे दारीलगन्धकोश्यामेत भी बन सकते हैं—

पाँ क नो ग + क उ₃ नै = क उ₃ क नो ग + पाँ नै
दारीलगन्धको श्यामेत
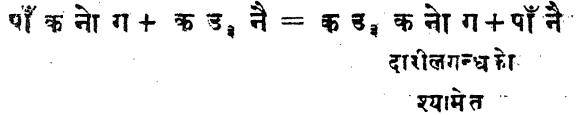
दारीलसमगन्धको श्यामेत को सरसों का तैल भी कह सकते हैं क्योंकि इसमें वैसीही गन्ध होती है। यह कर्बन द्विगन्धिद और दारीलामिन की प्रक्रियासे बनाया जाता है-पहले दारीलामिनदारीलगन्धकोकर्बमेत बनता है—

क ग₂ + २ नो उ₂ क उ₃ =
क ग < नो उ क उ₃ / ग उ नो उ₂ कउ₃
दारीलामिनदारीलगन्धकोकर्बमेत
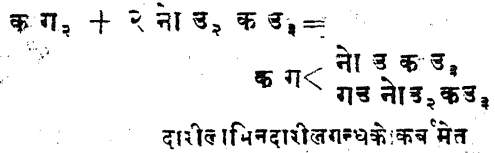
इसको, यदि अब पारदिकहारिदसे प्रभावित किया जाय तो दारीलसमगन्धको श्यामेत या दारील तैल प्राप्त हो सकता है।

क ग < नोउ. कउ₃ / ग उ. नो उ₂ क उ₃ = ग क : नो कउ₃ + कउ₃ नोउ₂ + उ₂ ग
दारीलसमगन्धको श्यामेत
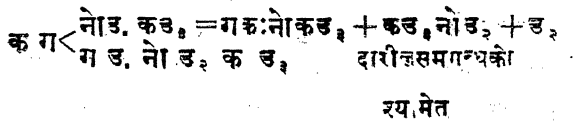
२९ पारद का घनत्व

ग्राम प्रति घ. श. म. में। तापक्रम उदजन माप में।

तापक्रम	०	२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८
	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३
—२०°श	·६४५०	·६४००	·६३५१	·६३०१	·६२५१	·६२०२	·६१५२	·६१०३	·६०५३	·६००४
०	·५९५५	·५९०५	·५८५६	·५८०६	·५७५७	·५७०८	·५६५९	·५६०९	·५५६०	·५५११
२०	·५४६२	·५४१३	·५३६४	·५३१५	·५२६६	·५२१७	·५१६८	·५११९	·५०७०	·५०२२
४०	·४९७३	·४९२४	·४८७५	·४८२६	·४७७८	·४७२९	·४६८०	·४६३२	·४५८३	·४५३४
६०	·४४८६	·४४३७	·४३८९	·४३४०	·४२९२	·४२४३	·४१९५	·४१४६	·४०९८	·४०५०
८०	·४००१	·३९५३	·३९०४	·३८५६	·३८०८	·३७५९	·३७११	·३६६३	·३६१५	·३५६६
		२०	४०	६०	८०	००	१२०	१४०	१६०	१८०
१००	१३·३५१८	१३·३०४	१३·२५७	१३·२०९	१३·१६२	१३·११५	१३·०६८	१३·०२१	१२·९७४	१२·९२७
३००	१२·८८१	१२·८३४	१२·७८७	१२·७४	—	—	—	—	—	—

३० ज्वलील मद्यका घनत्व, क$_2$ उ$_5$ ओ उ, जलीय

ग्राम प्रति घ. श. म. में °/o से तात्पर्य १०० ग्राम जलके घोलमें मद्यकी मात्रा (ग्राममें) है, तापक्रम उदजन माप में— १७° श पर

°/o	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९
०	·९९८८	·९९६९	·९९५१	·९९३३	·९९१६	·९८९९	·९८८४	·९८६९	·९८५४	·९८४०
१०	·९८२६	·९८१३	·९८००	·९७८७	·९७७५	·९७६२	·९७५०	·९७३७	·९७२५	·९७१३
२०	·९७००	·९६८७	·९६७४	·९६६१	·९६४७	·९६३३	·९६१९	·९६०४	·९५८९	·९५७३
३०	·९५५७	·९५४०	·९५२४	·९५०६	·९४८९	·९४७०	·९४५२	·९४३३	·९४१४	·९३९४
४०	·९३७५	·९३५४	·९३३४	·९३१३	·९२९२	·९२७१	·९२५०	·९२२८	·९२०७	·९१८५
५०	·९१६३	·९१४०	·९११८	·९०९६	·९०७३	·९०५१	·९०२८	·९००५	·८९८२	·८९५९
६०	·८९३६	·८९१३	·८८९०	·८८६७	·८८४३	·८८२०	·८७९७	·८७७३	·८७४९	·८७२६
७०	·८७०२	·८६७८	·८६५५	·८६३१	·८६०७	·८५८२	·८५५८	·८५३४	·८५१०	·८४८५
८०	·८४६१	·८४३६	·८४११	·८३८६	·८३६१	·८३३६	·८३१०	·८२८५	·८२५९	·८२३२
९०	·८२०६	·८१७९	·८१५२	·८१२४	·८०९६	·८०६८	·८०३९	·८०१०	·७९८०	·७९५०
१००	·७९१९	—	—	—	—	—	—	—	—	—

दूसरे तापक्रमके लिये उपर्युक्त और निम्न अंकोंसे गणना की जा सकती है।

२२°श पर

०°/o, ·९९७८; १०°/o, ·९८१३; २०°/o, ९६७८; ३०°/o, ·९५२६; ४०°/o; ९३३८; ५०°/o, ·९१२२; ६०°/o, ·८८९५; ७०°/o, ·८६६०, ८०°/o, ·८४१७; ९०°/o, ·८१६२; १००°/o, ·७८७६

३१ उदहरिकाम्ल का घनत्व, उह, जलीय

१५° श पर ग्राम प्रति घ. श. म. में

घनत्व	घोल के १००ग्रा.में (ग्राम उह)	घोल के १ लिटरमें (ग्राम उह)	±१°के लिये घनत्व परिवर्तन	घनत्व	घोलके १००ग्रा.में (ग्राम उह)	घोलके १ लिटरमें (ग्राम उह)	±१°के लिये घनत्व परिवर्तन	घनत्व	घोल के १००ग्रा.में (ग्राम उह)	घोल के १ लिटरमें (ग्राम उह)	±१°केलिये घनत्व परिवर्तन
१·०१	२.१४	२२	·०००१६	१·०८	१६·१५	१७४	·०००३५	१·१५	२९·६	३४०	·०००५२
१·०२	४.१३	४२	·०००१९	१·०९	१८·१	१९७	·०००३८	१·१६	३१·५	३६६	·०००५४
१·०३	६.१५	६४	·०००२१	१·१०	२०·०	२२०	·०००४०	१·१७	३३·५	३९२	·०००५६
१·०४	८.१६	८५	·०००२४	१·११	२१·९	२४३	·०००४३	१·१८	३५·४	४१८	·०००५८
१·०५	१०.१७	१०७	·०००२७	१·१२	२३·८	२६७	·०००४५	१·१९	३७·२	४४३	·०००५९
१·०६	१२.१९	१२९	·०००३०	१·१३	२५·७	२९१	·०००४८	१·२०	३९·१	४६९	·०००६०
१·०७	१४.१७	१५२	·०००३२	१·१४	२७·७	३१५	·०००५०				

३२ नोषिकाम्ल का घनत्व उ नो ओ$_3$, जलीय

१५°श पर ग्राम प्रति घ. श. म. में; $^\circ/_\circ$ नो$_2$ ओ$_5$ = ·८५७ × $^\circ/_\circ$ उ नो ओ$_3$ भारसे

घनत्व	घोल के १००ग्राममें (ग्राममें उ नोओ$_3$)	घोल के १ लिटरमें (ग्राममें उ नोओ$_3$)	±१°के लिये घनत्व परिवर्तन	घनत्व	घोल के १००ग्राममें (ग्राम उ नोओ$_3$)	घोल के १ लिटरमें (ग्राम उ नोओ$_3$)	±१°के लिये घनत्व परिवर्तन	घनत्व	घोल के १००ग्राममें (ग्राम उ नो ओ$_3$)	घोल के १ लिटर में (ग्राम उ नो ओ$_3$)	±१°केलिये घनत्व परिवर्तन
१·०२	३·७०	३८	·०००२२	१.२२	३५.३	४३०	.०००८०	१.४२	६९·८	९९१	००१३७
१·०४	७·२६	७५	.०००२८	१.२४	३८.३	४७५	.०००८६	१·४४	७४·७	१०७५	·००१४३
१·०६	१०·७	११३	.०००३४	१.२६	४१.३	५२१	.०००९१	१.४६	८००	११६८	·००१४९
१·०८	१३·९	१५१	·०००४०	१.२८	४४.४	५६८	·०००९७	१.४८	८६·०	१·७४	००१५४
१·१०	१७·१	१८८	.०००४५	१.३०	४७.५	६१७	.००१०३	१.५०	९४ १	१४११	००१६०
१·१२	२०·२	२२७	.०००५१	१.३२	५०.७	६६९	.००१०९	१·५०४	९६·०	१४४४	००१६१
१·१४	२३·३	२६६	.०००५७	१.३४	५४.१	७२५	.००११४	१.५०८	९७·५	१४७०	·००१६२
१·१६	२६·४	३०६	.०००६२	१.३६	५७.६	७८३	.००१२०	१.५१२	९८·५	१४९०	·००१६३
१·१८	२९·४	३४७	.०००६८	१.३८	६१.३	८४६	.००१२६	१.५१६	९९·२	१५०४	·००१६४
१·२०	३२·४	३८८	.०००७४	१.४०	६५.३	९१४	·००१३२	१.५२०	९९·७	१५१५	·००१६६

३३ सैन्धक उदौषिद का घनत्व सै ओउ. जलीय

१८° श पर ग्राम प्रति घ. श. म. में। % से तात्पर्य्य १०० ग्राम घोल में सै ओउ के ग्रामों से है।

%	घनत्व	%	घनत्व	%	घनत्व	%	घनत्व	%	घनत्व
०	·९९८६	१०	१.१०९८	२०	१·२२०२	३०	१·३२९०	४०	१·४३१४
१	१·०१००	११	१.१२०८	२१	१·२३१२	३१	१·३३९९	४१	१·४४११
२	१·०२१३	१२	१.१३१९	२२	१·२४२२	३२	१·३५०२	४२	१·४५०८
३	१·०३२४	१३	१.१४२९	२३	१·२५३२	३३	१·३६०५	४३	१·४६०४
४	१·०४३५	१४	१·१५४०	२४	१.२६४१	३४	१·३७०८	४४	१·४६९९
५	१·०५४५	१५	१·१६५०	२५	१·२७५१	३५	१·३८११	४५	१·४७९४
६	१·०६५६	१६	१·१७६१	२६	१.२८६०	३६	१·३९१३	४६	१·४८९०
७	१·०७६६	१७	१·१८७१	२७	१·२९६८	३७	१·४०१४	४७	१·४९८५
८	१·०८७७	१८	१.१९८१	२८	१·३०७६	३८	१·४११५	४८	१·५०८०
९	१·०९८७	१९	१ २०९२	२९	१.३१८४	३९	१·४२१५	४९	१.५१७४

३४ कुछ जलीय घोलों के घनत्व

१८° श पर ग्राम प्रति घ. श. म में। % से तात्पर्य्य १०० ग्राम घोल में अनार्द्र पदार्थ के ग्रामों से है।

पदार्थ	५ %	१० %	१५ %	२० %	२५ %	पदार्थ	५ %	१० %	१५ %	२० %
सै ह	१·०३४	१·०७१	१·१०९	१·१४८	१·१९०	म ग ओ$_4$	१·०५०	१·१०४	१·१६०	१·२२०
सै नो ओ$_3$	१·०३३	१·०६८	१·१०५	१·१४४	१·१८५	म ह$_2$	१·०४४	१·०९३	१·१४७	१·२०४
सै सिरकेत	१·०२५	१·०५१	१·०७८	१·१०५	१·१३२	नो उ$_4$ ह	१·०१४	१·०२९	१·०४३	१·०५७
उ$_3$ स्फु ओ$_4$	१·०२७	१·०५४	१·०८३	१·११४	१·१४५	ता ग ओ$_4$	१·०५१	१·१०७	१·१६७	१·२३०
द ग ओ$_4$	१·०५१	१·१०७	१·१६७	१·२३२	१·३०५	पां ह	१·०३१	१·०६४	१·०९८	१·१३३
लो ह$_3$	१·११०	१·१९५	१·२२६	१·२७८	१·३३१	पां नो ओ$_3$	१·०३०	१·०६३	१·०९७	१.१३३
रत ह$_2$	१·०४४	१·०९३	१·१४६	१·२०२	१·२५६	पां$_2$ ग ओ$_4$	१·०३९	१·०८१	—	—
म ह$_2$	१·०४२	१·०८६	१·१३०	१·१७६	१ २२५	पां$_2$ रा$_2$ ओ$_7$	१·०३५	१·०७२	१·१०९	—

पदार्थ	५ %	१० %	१५ %	२० %	२५ %	३० %	३५ %	४० %	४५ %	५० %
पां रु	१·०३५	१·०७३	१·११४	१·१५७	१·२०४	१·२५४	१·३०७	१·३६५	१·४२९	—
पां नै	१·०३६	१·०७६	१·१२०	१·१६८	१·२१८	१ २७३	१·३३२	१·३९७	१·४६८	१·५४५
पां$_2$ क ओ$_3$	१·०४४	१·०९१	१·१४०	१·१९१	१·२४४	१·२९९	१·३५६	१·४१५	१·४७७	१·५४१
र नो ओ$_3$	१·०४२	१·०८९	१·१४०	१·१९९	१·२५५	१·३२१	१·३८४	१.४७७	१·५७०	१·६७४
सी(सिरकेत)$_2$	१·०३६	१·०७५	१·११८	१·१६३	१·२१२	१·२६५	१·३२२	१·३८६	—	—
शर्करा	१·०१८	१·०३९	१·०६०	१·०८१	१·१०४	१·१२८	१·१५२	१·१७७	१·२०३	१·२३०

३५ भिन्न भिन्न तापक्रमों और दबावों पर शुष्क वायु का घनत्व

ग्राम प्रति. घ. श. म.; ४५° अक्षांश पर ०° श में पारद के स. म. में दबाव, ग = ९८०·६२ श. म. प्रति स². ये घनत्व $\frac{\cdot 001293}{(1 + .00367 \text{ त})} \cdot \frac{\text{ह}}{760}$ से निकाले गये हैं।

तापक्रम (त)	दबाव (ह) सहस्रांश मीटरों में							
	७१०	७२०	७३०	७४०	७५०	७६०	७७०	७८०
०° श	·००१२०८	·००१२२५	·००१२४२	·००१२५९	·००१२७६	·००१२९३	·००१३१०	·००१३२
२	·००११९९	·००१२१६	·००१२३३	·००१२५०	·००१२६७	·००१२८४	·००१३००	·००१३१७
४	·००११९०	·००१२०७	·००१२२४	·००१२४१	·००१२५८	·००१२७५	·००१२९१	·००१३०८
६	·००११८२	·००११९८	·००१२१५	·००१२३२	·००१२४८	·००१२६५	·००१२८२	·००१२९८
८	·००११७३	·००११९०	·००१२०७	·००१२२३	·००१२४०	·००१२५६	·००१२७३	·००१२८९
१०	·००११६५	·००११८१	·००११९८	·००१२१४	·००१२३१	·००१२४७	·००१२६४	·००१२८०
१२	·००११५७	·००११७३	·००११९०	·००१२०६	·००१२२२	·००१२३८	·००१२५५	·००१२७१
१४	[illegible]	·००११६५	·००११८१	·००११९७	·००१२१३	·००१२३०	·००१२४६	·००१२६२
१६	·००११४१	·००११५७	·००११७३	·००११८९	·००१२०५	·००१२२१	·००१२३७	·००१२५३
१८	·००११३३	·००११४९	·००११६५	·००११८१	·००११९७	·००१२१३	·००१२२९	·००१२४५
२०	·००११२५	·००११४१	·००११५७	·००११७३	·००११८९	·००१२०५	·००१२२०	·००१२३६
२२	·००१११८	·००११३४	·००११४९	·००११६५	·००११८१	·००११९६	·००१२१२	·००१२२८
२४	·००१११०	·००११२६	·००११४१	·००११५७	·००११७३	·००११८८	·००१२०४	·००१२२०
२६	·००११०३	·००१११८	·००११३४	·००११४९	·००११६५	·००११८०	·००११९६	·००१२११
२८	·००१०९५	·००११११	·००११२६	·००११४२	·००११५७	·००११७३	·००११८८	·००१२०३
३०	·००१०८८	·००११०३	·००१११९	·००११३४	·००११४९	·००११६५	·००११८०	·००११९५

३६ वायव्यों के घनत्व

जिन वायव्यों के घनत्व बिलकुल ठीक निकाले गये हैं, इस सारिणी में दिये गये हैं। ये घनत्व ०° श तापक्रम, ७६० स. म. दबाव पारद का ०° श पर, ४५° अक्षांश की अपेक्षा से ग्राम प्रति लीटर में दिये गये हैं।

वायव्य	घनत्व	ओ की अपेक्षा से घनत्व	वायव्य	घनत्व	ओ की अपेक्षा से घनत्व
	ग्रा/लीटर		नोषिक ओषिद, नो ओ	१.३४०२	०·९३७८६
वायु	१·२९२८	०.९०४९९	अमोनिया, नो $उ_3$	०·७७०८	०·५३९४
ओषजन, $ओ_2$	१·४२९००	१·०००००	कर्बन एकौषिद, क ओ	१·२५०४	०·८७५०२
उद्जन, $उ_2$	०·०८९८७	०·०६२८९	कर्बनद्वि ओषिद, क $ओ_2$	१·९७६८	१·३८३३
नोषजन, $नो_2$	१·२५०७	०·८७५२३	उदहरिकाम्ल, उह	१·६३९८	१.१४७५
आलसीम, ल	१·७८०९	१·२४६३	गन्धकद्वि ओषिद, ग $ओ_2$	२·९२६६	२.०४८०
नोषस ओषिद, $नो_2$ ओ	१·९७७७	१·३८४०			

३७ संपृक्त जल वाष्प का घनत्व

भिन्न भिन्न दबावों में ग्राम प्रति लीटर में घनत्व

वरण	०	०·५	१०	१·५	२·०	२·५	३०	३५	४·०	४५
०	—	०·३१५	०·६०६	०·८८७	१·१६	१·४३	१·७०	१·९७	२·२३	२·४९
५	२	३·०१	३·२६		३·७७	४·०२	४·२७	४·५२	४·७७	५·०२
१०	५.२७	५·५२	५·७६	६·०१	६·२५	६·५०	६·७४	६·९९	७·२३	—

३८ लचकें (Elasticities)

यंगका लचकगुणक (Young's Modulus) या अन्वायाम लचक-गुणक, थ, डाइन प्रति वर्ग श. म. में।

दृढ़तालचक-गुणक (Rigidity, Shearmo dulus, Torsion modulus न, डाइन प्रतिवर्ग. श. म. में।

आयतन लचक गुणक, घनीय (Volume elasticity, Cubic elasticity, Bulk modulus), क, डाइन प्रति वर्ग श. म. में।

संकेचकता (Compressibility) घनीय- $स = \frac{१}{क}$

पौयसाँ की निष्पत्ति (Poisson's Ratio) $प = \frac{\text{चौड़ाई की प्रति इकाई में सिकोड़}}{\text{लम्बाई की प्रति इकाई में बढ़ाव}}$

समरस (Isotropic) पदार्थ के लिये—

$$न = \frac{थ}{२(१+प)} \quad \ldots\ldots \quad (१); \quad प = \frac{थ}{२न} - १ \quad \ldots \quad (२)$$

$$क = \frac{थ}{३(१-२प)} \quad \ldots \quad (३)$$

समरस ठोस पदार्थ के लिये, पौयसाँ की निष्पत्ति $+\frac{१}{२}$ और—१ के बीच में होनी चाहिये, पर कुछ पदार्थोंके लिये जब यह थ और न के मानोंसे निकाली जाती है तो +१ से अधिक हो जाती है।

नियुतभार (megabar) = $१०^{६}$ डाइन प्रति वर्ग श. म. = ·९८७ वातावरण $= \frac{१}{१·०१३}$ वतावरण + समुद्र तलपर ०° श पर ७५०·१५ पारद के स. म. का दबाव; अक्षांश ४५° पर लंदन में ०° तापक्रम पर = ०४९·६६ स. म.।

पदार्थ की लचक इसके पूर्व इतिहास पर भी निर्भर है। नीचे दिये हुए न और प से हिसाब लगाकर और प्रयोग द्वारा निकाले गये अंकोंकी समानता धातुओं की समरसता की परिचायक है।

धातुओं का लचक-गुणक

१८° श पर धातु	यंग का गुणक, थ	दृढ़ता,. न		पौयसाँ की निष्पत्ति		आयतन लचक गुणक क	संकोचकतास प्रति नियुत भार(गणित)
	तुलना या झूलन विधि से	झूलन विधि से	समीकरण (१) द्वारा	प्रयोगित	समीकरण २ द्वारा	समीकरण ३ द्वारा	
स्फटम् (प)*	७०५ × १०^{११}	२·६७ × १०^{११}	२६·३ × १०^{११}	·३३९	·३१०	७·४६ × १०^{११}	१·-३ × १०^६
विशद (ढ) स्वच्छ	३·१६	—	१·२०	·३३	—	३·१४	३·२
संदस्तम् (ढ) "	४·९६	—	१·९२	·३०	—	४·१२	२·४
ताम्र (प) "	१२·३	४·५५	४·५५	३३७	·३५६	१३·१	·७४
स्वर्ण (प) "	८·०	२·७७	२·८०	·४२२	·४९५	१६·६	·६०
लोहा (प) १°/० ढ	२१·३	—	८·३१	·२८०	—	१६·१	६३
पात (प) १°/० ढ	२०·९	८·१२	८·१२	·२८७	·२८७	१६·४	·६२
सीसम् (ढ) शुद्ध	१·६२	—	·५६२	·४४६	—	५·००	०·०
नक्लम् (प) †	२०·२	—	७·७०	·२०९	—	१७·६	·५१
पैलादम् (ढ) शुद्ध	११·३	५·११	४·०४	·३९३	·१०१	१७·६	·५७
परौप्यम् (ढ) "	१६·८	६·१०	६·०४	·३८७	·२६८	२४·७	·४१
रजत (प) "	७·९०	२·८७	२·८६	·३७९	·३६९	१०·९	·९२
बंग (ढ) "	५·४३	—	२·०४	·३३	—	५·२९	१·९
काँसा (ढ) ‡	८·०८	३·४३	२·९७	·३५८	·१०७	९·५२	१·०
यूरेका (प) §	१६·३	६·११	६·११	·३२५	·३२९	१५·५	·६५
माँगेनिन (प) ‖	१२·४	४·६५	४·६५	·३२९	·३२९	१२·१	·८३

(ढ) का अर्थ ढाला हुआ. प का अथ पिटवाँ, ❀ ·५°/० लो, ·४°/० ता; † ९७°/० न, १·४°/० को १°/० मा ‡ ८५·७°/० ता, ७·२°/० द, ६·४°/० व; § ६०°/० ता. ४०°/० न; ‖ ८४°/० ता, १२°/० मा, ४°/० न।

प्रयोगशाला में उपयोग में आने वाली साधारण वस्तुओं के लिये अंक निम्न प्रकार हैं।

वस्तु	यंगकालचकगुणक थ	दृढ़ता, न.	आयतन लचक गुणक क	पोयसाँकीविनत्ति,प
ताम्र	१२·४-१२·९ × १०^११	३·९-४ × १०^११	१४·३ × १०^११	·२६
लोहा (पिटवाँ)	१९-२०	७·७-८·३	१४·६	·२७
,, (ढलवाँ)	१०-१३	३·५-५·३	९·६	·२३-·३१
इस्पात......	१९·५-२०·६	७·९-८·९	१८·१	·२५-·३१
दस्तम् (१% सी)	८·७ §	३·८	—	·२१
पीतल ६६ ता, ३४द)	९·७-१०·२	३·५	१० ६५	·३४-·४०
जर्मन चाँदी *	११·६	४·३-४·७	—	·३७
प्लैटि नोइड †	१३·६	३·६०	—	·३७
फास्फर ब्रोञ्ज ‡ (स्फुर काँसा)	१२·०	४·३६	—	·३८
क्वार्ट्ज सूत्र	५·१८	३·०	१·४	—
इंडिया रबर कार्बन	·०४८-·०५२	·०००१६	—	·४६-·४९
जेना काँच-	६·५-७·८	२·६-३·२	४·०-५·९	·२०-·२७
,, ,, बिल्लूरी	५·०-६·०	२·०-२·५	३-६-३·८	·१२-·२६

* ६० ता, १२ न, २५द † थोड़ा वुल्फ्रामम मिली हुई जर्मन चाँदी

‡ ९२·५ ता, ७ व, ·५ स्फु। § शुद्ध दस्तम् १२.५ × १०^११ डाइन श·म·^२

३९ पदार्थों की तनाव-शक्ति (Tensile Strength)

तनावपन या भञ्जक प्रभाव (Stress) डाइन प्रति वर्ग श· म· में। लचक सीमा भञ्जक प्रभाव के पहिले ही उल्लंघित हो जाता है। तार में परिणत करने की विधि द्वारा पदार्थ की शक्ति बढ़जाती है, और जितनाही तार पतला होगा उतना ही भञ्जन भार अधिक होगा।

हजारग्राम प्रति वर्ग स. म. में परिणत करनेके लिये १०^८ से भाग देना ही समुचित होगा। पौण्ड प्रति वर्ग इञ्चमें परिणत करनेके लिये ७ × १०^४ से भाग देना चाहिये।

पदार्थ	तनावपन	पदार्थ	तनावपन
स्फट (ढलवाँ)	डाइन । श·म·²	तार	
	६·९ × १०¹	स्फट	१·७-२·०
,, (बेला हुआ)	·९-१·५	ताँबा (कठोराकृष्ट)	४·०-४·६
ताम्र (ढाला हुआ)	१·२-१·६	,, निर्वाप्त (annealed)	२·८-३·१
,, (बेलाहुआ	२·०-२·५	स्वर्ण	२·६
लोहा (इस्पात)	२·३-७·०	लोह – (कठोराकृष्ट)	५·४-६·२
सीस	·१६	,, निर्वाप्त (annealed)	४·६
वंग	·१६-·३८	इस्पात (साधारण)	११
दस्तम्	१·२-१·५	नकलम्	५·३
पीतल साधारण ढालाहुआ	१·५-१·९	परौप्यम्	३·३
स्फुर काँसा	२·५-२·८	रजत	२·९
काँच	·३·९	तन्तालम्	४·२
रेशम का सूत	२६	पीतल	३·१-३·९
क्वार्ट्ज सूत	१०	स्फुट · काँसा	६·९-१७·८
		जर्मन चाँदी	४·६

४० तत्वोंकी संकोचकता (Compressibility)

संकोचकताका गुणक = $\text{स} = \frac{१}{\text{या}} \cdot \frac{\text{तया}}{\text{तद}}$, यदि दबावमें तद परिवर्त्तन होनेसे आयतन या में तया परिवर्त्तन हो (तापक्रमस्थिर)।

नीचे दिये गये स के मान प्रतिनियुतभार (अर्थात् $१०^६$ डाइन प्रतिवर्ग. श. म.) है। प्रति वातावरण संकोचकता निकालनेके लिये स के मान में इसका $\frac{१}{६०}$ बढ़ा देना चाहिये। कमरे का तापक्रम। दबाव १०० से ५०० नियुतभार तक।

पारदकी संकोचकता = ·००००३७१ प्रतिनियुतभार पर निर्भर। निम्न परिणामों से यह सूचित होता है कि इनका परमाणु भारोंसे आवर्त्त सम्बन्ध है।

तत्व	स	तत्व	स	तत्व	स	तत्व	स
स्फ	१·३ × १०⁻⁶	ह (द्रव)	९५ × १०⁻⁶	पा	३.७१ × १०⁻⁶	शै	.१६ × १०⁻⁶
आ	२·२ ,,	रा	.७ ,,	यु	·२६ ,,	र	·८४
च	४·३ ,,	ता	.५४ ,,	न	·२७ ,,	सै	१५.४
वि	२·८ ,,	स्व	·४७ ,,	पै	·३८ ,,	ग	१२·५
रु	५१·८ ,,	नै	१३ ,,	स्फु,लाल	९.० ,,	थै	२·६
सं	१.९ ,,	लो	·४० ,,	,,पीला	२०.३ ,,	व	१·७
वो	६१ ,,	सी	२·२ ,,	प	·२१ ,,	द	१·५
ख	५.५ ,,	शो	८·८ ,,	पां	३१·५ ,,		
क-हीरा	·५ ,,	म	२·७ ,,	ला	४०. ,,		
,, लेखनिक	३ ,,	मा	.६७ ,,	श	११·८ ,,		

४१ द्रवों की स्निग्धता (Viscosity)

यदि किसी द्रवमें एक इकाई दूरी पर दो समानान्तर तल (Plane) हों और यदि इनमें से एक तल दूसरे की अपेक्षा इकाई वेग से अपने ही तलमें चल रहा हो तो प्रत्येक तलके इकाई क्षेत्रफल पर होनेवाली स्पर्श रेखिक शक्ति उस द्रव की स्निग्धता के बराबर होगी। स्निग्धता के परिमाण तला$^{-1}$ सा$^{-1}$ — हैं।

स्निग्धता निकालनेके लिये सूची-नलिका-विधि (Capillary tube method) में पौयसूले के निम्न समीकरण का उपयोग किया जाता है:-

स्निग्धता ध = $\frac{\pi \text{ द अ}^4 \text{ स}}{8 \text{ ल या}}$ यदि नलीके दो सिरों पर का दबावअन्तर द हो, नली का अर्धव्यास अ, लम्बाई ल और स समय में द्रवका प्रदत्त प्रायतन या हो।

४२ जलकी स्निग्धता

प्रवाह (efflux flow) विधि से निकाली गई और निकास की गति सामर्थ्य के अनुकूल शोधित।

तापक्रम	स्निग्धता	ताप. क्र.	स्निग्धता	ताप. क्र.	स्निग्धता	ता. क्र.	स्निग्धता
	श. ग. स.						
०°श	.०१७९३	२०°श	·०१००६	५०°.श	·००५४९	९०°.श	·००३१६
५	·०१५२२	२५	·००८९३	६०	·००४६९	१००	·००२८४
१०	·०१३११	३०	·००८००	७०	·००४०६	१२५	·००२२३
१५	·०११४२	४०	·००६५७	८०	·००३५६	१५३	·००१८१

४३ पारद की स्निग्धता

	-२०°श	०°	२०°	५०°	१००°	२००°	३००°
स्निग्धता (श. ग. स)	·०१८६	·०१६९	·०१५६	·०१४१	·०१२२	·०१०१	·००९३

४४ कुछ द्रवों की स्निग्धतायें

पदार्थ	०°श	१०°	२०°	३०°	४०°	५०	६	७०
	श.ग्रा.से.							
दारीलमद्य, क उ$_५$ ओ	·००८१३	·००६८६	·००५६१	·००५१५	·००४५०	.००३६६	.००३४६	—
ज्वलील मद्य, क$_२$उ$_६$ओ	·०१७७	·०१४५	·०११६	·००६८६	·००८२७	.००६६७	००५६१	·००५०४
ज्वलक, (क$_२$उ$_५$) $_२$ ओ	·००२८६	·००२५८	·००२३४	·००२१२	✱	—	—	—
हरोपिपील, कउह$_३$	·००७००	·००६२६	·००५६४	·००५११	·००४५५	.००४२६	००३६०	—
कर्बन चतुर्हरिद, कह$_४$	·०१३५	·०११३	·००६६६	·००८४१	·००७३८	.००६५३	.००५८३	·००५२४
कर्बन द्विगन्धिद, कग$_२$	·००४२६	·००३६६	.००३६७	·००३४२	·००३१६	—	—	—
कर्बनद्वि ओषिद, द्रव	—	·०००८५	·०००७१	·०००५३	—	—	—	—
वानजावीन क$_६$ उ$_६$	·००६०२	·००७५६	·००६४६	·००५६२	·००४६२	.००४३७	.००३६०	·००३५?
नीलिन, क$_६$उ$_५$ नो उ $_२$	—	·०६५५	·०४४०	·०३१६	·०२४१	.०१८६	.०१५६	—
मधुरिन्, क$_३$ उ$_५$ (ओउ)$_३$	४६·०	२१.०	८·५	३·५	—	—	—	—
अरुणिन्	·०१२६	·०१११	·००६६३	·००८६८	·००८१७	.००७४६	—	—
पिपीलिकाम्ल, उकओ$_२$ उ	—	·०२२४	·०१७८	·०१४६	·०१२२	·०१०३	००८९	.००७७
सिरकाम्ल, क उ$_३$ कओ$_२$उ	—	—	·०१२२	·०१०४	·००६०	·००७६	·००७०	·००६२

४५ कुछ जलीय घोलोंकी सापेक्षिक स्निग्धतायें।

घोलकी शक्ति १ सामान्य (1 normal)। जलकी अपेक्षासे उसी तापक्रमपर स्निग्धतायें।

पदार्थ	तापक्रम	सापेक्षिकस्निग्धता	पदार्थ	तापक्रम	सापेक्षिक स्निग्धता
अमोनिया	२५°श	१·०२	पांशुज हरिद	१°.६ श	.९८
अमोनियम हरिद	१७·६	·६८	पांशुज नैलिद	१७६	.९१
खटिक हरिद	२०	१.३१	सैन्धक उदेत	२५	१.२४
उदहरिकाम्ल	२५	१.०७	गंधकाम्ल	२५	१.०९

सूर्य सिद्धान्त

[ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद]

चन्द्रग्रहणका परिलेख खींचनेकी रीति बतलाने के बाद विचार था कि संक्षेपमें अर्वाचीन रीतिसे सूर्यग्रहणकी गणनाकी रीति जिसे बेसेलियन रीति कहते हैं लिखूं परन्तु इस समय दो पुस्तकोंके* अभावसे तथा कई विघ्न बाधाओंके कारण समयाभावसे भी यह इच्छा अभी पूरी नहीं हो सकती। आशा है कि पुस्तक समाप्त होनेपर परिशिष्टमें यह विषय अच्छी तरह समझाया जा सकेगा!

इस समय ग्रहणके सम्बन्धमें थोड़ीसी बातें और लिखकर यह अध्याय पूरा कर दिया जायगा।

पृष्ठ ६५३-६५४ में बतलाया गया है कि जब सूर्य चन्द्रमाके किसी पात, राहु या केतुके पास होता है तभी अमावस या पूर्णमासी के दिन सूर्य या चन्द्रग्रहण सम्भव है। इसलिए यह सिद्ध है कि ग्रहणका फेरा सूर्य और चन्द्रमाके पातकी गतियोंपर अवलम्बित है। यदि चन्द्रमाका पात अचल होता तो सूर्य दोनों पातोंके निकट वर्षमें दो बार एक ही महीनेमें पहुँचता जिससे ग्रहण लगनेके महीने और तिथि स्थिर रहते। परन्तु चन्द्रमाका पात प्रतिदिन ३′१०″·६४ पच्छिमकी ओर चलता है जब कि सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९′८″·३३ पूर्वकी ओर है। इसलिए प्रति दिन सूर्य चन्द्रपातसे ६२′१८″·९७ अथवा ६२′१९″ दूर होता जाता है। प्रतिदिन इतना दूर होते होते सूर्य फिर उसी पातके पास ३६०° ÷ ६२′१९″ = १२९६००० ÷ ३७३९ = ३४६·६२ दिन में पहुँचता है। दूसरे पातके पास पहुँचनेमें इसका आधा समय १७३·३१ दिन लगता है। यदि अमावस या पूर्णमासीके फेरे भी इतने ही दिनमें पूरे होते तो प्रत्येक ३४६·६२ या १७३·३१ दिन के उपरान्त ग्रहण देख पड़ते। परन्तु चन्द्रमासका मध्यममान २९·५३०५९ दिन है ११ महीनेमें ३२४·८३६४७ दिन और १२ महीनेमें ३५४·३६७०५ दिन के समान है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ग्रहणका फेरा ३४६·६२ दिनमें नहीं पड़ सकता।

परन्तु २२३ चन्द्रमासमें २२३ × २९·५३०५९ दिन अथवा ६५८५·३२ दिन होते हैं और ३४६·६२ दिनके १९ फेरेमें १९ × ३४६·६२ = ६५८५·७८ दिन होते हैं इस लिए ग्रहणोंका फेरा अर्थात् ग्रहण चक्र ६५८५·३२ दिनोंका होता है। इतने दिनोंके बाद उसी प्रकार के ग्रहण फिर आरंभ होते हैं। इस लिए इस अवधिको ग्रहणचक्र कहा जा सकता है। हमारे प्राचीन ज्योतिष में इस चक्र की चर्चा नहीं है। पाश्चात्य ज्योतिषमें इसका नाम सरोस (saros) है और इसे खाल्दिया निवासियोंने विक्रमी संवत्के आरंभसे साढ़े ६ सौ बर्ष पूर्व निश्चय कियाथा।

इस ग्रहण चक्रसे खल्दिया वालोंको ग्रहणोंका पता लगाने में बड़ी सुबिधा होती थी क्योंकि बिना लम्बी चौड़ी गणना किये ही केवल ६५८५·३१ दिनों की ग्रहणोंकी सारणी से यह सहज ही जान लेते थे कि भविष्यमें ग्रहण कब लगेगा। परन्तु

* इन पुस्तकोंके नाम (१) Chauvenet's Manual of Spherical and Practical Astronomy Vol I और (२) Loomi's Introduction to Practical Astronomy. पहली पुस्तक में यह विषय बहुत अच्छी तरह समझाया गया है। यह दोनों पुस्तकें इलाहाबाद की पब्लिक लाइब्रेरी मे हैं परन्तु इस समय वार्षिक निरीक्षण के कारण अप्राप्य हैं।

यह याद रखना चाहिये कि यह चक्र (युग) सूर्य, चन्द्रमा और राहु की मध्यम गतियोंके अनुसार निकाला गया है इस लिए इसमें थोड़ी सी स्थूलता है। दूसरे यह युग पूरे ६५८५ दिनोंका नहीं है वरन् सात आठ घंटे अधिक है। इसका यह फल होता है कि उसी स्थान में और उसी समय वही ग्रहण कभी देख पड़ेगा और कभी नहीं। जैसे प्रयागमें सूर्यास्तके समय चन्द्रग्रहण देख पड़ा तो दूसरी बार ६५८५ दिनों के बाद सूर्यास्त से सात आठ घंटे बाद कोई २ बजे रातको यही चन्द्र ग्रहण फिर देख पड़ेगा। परन्तु तीसरी बार यह ग्रहण उस समय लगेगा जब प्रयागमें सूर्योदय हो चुका रहेगा। इस लिए यह प्रयागमें नहीं देख पड़ेगा परन्तु प्रयागके पच्छिम उस स्थानमें जहां ग्रहणके समय रात्रि रहेगी देख पड़ेगा।

एक सौर वर्षमें ३६५.२५८७६ दिन होते हैं। इस लिए १८ वर्षोंमें ६५७४.६५७७ दिन हुए जो ग्रहण चक्रसे केवल १०.६६ दिन कम है। इस लिए प्रकट है कि यदि ग्रहण चक्र का आरंभ मेष संक्रान्तिके दिन हुआ तो दूसरे चक्रका आरम्भ मेष संक्रान्तिसे १०.६६ दिन उपरान्त होगा और तीसरे चक्र का आरंभ मेष संक्रान्ति से २१.३२ दिन पर होगा।

एक पात पर कितने ग्रहण हो सकते है—एक चान्द्रमासमें २९.५३ दिन होते हैं इस लिए एक पक्षमें १४-७६५ दिन हुए। ऊपर बतलाया गया है कि १ दिन में सूर्य राहुसे ६२′१९″ दूर होता है। इस लिए एक पक्षमें १४-७६५ × १° २′ १९″ = १५° २०′ ६″ दूर होता है। यदि पूर्णमासीके दिन चन्द्रमा पात पर हो तो इस दिन सर्वग्रास चन्द्रग्रहण अवश्य लगेगा। इसी समय सूर्य दूसरे पात पर होगा। इस लिए इस से एक पक्ष पहले और पीछे दोनों अमावसों पर सूर्य दूसरे पात से १५° २०′ आगे पीछे रहेगा जो सूर्य ग्रहण की महत्तम सीमा १८°.५ से कम है। इसलिए इन दोनो अमावसों में खंड सूर्य ग्रहण हो सकता है (देखो पृष्ठ ६६०-६६२)। इस प्रकार एक चान्द्रमास में अधिक से अधिक तीन ग्रहण हो सकते हैं जब कि सूर्य एक पात से १५°२० आगे पीछे होता है। परन्तु ऐसे तीनों ग्रहण एक ही स्थान से बहुत कम देख पड़ते हैं।

यदि अमावस्या के दिन सूर्य पातपर होतो इस दिन सूर्य-ग्रहण अवश्य होगा। इससे पहले या पीछे आनेवाली पूर्णमासी के दिन सूर्य इस पात से १५°२०′ पहले या पीछे होगा इस लिए

महाभारत में एक पक्षमें दो ग्रहणों की चर्चा इस प्रकार है:—

चतुर्दशीं पंचदशी भूतपूर्वा च षोडशी। इमां तुनाभिजानेहममावस्यां त्रयोदशीं ॥

चन्द्रसूर्याबुभौ ग्रस्ता वेकमासीं त्रयोदशीं ॥ ५२ ॥ भीष्म पर्व अध्याय ३

यहां एक पक्ष में दो ग्रहणों कीही चर्चा है वरन् यह भी है कि एक पक्ष १३ दिन का हो गया है कि १४, १५ और १६ दिन के पक्ष तो देखे गये हैं परन्तु १३ दिनों का पक्ष अभी तक नहीं सुना गया। स्व० शंकर बालकृष्ण दीक्षित।
ने अपने भारतीय ज्योतिषशास्त्र के पृष्ठ ११४-१२५ पर अच्छा विवेचन किया है और बतलाया है कि पूर्णमासी के चन्द्र ग्रहण होने के पश्चात् १३ दिन पर अमावस्या के दिन सूर्य ग्रहण एक ही स्थान से देखा नहीं जा सकता। इस पर मेरा मत इस प्रकार है :—

चन्द्रमा भी पूर्णमासी के दिन दूसरे पात से इतना ही आगे या पीछे होगा। परन्तु चन्द्र ग्रहण की महत्तम सीमा ११°३६' है (देखो पृष्ठ: ६०)। इस लिए पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा पात से महत्तम सीमा से अधिक दूर होने के कारण ग्रस्त नहीं हो सकता। इस प्रकार यह सिद्ध है कि ऐसी अवस्था में एक पात पर एक ही ग्रहण हो सकता है और वह सर्वग्रास सूर्य ग्रहण है। इस लिए एक पातपर कम से कम एक सूर्य ग्रहण और अधिक से अधिक तीन ग्रहण (दो सूर्य ग्रहण तथा एक चन्द्र-ग्रहण) हो सकते हैं।

एक वर्ष में कितने ग्रहण हो सकते हैं—ऊपर बतलाया गया है कि एक पात से दूसरे पात तक जाने में सूरज को १७३ दिन लगते हैं और ६ चन्द्रमास में १७७ दिन होते हैं। इस लिए यदि किसी पात से दो अंश पहले सूर्य हो और चन्द्रग्रहण लगे तो इससे पहले के और पीछे दोनों अमावसों को सूर्यग्रहण लग सकता है। इस चन्द्रग्रहण से १७७ दिन पीछे सूर्य दूसरे पात से २ अंश पीछे रहेगा। इस लिए इस समय भी चन्द्र-ग्रहण होगा। इस चन्द्र ग्रहण के पहले की अमावस्या को सूर्य दूसरे पात से ११ अंश पहले रहने के कारण ग्रस्त होगा। तथा पीछेवाली अमावस्या को सूर्य दूसरे पातसे १७ अंश पीछे रहने के कारण उस समय भी ग्रस्त हो सकता है क्योंकि सूर्य ग्रहण की महत्तम सीमा १८ अंश के लगभग है। इस प्रकार दोनों पातों पर तीन तीन ग्रहण के हिसाब से ६ ग्रहण हो गये। परन्तु ३४६ दिनमें सूर्य फिर पहले पातपर पहुँच जावेगा इस-लिए एक सूर्य ग्रहण ३४६ दिनके बाद और हो सकता है। इस प्रकार यदि वर्ष के आरम्भमें सूर्यग्रहणसे आरम्भ करके पहले महीने में ३ ग्रहण लगे और वर्षके मध्यमें तीन और ग्रहण लगे तो वर्ष के अन्तमें एक सूर्यग्रहण और लग सकता है। ऐसी दशामें एक ही सौर वर्षके भीतर सात ग्रहण हो सकते हैं।

क्रमशः

---

१३ दिन के पक्षवाली बात पर आश्चर्य इस लिए हुआ कि उस समय तिथियें कामान वेदाङ्ग ज्योतिष अधम गणना से जाना जाता था जिसके अनुसार एक पक्ष के १४ दिन ४५ घड़ी १६ पल होते हैं। इस दशा में १३ दिन का पक्ष असम्भव समझा जाता था जो कि आजकल आश्चर्य जनक नहीं है क्योंकि स्पष्ट गणना के अनुसार १३ दिनके पक्ष अनेक बार हुए हैं और होते रहेंगे। उस प्राचीन कालमें १३ दिन का पक्ष ग्रहणों के देखने से ही जान पड़ा था। वह इस प्रकार संभव है:

स्पष्ट मान के अनुसार एक पक्ष में कम से कम १३ दिन ५० घड़ी होते हैं। मान लीजिए ११ तारीख के सूर्योदय से १ घड़ी उपरान्त तक पूर्णिमा थी और इस दिन ग्रस्त चन्द्रमाका अस्त हुआ। ऐसी दशा में यह प्रत्यक्ष है कि पक्ष का आरम्भ १२ तारीखको हुआ जब कि सूर्योदय काल में प्रतिपदा थी। यदि पक्ष १३ घड़ी ५७ पलका हो तो अमावस्याका अन्त २४ तारीख को सूर्योदय से ५८ घड़ी पर होगा। यदि सूर्य में ग्रहण भी लगे तो २५ तारीख को ग्रस्त सूर्य उदय होगा और थोड़ी ही देर में ग्रहण का मोक्ष हो जायगा। इससे यह सहज ही प्रकट हो जाता है। कि अमावस्या २४ तारीख की रात को ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार १२ तारीख को प्रतिपदा और २४ तारीखको अमावस्या की गणना होगी और १३ दिन का पक्ष देख पड़ेगा। महाभारत कालमें यही घटना हुई होगी।

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्सकी बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

- मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
- स्पष्टाधिकार ... ... ॥।)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... =)

१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१४—ज्वर निदान और शुश्रुषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० ... बी०के मित्र, एल. एम. एस. ... ... =)॥

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

- भाग १ ... ... २॥।)
- भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥।=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—दीवान वंशधारीलाल हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries

पूर्ण संख्या—१४९

Reg. No. A.708

भाग २५ Vol. 25.

सिंह, १९८४

अगस्त १९२७

संख्या ५ No. 5

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)]

विज्ञान-परिषत्, प्रयाग

[१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय सूची

१—विज्ञान-प्रपञ्च— १९३

२—वृद्धावस्था और जीर्णता—[ले० श्री डा० नीलरत्नधर, डी० एस-सी० आई० ई० एस.] १९६

३—नोषजनके ओषिद और अम्ल—[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०] ... २००

४—रासायनिक युद्ध—[ले० श्री० पं० यमुना दत्त जी तिवारी, एम० एस-सी०] ... २०७

५—खिपत—[ले० श्री विश्वप्रकाश, बी० ए० विशारद.] २११

६—वैज्ञानिकीय—[ले० श्री कुंजविहारी मोहन-लाल, बी० एस-सी०] २१३

७—जीव जन्तुओंके व्यवहारसे ऋतुकी सूचना—[ले० श्री० अमीयचन्द विद्यालंकार] २१४

८—समालोचना—[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०] २१५

९—असंपृक्त उदकर्बन—[ले० श्री० सत्य-प्रकाश, एम० एस०सी०] २१७

१०—जेम्स क्लार्क मैक्सवल— ... २२२

११—वैज्ञानिक परिमाण—[ले० श्री० डा० निहाल करण सेठी, डी० एस०सी०] ... २२५

१२—सूर्यसिद्धान्त—[ले० श्री० महावीरप्रसाद, बी० एस-सी०, एल०टी०, विशारद] ... १९१

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै॰ उ॰ ।३।५।

भाग २५ | सिंह संवत् १९८४ | संख्या ५

विज्ञान प्रपञ्च

ह भी विचित्र ही बात है कि मनुष्य जितना ही अधिक ज्ञान उपलब्ध करता जाता है, उसको अपनी अज्ञताका परिचयभी उतना ही अधिक होजाता है। एक अबोध बालक वर्णमालाके कुछ अक्षरोंका परिज्ञान ही करके अपनेको पूरा विद्वान् प्रदर्शित करने का प्रयास करता है, उसे अपने लिखे एक एक अक्षरपर अत्यन्त गर्व होता है। पर एक साहित्य-वेत्ता के हृदय में तो यही अभिशोषणा होती रहती है कि संसारके नियम इतने सरल नहीं हैं जिनको हम साधारणतः जान सकें। वास्तविक बाततो यह है कि हमने बहुत कुछ जाननेका प्रयत्न किया, वैज्ञानिकोंने अपनी समस्त आयु प्रयोगशालाओंमें व्यतीतकर दी, उन्होंने सब प्रकारका त्याग किया, और बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त भी किया, पर इससे हुआ क्या? जितना ही अधिक प्रयत्न किया, उतना ही यह जगत् अज्ञेय प्रतीत हुआ। ज्ञान पिपासाके तृप्त करनेके लिये हम आगे बढ़े थे पर न जाने कैसा पेय पदार्थ पिलाया गया कि हमारी प्यास पहलेकी अपेक्षा और भी अधिक बढ़ गई। आजकल धुरन्धर विद्वान वही समझा जाता है जिसको सबसे अधिक शङ्कायें हों। जिन युक्तियोंसे साधारण व्यक्तिकी परितुष्टि हो सकती है, उन युक्तियोंको अयुक्त सिद्धकर देना ही मानव-विद्वत्ताकी पराकाष्ठा समझी जाती है।

एक वह समय था जब पाइथागोरसके सिद्धान्तोंका संसारमें प्रचारथा। उसने कुछ साधारण नियमोंकी खोजकी, उसके अनुयाइयोंकी यह धारणा थी कि हम संसारके प्रपंचका, इस प्रकृति की विचित्र प्रहेलिका-का इन्हीं साधारण नियमोंसे पूर्ण समाधानकर देंगे। गिनती गिननेके प्रति सामान्य नियमोंपर ही लोगोंको विश्वास था कि बस जब हमने इतना जानलिया तो फिर संसारमें कुछ अज्ञेय रहही नहीं जायगा। पाइथगो

इसके दो सहस्र वर्ष पश्चात् डिकार्टे का जन्म हुआ। उसने संसारको अत्यन्त व्यग्र, क्लिष्ट और असाधारण रूप प्रदान कर दिया। सूर्यका निकलना और अस्त होना सबके लिये साधारण बात थी। पर इस गणितज्ञके लिये यह भी अज्ञेय समस्या थी। उसने सरलतामें जटिलता, ज्ञानमें अज्ञान और प्रकाशमें भी अन्धकार देखा।

परन्तु डिकार्टेकी विचार-संकीर्णताका इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है कि उसने यह नितान्त सम्भव समझा कि जगत्के सम्पूर्ण रहस्योंका समाधान केवल रेखा गणित या बद्-स्थिति गणितके सिद्धान्तोंके उपयोगसे हो जायगा। शरीर-विज्ञानही नहीं मनोवैज्ञानिक नियमोंको भी वह गणित द्वारा स्पष्ट करना चाहता था।

उसके कुछ ही दिन बाद संसारमें एक प्रतिभाशाली प्रकाण्ड वैज्ञानिकका जन्म हुआ। उसका नाम न्यूटन था। कहा जाता है कि समकालीन व्यक्तियोंमें उससे अधिक सूक्ष्मज्ञ कोई नहीं था। उसने अपनेको एक बालकसे तुलना की है जो ज्ञान सागरके तट पर कुछ गिट्टियोंके संचयमें ही अपना अहोभाग्य समझ रहा है। ज्ञानके विस्तृत पारावारमें तो उसका अभी प्रवेशही नहीं हुआ है। न्यूटन ऐसे विद्वानके लिये संसार हम ऐसे विद्या रहितोंकी अपेक्षा औरभी अधिक अज्ञेय रहा है।

परमाणुवादकी समीक्षा भी देखिये। सम्पूर्ण पदार्थोंको पंचतत्व और नव-द्रव्योंमें विभाजन करके पुरातन मस्तिष्क संतुष्ट होगये पर आज ९२ तत्वोंको विशद खोजके पश्चात भी वैज्ञानिक तत्त्वके तत्वको नहीं समझ सके। संसारभी क्या धोखेकी टट्टी है। यह प्रकृति उस मायावी प्रेमिकाके तुल्यहै जिसने अपना असली रूप कभी भी अपने रसिकोंके सामने नहीं रखा। हमेंतो कभी कभी इसमें भी सन्देह होजाता है कि इसका कोई वास्तविक रूप है भी या नहीं।

महासिद्धान्त क्या है? यह भीतो सोचिये। जिधर देखिये उधर ही प्रयोग शालाओंमें और दार्शनिक मस्तिष्कोंमें इसी प्रकारके प्रयत्न होरहे हैं कि संसार के 'सत्य' एक रस सिद्धान्तोंका पता चल जाय। पर यह तो बताइये, यह ही आपसे किसने कह दिया है कि यह जगत् सिद्धान्तोंके अनुकूलही बनाया गया है। 'संसार नियम शील है,' यह भी तो मानव संकीर्णताकी आरोपित धारणा ही है जिसकी सिद्धिके लिये उसके पास कोई प्रमाण नहीं है?

किसीभी विभागके वैज्ञानिकसे तो पूछियेकि उसे आजतक इतने घोर प्रयत्न करनेपर भी एकभी अखण्ड नियम प्राप्त हुआ है। हमनेतो सम्पूर्ण सिद्धान्तोंमें अव्याप्ति अतिव्याप्ति दोषही पाया। सभी सिद्धान्त खंडित होते रहते हैं? न्यूटन अपने आकर्षण-सिद्धान्त पर भलेही गर्व करले पर वह भीतो ऐसाही कच्चा नियम सिद्ध हुआ जैसा औरकोई। हमेंतो बसएक ही सिद्धान्त सच्चा मिला औरवह यहकि संसारमें कोईभी सत्य सिद्धान्तनहीं है, यह अज्ञेय है' बस यही सिद्धान्त अखण्डहै और अन्य सब खण्डित।

डार्विनने विकासवाद चलाया। वालेस और हक्सलेने उसका समर्थन किया। उसके सिद्धान्तोंमें हेकलने विश्व-प्रहेलिका' (Riddles of the universe) का समाधान पाया। उसके नियमोंको 'नियमका नियम, नियमाधिपति' (law of laws) कहा गया। वैज्ञानिक और दार्शनिक जगतमें विकासवादका आतङ्क छागया। फिरक्या था, जो कोई व्याख्यान देखिये, उसमें विषयके विकासको प्रतिपादनही पाइयेगा। परकुछ दिनों मनोरञ्जन अवश्य हुआ। जटिल समस्या वैसीकी वैसी ही रही। क्या आधुनिक अनुसंधानोंने ऐसे पुरातन अस्थिपिंजरोंको प्रस्तुत नहीं किया है जिनकी व्याख्याकाके लिये विकासवादके सिद्धान्तोंको मौन धारण नहीं करना पड़ता है? हमतो कहते हैं कि चाहे मर्कटसे मनुष्योत्पत्ति बताइये चाहें मनुष्यसे मर्कटोंको पैदा कीजिये, दोनों तरहसे ही विश्व प्रपंचकी जटिलता नहीं सुलझेगी।

गणित वालोंको अपनी बुद्धि पर बड़ा ही गर्व होता है। पर सच पूछिए तो उनकी भी अज्ञता कुछ कम हास्यास्पद नहीं है। कोई रेखा-गणितज्ञ यही बता

दे कि एक कोणको रेखा गणित द्वारा कम्पास और पैमानेके सहारेसे तीन बराबर भागोंमें कैसे विभाजित हो सकता है। इसी प्रकार आजतक वृत्तके व्यास और परिधिका ठीकठीक संबन्ध ही कोई निश्चित नहीं कर सका।

रसायनने चाहा कि जीवन और मृत्युकी समस्याओंको रसायनके सामान्य समीकरणों द्वारा स्पष्ट कर दिया जाय। उसने मस्तिष्कके पदार्थों का संश्लेषण विश्लेषण किया, एक एक हड्डीको तोड़ा। रुधिरको एक एक बूंदकी परीक्षा की, मज्जाके तन्तुओंको सूक्ष्मदर्शक यन्त्रोंसे देखा। सब कुछ किया, पर परिणाम क्या निकला? एक जीव-रसायनज्ञ लिखता है कि मस्तिष्कके नियमोंको सुलझानेके लियेयह आवश्यक प्रतीत होरहा है कि जिस प्रकार प्रकृतिके सूक्ष्मतम कणोंमें विद्युत्-गुणकी कल्पनाकी गई है, उस प्रकार इन कणोंमें मनोवैज्ञानिक (Psychic) गुणोंकीभी यदि कल्पना करली जायतो कहीं समाधानकी कुछ आशाहो। इस प्रकारके वचनोंका तात्पर्य ही यही है कि हम अपने शरीरकी प्रक्रियाओं के समझनेमें भी असमर्थ हैं। जब जिज्ञासु अपनेही अन्दरकी बातोंको नहीं जान सकता तो फिर बाहरकी वस्तुओंके विषयमें उससे क्या आशाकी जा सकती है।

रुधिरभी क्याही विचित्र पदार्थ है। शरीरसे बाहर निकलतेही इसमें तोड़ पैदा होजाताहै। क्यों? इसका कोई उत्तर अबतक सन्तोषप्रद नहीं मिला। शरीरके अन्दर इसके गुण कुछ होतेहैं और शरीरके बाहर कुछ। अब बताइये कि शरीरस्थ रुधिरकी रासायनिक परीक्षा कैसे की जाय। दूसरोंके शरीरमें हम प्रविष्ट होकर अपने प्रयोग करनहीं सकते और जिस शरीरमें हम प्रविष्ट हैं उसकेतो रुधिरको भी हम नहीं देख सकते। ऐसी अवस्थामें केवल कल्पनाके घोड़े ही तो हम दौड़ा सकते हैं। औरहमसे क्या हो सकेगा।

नमक एक साधारणसा पदार्थ है, अच्छा इसके विषयमें ही देखिये, हमने क्या जाना? जलमें घोल बनाकर हमने कुछ गुणोंकी परीक्षा की, पर प्रश्न तो यह है कि जलमें घुलकर नमक वह नमक नहीं रहता जो ठोस रूपमें है। उस परीक्षासे हमें ठोस नमकका कुछ परिज्ञान हीनहीं हुआ। जाने दीजिये—आपने चखकर कह दिया कि नमक यह ठोसनमक, नमकीन स्वादका है। मैं कहता हूँ कि यह बिलकुल झूठ सोलह आना झूठ है। आपकी जीभपर जलन हो, यदि आप उसे पूर्णतः सूखालें और फिर नमकको चखिये, कुछ पता चल जाय तो कहिये। जीभपर नमकीन स्वाद तभी मालूम हुआ जब नमकका घोल बना। यह तो हमारे अति साधारण ज्ञानकी बातहै। संसारके रहस्यके विषयमें न हम कुछ जानही पाये हैं और न जानही सकेंगे।

विज्ञान दर्शनशास्त्रसे सदा इसीलिये झगड़ता है कि विज्ञानके सिद्धान्त प्रयोगोंपर निर्भर हैं औरदर्शनके कल्पना पर। मेरी धारणामें यह नितान्त असत्य है। विज्ञान दस कदम आगेकी कल्पना करताहै और दर्शन सौ कदम आगेकी। इतनाही अन्तरहै। पर कहीं कहीं तो विज्ञान सहस्र कदम आगेकी भी कल्पना करने लगा है जिनमेंसे बहुतसी कालान्तरमें अशुद्ध ही प्रमाणित होती हैं वैज्ञानिक अन्वेषणकी विधि भी यही सिद्ध करतीहै। बहुधा वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी पहले धारणा और कल्पना करलेता है और उसके उपरान्त तदनुकूल प्रयोगोंके खोज करनेकी चेष्टा करता है। प्रयोगों द्वारा सिद्धान्तोंका अन्वेषण बहुत ही कम होता है परसिद्धान्तों-मनोनीत कल्पनाओं द्वारा प्रयोगोंका अन्वेषण ही बहुधा देखा गया है इसीलिये किसी वैज्ञानिकको यदि पचीस प्रयोग अपने सिद्धान्तके अनुकूल मिल जातेहैं तोउसके विरोधीको भी पचास प्रयोग उसके विरुद्ध मिल जाते हैं। विज्ञानका सम्पूर्ण साहित्य इस प्रकारके द्वन्द्व युद्धोंका विस्तृत वृत्तान्त बना हुआ है। इसीका नाम विज्ञान-प्रपंच है। प्रकृति अज्ञेय है और हम अज्ञ हैं जब ऐसी अवस्था है तो पुरुषतो अज्ञेयाज्ञेय होगा, उसका तो कहना ही क्या विज्ञानसे यही एक रहस्य खुला है, इससे हमें यही बस लाभ हुआ है कि हम

अज्ञोंको अपनी परमाज्ञताका पूर्ण परिचय मिल गया है। नास्तिकताकी खोज करते करते वैज्ञानिकोंने अपनेको परम-आस्तिक सिद्ध कर दिया है :—

अविज्ञातं विज्ञातं विज्ञातमविजानताम्

वृद्धावस्था और जीर्णता।

(ले० डा० नीलरत्नधर, डी० एस० सी., आई. ई. एस.)
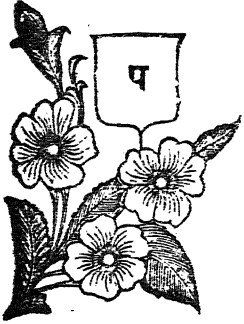
पहलेके लेखोंमें मैंने यह विचार प्रस्तुत किया था कि शरीर प्रेरकजीवों और कोष्ठों की उत्प्रेरण-शक्ति के क्षीण हो जाने से वृद्धावस्था आजाती है। इसीलिये प्राणियोंकी शारीरिक प्रक्रिया भी बुढ़ापेमें बहुत कम हो जाती है। भिन्नभिन्न आयुवाले मनुष्योंकी शारीरिक प्रक्रिया सम्बन्धी प्रयोग-परिणामों से यह विदित होता है कि बुढ़ापेमें बचपन और युवावस्था की अपेक्षा प्रति वर्ग मीटर या किलोग्राम शारीरिक प्रक्रिया कम हो जाती है।

इसके अतिरिक्त शरीरके तापक्रम को स्थिर रखनेके हेतु कुछ न्यूनतम निश्चित तापमात्राकी आवश्यकता होती है। मेरा यह विचार है कि शरीरमें जब ओषदोकरणकी मात्रा शरीर-तापक्रमके स्थिर रखनेके लिये आवश्यक मात्रासे ठीक थोड़ा सा ही कम होती है, तो फिर मृत्युके आनेकी सम्भावना होने लगती है। प्राणिजीवनका आधार मुख्यतः कोष्ठ और प्रेरकजीवोंकी शक्ति पर ही निर्भर माना गया है।

इस लेखमें, मैं अपने उन विचारों की पुष्टि में कुछ और उदाहरण दूँगा और दिखाने का प्रयत्न करूंगा कि जीर्ण होनेका गुण कार्बनिक और अकार्बनिक दोनों प्रकारके कलाद्रों (colloids) और अवक्षेपोंमें विद्यमान है।

अपनी प्रयोगशालाओंमें किये गये प्रयोगोंसे हमने यह दिखा दिया है कि शक्ति, अधिशोषण (adsorption) बल, स्थिरता, और स्निग्धता उद-विरोधी (hydrophobe) कलाद्रों में तो काल व्यतीत होने पर धीरे धीरे कम होने लगती है। इसके विपरीत, उद-स्नेही (hydrophile) कलाद्रोंमें निश्चित समय तक जीर्ण होने तक स्निग्धता और उदकरण (hydiation) बढ़ते रहते हैं।

अभी एक लेखमें हम ने यह भी दिखाया है कि सृञ्जकिक उदौषिद $Ce(OH)_4$ की शीतमें बनाया हुआ उपघोलकी स्निग्धता कालान्तरमें एक निश्चित मात्रा तक बढ़ती रहती है और तब यह एक प्रकारकी कठोर झिल्ली (jelly) बन जाती है। इस झिल्लीको यदि एक बन्द बोतलमें रखा जाय तो धीरे धीरे इसकी स्निग्धता कम होने लगती है और यह फिर द्रवके समान हो जाती है। उपघोलकी विद्युच्चालकता भी एक न्यूनतम निश्चित मात्रा तक कम होती जाती है और फिर यह बढ़ने लगती है। इसी प्रकारके परिणाम गाढ़े उपघोलके प्रयोग करनेसे भी पाये गये हैं जिनकी चालकता और स्निग्धता निकालनेसे पता चला है कि स्निग्धता एक निश्चित मात्रा तक बढ़ती है और फिर कालान्तरमें कम होने लगती है। पर विद्युच्चालकता एक न्यूनतम मात्रा तक घटती है और फिर बढ़ने लगती है। ये दो उपघोल उद स्नेही (hydroxhile) कलाद्रोंके अच्छे उदाहरण हैं। शैलिकाम्लसे भी मनोरञ्जक परिणाम प्राप्त किये गये हैं।

शीत और उष्ण अवस्थाओंमें तैयार किये गये उपघोलसे यह सिद्ध होता है कि कालान्तरमें स्निग्धता बढ़ता जाती है और रख देने पर शैलिकाम्ल एक प्रकारकी झिल्ली बन जाता है थोड़े समय पश्चात् यह झिल्ली टूट जाती है और थोड़ासा द्रव बाहर निकल आता है।

इसी प्रकारका गुण प्राणिकोष्ठों और कललरसके विषयमें भी पाया गया है। अति सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा किये गये प्रयोगोंसे यह प्रकट होता है कि अमीबा

में उपघोलके छोटे छोटे कण होते हैं। जीवित स्नायु कोष्ठों पर इसी प्रकारके प्रयोग करनेसे भाट नामक वैज्ञानिक ने भी इसी प्रकारके परिणाम प्राप्त किये हैं। सामान्यतः जीवित कोष्ठों में स्थित छोटे कण ब्राउनगति (Brownian Movement) के अनुकूल नहीं करते हैं। इससे सिद्ध है कि कललरसमें बहुधा समुचित स्निग्धता होती है। इसीका फल है कि कभी कभी इसके लम्बे चिपकने तार भी खींचे जा सकते हैं। मृत्यु होनेसे पूर्व जो क्षीणता होती है उसमें कललरस कुछ द्रवहो जाता है और उसके छोटे कण ब्राउन-गतिके अनुसार संचालित होने लगते हैं। और यह इस बातको सूचित करता है कि कलल रसमें अधः क्षेपण होने लगा है।

छोटे कोष्ठोंका कलल रस बहुधा एकरस होता है पर युवावस्थावाले पुष्ट कोष्ठके रसमें एक निश्चित संगठन होता है। एकीनोडनके अपरिपुष्ट अण्डे बिलकुल स्वच्छ और पारदर्शक होते हैं पर पुष्ट अण्डों में चेम्बर्स ने साधारण सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा निरीक्षण करके दो प्रकारके कणोंका अनुसन्धान किया है-एक तो बहुत छोटे और दूसरे उनकी अपेक्षा बड़े होते हैं। पहले प्रकारके कण स्थायी होते हैं पर दूसरे प्रकारके कण आघातोंसे बहुत शीघ्र प्रभावित होजाते हैं। मिटो कौण्ड्रियाके कण वाह्यतः अंडसित और लेसिथिनके बनेहोते हैं जो द्विव्वनीलके रंग से रँग जाते हैं। ये जीवित कोष्ठमें रहते हैं और उस की शक्तिको परिवर्त्तित कर देते हैं, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि छोटे कोष्ठोंका कललरस ताजे कलाद्र घोल के समान होता है और युवा अण्डोंमें थोड़ासा ठोस पदार्थ पृथक् होजाता है, और जीर्णताके कारण धुंधलापन भी बढ़ जाता है। शैलिफ़ाम्लमें भी कललरसके समान गुण पाया गया है। फिशरने यह प्रदर्शित कर दिया है कि प्रत्यमिन पदार्थों में भी इसी प्रकारका परिवर्त्तन होता रहता है। जिलेटिन झिल्ली और दूसरे प्रत्यमिन माध्यम जैसे रुधिररस आदि पदार्थोंको रख देनेसे एक प्रकारका द्रव निचुड़ जाता है। प्रत्यमिन झिल्लीमें जितना ही अधिक जलका अंश होगा उतना ही अधिक द्रव निचुड़ जायगा अतः यह प्रतीत होता है कि कुछ समयके पश्चात् शरीरके प्रत्यमिन पदार्थों का अधिशोषण-बल और शक्ति कम होजाती है। यह एक मुख्य कारण है जिससे बुढ़ापा और मृत्यु संभावित होती है। त्वचाके कोष्ठ अन्यजीवित पदार्थोंके समान अपने जीवन और शक्तिके स्थिर रखनेके लिए भोजनकी समुचित मात्रा, ओषजनकी प्राप्ति और मल पदार्थोंके निराकरण पर निर्भर रहते हैं। भोजन और ओषजनका उपयोग यह उत्प्रेरकोंकी सहायतासे करते हैं। कालान्तरमें कोष्ठों और प्रेरकजीवोंकी शक्ति क्षीण होजाती है और इसलिए शारीरिक प्रक्रिया भी कम होजाती है! हम यह दिखा चुके हैं कि कलाद्र लोहिक-उदौषिद् इत्यादिके समान जीर्ण होने पर अधिक विद्युत्चालक होजाते हैं और उनकी स्निग्धता समयान्तरमें धीरे धीरे कम होजाती है। कुछ समय पश्चात् इन कलाद्रोंके कण बड़े होजाते हैं। और इसलिए उनका पृष्ठतल कम होजाता है। और इस कमीके कारण अधिशोषण-बल, उदकरणकी मात्रा और स्निग्धता कम होजाती है। अधिशोषित विद्युत् विश्लेष्य (electrolyte) पृथक हो जाता है और सम्पूर्ण उपघोलकी विद्युच्चाल तक बढ़जाती है। इसी प्रकारका स्वभाव लोहिक हरिद, स्फट नोषेत, थार नोषेत, फिटकरी आदि पदार्थोंमें भी पाया गया है। ये सब लवण जल में घुलने पर एक प्रकारके अनघुल भस्ममें उदविश्लेषित होजाते हैं और यह भस्म कलाद्र अवस्थामें अम्ल और धातु लवण घोलके अधिशोषण करनेके कारण विद्यमान रहता है। इस कलाद्रके कण कुछ समय पश्चात् सिकुड़ने लगते हैं और इसलिए कुछ अधिशोषित विद्युत्विश्लेष्य पृथक् हो जाता है जिसके कारण विद्युच्चालकता बढ़ जाती है और स्निग्धता तथा स्थिरता कम हो जाती है। सैन्धक या पांशुज खजूरेत मज्जेत इत्यादि पदार्थों के घोल उदविश्लेषित होनेपर एक अम्ल देते हैं जो बहुत कम घुलनशील है। इन उदाहरणोंमें भी कम घुलनशील अम्लके कणोंका पृष्ठतल और अधिशोषित विद्युत्विश्लेष्य कम हो जाता है। परन्तु सैन्धक यापांशुज—खजूरेत, मज्जेत आदिके

कणोंका जलके प्रति बहुत स्नेह है। अतः कुछ समय पश्चात् इन कणोंमें जलका अंश अधिक होजाता है और निश्चित सीमा तक स्निग्धता बढ़ती रहती है। विद्युत्चालकता भी एक सीमातक घटती है और फिर बढ़ जाती है। वलदपंचौषिद्का घोल स्निग्धताकी उत्तरोत्तर वृद्धि और चालकताकी न्यूनता एक सीमा तक प्रदर्शित करता है। इसका कारण यह है कि वलद पंचौषिद्का जलसे बहुत स्नेह है और जितना ही जल इससे अधिक संयुक्त होता है उतनी ही अधिक स्निग्धता एक निश्चित सीमातक बढ़ती जाती है और चालकता कम होती जाती है। वलद पंचौषिद, स्रजक उदौषिद तथा शैलिकाम्लका उदकरण स्वभाव उनके जल के प्रति स्नेहपर निर्भर है। और संभवतः इस प्रक्रियामें उन्हीं बलोंका उपयोग होता है जिनके कारण पदार्थ जलमें घुलते हैं। जब वलद पंचौषिद, स्रजक उदौषिद इत्यादिके कण जलसे तृप्त होजाते हैं तो उदकरण और स्निग्धताकी सीमा निर्धारित होजाती है। इसके पश्चात् अधिक जीर्ण होनेपर ये कण सिकुड़ने लगते और उनका अधिशोषण बल स्थिरता और उदकरण स्वभाव कम होजाता है। जिलेटिनकी स्निग्धता विषयक किये गये प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया है कि इसकी स्निग्धता थोड़े समय पश्चात एक निश्चित सीमा तक पहुँच जाती हैं और फिर कम होने लगती है। अतः जिलेटिनकी स्निग्धता और उदकरण स्वभाव एक निश्चित उत्तम सीमातक बढ़ता है और फिर जीर्ण होनेके कारण कम होने लगता है। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है प्राणियों के शरीरस्थ पदार्थ जैसे अण्डश्वित, जिलेटिन, कललरस कोष्ठ इत्यादि पदार्थ भी इसी प्रकार का गुण प्रदर्शित करते हैं उपर्युक्त परिणामों से यह स्पष्ट है कि अकार्बनिक कललरस आदि पदार्थों में कोई मुख्य भेद नहीं है। जीर्ण होने की घटना इन दोनों प्रकार के पदार्थों में एकही प्रकार की होती है।

सब लोग जानते हैं कि डानी हैनाल्ट ने कृत्रिम लैकेज (laccase) नामक प्रेरक जीव अरबी गोंद, मांगनीज पिपीलेत और सैन्धक अर्ध-कर्बनेत के घोलको मद्यद्वारा अवक्षेपित करके तैयार किया था। इसमें ओषदकारक गुण हैं, यह अवक्षेप फिर जलमें घुलाया जा सकता है और मद्य से पुनः अवक्षेपित हो सकता है निस्सन्देह यह गोंद और कलार्द्र मांगनीज उदौषिद्का अधिशोषित यौगिक है यह कृत्रिम प्रेरक जीव कुछ समय पश्चात् जीर्ण होने लगता है और इसकी कुछ शक्ति क्षीण हो जाती है।

इस प्रयोगशाला में किये प्रयोगों द्वारा हमने यह सिद्ध कर दिया है कि ओषदी करणकी प्रक्रियाओं में लोहलवण और कलार्द्र लोहिक उदौषिद प्रबल उत्प्रेरकों का कार्य करते हैं। इस प्रकार इमलिकाम्ल, निशास्ता आदि पदार्थों को उदजन परौषिद द्वारा ओषदीकृत करते समय यदि लोहिक या लोहस लवण अथवा कलार्द्र लोहिक उदौषिद डाल दिया जाय तो प्रक्रिया बहुत तीव्र हो जाती है। इस प्रकार हमने इस बात की सिद्धि का यत्न किया था कि औषधियों के रूप में लोह लवण देने से इस प्रकार के लाभ हो सकते हैं। यह सर्वविदित बात है कि प्राणियों के रुधिर में लोह कण होते हैं जिसके कारण रक्त में स्थित भोज्य पदार्थ बहुत शीघ्र ओषदीकृत हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में युवा प्राणीके रुधिर में स्थित लोहकणों की उत्प्रेरण शक्ति कुछ क्षीण हो जाती है और इसी लिये वृद्धावस्था में प्राणि-शरीर में ओषदीकरण की मात्रा कम हो जाती है।

इसके अतिरिक्त शरीर में स्थित अकार्बनिक लवण जो प्रत्यमिन पदार्थों द्वारा अधिशोषित रूप में विद्यमान रहते हैं, प्रत्यमिन कणों के जीर्ण होने के कारण कुछ अंशमें पृथक् हो जाते हैं। शरीरके कोष्ट, प्रेरकजीव, हारमोन और अन्तरीय त्याज्य पदार्थ अधिशोषित अकार्बनिक और कार्बनिक पदार्थों की सहायता से कार्य्य करते हैं। लेकिन कुछ कालान्तर में अधिशोषित पदार्थों के पृथक् हो जाने के कारण कोष्ठों और प्रेरकजीवोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है। कार्टिलेज, संयुक्त त्वचा, हड्डी, कोष्ठ इत्यादि पदार्थ

जिनमें मुख्यतः खटिक कर्बनेत और स्फुरेत होता है कुछ कालान्तर में जीर्ण होने लगते हैं और उनकी शक्ति तथा अधिशोषण बल कम हो जाता है; पहले किसी लेख में यह विचार प्रस्तुत किया था कि हड्डी का निर्माण खटिक स्फुरेत और खटिक कर्बनेत जो कलार्द्र अवस्था में शरीर में स्थित हैं, कार्टिलेज और हड्डियों द्वारा अधिशोषित होनेके कारण होता है। कुछ समय पश्चात् कार्टिलेज हड्डी आदि अधिशोषक अपनी अधिशोषण शक्ति को खो देते हैं और इसी लिये वे खटिक स्फुरेत और कर्बनेत की समुचित मात्रा अधिशोषित करने के अयोग्य हो जाते हैं और बुढ़ापे में हड्डियों का बनना बन्द हो जाता है।

जब कभी अमीबामें विद्युत्संचार किया जाता है इसमें संकोच आरम्भ होता है और इसका तल न्यूनतम हो जाता है अर्थात् यह गोलाकार बन जाता है। यह हमने सिद्ध कर दिया है कि कलार्द्र कण की विद्युत्मात्रा ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है त्यों त्यों वह और भी अधिक गोलाकार होने लगता है। इस प्रकार अमीबा भी उपघोल के सर्वथा समान है।

जीवनकी प्रक्रियाओं को ठीक प्रकार से समझने के लिये हमारे पास इसके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है कि हम त्वचा में स्थित सूक्ष्मतम कोष्ठों की विवेचना करें। यद्यपि इन कोष्ठों का निर्माण भी कहीं कहीं इतना जटिल है कि हमारी प्रयोगशालाओं में इन पर प्रयोग करना बहुधा असंभव ही हो जाता है तब भी यह बात स्पष्ट है कि इन कोष्ठों में रासायनिक प्रक्रियाएँ बराबर होती रहती हैं और इन कोष्ठों का अधिशोषक बल, उदकरण स्वभाव और शक्ति समय में क्षीण हो जाती है। यह भी पहिले कहा जा चुका है कि परिपक्व अंडों के कललरस मे दो प्रकार के कण छोटे और बड़े होते हैं। पहले प्रकार के स्थायी हैं और दूसरों पर आघातों का शीघ्र प्रभाव पड़ जाता है अतः यह स्पष्ट है कि जीर्ण होने पर कोष्ठ सापेक्षतः बलहीन और आघात तथा कीटाणुओं से शीघ्रही प्रभावित हो जाते हैं।

सारांश

१—बलद पंचौषिद और सृजक द्वौषिद का उदकरण स्वभाव और स्निग्धता समय बीतने पर एक निश्चित सीमातक बढ़ती है और फिर घटने लगती है इस गुण का कारण इन पदार्थों का जल के प्रति रासायनिक स्नेह है। जब जल के प्रति यह स्नेह संतृप्त अवस्था तक पहुँच जाता है और उदकरण तथा स्निग्धता उच्चतम हो जाती है तो अधिक जीर्ण होने पर इनमें संकोच होना आरंभ हो जाता है और उनका अधिशोषक बल और स्निग्धता कम हो जाती है। जिलेटिन अण्डसित इत्यादि पदार्थ उपर्युक्त दोनों अकार्बनिक उद स्नेही कलार्द्रों के समान गुण वाले हैं।

२—गरम अथवा ठंडी अवस्थाओं में तैयार किये गये शैलिकाम्ल के उपघोल की स्निग्धता कुछ समय तक बढ़ती रहती है। और फिर यह एक प्रकार की झिल्ली हो जाता है कुछ समय के उपरान्त यह झिल्ली टूट जाती है और इसका कुछ द्रव पृथक् हो जाता है। इसी प्रकार का गुण प्राणिकोष्ठों और कलल रस में भी पाया गया है कोष्ठ की मृत्यु होने के पूर्व जीर्ण होने वाले जो परिवर्तन होते हैं उनके साथ साथ कललरस भी थोड़ा सा द्रवीभूत हो जाता है और उसमें एक प्रकार के कण दृष्टिगत होने लगते हैं। छोटे छिद्रों के कललरस में उसी प्रकार का गुण होता है जिस प्रकार का ताज़े उपघोलमें, पर परिपक्व अंडों में क्षीणता होने के कारण थोड़ासा ठोस पदार्थ पृथक् होने लगता है और धुँधलापन भी बढ़ जाता है। जिलेटिन झिल्ली और अन्य प्रत्यमिन माध्यमों में से थोड़ी देर पश्चात् एक प्रकारका द्रव निचुड़ने लगता है अतः यह स्पष्ट है कि अकार्बनिक कलार्द्रों और अण्डसित कललरस आदि प्राणि-पदार्थों में जीर्णता होनेपर एक ही प्रकार की प्रक्रियाएँ होती हैं।

३—यह प्रतीत होता है कि जीर्ण होने पर कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थों से युक्त प्रेरक जीव रुधिरकोष्ठ इत्यादि पदार्थों की शक्ति कुछ क्षीण हो

जाती है। अतः शारीरिक प्रक्रिया भी कम हो जाती है। हड्डियोंके कोष्ठ जिनमें मुख्यतः खटिक स्फुरेत और कर्बनेत होते हैं कालान्तरमें जीर्ण हो जाते हैं और उनका अभिशोषक बल कम हो जाता है अतः वृद्धावस्थामें नई हड्डियोंका बनना भी कठिन प्रतीत होता है।

४—ऐसा प्रतीत होता है कि जीर्ण होने पर प्राणि शरीरके कोष्ठ सापेक्षतः शीघ्र हो जाते हैं और आघात तथा कीटाणुओंसे शीघ्र प्रभावित होने लगते हैं।

नोषजनके ओषिद और अम्ल

(Oxides and Acids of Nitrogen)

(ले० श्री सत्य प्रकाश, एम. एस.सी.)

नोषजन और अमोनियाके विषय में गत अध्यायमें लिखा जा चुका है। नोषजन ओषजनसे संयुक्त होकर कई प्रकारके यौगिक बनाता है। जिन्हें ओषिद कहते हैं। इन ओषिदों मेंसे मुख्य ओषिद निम्न हैं:—

नोषस ओषिद, $नो_2ओ$

नोषिक ओषिद, नोओ

नोषजन त्रिओषिद, $नो_2ओ_3$

नोषजन परौषिद, $नो ओ_2$ अथवा $नो_2ओ_4$

नोषजन पंचौषिद, $नो_2ओ_5$

उदजन और ओषजनके संयोगसे नोषजन दो प्रकार के मुख्य अम्ल देता है —

नोषसाम्ल, $उनोओ_2$

नोषिकाम्ल, $उनोओ_3$

भस्मों के संयोग से ये अम्ल प्रथक् प्रथक् लवण देते हैं। नोषसाम्ल द्वारा प्रदत्त लवणोंको नोषित कहते हैं जैसे सैन्धक नोषित, $सैनोओ_2$।

नोषिकाम्लके लवणों को नोषेत कहते हैं जैसे सैन्धक नोषेत, $सैनोओ_3$।

पहले हम इन अम्लोंका वर्णन करेंगे और फिर नोषजनके ओषिदोंका क्योंकि नोषजनके ओषिद बहुधा इन अम्लों अथवा इन अम्लोंके लवणोंसे बनाये जाते हैं।

नोषिकाम्ल, $उनोओ_3$

Nitric Acid

(१) भारतवर्षमें शोरा बहुत पाया जाता है, यह वास्तवमें पांशुज नोषेत, $पांनोओ_3$, होता है। चिलीका शोरा सैन्धक नोषेत होता है। इन्हीं शोरोंसे नोषिकाम्ल तैयार किया जा सकता है। प्रयोग शालामें शोरेको तीव्र संपृक्त गन्धकाम्लके साथ स्रवित करने से नोषिकाम्ल प्राप्त होसकता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है —

$$पां नो ओ_3 + उ_2 ग ओ_4 = पां उ ग ओ_4 + उ नो ओ_3$$
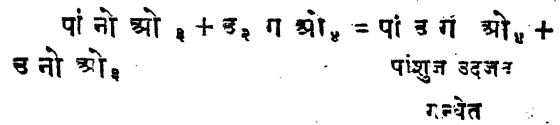
पांशुज उदजन गन्धेत

यदि तापक्रम अधिक कर दिया जाय और शोरा की अधिक मात्रा उपयोगमें लायी जाय तो पांशुज उदजन गन्धेत पांशुज-गन्धेत, $पां_2ग ओ_4$ में परिणत हो जायगा और नोषिकाम्ल और प्राप्त हो जायगा—

$$पां उ ग ओ_4 + पां नो ओ_3 = पां_2 ग ओ_4 + उ नो ओ_3$$
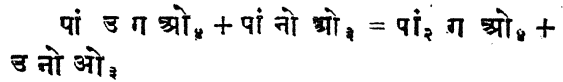
एक भभकेमें ५० ग्राम पांशुज नोषेत अर्थात् शोरा लो और इसमें ४९ ग्राम संपृक्त गन्धकाम्ल डालो। तारकी चद्दर पर रखकर भभकेको गरम करो। नोषिकाम्लकी वाष्पें उठने लगेंगी जो ठंडाकर के किसी कुप्पीमें संचितकी जासकती हैं। भभके में पांशुज उदजन-गन्धेत, $पां उ ग ओ_4$, शेष रह जायगा जिसमें यदि शोरा और मिलाकर गरम किया जाय तो कुछ नोषिकाम्ल और निकलने लगेगा। पर इसके साथ साथ नोषजन परौषिद, $नो ओ_2$, की

लाल वाष्पें भी दिखायी पड़ेंगी क्योंकि कुछ नोषिकाम्ल निम्न प्रक्रियाके अनुसार विभाजित हो जाता है।

$$४\text{उ नो ओ}_३ = ४\text{नो ओ}_२ + २\text{उ}_२\text{ओ} + \text{ओ}_२$$

(२) व्यापारिक मात्रामें कुछ नोषिकाम्ल वायुके ओषजनको वायुके नोषजनसे ही विद्युत् चाप (electric arc) के अत्यन्त उच्च तापक्रमके प्रभावसे संयुक्त करके बनाते है। इस तापक्रम पर नोषजन पहले नोषिक ओषिदमें परिणत हो जाता है; यह ओषिद जल और वायुकी विद्यमानतामें नोषिकाम्ल देदेता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार हैं :—

$$\text{नो}_२ + \text{ओ}_२ = २\text{ नो ओ}$$

$$४\text{ नो ओ} + ३\text{ओ}_२ + २\text{उ}_२\text{ओ} = ४\text{ उ नो ओ}_३$$

(३) अमोनिया और वायुके मिश्रणको तप्त परौप्यम् उत्प्रेरक के ऊपर प्रवाहित करनेसे अमोनियाका ओषदीकरण होजाता है। पहले नोषिक ओषिद मिलता है जो पूर्वकी भांति वायु और जलके संसर्गसे नोषिकाम्ल में परिणत होजाता है।

$$४\text{नो उ}_३ + ५\text{ ओ}_२ = ४\text{ नो ओ} + ६\text{ उ}_२\text{ ओ}$$

$$४\text{नो ओ} + ३\text{ ओ}_२ + २\text{ उ}_२\text{ ओ} = ४\text{ उ नो ओ}_३$$

वायुमंडलमें विद्युत् संचार होते रहते हैं जिनके कारण प्रति २४ घंटेमें, ऐसा अनुमान किया जाता है कि कमसेकम २५०,००० टन नोषिकाम्ल बनता रहता है। इसका कुछ थोड़ा सा अंश उपजाऊ भूमि पर वर्षा आदि द्वारा आकर गिरता है। पेड़-पौधे इसका उपयोग करते हैं। कुछ पौधे ऐसेभी होते हैं जो ऐसी भी भूमि में फलफूल सकते हैं जिसमें अमोनिया या नोषिकाम्लके लवण न भी हों। ये पौधे अपनेशरीरस्थ प्रेरक-कीटाणुओंकी सहायतासे वायुके नोषजनको ग्रहण कर लेते हैं। पौधोंमें नोषजन द्वारा प्रत्यमिन (proteins) आदि यौगिक संश्लेषित होते रहते हैं। अन्य प्राणी इन पौधों, वनस्पतियोंके आहार पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार नोषजन-यौगिक वनस्पतियों द्वारा शाकाहारी प्राणियोंके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। मांसाहारी प्राणियोंके शरीरमें उनके मांस आदि भोजन द्वारा नोषजन यौगिक पहुँच जाते हैं।

प्राणियोंके मलमूत्र द्वारा अथवा वनस्पतियों और प्राणियोंके जीर्ण और मृत्यु ग्रस्त होनेसे ये नोषजन यौगिक फिर भूमिमें पहुँच जाते हैं, जीर्ण होनेसे अमोनिया और अमोनियाके यौगिक पहले बनते हैं जो नोषदीकारण कीटाणुओं द्वारा नोषित और नोषितोंमें परिणत होजाते हैं। ये नोषित और नोषित फिर पौधों के उपयोगमें आते हैं। इसी प्रकार चक्र नित्य चलता रहता है।

इस चक्रको चित्रमें हम इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं।
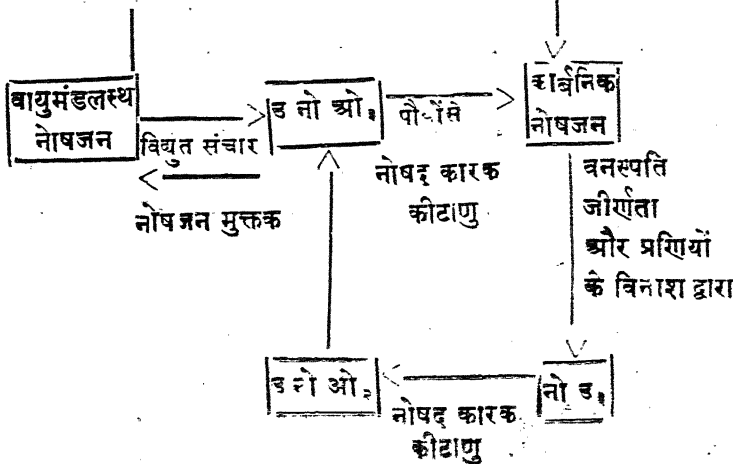
नोषिकाम्ल के गुण—शुद्ध नोषिकाम्ल नीरंग द्रव है, इसमें वाष्पें उठती रहती हैं। यह कुछ अंशमें नोषजन परौषिदमें विभाजित हो जाता है अतः कुछ दिनों रक्खे हुए नोषिकाम्लमें कुछ भूरासा रंग दृष्टिगत होता है। हाथ पर तीव्र अम्लके पड़नेसे पीले पीले दाग पड़ जाते हैं और खाल जल जाती है। अधिक मात्रामें शरीर पर पड़नेसे घावभी होजाते हैं। गरम करने पर यह कुछ विभाजित होने लगता है। ७८.२° पर उबलता है और ठंडा करनेसे यह ठोसाकार भी होसकता है। इसके नीरंग रवोंका द्रवांक—४१.३° है।

यह एक-शक्तिक अम्ल है और यह अत्यन्त प्रबल ओषद कारक है। नोषिकाम्लके घोलमें ताम्र छीलन डालनेपर शीघ्रही लाल लाल वाष्पें उठती दृष्टिगत होंगी। जब सब वाष्पें निकल जायँ तो द्रवको वाष्पीभूति करके नीलासा पदार्थ, ताम्रिक नोषेत, ता (नो ओ$_3$)$_2$ प्राप्त होगा।

नैलिन् और तीव्र नोषिकाम्लको गरम करने से नैलिन् ओषदीकृत होकर नैलिकाम्ल, उ नै ओ$_3$, में परिणत होजायगा। इसी प्रकार स्फुर इसके संसर्गसे ओषदीकृत होकर स्फुरिकाम्ल, उ$_3$ स्फुओ$_4$, देदेगा। वंगम् धातुको नोषिकाम्लमें छोड़नेसे वंग ओषिद, वंओ$_2$ बन जाता है।

धातुओं पर नोषिकाम्लका प्रभाव बहुतही विचित्र पड़ता है। ताम्रम् और दस्तम्के साथ प्रक्रिया निम्न प्रकार होती हैं:—

३ ता + ८ उ नो ओ$_3$ = ३ ता (नो ओ$_3$)$_2$ + २ नो ओ + ४ उ$_2$ ओ

४ द + १० उ नो ओ$_3$ = ४ द (नो ओ$_3$)$_2$ + नो$_2$ ओ + ५ उ$_2$ ओ

ताम्रम् द्वारा नोषिक ओषिद पृथक् हुआ था और दस्तम् द्वारा नोषस ओषिद। परौप्यम्, ओड्म्, इन्द्रम्, और स्वर्णम्को छोड़ कर अन्य सब धातुओं पर इसका प्रभाव पड़ता है। वंगम्, आंजनम्, संक्षीणम् और सुनागम् तो इसके संसर्गसे धातु ओषिद देते हैं, पर अन्य सब धातु नोषेतों में परिणत हो जाते हैं। नोषिकाम्ल स्वयं अनेक प्रकार से विभाजित हो जाता है। प्रक्रिया धातु, तापक्रम, अम्ल की शक्ति आदि अनेक कारणों पर निर्भर है। अवस्था के अनुसार, यह अवकृत होकर निम्न यौगिकों में से कोई न कोई यौगिक देता है—

१ ओषिद—नोओ$_2$, नो$_2$ ओ$_3$, नोओ, और नो$_2$ ओ

२ नोषजन

३ उदौषिलामिन, नोउ$_2$ ओउ, और अमोनिया नोउ$_3$

इन सब गुणों से यह स्पष्ट ही है कि नोषिकाम्ल कैसा विचित्र पदार्थ है।

नोषिकाम्ल के लवण नोषेत कहलाते हैं। सैन्धक उदौषिद के घोल को नोषिकाम्ल द्वारा शिथिल करनेसे सैन्धक नोषेत,—सैनोओ$_3$, प्राप्त होगा।

सैओउ + उनोओ$_3$ = सैनोओ$_3$ + उ$_2$ ओ

सीस कर्बनेतके घोलमें गरम हलका नोषिकाम्ल डालकर वाष्पीभूत करनेसे सीस नोषेत, सी (नो ओ$_3$)$_2$ के रवे प्राप्त होसकते हैं।

सी क ओ$_3$ + २ उ नो ओ$_3$ = सी (नोओ$_3$)$_2$ + उ$_2$ओ + कओ$_2$

नोषेतोंकी पहिचान—१ नोषेतके घोल में तीव्र संपृक्तगन्धकाम्ल डालो। इसमें फिर ताम्र छीलन डालनेसे नोषजन-ओषिदकी भूरी वाष्पें उठने लगेंगी—

२पांनोओ$_3$ + उ$_2$ग ओ$_4$ = पां$_2$गओ$_4$ + २उनोओ$_3$

८ उनोओ$_3$ + ३ता = ३ता (नोओ$_3$) $_2$ + २नो ओ + ४उ$_2$ओ

इससे भी अच्छी पहिचान यह है कि परखनली में नोषेत का घोल लेकर संपृक्त गन्धकाम्ल की दो तीन बूंदे डालो। मिश्रण को पानीकी धार से ठंडा करलो। अब लोहस गन्धेत का संपृक्त घोल धीरे धीरे परख नली की सतहके सहारे से डालो। लोहस गन्धेत और नोषेत का घोल जहां पर मिलेगा वहां भूरा भूरा वृत्त बनजायगा। यह प्रक्रिया अत्यन्त उपयोगी है। इसे वृत्त-परीक्षा कहते हैं।

नोषेत—जितने भी नोषेत हैं वे सब जलमें घुलनशील हैं। इनको शुष्क जलानेसे लाल वाष्पें निकलने लगती हैं। और धातुओंके ओषिद बच रहते हैं। पांशुज नोषेतको जोरसे गरम करने से ओषजन निकलने

लगता है, और यह स्वयं पांशुज नोषितमें परिणत हो जाता है।

२पां नो ओ$_3$ = २पांनोओ$_2$ + ओ$_2$

अमोनियम नोषेत को गरम करने से नोषस ओषिद बनजाता है: —

नो उ$_4$ नो ओ$_3$ = नो$_2$ ओ + २उ$_2$ ओ
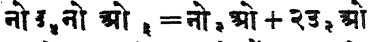
हम पहले यह देख चुके हैं कि अमोनियम नोषित को गरम करने से केवल नोषजन निकलता है।

नो उ$_4$ नो ओ$_2$ = नो$_2$ + २ उ$_2$ ओ
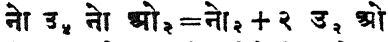
इससे स्पष्ट है कि नोषेतोंमें नोषितोंकी अपेक्षा ओषजनका एक अणु अधिक होता है। ये नोषेत अपने ओषद्कारक गुणोंके कारण विस्फुटन पदार्थोंके बनानेमें उपयुक्त होते हैं ! फुलझड़ी और बन्दूककी गोलीका मसाला बनानेमें शोरा अर्थात् पांशुज नोषेत, गन्धक और कोयलाका उपयोग किया जाता है। भूमिको उपजाऊ बनानेके लिये भी नोषेतोंका खादके रूपमें उपयोग किया जाता है। रजतनोषेत, र नो ओ$_3$, फोटोग्राफीमें रजतनैलिद, अरुणिद आदि बनानेमें बहुत उपयोग किया जाता है।

नोषसाम्ल, उनोओ$_2$

Nitrous Acid

यद्यपि नोषसाम्ल स्वयं अत्यन्त अस्थायी अम्ल है पर इसके लवण स्थायी पदार्थ हैं। शीले नामक वैज्ञानिक ने सबसे पहले यह प्रदर्शित किया था कि पांशुज नोषेत को गरम करनेके उपरान्त अवशिष्ट पदार्थमें यदि गन्धकाम्ल या उद्हरिकाम्ल डाला जाय तो लाल वाष्पें उठने लगती हैं। इस घटनासे उसने यह अनुमान कियाकि पांशुज नोषेतको गरम करने से जो पदार्थ शेष रह जाता है वह एक नये अम्ल, नोषसाम्ल, उनो ओ$_2$ का लवण है।

सैन्धक नोषेत, सैनो ओ$_3$, को ताम्रम् या सीसम् के साथ गरम करनेसे सैन्धक नोषित अधिक शीघ्रता से बनसकता है।

सै नो ओ$_3$ + सी = सै नो ओ$_2$ + सी ओ
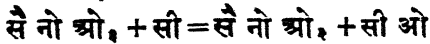
नोषिकाम्लको संक्षीणसओषिदके साथ गरम करनेसे नोषिक ओषिद, नो ओ और नोषजन परौषिद नो ओ$_2$, दोनोंकी लाल वाष्पें उठती हैं। इन वाष्पोंको यदि सैन्धक उदौषिद या पांशुज उदौषिदके घोलमें प्रवाहित किया जाय तोभी सैन्धक या पांशुज नोषित बन सकता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है।

२ पां ओ उ + (नोओ + नो$_2$)
= २ पां नो ओ$_2$ + उ$_2$ ओ
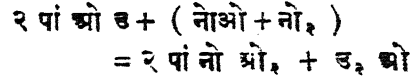
इन नोषितोंमें कुछ पीलापन होता है। इनके घोल बहुधा क्षारीय होते हैं। रजत नोषितके घोलमें सैन्धक नोषित का घोल डालनेसे रजत नोषित, र नो ओ$_2$ का अवक्षेप प्राप्त होगा:—

र नो ओ$_3$ + सै नो ओ$_2$ = र नो ओ$_2$ + सै नो ओ$_3$
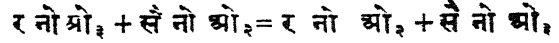
इन नोषितोंमें हलका गन्धकाम्ल, या उदहरिकाम्ल अथवा सिरकाम्ल डालनेसे उक्त अम्ल,

उ नो ओ$_2$, पृथक होता है—

सै नो ओ$_2$ + उह = सै ह + उ नो ओ$_2$
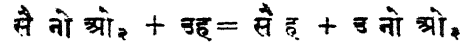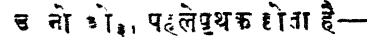
पर यह अस्थायी होनेके कारण तत्काल विभाजित हो जाता है और नोषजनके ओषिदोंकी लाल वाष्पें उठने लगती हैं।

नोषिकाम्लमें ओषद कारक गुण होते हैं जैसा कि पहले कहा जा चुका है पर नोषसाम्लमें अवकरणके गुण होते हैं। वह जहाँसे भी हो सकता है वहाँसे ओषजन का एक अणु खींचकर स्वयं नोषिकाम्लमें परिणत हो जाता है। यह पांशुज परमांगनेत, पांशुजद्वि रागेत आदि का शीघ्रतासे अवकरण कर देता है।

२ पां मा ओ$_4$ + ५ उ नो ओ$_2$ + ३ उ$_2$ग ओ$_4$
= पां$_2$ग ओ$_4$ + २ मा ग ओ$_4$ + ५ उनो ओ$_3$
+ ३ उ$_2$ ओ
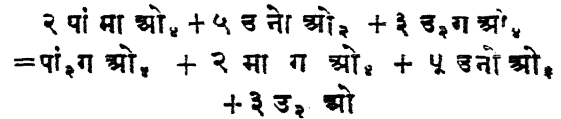
इसी प्रकार अरुणिन् का अवकरण करके यह उसे उद-अरुणिकाम्लमें परिणत कर देता है।

उ नो ओ$_2$ + रु$_2$ + उ$_2$ ओ
= उ नो ओ$_3$ + २ उरु
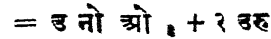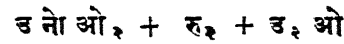
नोषसाम्ल स्वयं तो स्थिर रह नहीं सकता है अतः इन सब प्रक्रियाओंमें सैन्धक नोषित का प्रयोग किया जाता है और उसके साथ साथ उद्हरिकाम्ल की उचित मात्रा डालदी जाती है।

नोषितों की पहिचान—यदि नोषितोंके घोलमें नशास्ता, (माँड़ी) का घोल उबालकर डाला जाय और कुछ पांशुज नैलिद का घोल भी डाल दिया जाय तो फिर सिरकाम्लके डालने पर नशास्ता नीला पड़ जायगा सिरकाम्ल नोषितोंमें से नोषसाम्ल जनित करता है। यह नोषसाम्ल पांशुज नैलिदमेंसे नैलिन् मुक्त कर देता है जिसके कारण नशास्ता नीला पड़ जाता है—

२ उ नो ओ$_2$ + २ पां नै = २ पां ओउ + नै$_2$ + २ नोओ

इस प्रकार नोषितोंकी पहिचान बहुत सरलतासे की जासकती है

नोषस ओषिद नो$_2$ ओ [हँसाने वाली गैस]

Nitrous Oxide

प्रीस्टले ने सबसे पहले इस ओषिद का अन्वेषण किया था। उसके पश्चात् डेवी ने संवत १८५७ वि०में इसको अमोनियम नोषेत को गरम करके तैयार किया। इसमें प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

नोउ$_4$ नो ओ$_3$ = नो$_2$ ओ + २ उ$_2$ओ

एक कुप्पीमें २५ ग्रामके लगभग अमोनियम नोषेत लो। इसमें वाहक नली आदि सब लगाओ जैसा कि ओषजन आदि गैसोंके इकट्ठा करनेके लिये नियम है। इसे दग्धकसे गरम करना आरम्भ करो। जब नोषेत विभाजित होने लगे तो सावधानीसे धीरे धीरे गरम करो जिससे कि गैस अत्यन्त तीव्र वेगसे न निकले। इसे गरम जल के ऊपर संचित करना चाहिये क्योंकि ठंडे जलमें यह कुछ घुलनशील है। इस प्रकार परीक्षाके लिये इस गैस द्वारा कई बेलन भर लो।

नोषस ओषिदके बनानेकी दूसरी विधि यह है कि नोषिकाम्लको दस्तम्के टुकड़ोंके साथ गरम करो। प्रक्रियामें नोषिकाम्ल का अवकरण हो जायगा:—

४ द + १० उनो ओ$_3$ (हलका)

= ४ द (नो ओ$_3$)$_2$ + ५ उ$_2$ ओ + नो$_2$ ओ

नोषस ओषिद के गुण—यह नीरंग गैस है, जिसमें मधुर गन्ध होती है और स्वाद भी अच्छा होता है। यह जलमें थोड़ी सी घुलनशील है। १५° शपर यह १ आयतन जल में ०.७७७८ आयतन घुलन शील है।—९०° तक ठंडा करने से यह द्रवीभूत होजाती है। यह द्रवभी नीरंग पदार्थ है जिसका क्वथनांक —८८.७° है।

वस्तुओंके जलनेमें यह वायुकी अपेक्षा अधिक सहायक होता है। पांशुजम् और सैन्धकम् धातु भी इसमें जलसकती हैं। जलनेपर ये पदार्थ परौषिदों में परिणत होजाते हैं और नोषजन मुक्त होसकता है:—

२ नो$_2$ओ + २सै = सै$_2$ओ$_2$ + २ नो$_2$

एक परखनली में इस गैसको भरो और चिनगारी युक्त सींक इसमें लाओ। सींक ज़ोरोंसे जलने लगेगी जैसाकि ओषजनमें जलने लगती है। गन्धक और स्फुर भी इसमें बड़ी चमक के साथ जलते हैं। वस्तुतः इन पदार्थोंके जलनेके लिये यह नोषस ओषिद पहले नोषजन और ओषजन में विभाजित होजाता है। यह मुक्त ओषजन ही पदार्थों के जलने में सहायक होता है—

२ नो$_2$ओ =	२ नो$_2$ + ओ$_2$
२ आयतन	२ आय १ आय

संगठन—इस प्रकार २ आयतन नोषस ओषिदसे १ आयतन ओषजन और दो आयतन नोषजन प्राप्त होता है। यदि एक झुकी नली में पारदके ऊपर नोषस ओषिद का निश्चित आयतन भरलिया जाय और सैन्धकम् का टुकड़ा सावधानीसे इसमें गरम किया जाय तो सम्पूर्ण ओषजन सैन्धकम्से संयुक्त होजायगा और केवल नोषजनही शेष रह जायगा। प्रयोग करने से यह पता चलता है कि प्रक्रियाके समाप्त होनेपर भी आयतनमें कोई अन्तर नहीं पड़ता है। इससे सिद्ध है कि नोषस ओषिदमें अपनेही आयतन के बराबर नोषजन है।

नोषसओषिदका वाष्पघनत्व निकालनेपर पता चला है कि यह उद्जन की अपेक्षा २२ गुना भारी है। अतः २२.४ लीटर नोषस ओषिदका भार

४४ ग्राम हुआ। अभी हम कह आये हैं कि यह अपने आयतन के बराबर ही नोषजन दे सकता है, अर्थात् २२.४ लीटर ओषिद से २२.४ लीटर नोषजन प्राप्त होसकता है। इतने आयतन लीटर नोषजन का भार २८ होता है। अतः ४४ ग्राम ओषिदमें २८ ग्राम नोषजन और शेष (४४ − २८) = १६ ग्राम ओषजन है। नोषजन का परमाणुभार १४ और ओषजनका १६ है अतः इस नोषस ओषिद का सूत्र नो$_2$ओ हुआ।

नोषस ओषिद को 'हंसाने वाली गैस' भी कहते हैं क्योंकि जब इसे हवाके साथ सूंघते हैं तो एक प्रकार की विशेष सनसनी होती है, और मनुष्य कुछ कालके लिये मतवाला होकर हंसने कूदने लगता है। शुद्धावस्थामें सूंघनेसे मूर्छनामी हो जाती है जिससे मनुष्यको पीड़ाका अनुभव होना बन्द होजाता है। दाँत आदि उखाड़नेके समय इसका उपयोग किया जासकता है, जिससे रोगीको दर्द का अनुभव न हो।

नोषिक ओषिद, नोओ

(Nitric oxide)

प्रीस्टले ने सं० १८२६ वि० में इस ओषिदका अनुसन्धान किया था। उसने इसे ताम्रम् और नोषिकाम्ल द्वारा बनाया। प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

३ ता + ८ उ नो ओ$_3$

= ३ ता(नो ओ$_3$)$_2$ + २ नो ओ + ४ उ$_2$ ओ
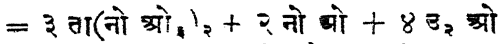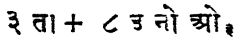
एक कुप्पीमें ताम्रछीलन रखो और तीव्र नोषिकाम्ल में उतनाही आयतन जल मिलाकर इसमें डालदो अम्लके डालतेही पहले तो लाल वाष्पें उठती दिखायी पड़ेंगी। (इस कुप्पी में वाहक-नली आदि गैस बनाने की सब योजनायें करलो)। इसका कारण यह है कि कुप्पीके अन्दर की वायु और नोषिक ओषिदके संयोग से नोषजन परौषिद, नो ओ$_2$, बनता जारहा है:—

२ नो ओ + ओ$_2$ = २ नो ओ$_2$
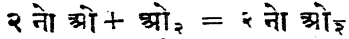
जब अन्दर का सम्पूर्ण ओषजन समाप्त होजायगा तो लाल वाष्पोंका निकलना बन्द होजायगा और शुद्ध नीरंग नोषिक ओषिद निकलने लगेगा जिसे पानीके ऊपर गैसके बेलनों में संचित किया जा सकता है। यह ओषिद जलमें बहुतही कम घुलनशील है।

बिल्कुल शुद्ध नोषिक ओषिद निम्न प्रकार बनाया जासकता है — एक कुप्पी में पारद को संपृक्त गन्धकाम्लके साथ जिसमें पांशुज नोषेत पांनोओ$_3$ भी डालदिया गयाहो, हिलाओ। शुद्ध नोषिक ओषिद निकलने लगेगा। प्रक्रिया इस प्रकार है:—

२पांनोओ$_3$ + उ$_2$गओ$_4$ = पां$_2$गओ$_4$ + २उनोओ$_3$

२उनोओ$_3$ + ६पा + ३उ$_2$गओ$_4$

= २नोओ + ३पा$_2$गओ$_4$ + ४उ$_2$ओ
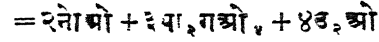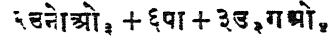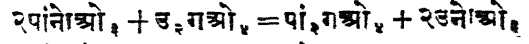
नोषेतों की पहिचान लिखते समय हमने यह बतलाया था कि नोषेतके घोलमें संपृक्त गन्धकाम्ल और लोहस गन्धेतका घोल डालनेसे एक प्रकार भूरा वृत्त बनता है। वस्तुतः इस प्रक्रियामें पहले नोषिक ओषिद जनित होता है। यह नोषिक ओषिद शेष लोहसगन्धेतसे संयुक्त होकर विचित्र भूरा यौगिक बनाता है। प्रक्रिया इस प्रकार है:—

पां नो ओ$_3$ + उ$_2$ ग ओ$_4$ = पां उ ग ओ$_4$ + उ नो ओ$_3$

६ लो ग ओ$_4$ + २ उ नो ओ$_3$ + ३ उ$_2$ ग ओ$_4$

= ३ लो$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$ + २ नो ओ + ४ उ$_2$ ओ
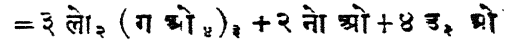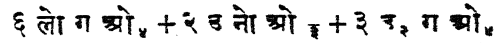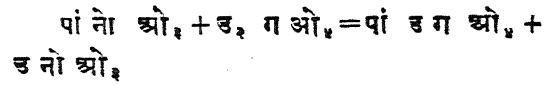
भूरे यौगिक को गरम करके भी शुद्ध नोषिक ओषिद प्राप्त हो सकता है।

नोषिक ओषिद के गुण—यह नीरंग गैस है जो वायु से कुछ भारी होती है। यह जलमें बहुतही कम घुलनशील है। १५° श पर १ आयतन जलमें केवल ०.०५१ आयतनही घुलन शील है। बड़ी कठिनता से यह द्रवीभूत की जा सकती है। द्रवका क्वथनांक—१५०°.२ है जो—१६०°.८ पर श्वेत ठोसमें परिणत होजाती है। यह ठंडे लोहस गन्धेतके घोलमें शीघ्र घुल जाता है, घुलने पर भूरा काला द्रव प्राप्त होता है जिसका सूत्र [लो ग ओ$_4$ नो ओ] है।

यह वायुके ओषजनसे संयुक्त होकर शीघ्रही नोषजनपरौषिदमें परिणत हो जाता है जिससे लाल लाल वाष्पें होती हैं।

इसमें बहुतसे पदार्थ जल सकते हैं, पर उसी अवस्थामें जब वे पहिले बाहरसे जोरोंसे जलाकर इसके अन्दर लाये जायें। इसका कारण यह है कि यदि पदार्थ पहलेसेही जोरोंसे जल रहे होंगे तो उनके तापसे नोषिक ओषिद नोषजन और ओषजनमें विभाजित होसकेगा, अन्यथा नहीं। यहमुक्त ओषजन ही पदार्थोंके उत्तरोत्तर जलनेमें साधक होजायगा। खूब जोरोंसे जलता हुआ स्फुर नोषिक ओषिदमें जल सकता है पर धीरे धीरे जलता हुआ स्फुर, जलता हुआ कोयला, या गन्धक इसमें बुझ जायगा क्योंकि इनके जलनेसे इतना ताप जनित नहीं होता है जो नोषिक ओषिदमें से ओषजनको मुक्त कर दे। इस विभाजनके लिये १०००° से ऊपरका तापक्रम आवश्यक है।

इस गैससे भरे हुए बेलनमें यदि कर्बनद्विगन्धिद कग$_२$, डाल कर हिलाया जाय तो मिश्रण दियासलाई लगातेही सुन्दर नीली ज्वालाओं से जलने लगेगा।

नोषिक ओषिद, नोषस ओषिद और ओषजन की पहिचान—नोषस ओषिदका वर्णन करते हुए हम लिख चुके हैं कि नोषस ओषिद पदार्थों के जलने में उतनाही साधक होता है जितनाकि ओषजन। अब यदि दो बेलनों में से एकमें यदि नोषस ओषिद भरा हो और दूसरे में ओषजन, तो दोनोंकी पहिचान किस प्रकार की जायगी! नोषिक ओषिदकी सहायतासे यह पहिचान की जा सकती है।

नोषिक ओषिदकी पहिचान—इसके बेलनको वायुमें खोलने पर लाल वाष्पें उठेंगी क्यों कि यह नोषजन परौषिदमें परिणत होजायगा।

नोषस ओषिदकी पहिचान—इसके बेलनके ऊपर नोषिक ओषिदसे भरा हुआ बेलन उल्टा करके रखो लाल वाष्पें नहीं दिखाई पड़ेंगी। क्योंकि नोषस ओषिद नोषिकओषिदके संयोगसे नोषजन परौषिद नहीं देता है।

ओषजनकी पहिचान—ओषजनके बेलनके ऊपर नोषिक ओषिदका बेलन लाकर उल्टा रखो। नोषजन परौषिदकी लाल वाष्पें दिखाई पड़ेंगी।

इस प्रकार ओषजन और नोषस ओषिदमें भेद किया जासकता है।

नोषिक ओषिदका संगठन—इसका संगठनभी उसी प्रकार निर्धारित किया जासकता है जिस प्रकार नोषस ओषिद का अर्थात् पारदके ऊपर एक झुकी हुई नलीमें इस गैसका कुछ निश्चित आयतन लो। सैन्धकम् धातुका टुकड़ा जलाओ। जलनेके पश्चात् अब गैसका आयतन पहलेसे आधा ही रह जायगा इसके गैस द्वारा अपने आयतनका आधा नोषजन प्राप्त होसकता है—

$$२नो ओ = नो_२ + ओ_२$$
२आय. १आय. १आय
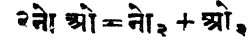
[दो आयतन नोषिक ओषिद से १ आयतन नोषजन और १ आयतन ओषजन प्राप्त होता है। इसमें से १ आयतन ओषजन तो सैन्धकम्से संयुक्त होकर समाप्त होजाता है। शेष १ आयतन नोषजन रह जाता है। इस प्रकार दो आयतन ओषिदसे अन्तमें १ आयतन ही गैस पदार्थ मिलता है।]

नोषिक ओषिद का घनत्व १५ है अर्थात २२.४ लीटर ओषिदका भार ३० ग्राम है। इस आयतन में ११.२ आयतन नोषजन का है जिसका भार १४ ग्राम होता है। अतः इसमें शेष (३०—१४=१६) सोलह ग्राम ओषजन हुआ। नोषजनका परमाणु भार १४ है और ओषजन का १६ अतः नोषिक ओषिद का सूत्र [नो ओ] हुआ।

नोषजन त्रिओषिद, नो$_२$ ओ$_३$

Nitrogen trioxide

हलके नोषकाम्लके संचीणस ओषिद, सं$_२$ ओ$_३$ के साथ स्रवण करनेसे नोषजन त्रिओषिद, नो$_२$ ओ$_३$, की लाल वाष्पें प्राप्त होती हैं जिन्हें द्रावक मिश्रण द्वारा ठंडा करनेपर नीला उड़नशील द्रव प्राप्त होता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है।—

$$२उ नो ओ_३ + सं_२ ओ_३ = सं_२ ओ_४ + उ_२ओ + नो_२ ओ_३$$
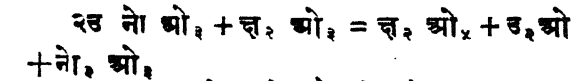
यह वस्तुतः नो ओ और नो ओ$_२$ का मिश्रण माना जासकता है—

नो ओ + नो ओ$_2$ = नो$_2$ ओ$_3$

इसे नोषसाम्लका अनाद्रिद भी कह सकते हैं—

२ उ नो ओ$_2$ = नो$_2$ ओ$_3$ + उ$_2$ ओ

इसे सैन्धक उदौषिद्के घोलमें प्रवाहित करनेसे सैन्धक नोषित, सै नो ओ$_2$, प्राप्त होसकता है :—

२ सै ओ उ + नो$_2$ ओ$_3$ = २ सै नो ओ$_2$

नोषजन परौषिद्, नो ओ$_2$

Nitrogen peroxide

नोषिक ओषिद् और वायुके संसर्गसे नोषजन परौषिद्, नो ओ$_2$ बनता है।

नो ओ + ओ = नो ओ$_2$

१४०° श तापक्रमके नीचे यह परौषिद् बहुधा नोषजन चतुरोषिद्, नो$_2$ ओ$_4$, के रूपमें विद्यमान रहता है—

२ नो ओ$_2$ = नो$_2$ ओ$_4$

संपृक्त नोषिकाम्ल पर ताम्रम्के प्रभावसे प्रीस्टलेने इसे तैयार किया था।

ता + ४ उ नो ओ$_3$ = ता (नो ओ$_3$)$_2$ + २ नो ओ$_2$ + २ उ$_2$ ओ

यह ध्यान रखना चाहिये कि नोषिक ओषिद्के बनानेमें नोषिकाम्लको जलद्वारा हल्का कर लिया गया था।

सीस नोषेतको गरम करके भी यह बनाया जा सकता है—

२ सी (नो ओ$_3$)$_2$ = २ सी ओ + ४ नो ओ$_2$ + ओ$_2$

एक मजबूत परखनलीमें शुष्क सीस नोषेतका चूर्णलो इसके मुँहमें काग कस कर एक वाहकनली लगाओ जिसका दूसरा सिरा चूल्हाकार नलीके संयुक्त रहे। चूल्हाकार नलीको द्रावक मिश्रणमें रख दो। परखनलो को गरम करो। नोषजन परौषिद्का पीला-द्रव चूल्हाकार नलीमें आजावेगा।

नोषजन परौषिद्के गुण—इसकी वाष्पें लाल होती हैं। द्रावक मिश्रण द्वारा ठंडा करके पीलाद्रव प्राप्त होता है जो और अधिक ठंडा किये जाने पर पाला ठोस पदार्थ हो सकता है जिसके रवोंका द्रवांक —९·०४ है।

यह पदार्थोंके जलनेमें साधक नहीं है पर जोरोंसे जलता हुआ स्फुर इसमें जल सकता है। इसका कारण वही है जो नोषिक ओषिद्के विषयमें था। पांशुजम्का टुकड़ा एक दम इसमें जल उठता है। गरम किया हुआ सैन्धकम् भी जलता रहता है। आधा आयतन नोषजन इन प्रक्रियाओंमें शेष रह जाता है—

२ नो ओ$_2$ = नो$_2$ + २ ओ$_2$

२ आय.　　१ आय

नोषजन पंचौषिद्, नो$_2$ ओ$_5$

नोषिकाम्लको स्फुर पंचौषिद् द्वारा स्रवण करनेसे नोषजन पंचौषिद् नामक ठोस श्वेत यौगिक प्राप्त होता है। स्फुर पंचौषिद्, स्फु$_2$ ओ$_5$ नोषिकाम्लमें से जलका एक अणु पृथक् कर लेता है:—

२ उ नो ओ$_3$ = नो$_2$ ओ$_5$ + उ$_2$ ओ

अतः नोषजन पंचौषिद्को नोषिकाम्लका अनाद्रिद कहना चाहिये।

रासायनिक युद्ध

(ले० श्री पं० यमुनादत्तजी तिवारी एम० एस०-सी)

संसारकी भिन्न भिन्न जातियोंमें जो कि एक दूसरेसे सदा आगे बढ़ना चाहती हैं और जो एक दूसरेके ऊपर अपना प्रभुत्व जमानेकी सदा इच्छुक रहती हैं किसी प्रकारके सन्धिपत्र या प्रतिज्ञाओंसे युद्धका सदाके लिये स्थगित होना असम्भव प्रतीत होता है। प्रेम, व्यापार और युद्धमें जो कुछ किया जाता है, सब यथार्थ है" यह कहावत सदा दृढ़ बनी रहेगी। वर्तमान कालके

युद्धोंमें कौनसी जीव लेनेकी क्रिया भली है यह बताना बड़ा कठिन है। मनुष्योंके अङ्ग प्रत्यङ्गोंको बड़े बड़े गोलोंसे और गोलियोंसे भग्नावस्थामें कर देना और उनको अन्तमें तृषित और पीड़ासे रोदन करते छोड़ देना कब भला मनुष्य कर्म है! वर्तमान सभ्यता की बड़ाई मनुष्यको जीवनके आदिही में अंगहीन कर देना और अपने प्रियजनोंके ऊपर भार बना देना ही है। इसके लिए कोई उपयुक्त औषधि नहीं है युद्ध कभी सदाके लिए स्थगित नहीं हो सकते, इसलिये प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि वीरतासे इनका सामना करे और सदा युद्धके लिये विज्ञानके नवीनसे नवीन आविष्कारोंका प्रयोग करनेके लिये तत्पर रहे। रासायनिक युद्ध क्रिया का अब प्रयोग होने लगा है, किसी प्रकारके सन्धिपत्र या प्रतिज्ञा या 'हेग सन्धिपत्र' रासायनिक प्रयोगकी रीतिको न बदलही सकते हैं न रोक ही सकते हैं। जब युद्धमें सम्मिलित जातियाँ सन्धिपत्र या प्रतिज्ञाओंके प्रतिकूल जानेपर उतारू होते हैं इस हालतमें सचमुचमें सन्धिपत्र और प्रतिज्ञायें अकसर शत्रुता और उत्पातकी मात्राको घटानेके बदले और उत्तेजित कर देती हैं। उन्नीसवीं शताब्दीमें युद्ध शास्त्रकी उन्नतिने व्यक्तिगत प्रभावको बहुत बड़ा धक्का ही नहीं पहुँचाया है बल्कि प्रायः मिटाही दिया है। बड़ी बड़ी सेनाओं और बेड़ोंका रखनाभी व्यक्तिगत प्रभाव को हानिकारक ही है, केवल वायुयान और जलनिमग्न नौकायें (Submarines) व्यक्तिगतप्रभाव के आश्रय दाता हैं। रासायनिक युद्धक्रियाने रासायनिकको युद्धक्षेत्रमें ला दिया है जिससे सारी स्थिति हीमें महान् परिवर्तन होगया है। रासायनिक पदार्थों का अनन्त परिवर्तन और उनकी गुप्त शक्ति मनुष्यकी बुद्धि के लिये नूतन आविष्कार करनेके लिये अनन्त कोष है।

युद्धमें वाष्पोंका प्रयोग ऐसा है कि इसके प्रयोग कर्ताके सामने शिक्षित सिपाही तुच्छ प्राय हैं। एक अशिक्षित जन भी जिसके पास एक लेविसाइट Lewisite या "Dew of deatbh" यानी "मौतके जल विन्दु" का भरा हुआ पात्र है वह ठीक सहस्र-रजनी चरित्रके उसी मनुष्यकी ही अवस्थामें होगा जिसके पास वह लैम्प था जिसमें एक भूत कैद किया हुआ था। लैम्पके रगड़ते नहीं, भूत कार्य क्रमके लिए तुरन्त तैयार, वैसेही "मौतके जलविन्दु" का पात्र खुला नहीं, सहस्रों मनुष्योंकी मृत्युका आह्वान हुआ। यह सत्य समझिये, कुछही दिनोंमें भयानक रासायनिक पदार्थ बड़ी शक्तिशाली विद्युत् धारायें और भिन्नभिन्न प्रकारके रोगोंके जीवाणुही युद्धके सर्व प्रधान अस्त्र शस्त्र होंगे। यद्यपि बहुतही कम मनुष्य युद्धमें सम्मिलित होंगे फिरभी युद्धमें सम्मिलित देशोंके निरपराध वासी भी शारीरिक कष्ट भोगेंगे। प्राचीन समयमें युद्धमें गैसें (वायव्य विद्युत कम काममें लाई जाती थी। इसका प्रधान कारण यही जान पड़ता है कि कोई उपयुक्त गैस नहीं ज्ञात थी। जो कुछ ज्ञातभी थीं उनका शरीर पर गुण ज्ञात नहीं था और उनको बड़ी बड़ी मात्राओंमें बनाना और उनका उचित रीति से उपयोग करना भी कठिन था। प्रायः २५०० वर्ष पूर्व कहा जाता है स्पार्टनोंने एथिनियोंको युद्धमें भगानेके लिए गन्धक द्विओषिद (So_2) का प्रयोग कियाथा जिसको उन्होंने गन्धक जलाके पैदा किया था। इसके पश्चात् भी गन्धक द्विओषिद साधारणतः युद्धमें काम लाया जाता था, इस वायव्य का प्रयोग वैज्ञानिक रीतिके नियमानुसार न होनेके कारण कुछ विशेष सफलता प्राप्त न होसकी। वैज्ञानिक नियमानुसार गैसका प्रयोग करनेका प्रयोग करनेका प्रथम प्रस्ताव अंग्रेज प्रधान जलसेना नायक डन्डोनैल्ड Dundonald साहबने किया वह यह था कि उन्होंने सिवास्टपूल (Sebastpool) से १८५५ इसवीमें रूसियोंको भगानेके लिए गन्धक, गन्धककोक (coke) और तार (Tar) जलानेकी अनुमति माँगी। सरकारी कमेटीने जिसको इस प्रस्ताव पर विचार करने को कहा गया था कहा कि प्रस्ताव से वे पूरी तरह सहमत हैं परन्तु गन्धक द्विओषिद के शरीर पर भयानक गुणके कारण इस वाष्पको प्रयोग करने अनुमति नहींदे सकते। यूरोपीय महासमरमें गैसका

प्रथम प्रयोग २२ अप्रेल १९१५ के दिन हुआ। इसदिन जर्मनोंने फ्रान्सीसियों पर हरिन् वायव्यका प्रयोग किया था। इसके मास भर बादही मित्र सेनायें भी गैसोंको काममें लाने लगीं। इस दिनसे आगेको युद्धमें सम्मिलित जातियां अपनी अपनी शक्ति इस नये शस्त्रके प्रयोगमें बड़े परिश्रमके साथ लगाने लगीं। महा समरमें गैस प्रयोगसे प्रति शतक दो मनुष्यमरे और बहुतही कम घायल हुए और अस्त्रोंके प्रयोगसे प्रति शतक २५ मृत्यु हुई और ५ प्रति शतक सदाके लिए घायल हो गये। इससे प्रतीत होता है कि यदि युद्धमें सम्मिलित जातियां गैस युद्धके लिये तत्पर हों तो गैस युद्ध ही सबसे भला युद्ध कहा जा सकेगा। यदि दूसरी ओर दृष्टिपात कीजिये तो गोली और तोपसे बचना गैससे बचनेसे कहीं सरल है। साधारणतः जिन पदार्थोंका रासायनिक युद्धमें प्रयोग होता है वे जहरीले वायव्य कहे जाते हैं। यदि देखा जाय तो इन पदार्थोंमें अधिकतर द्रव और ठोस पदार्थ हैं। लेखकों ने इन पदार्थोंको मनुष्य शरीरमें इनके गुणके अनुसार भागोंमें विभाजित किया है। ये भाग कृत्रिम हैं। सुगमताके लिये ये पदार्थ नीचे लिखे भागोंमें विभाजित किये गये हैः—

(१) प्राणहर पदार्थ (Lethal bodies, वे पदार्थ जो प्राण घातक हैं (२) अंखफोड़े (Lachry mators) वे पदार्थ जो आँखोंमें अपना गुण दर्शाते हैं और मनुष्यको कुछ समयके लिये दृष्टिहीन बना देते हैं। (३) त्वचा घातक (Vesicants) वे पदार्थ जो चमड़ीमें फफोले कर देते हैं जिनसे बड़े कष्टदायक घाव हो जाते हैं। (४) छिकन पदार्थ (sternutatory) वे पदार्थ जिनसे छींकें आती हैं और जो मनुष्यको मास्क* (Mask) खोलनेके लिये बाध्य कर देती हैं जिससे और भयानक वायव्यके लिये शरीरमें जानेके लिये राह सुगम हो जाय (५) उत्तेजक वायव्य (Camouflage 'gases') वे पदार्थ जिनका प्रयोग जहरीली वायव्योंको पहिचाने जानेसे रोकनेका है और वे भी जिनका गुण जहरीली वायव्यको उत्तेजित करनेका है जिससे मास्कका लगाये रखना कठिन हो जाय।

(१) प्राणहरवायव्य (Lethal gases):—ये कई भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं (क) तीव्र विष जिनसे बिना पीड़ाके मृत्यु होजाय जैसे उदश्यामिकाम्ल (HCN), श्यामजन अरुणिद (Cyanogen bromide) और कर्बन एकौषिद (CO)। इनके बनाने की विधि सुगम है इसलिए इसका वर्णन नहीं किया जायगा कर्बन एकौषिद वायव्य है। श्यामजन अरुणिद (cyanogen bromide) ठोस पदार्थ है। उदश्यामिकाम्लि-द्रव पदार्थ है।

(ख) साँसकी गति रोकनेवाले विषैले पदार्थ जिनसे रक्त में ओषजन पहुँचता है प्रधानता फेफड़ों पर अपना गुण दर्शाते हैं। फेफड़े की छोटी छोटी झिल्लियां नष्ट हो जाती हैं और हवा की छोटी २ थैलियाँ रक्त से भर जाती हैं जिससे साँस घुट जाती है जैसे फोसजीन क ओ ह₂ (Phosgene $COCl_2$) त्रिहरो दारील हरो पिपीलेत (Trichlormethyl chloroformate or green cross), हरोप्रबलिन् (Chloropicrin ह₃क नोओ₂) इन विषैले पदार्थो को बनाने की कुछ विधि और इनके कुछ गुण वर्णन किये जावेंगे।

फोसजीन ($Co Cl_2$) सबसे प्रथम जे. डेभी साहब ने बनाया, इसको बनानेके लिए कर्बन एकौषिद और हरिन् समअणुक-भागोंमें हड्डीके कोयलेके ऊपर जिसका तापक्रम २००°श हो ले जाया जाता है। हड्डीके कोयले बिना और अन्धेरेमें फोसजीन बहुतही अधिक ताप देनेपर बनती है। इसको बनानेमें ध्यान देने योग्य ये बातें है। (१) दोनों वायव्यों कर्बन एकौषिद और हरिन्के बराबर भाग लिये जांय (२) कर्बन एकौषिद बहुत शुद्धहो (३) हड्डीके कोयलेका जिसका होना अत्यन्त आवश्यक है, ताप क्रम २००°श हो। जर्मनी में समरके पहलेजो विधि फोसजीन बनाने

---

*मास्क—एक प्रकारका यन्त्र जो विषैले वायव्योंसे बचने के लिए मुँह पर लगाया जाता है यह किस प्रकार बनाया जाता है और क्या पदार्थ इसमें काममें लाये जाते हैं किसी दूसरे लेखमें लिखा जायगा।

की थी उसे सन् १९१५ से सब जान गये। महासमरके समयजो विधि काममें लाई गई उसमें और ऊपरदी हुई विधिमें थोड़ाही अन्तर है।

फौसजीनके गुण— फौसजीन द्रव पदार्थहै। जिसका क्वथनांक ४·२°श है और यह—११८°श में ठोस हो जाता है, ठण्डे पानीमें वह बहुत कम घुलता है और ठण्डा पानी इसको धीरे धीरे नष्ट करता है परन्तु गरम पानी इसको अति शीघ्र नष्टकर देता है। बानजावीन, टोल्यीनमें यह शीघ्र घुल जाता है। यह बहुत विषैला पदार्थ है। दिलपर यहधीरे धीरे अपना गुण दर्शाता है। प्रत्यक्ष तो यह प्रतीत होता है कि अब इसका बिलकुलभी गुण शेष नहीं है किन्तु अकसर इसका फल मृत्यु ही होती है। यह फेफड़ों में अत्यन्त खुजलाहट पैदा करती है। इससे तीव्र दुर्गन्ध आती है जो एकबार सूंघले कभी नहीं भूल सकताहै। यह पदार्थ किस प्रकार जीवके शरीर में अपना गुण दर्शाता है निम्न प्रकारसे समझाया गया है। कुछ वैज्ञानिकोंका कहना है कि शरीरमें उदहरिकाम्ल के बननेसे इसका यह भयानक गुण है और कुछका कहना है कि हवाके बदले फेफड़ोंमें इसके भर जानेसे सांस घुट जाती है। इसका आश्चर्य्यजनक गुण इतनी सरलतासे नहीं समझाया जासकताहै, इस पदार्थके शरीरमें पहुँचने पर बचनेके लिये तुरन्तही आराम लेना अत्यन्त आवश्यकहै और ओषजनकी सांस लेना अति हितकर है।

त्रिहरोदारीज हरोपिपीलेत, हकओओकह$_3$ (Trichloromethylchloroformate or green cross)—इस पदार्थको बनानेकी कई एक विधि हैं। पुरानी विधि इसको फौसजीनसे बनाने की है।

(१) क ओ ह$_2$ + कउ$_3$ ओ उ = हकओ ओकउ$_3$ + उह

(२) हकओओकउ$_3$ + ३ह$_2$ = हकओओकह$_3$ + ३उह

नूतन विधिमें फौसजीनका प्रयोग नहीं करना पड़ता है। दारील मद्य और पिपीलिकाम्लसे पहिले दारील पिपीलेत ($HCOOCH_3$) बनाया जाताहै जिसके लिये शुद्ध दारीलमीद्य (CH_3 OH) और ९५ % पिपीलिकाम्ल आवश्यकीय हैं—ये दोनों पदार्थ(lead lined) सीसेकी कलई किये हुये बर्तनमें जो कि पोर्सलीनकी ईंटोंसे सुरक्षित होता है और ताँबेकी नलियोंसे गरम किया जाता है, गरम किये जाते हैं। इसके पश्चात् दारील पिपीलेत शुद्ध किया जाता है और फिर उसमें हरिन् काँचकी नलियोंके सहारे मिलाया जाता है। आदिमें पानी ठण्डा रखा जाता है परन्तु जब बनानेकी विधि अन्त होनेको होतीहै, ठण्डा करना बन्द कर दिया जाताहै और हरिन् अधिक मात्रा में बर्तनमें भेजी जाती है जिससे तापभी क्रमशः १४०°—१६०°श तक उठजाता है। धूप हरिन्के मिलानेकी विधि को उत्तेजित करती है।

यह पदार्थ तेलकी भाँति होता है इसका कथनांक १२७°५—१२८°श है। इसकी गन्ध साँसको गति रोकतीहै। फौसजीन में और इसमें बहुत अन्तर है और यह बिना फौसजीनकी मददसे बनाई जातीहै परन्तु गरम करने पर यह फौसजीन देती है।

हरो प्रबलिन, ह$_3$क नो ओ$_2$ Chloropicrin—यह पदार्थ पहिले पहल स्टैनहौउस (Stenhouse) ने १८४९ में खटिक प्रबलेत (Calcium picrate) को रंग विनाशक चूर्ण (bleachng powder) के साथ मिलाने से बनाया। यह सिरकोन (एसिटोन) सेभी बनाया जता है। यह पदार्थ प्रधानतः प्रबलिकाम्ल (Picric acid) और रंग विनाशक चूर्ण ही से बनाया जाता है। इसी विधि के आधार पर महासमर में भिन्न भिन्न रीतियोंसे यह पदार्थ बनाया गया। रंग विनाशक चूर्ण पानी के साथ एक बर्तन में जिसमें भली भाँति हिलाने और ठण्डे करने के यन्त्र लगे रहते हैं, मिलाया जाता है और उसमें लगातार प्रबलिकाम्ल मिलाया जाता है और बर्तनका तापक्रम ३०°श रखा जाता है। हरोप्रबलिन है (Chloropicrin) इसमें से स्रवित करलिया जाता है और इससे पानी अलगकर लिया जाता है। शुद्ध हरोप्रबलिन सफेद द्रव पदार्थ है। इसका क्वथनांक ११२°श है यह पानीमें नहा घुलता है, मद्यमें बड़ी सुगमतासे

घुल जाता है। मामूली तापक्रम पर यह पानी और हल्के अम्ल या क्षारसे नष्ट नहीं होता है। यह पदार्थ प्राणहर और अश्रुफोड़ Lachrynatory or Lethal दोनों हैं। महासमरमें मित्र सेना ने इसको ४:१ के अनुपातमें वंगिक हरिद के साथ मिला कर प्रयुक्त किया था। बंग हरिद इसके लिए वाहकका काम करता है। यह काफी समय तक अपना गुण दिखाता है और जिस स्थानमें इसका प्रयोग किया गया हो, ६ घण्टे के बाद भी उस स्थानमें चलना फिरना आपद्जनक और भयानक है।

स) वे विष जो फेफड़ोंको हवा लेजानेवाली नलियोंके अन्तरको हानि पहुँचाते है नष्टप्राय ही कर देता है उन हालतों में जब कि इस विषसे ग्रसित जन की मृत्यु नहो तो उसके फेफड़े इतने शक्तिहीन हो जाते हैं कि उनमें कफपित्त क्षय आदि रोगोंके जीवाणु अपना सिक्का अति शीघ्र जमा लेते हैं; उदाहरणार्थ सर्षप वायव्य (Mustard gas or yperite or yellow cross) और ज्वलील द्विहरसंक्षिणिन (ethyldichlorarsine)

खिपत (Consumption)

[ले:—श्री विश्वप्रकाश बी. ए. विशारद]

गत लेखमें यह बताया जा चुका है कि खिपतके आधीन दो विषयोंका अध्ययन करना पड़ता है (१) इच्छायें (wants) (२) मांग। (Demand)। इच्छाओंके गुणोंका वर्णन हो चुका है। अब मांगके विषयमें कुछ लिखा जायगा।

इच्छा और मांगमें थोड़ासा ही अन्तर है। मांग में कुछ त्यागभी करना पड़ता है। इसमें यह आवश्यक है कि हम अपना कुछ धनभी व्यय करनेको तय्यार हों और उस वस्तुकी इच्छाभी रखते हों। प्रत्येक पुरुषकी इच्छायेंभी होती हैं और मांगभी। पर मांगके विषय में हम अनेकों नियम पाते है।

न्यून उपयोगिताका सिद्धान्त (Diminishing utility)

हम किसीभी वस्तुको क्रय करते समय उसकी उपयोगिताका अवश्यही ध्यान रखते हैं क्योंकि वस्तु वही मोल ली जासकती है जिसकी कुछ उपयोगिता सिद्ध हो। एकही वस्तुकी जब हमारे पास अधिक मात्रा होजाती है तो हम उसकी अधिक इच्छा नहीं करते। आपके पास दस कुर्सियां हैं और उससे आप का काम अच्छी तरह निकल जाता है। ऐसे समय आप कहेंगे कि और कुर्सियां खरीदने और उसमें रुपया व्यर्थ लगानेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। पर यदि आपको वही चीज़ सस्ती मिल जाय तो आप बिना आवश्यकताके भी उसे खरीद लेंगे। पर आप और कुर्सियां खरीदनेके लिये अधिक मूल्य नहीं देना चाहते। इससे यह बात सिद्ध होती है कि उसकी उपयोगिता कम है। यदि उसकी उपयोगिता अधिक होती तो उस समय आप अधिक धन अवश्यही व्यय करते।

कल्पना कीजियेकि आपको गेहूँकी आवश्यकता है। यदि आप भूखे मरने लगेंगे १०) मनके गेहूं भी आपको क्रय करने पड़ेंगे। पर उस समय गेहूँका भाव ६) मन है। इस मूल्य पर आपने ५ मन गेहूँ मोललिये हैं। इससे तात्पर्य यह है कि पांचवें मनकी उपयोगिता ६) है। छठे मनकी उपयोगिता ६) से कम है नहींतो आप उसकोभी लेलेते।

पूर्ण उपयोगिता (Total utility)

भिन्न भिन्न मात्राओंकी उपयोगिताका यदि योग किया जायतो पूर्ण उपयोगिता मिल सकती है। हर एक मात्राओंकी उपयोगिता पहले मालूम होजाना चाहिये।

यहां पर हम एक सारिणी देते हैं जिससे अन्तिम उपयोगिता, पूर्ण उपयोगिता आदि आसानीसे समझ में आजावेंगी।

मूल्य	मात्रा (गेहूँ)	पूर्ण उपयोगिता Total utility	अन्तिम उपयोगिता Marginal utility
१०) मन	१ मन	१००	१००
९) मन	२ ,,	१०० + ९० = १९०	९०
८॥)"	३ ,,	१०० + ९० + ८५ = २७५	८५
८) ,,	४ ,,	१०० + ९० + ८५ + ८० = ३५५	८०
७) ,,	५ ,,	१०० + ९० + ८५ + ८० + ७० = ३२५	७०

इस सारिणीके पहले कोष्टमें गेहूका भाव दिया हुआ है, दूसरेमें मात्रादी हुई है जितनी हम जितने मूल्यपर क्रय करेंगे। तीसरे कोष्टमें पूर्ण उपयोगिता दिखलाई गई है। जब हम १ मन गेहूँ खरीदते हैं तो १०० उपयोगिता हुई. दूसरा मन जब क्रय कियातो उसकी उपयोगितामें कमी आगई और १०० के स्थान में उसकी उपयोगिता ९० ही रह गई। इसलियेदो मन गेहुओंकी पूर्ण उपयोगिता १०० + ९० = १९० हुई। यदि अन्तिम उपयोगिताका पता लगना हो तो इस प्रकार निकालते हैं—पहले मन गेहूँकी उपयोगिता १०० थी और २ मनोंकी उपयोगिता १९० हुई। दो मनकी उपयोगिता १९० में से पहले मनकी उपयोगिता १०० घटादी गईतो दूसरे मनकी अन्तिम उपयोगिता १९०—१०० = ९० निकल आई।

उपयोगिता समान नहीं होती

संसारमें एकही प्रकृति और एकही स्थितिके पुरुष नहीं होते और यही कारण है कि उनकी उपयोगिताभी समान नहीं होती। कोई मनुष्य धनी होता है, कोई मध्यावस्थाका और कोई गरीब। अमीर पुरुषके लिये जिस वस्तुकी अधिक उपयोगिता होती है, गरीब आदमी उस वस्तुको पा भी नहीं सकते। इसलिये यह कहावत प्रसिद्ध है "गरीबके लिये एक रुपयेका मूल्य अमीरसे अधिक होता है"। अमीर आदमी १०) या १५) गजका कपड़ा खरीदते हैं और इसकी उपयोगिता उनके लिये अधिक है—पर यदि ३०) मासिक पानेवाला पुरुष १०) गज का कपड़ा पहने तो उसे भूखों मर जाना पड़ेगा। अच्छे कपड़े पहन कर वह भूख को नहीं दूर कर सकता। उसके भोजन की उपयोगिता उसके वस्त्रों से कहीं अधिक है। इसी तरह से एक मध्यावस्था का पुरुष इक्के पर चढ़ कर अपने काम पर जा सकता है, पर एक चपरासी यदि चाहे कि इक्के पर चढ़ कर जावे तो उसे उपवास करना पड़े।

पुरुषों की प्रकृति भी उपयोगिता बढ़ाती या घटाती है। बहुत से पुरुष अपने धन को कपड़ों के खरीदने या अच्छे २ भोजन खाने में लगाते हैं। बहुत से उसको व्यापार में लगाते हैं। बहुत से उसको भिन्न २ रूप में व्यय करते हैं। इन सब की उपयोगिता अपने अपने लिये अधिक ही होती हैं।

किसी पुरुष की मांग

यदि किसी पुरुष की मांग का हमें अनुमान करना हो तो यह आवश्यक होगा कि हम यह जान ले कि वह किस मूल्य पर कितनी मात्रा खरीदता है।

मूल्य	मात्रा (चावल)
२०) मन	१० सेर
१८) "	१२ "
१५) "	१५ "
१०) "	१ मन
८) "	२ "

यदि वह पुरुष २ मन चावल खरीदने के बाद फिर अधिक न खरीदे तो यह मांग की सारिणी (Schedule of Demand) कहलावेगी।

बाज़ार की माँग (Demand of the market)

बाजार की मांग निकालने में कई बातों का विचार करना पड़ता है। वैसे तो सबसे सरल रीति यह है कि सब पुरुषों की मांग का योग कर लिया जाय और वास्तविक मांग इसी से जानी जा सकती है। एक और विधि हो सकती है कि एक पुरुष की जितनी मांग हो उसे जन-संख्या से गुणा करदे। मान लीजिये कि २०) मन जब चावल का भाव है तो एक पुरुष १० सेर क्रय करता है। यदि एक नगर की जन संख्या १००० है तो १ लाख सेर चावल खरीदा गया। पर इसमें कठिनाई यह पड़ती है कि सभी पुरुष एक प्रकृतिके तथा समान धनी नहीं होते। इस कारण उनकी उपयोगितायें भी भिन्न भिन्न हुआ करती हैं और इसका प्रभाव बाजारकी मांग पर पड़ा करता है। एक बातका विचार और कर लेना चहिये। किसी वस्तुके मूल्यमें कमी हो जानेसे ही उसकी माँग नहीं बढ़ जाती। मांग उसी समय बढ़ेगी जब कि अन्य वस्तुओंकी अवस्था वैसी ही रहेगी। मान लीजिये कि गेहूँका मूल्य घट गया और उसकी मांगमें वृद्धि होनी चाहिये। पर उसी समय चावल का मूल्य गेहूँ से अधिक घट गया। ऐसी अवस्था में लोग चावल ही खाना आरम्भ कर देंगे।

मांगका सिद्धान्त (Law of Demand)

मांगका सिद्धान्त इस प्रकार है:—जितनी अधिक मात्रामें कोई वस्तु बेचनी हो उतनी ही कम उसका मूल्य होना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें जब किसी वस्तुका मूल्य कम होता है तो उसकी मांग अधिक होती है और जब मूल्य अधिक होता है, तो मांग कम होती है।

इस सिद्धान्तसे यह न समझना चाहियेकि मूल्यकी कमी और अधिक बिक्री या अधिक बिक्री और कम मूल्यमें किसी प्रकारका अनुपात होता है। मूल्य में कभी केवल १०% कमी होती है पर बिक्री दुगनी होजाया करती है।

एक ही इच्छाकी निवृत्ति अनेकों वस्तुओंसे होजाया करती है। इस कारण इन वस्तुओंमें एक प्रकार की स्पर्धा हुआ करती है और एक वस्तुके मूल्यमें कमी हो जाने पर भी माँगमें अधिक वृद्धि नहीं होती। बात यह होती है कि अन्य वस्तुओंके मूल्यमें अधिक कमी हो जानेसे लोग उन वस्तुओंका ही उपयोग करने लगते हैं। ऐसी वस्तु जिनमें इस प्रकार की स्पर्धा होती है उनके उदाहरण यह हैं चाय और कहवा चावल, ज्वार, मक्का और चावल; गेहूँमें रेशमी सूती और खद्दर; आदि।

वैज्ञानिकीय

फोटोग्राफी में सेलूलोज (लकड़ी के प्रधान अंश) से परिवर्तन—

आज कलके फोटोग्राफीके प्लेटमें सेल्लुलायड या शीशेके ऊपर (Gelatin) रहती है। उसमें रजत प्रुणिद (Ag Br) के कण रहते है जिनपर रोशनीका असर होता है—(Gelatin) की तह बड़ी नाजुक होती है जिससे प्लेटके सुखानेमें बड़े धैर्य्यकी आवश्यकता होती है। बहुत गर्मीसे जिलेटिन (Gelatin) पिघल जायगी और तसवीर खराब हो जायगी।

अब फिलिप डेविडने एक नई तरहसे प्लेट बनाई हैं। सेल्लुलोज गर्म पानीमें भी नहीं घुलता इस

से तसवीरको धोनेमें अब गर्म पानीभी इस्तेमाल हो सकता है जिससे अब तसवीर उभारने में ३ या ४ मिनट, और उसको पक्का करनेमें दो मिनट और धोनेमें आधा मिनटही लगता है। फिर उनको आंच देकर सुखा सकते हैं। सारा काम १० मिनटमें बड़ी आसानीके खतम हो जाता है। यह फोटोग्राफर और सिनेमा बायस्कोप वालोंको बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

युवक वैज्ञानिक

अभी हालमें खोज करने परपता चला है कि विज्ञानके अधिकतर गम्भीर सिद्धान्त और उपयोगी खोजें अवस्थामें ही की गयो हैं—जैसे डिप्थेरिया Antitorin का तोड़ Diphthria पहले बान वेहरिंगने ३१ वर्ष की युवाअवस्थामें निकाला Diabetes की दवा Insulin इनसुलिन वैडिंगने १९२३ ई० में ३१ वर्षकी अवस्थामें निकाली मेडेम क्यूरीने १८७९ में जबकि वे ३८ वर्षकी थी रेडियम निकाला २९ वर्षकी अवस्थामें और डारविन और वालैस अपने Origin of species के सिद्धान्तके मालूम करने पर २९ और ३६ वर्षसे थे। एहरलिकने अपनी अत्यन्त उपयोगी खोजे २३ वर्षकी अवस्थामें की थी और नीबर और शादिनने सूजाक और गर्मीके कड़े २४ और ३५ वर्ष में मालूम कियेथे। मोसले साहबने अपना परमाणु संख्या परका अति उपयोगी कार्य २५ वर्षकी अवस्थामें हीतो किया था।

—श्री कुंज बिहारी मोहन लाल बी. एस. सी.

जीवजन्तुओंके व्यवहारसे ऋतुकी सूचना

पहिलेसे मौसममें परिवर्तन बतलानेके लिए अनेक प्राकृतिक नियम हैं। उनमें से अधिकतर उन लोगोंने निर्धारित किये हैं जो प्रायः नगरोंसे बाहर जंगलोंमें ही रहते हैं। ये नियम बहुत समयसे लोगोंमें प्रचलित हैं और प्रकृतिके भक्तोंने इन्हें अपने प्रयोगसे सिद्ध कर दिखाया है। हर एक बच्चेको प्रकृतिकी विशेष विशेष बातें सीखनी चाहिये। मौसमभी प्रकृतिका सबसे बड़ा भाग है। यहाँ हम मौसम परिवर्तनका समय पहिलेसे जाननेके कुछ नियम लिखते हैं।

जब वर्षा होने वाली होती है :—

१—चीटियाँ अपने घरोंमें बहुत जल्दी जल्दी आया जाया करती हैं।

२—गधे अधिक रेंकने लगते हैं।

३—हड्डियाँ जो टूट कर अच्छी होगई हों, दर्द करने लगती हैं।

४—मुर्गे परोंको बहुत फड़फड़ाने लगते हैं और मुर्गियाँ बेचैन मालुम पड़ती हैं।

५—चाँदके चारों ओर मण्डल सा बन जाता है।

६—कुत्ते और बिल्लियाँ सुस्त हो जाती हैं और आगके पास सुस्तसी बैठ जाया करती हैं।

७—बतकें असाधारणरूपसे जोर जोरसे बोलती हैं।

८—पर और सूखे पत्ते तालाबोंके ऊपर चक्करमें घूमते हैं।

९—मछलियाँ पानीकी सतह पर आजाती हैं और अपने शिकारको फुर्तीसे पकड़ती हैं।

१०—मक्खियाँ बढ़ जाती हैं और बहुत दिक करती हैं।

११—नालों औरतालाबोंमें मेंढक जोर जोरसे बोलते हैं।

१२—कगेले बहुत शोर करते हैं।

१३—जानवर खेतमें एकओर इकट्ठे हो जाते हैं और उनकी पूंछे हवाकी तरफको रहती हैं।

१४—लैम्प आदि कम प्रकाश देते हैं।

१५—तूती जोर जोरसे गाने लगती है।

१६—कभी कभी आकाश बहुत निर्मलहो जाता है।

१७—शोर और आवाज अधिक साफ और दूर से सुनाई देती है।

१८—धुआँ चिमनीसे नीचेकी ओरको जाता है।

१९—गड्ढों और नालियोंमें दुर्गन्ध आने लगती है।

२०—पौधोंमें कुछ शिथिलता आजाती हैं। फूलों की पत्तियाँ कुछ फीकी पड़ जाती हैं।

२१—पहली शामको छिपता हुआ सूर्य पीला सा प्रतीत होता है।

२२—एक समुद्री पक्षी जिसे सीगल कहते हैं तूफ़ान आनेके समय ज़मीनकी तरफ़ उड़ने लगता है।

२३—मकड़े दीवारों पर रेंगते दिखाई देते हैं।

२४—शामको मेंढक बहुत ज्यादा बाहर आजाते हैं।

२५—अबाबील बहुत नीचे उतर आती है।

२६—बाजोंका स्वर हलका पड़ जाता है।

२७—जंगलोंमें हवासे सन् सन्की आवाज़ निकलती है।

२८—आँधी आनेसे पहले ढोर अपने शिर ऊपर को उठा लेते हैं, नथनोंको फुलाकर सांस लेते हैं।

२९—विलायती कौवे जल्दी अपने अपने घोसलोंमें आजाते हैं।

३०—दूर दूरकी चीजें पास दीखने लगती हैं।

जब ऋतु खुलने वाली होती है

३१—चमगादड़ शामको देर तक उड़ते हैं।

३२—भौंरे आदि शामको देर तक उड़ते हैं।

३३—चकवा आकाशमें ऊंचे पर उड़ता है और देर तक गाता है।

३४—सुबह को गेंदा खूब खिलता है।

३५—चन्द्रमा स्वच्छ और चमकदार हो जाता है।

३६—एक लालफूल (Scarlet pimpernel) प्रातःकाल खूब खिलता है।

३७—शामको मच्छड़ गोलाईमें फिरते हैं।

३८—चिमनीका धुआँ ऊपरको उड़ता है।

३९—मेघाच्छन्न आकाशमें ज्यों ज्यों दिन बढ़ता जाता है त्यों त्यों नीली पट्टीभी बढ़ती जाती है।

४०—मकड़ीके जाले हवामें अधिकतासे उड़ते हैं।

४१—तारे बहुत चमकते हैं।

४२—पतंग आसानीसे ऊँचे उड़ सकते हैं।

जब ऋतुमें परिवर्तन होने वाला हो

४३—गठियाके रोगी का दर्द और चीस अधिक हो जाती है।

४४—कानोंमें भिन्न भिन्न शब्द अधिक सुनाई देता है।

४५—घरोंमें चूहे बहुत चलते फिरते प्रतीत होते हैं।

४६—जिन लोगोंके शिरमें प्रायः दर्द रहा करता है उन्हे अधिक दर्द मालुम होने लगता है।

जब ठंड पड़ने लगती है।

४७—रोबिन और दूसरे छोटे पक्षी घरोंकी खिड़कियोंके पास आने लगते हैं।

४८—कार्तिक और क्वारके आरम्भमें खंजन पक्षी आजाते हैं।

४९—जबझाँवोंमें आग बहुत तेज़ गलती है तब यह समझना चाहिए कि बहुत सूखा पड़ेगी।

श्री अमीचन्द विद्यालंकार

समालोचना

रसयोग सागर

प्रथम भाग— लेखक और प्रकाशक वैद्य श्री पं० हरिप्रपन्न शर्मा, श्री भास्कर ओषधालय, मुंबई नं० २। मूल्य १२)। पृ० संख्या १०४+१७८+२९+७०५ =१०१६। बृहदाकार

इस बृहद्ग्रन्थमें अकारसे लेकर तकार तकके वर्णों से आरम्भ होनेवाले रसोंके बनाने की स्पष्ट रूपसे विधि दी गई है। इसमें रसों की संख्या निम्न प्रकार है—

स्वरादि रस—	४४७
कवर्गादि रस—	५५९
चवर्गादि रस—	३२३
(टवर्गादि संयुक्त)	
तवर्गादि रस—	४६७
योग	१७९६

इस प्रकार इस ग्रन्थ में अट्ठारह सौके लगभग रसोंका विवरण दिया गया है। ५३ के लगभग प्राचीन प्रमाणित मुद्रित ग्रन्थों और ५२ के लगभग

हस्तलिखित पुस्तकोंके आधार पर इसमें ७३१४ श्लोक उद्धृत किये गये हैं। इसके अतिरिक्त अनेक आर्ष, अनार्ष, प्राच्य और पाश्चात्य ग्रन्थोंकी सहायतासे विद्वान् लेखक ने इसमें दो विस्तृत भूमिकायें भी दी हैं। ग्रन्थके आरम्भमें १०४ पृ० की अंग्रेजीकी मनोहर और विद्वत्ता-पूर्ण भूमिका है और तदुपरान्त १७८ पृ० में सरल संस्कृत में भूमिका लिखी गई है। संस्कृतकी भूमिका अंग्रेजी की भूमिका का कुछ अंशों में तो अनुवाद अवश्य है पर इसके अतिरिक्त उसमें कई नवीन विषयों का भी समावेश किया गया है। अंग्रेजी की भूमिका से लेखक की अगाध विद्वत्ता का परिचय हो सकता है। प्राच्य और पाश्चात्त इतिहासज्ञोंके वचनोंको उद्धृत करके वैद्यक शास्त्रका सुन्दर इतिहास और अतीत भारतके गौरवका मनोहर चित्र इसमें अंकित किया गया है। वेदोंके अवतरण प्रस्तुत करके लेखक ने यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है कि रसायन और वैद्यक विद्याका आदि मूलवेदोंमें विद्यमान है और चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थ इन्हीं मंत्रोंकी व्याख्या स्वरूप हैं। हार्नले आदि पाश्चात्य विद्वानों की चरक तथा सुश्रुत के निर्माण काल विषयक भ्रान्ति पर भी श्री हरि प्रपन्नजी ने विचार पूर्वक प्रकाश डाला है।

इस ग्रन्थमें कुछ सूचियाँ अत्यन्त उपयोगी दी हुई हैं। वैदिक, ब्राह्मण और सुश्रुत कालमें शरीरावयवोंको समानान्तर नामोंकी सूची वैदिक साहित्यके अध्ययन करनेवालों को अवश्य मूल्यवान् सिद्ध होगी। एक सूचीमें शरीरके अवयवों के चरक, तथा सुश्रुत वर्णित नाम तो दिये ही गये हैं उनके साथ साथ अंग्रेजी पद भी रख दिये गये हैं। इस प्रयास के लिये समस्त पाठकोंको हृदयसे कृतज्ञ होना चाहिये।

रसोंके बनानेकी विधि-संग्रह में लेखक ने बड़ा परिश्रम किया है। भिन्न भिन्न प्राच्य ग्रन्थों के श्लोकोंको उद्धृत करके उनका भाषानुवाद भी दे दिया गया है। सारांश यह है कि ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है और अपने ढंगका निराला है। हिन्दी साहित्य इस प्रकारकी पुस्तकोंपर गर्वकर सकता है। हमें पूर्ण आशा है कि उदारजनता इसका समुचित समादर करेगी जिससे प्रोत्साहित होकर इस ग्रन्थके दूसरे भागको भी देखनेका हमें शीघ्र ही अवसर प्राप्त हो।

छपाई सफाई कागज़ आदि सभी अत्यन्त उत्तम हैं।

❦ ❦ ❦

श्री रामायण-कथामृतम्—(सचित्र साप्ताहिक पत्रिका) वार्षिक मूल्य ४॥) टीकाकार तथा सम्पादक प्रो० बैजनाथ कोटी, झांसी।

इस पत्रिकामें रामायणकी विस्तृत व्याख्या निकल रही है। अलंकार आदि का विशद वर्णन दिया गया है। सम्पादक महोदयका प्रयास सराहनीय है।

❦ ❦ ❦

आर्य्यमित्र (ऋषि-अंक)—सम्पादक श्री पं० हरिशंकर शर्मा जी आगरा। मूल्य ।–)।

प्रत्येक दीप मालिका को आर्य्यमित्र का ऋषि अंक निकालने की प्रथा है। इस वर्षका ऋषि-अंक विचित्र ही है। कागज़ देखिये चाहे उसकी छपाई, दोनों ही देखकर अजीब कौतूहल उत्पन्न हो जाता है, कहां ऋषिदयानन्द की पुण्यस्मृति और कहां उसके भक्तों का यह स्वांग। अंक के पृष्ठ पर ही एक विचित्र चित्र है, मानों दवाइयों के नोटिस का कोई दृश्य हो। हमारी समझ में ही नहीं आता कि ऐसे चित्रों के देने से पत्र की उपयोगिता क्या बढ़गई। सम्पूर्ण लेखों को पढ़ जाइये, एकाध को छोड़ कर सभी से झलक रहा है कि विद्वान लेखकों ने सम्पादक जी के कहने पर बेगार टाली है। दयानन्द महाकाव्य में से उद्धृत पहली कविता क्या है मानों कोई ककहरा हो। हम नहीं समझते कि ऐसे काव्योंसे ऋषि का गौरव बढ़ेगा या क्या होगा। हमारा तो यही अनुरोध है कि ऐसे दर्शनीय ऋष्यंकों के निकालने से न निकालना ही अच्छा है।

सत्यप्रकाश, एम. एस. सी.

असंपृक्त-उदकर्बन

(Unsaturated Hydrocarbons)

(ले० श्री० सत्यप्रकाश एम० एस-सी०)

पृक्त उदकर्बनोंका वर्णन पहले किया जा चुका है। दारेन, ज्वलेन आदि संपृक्त उदकर्बन हैं क्योंकि इनमें कर्बन परमाणुओंकी चारों संयोग-शक्तियाँ किसी न किसी अन्य परमाणुसे संयुक्त हैं—

कर्बन परमाणु दारेन
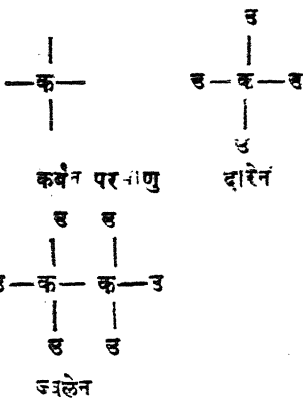
ज्वलेन

अब हम कुछ ऐसे यौगिकोंका भी वर्णन करेंगे जिनमें कर्बन परमाणुओंकी सब संयोग शक्तियाँ उपयुक्त नहीं हुई हैं, कुछ मुक्त रह गयी हैं। ऐसे यौगिकों को असंपृक्त—यौगिक कहते हैं। ज्वलेन संपृक्त उदकर्बन है पर ज्वलीलिन असंपृक्त उदकर्बन है—
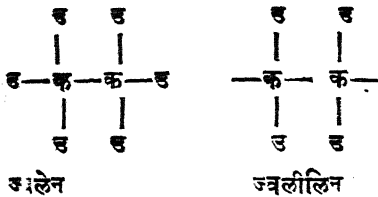
ज्वलेन ज्वलीलिन

क्योंकि इसमें ज्वलेनकी अपेक्षा दो उदजन परमाणु कम हैं और इसलिये इसकी दो संयोग-शक्तियाँ खाली हैं। सिरकीलिन ज्वलीलिनकी अपेक्षा और भी अधिक असंपृक्त हैं क्योंकि इनमें कर्बनकी चार संयोग शक्तियाँ खाली हैं—
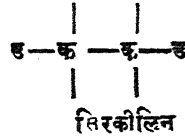
सिरकीलिन

इस प्रकार असंपृक्त उदकर्बन दो विभागोंमें विभाजित हो सकते हैं—

(१) ज्वलीलिन वंश

(२) सिरकीलिन वंश

हम पहले ज्वलीलिन वंश से उदकर्बनोंका वर्णन करेंगे और फिर सिरकीलिन वंशका। संपृक्त उदकर्बनों में सबसे अधिक उदजन परमाणु होते हैं और सिरकीलिन में सबसे कम—

ज्वलेन—$\text{क}_{२}\text{उ}_{६}$, ज्वलीलिन $\text{क}_{२}\text{उ}_{४}$, सिरकीलिन $\text{क}_{२}\text{उ}_{२}$

ज्वलीलिन वंश (Olefines)

संपृक्त उदकर्बनोंका सामान्य सूत्र $\text{क}_{\text{न}}\text{उ}_{२\text{न}+२}$ बताया गया था। ज्वलीलिन वंशके उदकर्बनोंका सामान्य सूत्र $\text{क}_{\text{न}}\text{उ}_{२\text{न}}$ होता है, अर्थात् इनमें संपृक्तोंकी अपेक्षा उदजनके २ परमाणु कम होते हैं। आगेके पृष्ठमें दी हुई सारिणीमें इस वंशके कुछ मुख्य उदकर्बन दिये जाते हैं।

यह कहा जा चुका है कि इन उदकर्बनोंमें कर्बनकी दो संयोग शक्तियाँ खाली रह जाती हैं। यदि दो कर्बन परमाणुओंको दो संयोग-शक्तियोंसे संयुक्त कर दिया जाय तो फिर कोई संयोग शक्ति खाली नहीं रह जायगी। ज्वलीलिनको हम निम्न प्रकार चित्रित कर सकते हैं:—

(१)

```
        उ   उ
        |   |
(२)     क = क
        |   |
        उ   उ
```

(३) क उ₂ : क उ₂
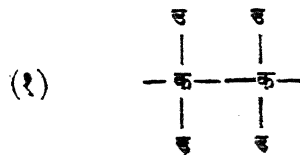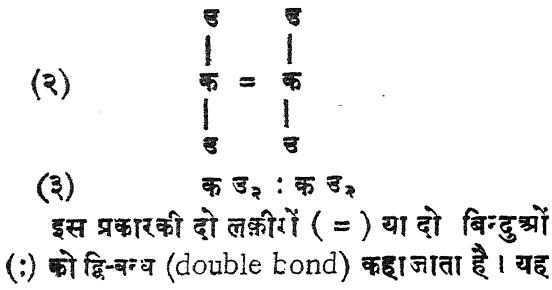
इस प्रकारकी दो लकीरों (=) या दो बिन्दुओं (:) को द्वि-बन्ध (double bond) कहा जाता है। यह सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि दो कर्बनोंके बीचमें दो संयोग शक्तियाँ लगा देनेसे हमारा तात्पर्य्य यह कभी नहीं है कि इस प्रकारके यौगिकोंमें ये दोनों कर्बन परमाणु अन्य कर्बनोंकी अपेक्षा अधिक बलसे एक दूसरेको थामे हुए हैं। वस्तुतः, जैसा कि आगे की प्रक्रियाओंसे पता चलेगा, इस प्रकारका संयोग एक बन्धकी अपेक्षा बहुत निर्बल होता है।

उदकर्बन	सूत्र	क्वथनांक
ज्वलीलिन	$क उ_2 : क उ_2$	—१०३°
अम्रीलिन (या दारील ज्वलीलिन)	$क उ_3 क उ : क उ_2$	—
नवनीतिन (या द्वि-दारील ज्वलीलिन)	$क उ_3 क उ : क उ क उ_3$	१°
केलीलिन (या दारील ज्वलील ज्वलीलिन)	$क उ_3 क उ : क उ क_2 उ_5$	३६°

ऊपरकी सारिणीमें ज्वलीलिन वंशज कुछ मुख्य उदकर्बन दिये गये हैं। अम्रीलिनको हम ज्वलीलिनका वंशज इस लिये कहते हैं कि ज्वलीलिनके एक उदजन परमाणुके स्थानमें एक दारीलमूल स्थापित कर देनेसे अम्रीलिन प्राप्त होता है; इसीलिये इसे दारील ज्वलीलिन भी कह सकते हैं—

$क उ_2 : क उ_2$ — ज्वलीलिन $क उ_3 क उ : क उ_2$ — अम्रीलिन

इसी प्रकार केलीलिन, नवनीतिन आदिको समझना चाहिये। इन सबके सूत्र ज्वलीलिनके सूत्रमें उदजनके स्थापनमें मद्यीलमूल स्थापित करनेसे प्राप्त हो सकते हैं।

ज्वलीलिन(Ethylene)

बनानेकी विधि—लकड़ी और कोयलेके स्रवण करनेसे अनेक पदार्थ प्राप्त होते हैं। ज्वलीलिनभी थोड़ीसी मात्रामें इन पदार्थोंमें विद्यमान रहता है। पर इसके बनानेकी मुख्य विधिमें ज्वलीलमद्य का उपयोग किया जाता है। ज्वलीलमद्य और ज्वलीलिन के सूत्रोंकी तुलना करनेसे पता चलता है कि मद्यमें ज्वलीलिन की अपेक्षा जलका एक अणु अधिक है:—

$$क_2 उ_5 ओउ = क_2 उ_4 + उ_2 ओ$$
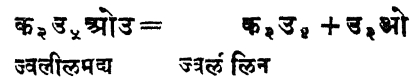
ज्वलीलमद्य   ज्वलीलिन

(१) अतः अनार्द्रकारक रसोंकी प्रक्रियासे ज्वलीलमद्य ज्वलीलिनमें परिणत किया जा सकता है!

संपृक्त गन्धकाम्ल, स्फुरिकाम्ल, अथवा दस्तहरिद उपयोगी अनार्द्रकारक है।

कांचकी कुप्पीमें काग लगाकर पेंचदार कीप और वाहक नली लगाओ। कुप्पीमें २५ ग्राम ज्वलीलमद्य और १५० ग्राम तीव्र गन्धकाम्लका मिश्रण डाल दो। इसमें थोड़ी सी बालू अथवा कुछ अनार्द्र स्फट गन्धेत भी छोड़ दो। कुप्पीको रेणु-कुंडी पर धीरे धीरे गरम करो जब तक उबाल न आजाय। वाहक नलीको अब दो बोतलोंसे जिनमें सैन्धक उदौषिद घोल आधा भराहो, उत्तरोत्तर संयुक्त करदो। कीपसे २ भाग गन्धकाम्ल और एक भाग मद्यका मिश्रण और डालदो प्रयोगमें थोड़ासा कर्बन पृथक होता है जो गन्धकाम्ल को अवकृत करके गन्धक द्विओषद में परिणत कर देता है। इसे अभिशोषित करनेके लिये ही सैन्धक उदौषिदके घोलमें गैसोंको प्रवाहित कर देते हैं; और शुद्ध ज्वलीलिन संचित किया जा सकता है।

ज्वलीलिनको यदि अरुणिन (२० घ. शम. और १ घ. श म जल) में प्रवाहित कर दिया जाय और घोलके पात्रको ठंडे पानी द्वारा शीतल रखा जाय तो धीरे धीरे अरुणिन का रंग दूर हो जायगा। इस प्रक्रियामें ज्वलीलिन अरुणिद बन जायगा:—

$$\text{क}_2\text{उ}_4 + \text{रु}_2 = \text{क}_2\text{उ}_4\text{रु}_2$$
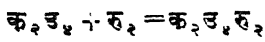
ज्वलीलिन अरुणिद

इस घोलको सैन्धक कर्बनेत डाल कर हिला कर और खटिक हरिद डाल कर जल दूर कर लेने पर यदि स्रवण किया जाय तो ज्वलीलिन अरुणिद प्राप्त हो सकता है। इसका क्वथनांक १३१० है।

(२) मद्यिक पांशुज उदौषिद और ज्वलील नैलिद के प्रभावसे भी ज्वलीलिन प्राप्त हो सकता है।

$$\text{क}_2\text{उ}_5\text{नै} + \text{पांओउ} = \text{क}_2\text{उ}_4 + \text{पांनै} + \text{उ}_2\text{ओ}$$
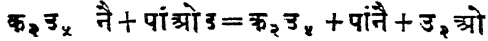
कांचकी कुप्पीमें पेंचदार कीप और उलटा भभका लगाओ। उलटे भभकेसे तात्पर्य्य यह है कि कुप्पीसे जो गैसे निकले उसे भभकेमें ऊपर चढ़नी पड़े। भभकेमें ऊपरी सिरेमें काग लगाकर एक वाहक नली लगा दो। कुप्पीमें मद्यिक पांशुज उदौषिद (अर्थात् पांशुज उदौषिदका मद्यमें घोल) डाल दो और इसमें गरम करने के बाद कीप द्वारा ज्वलील नैलिद थोड़ा थोड़ा टपकाओ। ज्वलीलिन गैस तीव्रतासे निकलने लगेगी। इसे गैसके बेलनोंमें पानी पर संचित किया जा सकता है।

(३) पांशुजरालेतके घोलका विद्युत् विश्लेषण करनेसे भी ज्वलीलिन प्राप्त हो सकता है

```
कउ₂ क ओ ओ पां            कउ₂
|              ———>      ||     + २कओ₂ + २पां
कउ₂ क ओ ओ पां            कउ₂
```
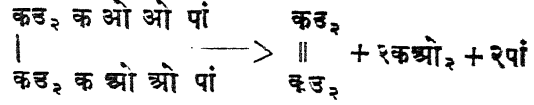
ज्वलीलिनके गुण—साधारण तापक्रमपर यह गैस है जिसे ०°श पर ४४ वातावरण दबाव डालनेसे द्रवीभूत किया जा सकता है इसका क्वथनांक —१०३°श है। यदि इसे शून्यमें शीघ्रतासे वाष्पीभूत किया जाय तो -१५०°श का तापक्रम प्राप्त हो सकता है। डीवार नामक वैज्ञानिक ने इस गुणकी उपयोगिता देखकर ओषजनके द्रवीभूत करनेके लिये इसकी सहायता ली थी।

यह गैस प्रकाश युक्त धुंआदार लपकसे जलती है इसकी कुछ उपयोगी रासायनिक प्रक्रियायें नीचे दी जाती हैं:—

(१) यदि ज्वलीलिन और उदजन का मिश्रण तप्त चूर्ण नकलम् अथवा कृष्ण-पररौप्यम् पर प्रवाहित किया जाय तो ज्वलेन प्राप्त होगा—

```
कउ₂          कउ₃
||   + उ₂ =  |
कउ₂          कउ₃
            ज्वलेन
```
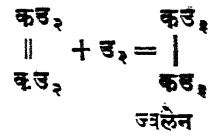
(२) ज्वलीलिन हरिन् और अरुणिन्से संयुक्त होकर युक्त यौगिक बनाता है। ये दोनों तत्व द्विबन्धके दोनों ओरके कर्बन परमाणुओंसे संयुक्त हो जाते हैं:—

```
कउ₂          कउ₂ह
||   + ह₂ =  |
कउ₂          कउ₂ह
          ज्वलीलिन हरिद
```

$$\begin{array}{l} क\ उ_2 \\ \| \\ क\ उ_2 \end{array} + रु_2 = \begin{array}{l} क\ उ_2 रु \\ | \\ क\ उ_2 रु \end{array}$$

ज्वलीलिन अरुणिद
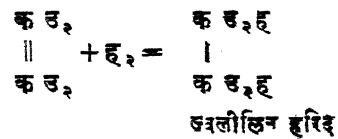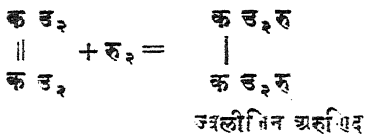
नैलिनसे संयोग बहुत धीरे धीरे होता है।

(३) ज्वलीलिन उदहरिकाम्ल, उदअरुणिकाम्ल और उदनैलिकाम्लसे भी संयुक्त हो सकता है। ज्वलीलिनका एक कर्बन परमाणु इन अम्लोंके उदजन परमाणुसे संयुक्त हो जाता है और दूसरा कर्बन परमाणु लवणजन तत्वसे—

$$\begin{array}{l} क\ उ_2 \\ \| \\ क\ उ_2 \end{array} + उनै = \begin{array}{l} क\ उ_3 \\ | \\ क\ उ_2 नै \end{array}$$

ज्वलील नैलिद
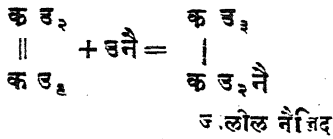
इस प्रकारकी प्रक्रिया उदनैलिकाम्ल द्वारा अधिकतम तीव्रतासे होती है और उदहरिकाम्लसे धीरे धीरे।

(४) धूम्रित गन्धकाम्लसे संयुक्त होकर ज्वलीलिन ज्वलील-उदजन-गन्धेतमें परिणत हो जाता है:—

$$\begin{array}{l} क\ उ_2 \\ \| \\ क\ उ_2 \end{array} + उ_2 ग ओ_4 = \begin{array}{l} क\ उ_3 \\ | \\ क\ उ_2 ओ ग ओ_2 ओउ \end{array}$$

ज्वलीलउदजन गन्धेत
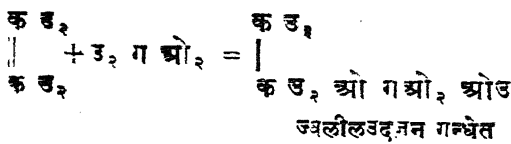
(५) पांशुज परमांगनेतसे ज्वलीलिनका ओषदीकरण हो जाता है, और ज्वलीलिन मधुओल प्राप्त होता है। दोनों कर्बनोंसे एक एक उदौषी लमूल संयुक्त हो जाता है:—

$$\begin{array}{l} क\ उ_2 \\ \| \\ क\ उ_2 \end{array} + उ_2 ओ + ओ = \begin{array}{l} क\ उ_2 ओ उ \\ | \\ क\ उ_2 ओ उ \end{array}$$

ज्वलीलिन मधुओल

(६) यह उदहरसाम्ल, उहओ, से संयुक्त होकर ज्वलीलिन-हर-उदिन देता है —

$$\begin{array}{l} क\ उ_2 \\ \| \\ क\ उ_2 \end{array} + उ ह ओ = \begin{array}{l} क\ उ_2 ओ उ \\ | \\ क\ उ_2 ह \end{array}$$
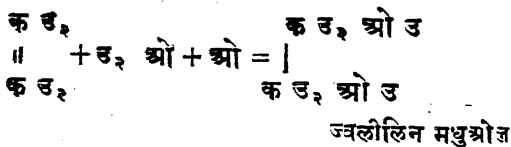
ज्वलीलिन हर उदिन
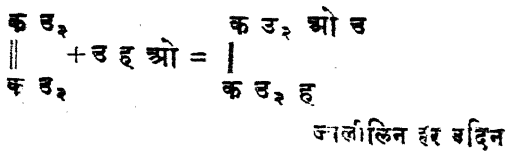
इन सब प्रक्रियाओंको देखनेसे पता चल जायगा कि ज्वलीलिनके ये सब गुण उसकी असम्पृक्त अवस्था अर्थात् द्विबन्धके कारण हैं। इसी प्रकारके गुण अम्रीलिन, केन्लीलिन आदिमें भी हैं:—

अम्रीलिन हरिन्से संयुक्त होकर निम्न प्रकार द्विहरो अम्रेन देता है—

$$कउ_3 . कउ: कउ_2 + ह_2 = कउ_3 . कउह . कउ_2 ह$$

द्विहरो अम्रेन
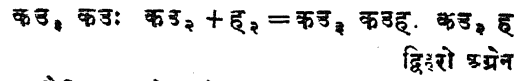
उदनैलिकाम्लसे संयोग निम्न प्रकार होता है—

$$कउ_3 . कउ: कउ_2 + उनै = कउ_3 . कउनै . कउ_3$$

द्वितीय अम्रील नैलिद
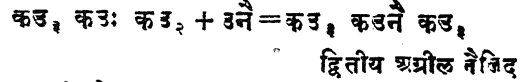
इस अम्लके नैलिन् आदि लवणजन तत्त्व उस कर्बनसे संयुक्त होते हैं जिसके साथ सबसे कम उदजन परमाणु हों। उदनैलिकाम्लकी इस प्रक्रियामें $कउ_3 . कउ_2 . कउ_2 . नै$ नहीं बनेगा।

इसी प्रकार अम्रीलिन आदिकी अन्य प्रक्रियायें ज्वलीलिन आदिके समान ही समझनी चाहिये।

सिरकीलिन वंश (Acetylene family)

सिरकीलिन वंशके कुछ मुख्य उदकर्बन निम्न सारिणीमें दिये जाते हैं। इस सब यौगिकोंमें त्रि-बन्ध (⋮) होता है, अर्थात् इनके कर्बन ज्वलीलिन वंशकी अपेक्षा और भी अधिक असम्पृक्त होते हैं। इनका सामान्य सूत्र $क_न उ_{२न-२}$ है

नाम	सूत्र	क्वथनांक
सिरकीलिन	क उ ⋮ क उ	वायव्य
दारील सिरकीलिन	$कउ_3 . क$ ⋮ क उ	,,
ज्वलील ,,	$क_2 उ_5 . क$ ⋮ क उ	१८°
अम्रील ,,	$क_3 उ_7 . क$ ⋮ क उ	४८°-५०°

सिरकीलिन (Acetylene)

कउ ⋮ कउ—डेवीने सं० १८९३ वि० में इसका अन्वेषण किया था पर बरथेलो ने सं० १९१६ वि० में

इसे कर्बन और उदजनको विद्युत् चाप द्वारा संयुक्त करके सबसे पहले संश्लेषित किया था। उसने सेबके आकारका एक काँचका गोला लिया जिसके दोनों ओरके मुंहोंमें दो छेदों वाले काग कसे थे। एक एक छेदमें कर्बनके विद्युत् ध्रुवों लगाये गये, और दूसरे छेदोंमें उदजन प्रवाहित करनेके लिये नली लगा दी गई। ध्रुवों द्वारा विद्युत् प्रवाहित किया गया। विद्युत् चाप द्वारा कर्बन और उदजनके संयोगसे सिरकीलिन बन गया।

सिरकीलिन जलानेके काममें बहुत आती है मैजिक लालटेनमें रोशनी करनेके लिये, मोटर, साइकिल आदिकी लैम्पोंका जलानेके लिये इसका उपयोग किया जाता है। इन सब प्रयोगोंमें खटिक कर्बिद, खक$_2$, का प्रयोग किया जाता है जो जलके संसर्गसे सिरकीलिन जनित करता है। लैम्पोंमें ऐसी आयोजना विद्यमान रहती है कि खटिक कर्बिदके टुकड़ों पर बूँद बूँद करके पानी टपकता रहता है और विशेष नली द्वारा सिरकीलिन लैम्पके छेदमें होकर बाहर निकलने लगता है जहाँ यह जलाया जा सकता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

खक$_2$ + उ$_2$ओ = क$_2$ उ$_2$ + ख ओ

व्यापारिक मात्रामें खटिक कर्बिद चूने और कोक कोयलेको विद्युत्-भट्टीमें पिघला कर बनाते हैं:—

खओ + ३ क = खक$_2$ + क ओ

खटिक कर्बिद

साधारणतः इस कार्यके लिये लेखनिक (ग्रैफाइट) की घरिया लेते हैं जिसकी पेंदीको धातु पत्र पर रखते हैं। यह धातु पत्र विद्युत् यन्त्रके धनात्मक ध्रुव से संयुक्त रहता है। कर्बनका एक बेलन घरियाके बीचमें खड़ा किया जाता है जो ऋणात्मक ध्रुवका कार्य करता है घरियामें कोक और चूनाका मिश्रण भर दिया जाता है।

सिरकीलिन के गुण—यह नीरंग गैस है जिसकी लहसुन कीसी गन्ध होती है। जलमें यह समान आयतनमें घुलनशील है पर सिरकोन इसे अपने आयतन के ३० गुना घुला सकती है। यह धुआँदार अत्यन्त तप्त ज्वालासे जलती है। कोयलेकी गैसकी अपेक्षा इसके जलनेमें १५ गुना अधिक प्रकाश होता है। २६ वातावरण दबाव डालकर०°श तापक्रम पर यह द्रवीभूत की जा सकती है। हवाके साथ मिला र यदि इसमें आग लगायी जाय तो बहुत जोरों का विस्फुटन होता है।

सिरकीलिनको गरम करनेसे, विशेषतः नकलम् चूर्णकी विद्यमानतामें यह बानजावीनमें परिवृत हो जाती है:—

३ क$_2$उ$_2$ = क$_6$ उ$_6$

बानजावीन

पर रक्त तप्त करने पर यह उदजन और कर्बनमें विभाजित हो जाती है। यदि अमोनिया युक्त ताम्रस हरिद या रजत नोषेतके घोलमें सिरकीलिनको प्रवाहित करें तो ताम्र सिरकोलिद क$_2$ता$_2$उ$_2$ओ, और रजत सिरकीलिद प्राप्त होते हैं।

२ र नोओ$_3$ + क$_2$उ$_2$ + उ$_2$ओ = क$_2$र$_2$उ$_2$ओ + २उनो ओ$_3$ रजत सिरकीलिद

प्रक्रिया में जनित नोषिकाम्ल अमोनिया द्वारा शिथिल हो जाता है।

प्रक्रियायें—सिरकीलिन ज्वलीलिनके समानही उदजन, लवणजनअम्ल, लवणजन तत्व, और जलसे संयुक्त होकर प्रक्रियायें देती है।

(१) कृष्ण परौप्यम् चूर्ण या नकलम् चूर्ण पर सिरकीलिन और उदजनका मिश्रण प्रवाहित करनेसे पहले ज्वलीलिन बनता है जो फिर ज्वलेनमें परिणत होजाता है:—

कउ ⋮ कउ + उ$_2$ = कउ$_2$:कउ$_2$

कउ$_2$: कउ$_2$ + उ$_2$ = कउ$_3$.कउ$_3$

ज्वलेन

(२) उदनैलिकाम्लसे भी संयुक्त होकर निम्न प्रकार ज्वलीलिन नैलिद देता है:—

कउ ⋮ कउ + उनै = कउ$_2$:कउनै

कउ: कउनै + उनै = कउ$_3$.कउनै$_2$

ज्वलीलिदिन नैलिद

इसे कर्बन और उदजनको विद्युत् चाप द्वारा संयुक्त करके सबसे पहले संश्लेषित किया था। उसने सेबके आकारका एक काँचका गोला लिया जिसके दोनों ओरके मुँहोंमें दो छेदों वाले काग कसे थे। एक एक छेदमें कर्बनके विद्युत् ध्रुवों लगाये गये, और दूसरे छेदोंमें उदजन प्रवाहित करनेके लिये नली लगा दी गई। ध्रुवों द्वारा विद्युत् प्रवाहित किया गया। विद्युत् चाप द्वारा कर्बन और उदजनके संयोगसे सिरकीलिन बन गया।

सिरकीलिन जलानेके काममें बहुत आती है मैजिक लालटेनमें रोशनी करनेके लिये, मोटर, साइकिल आदिकी लैम्पोंको जलानेके लिये इसका उपयोग किया जाता है। इन सब प्रयोगोंमें खटिक कर्बिद, $खक_2$, का प्रयोग किया जाता है जो जलके संसर्गसे सिरकीलिन जनित करता है। लैम्पोंमें ऐसी आयोजना विद्यमान रहती है कि खटिक कर्बिदके टुकड़ों पर बूँद बूँद करके पानी टपकता रहता है और विशेष नली द्वारा सिरकीलिन लैम्पके छेदमें होकर बाहर निकलने लगता है जहाँ यह जलाया जा सकता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

$खक_2 + उ_2ओ = क_2उ_2 + खओ$

व्यापारिक मात्रामें खटिक कर्बिद चूने और कोक कोयलेको विद्युत्-भट्टीमें पिघला कर बनाते हैं:—

$खओ + ३क = खक_2 + कओ$

खटिक कर्बिद

साधारणतः इस कार्यके लिये लेखनिक (ग्रैफाइट) की घरिया लेते हैं जिसकी पेंदीको धातु पत्र पर रखते हैं। यह धातु पत्र विद्युत् यन्त्रके धनात्मक ध्रुव से संयुक्त रहता है। कर्बनका एक बेलन घरियाके बीचमें खड़ा किया जाता है जो ऋणात्मक ध्रुवका कार्य करता है घरियामें कोक और चूनाका मिश्रण भर दिया जाता है।

सिरकीलिन के गुण — यह नीरंग गैस है जिसकी लहसुन कीसी गन्ध होती है। जलमें यह समान आयतनमें घुलनशील है पर सिरकोन इसे अपने आयतन के ३० गुना घुला सकती है। यह धुआँदार अत्यन्त तप्त ज्वालासे जलती है। कोयलेकी गैसकी अपेक्षा इसके जलनेमें १५ गुना अधिक प्रकाश होता है। २६ वातावरण दबाव डालकर ०°श तापक्रम पर यह द्रवीभूत की जा सकती है। हवाके साथ मिला र यदि इसमें आग लगायी जाय तो बहुत जोरों का विस्फुटन होता है।

सिरकीलिनको गरम करनेसे, विशेषतः नकलम् चूर्णकी विद्यमानतामें यह बानजावीनमें परिणत हो जाती है:—

$३क_2उ_2 = क_6उ_6$

बानजावीन

पर रक्त तप्त करने पर यह उदजन और कर्बनमें विभाजित हो जाती है। यदि अमोनिया युक्त ताम्रस हरिद या रजत नोषेतके घोलमें सिरकीलिनको प्रवाहित करें तो ताम्र सिरकीलिद $क_2ता_2उ_2ओ$, और रजत सिरकीलिद प्राप्त होते हैं।

$२रनोओ_3 + क_2उ_2 + उ_2ओ = क_2र_2उ_2ओ + २उनोओ_3$ रजत सिरकीलिद

प्रक्रिया में जनित नोषिकाम्ल अमोनिया द्वारा शिथिल हो जाता है।

प्रक्रियायें—सिरकीलिन ज्वलीलिनके समानही उदजन, लवणजनअम्ल, लवणजन तत्व, और जलसे संयुक्त होकर प्रक्रियायें देती है।

(१) कृष्ण परौष्यम् चूर्ण या नकलम् चूर्ण पर सिरकीलिन और उदजनका मिश्रण प्रवाहित करनेसे पहले ज्वलीलिन बनता है जो फिर ज्वलेनमें परिणत होजाता है:—

$कउ ⋮ कउ + उ_2 = कउ_2 : कउ_2$

$कउ_2 : कउ_2 + उ_2 = कउ_3 . कउ_3$

ज्वलेन

(२) उदनैलिकाम्लसे भी संयुक्त होकर निम्न प्रकार ज्वलीलिन नैलिद देता है:—

$कउ ⋮ कउ + उनै = कउ_2 : कउनै$

$कउ : कउनै + उनै = कउ_3 . कउनै_2$

ज्वलीलिदिननैलिद

(३) अरुणिन्‌से शीघ्रतासे संयोग हो जाता है पहले खिरकीलिन द्वि अरुणिद और फिर चतुररुणिद प्राप्त होता है

क उ. क उ + रु₂ = क उ रु:क उ रु
सिरकीलिन द्वि अरुणिद

क उ रु: कउ रु + रु₂=क उरु₂ कउ रु₂
सिरकीलिन चतुररुणिद
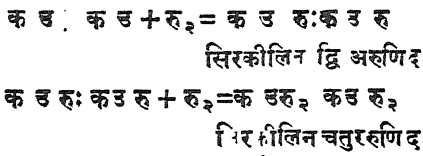
इस वंशके अन्य उद्कर्बन अधिक उपयोगी नहीं हैं। उनकी भी प्रकियां सिरकीलिनकी प्रक्रियाओं के समान समझनी चाहिये।

जेम्स क्लार्क मैक्सवल

तिक विज्ञानके विद्यार्थी मैक्सवल-के नामसे अवश्य ही परिचित होंगे। प्रकाश विद्युत्-चुम्बकीय सिद्धान्तका उद्‌घाटन इस ने ही किया था। १३ नवम्बर सं० १८३१ ई० को स्काटलैण्ड-के प्रसिद्ध नगर एडिनबरामें मैक्सवलका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम जान क्लार्क था। इनके वंश का नाम क्लार्क है पर जान क्लार्क एक ऐसी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हो गया जिसके पूर्वज अपने नामके आगे मैक्सवल लगाते थे। जेम्सके पिता ने भी अपने नामके आगे मैक्सवल शब्द बढ़ा लिया और तबसे इस वंशके लोग क्लार्क-मैक्सवल वंशीय हो गये। हमारा चरित्रनायक वैज्ञानिक संसारमें क्लार्क मैक्सवलके नामसे प्रसिद्ध है।

बाल्यावस्थामें क्लार्क मैक्सवल की प्रकृति-निरीक्षणके प्रति विशेष रुचि थी। छोटीसी जमींदारीमें, ग्राम्य जीवनके जो कुछ भी आनन्द हो सकते हैं वह सब मैक्सवल ने भोगे। तालाबमें तैरना, छोटी छोटी नौकायें चलाना, टट्टू पर बापके पीछे सवार होकर घूमना, कुत्तों और बिल्लियोंके स्वाभावोंका परीक्षण करना मेंढकोंका कूदना देखना, ये सब नैत्यिक कर्म थे। इसके अतिरिक्त दर्वाजों, ताला तालियों, अन्य घरकी छोटी छोटी मशीनोंके तोड़ने बनानेमें इसे विशेष कौतूहल प्राप्त होता था। छोटी अवस्थामें, उसने यह पता लगाया कि टीनके पत्रसे धूप किस प्रकार कमरेमें प्रतिबिम्बित की जा सकती है। वह टोकरी बनाना जानता था, तरह तरहके बेल बूटोंके काढ़नेमें भी चतुर हो गया था, खाना पकाने और खेतमें काम करनेमें भी उसका मन खूब लगता था।

माता द्वारा क्लार्क मैक्सवल ने अपनी प्रारम्भिक धार्मिक शिक्षा पाई। पवित्र ग्रन्थका पढ़ना, और रटना उसने सीखा। पर नव वर्षकी आयुमेंही इसको मातृ-विहीन हो जाना पड़ा। तत्पश्चात् एडिनबरा अकेडिमीमें वह शिक्षा पाने लगा। यहाँ उसके रहनेके रीति-रिवाज, पोशाक आदि अन्य विद्यार्थियों-की अपेक्षा सदा भिन्न रहते थे। लड़के इसकी हँसी उड़ाते और इसे 'सनकी या मूर्ख' कहा करते थे। यह भी खूब चिढ़ता था। क्लार्क मैक्सवल की यह प्रवृत्ति आयु भर बनी रही। प्रो० टेट और कैम्पबेलसे यहाँ घनिष्टता हो गयी थी। ये दोनों मैक्सवलके गुणों पर मोहित थे।

अकेडिमीमें लेटिन और ग्रीकके पढ़नेमें बहुत समय दिया जाता था। पहले तो मैक्सवलकी गिनती अत्यन्त साधारण विद्यार्थियोंमें होती थी क्योंकि उसमें वाक्‌पटुताका अभाव था पर कुछ वर्षके उपरान्त मैक्सवलने अपनी कुशाग्र बुद्धि और चेतनताका इतना परिचय दिया कि गणित और अंग्रेजी पद्यरचना-में इसे सर्वोच्च पारितोषिक और छात्रवृत्तियां मिलने लगीं। गणितमें इसकी रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। इसके पिता एडिनबराकी रायल सोसायटीके सदस्य थे। जहाँ कहींभी वैज्ञानिक विषयोंकी चर्चा होती या व्याख्यान होते, पिता सदा अपने पुत्रको अपने साथ वहाँ ले जाते। जिस कमरेमें मैक्सवल रहता था वहीं इसकी छोटीसी प्रयोगशाला थी। इसमें यह रेखागणित के बहुतसे प्रयोग किया करताथा। यहाँ उसने अण्ड-वृत्त (ellipse) के खींचनेकी नयी विधि निकाली। इस विषय का एक मौलिक लेख ऐडिनबराकी रायल सोसायटीमें पिताके आदेशानुसार भेजा गया। प्रो०

फोर्बस ने इसको उक्त सभामें पढ़ा। इसको वहाँ के विवरणोंमें प्रकाशित किया गया। इस समय मैक्सवल की अवस्था केवल १५ वर्षकी थी। सं० १८४७ ई० में अकेडिमीकी पाठविधि समाप्त हुई।

अब यह ऐडिनबराकी यूनिवर्सिटीमें प्रविष्ट हुआ। यहाँ उसने लेटिन, ग्रीक, अङ्गरेजी आदि का अध्ययन किया। कीलैण्ड यहां गणिताध्यापक था, फोर्बस भौतिकका और हैमिल्टन दर्शनका। फोर्बसने भौतिककी ओर विशेष प्रोत्साहन दिया। इस समय कोई प्रयोगशाला न थी। व्याख्यान देनेके कमरेमें या गोदाममें ही थोड़े बहुत अन्वेषण किये जाते थे। तर्कशास्त्र की ओर भी इसकी रुचि बढ़ी। एडिनबरामें पढ़ाई वर्षमें ६ मास ही होती थी। शेष ६ मास मैक्सवल अपनी जमींदारी—ग्लेनलेअरमें व्यतीत करता था। यहाँ इसने छोटीसी प्रयोगशालाकी अयोजनाकी जिसमें यह प्रकाश, विद्युत् और लचक पर प्रयोग किया करता था, इसने दो मौलिक लेख अपने अन्वेषणके विषयमें रायल सोसायटी एडिनबराको भेजे जो ट्राञ्जेकशन्स में छपे हैं।

पिताकी इच्छा थी कि क्लार्क मैक्सवल वकालत पढ़े। पर इसके अध्यापक कलैंड, फोर्बस टामसन आदि जानते थे कि इसकी रुचि गणित और भौतिक की ओर विशेष है। मैक्सवल भी समझता था कि समाजके कानून की अपेक्षा कुदरतके कानून पढ़नेके वह अधिक योग्य है। १९वर्षकी अवस्थामें यह सैण्टपीटर्स कालेज, कैम्ब्रिजमें प्रविष्ट हो गया। इसका मित्र टेट भी इसी कालेजमें शिक्षा पा रहा था। यहांका वायु मण्डल मैक्सवलको बिल्कुल भी उपयुक्त न प्रतीत हुआ क्योंकि यहाँके विद्यार्थियोंको गणित और भौतिकके प्रयोगोंसे कोई विशेष रुचिही नहीं थी। निकोल Nicol नामक वैज्ञानिकने दिग् विभाजक त्रिपार्श्व (Polarising Prism) का अन्वेषण किया था। उसने एक त्रिपार्श्व मैक्सवल को भी भेंट किया था। पीटर्स कालेजमें जब कभी मैक्सवल इस त्रिपार्श्व द्वारा प्रयोग करता तो उसके और साथी उसकी हँसी उड़ाते और मूर्ख बनाते थे। अस्तु, इसने पीटर्स-कालेज छोड़ दिया और यह ट्रिनिटी कालेजमें प्रविष्ट हो गया। यहाँ उसको मनोनीत वायुमंडल प्राप्त हुआ और थोड़ेही समयमें अनेक विद्यार्थी इसके प्रेमी हो गये। अण्डर ग्रेडुएट कक्षामें पढ़ते समय इसने कुछ गणित सम्बन्धी भौतिकलेख कैम्ब्रिज और डबलिनकी गणित पत्रिकामें प्रकाशित किये। प्रारम्भिक परीक्षा (Little-go) पास करके इसने विलियम हापकिन्स की अध्यक्षतामें गणितका विशेष अध्ययन आरम्भ किया। यह द्वितीय रैंगलर होकर उत्तीर्ण हुआ। इसका प्रतिद्वन्द्वी प्रसिद्ध गणितज्ञ राउथ था। अस्तु, कालेजकी नियमित पढ़ाई समाप्त करके अब उसे अनुसन्धान करनेका पूर्ण अवसर और अवकाश प्राप्त हुआ। उसका कथन है कि "वह मनुष्य सबसे अधिक सुखी है जो 'आज' के काममें जीवन भरके कार्य्यकी और अनन्तताके कार्य्यकी व्याप्ति देख लेता है"। बस यही उसका जीवन लक्ष्य रहा।

उसने विशेषतः प्रकाश और विद्युत् सम्बन्धी प्रयोग आरम्भ किये। उसने रंग-अन्ध (Colour blind) व्यक्तियोंकी परीक्षा की। उसने रंगोंका विशेष प्रकारका चक्र बनाया। इस चक्रके ऊपर भागमें रंग बिरंगे कागजोंके टुकड़े लगे हुए थे। रंगोंके मिश्रणका दृष्टि से जो सम्बन्ध है, उसके कुछ प्रयोग इस चक्रसे किये गये।

विद्युत् आकर्षण और निराकरणके विषयमें इसने गणित द्वारा नया सिद्धान्त निकालनेका विचार किया। सन् १८५५-५६ में इसने फैरडेकी शक्ति रेखाओं (lines of forces) पर एक लेख प्रकाशित किया।

२४ वर्षकी आयुमें यह कालेजका फैलो हुआ। इसी वर्ष उसके पिताका देहान्त हो गया। अबरडीन यूनिवर्सिटीके मेरीशल कालेजमें भौतिक-अध्यापकका पद रिक्त हुआ था। इस स्थान पर क्लार्क मैक्सवलकी नियुक्ति हो गयी। यहाँ उसने बड़े उत्साहके साथ पढ़ानेका कार्य्य आरम्भ किया। पर उसका उद्देश्य विद्यार्थियोंको परीक्षा पास कराना नहीं था। व्याख्यान देनेमें यह हिचकिचाता था। उसके विचार शब्दोंसे आगे निकल जाते थे, ऐसी अवस्थामें भावों

को प्रदर्शित करना उसके लिए अत्यन्त कठिन हो जाता था। वह स्वयं तो प्रयोग बड़ी कुशलताके साथ करता था, पर प्रयोगोंको प्रदर्शित करनेमें उसको सदा संकोच होता। इस प्रकार साधारण योग्यताके विद्यार्थी उसको समझ ही न पाते थे।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेम्सडीवारकी बहिन केथिराइन डीवारसे दूसरे वर्ष क्लार्क मैक्सवलका विवाह हो गया।

सेण्ट जान्स कालेज कैम्ब्रिजने नेपचूनके अन्वेषक ऐडेम्सके सम्मानमें एक प्रतियोगिता पारितोषिक निर्धारित किया था। सन् १८५७ में परीक्षाकोंने प्रतियोगिता लेखका विषय 'सेटर्न वलयकी गति' (Motion of Saturn Rings) निर्धारित किया था। यह पारितोषिक क्लार्क मैक्सवलको मिला। इस लेखमें मैक्सवल ने जिस सिद्धान्तका उद्घाटन किया था उससे यह सिद्ध होता है कि अन्दरके वलयकी कोणीय गति बाहरके वलयकी अपेक्षा अधिक होती है। इसका समर्थन बाद को कीलरके प्रयोगों द्वारा हो गया।

अबरडीनमें दो कालेज थे, मारीशल और किंग्स कालेज। सन १८६० ई० में विशेष परिवर्त्तन हुआ और ये दोनों कालेज एककर दिये गये, इसका प्रभाव यह हुआ कि मैक्सवलको स्थान रिक्त कर देना पड़ा। पर कुछ समय पश्चात् ही लंडनके किंग्स कालेजमें इसे भौतिक विज्ञानाध्यापकका पद प्राप्त हो गया। यहाँ यह पांच वर्ष तक रहा। इस कालान्तरमें उसने तीन मुख्य अन्वेषण किये। रंगद्वारा कागज़ोंसे प्रतिबिम्बित रंगोंके मिश्रणके विषयमें यह पहले ही प्रयोग कर चुका था। अब उसने सप्तरंजन (Spectrum) के शुद्धरंगोंके मिश्रण विषयक प्रयोग किये। दूसरा कार्य्य गैसोंके गति-सिद्धान्त विषयक था। तीसरा काम इसका यह था कि इसने चुम्बकी magnetic flux की एक इकाई निर्धारित की। सन् १६०० की अन्तर्जातीय विद्युत् कांग्रेसने इस इकाईका नाम ही मैक्सवल रख दिया है।

पांच वर्ष तक लंडन कालेजकी सेवा करनेके पश्चात् यह ग्लेनलेअरमें विश्राम लेनेके लिये लौट आया। सन् १८७३ में मैक्सवलने विद्युत् और चुम्बक विषयक दो भागोंमें एकग्रन्थ प्रकाशित किया। इसमें विद्युत् और चुम्बकके सिद्धान्तोंका गणित रूपमें विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। इस पुस्तककी रचनामें टेटने बड़ी सहायता दी थी।

सन् १८७० ई० में ड्यूक आव् डेवनशायरने जो उस समय कैम्ब्रिज विश्व विद्यालयके चैन्सलर थे, भौतिक प्रयोगशाला निर्माण करनेके लिये बहुत सी सम्पत्ति दान दी, इसके सम्बन्धमें एक भौतिक अध्यापककी भी गद्दी स्थापितकी गई। मैक्सवलको यह पद दिया गया और उसने कुछ संकोचके साथ स्वीकार किया।

मैक्सवल आस्तिक था। विकास वादके सिद्धान्तों में उसका विश्वास न था। उसने संसारके भिन्न भिन्न लोकोंमें एक ही प्रकारके नियम, अणु और परमाणुओं को देखा। उसके विचारमें इस प्रकारकी घटना विकास वादके सिद्धान्तके प्रतिकूल थी।

कैवेण्डिशके लेखों और अनुसन्धानोंका संग्रह करनेका कामभी मैक्सवलको करना पड़ा। इस कार्य्य-में उसे बहुत परिश्रम करना पड़ा। सन् १८७६ के बाद वह बराबर एक न एक रोगसे पीड़ित होने लगा। ५ नवम्बर सन् १८७९ को ४८ वर्षकी आयुमें ही इस वैज्ञानिकका प्राणान्त हो गया। कुछ वर्ष पश्चात् उसकी पत्नीका भी देहावसान हो गया। इनकी सम्पत्तिका कोई उत्तराधिकारी न था। श्रीमती मैक्सवलने कैवेण्डिश प्रयोगशालामें अनुसन्धानके लिये सम्पूर्ण अवशिष्ट सम्पत्ति दान कर दी। इस प्रयोगशालामें मैक्सवलकी एक मूर्ति विद्यमान है और उसकी बनाए हुए ढाँचों, और यन्त्रोंका संग्रहभी सुरक्षित रखा हुआ है। मैक्सवलके सिद्धान्तोंके आधार पर बे तारका तार इतना उन्नत हो सका है। मैक्सवलने प्रकाश को भी विद्युत् चुम्बकीय तत्त्व सिद्ध कर दिया है।

वैज्ञानिक परिमाण

(लेखक श्री० डा० निहालकरण सेठी० डी० एस०-सी०)

४६ पृष्ठ-तनाव

(Surface Tension)

वस्तु	तापक्रम	पृष्ठ-तनाव	वस्तु	तापक्रम	पृष्ठ-तनाव
		डाइन/श· म.			डाइन/श· म·
जल	०°	७५·५	ज्वलक	२०°	१६·५
	१०°	७४·०		१५०°	२·६
	१५°	७३·३	सिरकोन	१५·८	२३·३
	२०°	७२·६	हरिपिपीलक्लोरोफा	१५°	२७·२
	३०°	७१·१	गंधकाम्ल घोल (घनत्व १·१४)	१५°	७४·४
	४०°	६९·४			
पारद	१७.°४	५४७	तारपीन तैल	१५°	२७·३
अमोनिया घोल (घनत्व ·८६)	१५°	६४·७	बानजावीन	१७·५	२८·२
	१५°	४३·०			
नीलिन्	२०°	२२·०			
ज्वलील मद्य	११०°	८·५			
	२०°	२३			
दारील मद्य	२१०°	५·२			

स्पर्शकोण (angle of Contact) कांचके साथ :—

पारद (नवजात बूंद) = ४१°५′
साधारण = ५२°४०′

जल, मद्य, बानजावीन } ०°०′

ज्वलक = १६°
तारपीन = १७°

४७ अणुओं का आकार, वेग इत्यादि—

(Size, Velocity etc. of molecules)

गैस के अणुओंकी संख्या प्रति घन शतांश मीटर (०°श – ७६० सम) } $= २·७०५ \times १०^{१९}$

” ” प्रति ग्राम अणु (एवोगैड्रो की संख्या) } $= ६·०६२ \times १०^{२३}$

उदजन के अणु (२ परमाणु) का तौल = ३ ३२ × $१०^{-२४}$ ग्राम

" " अणुओं की टक्करें प्रति सैकंड = ९ × $१०^{९}$

गैस	वेग औसत वर्ग वेग का वर्गमूल श म, सैकंड (० शतर)	औसत भ्रमण-अवधि (mean free path) श· म.	स्निग्धता द्वारा ज्ञात अणु का व्यास Diameter of molecules श· म.
उदजन	१८ ३६ × $१०^{४}$	१८·३ × $१०^{-६}$	२·४७ × $१०^{-८}$
हिमजन	१३ ११	२८ ५	२·१८
नोषजन	४·९३	९·४४	३·५०
ओषजन	४·६१	९·९५	३·३९
हरिन्	३ ०७	४·५७	४·९६
दारेन	६·४८	७·७९	—
ज्वलीलिन	४·८८	५ ४७	४ ५५
कर्बनद्विओषिद्	३·९२	६·२९	४·१८
अमोनिया	६·~८	६·५५	—
जल-वाष्प	७·०८	७·२२	४·०९

४८ आपेक्षिक क्लेद और ओसाङ्क

(Relative Humidity & Dew point)

आपेक्षिक क्लेद = $\frac{[द]_{त}}{[द]^{स}_{त}}$ १०० ; यदि त° तापक्रम पर जल वाष्पका वास्तविक दबाव $[द]_{त}$ हो यह ओसाङ्क (ओ) के सम्पृक्त वाष्प दबाव $[द]^{स}_{ओ}$ के बराबर है। संपृक्त वाष्प के तापक्रम त° पर दबाव $[द]^{स}_{त}$ है।

भिन्न भिन्न ओसाङ्कों पर प्रतिशतक आपेक्षिक क्लेद और ओसांक अवपात (depression) नीचे की सारिणीमें दिये गये हैं।

ओसांक (ओ)	ओसांक अवपात त°-(ओ)°														
	०°श	१°	२°	३°	४°	५°	६°	७°	८°	९°	१०°	१२°	१४°	१६°	१८°
−१५°श	१००	९२	८५	७९	७३	६७	६२	५८	५३	४९	४६	३९	३४	२९	२६
०	१००	९३	८७	८१	७५	७०	६५	६१	५७	५३	५०	४४	३८	३४	३०
+१०	१००	९४	८८	८२	७७	७२	६८	६४	६०	५६	५३	४७	४१	३७	३३
२०	१००	९४	८९	८३	७८	७४	७०	६६	६२	५८	५५	४९	४४	३९	३५
३०	१००	९४	८९	८४	८०	७५	७१	६८	६४	६१	५७	५२	४६	४२	३८

४९ नम और शुष्क तापमापक क्लेद्मापक (Hygrometer)

निम्न समी करण का बहुधा उपयोग किया जाता है:— $[द]^{म}_{त} - [द]_{त} =$ क ऊ (त-$त_{न}$) [१ + ख (त-$त_{न}$)

यदि शुष्क तापमापक पर तापक्रम त° हो और नम तापमापक पर $त_{न}$° हों वायुमें तापक्रम त° पर जल वाष्पका दबाव $[द]^{न}_{त}$ हो ; नम तापमापक के तापक्रम ($त_{न}$°) पर संपृक्त जल वाष्प दबाव $[द]^{म}_{न}$ हो , ऊ दबाव मापक ऊँचाई और क और ख स्थिर मात्रायें हैं।

क्लेद् मापकके दृष्टांक परिस्थिति पर इस प्रकार निर्भर हैं कि बहुधा ख को शून्य मान लेनेमें कोई हानि नहीं होती है और ऊ स्थायी (मान लीजिये ७६० स॰ म॰) रखा जा सकता है।

यदि ऊ सहस्रांश मीटरों में नापा जाया और ताप क्रम शतांश मापक के अंशों में तो निम्न परिस्थितियों के लिये क के निम्न मान लिये जा सकते हैं—

क = ·०००७, यदि नम तापमापक थोड़ी देर घूमा दिया जाय

क = ·०००७५, (अंतरिक्ष विज्ञान कार्य्यालय जो स्टीवन्सन पर्दा काममें लाते हैं इस्तेमाल करते हैं,)

क = ·०००८, थोड़ी सी हवामें खुले में

क = ·०००६, बिना हवा के खुले में

क = ·००१, छोटे बन्द कमरेमें

रिज्जो नामक वैज्ञानिकके अनुसार क = ·०००७१, और ख = ·००८, निम्न सारिणीमें इन्हीं मानोंका उपयोग किया गया है। संपृक्त वाष्प दबाव की सारिणीसे $[द]^{म}_{न}$ ज्ञात हो सकता है और इस प्रकार ऐच्छिक वाष्प दबाव $[द]_{त}$ निकाला जा सकता है।

$[द]^{म}_{त} - [द]_{त}$ के मान

दबाव ऊ	नम और शुष्क ताप मापकों के ताप क्रमोंमें अन्तर (त-$त_{न}$)									
	१° श	२°	३°	४°	५°	६°	७°	८°	९°	१०°
स.म.	स.म.	स.म.	स.म.	स.म.	स.म.	स.म.	स.म.	स.म.	स.म.	स.म.
७७०	·५७	१·१३	१·६९	२·२३	२·७८	३·३०	३·८१	४.३२	४.८७	५·३१
७६०	·५६	१·१२	१·६७	२·२०	२.७४	३·२५	३·७६	४.२७	४.७५	५·२४
७५०	·५५	१·११	१·६५	२·१७	२·७१	३·२१	३·७१	४.२१	४.६९	५·१७
७३०	·५४	१·०८	१·६०	२·१२	२·६३	३·१२	३·६१	४·१०	४·५६	५·०३
७००	·५२	१·०३	१·५३	२·०३	२·५२	३·००	३·४६	३.९३	४.३७	४·८२
६७०	·५०	·९९	१·४७	१·९४	२·४२	२·८७	३·३१	३.७६	४.१९	४·६२
	११° श	१२°	१३°	१४°	१५°	१६°	१७°	१८	१९°	२०
७७०	५·७८	६·२६	६·७२	७·१७	७·६२	८·०६	८·४७	८·८९	९·३०	९·६९
७६०	५·७१	६·१८	६·६३	७·०८	७·५२	७·९५	८·३६	८·७७	९·१८	९·५६
७५०	५·६३	६·०९	६·५४	६·९८	७·४२	७·८४	८·२५	८·६६	९·०६	९·४४
७३०	५·४८	५·९३	६·३७	६·७९	७·२२	७·६३	८·०३	८·४३	८·८२	९·१८
७००	५·२६	५·६९	६·११	६·५२	६·९३	७·३२	७·७०	८·०८	८·४६	८·८२
६७०	५·०३	५·४४	५·८४	६·२४	६·६३	७·०१	७·३७	७·७३	८·०८	८·४३

५० रासायनिक क्लेदमापक

७६० स. म. पूर्णदबाव पर १ घनमीटर (१०⁶ घ. श. म.) संपृक्त वायुमें वाष्पकी मात्रा ग्रामोंमें नीचेकी सारिणीमें दी गई है।

तापक्रम	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९
०°श	४.८४	५.१८	५.५४	५.९२	६.३३	६.७६	७.२२	७.७०	८.२१	८.७६
१०°	९.३३	९.९३	१०.५७	११.२५	११.९६	१२.७१	१३.५	१४.३४	१५.२२	१६.१४
२०°	१७.१२	१८.१४	१९.२२	२०.३५	२१.५४	२२.८०	२४.११	२५.४९	२६.९३	२८.४५
३०°	३०.०४	३१.७०	३३.४५	३५.२७	३७.१८	३९.१८	४१.३	४३.५	४५.८	४८.२

५१ द्रवोंकी तनाव-शक्ति Tensile strength of liquids

वायुसे पूर्णतः शून्य द्रव बिना विदीर्ण हुए ही बहुत से तनावका सहन कर सकते हैं। उदाहरणतः जल ५ वातावरण, मद्य १२ और तीव्र गन्धकाम्ल १२ वातावरण दबावका सहन कर सकता है। जलमें ०.८°/₀ आयतन विस्तार, मद्यमें १.१ °/₀ और ज्वलकमें १.७°/₀ आयतन विस्तार देखा गया है। मद्यके विस्तारके लिये आयतन लचक (Elasticity) उतनी ही है जितना संकोचके लिये।

५२ कांचकी नली की फटन शक्ति bursting strength

जर्मन सोडा काँचकी नलीके लिये वातावरणोंमें फटन दबाव। अधिकांश कांचकी नली बहुत अधिक तनी हुई (Strain) अवस्थामें होती है, अतः दो से कमके रक्षक गुणकका उपयोग नहीं करना चाहिये। सामान्य बॉयलर जल-मापकों (boiler water gauge) के काँच १२ से २४ वातावरणोंके दबावका सहन कर सकते हैं।

दीवारकी मोटाई	छेद (bore)						
	१ स. म.	२	३	४	५	६	७
	वातावरण						
१ स. म.	—	३१०	२८०	२३०	२२०	१५०	१९०
२	५७०	—	३४०	—	३३०	२४०	२२०
३	५६०	४२०	४६०	४००	—	—	२३०
४	—	४५०	—	४००	३१०	३२०	२८०

५३ वाष्प दबाव Vapour pressures

वाष्प दबावोंका भिन्न २ तापक्रमों पर निम्न विधियों द्वारा निकाले जा सकते हैं

शौफ-रेङ्किने-डूप्रे समीकरण—

$$ल\ द = क \times ख/ति \times ग\ ल\ ति,$$

यदि द वाष्प दबाव हो, ति निरपेक्ष तापक्रम और क, ख, ग स्थिर मात्रायें है। इस समीकरणका उपयोग करना सरल है। (ल लघुरिक्थ फल है)

रैम्जे-यङ्ग विधि — यदि दो द्रवोंका जिनमें एकका निरपेक्ष तापक्रम त और दूसरेका त′ हो, और एक ही वाष्प दबाव हो तो त′ की अपेक्षासे खींचा गया त/त′ निष्पत्तिका विन्दुपथ एक सरल रेखा होता है: जब किसी पदार्थका केवल क्वथनांक ज्ञात हो तो किसी तापक्रम पर इसका अनुमानित वाष्प दबाव निकालने के लिये इस विधिका उपयोग किया जा सकता है।

लघुरिक्थ द्वारा हिसाब—तापक्रम (त) की अपेक्षासे खींचा गया वाष्प दबाव (द) का वक्र अधिकांशतः अतिपरवलय होता है और इस प्रकार तापक्रम त की अपेक्षासे खींचे गये ल दके चित्रमें थोड़ीसी वक्रता होनी है; जो त के १०° अन्तरके लिये लगभग सरल रेखा मानी जा सकती है अतः हिसाब लगाने की विधि निम्न प्रकार है:—

उदाहरण—निम्न अङ्कों से १५° पर जल का वाष्पदबाव निकालना

त	द	ल द
१०°	९·२	·९६४
२०°	१७·५	१·२४३

$$\frac{·९६४ + १·२२३}{२} = १.१०४ = ल\ १२·७$$

अर्थात् १५° पर दबाव = १२·७

वास्तविक = १२·८

५४ बर्फ़ का वाष्प दबाव

०°श तापक्रम पर पारद के स. म में; गुरुत्व = ९८०·६२ श.म. प्रति से^{२}; तापक्रम की उदजन-माप

ताप क्रम	−५०°श	−४०°श	−३०°	−२०°	−१०°	−५°	−२°	−०°
वाष्पदबाव	·०३० स·म.	·०९६	·२८८	·७८४	१·९६३	३·०२२	३·८८५	४·५७९

५५ जलका संपृक्त वाष्प दवाव

०°श तापक्रम पारदके स. म. में; गुरुत्व=९६८·३७ शम. प्रति सै^{3}। तापक्रमका उष्मागतिक माप (Thermadynamie scale)

वाष्प दवाव—२०°श पर = ·९६० स·म·;—१०° पर=२·१६०; –५° पर = ३·१७१ .
—२° पर = ३.९५८;—१° पर = ४·२५८

तापक्रम	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९
०°श	४·५७९	४·९२४	५·२९०	५·६८१	६·०९७	६·५४१	७·०११	७·५११	८·०४२	८·६०६
१०°	९·२०५	९·८४०	१ ५ ३	·२२६	११·९८०	१२·७७९	१३·६२४	१४·५१७	१५·४६०	१६·४५६
२०	१७·५१	१८·६२	१९·७९	२१·०२	२२·३२	२३·६९	२५·१३	२६·६५	२८·२५	२९·९४
३०	३१·७१	३३·५७	३५·५३	३७·५९	३९·७५	४२·०२	४४.४०	४६·९०	४९·५१	५२·२६

तापक्रम	०	२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८
४०	५५·१३	६१·३०	६८·०५	७५·४३	८३·५०	९२·३०	१०१·९	११२·३	१२३·६	१३५·९
६०	१४९·२	१६३·६	१७९·१	१९५·५	२१४·०	२३३·५	२५४·५	२७७·१	३०१·३	३२७·२
८०	३५५·१	३८४·९	४१६·७	४५०८	४८७·१	५२५·८	५६७·१	६११·०	६५७.७	७०७·३
१००	७६०·०	८१५·९	८७५·१	९३७९	१००४	१०७४·५	११४५	१२२७	१३१०	१३९७
१२०	१४८९	१५८६	१६८७	१७९५	१९०७	२०२६	२१५०	२२८०	२४१६	२५६०
१४०	२७०९	२८६६	३०३०	३२०२	३३८१	३५६९	३७६४	३९६८	४१८१	४४०२
१६०	४६३३	४८७४	५ २४	५३८४	५६५५	५९३७	६२२९	६५३०	६८७८	७१७५
१८०	७५१४	७८६६	८२३०	८६०८	८९९९	९४०४	९८२३	१०२५६	१०७०५	१११६८
२००	११४७	१२१४२	१२६५३	—	—	—	—	—	—	—

तापक्रम	२२०°श	२४०°	२६०°	२८०°	३००°	३२०°	३४०°	३६०°
वाष्पदवाव	१७.३८०सम	२५१७०	३५७६०	५०,६००	६७,६२०	८८३४०	११३८३०	१४१,८७०

५६ भिन्न भिन्न दबावों पर जल का क्वथनांक

तापक्रमों की उद्‌जन-माप ; ०°श पर पारद के स.म. में दबाव ; गुरुत्व = ९८०·६२ ग्राम प्रति सें[२] । डाइन प्रतिग्राम

भारमापक की ऊँचाई	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९ श
		९६·९५	९७·००	९७·०३	९७·०७	९७·११	९७·१५	९७·२०	९७·२४	९७·२८
६८०स·म	९६·९१	·३६	·४०	·४४	·४८	·५२	·५०	·५९	·६३	·६७
६९०	९७·३२	·७१	·७९	·८३	·८७	·९१	·९५	·९९	९८·०३	९८·०७
७००	९७·७१	९८·१८	९८·१८	९८·१८	९८·२६	३८·३०	९८·३४	९८·३·	·४२	·४५
७१०	९८·११	·५३	·५७	·६१	·६५	·६९	·७२	·७६	·८०	·८४
७२०	९८·४९	·९१	·९५	·९५	९९·०३	९९·०७	९९·१०	९९·१४	९९·१८	९९·२२
७३७	९८·८८	९९·२९	९९·३३	९९·३७	·४१	·४४	·४८	·५२	·५६	·५९
७४०	९९·२५	·६७	·७०	·७४	·७८	·८१	·८५	·८९	·९३	·९६
७५०	९९·६३	१०·००३	१९·०७	१००·११	१००·११	१००·१८	१००·२२	१००·२	१००·२६	१००·३३
७६०	१००००	·४०	·४४	·४७	·५१	·५१	·५८	·६२	६·६	·६९
७७०	१००३७	·७६	·८०	·८४	·८७	·९१	·९४	·९८	१०१·०१	१०१·०५
७८०	१००७३									

५७ पारद का वाष्प दबाव

०°श पर पारद के स. म. में १५° से २७०° तक वाष्पदबाव निकालनेके लिये निम्न समीकरण का उपयोग करना चाहिये ।

ल द= १५·२४४३१ – ३६२३·९३२त – २·३६७२३२ ल त……(क)

२७०° से ४५०° तक के लिये :—

ल द= १०.४०८७—३२७१.२४५.त—.७०२०५३७ ल ति ……(ख)

क्वथनांकपर $\frac{\text{ड द}}{\text{ड त}}$ = १३.६ स. म. प्रति अंश

तापक्रम	वाष्पदबाव	ता. क.	वा. दबा.	ता.क.	वा. दबा.	ता.क	वा. दबा.	ता.क.	वा. दबा.
	स·म·		स· म·		स· म·		स· म·		वातावरण
									८
०°श	·०००१६	२५°	·००१६८	६०°	·२४३	२१०°	७५·८३	५००°	
५	·०००२६*	३०	·००२५७	८०	·०८८५	३००	२४८·६	६००	२२·३
१०	·०००४३*	३५	·००३८७	१००	·२७६	३५७·७	७६०	७००	५०
१५	·०००६९	४०	·००५७४	१५०	२·८८	४००	१५६६	८००	१०२
२०	·००१०९	५०	·०१२२	२००	१७·८१	४५०	३२·९	८८२	१६२

* (क) समीकरण द्वारा निकाले गये ।

सूर्य-सिद्धान्त

[ले० श्री महावीरप्रसाद बी. एस. सी. एल. टी. विशारद]

(गतांक से आगे)

परन्तु १२ चान्द्रमासोंके एक वर्षमें अथवा मेष-संक्रान्तिसे जिस सौर वर्षका आरम्भ होता है उसमें यदि अधिकमास न पड़े तो ६ ही ग्रहण होंगे क्योंकि जब चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से वर्षका आरम्भ माना जाय तो चैत्र शुक्ल १५ को पहला चन्द्र-ग्रहण होगा। इससे पहलेका सूर्य ग्रहण चैत्र की अमावस्या को पड़ेगा जो पिछले वर्षमें गिना जायगा। इस प्रकार यद्यपि ३६५ दिनके वर्षमें सात ग्रहण हो सकते हैं तथापि मेष संक्रान्तिसे आरम्भ होने वाले सौर वर्षमें अथवा चैत्र शुक्ल से आरम्भ होने वाले चान्द्र वर्षमें अधिकसे अधिक केवल ६ ही ग्रहण देख पड़ेंगे। इन ६ ग्रहणोंमें ४ ग्रहण सूर्यके और २ चन्द्रमाके होंगे। यदि वर्षमें अधिकसे अधिक ७ ग्रहण माने जायं तो ५ सूर्य ग्रहण होंगे और २ चन्द्रगहण होंगे।

ऊपर यह सिद्ध हो ही चुका है कि यदि किसी पात पर या उसके तीन अंश आगे पीछे सर्वग्रास या कंकण सूर्य ग्रहण हो तो इसके पहले या पीछे आनेवाली पूर्णमासियोंके दिन चन्द्र ग्रहण नहीं हो सकते। इसलिए इस पात पर केवल १ सूर्य गहण होगा। दूसरे पात पर भी केवल एक ही सूर्य-ग्रहण हो सकता है। इसलिए वर्षके भीतर कम से कम २ ग्रहण अवश्य पड़ेंगे और यह सूर्य ग्रहण होंगे।

इस पर लोग यह शङ्का करेंगे कि सूर्य ग्रहण बहुत कम देख पड़ते हैं और चन्द्रग्रहण अधिक। इसका कारण यह है कि चन्द्रग्रहण भूतल के अधिकांश भागसे देख पड़ता है और सूर्य ग्रहण अनेक बार पड़ते हुए भी भूतलके बहुत थोड़े भागसे देखा जा सकता है इस लिए एक ही स्थानसे सूर्यग्रहणों की संख्या कम और चन्द्रग्रहणोंकी संख्या अधिक जान पड़ती है। परन्तु यदि सारे संसारके ग्रहणोंकी संख्या पर विचार किया जाय तो यही सिद्ध होता है कि सूर्य ग्रहणों की संख्या चन्द्र ग्रहणोंकी संख्या से कहीं अधिक होती है।

दस दिन ऊपर १८ वर्ष के ग्रहण-चक्र या ग्रहण-युगमें प्रायः ७१ ग्रहण पड़ते हैं जिनमें ४१ सूर्य ग्रहण होते हैं और २९ चन्द्रग्रहण। इन दोनों का अनुपात वही है जो सूर्य और चन्द्र-ग्रहणोंकी परम सीमाका अनुपात है।

एक स्थानसे सर्वग्रास अथवा कंकण सूर्यग्रहण बहुत कम देख पड़ता है यद्यपि एक ग्रहण-चक्रमें सारे संसारके सर्वग्रास और कंकण सूर्यग्रहणोंकी संख्या २८के लगभग होती है। हैली नामक पाश्चात्य ज्योतिषीके मतानुसार २० मार्च ११४० ईस्वीसे २२ अप्रैल १७१५ ई० तक लंडनमें कोई सर्वग्रास सूर्य-ग्रहण नहीं देख पड़ा।

परन्तु सर्वग्रास सूर्यग्रहण बड़े महत्वकी घटना होती है और किसी स्थानपर साढ़ेसात मिनट अथवा १९ पलसे अधिक नहीं रहता। इतने थोड़े समयके लिए भी आजकलके पाश्चात्य ज्योतिषी लाखों रुपया खर्च करके दूर दूरके जङ्गल, पहाड़, समुद्र, अथवा टापुओंमें जहाँसे देखनेमें अधिक सुविधा होनेकी संभावना होती है जाते हैं। इस प्रकारके वेधोंसे सिद्ध होता है कि सूर्य ठोस पिंड नहीं है। इसके चारों ओर आगकी लपकें देख पड़ती हैं जिनकी परीक्षाओंसे सिद्ध होता है कि इनमें हाइ-ड्रोजन इत्यादि वायवीय पदार्थभी हैं। परन्तु इस चर्चा का ग्रहणसे विशेष सम्बन्ध नहीं है इस लिये यहां इस पर और कुछ न लिख कर अध्याय समाप्त किया जाता है।

इस प्रकार परिलेखाधिकारका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

———

ग्रहयुत्यधिकार नामक सातवां अध्याय

संक्षिप्त वर्णन

श्लोक—१ ग्रहोंका युद्ध, समागम और अस्त। श्लोक २ और ३ का पूर्वार्ध—समागम हो चुका है या होनेवाला है? श्लोक ३ का उत्तरार्ध, ४, ५, ६—कब और कहां समागम होगा। श्लोक ७-१० दृक्कर्म की रीति श्लोक ११-दृक्कर्म की आवश्यकता कहां कहां होती है। श्लोक १२ दृक्कर्म संस्कृत ग्रहोंके समागमके समय उनका परस्पर अन्तर क्या होता है। श्लोक १३-१४—पांच ताराग्रहोंके बिम्बोंके मध्यम मान तथा स्पष्ट मान जाननेके नियम। श्लोक १५-१७ युतिकालमें ग्रहोंकी दिशा जानकर वेध करने की रीति। श्लोक १८के उत्तरार्धसे श्लोक २२ तक—अनेक प्रकारके युद्धोंकी परिभाषा। श्लोक २३-शुभाशुभ फल जानने के लिये युद्धों की कल्पना।

इस अध्यायमें यह जानने की रीति बतलायी गयी है कि ग्रह एक दूसरेके बहुत निकट कब और कहां देख पड़ते हैं और इनका शुभाशुभ फल क्या होता है।

ग्रहोंका युद्ध, समागम और अस्त—

ताराग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्धसमागमौ।
समागमः शशाङ्केन सूर्येणास्तमनं सह ॥१॥

अनुवाद—(१) भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि पांच ताराग्रहोंका आपसमें युद्ध और समागम होता है। जब तारा ग्रह चंद्रमाके साथ हो जाता है तब चन्द्रमाके साथ उसका समागम होता है और जब ग्रह सूर्यके साथ हो जाता है तब कहा जाता है कि वह ग्रह अस्त हो गया।

यह जानना कि समागम हो चुका है या होनेवाला है—

शीघ्रे मन्दाधिकेऽतीतः संयोगो भवितान्यथा।
द्वयोः प्राग्यायिनोरेवं वक्रिणोस्तु विपर्ययात् ॥२॥
प्राग्यायिन्यधिकेऽतीतो वक्रिण्येष्यः समागम।

अनुवाद (२)—इष्ट कालमें जिस ग्रह की गति मन्द हो उसके भोगांशसे यदि शीघ्र गति वाले ग्रहका भोगांश अधिक हो और दोनों ग्रह मार्गी हों अर्थात् पूर्वकी ओर जा रहे हों तो समझना चाहिए कि दोनोंका समागम इष्टकालके पहले ही हो चुका है। परन्तु यदि शीघ्र गति वाले ग्रहका भोगांश मन्दगति वाले ग्रहके भोगांशसे कम हो तो समझना चाहिए कि समागम अभी होनेवाला है। परन्तु यदि दोनों ग्रह वक्री हों अर्थात् पच्छिम की ओर जा रहे हों तो ऊपर जो कुछ कहा गया है उसके विपरीत समझना चाहिए अर्थात् शीघ्रगति वाले ग्रहका भोगांश अधिक हो तो समझना चाहिए कि समागम होने वाला है और यदि कम हो तो समझना चाहिये कि समागम हो चुका है। (३) यदि एक ग्रह मार्गी और दूसरा वक्री हो तो और यदि मार्गी ग्रहका भोगांश वक्री ग्रहके भोगांशसे अधिक हो तो इष्ट कालसे पहलेही समागम हो चुका है परन्तु यदि वक्री ग्रहका भोगांश अधिक हो तो समझना चाहिए कि समागम होने वाला है।

विज्ञानभाष्य—मान लीजिए दिये हुए चित्रमें मे मेषका आदि विन्दु है और क, ख दो ग्रह हैं। यह स्पष्ट है कि ख का भोगांश क के भोगांशसे अधिक है। यदि ख की गति क की गतिसे अधिक हो तो यह प्रकट है कि ख क से और दूर होता जायगा और इन दोनोंका समागम अतीत हो गया है। परन्तु यदि ख की गति मन्द हो तो स्पष्ट है कि क शीघ्र गतिसे चलता हुआ ख के पास पहुँच जायगा और दोनोंका समागम होगा। यह दोनों घटनाएँ उस दशामें घटेंगी जब दोनों ग्रह मार्गी हों अर्थात् तीरकी दिशामें जा रहे हों। यदि दोनों वक्री हों अर्थात् तीर के विरुद्ध दिशामें जा रहे हों तो यदि ख की वक्री गति अधिक हो तो समागम होगा और कम हो तो समागम हो चुका है। यदि ख मार्गी हो और क वक्री तो दोनोंका समागम हो चुका है परन्तु यदि ख वक्री हो और क मार्गी तो दोनोंका समागम होनेवाला है।
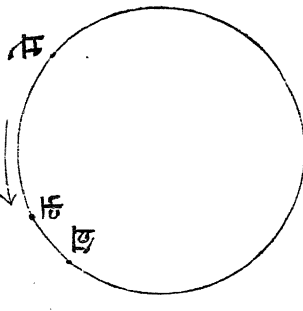
चित्र १०५

यह जानना कि किस समय और किस स्थानपर ग्रहोंका समागम होगा—

ग्रहान्तरकलाः स्वस्वभुक्तिलिप्ता समाहताः ॥३॥
भुक्त्यन्तरेण विभजेदनुलोम विलोमयोः ।
द्वयोर्वक्रिण्यथैकस्मिन्भुक्तियोगेन भाजयेत् ॥४॥
लब्धं लिप्तादिकं शोध्य गते देयं भविष्यति ।
विपर्ययो वक्रगत्योरेकस्मिंस्तु धनव्ययौ ॥५॥
समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहौ भगण संस्थितौ ।
विवरं तद्वदुद्धृत्य दिनादिफलमिष्यते ॥६॥

अनुवाद—(३) इष्टकालके दोनों ग्रहोंके भोगांशोंका अन्तर निकालकर कला बनाओ और इसको प्रत्येक ग्रहकी दैनिक गतिकी कलाओंसे अलग अलग गुणा करो। (४) प्रत्येक गुणनफलको दोनों ग्रहोंकी दैनिक गतियोंकी अन्तर-कलाओंसे भाग देदो यदि दोनों ग्रह मार्गी या दोनों ग्रह वक्री हों। परन्तु यदि एक ग्रह वक्री हो और दूसरा मार्गी हो तो उपर्युक्त गुणनफल को दोनों ग्रहोंकी दैनिक गतियोंकी कलाओंको जोड़कर योगफल से भाग देदो। (५) यदि दोनों ग्रहोंका समागम हो चुका हो और दोनों ग्रह मार्गी हों तो प्रत्येक लब्धिको उस ग्रहके भोगांश में घटा दो जिसकी दैनिक गतिसे गुणा किया हो परन्तु यदि समागम होनेवाला हो तो लब्धिको ग्रहके भोगांशमें जोड़ दो। यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो इसकी उलटी क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि समागम हो चुका हो तो लब्धिको ग्रहके भोगांशमें जोड़ दो और होनेवाला हो तो घटा दो। यदि एक ग्रह वक्री हो और दूसरा मार्गी, तो इन्हीं नियमोंके अनुसार जहाँ जैसी आवश्यकता हो जोड़ना घटाना चाहिए (६) ऐसा करनेसे राशिचक्रके उस स्थानके भोगांशका पता लग जाता है जहाँ दोनों ग्रहोंका समागम होचुका है अथवा होगा। दोनों ग्रहोंके भोगांशोंके अंतरको इनकी दैनिक गतियोंके अन्तरसे भाग देनेपर जो लब्धि आती है इष्ट कालसे उतनेही दिनके पहिले या पीछे समागम हो चुका रहता है अथवा होता है।

विज्ञान भाष्य— ३रे श्लोकके उत्तरार्धसे ६ठें श्लोकके अन्ततक जो दो नियम बतलाये गये हैं वे अङ्कगणितके "समय और दूरी" वाले नियमोंसे बिलकुल मिलते जुलते हैं। इसका एक उदाहरण यह है—प्रयागसे पैंसेजर गाड़ी २५ मील प्रति घण्टे के हिसाबसे ६ बजे प्रातःकाल पटनेकी ओर चली और डाक गाड़ी ४० मील प्रतिघंटेके हिसाबसे इसी ओर ८ बजे चली तो बतलाओ कि दोनोंका मेल कहां होगा और कब होगा।

जिस युक्तिसे यह प्रश्न किया जाता है उसी युक्तिसे ग्रहोंके समागमकी भी गणनाकी जाती है ऐसे प्रश्नोंमें पहले यह जानना चाहिए कि जिस समय डाकगाड़ी चली उस समय पैसेंजर गाड़ी उससे कितने अंतर पर थी, फिर यह जानना पड़ता है कि डाकगाड़ी प्रति घंटे १५ मील अधिक चलकर इस अन्तरको कितनी देरमें पूरा करेगी। यहाँ १५ मील दोनों गाड़ियोंकी प्रतिघंटेकी गतियोंका अंतर है क्योंकि दोनों गाड़ियां एक ही दिशामें जा रही हैं।

यदि पैसेंजर गाड़ी प्रयागसे पटनेकी ओर और डाकगाड़ी पटनेसे प्रयागकी ओर ६ बजे चलें तो दोनोंके समागमका स्थान और समय जाननेके लिए दोनोंकी गतियोंका योग करके इस योगफलसे प्रयाग और पटनेके बीचकी दूरीको भाग देदेने से उस समय का ज्ञान होगा जितने समयमें दोनों गाड़ियां एक दूसरे से मिलेंगी। यहां गतियोंका योग किया जाता है क्योंकि दोनों गाड़ियां एक दूसरे की ओर मिलनेके लिए चल रही हैं इस लिए इनके मिलनेकी चाल इन दोनों की गतियोंके योगके समान होता है।

ठीक इसी प्रकार ग्रहों के युतिकाल और युतिस्थान की गणना की जाती है। मान लीजिए कि चित्र १०५ में किसी इष्टकाल में क ग्रहका भोगांश म=भ और ख ग्रहका भोगांश मेख=भा। यह भी मान लीजिए कि उसी इष्टकालमें क और ख की दैनिक गतियां क्रमशः ग और गा हैं।

दोनों ग्रहोंका अन्तर कख = भा − भ

दोनों ग्रहों की दैनिक गतियोंका अन्तर = ग − गा

इसलिए इष्टकालसे जितने समय पहले या पीछे समागम हो चुका या होगा उसको यदि स कहा जाय तो $स = \frac{भा - भ}{ग - गा}$

२ रे श्लोककी उपपत्ति—यदि गा से ग अधिक हो तो हर धनात्मक होगा जिससे स भी धनात्मक होगा, ऐसी दशामें दोनों का समागम इतने दिनोंके बाद होगा। परन्तु यदि गा से ग कम हो तो हर ऋणात्मक होनेके कारण स भी ऋणात्मक होगा जिसका अर्थ यह है कि इतने दिन पहले ही दोनों ग्रहोंका समागम हो चुका है। इस जगह दोनों ग्रहोंकी गतियां स्वयम् धनात्मक मानी गयी है। यहां सरलताके लिए इसको स्मरण रखना चाहिए कि मार्गी गति धनात्मक और वक्री गति ऋणात्मक समझी गयी है।

यदि ग और गा दोनों ऋणात्मक हों अर्थात् यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो उपर्युक्त दिनफलका हर $(-ग) - (-गा) = गा - ग$ हो जायगा जो पहले का बिलकुल उलटा है अर्थात् यदि गा से ग कम हो तो दिनफल धनात्मक होगा और समागम होगा परन्तु यदि गा से ग अधिक हो तो दिनफल ऋणात्मक होगा और समागम पहले ही हो चुका है। इस प्रकार २ रे श्लोक की उपपत्ति सिद्ध हुई।

१ रे श्लोक के पूर्वार्ध की उपपत्ति

यदि क मार्गी और ख वक्री हो तो ग धनात्मक और गा ऋणात्मक होगा इसलिए समीकरणका हर ग—(-गा)के समान होगा जो वास्तवमें ग+गा अर्थात् धनात्मक हो जायगा इस लिए स धनात्मक होनेसे समागम उतनेही समय पश्चात् होगा।

परन्तु यदि ख मार्गी और क वक्री हो तो ग ऋणात्मक और गा, धनात्मक होगा ऐसी दशामें समीकरण का हर ग—गा= —ग—(+गा)=—ग—गा=—(ग+गा) जो ऋणात्मक है इसलिए समागम उतने समय पहलेही हो चुका है।

यहां यह भी सिद्ध हो जाता है कि युतिकालका समय जाननेके लिए दोनों ग्रहोंके भोगांशोंके अंतर को दोनो ग्रहकी गतियोंके अन्तर से भाग देना चाहिये यदि दोनों ग्रह मार्गी या दोनो ग्रह वक्री हों; परन्तु यदि उनमेंसे एक मार्गी हो और दूसरा वक्री हो तो दोनोंकी गतियोंके योगसे भाग देना पड़ता है।

३ रे श्लोकके उत्तरार्धसे ६ठें श्लोक तककी उपपत्ति—इन श्लोकोंका सार यह है:—

इष्टकालसे युतिकाल तकका समय $= \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$

इष्टकालसे युतिकालतक क ग्रहकी चाल $= \text{ग} \times \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$

" " ख " $= \text{गा} \times \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$

इस लिये यदि क के इष्टकालके भोगांशमें $\text{ग} \times \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$ जोड़ दिया जाय तो इसका युतिकालका भोगांश और ख के इष्टकालके भोगांशमें $\text{गा} \times \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$ जोड़ा जाय तो ख का युतिकालका भोगांश ज्ञात होगा जो दोनों एकही होंगे क्योंकि युतिकालमें दोनों ग्रहोंके भोगांश एक होते हैं। यहां ग—गा का मान ग्रहों की मार्गी और वक्री गतियोंके अनुसार बदलेगा जैसा कि पहले कहा गया है क्योंकि जब दोनों ग्रह मार्गी होंगे तो ग और गा दोनों धनात्मक होंगे और जब दोनों ग्रह वक्री होंगे तब ग और गा दोनों ऋणात्मक होंगे। इन दोनों दशाओंमें ग—गा का मान वही होगा जो दोनों का अन्तर है। परन्तु यदि एक वक्री हुआ और दूसरा मार्गी तो ग—गा का मान वह होगा जो दोनों का योगफल है परन्तु यह योगफल ऋणात्मक होगा यदि ग ऋणात्मक है और धनात्मक होगा यदि गा ऋणात्मक हो। इस प्रकार चौथे श्लोककी उपपत्ति सिद्ध हुई।

यह पहलेही मान लिया गया है कि इष्ट कालमें क, ख ग्रहोंके भोगांश क्रमशः भ और भा हैं और इष्टकालसे युतिकाल तक इनकी चालें क्रमशः $\text{ग} \times \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$ और $\text{गा} \times \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$ हैं, इस लिए युतिकालमें इनके भोगांश क्रमशः $\text{भ} + \text{ग} \times \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$ और $\text{भा} + \text{गा} \times \frac{\text{भा}-\text{भ}}{\text{ग}-\text{गा}}$ हैं। इन दोनों मानोंका धन चिह्न प्रत्येक मानके दूसरे पदके चिह्नके अनुसार धन या ऋण होगा जैसा कि पहले कहा गया है। इस प्रकार ५ वें और छठें

श्लोक के पूर्वार्धकी उपपत्ति सिद्ध होती है। छठें श्लोकके उत्तरार्धकी उपपत्ति पहलेही सिद्ध की गयी है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि इस रीतिसे युतिस्थान का जो भोगांश ज्ञात होगा वह स्थूल होगा क्योंकि किसी इष्टकालमें किसी ग्रहकी जो दैनिक गति होती है वह प्रत्येक दिन एकसी नहीं रहती, कुछ घटती बढ़ती रहती है इस लिए इष्टकालकी दैनिक गतियोंके अनुसार गणना करनेसे कुछ स्थूलता रह जाती है। इस कारण यह आवश्यक है कि उपर्युक्त गणनासे जो समय आवे उस समयके ग्रहके भोगांश और दैनिक गतियाँ स्वतन्त्र गणनासे फिर निकाले और इनके ही आधार पर ऊपरके चार श्लोकोंमें दिये हुए नियमोंसे फिर युतिस्थान जाने।

दृक्कर्म की रीति—

कृत्वा दिनक्षपामान तथा विक्षेपलिप्तिकाः।
नतोन्नतं साधयित्वा स्वकालग्नवशात्तयोः ॥७॥
विषुवच्छाययाभ्यस्ता द्विक्षेपाद्वादशोद्धृतात्।
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्ध विभाजितम् ॥८॥
लब्धं प्राच्यामृणं सौम्याद्विक्षेपात्पश्चिमे धनम्।
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु तथा क्षयः ॥९॥
सत्रिभग्रह जक्रान्तिभागघ्नाः क्षेप लिप्तिकाः।
विकलाः स्वामृणं क्रान्तिक्षेपयोर्भिन्न तुल्ययो ॥१०॥
नक्षत्र ग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदयसाधने।
शृङ्गोन्नतौ च चन्द्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्मृतम् ॥११॥

तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपश्च तयोस्ततः।
दृक्तुल्येत्वन्तरं भेदे योगः शिष्टं ग्रहान्तरम् ॥१२॥

अनुवाद—(७) युतिकालके ग्रहोंके दिनमान और रत्रिमान तथा उनके विक्षेपोंका मान जानना चाहिये फिर उस कालमें जो राशि पूर्व में लग्न हो उससे प्रत्येक ग्रहका नतकाल और उन्नतकाल जानना चाहिये। (८) विक्षेपको उस स्थानकी पलभासे गुणा करके १२ से भाग देना चाहिये। जो लब्धि आवे उसको प्रत्येक ग्रहकी नत घड़ीसे गुणा करके उसके दिनमानके आधेसे और यदि रात्रि हो तो रात्रिमानके आधेसे भाग दे देना चाहिए। (९) अब जो लब्धि आवे उसको यदि विक्षेप उत्तर हो तो पूर्व कपालमें ग्रहके भोगांशमें घटा दो और पच्छिम कपालमें जोड़ दो। परन्तु यदि विक्षेप दक्षिण होतो पूर्वकपालमें उस लब्धिको ग्रहके भोगांशमें जोड़ दो और पच्छिम कपालमें घटादो। (१०) ग्रहके भोगांशमें तीन राशि जोड़कर उसकी क्रान्ति निकालो और इस क्रान्तिके अंश को विक्षेपकी कलासे गुणा करदो गुणनफल को विकला समझकर ग्रहके भोगाँशमें जोड़ दो यदि क्रान्ति और विक्षेपकी दिशाएं भिन्न हों और यदि इनकी दिशाएं एकही हों तो घटा दो। (११) नक्षत्र और ग्रहके योगमें ग्रहका उदय और अस्त साधन करनेमें, चन्द्रमाका शृङ्गोन्नत जाननेके पहले इस दृक्कर्मका संस्कार करना चाहिये दृक्कर्म संस्कृत ग्रहोंका युतिकाल और इस समय के इनके विक्षेप फिर निकालकर यदि विक्षेपोंकी दिशा एकही हो तो अन्तर कर और भिन्न हो तो योग करे। ऐसा करनेसे जो आवे वही युतिकालमें दोनों ग्रहोंका परस्पर अंतर होगा।

विज्ञान भाष्य—युतिकालमें ग्रहोंके स्थान जाननेकी जो रीति ३—६ श्लोकोंमें बतलायी गयी है उससे यह ज्ञात होता है कि उस समय ग्रह कदम्बप्रोतवृत्त पर कहां है परन्तु स्पष्ट युति-

चित्र १०६
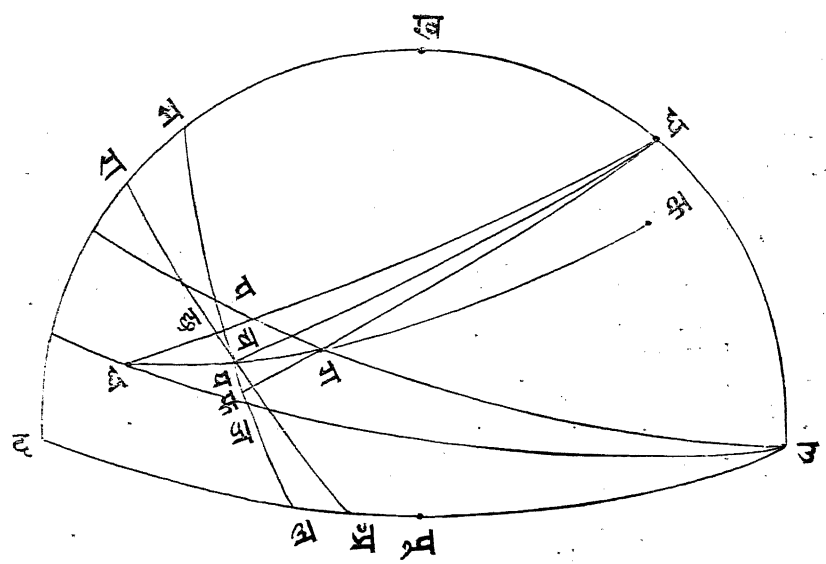
काल उस समयको कहते हैं जिस समय दोनों ग्रह समप्रोतवृत्त पर होते हैं अर्थात् उस वृत्त पर होते हैं जो दोनों ग्रहोंसे होता हुआ क्षितिजके उत्तर विन्दु पर जाता है। इस लिए स्पष्ट युतिकाल जाननेके लिए पहले दी हुई रीतिसे ग्रहोंके जो भोगांश आते हैं उसमें दो संस्कार किये जाते हैं जिनके नाम अक्षदृक्कर्म और आयनदृक्कर्म हैं। यह संस्कार आक्षवलन और आयनवलनके सदृश हैं भास्कराचार्यजीने तो ब्रह्मगुप्तजीके अनुसार अक्षवलन और आयनवलन सेही अक्षदृक्कर्म और आयन दृक्कर्म निकालनेकी रीति बतलायी है जो आजकल अधिकतर प्रचलित है परन्तु सूर्यसिद्धान्तमें इस कार्यके लिए दूसरी ही रीति दी है। यहाँ पहले सूर्य्यसिद्धान्त की रीति समझाकर संक्षेप में यह भी बतलाया जायगा, कि भास्कराचार्य्य जोकी रीति कैसी है।

चित्र १०६ का वर्णन

उ पू द =क्षितिज वृतका पूर्वार्ध—

उ,पू, द =क्रमशः उत्तर, पूर्व और दक्षिण विन्दु

उ ध ख म रा द=यामोत्तरवृत्त

क = कदम्ब

ध = ध्रुव

ख = खस्वस्तिक

म = मध्यलग्न

ग,घ = दो ग्रहोंके स्थान

क ग य घ= कदम्बवृत्त

ल ज फ य च प म =क्रान्तिवृत्त

ल =क्रान्तिवृत्तका वह बिन्दु जो पूर्वक्षितिज लग्न है।

अ य छ रा =य विन्दुका अहोरात्र वृत्त

ध च छ घ =घ ग्रह परजाताहुआ ध्रुव प्रोतवृत्त

नुसार जिस समय यह अन्तर शून्यके समान हो उस समय हो युतिकाल कहते हैं अर्थात् दो ग्रहोंकी उस समय होती है जिस समय दोनों ग्रह एक ही समप्रोतवृत्त पर हों। यह जाननेके लिए पहले यह क्रिया करनी पड़ती है कि दोनों ग्रहोंके भोगांश एक कब होंगे यह ४—६ श्लोकके अनुसार जाना जाता है। इसके बाद यह जानना पड़ता है कि उस समय य ज और पज हैं। इनको मैं सुविधाके लिए क्रमशः ग और घ के आक्ष-आयन-दृक्कर्म-संस्कृत-फल कहूँगा। यह प्रकट है कि—

य प = पफ = य फ

और य ज = च ज = च य

प्रत्येक समीकरणके दाहिने पक्षमें जो दो पद हैं उनका मान सहजही जाना जा सकता है और इस प्रकार य प और य जके मानभी जानेजा सकते हैं। पहले पदके जाननेकी रीति ७—९ श्लोकोंमें बतलायी गयी है और इसका नाम अचार्योंने अक्षदृक्कर्म रखा है। दूसरे पदके जाननेकी रीति १० वें श्लोक में बतलायी गई है और इसका नाम आचार्योंने अयनदृक्कर्म रखा है। पहलेको अक्षदृक्कर्म कहा गया है क्योंकि इसका परिमाण द्रष्टाके अक्षांशके अनुसार बदलता है और दूसरेको अयनदृक्कर्म कहा गया है क्योंकि इसका परिमाण अयनान्तवृत्तों (देखो पृष्ठ ३३८) के अनुसार बदलता है जैसा कि आगे सिद्ध किया जायगा।

अक्षदृक्कर्म—यह प्रकट है कि निरक्ष देश पर क्षितिज का उत्तर विन्दु उ और ध्रुव ध एक हो जाते हैं इस लिये वहां किसी ग्रहके समप्रोतवृत्त और ध्रुव प्रोत वृत्त एकमें मिले रहते हैं। इस कारण वहां य फ या च ज का मान शून्य होता है अर्थात् वहां अक्षदृक्कर्म शून्य होता है।

ध ग फ = ग्रह परजाता हुआ ध्रुवप्रोत वृत्त

उ ज घ = घ ग्रह परजाता हुआ समप्रोत वृत्त

उ ग प = ग ग्रह परजाता हुआ समप्रोत वृत्त

ज = घ ग्रहके समप्रोतवृत्त और क्रान्ति वृत्त का सम्पात विन्दु

प = ग ग्रहके समप्रोत वृत और क्रान्तिवृत्तका सम्पातविन्दु

प ज = दोनों ग्रहोंके समप्रोत वृत्तोंका अन्तर (क्रान्ति वृत्त पर)

च ज = घ ग्रह का अक्ष दृक्कर्म (घ ग्रह के समप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्ति वृत्त पर अंतर)

च य = घ ग्रह का आयन दृक्कर्म (घ ग्रहके कदम्ब प्रोत और ध्रुव प्रोत वृत्तों का क्रान्ति वृत्त पर अंतर

य ज = घ ग्रहका आक्षआयन दृक्कर्म संस्कृत फल, अर्थात् घ ग्रहके समप्रोत और कदम्ब प्रोत वृत्तोंका क्रान्तिवृत्तपर अंतर

प फ = ग ग्रहका अक्ष दृक्कर्म (ग ग्रह केसमप्रोत और ध्रुववृत्त वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

य फ = ग ग्रहका आयन दृक्कर्म (ग ग्रहके कदम्ब वृत और ध्रुव वृत्त वृत्तों का क्रान्तिवृत्तपर अंतर)

प य = ग ग्रहका अक्ष आयन दृक्कर्म संस्कृत फल अर्थात ग ग्रहके समवृत्त और कदम्बवृत्त वृत्तों का क्रान्ति वृत्तपर अन्तर

चित्र १०६ से प्रकट होता है कि इस अध्यायके छठें श्लोक तक युतिकालके ग्रहोंके भोगांश जाननेकी जो रीति दी हुई है उसके अनुसार ग और घ ग्रहोंका जो भोगांश होगा वह क्रान्ति-वृत्तके य विन्दु के भोगांशके समान होगा। परन्तु इस समय इन ग्रहोंके समप्रोत वृत्त क्रान्तिवृत्तको ज और प विन्दुओं पर काटते हैं इसलिए उपर्युक्त युतिकालमें इन ग्रहों के समप्रोत वृत्तोंका अंतर क्रान्तिवृत्त पर पज के समान होगा। सिद्धान्ता-

जैसे जैसे अक्षांश बढ़ता है अर्थात् जैसे जैसे क्षितिजवृत्तके उत्तर बिन्दु उ से ध्रुव ध ऊपर होता जाता है तैसे तैसे प फ या य ज अर्थात् अक्षदृक्कर्म बढ़ता है। जिस समय वृहमोत्तरवृत्त पर होता है उस समय भी उसके समप्रोतवृत्त और ध्रुव प्रोत वृत्त एकमें मिले रहते हैं क्योंकि यामोत्तरवृत्त ढ और ध दोनों विन्दुओं पर होता है इसलिए यह सिद्ध है किसी स्थानके यामोत्तर वृत्त पर भी ग्रहका अक्षदृक्कर्म शून्य रहता है। अब केवल यह जानना रह गया है कि आकाशके अन्य विन्दुओं पर ग्रह का अक्षदृक्कर्म क्या होता है। पहले यह देखना चाहिये कि यदि ग्रह क्षितिजवृत्त पर हो तो अक्षदृक्कर्मका परिमाण क्या होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि ग्रह क्षितिजवृत्त पर हो तो क्षितिजवृत्त ही इसका समप्रोतवृत्त भी होता है। चित्र १०७ से प्रकट है कि जब घ ग्रह पूर्व क्षितिजमें

चित्र १०७

अ ल घ = पूर्व क्षितिज वृत्त

उ = उत्तर बिन्दु
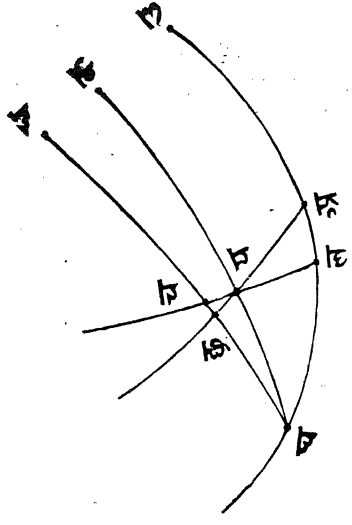
घ = उदय होते हुए ग्रहका स्थान

ल = उदय लग्न

क = कदम्ब

य = क्रान्ति वृत्तपर घ ग्रह का स्थान

च = घ के ध्रुवप्रोत वृत्त और क्रान्ति वृत्तका सम्पात विन्दु

अ य छ = य का अहोरात्र वृत्त

च ल = घ का आयनदृक्कर्म

लग्न होता है तब क्रान्तिवृत पर इसका स्थान य होता है य का अहोरात्रवृत्त अ य छ घ के ध्रुव प्रोतवृत्त को छ विन्दुपर काटता है। अ छ घ गोलीय समकोण त्रिभुज है क्योंकि अहोरात्र वृत्त अ य छ छ ध्रुवप्रोतवृत्त से ९० अंशका कोण बनाता है अहोरात्रवृत्त विषुववृत्तके समानान्तर होता है तथा विषुवद् वृत्त और पूर्व क्षितिज वृत्तके बीचका कोण लम्बांशके समान होता है इस लिए कोण छ अछ लम्बांश के समान है। यदि अ छ घ को सरल समकोण त्रिभुज मान लिया जाय तो कोण अ छ घ=९० अंश कोण छ अ घ = लम्बांश इस लिए कोण छ घ अ = अक्षांश क्योंकि अक्षांश + लम्बांश = ९० अंश। इसलिए सरल त्रिभुज अ छ घ में

$$\frac{\text{छ अ}}{\text{छ घ}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ अ}}{\text{ज्या}\angle\text{छ अ घ}} = \frac{\text{ज्या अक्षांश}}{\text{ज्या लम्बांश}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

(देखो पृष्ठ ८५ ३८७)

क्रमशः

मुद्रक—दीवान दंशधारीलाल हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१५०

Reg. No. A.708

भाग २५ Vol. 25.

कन्या, १९८४

सितम्बर १९२७

संख्या ६ No. 6

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)]

विज्ञान-परिषत्, प्रयाग

[१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय सूची

१—विज्ञान और निष्पक्ष विश्वास—[ले० श्री० हरिवंश राय बर्मा] ... २४१
२—रासायनिक युद्ध—[ले० श्री० पं० मथुरा दत्त जी तिवारी, एम० एस-सी०] ... २४७
३—बिजलीकी लहरों (तरंगों) द्वारा खबर भेजना—[ले० श्री० बाबूलाल जी गुप्त एम. एस-सी०] २५२
४—धब्बे छुड़ाने का रसायन [ले० श्री० चन्द्रप्रकाशजी अग्रवाल बी० एस-सी ... २५७
५—स्फुर—[ले० श्री सत्यप्रकाश जी एम-एस-सी] २५६
६—चार्ल्स डारविन—[ले० श्री० कृष्णबिहारी एम. एस-सी] २६७
७—विद्युन्मय धूलके बादल—[ले० श्री दौलतसिंह कोठारी बी० एस-सी] ... २७१
८—वैज्ञानिकीय—[ले० श्री अमीचन्द्र विद्यालङ्कार] २७४
९—समालोचना [ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०] २७६
१०—बहु-उदिक मद्य और उनके यौगिक [ले० श्री सत्य-प्रकाश, एम० एस-सी] २७७
११—वैज्ञानिक परिमाण—[ले० श्री० डा० निहाल करण सेठी, डी० एस-सी०] २८४

ज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग २५ | कन्या संवत् १९८४ | संख्या ६

विज्ञान और मिथ्यान्धविश्वास*

[ले० श्री० हरिवंशरायजी शर्मा]

किसी बात अथवा घटना पर बिना विचार किये, बिना कार्य्य कारण की खोज किये हुए विश्वास करना मिथ्यान्ध विश्वास कहलाता है और विज्ञान कहते हैं उस सुसम्बद्ध तथा सुसंस्कृत ज्ञानको जो मुख्यतः निरीक्षण तथा प्रयोग पर आश्रित हो।

संसारसे अब गुरुडमवादका वातावरण बिल्कुल हट गया है और इसी प्रकार बलात्कार धर्म्म प्रचार करनेकी रीतिभी नष्ट हो गई है। उनके स्मारक स्वरूप अब केवल क्रूसेडमें आनेवाले मनुष्योंकी थोड़ीसी मूर्तियां शेष रह गई हैं जो कि कहीं कहीं चर्चोंमें उनकी समाधियों पर विद्यमान हैं।

धर्म्म तथा विज्ञान में आज जो हम भेद देख रहे हैं वह उस संघर्षसे सम्बन्ध रखता है जो कि उस समय आरम्भ हुआ था जिस समय ईसाई धर्म्मने राजनैतिक क्षेत्रमें पदार्पण किया। किसी बातपर केवल इस आश्रय पर विश्वास कर लेना कि यह ईश्वरीय ज्ञान है (इससे सर्वथा सत्य है) अवश्य ही मनुष्य को असहिष्णु बना देता है। वह उससे विरुद्ध किसी बातको सहन नहीं कर सकता और मनुष्योंके बौद्धिक विकास को पसन्द नहीं करता। परन्तु हम लोगोंका मत प्रत्येक विषय पर सर्वदा बदला करता है जब तक कि हम किसी निश्चित सिद्धान्त पर न पहुँच जायँ क्योंकि मानुषिक ज्ञानके स्वराज्य विकास का यही नियम है।

*आचार्य्य डा० नीलरत्नधर, डी.एस-सी., आई.ई.एस. द्वारा आर्य्यकुमार सभा प्रयागमें दिये गये व्याख्यानके आधार पर।

धर्म्म के समान गम्भीर विषय पर तार्किक बुद्धि से विचार करनेकी महत्ता कहां तक वर्णनकी जा सकती है। इसमें प्रत्येक विचारके पुरुषको भाग लेना चाहिये, और वे तमाम पुरुष जो कि अपनेको किसी संस्था विशेषके सिद्धांतोंसे सम्बन्ध नहीं रखते उनके हृदयमें सत्यकी खोज करनेकी सच्ची अभिलाषा रहती है। वे विवादास्पद विषयोंसे सम्बन्ध रखने वाली सूचनाओं की खोज किया करते हैं और वादविवाद करनेवालेके विचारोंको सामने रखकर उसमें सत्यका अंश देखते हैं।

विज्ञानका इतिहास केवल यदाकदा किये हुए अन्वेषणोंका वर्णन नहीं है, वरन् यह दो विरोधात्मक शक्तियोंके लगातार झगड़ेका इतिहास है—एक तो वह शक्ति है जो मनुष्योंके स्वतन्त्र बौद्धिक विश्वासका बल रखती है और दूसरी वह जिसका आधार केवल विश्वास मात्र है अथवा जो इस पर विश्वास रखती है कि जैसा पहलेसे होता आया है वही ठीक है।

जब समाजकी शान्तिमय व्यवस्था उसके धार्मिक विचारों पर इतनी अधिक आश्रित है कि किसीका उच्छृङ्खलतावश उनको तोड़नेका विचार करना किसी प्रकार उचित नहीं समझा जा सकता। परन्तु 'विश्वास' स्वभाव ही से अपरिवर्तनशील है और इस कारण स्थाई है। विज्ञान स्वभाव ही से वर्धनात्मक है, इसके अर्थ ही यह होते हैं कि इसमें परिवर्तन होते हैं; और इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म्म और विज्ञानका विरोध जो हम छिपा नहीं सकते अवश्य ही होना चाहिये।

इस प्रकार उन लोगोंका जिन्होंने दोनों प्रकारके विचारोंका ज्ञान प्राप्त किया है यह कर्तव्य हो जाता है वे अपने विचारोंको नम्रता पूर्वक परन्तु दृढ़तासे उपस्थित करें इसलिये कि लोग उनके पारस्परिक विरोधको निष्पक्षतासे, धैर्य्य पूर्वक दार्शनिक दृष्टिसे विचार करें। इतिहास हमको यह बतलाता है कि यदि ऐसा न किया जाय तो समाजको कुरीतियों तथा कुप्रथाओंका रोग लगना आरम्भ हो जायगा।

जब कि योरुपका प्राचीन मिथ्यान्ध पूर्ण धर्म्म अपनी स्वयं अदृढ़ताके कारण नष्ट होने लगा तब न तो रोमके सम्राटोंने और न उस समयके दार्शनिकोंने साधारण जनताको उचित मार्ग पर चलानेका कोई प्रयत्न किया। उन्होंने धार्मिक विचारोंको मनमाना पथ ग्रहण करनेको छोड़ दिया और इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म्म सम्बन्धी बातें ऐसे समुदायके हाथों पड़ गईं जो मूर्ख होनेके अतिरिक्त स्वार्थी तथा दीनके दीवाने थे।

विज्ञानका वर्तमान स्वरूप जो आज हम देख रहें हैं ऐसा न था। आजकलके विज्ञानका बहुत कुछ सम्बन्ध निरीक्षण, प्रयोग तथा गणितसे है। परन्तु पहले प्रायः यह केवल अनुमान पर ही आश्रित था। अनुमानमें 'केवल-सत्य' (absolute truth) कठिनतासे मिलता है। विज्ञानके वर्तमान स्वरूप की वृद्धि मैसिडोनियाके आक्रमणोंका फल स्वरूप थी जिसके कारण कि पूर्व और पश्चिम एक साथ मिले।

ईसाई धर्म्मका जो स्वरूप पहले था वह इसकी वृद्धिके साथ परिवर्तित होता गया, और जब तक कि उसने राजकीय संस्थाओं पर अपना अधिकार जमाया इसने ईसाइयोंके धर्म्मसे परे मनुष्योंसे जो काफिर कहलाते थे सम्पर्क होनेके कारण अपना बहुत कुछ स्वरूप बदला। ईसाइयतके अन्दर बहुत सी बातें विज्ञानके विरुद्ध थीं और इस कारण इस धर्म्मके प्रचारके लिये ईसाइयोंको अलेक्जेण्ड्रियाकी पाठशालाओंको बलात्कार पूर्वक बन्द करना पड़ा। यह कार्य करनेके लिये इसे राजनैतिक अधिकारोंकी आवश्यकताओं से बाधित होना पड़ा।

इस प्रकार ईसाइयतका विरोध करनेवाला एक दल तैय्यार हुआ। इनमें हार-जीतका विशेष परिणाम नहीं कहा जा सकता। प्रायः जो बातें बुद्धि तथा ज्ञान विषयक थीं उनका निर्णय करनेके लिये बल तथा शस्त्र प्रयोगमें लाये जाते थे। इन दो दलों की पहली मुठभेड़ योरुपके इतिहासमें पहला अथवा

दक्षिणी सुधार (Southern reformation) के नामसे प्रसिद्ध है। पहली विरोधकी बात जो इन दोनोंके बीच थी वह थी ईश्वरके गुण क्या हैं। झगड़ा बहुत दिनों तक रहा और इसका फल यह हुआ कि इस्लाम धर्मका जन्म हुआ इसका फल यह हुआ कि एशिया तथा अफ्रीकाके बहुतसे भागोंसे तथा जेरुसलेम अलेकजेण्ड्रिया तथा कारथेजसे एतिहासिक नगरोंसे ईसाई धर्म हट चला और वे इस्लाम के उस झंडेके नीचे आगये जो केवल एक परमात्माकी उपासनाका प्रचार करता था। इस प्रकार रोमन राज्यका बहुत सा भाग उसके विरुद्ध हो गया।

इस राजनैतिक घटनाके पश्चात् विज्ञानका पुनः उदय हुआ और अरब राज्यमें बहुत सी पाठशालायें विश्व विद्यालय तथा पुस्तकालय स्थापित हुए। ये विजयी लोग अपने बौद्धिक विकासमें उन्नति करते गये। उन्होंने परमात्माकी उपासना मनुष्य रूपमें करनेका बिल्कुल इन्कार किया, और चल कर इनके विचार अधिक दार्शनिक हुए जो भारतके दार्शनिक विचारोंसे मिलते जुलतेथे और जो भारतके अन्दर सदियों पहले जागृत हो चुकेथे। इसका फल एक और मुठभेड़ थी यह आत्माके गुणों के विषयमें हुई। एवेरोइज्म के नामसे एक सिद्धान्तका प्रचार होना आरम्भ हुआ जिसका सिद्धान्त यह था कि आत्माका एक समय विशेष पर प्रादुर्भाव होता है और एक निश्चित् समय बाद विलीन होजाती है। मध्यकाल (Middle age) के अन्तमें योरूपकी धर्म्म-सिद्धान्त-निर्णायक सभा (Inquisition) ने बलात् इन सब सिद्धान्तों को योरूप से निकाल बाहर किया। और अब वैटिकेन सभा (Vatican Council) ने उन्हें भली प्रकार तिलाञ्जलि दे दी है।

इसी बीचमें ज्योतिष विज्ञान की वृद्धिके कारण भूगोल तथा अन्य विज्ञान सम्बन्धी विद्याओंने पृथ्वी तथा अन्य तारागणोंके विषयमें तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धके विषयमें धार्मिक पुस्तकोंके विरुद्ध ज्ञान का उत्पादन किया। बाइबिल तथा अन्य धार्मिक पुस्तकोंमें पृथ्वीको समस्त ब्रह्माण्डका केन्द्र बताया गया था। और पृथ्वीको उसका एक मुख्य भाग बताया गया था। पर ज्योतिषके इस कथनने कि पृथ्वी और तारागणोंकी अपेक्षा बहुत छोटी है और ब्रह्माण्डका केन्द्र नहीं हो सकती, धर्मकी पुस्तकों का विरोध करना था। केवल इतनाही नहीं, चूंकि ये पुस्तकें ईश्वर कृत समझी जाती थीं इससे ऐसा कहना मानों ईश्वर का विरोध करना था जिसे पादरी लोग नहीं सहन कर सकते थे। इससे एक तीसरा झगड़ा आरम्भ हुआ, और गैलीलियो (Galilio) ने विज्ञानकी सम्मतिको आगे बढ़ाया। इसमें चर्चकी ही हार रही। एक और प्रश्न भी जो इसीके अन्तर्गत था उठाया गया वह यह था कि पृथ्वीकी आयु कितनी है जिसका उत्तर चर्चकी ओरसे ६००० वर्ष दिया गया। वैज्ञानिकोंने इसकी आयु करोड़ों वर्षकी बताई और इसमें भी चर्च की हार रही।

इतिहास और विज्ञानका प्रकाश धीरे धीरे योरूपमें फैल रहा था। सोलहवीं शताब्दीमें रोमको ईसाइयतका अभिमान बहुत कुछ तो बौद्धिक विकासके कारण, उसके बहुतसे सिद्धान्तोंके झूठे सिद्ध होनेके कारण और कुछ राजनैतिक तथा सामाजिक दशाके कारण चकनाचूर हो गया। बहुत से बुद्धिमान तथ धर्मात्मा मनुष्योंने यह बात अनुभव की कि उन सब असत्यताओंके लिये जो धर्मके मथे मढ़े गये थे धर्म्म उत्तरदायी नहीं था बल्कि वह उस सम्पर्कके कारण जो ईसाइयोंका ईसाइयोंसे भिन्न धर्म्मावलम्बियोंसे हुआ था ईसाइयतमें घुस पड़े थे। इसलिये अब केवल उपाय यह रह गया कि जो जो सत्य सत्यसे मिलावटका सिद्धान्त मिला उसी पर विश्वास रक्खा जाय। और इस प्रकार चौथे झगड़ेका आरम्भ हुआ। यह योरूपके इतिहासमें सुधार (Reformation) अथवा उत्तरी सुधार (Northern Reformation) के नामसे प्रसिद्ध है। उसने अपना स्वरूप इस प्रकार रक्खा कि असत्य चाहे जहां से चाहे वह बाइबिलमें हो अथवा चर्चमें उसका बहिष्कार किया

जाय और सत्य की खोजको दृष्टिमें रख कर सब पाखण्डोंकी कड़ी आलोचनाकी जाय। इस प्रकार के निश्चय से तर्क को प्रधान स्थान मिला। तर्क पूर्ण किसीकी बात भी माननेके योग्य समझी जाती थी चाहे वह पुरुष किसी भी विचार अथवा श्रेणीका हो। इस प्रकार व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका दरवाजा खुला। लूथरने जो इस युगका बड़ा प्रसिद्ध पुरुष था इस विचार को बड़ी सफलताके साथ कार्यरूपमें परिणत कर दिखाया और इस झगड़ेके अन्तमें यह प्रत्यक्ष हो गया की रोमकी ईसाइयतने उत्तरी योरूप परसे अपना प्रभुत्व खो दिया।

आजकल हमारे सामने यह समस्या उपस्थित है कि संसार का शासन किस प्रकार से होता है? कौन इस समस्त ब्रह्माण्ड को चलाता है? हमें अब तक यह ज्ञात नहीं कि क्या यह कोई सर्वोपरि शक्ति के द्वारा होता है अथवा इन्हीं नियमोंके कारण जो सर्वदा अटल रहते हैं परन्तु इतना हम कह सकते हैं कि ईसाइयत अब उस श्रेणी तक पहुंच गई है जिसमें अरब दसवीं अथवा ग्यारहवीं शताब्दीमें पहुँचाथा और विकासवाद, सृष्टि रचना तथा वृद्धिके वे सिद्धान्त जो इस समय विचार किये जाते थे आज फिर हमारे सामने विवेचनाके लिये रक्खे जाते हैं।

प्रीस्टले ने पहले पहल ओषजन गैसका अन्वेषण किया था। उसके पश्चात् जो कार्य्य लेपलैस, यंग (Young) डेवी कूवीर, लैमार्क रावर्टब्राउन, वानवियर, श्वान, स्मिथ तथा हटन ने अपने अनवरत परिश्रमसे किया उसका क्या अनुमान लगाया जा सकता है! इनमें से अब कोई जीवित नहीं पर उनके पश्चात् वैज्ञानिकों ने जो कुछ भी किया है उन्हींके परिश्रमके कारण ऐसा कर सके हैं। विज्ञान की वृद्धि देखते समय हमें उन्हें न भूलना चाहिये, जिस प्रकार हमें किसी भवन की दृढ़ता तथा सौन्दर्य्य देखते समय नींव को न भूलना चाहिये जिस पर की सारा भवन स्थित है, यद्यपि वह नींव अब दिखाई नहीं पड़ती। हम विचार की दृष्टिसे देखें तो पता लगेगा कि किस प्रकार वैज्ञानिक सिद्धान्त सभी प्रकारकी जांचमें लगाये जाने लगे हैं और किस प्रकार प्रत्येक विचारवान मनुष्य छोटीसे लेकर बड़ीसे बड़ी तक बातोंमें वैज्ञानिक दृष्टि रख कर उनपर विचार करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान जो १८ वीं शताब्दीमें केवल अपनी ही संकुचित सीमामें है १९ वीं शताब्दीमें सभी विद्या सम्बन्धी शाखाओंमें प्रवेश कर जाता है। और यही दोनों शताब्दीमें बड़ा भारी आश्चर्य्यजनक भेद हुआ है।

अगर हम पूछें कि इन सब महान् परिवर्तनोंके अन्दर कौनसी सबसे बड़ी बात है तो यही कहा जा सकता है कि मनुष्यके प्रत्येक कार्य्यों में कारण अथवा तर्कने प्रधानता पा ली है, गुरुडमवाद संसारसे उठ गया है। शासकोंने भली प्रकार यह अनुभव कर लिया है कि उनका ध्येय शासितोंकी हितावांछा है और यह कि शासक शासितोंके प्रत्येक भलाई बुराई अथवा हानि लाभके लिये उत्तरदायी हैं। और यह स्वतः सिद्ध बात मान ली गई है कि प्रकृति की हर क्रिया विज्ञानके ऐसे नियमोंपर आश्रित है जो सदा अटल और अपरिवर्तनशील हैं।

परन्तु इन सब परिवर्तनोंको लानेके लिये और इन सब सचाईको सर्व ग्राह्य बनानेके लिये ही तो जौजेफ़ प्रीस्टलेने परिश्रम किया था। और यदि हम १९ वीं शताब्दी को १८ वीं शताब्दीसे अच्छा पाते हैं तो यह प्रीस्टले और प्रीस्टलेके समान परिश्रमी पुरुषों के कारण ऐसा है। और यदि बीसवीं शताब्दी १९वीं से अच्छी हो सकती है तो उसका कारण यही होगा कि हममेंसे बहुतसे लोग प्रीस्टलेके बतलाये हुए पथपर अनुसरण करते हैं।

ऐसे पुरुष वे नहीं होते जिनको उनके समकालीन मनुष्य आदर पूर्ण दृष्टिसे देखते हैं। सच पूछिये तो ऐसे मनुष्य कभी मान सत्कारकी चिन्तना तक नहीं करते। उनका कार्य्य तो कार्य्यके लिये होता है, नाम के लिये नहीं। प्रीस्टलेके कामोंको देखकर चाहे आने वाली संतान अपनी कृतज्ञता प्रगट करनेके लिये यह उचित समझे कि उनकी स्मृतिमें उनकी मूर्त्तियां

बनवा दी जाय या चाहे उनका नामोनिशान अपनी भारतमे सदाके लिये भुलाये परन्तु उनके कार्य्य सर्वदा बने रहेंगे; और महाप्रलय तक उनके कारण सत्यताका डंका बजा करेगा और असत्यता और अन्याय सदा बलहीन रहेंगे क्योंकि उन्होंने अपने जीवनमें उन्हें हरा दिया और वे सदा पराजित रहेंगे।

विज्ञानने केवल इतना ही नहीं किया वरन आज विज्ञानने यह भी दिखा दिया कि 'परमेश्वर' का अस्तित्व केवल एक कल्पना नहीं बलिक उसका इतना बड़ा और इतना दृढ़ अस्तित्व है जितना कि हम सामर्थ्य (energy) अथवा न्याय (Justice) में रखते हैं।

दूसरी बात जो विज्ञान ने सिद्धकी है वह यह है शरीर रचना तथा ईश्वरके तथा शारीरिक प्रक्रियाओं के संचालनमें ईश्वरके अस्तित्वकी सर्वदा ही आवश्यकता रही है और रहेगी।

तीसरी बात यह है कि प्राकृतिक तथा शरीर विज्ञान ने मात्रा (matter) तथा सामर्थ्य (energy) में एकताका अन्वेषण करते हुए और इनमें एक प्रकारकी नियमित और रीत्यानुसार कार्य्य सम्पादन की शैलीको देखकर जो ईश्वरके अस्तित्वका विचार सिद्ध किया है वही है जिसे अब तब कुछ लोग केवल कल्पना कहा करते थे।

मनोविज्ञान (Science of Psychology) ने मस्तिष्ककी कुछ स्वाभाविक क्रियाओंको प्रगट करके हमें मानसिक अनुभवोंकी योग्यता तथा महत्ता समझनेके प्रयत्नमें बहुत सहायता पहुँचायी है। और इस प्रकार यह आत्म संयम तथा आत्म विश्वास और मानुषिक मस्तिष्ककी वृद्धिकी नींव डाल रहा है। यह भी दिखलाता है कि किस प्रकार परमात्माके अस्तित्वका विचार उत्तरोत्तर मानसिक उन्नतिमें सहायक हो सकता है। हमें ज्ञात है कि वैज्ञानिक विचारों की सत्यता न तो सामयिक है और न किसी स्थान विशेषसे जकड़ी है। यह सर्वत्र और सब कालमें एक समान और सत्य है और इस कारण यदि किसी धर्म्मका निर्माण विज्ञानकी आधार शिला पर किया जाय तो वह सबके मानने योग्य होगा और प्रत्यक्ष फलदायी भी प्रतीत होगा जो कि अभी तक उसे नहीं प्राप्त हुआ है।

परन्तु हम यह नहीं कह सकते हैं कि यह काम बहुत समीप है। हम तो अब भी उसके आरम्भमें ही हैं। और शरीर रचना विज्ञानका यह एक सिद्धांत है कि यद्यपि विकासवादमें मनुष्य अन्तिम श्रेणीमें है तथापि अपने विकासमें मनुष्य अपनी पहली ही श्रेणीमें है और हमारे सामने बड़ा समय पड़ा है जिसमें कि हमको कार्य्य करना पड़ेगा क्या उस कालका अनुमान कर हमें अपने कार्य्य तथा प्राप्तिकी तुच्छता नहीं प्रतीत होती ?

कुछ समय पहले जब कि विज्ञानने कुछ थोड़ेसे सिद्धान्तोंका अन्वेषण किया था वैज्ञानिकोंने यह कहना आरम्भ कर दिया था कि परमेश्वरका अस्तित्व नहीं है। परन्तु विज्ञान ने जैसे जैसे उन्नतिकी उसे अपनी तुच्छता प्रतीत हुई। ज्ञान कितना है और विज्ञानने कितना थोड़ा ज्ञान समझा इसका उसे पता लग गया और यह उसका विश्वास मिट गया।

योरुपका एक प्रसिद्ध पुरुष जिसे जीवोंके पालने का तथा उनके स्वाभावको अध्ययन करनेका शौक था जब वह युवक था ईश्वरमें विश्वास नहीं करता था परन्तु जब अपनी वृद्धावस्थामें उससे प्रश्न किया गया कि क्या उसे ईश्वरमें विश्वास है उसने उत्तर दिया, "मैं यह नहीं कह सकता कि मुझे ईश्वर में विश्वास है, मैं उसे देखता हूं, बिना उसके मेरी समझ में कुछ नहीं आता। बिना उसके सर्वत्र अन्धकार दिखाई देता है। हममें यह विश्वास केवल बाकी ही नहीं है, मैंने उसे अपने हृदय में दृढ़कर लिया है, स्थायी कर लिया है। हर युगमें किसी न किसी कार्य्य करनेका एक शौक (mania) हो जाता है। मैं समझता हूँ कि आस्तिकता इस युगकी सनक है। तुम हमारी खालको मेरे मनसे ईश्वरके विश्वासको निकालने की अपेक्षा अधिक सरलता से निकाल सकते हो।"

उसने पूछा, "क्या कीड़ा अपनी चतुरताको पीढ़ियोंमें अन्धेके समान इधर भटकता हुआ बहुतसे यदा कदा किये गये अनुभवसे प्राप्त कर सकता है? क्या कभी इस अनियमितता से नियमितता प्रगट हो सकती है? ऐसा कहना बिना विचारके भविष्यद्वाणी करना है, अथवा अविद्याको ज्ञान समझ बैठना? क्या संसार विकासवादके भीषण संघर्ष से रचा गया है अथवा किसी चैतन्य शक्ति से। जितना ही अधिक मैं निरीक्षण करता हूँ, जितना ही अधिक मैं देखता हूं मुझे इन सब चमत्कारोंके अन्दर वही चैतन्य शक्ति दिखाई देती है।"

प्रत्येक नये अन्वेषण अथवा सत्यताकी योग्यता उस समय के विचारकी दशा तथा ज्ञानपर निर्भर रहती है। यदि वह इससे बहुत आगे होती है तो इसका बहुत सा प्रत्यक्ष फल नष्ट हो जाता है जिस प्रकार एक अच्छा बीज बड़ी धरती पर फेंक दिया जाय। परन्तु उस सत्यताका ढूंढनेवाला किसी प्रकार कम श्रद्धास्पद और सत्कार योग्य नहीं, यदि वह अपने समकालीन मनुष्योंसे इतना आगे है कि वे उसकी बातको माननेके लिये तैयार नहीं है अथवा उसे सत्कार करनेकी अपेक्षा दण्ड देते हैं भावी सन्तान प्रायः भूत की दशाओंको भूल जाती है और विशेषतः ऐसे युगमें जिसमें कि उन्नति वेगसे हो रही हो क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि जितनी जल्दी उन्नति होती है उतनी ही जल्दी लोग पूर्व दशाओंको भूल जाते हैं चाहे वे कितनीही महत्व पूर्ण और कठिन क्यों न रही हो।

ऐसे महान् पुरुषोंमें जो अपने युगसे इतने बढ़े चढ़े थे कि जिन सत्यताओं का उन्होंने प्रचार किया न केवल न माने गये वरन् जनता उनकी शत्रु तक बन गई। डा० जान वीयर थे जिन्होंने बड़ी दृढ़ताके साथ इन्द्रजाल (Witch craft का) विरोध किया। उनका कोई सहायक न था। और यद्यपि जबसे उन्हों ने जादूगरोंका पीछा करने वालोंका विरोध किया तब से दशा परिवर्तित हो गई परन्तु एक सौ वर्षोंसे भी अधिक समय तक उनके साथ निर्दयता, अन्याय तथा मिथ्यान्धविश्वासका बर्ताव होता रहा। परन्तु हमारे विचार अब इस विषय पर बिलकुल बदल गये हैं और आज उनके उपकारकी महत्ताका तथा उस जोखिम कामका हमें ध्यान भी नहीं आता।

कहा जाता है कि एक बार सेण्ट विन्सेण्ट (११९०—१२६४) के पास एक जादूगरनी आई और उससे कहने लगी कि कल रातको मैं अपने कई साथियोंके साथ आपके सोने वाले कमरेमें गई। हमारी साथिनियोंने आप पर बुराई छोड़ना चाहा तो मैंने बचा लिया मुझे कुछ इनाम दीजिये। सैण्ट विंसेण्ट ने पूछा कि तुम मेरे कमरेमें कैसे गईं। उसने कहा दरवाजा बन्द करनेके सूराखसे। इसपर सेण्ट विन्सेण्टने दरवाजा बन्द कर लिया और एक छड़ीसे उसे मारने लगा। जब वह रोने चिल्लाने लगी तब उन्होंने कहा तू सूराख़से क्यों नहीं निकल भागती।

हम इस प्रकार देखते हैं कि किस प्रकार बहुतसे अन्ध विश्वास जिनका कि हम प्रत्यक्ष प्रयोग कर सकते हैं हम अज्ञान वश मानते हैं। प्राचीन समयमें ऐसी बहुतसी बातें मानी जाती थीं उनमें एक प्रसिद्ध घटना का हम उल्लेख करते हैं। पहले लोगों का यह विश्वास था कि जो चीज भारी होती है वह हलकी वस्तुकी अपेक्षा पृथ्वीपर जल्दी गिरती है। परन्तु बात ऐसी नहीं है चाहे हलकी चाहे कितनी भारी वस्तुको एक ऊंचाईपर रोकें तो दोनों एक साथ गिरती हैं। जब गैलीलियो ने यह प्रयोग पीसाके अन्दर एक जन समुदायको दिखाया तबभी लोगोंको विश्वास न हुआ और इस सत्यताको प्रगट करनेके लिये बूढ़े गैलीलियोको कारागारमें निवास करना पड़ा। मिथ्यान्ध विश्वासी लोग विज्ञानका इसी प्रकार स्वागत करते हैं।

लार्ड मारले ने अपने लेखमें कहा है कि विज्ञान का काम है कि वह समस्त मनुष्योंके लिये एक धर्म्म की स्थापना करे। यह धर्म अन्धविश्वासकी अपेक्षा तर्क और सत्य-परीक्षा पर आश्रित होना चाहिये। किसी जाति विशेषके आधिपत्य अथवा उनकी गव-

युक्त मनमानी आज्ञापूर्ण घोषणाओंके स्थानमें सम-भ्रातृभाव और लोक-प्रियता इस भावी धर्मके मुख्य अंग होने चाहिये। विज्ञान और धर्म का एकीकरण भविष्यके गर्भमेंही इस समय लुप्त है। भारतवर्षकी अवस्था इस विषयमें विशेषतः विचारणीय है। वास्तविकता और ज्ञानप्रियताके अभावके कारणही भारतके आज दो बड़े बड़े समुदाय एक दूसरेके रुधिरके प्यासे हो रहे हैं। मुसलमान धर्म की यह नीति उसके लिये अवश्यही लज्जास्पद है कि वह तर्क और प्रयोगों द्वारा सिद्ध विचारों का उत्तर अस्त्र और शस्त्र के प्रहारों से देता है। उनका प्रिय सिद्धान्त कि मजहबमें अक्ल को दखल नहीं है, आज उनके लिये ही नहीं, प्रत्युत दूसरों के लिये भी हानिकर हो रहा है। धर्मके इन दीवानों को विज्ञान के अध्ययन के हेतु विशेषतः अग्रसर होना चाहिये। मन्दिर और मसजिदों दोनों के उपासकों को विज्ञान धर्म का अनुसरण कर पारस्परिक मनोमालिन्यको दूर करना चाहिये। हिन्दुओं को भी पीर, कबीर, गाजियोंकी क़बरोंपर मस्तक नवानेकी अपेक्षा विज्ञान सिद्ध ओषधियों के उपचार द्वारा रोगोंके निवारण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। बीसवीं शताब्दी में भूतप्रेतोपचार का मिथ्या विश्वास और झाड़, फूंक, टोटका, टोना आदि हानिकर और अविद्या पूर्ण साधनोंका अवलम्बन वास्तवमें शिक्षित समुदाय पर कलङ्क है। क्या हम आशा कर सकते हैं कि हमारा भविष्य अधिक उज्ज्वल और विवेकपूर्ण होगा ?

रासायनिक युद्ध

(गतांक से आगे)

(ले० श्री० पं० यमुनादत्त तिवारी, एम. एस-सी.)

सर्षप वायव्य Mustard gas-yeperite or yellow gas. $(ह.क उ_2, क उ_2)_2 ग$. यह पदार्थ पहिले पहल सरविलियम पोप (Sir William Pope) ने बनाया। उन्होंने यह दिखाया कि ज्वलीलिन $क उ_2 : क उ_2$ और गन्धक हरिद, $ग_2 ह_2$ के मिश्रण से यह पदार्थ बनता है।

$$2 क_2 उ_4 + ग_2 ह_2 = (क उ_2 ह क उ_2)_2 ग + ग.$$

इन दोनों पदार्थोंसे पोप और गिब्सन ६०% यह पदार्थ बना सके। इतनी बड़ी मात्रामें यह पदार्थ तब ही मिल सकता है जब कि $क_2 उ_4$ के साथ थोड़ी सी मद्य मिली रहती है, परन्तु जब ज्वलीलिन $क_2 उ_4$ अति शुद्ध होती है तो ८०% यह पदार्थ बनता है। पोपकी विधिसे इस पदार्थको बनानेके लिए $क_2 उ_4$ और $ग_2 ह_2$ की आवश्यकता है। बहुतसे अति साधारण पदार्थोंका बड़ी बड़ी मात्रामें अति शुद्ध बनाना बड़ा कठिन होता है। कौप (Kopp) का कहना है कि $ग_2 ह_2$ स्रवित करने से शुद्ध बनाया जा सकता है परन्तु थौर्प का कहना है कि स्रवण करनेसे $ग_2 ह_2$ ऐसे पदार्थों में बदल जाता है जिनमें गन्धकका अंश अधिक हो जाता है। पोप की विधिके अनुसार $ग_2 ह_2$ थोड़ा सा गन्धक और १% कोयलेके साथ स्रवित करनेसे बनाया जाता है और इसके पश्चात् ३७° श तापक्रम पर वायु रहित बर्तनसे स्रवित किया जाता है यह सुनहले रंगका द्रव पदार्थ है।

ज्वलीलिन, $क_2 उ_4$—यह पदार्थ मद्य को कुछ उत्प्रेरक (catalyst) वस्तुओंके साथ ऊँचे तापक्रम पर गरम करनेसे मिलता है। इस पदार्थको बनानेकी सबसे अच्छी विधि यह है कि मद्यको स्फुरिकाम्लके साथ २००° पर गरम किया जाता है। इस विधिसे अति शुद्ध और बड़ी मात्रा में यह पदार्थ मिलता है। परन्तु इस विधिसे यह पदार्थ बनानेमें व्यय अधिक होता है। कम व्ययमें साधारणतः शुद्ध पदार्थ बनाने की विधि यह है:—मद्य और वाष्पके तोलकर बराबर भाग ३" लोहेके नलोंमें जिनमें छेद किये होते हैं भेजा जाता है और ये नल ८" वाले नलोंसे घिरे रहते हैं जिनमें केओलिन जो उत्प्रेरक पदार्थका काम करता है भरा रहता है। ये सारे नल गैसके गरमकी हुई ईंटे की भट्टीमें रखे जाते हैं। उचित यन्त्रोंकी क्रियासे केओलिन बड़े नलके एक सिरेसे डालकर दूसरे सिरे से निकाला जाता है। भट्टी का ताप ५००° और ६००° श के बीच रखा जाता है। $क_2 उ_4$ ठण्डे

करने वाले बर्तनमें पहुँचाया जाता है जिसमें और द्रव पदार्थ रोक लिए जाते हैं।

सर्पिष वायव्य बनानेकी विधि—ज्वलीलिन क $_2$ उ$_4$: क $_2$ उ$_4$, गन्धक हरिद ग$_2$ ह$_2$ में घुल जाता है और घुलने पर बहुत गर्मी देता है। घुलने पर ही सर्पिष गैस और गन्धक बन जाता है। इस वायव्यको बनानेके लिए तापका ३०° और ६५०° के बीच होना ही लाभकर है। तापके अधिक होनेसे अधिक गन्धक वाले पदार्थ भी बन जाते हैं जो सर्पिष गैस में घुल जाते हैं और सर्पिष गैसकी मात्रा कम हो जाती है। इस विधिसे जो सर्पिष गैस बनती है गोलोंमें भरनेके लिए काफी सन्तोषजनक है।

सर्पिष गैसके गुण—यह तैलकी भांति चिकना पदार्थ है इसीलिये इसे सर्पिष कहते हैं। शुद्ध अवस्था में सफेद होता है। शुद्ध पदार्थ २१५°—२१७° पर उबलता है। यह पानीमें बहुत कम घुलता है परन्तु कार्बनिक द्रव रसायन पदार्थोंमें यह सुगमतासे घुल जाता है। ओषजन देने वाले पदार्थोंके मिश्रणसे यह नष्ट हो जाता है और हरिन् देने वाले पदार्थों जैसे गन्धक हरिद ग$_2$ह$_2$ के मिश्रण से इसका फोफले पैदा करनेका गुण नष्ट हो जाता है। इसी कारण हरिन् सर्पिष गैसको नाश करनेके लिए उत्तम पदार्थ है। एक आश्चर्यजनक बात यह है कि यह पदार्थ शुद्ध हालतसे अशुद्ध हालत ही में अपना हानिकारक गुण तीव्रताके साथ दिखाता है। इससे यही बात ज्ञात होती है कि अशुद्ध पदार्थ ही में विषैली वस्तु होती है। मस्टार्ड गैसका गुण सब प्रथम आँखोंमें प्रतीत होता है जिससे आँखोंमें बड़ी खुजलाहट पैदा होती है और आंखोंमें अनेक प्रकारके रोग पैदा हो जाते हैं। सर्पिष गुण आंखोंमें इतना तीव्र और भयानक होता है कि इसकी अति सूक्ष्म मात्रा भी थोड़ी देर के लिए अन्धा बना देती है। परन्तु आंसुओंमें बह जानेके कारण इसका गुण आंखों पर स्थायी नहीं रहता, १४००० ०० भागोंमें एक भाग इस पदार्थका आंखोंमें रोग उत्पन्न करनेके लिए काफी है। इसका गुण फेफड़ों और सांस लेने वाले अंगोंमें शीघ्र होता है परन्तु सबसे आश्चर्य जनक गुण इसका चमड़ी के ऊपर होता है, चमड़ीमें जहर फैलनेकी निशानी धीरे धीरे जान पड़ती है बदनके वे भाग जो कोमल होते हैं उन पर इसका गुण सर्व प्रथम होता है। उदाहरणार्थ फफोले बगलोंमें अति शीघ्र निकल आते हैं। धीरे धीरे फोफले बढ़ते जाते हैं यहां तक कि सारा शरीर घावोंसे आच्छादित हो जाता है। अंग्रेज सेना की इस विषके विषयमें यह रिपोर्ट है—आंखोंमें बिना जलनके छींक आना, करीब १२ घण्टे बाद नाकका बहना आंखोंका सूज जाना और कै होना गर्दन और चेहरे पर फोफलोंका निकलना, जांघोंके बीच चमड़ीका लाल होना और फोफले निकल आना। पहिले पहल चमड़ीमें पीड़ा नहीं होती परन्तु १२ घण्टे बाद घाव उत्पन्न हो जाते हैं और तीव्र पीड़ा हो जाती है। इस विषका शरीरमें गुण देरमें ज्ञात होना आश्चर्यजनक है क्योंकि यह शरीरमें बहुत जल्द सोख ली जाती है--दो तीन मिनट तक इसके शरीरके साथ रहने पर भी यह उचित कार्बनिक रासायनिक द्रवोंसे धो के शरीरसे अलग की जा सकती है परन्तु तो भी कुछ भाग शरीरके अन्दर चला जाता है और चमड़ेकी निचली तहोंमें सोख लिया जाता है। इसके शरीर पर विषैले गुणके होनेके कई एक कारण बतलाये गये हैं परन्तु कौन ठीक है यह नहीं कहा जा सकता है। सम्भव है कई प्रकारकी क्रियायें शरीरमें इससे होती हैं। यह इतनी कम मात्रामें अपना गुण दर्शाती है कि हाथ से इसका मालूम होना असम्भव है। इसका गुण बहुत समय तक बना रहता है। जिस स्थानपर इसका प्रयोग हुआ हो वह भूमि बहुत दिनों तक भयावनी ही बनी रहती है और कोई भी पदार्थ जिसपर यह जल्दी लग गया हो मनुष्यके लिए भयानक है इसका कारण यही है कि यह जल्दी नहीं उड़ सकती है इसकी गन्ध तीव्र न होनेसे इसका मालूम करना कठिन है इनसे यह होता है कि इसकी बड़ी मात्रा भी जो जीव मात्रको नाश करनेके लिए काफी हो जीवके अङ्ग प्रत्यङ्गोंसे नहीं मालूम हो

सकतो है। वर्तमानमें सारे धावे भर सिपाहियोंको गैसमास्क लगाकर रहना असम्भव है इस वास्ते इस पदार्थको जाननेके लिए क्रियायें निकाली गई हैं। नीलिन्के कुछ रंग ऐसे हैं जो इस पदार्थके लगने मात्र से रंग बदल देते हैं। येही रंग इस पदार्थको जानने के लिए काममें लाये जाते हैं। ये पदार्थ केवल पड़ाई के मैदानमें सर्पिषके अस्तित्वको जाननेके लिए ही काम में नहीं लाए जाते बल्कि इस पदार्थसे भरे हुए गोले भी इसीसे रंगे रहते हैं ताकि जब वे किसी तरहसे चूने लगें तो बिना भारी हानि हुए ही जान लिय जाय।

इस पदार्थके विषसे बचनेके साधनः—इस पदार्थके रासायनिक गुणके आधार पर ही इससे बचनेके गुण निर्धारित हैं। हरिन् देनेवाले पदार्थ ही इनकी औषधि हैं। ५% उपहर साम्ल घोल या १% हरिन् हीका सैन्धक चर्बिकेतमें घोल सबसे लाभकर है। इस पदार्थसे आंख और सांस लेनेके अङ्ग गैसमास्कसे बचाये जा सकते हैं। शरीरके बचाव करनेके लिए भी कोई विशेष अङ्गका पहरावा बनाया जा सकता है। परन्तु इसके खर्च और इसका लिबास सिपाहीकी स्वतन्त्रताको जकड़ लेगा और उनको एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना बड़ा ही कष्टकारक होगा और शरीरको वायुसे बिलकुल ही अलग कर देना स्वास्थ्यके लिए भी अति हानिकर है। इसलिए शरीरको बचानेकी सबसे सहज विधि यह होती है कि शरीरको ढापनेके लिए कोई ऐसा उचित मलहम होता जो कि जल्दी धो लिया जाता और शरीरसे पसीना आदिके निकलेमें बाधक न होता, अलसीका तैल सब प्रकारके घावोंके लिए प्राचीन कालसे काममें लाया जाता है। इससे सबसे सहल अलसीका तेल ही काममें लाया गया और यह तेल इसके बचावके लिए अति लाभदायक निकला और

दस्तओषिद्—४०
अलसीका तेल—२०
सुअरकी चर्बी—२०
लैनोलिन—१०

ये चीजें मिलाकर भी मलहम घावकेलिए बनाया जाता है। बचावकी नयी तदबीरका यह पहला ही नमूना है।

इस पथ पर और भी अधिक अन्वेषण करना पड़ेगा जब तक कि आँख, कान, फेफड़े इत्यादि बचाने की सबसे उत्तम वस्तु जान न ली जाय।

ज्वलीलद्विहर संन्नीणिन्, क$_2$ उ$_5$ नह$_2$ (इथाइल डाइक्लोर आरसाइन) इस पदार्थको बनानेके प्रयोगकी क्रिया इस प्रकार है।

(१) क$_2$ उ$_5$ ह + सै$_3$ नओ$_3$
= क$_2$ उ$_5$ न ओ$_3$ सै$_2$ + सैह

(२) क$_2$उ$_5$ न ओ$_3$सै$_2$ + उ$_2$ग ओ$_4$ = क$_2$उ$_5$ न ओ$_3$ ह$_2$ + सै$_2$ ग ओ$_4$

(३) क$_2$ उ$_5$ न ओ$_3$उ$_2$ + ग ओ$_2$ + उ$_2$ओ = क$_2$ उ$_5$ न ओ$_2$ उ$_2$ + उ$_2$ ग ओ$_4$

(४) क$_2$उ$_5$ न ओ$_2$उ$_2$ = क$_2$उ$_5$न ओ + उ$_2$ओ

(५) क$_2$उ$_5$ न ओ + २ उह = क$_2$उ$_5$ नह$_2$ + उ$_2$ ओ

यह वायु रहित वर्तनसे स्रवित करली जाती है। यह तैलकी भांति द्रव पदार्थ है। इसका क्वथनाङ्क २५३° श है।

(द) वे विष जो नाक और गले पर अपना प्रभाव दिखाते हैं जिससे बड़ी पीड़ा, सिरदर्द, कै होना, छातीमें बोझसा प्रतीत होना, छींक आना, बेहोशी और शक्तिहीनता जो कि बहुत दिन तक बनी रहती है हो जाती है, उदाहरणार्थ, (क$_2$उ$_5$)$_2$ नह, द्विदिव्यील सन्नीणहरिद और (क$_2$ उ$_5$)$_2$ नकनो, द्विदिव्यील संन्नीण श्यामिद—पहिले द्विदिव्यील संन्नीण हरिद (क$_2$उ$_5$)$_2$ नह, का वर्णन किया जायगा—इस पदार्थ के बनानेको विधि बड़ी उलझनोंसे भरी है। इसके बनानेमें कोई साधारण रासायनिक पदार्थके बनानेकी विधि स्मरण होनेके पहले बड़े २ कठिन रंगोंके बनाने के विधि स्मरण हो आती है। इसको बनानेके लिए सर्व प्रथम दिव्यील संन्नीणकाम्ल, बानजावीन द्विअजीव हरिदको सैन्धक संन्नीणिदके साथ मिलानेसे बनाया जाता है। दिव्यील संन्नीणाकाम्ल गन्ध द्विओषिद

ग ओ₂, से अवकृत किया जाता है और इसमें जो पदार्थ मिलता है वह द्विअजीवनम् पदार्थसे मिलकर द्विद्विव्यील संक्षीणिकाम्ल बनाता है। इस पदार्थका फिर अवकरण किया जाता है। इससे जो पदार्थ मिलता है उदहरिकाम्लसे द्विद्विव्यील संक्षीणहरिदमें परिवर्तित किया जाता है। शुद्ध अवस्थामें यह पदार्थ ठोस होता है। इसका द्रवणाङ्क ७३° है यह पदार्थ बड़े जोरदार गोलोंमें भरा जाता है, जब ये गोले फूटते हैं जहरका एक हलका धुआं सा बन जाता है जो कि मामूली तरह गैसमास्कके अन्दर चला जाता है जिससे मास्कका निकालना अति आवश्यक होजाता है मास्कके निकाले जाने पर और दूसरे जहरीले पदार्थ बदनमें पहुँच जाते हैं।

(क₆उ₅)₂स क नो, द्विद्विव्यील संक्षीण श्यामिद यह पदार्थ द्विद्विव्यील संक्षीण हरिद से ... संपृक्त सैन्धक श्यामिद घोलके साथ ६०° गरम करनेसे मिलता है। यह पदार्थ प्राण घातक विष होनेके साथ-साथ छींक लाने वाला पदार्थ भी है। यह बड़े भयानक और जोरदार गोलोंमें भरा जाता है।

आँखफोड़े—Lachrymators—वे पदार्थ जो आँखों में अपना गुण दिखाते हैं। आँसू निकालने और आंखोंमें गुण दिखानेकी किसी पदार्थकी ताकत उस पदार्थके कितने सहस्रांशग्राम १००० घ श. म. हवामें आँखोंमें असर कर सकनेके लिये आवश्यक है यह जाननेमें मालूम की जाती है। अब कुछ ऐसे पदार्थोंका वर्णन किया जायगा।

बानजावील अरुण श्यामिद—(रुक₆उ₅कउ₂ क नो) टोलयीनसे युद्धके वास्ते सबसे ताकतवर बारूद बनानेके सिवाय बड़े २ जहरीले आँखोंमें आंसू निकलनेवाले पदार्थोंको बनाने वाली चीजे भी बनाई जाती हैं, जैसे बानजावील अरुणिद, बानजावील श्यामिद, बानजावील हरिद। प्रत्येक रासायनिक विद्यार्थी बना सकता है इसी कारण इसका आंसू निकालनेका गुण सब पर विदित है—इसको बनानेके लिए सिर्फ हरिन् और टोलयीनको मिला देना पड़ता है और फिर इस पदार्थके मद्यमें घोलमें सैन्धक श्यामिद मिलाया जाता है जिससे बानजावील श्यामिद मिलता है। इसका आंशिक स्रवण करनेसे काफी शुद्ध बानजावील श्यामिद मिल जाता है। इस पदार्थमें धूपमें अरुणिन मिलानेसे बानजावील अरुणिद श्यामिद मिलता है। यह शुद्ध हालतमें ठोस होता है इसका द्रवणाङ्क २९ है। इसकी ताकत ०·०००३ सहस्रांशग्राम है।

बानजावील अरुणिद—(क₆उ₅कउ₂रु) इसको बनानेकी विधि अति सरल है। अरुणिन् टोलयीनमें धूप में मिलाया जाता है। इसकी क्रिया यह है।

$$क_6 उ_5 कउ_3 + रु_2 = क_6 उ_5 कउ_2 रु + उरु$$

शुद्ध बानजावील अरुणिद शुद्ध हालतमें सफेद द्रव पदार्थ होता है। इसका क्वथनांक १९८°-१९९° है यह जर्मनोंका बड़ा प्रिय आंखोंमें असर करनेवाला पदार्थ है। वे बानजावील अरुणिद और वनी अरुणिद को मिलाकर महा समरमें +"टी स्टौफ" के नामसे काममें लाते थे। इसकी ताकत ०·००५०।

वनीन अरुणिद—तीन वनीन अरुणिद (o. m. p.) अरुणिद के (o. m. p.) वनीनके साथ धूपमें मिलानेसे बनाये जाते हैं। "ग्रीन टी स्टौफ" जिसको जर्मन काममें लाते थे ८०% वनीन अरुणिद और १२% सिरकोन अरुणिदके मिलाने से बनाया गया। "टी स्टौफ" और "ग्रीन टी स्टौफ" दोनों लोहेको खा जाते हैं इस वास्ते ये खास किस्मके बर्तनोंमें रखे जाते हैं। इसकी ताकत ०·००१८।

मार्टोनाइट Martonite— सिरकोन अरुणिद + सिरकोन हरिद) इनदोनोंका घोल जिसको मार्टोनाइट कहते हैं महासमरके समय बहुत काममें लाया गया। इसकी ताकत ०·००१२।

आँखोंमें असर करनेवाले जोरदार पदार्थोंमें अरुणिन् और हरिन्का होना अति आवश्यक है जितने भी ताकतवाले ये पदार्थ हैं साधारणतः सबमें अरुणिन् या हरिन् वर्तमान रहता है।

Vesicants—वे पदार्थ जो चमड़ीमें फोफले कर देते हैं जिनसे बड़े कष्टदायक घाव होजाते हैं इनका सबसे अच्छा उदाहरण (Dew of death) मौतका

पाला (Lewisite) या हरिद लनी द्विहरिद संची-णिद है। इस पदार्थका वर्णन किया जायगा—संचीणम् बहुत प्राचीन कालसे ज्ञात विषैला पदार्थ है—इससे बनाये हुए बहुत पदार्थ जीवमात्रके लिए प्राण घातक होते हैं। अलिकके संचीणम्के बहुतसे यौगिक पदार्थों के जो कि बहुतसे रोगोंकी उत्तम औषधी हैं बननेसे समरके वास्ते इस पदार्थसे बड़े २ विषैले पदार्थ बनानेकी नींव बंध गई। अरलिक और इसके साथियोंके शरीरमें इन पदार्थोंकी क्रिया मालूम करनेमें ही नहीं बल्कि इन पदार्थों के बनानेकी सैकड़ों विधि मालूम करने से इनसे समरके वास्ते विषैले पदार्थ बनाना सहज हो गया है। संचीणम्के यौगिक पदार्थों ने महा-समरमें बड़ी प्रधानता पाई और आशा है कि भविष्यमें जो काम इस ओर किया जायगा वह जो कुछ होगया है उसको बिलकुल ही ढक देगा—सर्विष गैसका गुण कितना ही भयानक प्रतीत हो यह फिर भी सर्व प्रथम ऐसा पदार्थ है जब ऐसे और पदार्थ काममें लाये जायगें तब और भी तीव्र और भयानक दृश्य दृष्टि-गोचर होंगे। उदाहरणार्थ इस बातका श्रीगणेश "मौत के पाले" (Dew of death) से समझिये। इस पदार्थ बनानेकी विधि सर्विष गैस बनानेकी विधि ही की तरह है। सर्विष गैस जैसा लिखा जा चुका है गन्धकहरिद $ग_२ह_२$ और ज्वलीलिन $क_२उ_४$, के मिश्रणसे बनती है। लिवीसाइट (क्योंकि पहिले पहल इसको लिविसने बनाया) को लिविसने संचीणम् त्रिहरिद् और सिरकीलिनके मिश्रणसे बनाया, सर्विष गैसके बनानेमें किसी उत्प्रेरक पदार्थकी आवश्यकता नहीं है परन्तु लिवीसाइटको बनानेके लिए स्फट हरिदकी आवश्यकता है। यह उत्प्रेरक पदार्थका काम करता है बिना इसके लिवि-इट नहीं बनती है। इसके बनानेके लिए सिरकीलिन ४०० भाग जल रहित संचीण त्रिहरिद और ३०० भाग जल रहित स्फटम्हरिद इस भाँति मिलाया जाता है कि ६ घण्टेमें १०० ग्राम उसमें सोख जाय, जब यौगिक प्रक्रियाका अन्त हो जाता है इसमें बर्फके समान ठण्डा गन्धकाम्ल मिलाया जाता है। तेलके समान जो पदार्थ इससे बनता है गन्ध-काम्लकी धारामें स्रवित किया जाता है। इस प्रक्रियामें तीन यौगिक पदार्थ बनते हैं। लिविसाइट यदि शुद्ध करनी हो तो आंशिक स्रवणसे की जाती है। इस प्रक्रियासे जो २ पदार्थ मिलते हैं ये हैं :

(१) १३७ ग्राम जिसने यौगिक प्रक्रियामें काम न लिया हो ऐसा संचीण त्रिहरिद, $चह_३$

(२) ४७ ग्राम β हरोलतील द्विहरो संचीणिन (लिविसाइट) क उ हः क उ च ह२

(३) ४४ ग्राम β β' द्विहरोद्विलतील हरो संची-णिन (क उ हः क उ)२ च ह

(४) १६४ ग्राम β β' β'' त्रिहरोत्रिलतील संची-णिन (क उ हः क उ)३ च

इस पदार्थको बनानेमें बड़े २ खतरे हैं। साधारणतः सब बातें जिनको विषैले और खुजलाइट पैदा करने वाले पदार्थोंके बनानेमें ध्यान करना पड़ता है, इस पदार्थके बनानेमें उनमें विशेषतः ध्यान देना पड़ता है इन खतरों के सिवाय जब अशुद्ध पदार्थ स्रवित किया जाता है, भयानक काण्ड हो जाते हैं जिससे सब बर्तन जिनमें यह क्रिया की जाती है टूट फूट टुकड़े २ हो जाते हैं और बनानेवाले व्यक्तिके भी प्राण महान् संकटमें पड़ जाते हैं, यह भयानक काण्ड स्फटम्के साथ इसका यौगिक पदार्थ बननेसे पैदा होता है।

β हरोलतील द्विहरो संचीणिन्के गुण—यह एक सफेद द्रव पदार्थ है। इसका क्वथनांक ९३° २६सह स्रांश मीटर दबाव पर यह पानी और हलके अम्लोंमें नहीं घुलता। कार्बनिक रासायनिक द्रवोंमें घुलजाता है हलके क्षारोंके घोलमें यह तुरन्त नष्ट हो जाता है और सिरकोलीन देता है। जब कर्बनचतुर्हरिद् कह$_४$ में इसके घोलमें अरुणिन् मिलाया जाता है तो इसका अरु-णिन्से यौगिक पदार्थ बन जाता है जिसका द्रवणांक १२२° है। लिविसाइट शरीरमें फोफला पैदा करनेवाले जिनमें असह्य वेदना उत्पन्न हो जाती है पदार्थोंमें वर्तमान समयमें सर्व प्रधान है। इसके हलके घोलकी थोड़ी ही बूंदे चमड़ी बड़े ही कष्टदायक फफोले पैदा करनेके लिए काफी हैं, सर्विष गैससे इसकी प्रधानता

का यह लक्षण है कि यह शरीरमें बहुत जल्द सोख ली जाती है और इस वास्ते इसका गुण अति ही शीघ्र होता है। इस पदार्थके एक प्रयोगमें तीन बूंदें चूहों-के शरीरमें पेटके ऊपर रखी गईं। १ और ३ घण्टेके बीचमें सब चूहे मर गये, यह अपना गुण गले, फेफड़े और नाकमें भी बड़ी तीव्रतासे दर्शाता है।

$\beta\beta'$ द्विहरो द्विलतील हरोसंज्ञीणिन द्रव पदार्थ है क्वथनांक १३०°।१३३°. २६ स.म. दबावमें, $\beta\beta'\beta''$ त्रिहरो त्रिलतील संज्ञीणम् यह भी द्रव पदार्थ है, इसका क्वथनांक १५१°—१५५° २० स० मि० दबाव परसे दोनोंही कम विषैले पदार्थ हैं परन्तु त्रिहरो त्रिलतील संज्ञीणिन्का फेफड़ोंमें सबसे तीव्र गुण होता है।

छिक्कन पदार्थ (Sternutatory)—छींक उत्पन्न करनेवाले पदार्थ उदाहरणार्थ द्विदिव्यील हरो संज्ञीणिन् (क$_6$उ$_5$)$_2$ चह, इसका वणन पहिले किया जा चुका है। विषैले पदार्थोंका असर दो बातों पर निर्भर है (१) उनकी मात्रा (२) वह समय जितनी देर तक यह पदार्थ फैला रहता है। इन दोनों ही बातोंका एक ही प्रकारका असर होता है उदाहरणार्थ एक व्यक्ति जब हवामें एक खास मात्रा क ओह$_2$ हो एक मिनटमें जितनी मात्रा इस पदार्थकी उसके शरीरमें जायगी तो दो मिनटमें भी उतनीही मात्रा उसके शरीरमें पहुँचेगी जबकि हवामें पहिले की आधी मात्रा ओह$_2$ की हो और शरीरकी दोनों ही हालमें एक ही दशा होगी। ज्यादे जगहमें फैलनेके लिए विषैला पदाथ काफी उड़न शक्तिवाला होना चाहिए और इसके साथ साथ ही यह भी होना चाहिए वह इतना ज्यादा उड़नशील न हो कि थोड़े ही समयमें हवामें सब लुप्त होजाय। इससे यह बात समझमें आजाती है कि एक ही ताकतवाले विषैले पदार्थ युद्धके मैदानमें एक ही भांति क्यों नहीं काम देते। वायव्य बहुत जल्द फैल जाते है विषैले वायव्य का बादल जिसमें ०·१°/० से ज्यादा विषैला पदार्थ हो नहीं बन सकता वायव्यकी इतनी मात्रा बहुत शीघ फैल जाती है जिससे विषैला गुण बिलकुल ही कम हो जाता है उदस्यामिकाम्ल, उकनो (H C N) बड़ा विषैला पदार्थ होने पर भी बहुत ही उड़नशक्तिवाला है इसलिए युद्धके मैदानमें यह उतना लाभदायक नहीं हो सकता, फौसजीनके भारी होनेके सबबसे इसका हवामें वितरण कठिन हो जाता है।

—०:०—

बिजलीकी लहरों (तरंगों) द्वारा खबर भेजना

अथवा

बिना तार खबर भेजना

(श्री बाबूराजजी गुप्त एम० एस०-सी०)

नवीन आविष्कारोंमें विद्युत तरंगों द्वारा आकाशमार्गसे सांकेतिक अथवा मौखिक समाचार भेजना बहुत ही कौतूहल पूर्ण है रेल, जहाज़, खुश्कीवाले तथा सामुद्रिक तारने जहाँ पहिले सहस्रों मीलके अन्तर को घटाकर केवल थोड़े ही घण्टों अथवा दिनोंमें तय हो जाने वाला सुगममार्ग बना दिया था अब बिजलीकी लहरोंको समचार भेजनेके काममें लानेसे बड़ी दूर दूरके लोगों मित्रों और सैकड़ोंमें इसी प्रकार बातें होती हैं जैसी कि शहरमें टेलीफोन पर बातें होती हैं। जिस दिन बंबईमें परिविस्तरणस्टेशन वाइसराय साहबने खोला और (सम्राट) को सन्देसा भेजा तो ३८ सेकंडमें बातचीत समाप्त होगयी। दस मिनटसे कम समयमें लण्डनसे मेलबोर्न (Australia) को संदेसा भेजकर उत्तर मंगाया जा सकता है। संवाददाताका न केवल शब्द ही सुनाई पड़ता है वरन् उसका रूप रङ्ग भी दिखाई देना संभव होगया है। यद्यपि इस कलाका जन्म हुए पूर्ण चालीस वर्ष समाप्त होचुके और लगभग २५ वर्षसे यूरोप तथा अमेरिकामें इसका व्यावहारिक प्रयोग भी हो रहा है किन्तु इसकी अधिकांश उन्नति गत यूरोपीय युद्धमें हुई और पिछले तीन चार वर्षसे भारतमें भी इसकी धूम धाम होचली है। कल-

कत्ते और बम्बईमें प्रति दिन सायंकालको क्लबघरोंमें बाजा, गाना (Musical Concerts)) तथा नित्य प्रति के समाचार सर्व साधारणको सुनाए जाते हैं। धनी जन अपने मकानोंमें बैठे हुए ही इसका आनन्द लूट सकते हैं। अब थोड़े ही दिनोंकी बात है कि इस का प्रचार भारतके अन्तरीय प्रान्तोंमें भी हो जायगा।

विज्ञानके पाठकोंको यह बताना कुछ आश्चर्य-प्रद न होगा कि वायुसे भी अति सूक्ष्म एक और पदार्थ है जो सर्वत्र व्यापक है और जिसे आकाश (ईथर) कहते हैं। वास्तवमें पदार्थ शब्द की जो परिभाषा वैज्ञानिकोंने की है वह पूर्णतया आकाश पर लागू नहीं होती किन्तु उसके अस्तित्वके विषयमें हमारे पास अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद हैं। यह एक बहुत पुराना और पक्का सिद्धान्त है और अनेक कौशल-युक्त प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हो चुका है कि ताप और प्रकाश, उन तरंगों द्वारा जो आकाशमें उत्पन्न होती हैं एक पिण्डसे दूसरे पिण्ड तक गमन करते हैं। जिस प्रकार कि तालाबके अन्दर पानीके पृष्ठ पर कङ्कड़ अथवा अन्य कोई वस्तु डालनेसे वृत्ताकार लहरे उत्पन्न होजाती हैं और चलते चलते जब वे किसी ऐसी वस्तुसे टकराती हैं जो कि पानीके ऊपर तैर रही हो तो वह वस्तु भी डगमगाने लगती है और पानीके साथ उसी जगह पर कभी ऊपर को उठती है और कभी नीचेको गिरती है। ठीक इसी प्रकार विद्युत् चुम्बकीय तरंगें (लहरें) उचित रीतिसे आकाश उत्पन्न की जा सकती हैं जो बड़े वेगसे यानी एक लाख छासी हजार १८६००० मील प्रति सैकण्डके वेगसे दशों दिशाओंमें फैल जाती हैं। जब वे किसी ग्राहक यन्त्र (Receiver) के हवाई तार (aerial) तक पहुँचती हैं उसमेंकी बिजली झूलने लगती है इस हवाई तारके साथ ग्राहकके अनेक भाग इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि उनमें परस्पर विद्युतीय और चुम्बकी प्रभाव पड़ता रहता है इसलिए यह झूलना अपना रूप बदलता हुआ अन्तमें या तो काग़ज़के फीते पर टेलीग्राफिक चिन्ह बना देता है अथवा टेलीफोनकी डिबियामें गर, गिटके शब्द उत्पन्न कर देता है। यदि प्रेषक यन्त्र (Transmitter) में माइक्रोफोन (Microphone) लगा हुआ है तो ग्राहक यन्त्रमें माइक्रोफोनके सामने वाले शब्द ज्यों के त्यों उतर आते हैं।

यहाँ पर यह कह देना अनुपयुक्त न होगा कि ताप वा प्रकाशकी लहरों और बिजलीकी लहरोंमें जाति-पाँतिका कोई भेद नहीं है। दोनों लहरे वास्तवमें एक ही हैं एकही प्रकार उत्पन्नकी जा सकती हैं—बिजली झूलना द्वारा भेद केवल इतना है कि ताप और प्रकाश की लहरें बहुत छोटी होती हैं यानी एक शतांशमीटर की दूरीमें कई सहस्र लहरें समा सकती हैं किन्तु समाचार विषयक लहरें गजों तथा मीलों लम्बी होती हैं। छोटी से छोटी लहरें जिनकी उपगिता के विषयमें आजकल प्रयोग हो रहे हैं, १५ (पन्द्रह) मीटर लम्बी हैं। जो प्रेषक यन्त्र हम समाचार भेजनेके लिये उपयोगमें लाते हैं उसे हम आँखसे देख सकते हैं, हाथसे छू सकते हैं तथा तोड़ मरोड़ कर फिरसे जैसा चाहें बना सकते हैं किन्तु जिन प्रेषक यन्त्रों द्वारा ताप तथा प्रकाशकी लहर उत्पन्न होती हैं इतने सूक्ष्म हैं कि वे खुर्दबीनकी सहायतासे भी दिखलाई नहीं पड़ सकते। वास्तवमें वे पदार्थोंमें रहने वाले बिजलीके अणु हैं।

समाचार भेजनेके लिये मुख्यतः तीन चीजोंकी आवश्यकता होती है। एक प्रेषक यन्त्र और उससे सम्बन्धित् हवाई तार, दूसरा आकाशका माध्यम और तीसरा ग्राहक यन्त्र और उससे सम्बन्धित हवाई तार।
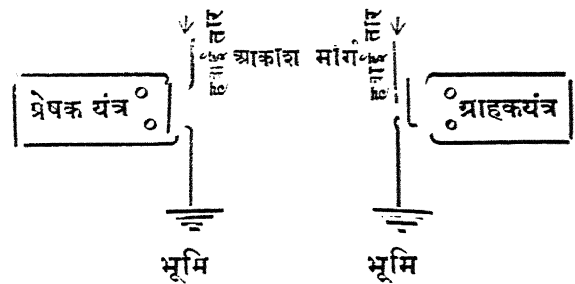
चित्र नं० १

हम यहाँ पर तत्कालीन उन्नति शील (develeped) प्रेषक यन्त्रका विस्तार पूर्वक वर्णन न करके केवल यह कह देना पर्याप्त समझते हैं कि प्रेषक यन्त्र प्रायः दो प्रकारके होतेहैं। एक तो वही पुरानी चालका कि जिससे प्रत्येक बार कुंजी (स्विच) दबाने पर हीयमान (damped) तरंगोंके समूहोंकी एक परिमित संख्या उत्पन्न होती है। इसके मुख्य भाग एक विद्युत् संग्राहक, (Condensr) एक तांबेके तारकी साधारण बेठन, आवेश बेठन (Coil inductance) हैं। बेठनका एक सिरा संग्राहकके एक पत्रसे जोड़ देते हैं और दूसरा सिरा दूसरे पत्रसे न जोड़ते हुए बीचमें थोड़ा टूटा हुआ भाग (air gap) रहने देते हैं। साधारणतया विद्युत् प्रवाहके हेतु यह भाग बहुत प्रबल रोधक (Insulator) है किन्तु जब संग्राहक किसी प्रकार पूर्ण विद्युन्मय (fully charged) कर दियाजाता है तब इस (gap)में होकर एकतारसे दूसरे तारको चिन्गारी निकल जाती है और इस हवाके भाग (gap का लगभग सारा रोध (Resistance) लोप होजाता है। परिणाम यह होता है कि संग्राहक बेठन इत्यादिके घेरे चक्र (circuit) में बहुत थोड़े समयके लिये बिजली झुलने लगती हैं। ऐसे प्रेषक यन्त्रका विस्तृत परिचय नीचेके चित्र नं० २ से हो जायगा।
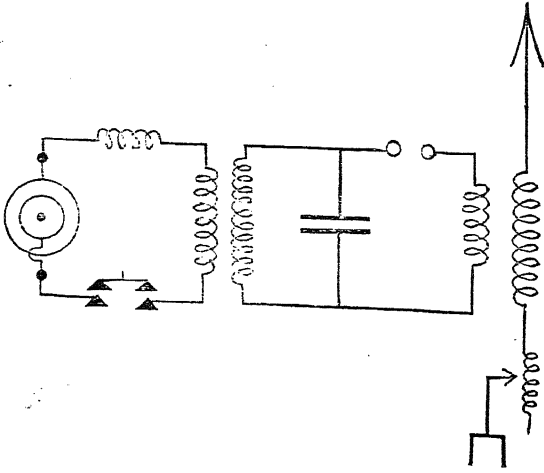
चित्र २

इसके मुख्य तीन भाग हैं। सर्व श्रेष्ठ बीचका भाग है जो स' ब' ह के मेलसे बना है। इसीमें बिजली झूलने लगती है और स्पन्दन प्रथम यहीं उत्पन्न होता है। दाहिने ओर हवाई तार वाला घेरा चक्र (circuit) है। त हवाई तार, स" विद्युत संग्राहक जिसकी समाई (capacity) घटाई बढ़ाई जा सकती है और ब" आवेश बेठन (Inductance) क्रमसे जुड़े हुए हैं। ब" का दूसरा सिरा भूमि-संबन्धी तारसे जुड़ा हुआ है। ब' ब" दोनों बेठन एक दूसरेके समीप अथवा एक दूसरीके भीतर रक्खी जाती हैं ताकि स'ब'ह चक्रमें स्पन्दन आरम्भ हो तो त स" ब" भ में भी विद्युत स्पन्दन होने लगे। स" की समाईको घटा बढ़ा कर दोनोंघेरों चक्रोंकी स्पंदन आवर्तनता (frequency of oscillation) बराबर कर दी जाती हैऔर हवाई तार वाले चक्र (घेरे) में बड़ा प्रबल स्पन्दन होने लगता है। इस स्पन्दनके कारण आकाश (ईथर) में विद्युत चुम्बकीय तरंगे उत्पन्न होजाती हैं जो समान अथवा न्यूनाधिक प्रबलतासे सब दिशाओंमें फैलने लग जाती हैं। चित्रका तीसरा भाग जो ह से बाईं ओर है संग्राहक स' को विद्युन्मय करता (भरता) रहता है। ल एक उत्पादन (आवेश) बेठन (Induction coil) अथवा ट्रांसफार्मर (Transformer) है। अ एक बैटरी (Battery) अथवा लघु आवर्तनता का (Low frequency) झूलन धाराजनक(alternating E.M.F.)(Source) है। क एक साधारण स्विच है। जब इसको दबाते हैं तो ट्रांसफार्मर उ अपना कार्य आरम्भ करता है और स' ब' ह चक्र घेरेमें स्पन्दन होने लगता है। कुञ्जीके खुल जाने पर संग्राहक स का विद्युन्मय होना बन्द होजाता है और साथ ही साथ विद्युत स्पन्दन भी बन्द होता है। च और च तागा या रेशम लपटे हुए ताँबेके तारकी अधिक (choke coils) चक्र वाली बेठनें (घोंट) है जो संग्राहक स' के विद्युत्मय होनेमें तो कोई बाधा नहीं डालती किन्तु उच्च आवर्तनता (High frequency) विद्युत्प्रवाहको उ की ओर नहीं आने देती। यह बड़े महत्वकी बात है कि जहाँ सीधी धार (unidirectional current)

के लिये एक संग्राहककी बाधा अनन्त (Infinity) है वहाँ उच्च आवर्तनताके प्रवाहके लिए इसकी बाधा बहुत थोड़ी है। इसके विपरीत वेठनका हाल है कि सीधी धाराके हेतु इसको कुछ भी बाधा नहीं होती किन्तु जैसे जैसे स्पन्दन की आवर्तनता बढ़ती जाती है इनकी बाधा भी ज़ोर पकड़ती जाती है। यदि वेठन के भीतर लोहेके पतले तारोंका गट्ठा डालदें तो फिर इसका प्रभाव कई गुणा अधिक प्रबल होजाता है।

स' ब' ह (चि० २) जैसे चक्रमें विद्युतका स्पन्दन ह्रीयमान (damped) होता है और उस का कम्पविस्तार (amplitude) बहुत शीघ्र कम हो जाता है। अतएव हवाई तार (aerial) द्वारा जो तरङ्ग समूह आकाशमें प्रवेश करते हैं वे भी ह्रीयमान होते हैं। प्रति सैकिण्ड ह (gap) में होकर जितनी बार विद्युतकी चिन्गारी (spark) निकलती है उतने ही तरङ्ग समूह पैदा होते हैं। तारके सांकेतिक अक्षर विन्दु तथा लकीरोंके भिन्न-भिन्न मेल से बनते हैं। अतएव लकीरके लिये चावीको देरतक दबाते हैं और अधिक तरंग समूह पैदा होते हैं। विन्दुके लिये चाबी कम समय तक दबाई जाती हैं और तरंग समूहों की संख्या भी न्यून होती है। नीचेके चित्रमें एक विन्दु और एक लकीर का रूप तरग समूहों द्वारा प्रकट किया गया है।

चित्र ३

कई त्रुटियोंके कारण ऊपर लिखे हुए प्रेषक यन्त्र का प्रचार दिनों दिन घटता जा रहा है और कुछ आश्चर्य नहीं यदि थोड़े दिनोंके बाद यह केवल अजायब घरोंमें ही दिखलाई दे अथवा इसका उल्लेख केवल स्कूली पुस्तकोंमें ही रह जाय। आजकल जो प्रेषक यन्त्र व्यवहारमें लाए जारहे हैं उनसे समानकम्पविस्तार की लगातार लहरें (Continuous wave of Constant amplitude) निकलती हैं (विन्दुके लिये तरंगोंकी संख्या कम होती है और लकीरके लिये अधिक तरंगे इस प्रकार की होती हैं जैसा कि चित्र न० ४में दिखाई गई हैं।
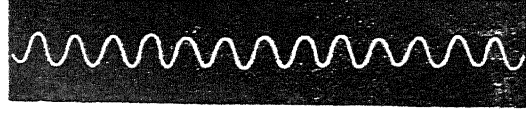
लकीर

चित्र ४

नवीन प्रकारसे प्रेषक यन्त्रका वर्णन हम पीछे करेंगे पहिले यह समझना चाहिये कि ग्राहक यन्त्रमें संकेत किस प्रकार ग्रहण किये जाते हैं। हवाई तार वाला चक्र प्रेषक और ग्राहक दोनोंमें प्रायः एकसा है। जब यह तरंग समूह किसी हवाई तार तक पहुँचते है तो उसमेंअपनी आवर्तनता (their own frequency का विद्युत् स्पन्दन पैदा कर देती हैं। यदि ग्राहक स्थानके हवाई तार वाले चक्रकी आवर्तनता उतनी ही है जितनी कि उस पर पड़ने वाली तरंगोंके समूहोंकी तब तो ग्राहक हवाई तारमें बड़ा प्रबल स्पन्दन होता है अन्यथा दोनों आवर्तनताओंमें थोड़ासा भी अन्तर होनेसे स्पन्दन बहुत ही मन्द अथवा बिल्कुल नहीं होता। इन पंक्तियोंके पढ़नेसे पाठकोंको विदित हो गया होगा कि यद्यपि विद्युत् चुम्बकीय तरंगें सर्वत्र एक ही वेगसे फैल जाती हैं किन्तु सभी ग्राहक यन्त्र उनसे समाचार ग्रहण नहीं कर सकते। यदि प्रेषक यन्त्रसे निकलने वाली तरंगोंकी आवर्तनता अपने सहयोगियोंके अतिरिक्त अन्य लोगोंसे गुप्त रक्खी जाय तो यह सम्भव हैकि अपना भेद दूसरों पर प्रगट हुए विना आकाश मार्ग द्वारा भी समाचार भेजे जा सकते हैं।

ग्राहक हवाई तारमें स्पन्दन तो अवश्य आरम्भ हो जाता है किन्तु वह उच्च आवर्तनता वाला होनेके कारण न तो टेलीफोनकी डिब्बीमें शब्द उत्पन्न कर सकता है और न तार छापनेकी मशीन (Morse inker) को चला सकता है। यदि २०० मीटरकी

लम्बाई वाली तरंगों द्वारा बात चीत होरही है तो तरंगोंकी आवर्तनता दश लाख हुई किन्तु टेलीफोनकी डब्बीका पर्दा जिसके कम्पनसे शब्द उत्पन्न होता है एक सैकंडमें एक या डेढ़ हज़ारसे अधिक कम्पन नहीं कर सकता अतएव बिना किसी अन्य यन्त्रके माध्यम के टेलीफोन तार रहित समाचारोंको ग्रहण करनेमें असमर्थ हैं। गत ३० वर्षोंमें ब्रेन्ले, सर आलीवर लाज, मारकोनी, अध्यापक फ्लेमिङ्ग, इत्यादि ने इस कठिनाईको दूर करनेके अनेक उपाय निकाले और प्रयोगमें भी लाए गए किन्तु आजकल केवल दो प्रकारके ग्राहक यन्त्र प्रचलित हैं। दोनोंमें जो अधिक सरल है और जिसका प्रचार दूसरेकी अपेक्षा कई वर्ष पहिले हुआ चित्र ५ में दिखाया गया है।
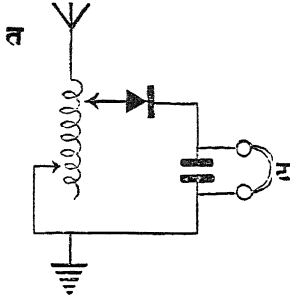
चित्र ५

१—त स' ब भ हवाई तार सम्बन्धी चक्र है।

२—स' स" दो विद्युत् संग्राहक हैं।

३—स' संग्राहक की समाई थोड़ी और घटाई-बढ़ाई जा सकती है।

४—ट टैलीफ़ोन की डिब्बी है।

५—क' कारबोरण्डम, गैलीना, जिनकाइट इत्यादिमेंसे किसी एक का रवा (Crystal) है।

इन रवोंका यह स्वभाव है कि विद्युत् प्रवाह के हेतु किसी एक दिशामें दूसरी दिशाकी अपेक्षा ये अधिक रोध प्रस्तुत करते हैं। जब विद्युत् चुम्बकीय तरंगें त स' ब भ चक्रमें स्पन्दन उत्पन्न करती हैं तो क ट में होकर आवर्तनता वाली धारा दिशा पलटती हुई बहने लगती है किन्तु रवेके कारण एक ओर उसका प्रवाह अधिक प्रबल होता है और दूसरी ओर कम। अतएव प्रारम्भिक स्पन्दन का रूप कि जो तरङ्गों द्वारा उत्पन्न हुआ था टेलीफ़ोन वाले चक्रमें एक-दिक्-प्रधान (Rectification) हो जाता है जैसा कि नीचेके चित्रसे विदित है।
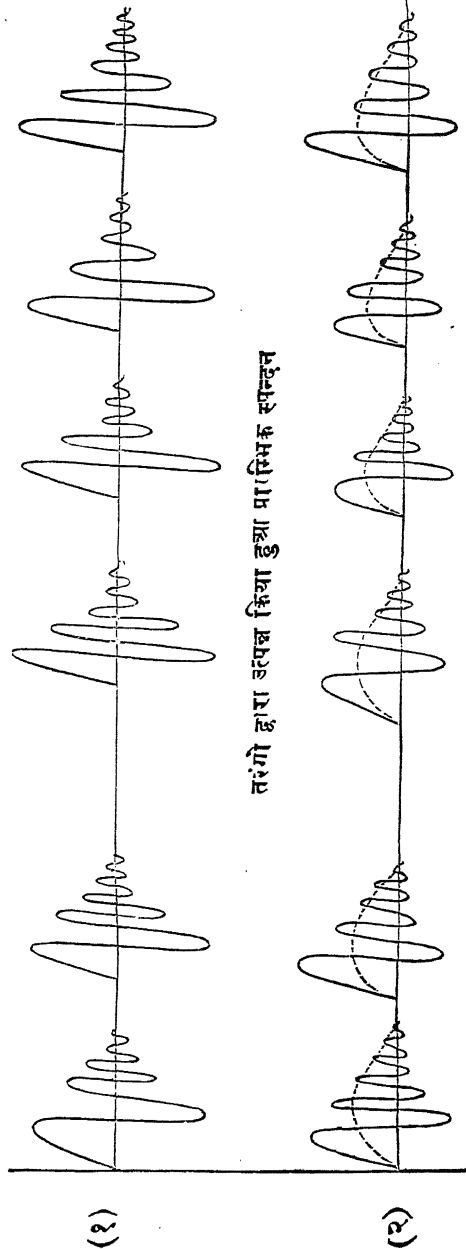
चित्र ६

इन स्पन्दनोंका जो प्रभाव निदान टेलीफ़ोनके ऊपर पड़ता है उसको बिन्दुमयी वक्र रेखायें प्रदर्शित कर रही हैं। तात्पर्य यह कि प्रत्येक तरंग समूहके लिये टेलीफ़ोनका परदा एक बार हिलता है। अतएव जितने तरंग समूह एक सैकेण्डमें प्रेषक यन्त्रसे निकल रहे हैं उसी आवर्तनता (frequency) का स्वर टेलीफ़ोनमें पैदा हो जाता है। बिन्दु और लकीरका भेद शब्दके अल्प अथवा दीर्घ होनेसे पता लग जाता है।

यह पहिले ही बताया जाचुका है कि किसी प्रेषक यन्त्रसे निकलने वाले तरङ्ग समूहोंकी संख्या उस यन्त्र की विद्युत-चिनगारियों (Spark frequency) की संख्याके बराबर होती है अतएव भिन्न भिन्न स्थानों से जो समाचार आते हैं और उनके द्वारा टेलीफ़ोनमें जो शब्द उत्पन्न होते हैं उनका स्वर भी प्रत्येक स्थानके लिये पृथक् पृथक् होना चाहिये। यही कारण है कि एक बराबर लम्बी लहरोंका प्रयोग करनेवाले दो या दोसे अधिक स्थानोंसे एक समयमें एकही ग्राहक यन्त्रमें स्पष्ट समाचार सुनाई दे जाते हैं।

यह ग्राहक यन्त्र अधिक शक्तिशाली नहीं होता है। दूरके स्थानोंसे समाचार ग्रहण करनेमें यह नितान्त असमर्थ है अतएव इनका प्रचार भी बहुत परिमित है। जितने उत्तम प्रकारके ग्राहक यन्त्र आजकल प्रयोगमें लाए जाते हैं, प्राय उन सबमें थर्मायुनिकवाल्व (thermionic valve) इस्तैमाल होते हैं। यह एक अति अद्भुत वस्तु है। देखनेमें तो यह एक साधारण बिजलीके लेम्प जैसी प्रतीत होती है किन्तु है बड़े चमत्कारकी। वास्तवमें जितनी उन्नति तार रहित समाचार भेजनेकी रीतिमें थर्मायुनिक वाल्वके प्रादुर्भाव (Invention) के पश्चात् और उसके प्रयोगसे हुई उतनी उन्नति उसके बिना अनुमानमें नहीं आसकती। इसने न केवल ग्राहक यन्त्रकी शक्तिको बढ़ाया है बल्कि प्रेषक यन्त्रका तो बिल्कुल स्वरुप ही बदल डाला और उसको अधिक उपयोगी कर दिया है। मन्द तरंग समूहोंके बजाय अब प्रेषक यन्त्रसे समान कम्प विस्तारकी लहरें निकलने लगीं जो पहिलेकी अपेक्षा कहीं अधिक दूरी तक समाचार पहुँचाने लगीं। समाचारको गुप्त रखनेमें पहिले जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था अब वे बहुत घट गई हैं। इसी प्रकार समाचारका स्पष्टतया ग्रहण करना पहिले बहुत कठिन कार्य्य था और समीपवर्ती प्रेषक स्थान (Transmitting Station) सदैवही दूरवर्ती स्थानों से समाचार ग्रहण करनेमें बाधा डाला करते थे किन्तु यह कठिनाई अब बिलकुल दूर होगई। सबसे महत्व की बात तो यह है कि थर्मायुनिक वाल्वके प्रचारसे पूर्व केवल सांकेतिक समाचार भेजे जाते थे किन्तु इसके प्रयोग द्वारा साधारण टेलीफ़ोनोंकी तरह बातचीत करना सम्भव होगयाहै। आजकल जो परिवितरण (Broadcasting) की चहल पहल देखनेमें आती है यह सब इसीके प्रचारका फल स्वरूप है। स्थान संकुचित होनेके कारण थर्मायुनिक वाल्व और इसके उपयोगका वर्णन आगामी अंकमें किया जायगा।

धब्बे छुटानेका रसायन

(ले० चन्द्रप्रकाशजी अग्रवाल बी० एस-सी०)

तंतुओंकी बनी हुई वस्तुओंके धोने और उनकी हिफ़ाजतके सम्बन्धमें धब्बोंका छुटाना एक आवश्यक और जानने योग्य बात है। वर्त्तमान वस्त्रधावनशाला और शुष्क शोधनके कार्यालय भिन्न-भिन्न प्रकारके तंतुओंसे पृथक् पृथक् भांतिके धब्बे छुड़ानेके लिए वैज्ञानिक रीतियोंका उपयोग कर रहे हैं। बहुतसे उपाय घरमें सरलतासे और थोड़ेसे ही व्ययमें किये जा सकते हैं। धब्बे छुड़ानेके विज्ञानको समझनेके लिए (१) धब्बे या दागकी रासायनिक प्रकृति (२) धब्बे और उसके छुड़ानेके लिए उपयोगी रसोंकी प्रक्रियाओं और (३) रसका उस तन्तुके ऊपर प्रभाव जिसके ऊपर दाग पड़ा हो जानना अत्यन्त आवश्यक है।

धब्बे छुड़ानेके साधारण रस—दाग़ छुड़ानेके साधारणरस निम्नलिखित रूपमें विभाजित किये जा सकते हैं :—

१—अभिशोषक—वह पदार्थ जोकि ब्लाटिङ्गपेपर की भाँति दाग़को सोख लेते हैं।

२—घोलक—वह पदार्थ जो कि दाग़को घोल कर छुड़ा देते हैं।

३—ऐसे रासायनिक रस जोकि दाग़से प्रक्रिया करके ऐसे यौगिक बनाते हैं जो पानीमें घुल जाते हैं अथवा जिनका कोई रङ्ग नहीं होता, या जो दोनों प्रकारके होते हैं।

साधारण अभिशोषक रस:—

इतिहासके आदि कालसे वसा (grease) या तैल पदार्थका ऊनी वस्तुओंसे प्राकृतिक मिट्टी द्वारा छुड़ाना, तन्तु व्यवसायमें उपयोग किया जाता रहा है। थोड़ीसी प्राकृतिक मिट्टी उस स्थान पर जहां वसा लग जाती है रगड़ी जाती है और जब यह मिट्टी चिकनी हो जाती है तो ताजी मिट्टी फिर रगड़ी जाती है। इस भांति सब चिकनाहट छूट जाती है। अन्य अभिशोषक जो इसी भाँति काममें लाए जाते हैं यह मगनीसम फ्रेञ्च चाक और टैलकम पाउडर हैं

साधारण घोलकः—कुछ दाग़ ठंडे, गर्म या साबुनके पानीमें घुल जाते हैं। बहुतसे दाग़ ऐसे पदार्थके बने होते हैं जो कार्बनिक घोलकों जैसे सिरकोन (ऐसीटोन) बानज़ावीन, कर्बन चतुर्हरिद, क्लोरोफार्म या हरापिपील, ज्वलक (ईथर), मद्य, गैसोलीन, तारपीन इत्यादि में घुलते हैं।

साधारण रस:— ऐसे दाग़ जिन पर अभिशोषकों या घोलकोंका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, कई रसोंसे छुड़ाये जा सकते हैं। यह रस दाग़के पदार्थसे प्रक्रिया करके ऐसे यौगिक बनाते हैं जो या तो रंगहीन होते हैं या घुल जाते हैं या दोनों प्रकारके इस भांतिके रसों में निम्नलिखित वर्णन करनेके योग्य हैं।

१—हरिन् जलः— यह ओषद कारक रसका काम करता है और रंगीन कार्बनिक यौगिकोंको ओषदीकृत करके रंगहीन यौगिक बना देता है। किसी उपहरितका घोल भी काममें लाया जा सकता है। परन्तु हरिन्-जल या उपहरितके घोलको उपयोग करते समय एक बातका ध्यान रखनी चाहिए। जिस तन्तुको रंगहीन करना हो उसे विपरीत हर (antichlor) के घोलसे भिगोनेके बाद पानीसे खूब धोना चाहिए। यदि ऐसा न किया जाय तो फ़ालतू हरिन् तन्तुके डोरेको गला डालेगी। सैन्धकगन्धको गन्धेत (थाओ सल्फेट) साधारणतः विपरीतहर उपयोग किया जाता है। हरिन्के नाशकारी प्रभावके कारण रेशम और ऊनके साथ न तो हरिन् न कोई उपहरित ही उपयोगमें लाया जा सकता है।

हरिन् संपृक्त चूनाः—चूंकि हरिन् जल कठिनाईसे तय्यार होता है और अस्थायी होता है, इसलिए उप हरित विशेषतः हरिन् संपृक्त चूना किसी अम्लके साथ रंग उड़ानेके लिए इस्तेमाल किया जाता है। अम्ल उस चूनेके साथ हरिन् देता है जिससे कि धब्बेका रंग उड़ जाता है यह दोनों एकके बाद दूसरे स्याही-या और चीज़ के धब्बों पर लगाने चाहिए।

जावेल जलः—व्यवसायिक रंग विनाश प्रक्रियामें जावेल जलका भी इस्तेमाल किया जाता है। यह पांशुज उदौषिद (कास्टिकपोटाश) में हरिन् प्रवाहित करनेसे या हरिन् संपृक्त चूनेके घोलको सैन्धक कर्बनेतके घोलसे प्रभावित करनेसे बनता है।

पांशुज परमांगनेत—यह यौगिक बहुतसे रंगके धब्बोंके साफ़ करनेके लिए सफलता पूर्वक उपयोग किया जा सकता है। इसमें हरिन्से यह विशेषता है कि यह कोमल रेशोंको हानि नहीं पहुँचाता है इस वस्तुके लगानेसे साधारणतः एक उदौषिदके अवक्षेपसे भूरे २ दाग़ बन जाते हैं परन्तु किसी निर्बल अम्ल [जैसे काष्ठि काम्ल (oxalic acid)] के लगानेसे यह आसानीसे साफ़ हो जाते हैं।

उदजन परौषिद— बहुतसे कोमल तन्तुओंके साफ़ करनेके लिए जो हरिन्से नष्ट हो जाते हैं, उदजन परौषिद अक्सर उपयोगमें लाते हैं। यह प्रबल ओषदकारक वस्तु है व्यापारिक उदजन परौषिदमें थोड़ा सा अम्ल रहता है जिससे वह जल्दी विभाजित न हो

जाय। जब यह वस्तु काममें लाई जाती है तो इस अम्लीय घोलको शिथिल करनेके लिए टंकण (borax) या सैन्धक-शैलेत डालते हैं।

गन्धक द्विओषिद—बहुतसे यौगिकोंके दाग गन्धकद्विओषिदों के लगानेसे साफ हो जाते हैं। जहां हरिन् हानिकारक होती है, यह वस्तु काममें लाई जा सकती है, परन्तु कुछ कारणोंसे यह फलीभूत वस्तु नहीं है।

विशेष दाग और उनका छुड़ाना

अम्लके दाग—किसी क्षार जैसे अमोनिया, टंकण सोडा घोलके तत्काल लगानेसे यह शिथिल किए जा सकते हैं।

क्षारोंके दाग—तेज क्षारके धब्बे भी तन्तुओंको गला डालते हैं। उन पर हलके अम्ल जैसे सिरकाम्ल, काष्ठिकाम्ल या नीबूके रस इत्यादिके लगानेसे उनका क्षारीय प्रभाव नहीं होने पाता।

नीलके धब्बे

१—ठंडे पानीमें थोड़ा सिरका डालकर वस्तुको उसमें भिगो दे।

२—गरम पानी और साबुनसे मलो।

चायके धब्बे

१—पानीमें भिगो दो।

२—औटते पानीसे मलो।

३—किसी रंग विनाशक रससे प्रभावित करो

अगूंरके रसके दाग

१—धब्बे के ऊपर गरम पानी डालो।

२—नीबूके रससे गीला करके धूप में रखो

३—पानीमें उबालो फिर ३% नीबूके लवणके घोल में उबालो.

चिकनाइट के दाग

१—गरम पानी और साबुनसे साफ करो

२—ज्वलक, गैसोलिन, मद्य, कर्बन चतुर्हरिद इत्यादि से भिगोओ

नैलिन्के दाग

१—पानीसे धो डालो

२—सैन्धक गन्धित, सैन्धक गन्धको गन्धेन, गन्धकाम्लके घोलमें भिगोदो

देशी रोशनाईके दाग

१—अधिक पानीमें लेकर मथलो

२—दागको चर्बीसे संयुक्त करदो, और खूब मलो, चर्बीकी चिकनाइट का ऊपर बताये हुए ... कोसे दूर करलो

निशान लगानेकी स्याही

सैन्धक गन्धको गन्धेन या गन्धकाम्लमें देर तक भिगोओ और खूब जोरसे रगड़ो।

लिखनेकी रोशनाई

१—काष्ठिकाम्ल सिरका या साबुनके घोलमें जिसमें मुक्तक्षार हो भिगोओ

२—पांशुज पर मांगनेतके पश्चात् काष्ठिकाम्ल लगाओ।

लोहे का मोरचा

नीबूका रस, सिरका या काष्ठिकाम्ल या बहुत हलके उदहरिकाम्लसे साफ़करो

पेण्ट—तारपीन या क्लोरोफार्ममें भिगोवो

वार्निश—मद्य या बानजावीनमें भिगोनेसे

मोम—बानजावीन, ज्वलक, या मिट्टीके तैलमें भिगोकर कसकर मलो।

स्फुर

(Phosphorous)

[लेखक श्री सत्य प्रकाश एम. एस-सी.]

वर्त संविभागके पंचम समूहके तत्वोंमें नोषजनके पश्चात् स्फुर तत्व आता है। नोषजन और स्फुर के गुणोंमें साधारणतः बहुत भेद प्रतीत होता है क्योंकि नोषजन स्वयं ओषजनके संसर्ग से जल नहीं उठता है पर स्फुरके बड़े बड़े टुकड़े ओषजनके संसर्गसे साधारण वायुके तापक्रमपर जलने लगते हैं। छोटे छोटे टुकड़े भी ओषजनसे प्रभावित होते रहते हैं, और यदि अंधेरेमें देखा जाय तो इन छोटे छोटे

टुकड़ोंसे हरी हरी रोशनी निकलती दिखायी पड़ेगी। इस गुणके कारण ही इस तत्वका नाम 'स्फुर' रखा गया है (स्फुर=चिनगारी)।

सं० १७२६–३१ वि० के लगभग हामबर्गके एक वैद्य, ब्राण्ड ने दैवयोगके मूत्रके वाष्पभूत करके उसके साथ बालू और कोयला मिलाकर स्रवण करना आरम्भ किया। इस प्रक्रियामें उसे ऐसा पदार्थ मिला जो अंधेरेमें भी चमकता था। यह पदार्थ 'स्फुर' था। मूत्रमें सैन्धक अमोनियम स्फुरेत होता है जो गरम करनेसे सैन्धक-मध्य-स्फुरेत, सैस्फुओ$_3$, में परिणत हो जाता है। इसका अवकरण कोयले द्वारा निम्न प्रकार हो जाता है:—

२ सै स्फु ओ$_3$ + ४ क = सै$_2$ क ओ$_3$ + २ स्फु + ३ क ओ

इस प्रकार स्फुर प्राप्त हो जाता है। सं० १८२७ वि० में 'गान' वैज्ञानिक ने हड्डियोंमें खटिक स्फुरेत की विद्यमानता देखी और शीले ने हड्डियोंकी राखमें स्फुर प्राप्त किया। सं० १८३४ वि० में लवाशिये ने स्फुरको तत्व सिद्ध कर दिया।

प्रकृतिमें स्फुर मुक्त अवस्थामें नहीं प्राप्त होता है; अधिकतर लवणोंके रूपमें यह पाया जाता है। खटिक स्फुरेत, ख$_3$ (स्फु ओ$_4$)$_2$ इन लवणोंमें बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त फलों, वृक्षों और पौधों के बीजोंमें भी यह विद्यमान है। प्राणि-जगत् और वनस्पतियोंकी वृद्धिके लिये यह अत्यंत आवश्यक पदार्थ है।

हड्डियोंमें खटिक कर्बनेत, मज्जा आदि पदार्थोंके साथ खटिक स्फुरेत ख$_3$ (स्फु ओ$_4$)$_2$ की मात्रा समुचित परिमाणमें विद्यमान है।

स्फुर प्राप्त करनेकी विधि

(१) यह कहा जा चुका है कि शीले ने इसे हड्डियोंकी राखसे बनाया था। हड्डीकी राखमें खटिक स्फुरेत होता है। इसे गरम गन्धकाम्ल (घनत्व १.५) के साथ उबाला गया जिससे स्फुरिकाम्ल निम्न प्रक्रिया के अनुसार मिला—

ख$_3$ (स्फु ओ$_4$)$_2$ + ३ उ$_2$ ग ओ$_4$ = ३ ख ग ओ$_4$ + २ उ$_3$ स्फु ओ$_4$

यह स्फुरिकाम्ल गरम करनेपर मध्य स्फुरिकाम्ल उ स्फ ओ$_3$, में परिणत हो जाता है—

उ$_3$ स्फु ओ$_4$ = उ स्फु ओ$_3$ + उ$_2$ ओ

स्फुरेकाम्ल घोलको छाननेके पश्चात् गरम कर गाढ़ा करके चासनी के समान बना लेते हैं। इसमें फिर पीसकर कोयला (कोक) मिला दिया जाता है और पक्की मिट्टीके बड़े बड़े भभकोंमें रक्त-तप्त करके स्फुर स्रवण कर लिया जाता है।

४ उ स्फु ओ$_3$ + १२ क = २ उ$_2$ + १२ क ओ + स्फु$_4$

स्फु को जलके अन्दर रखते हैं।

(२) आज कल विद्युत् भट्टियोंमें वूह्लरकी विधिसे स्फुर तैयार किया जाता है। अघुलत कठोर स्फुरेतों को बालू और कोयला (कोक) के साथ मिलाकर विद्युत् भट्टीमें रखते हैं। इस भट्टीमें गैसों और स्फुरकी वाष्पों के निकलनेके लिये मार्ग होता है। कर्बनके ध्रुवों द्वारा धारा प्रवाहितकर विद्युत चाप जनित किया जाता है। बालूके साथ खटिक स्फुरेत निम्न प्रकार परिणत हो जाता है:—

ख$_3$(स्फु ओ$_4$)$_2$ + ३ शै ओ$_2$ = ३ खश ओ$_3$ + स्फु$_2$ ओ$_5$

खटिक शैलेत

यह प्रक्रिया १५०° श के लगभग होती है। खटिक शैलेत इस तापक्रम पर पिघली हुई अवस्थामें होता है। अतः भट्टीके नीचेके छेदों द्वारा इसे बाहर निकाल लेते हैं, स्फुर पंचौषिद, स्फु$_2$ ओ$_5$, की वाष्पें १५००° श के लगभग कर्बन (कोयले) से प्रभावित होकर अवकृत हो जाती हैं और स्फुर प्राप्त हो जाता है:—

स्फु$_2$ ओ$_5$ + ५ क = २ स्फु + ५ क ओ

स्फुरकी वाष्पोंको ठंडा करके जलके अन्दर संचित किया जाता है।

स्फुरके बहुरूप

हम कह चुके हैं कि गन्धक कई रूपमें पाया जाता है। ओषोन ओषजनका दूसरा ही रूप है।

इसी प्रकार स्फुर भी कई रूपमें पाया जाता है। मुख्य रूप निम्न हैः—

(१) पीला या श्वेत स्फुर

(२) लाल स्फुर

इसके अतिरिक्त सिंदूरी स्फुर और बैंजनी स्फुर भी होते हैं।

पीला स्फुर—ऊपर बतायी गई विधियोंसे पीला स्फुर प्राप्त होता है। इसे श्वेत स्फुर भी कहते हैं। यह मोमके समान श्वेत अल्प पारदर्शक पदार्थ है। यह इतना नरम होता है कि चाकूसे काटा जा सकता है। पानीके अन्दरही इसे काटना चाहिये क्योंकि वायुमें काटनेसे इसमें आग लग जानेका भय है। इसका घनत्व १·८३ है और द्रवांक ४४.१°। यह लगभग २८७° के उबलने लगता है। यह पानमें अघुल है पर कार्बनद्वि-गन्धिद, तारपीनके तैल, जैतूनके तैल, गन्धक हरिद और कर्बनद्वि गन्धिद, कग२, में विशेषतः घुलनशील है ओषजनमें यह साधारण तापक्रम पर ही ओषदीकृत होने लगता है और हरी रोशनी निकलने लगती है। इस गुणको 'स्फुरण, (Phosphorescence कहते हैं। शुद्ध वायुमें गरम करनेपर ५०° परही इसमें आग लग जाती है और चमकीला श्वेत प्रकाश छाजाता है। जलनेसे स्फु२ ओ५ (स्फुर पंचौषिद)की वाष्पेंभी उठती हैं। पानीमें रखनेसे धीरे धीरे स्फुरके दण्ड (Stick) पर श्वेत पपड़ी जम जाती है जो बादको लाल और फिर काली पड़ जाती है श्वेत स्फुर विषैला पदार्थ है।

लाल स्फुर—श्वेत स्फुरको ऐसी कुप्पीमें जिसमें कर्बन द्विओषिद या नोषजन भरा हो, २५०° के तापक्रमपर कुछ घंटों तक गरम करनेसे एक प्रकार का द्रव प्राप्त होता है जो ठंडा होनेपर लाल चूर्ण बन जाता है। इसेही लाल स्फुर कहते हैं। इस प्रक्रियामें बहुत ताप जनित होता है।

स्फु (श्वेत)=स्फु (लाल)+३.७ ह. ग. कलारी

थोड़ासा नैलिन् डाल देनेसे यह प्रक्रिया २००° श पर हो सकती है। नैलिन् उत्प्रेरक है।

लाल स्फुरका घनत्व २.१०६ है। इस प्रकार यह श्वेत स्फुरसे भारी होता है। यह अपने आप वायुमें नहीं जल सकता है। इसमें गन्ध,स्वाद कुछ भी नहीं है। यह विषैला भी नहीं है। २४०°श से नीचे गरम करनेमें इसमें आग नहीं लग सकती है। इसका द्रवांक ५००° और ६००°शके बीचमें है। बहुत जोरों से गरम करने पर यह वाष्पीभूत हो सकता। इसकी वाष्पोंको ठंडा करने पर फिर श्वेतस्फुर प्राप्त हो जाता है।

श्वेत स्फुर अस्थायी पदार्थ है, पर लालस्फुर स्थायी है।

सिंदूरी स्फुर—श्वेत स्फुरको स्फुर-त्रि-ब्रहमिद, स्फु ब्र३ में १०% घुलाकर दस घंटे उबालनेसे सिंदूरी रंगका चूर्ण प्राप्त होता है यह लाल स्फुरकी अपेक्षा अधिक तीव्र होता है। यह विषैला नहीं है और वायुमें ओषिदकृत भी नहीं होता है।

काला स्फुर—लाल स्फुरको बन्द नलीमें ५३०°श पर गरम करनेसे काला स्फुर प्राप्त होता है। इसके चमकीले रवे होते हैं। इसका घनत्व २.३४ होता है।

बैंजनी स्फुर—श्वेत स्फुरको थोड़ेसे सैन्धकमके साथ गरम करनेसे यह प्राप्त होता है। घनत्व २.३५ है।

दियासलाई

स्फुरका सबसे बड़ा उपयोग दियासलाई बनानेमें होता है। पुराने समयमें चकमक पत्थरको रगड़कर आग पैदाकी जाती थी। यह प्रक्रिया अब आजकल लुप्तही हो गई है। दियासलाइयोंका प्रचार अब घर घर हो गया है।

दियासलाइयोंके आरम्भ कालमें लकड़ीकी छोटी छोटी शलाकोंके सिरेपर गन्धककी एक बूंद लगी होती थी जिसके चारों ओर पांशुज हरेत, शक्कर और गोंद का मिश्रण लगाया जाता था। इस शलाका-को गन्धकाम्लकी बोतलमें डुबाकर आग उत्पन्नकी जाती थी।

रगड़कर जलाई जाने वाली दियासलाइयोंका सर्व प्रथम अन्वेषण स्टौकटन के जे. वाकर ने सं० १८८४ वि० में किया था। उस समय १०० दियासलाइयोंका मूल्य १४ आनेके लगभग था। इन दियासलाइयोंके सिरोंपर गन्धक, आञ्जन गन्धिद, पांशुज हरेत और गोंद का मिश्रण लगा होता था। ये कांचके पत्र (या बालूके पत्र) पर रगड़कर जलाई जाती थीं।

इसके पश्चात् स्फुरकी, दियासलाइयों का प्रचार बढ़ने लगा। इन दियासलाइयों के सिरोंपर पांशुज हरेत, स्फुर खड़िया मिट्टी और गोंदका मिश्रण लगाया गया। ये दियासलाइयां पूर्वोल्लिखित दियासलाइयोंकी अपेक्षा अधिक सरलतासे जल सकती थीं पर इन दियासलाइयोंके बनानेमें एक बड़ी कठिनाई थी। श्वेत स्फुर की विषैली वाष्पोंने कारखानोंमें काम करने वाले व्यक्तियोंको अत्यन्त घातक पीड़ायें पहुँचायीं। उनके जबड़ेकी हड्डियोंमें विकार उत्पन्न हो गये। अतः स्फुर गन्धिद या लाल स्फुर का बैंजनी रूपका उपयोग किया जाने लगा, इसमें विषैले गुण नहीं थे। और किसीभी वस्तुसे रगड़कर ये दियासलाइयाँ जलाई जा सकती थीं।

आजकल सुरक्षित-दियासलाइयों (सेफ़्टी माचेज) का ही अधिक प्रचार है। इन दियासलाइयों में स्फुर नहीं होता है। चीड़की लकड़ीकी पतली तीलियोंके सिरेपर पांशुजहरेत, आंजन-गन्धिद और गोंद लगा होता है। दियासलाईकी डिबियोंके एक सिरेपर लाल स्फुर लगा होता है। इसी लाल स्फुरपर रगड़नेसे दियासलाई जल उठती है। लाल स्फुरका उपयोग कारखानेमें कामकरने वालोंके लिये हानिकर भी नहीं है और ऐसी दियासलाइयोंसे किसी प्रकारकी दुर्घटना भी होनेकी आशंका नहीं है; क्योंकि ये प्रत्येक पदार्थसे रगड़ खाकर जल नहीं उठती हैं।

स्फुरके ओषिद

स्फुर के दो मुख्य ओषिद हैं:—

(१) स्फुर पंचौषिद, $स्फु_2 ओ_5$। नोषजनके पंचौषिद $नो_2 ओ_5$ के समान इसे समझना चाहिये।

(२) स्फुर त्रिओषिद, $स्फु_2 ओ_3$। यह नोषजन त्रिओषिद, $नो_2 ओ_3$, के समान है।

स्फुर पंचौषिद $स्फु_2 ओ_5$:—वायुकी समुचित मात्रा में, अर्थात् खुली वायुमें स्फुर जलानेसे स्फुर पंचौषिद $स्फु_2 ओ_5$, प्राप्त होता है इसका सर्व-प्रथम अन्वेषण बायल ने किया था। व्यावारिक मात्रामें बनानेके लिये लोहेका एक बड़ा बेलन लेते हैं जिसके ऊपर ढकना रहता है। इसमें चमचा रखनेके लिये एक छेद रहता है। चमचे में स्फुर जलाकर बेलनके अन्दर रख दिया जाता है। स्फुर पंचौषिद बेलनके नीचे रखी हुई शुद्ध बोतलमें गिरता रहता है। ढकना उठाकर बेलनकी हवा समय समय पर बदल दी जाती है और चमचेका स्फुर जब समाप्त होजाता है तो और स्फुर जला कर रखा जाता है।

यह श्वेतरङ्गका चूर्ण होता है। यह जलको बहुत जल्दी सोख लेता है। इस गुणके कारण गैसों को शुष्क करनेमें इसका बहुत उपयोग किया जाता है। नोषिकाम्लमें से भी यह जलका एक अणु खींच लेता है और नोषजन पंचौषिद, $नो_2 ओ_5$, शेष रह जाता है:—

$$२ उ नो ओ_3 + स्फु_2 ओ_5 = २ उ स्फुओ_3 + नो_2 ओ_5$$

स्फुर पंचौषिद जलग्रहण करके मध्य-स्फुरिकाम्ल $उ स्फु ओ_3$ में परिणत होजाता है:—

$$स्फु_2 ओ_5 + उ_2 ओ = २ उ स्फु ओ_3$$

स्फुर त्रिओषिद—$स्फु_2 ओ_3$—स्फुर को थोड़ीसी वायुमें गरम करनेसे स्फुर त्रिओषिद प्राप्त होता है। यह मोम के समान श्वेत रवेदार ठोस पदार्थ है जिसका द्रवांक २२.५° श और क्वथनांक १७३.१° श है यह विषैला पदार्थ है जिसमें लहसुन की सी बुरी तीक्ष्ण गन्ध होती है। साधारण तापक्रम पर ही यह वायुमें स्फुर पंचौषिदमें परिणत हो जाता है।

$$स्फु_2 ओ_3 + ओ_2 = स्फु_2 ओ_5,$$

वायुमें ७०° पर यह जलने भी लगता है। ठंडे जलमें यह धीरे धीरे घुलता है और स्फुरसाम्ल, $उ_3 स्फु ओ_3$, जनित होता है:—

स्फु$_2$ ओ$_3$ + ३ उ$_2$ ओ=२ उ$_3$ स्फु ओ$_3$

गरम पानीके संसर्गसे इसमें विस्फुटन होता है और स्फुरिन, स्फु उ$_3$, और स्फुरिकाम्ल जनित होता है:—

२ स्फु$_2$ ओ$_3$ + ६ उ$_2$ ओ = स्फु उ$_3$ + ३ उ$_3$ स्फु ओ$_4$

स्फुरिकाम्ल

स्फुर पंचौषिद, स्फु$_2$ ओ$_5$, से तीन प्रकारके स्फुरिकाम्ल प्राप्त हो सकते हैं:—

(१) ठंडे जलके संसर्गसे स्फुरपंचौषिद मध्य स्फुरिकाम्ल, उ स्फु ओ$_3$, में परिणत हो जाता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

स्फु$_2$ ओ$_5$ + उ$_2$ ओ=२ उ स्फुओ$_3$

इसमें जलके एक अणुके साथ संयोग होता है। मध्य स्फुरिकाम्ल को नोषिकाम्ल, उ नो ओ$_3$, के समान समझना चाहिये।

(२) गरम पानी के संसर्गसे स्फुर पंचौषिद जलके तीन अणुओं में संयुक्त हो जाता है और पूर्व-स्फुरिकाम्ल उ$_3$ स्फु ओ$_4$ जनित होता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है:--

स्फु$_2$ ओ$_5$ + ३ उ$_2$ ओ=२ उ$_3$ स्फु ओ$_4$

(३) इस पूर्व-स्फुरिकाम्ल, उ$_3$ स्फु ओ$_4$ को सावधानीसे गरम करनेपर मध्य-स्फुरिकाम्ल उ$_4$ स्फु$_2$ ओ$_7$ प्राप्त होता है:—

२ उ$_3$ स्फुओ$_4$ = उ$_4$ स्फु$_2$ ओ$_7$ + उ$_2$ ओ

इस प्रकार इन तीनों स्फुरिकाम्लों को स्फुर पंचौषिद में जल के एक, दो अथवा तीन अणु संयुक्त कर देने से बनाया जा सकता है:—

मध्य स्फुरिकाम्ल ··· स्फु$_2$ ओ$_5$ + उ$_2$ ओ → उ स्फु ओ$_3$

मध्य स्फुरिकाम्ल ··· स्फु$_2$ ओ$_5$ + २ उ$_2$ ओ → उ$_4$ स्फु$_2$ ओ$_7$

पूर्व स्फुरिकाम्ल ··· स्फु$_2$ ओ$_5$ + ३ उ$_2$ ओ → उ$_3$ स्फुओ$_4$

संगठन में इतनी समता होने हुए भी इन तीनों अम्लोंके गुण परस्पर में सर्वथा भिन्न हैं।

पूर्व स्फुरिकाम्ल, उ$_3$ स्फु ओ$_4$

(Ortho phosphoric acid)

पूर्व स्फुरिकाम्ल व्यापारिक मात्रामें १०० भाग हड्डीकी राखको ८६ भाग सपृक्त गन्धकाम्लके साथ गरम करके बनाया जाता है। हड्डीकी राखमें खटिक स्फुरेत, ख$_3$ (स्फु ओ$_4$)$_2$ होता है अतः प्रक्रिया निम्न प्रकार है :—

ख$_3$ (स्फुओ$_4$)$_2$ + ३ उ$_2$ गओ$_4$

= ३ ख गओ$_4$ + २ उ$_3$ स्फुओ$_4$

प्रक्रियामें जनित अघुल खटिक गन्धेत छानकर अलग करलिया जाता है। शुद्ध अवस्थामें प्राप्त करनेके लिये स्फुरको नोषिकाम्ल द्वारा ओषदीकृत करते हैं।

३ उ नोओ$_3$ + स्फु = उ$_3$ स्फुओ$_4$ + नोओ + नो ओ$_2$ नोषजनके ओषिद उड़नशील हैं, इस प्रकार शुद्ध पूर्व-स्फुरिकाम्ल प्राप्त होजाता है। इसके नीरंग रवोंका द्रवक ३८.६°श। १६०°श तक यह बिना परिवर्त्तित हुए ही गरम किया जा सकता है, पर इस तापक्रमके ऊपर गरम करने पर इसमें से जलका एक अणु पृथक् हो जाता है और मध्य स्फुरिकाम्ल शेष रह जाता है :—

उ$_3$ स्फु ओ$_4$ = उस्फु ओ$_3$ + उ$_2$ ओ

पूर्वस्फरेत—पूर्व स्फुरिकाम्लके लवणोंको पूर्व-स्फुरेत कहते हैं। पूर्व स्फुरिकाम्ल त्रिभस्मिक अम्ल है अर्थात् इसमें तीन ऐसे उद्जन परमाणु हैं जो किसी धातु तत्वसे स्थापित्र किये जा सकते हैं। पर यह आवश्यक नहीं है कि तीनों उद्जन स्थापित ही हों। ऐसे भी लवण हो सकते हैं जिनमें केवल एक अथवा दो उद्जन ही धातु तत्त्वों द्वारा स्थापित किये गये हों। इन प्रकार पूर्व-स्फुरेत तीन प्रकारके हो सकते हैं।

प्रथम पूर्व स्फुरेत—यथा सैन्धक द्विउद्जन स्फुरेत, सै उ$_2$ स्फु ओ$_4$।

द्वितीय पूर्व स्फुरेत—जैसे द्विसैन्धक उद्जन स्फुरेत, सै$_2$ उ स्फु ओ$_4$।

तृतीय पूर्व स्फुरेत—जैसे त्रि सैन्धक स्फुरेत, सै$_{३}$ स्फुओ$_{४}$

साधारणतया 'स्फुरेत' कहनेसे 'पूर्व स्फुरेतों' का ही तात्पर्य समझना चाहिये।

स्फुरिकाम्ल को दाहक सोडा, (सैन्धक उदौषिद्) या सैन्धक कर्बनेत द्वारा सावधानीसे शिथिल करके (घोल हलका क्षारीय हो) वाष्पीभूत करनेसे द्विसैन्धक उद्जन स्फुरेत, सै$_{२}$ उस्फओ$_{४}$, १२ उ$_{२}$ ओ के रवे प्राप्त होते हैं। ये रवे बड़ी जल्दी पसीजने लगते हैं। इनका द्रवांक ३५° है, ये जलमें घुलनशील हैं। साधारण सैन्धक स्फुरेत यही होता है।

साधारण सैन्धक स्फुरेत, सै$_{२}$ उ स्फुओ$_{४}$ के घोल में इतना स्फुरिकाम्ल डालकर कि घोलका भार-हरिद भह$_{२}$ से अवक्षेपित होना बन्द होजाय, घोलको वाष्पीभूत करके प्रथम सैन्धकस्फुरेत, सै उ$_{२}$ स्फुओ$_{३}$, उ$_{२}$ओ प्राप्त होता है।

त्रि सैन्धक स्फुरेत, सै$_{३}$ स्फुओ$_{४}$, १२ उ$_{२}$ ओ प्राप्त करनेके लिये साधारण सैन्धक स्फुरेत सै$_{२}$ उ स्फु ओ$_{४}$ में सैन्धक उदौषिद् की उपयुक्त मात्रा डालनी चाहिये। इस त्रिसैन्धकम् स्फुरेतका घोल तीव्र क्षारीय होता है। यह कर्बन द्विओषिद् से विभाजित होजाता है।

सै$_{३}$ स्फु ओ$_{४}$ + कओ$_{२}$ + उ$_{२}$ ओ

= सै$_{२}$ उ स्फु ओ$_{४}$ + सै उकओ$_{३}$

यह प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं होती है, कर्बन द्विओषिदका द्विसैन्धक उद्जन स्फुरेत पर फिर प्रभाव पड़ता है और सैन्धक द्वि उद्जन स्फुरेत जनित होता है।

सै$_{२}$ उस्फुओ$_{४}$ + कओ$_{२}$ + उ$_{२}$ओ

= सै उ$_{२}$ स्फु ओ$_{४}$ + सै उकओ$_{३}$

इस प्रकार यह प्रक्रिया भी विपर्ययेय है।

तीनों प्रकारके सैन्धकस्फुरेत रजत नोषेतके साथ पीला अवक्षेप देते हैं।

१) सै$_{३}$ स्फु ओ$_{४}$ + ३ र नो ओ$_{३}$

= र$_{३}$ स्फु ओ$_{४}$ + ३ सै नो ओ$_{३}$

(२) सै$_{२}$ उ स्फु ओ$_{४}$ + ३ र नो ओ$_{३}$ = र$_{३}$ स्फु ओ$_{४}$ + २ सै नो ओ$_{३}$ + उनो ओ$_{३}$

(३) सै उ$_{२}$ स्फु ओ$_{४}$ + ३ र नो ओ$_{३}$

= र$_{३}$ स्फुओ$_{४}$ + सै नो ओ$_{३}$ + २ उ नो ओ$_{३}$

उपर्युक्त द्वितीय और तृतीय प्रक्रियाओंमें नोषिकाम्ल जनित होता है अतः घोल अम्लीय होजाता है और प्रक्रियायें विपर्ययित होजाती हैं। ये प्रक्रियायें अतः अपूर्ण रह जाती हैं। इन प्रक्रियाओंको पूर्ण करनेके लिये यह आवश्यक है कि पहले ही सैन्धक-उदौषिद् अधिक मात्रामें डाल दिया जाय।

मध्य स्फुरिकाम्ल उ स्फु ओ$_{३}$

(Meta phosphoric Acid)

यह कहा जा चुका है कि मध्य स्फुरिकाम्ल स्फुर पंचौषिदको ठंडे जलमें घुलानेसे प्राप्त हो सकता है। पूर्व-स्फुरिकाम्लको गरम करनेसेभी यह प्राप्त होता है। हैम-स्फुरिकाम्ल नामसे जो स्फुरिकाम्ल मिलता है वह ठोस मध्यस्फुरिकाम्ल होता है। इसके घोलको उबालनेसे यह पूर्वस्फुरिकाम्लमें परिणत हो जाता है। इसके लवण मध्य-स्फुरेत कहलाते हैं।

सैन्धक मध्यस्फुरेत—सैस्फुओ$_{३}$-मध्यस्फुरिकाम्लको सैन्धक कर्बनेतसे शिथिल करनेपर सैन्धक मध्यस्फुरेत प्राप्त होता है। सैन्धक द्विउद्जन स्फुरेत को गरम करनेसेभी यह मिल सकता है:—

सैउ$_{२}$स्फुओ$_{४}$ = सै स्फुओ$_{३}$ + उ$_{२}$ओ

माइक्रोकास्मिक लवण (सैन्धक अमोनियम उद्जनस्फुरेत) को गरम करनेसे यह बड़ी सरलतासे बनाया जा सकता है:—

सै नो उ$_{४}$ उस्फुओ$_{४}$ = सै स्फुओ$_{३}$ + नोउ$_{३}$ + उ$_{२}$ओ

यह जलमें घुलन शील है। रजत नोषेत का घोल डालनेसे श्वेत अवक्षेप प्राप्त हो सकता है। अण्डसित के घोलके साथभी श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है, सैन्धक कर्बनेतके साथ गरम करने से यह सैन्धक पूर्व स्फुरेतमें परिणत हो जाता है

उष्म स्फुरिकाम्ल उ$_{४}$ स्फु$_{२}$ ओ$_{७}$

(Pyrophosphoric acid)

जब पूर्व स्फुरिकाम्ल २१५° श के लगभग गरम किया जाता है तो उष्म स्फुरिकाम्ल प्राप्त होता है:—

२ उ$_{३}$ स्फुओ$_{४}$ = उ$_{४}$स्फु$_{२}$ओ$_{७}$ + उ$_{२}$ओ

यह कांचके समान पदार्थ है। इसके घोलको उबालनेसे यह पूर्व स्फुरिकाम्लमें परिणत हो जाता है।

साधारण सैन्धक स्फुरेत, सै२उस्फुओ४ के गरम करने से सैन्धक-उष्म-स्फुरेत, सै४ स्फु२ओ७ प्राप्त होता है।

२ सै२उ स्फु ओ४ = सै४ स्फु२ ओ७ + उ२ओ

उष्म स्फुरेत रजत नोषेतके साथ श्वेत अवक्षेप देते हैं पर अण्डसितके घोलके साथ अवक्षेप नहीं देते।

स्फुरसाम्ल उ३स्फुओ३

(Phosphorous Acid)

स्फुर त्रिहरिद स्फु ह३, को जलके संसर्गसे स्फुरसाम्लमें परिणत किया जा सकता है—

स्फु ह३ + ३उ२ओ = उ३ स्फुओ३ + ३उह
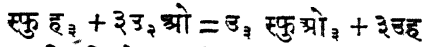
स्फुर त्रिहरिदको वाष्ठिकाम्ल क२ उ२ ओ४ के साथ तब तक गरम करके जब तक झाग निकलना बन्द न हो जाय, और फिर घोलको ठंडा करके रवेदार स्फुरसाम्ल प्राप्त हो सकता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

स्फुह३ + ३क२ उ२ ओ४ = उ३स्फु ओ३ + ३क ओ२ + ३कओ + ३उह
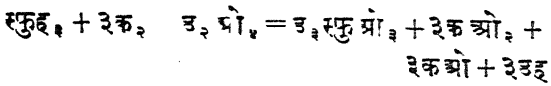
इस अम्लके रवे श्वेत होते हैं जिनका द्रवांक ७१·७—७३·६° है। यह पानीमें अच्छी तरह घुलनशील है। गरम करने पर यह विभाजित हो जाता है और पूर्व स्फुरिकाम्ल तथा स्फुरिन, स्फु उ३, प्राप्त होते हैं:—

४ उ३ स्फु ओ३ = ३ उ३ स्फु ओ४ + स्फु उ३
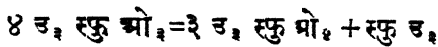
इसमें अवकरण करने का अत्यन्त प्रबल गुण है। सुवर्णम् के लवणों को अवकृत करके सुवर्ण दे देता है

२स्वह३ + ३ उ२ ओ + ३ उ३ स्फु ओ३ = २ स्व + ६ उह + ३उ३ स्फु ओ४
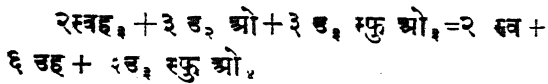
पारदिक हरिद, पा ह२ के घोलमें स्फुरसाम्ल डालनेसे पारदसहरिद, पा२ ह२, का अवक्षेप प्राप्त होता है:—

२ पा ह२ + उ२ ओ + उ३ स्फु ओ३ = पा२ ह२ + २ उह + उ३ स्फु ओ४
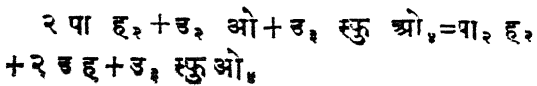
रजत नोषेतके घोल के साथ यह पहले रजत-स्फुरित, र३ स्फु ओ३, का श्वेत अवक्षेप देता है, पर फिर रजत धातुके बननेके कारण काला पड़ जाता है। गन्धसाम्ल और स्फुरसाम्ल का घोल मिलानेसे गन्धक अवक्षेपित होजाता है:—

उ२ ग ओ३ + २ उ३ स्फु ओ३ = २ उ३ स्फु ओ४ + उ२ओ + ग
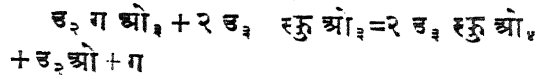
हम कह चुके हैं कि स्फुरिकाम्ल त्रिभस्मिक है। इसके रूप को हम निम्न प्रकार चित्रित कर सकते हैं:—

```
         / ओ उ
ओ = स्फु — ओ उ
         \ ओ उ
```
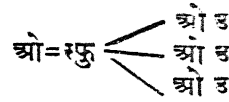
इसमें ओषजन पंचशक्तिक है। उदौषिल मूल, ओउ, के उदजन धातुओंसे स्थापित किये जा सकते हैं।

स्फुरसाम्लको निम्न रूपमें प्रदर्शित किया जा सकता है:—

```
     / ओ उ
स्फु — ओ उ ......(१)
     \ ओ उ
```
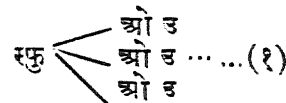
इसमें स्फुर त्रि-शक्तिक है। पर इस रूपमें एक कठिनाई है। इस प्रकार प्रदर्शित करनेसे यह भ्रम होता है कि स्फुरसाम्ल भी त्रिभस्मिक है क्योंकि इसमें भी तीन उदौषिल मूल हैं। वुर्जने प्रयोगोंसे यह सिद्ध कर दिया है कि यह अम्ल द्विभस्मिक है अतः इसे निम्न रूपमें चित्रित करना अधिक उचित होगा।

```
         / ओउ
ओ = स्फु — ओउ ......(२)
         \ उ
```
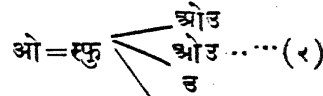
हम यह कह सकते हैं कि स्फुरसाम्ल कभी पहला रूप (१) धारण कर लेता है और दूसरा (२)।

स्फुरिन, स्फु उ३

(Phosphine)

जिस प्रकार नोषजन उदजन से संयुक्त होकर अमोनिया, नोउ३, बनाता है उसी प्रकार स्फुर भी उदजनके तीन परमाणुओंसे संयुक्त होकर स्फुरिन, स्फुउ३, नामक यौगिक बनाता है।

स्फुरको किसी क्षारके साथ उबालनेमें बड़ी ज़ोरों की प्रक्रिया आरम्भ होती है और एक ऐसी नीरङ्ग गैस जनित होती है जो वायु या ओषजनके संसर्गसे जल उठती है। यह गैस ही स्फुरिन है।

एक छोटी कुप्पीमें दो छेद वाला काग कसो। दोनों छेदोंमें मुड़ी हुई दो नलियाँ लगा दो। एक नलीको किप्स यन्त्रसे जिसमें उद्जन जनित होता हो संयुक्त कर दो। दूसरी नली लम्बी हो जिसका दूसरा सिरा पानीसे भरी टबमें डूबता हो। कुप्पीमें पीला स्फुर और ३०% सैन्धक उदौषिद्का घोल डाल दो और कुप्पीमें उद्जन प्रवाहित करो जिससे कि सम्पूर्ण हवा निकल जाय। अब कुप्पीको गरम करो। नीरङ्ग गैस जनित होगी जो जलमें होकर ज्योंही टबकी वायुके संसर्गमें आवेगी, मालाकार होकर जलने लगेगी।

प्रक्रिया निम्न प्रकार समझी जा सकती है:—

स्फु$_4$ + ३ सै ओ उ + ३ उ$_2$ ओ

= ३ सै उ$_2$ स्फु ओ$_2$ + स्फु उ$_3$
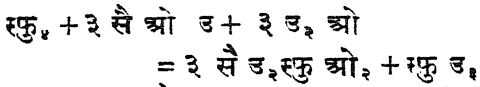
इस प्रक्रियामें सैन्धक-उप-स्फुरित जनित होता है जो उपस्फुरसाम्ल, उ$_3$ स्फु ओ$_2$, का लवण है।

स्फुरिन, में सड़ी मछलीकी सी दुर्गन्ध होती है। विद्युत् चिनगारियां प्रवाहित करनेसे वह गैस उद्जन और ठोस स्फुर में विभाजित होजाती है। २ आयतन स्फुरिनसे ३ आयतन उद्जन प्राप्त होता है। शुद्ध स्फुरिनका वाष्प घनत्व १७ के लगभग है अतः इसका अणुभार ३४ हुआ। अर्थात् २२·४ लीटर स्फुरिन का भार ३४ ग्राम हुआ। २२·४ लीटर स्फुरिनसे पूर्व कथन के अनुसार ३३·६ लीटर उद्जन प्राप्त होगा। ३३·६ लीटर उद्जनका भार ३ ग्राम है। अतः ३४ ग्राम स्फुरिन में ३ ग्राम उद्जन और ३१ ग्राम स्फुर है। स्फुरका परमाणु भार ३१ है अतः स्फुरिनके एक अणुमें ३ परमाणु उद्जनके और एक परमाणु स्फुरका है। इस प्रकार इसका सूत्र, स्फु उ$_3$, स्थिर होता है।

स्फुर हरिद

जिस प्रकार स्फुरके दो ओषिद होते हैं वैसे ही इसके दो हरिद भी हैं।

(१) स्फुर पंचहरिद, स्फुह$_5$

(२) स्फुर त्रिहरिद, स्फुह$_3$

एक ओषहरिद भी होता है जिसे स्फुर-ओषहरिद, स्फु ओ ह$_3$, कहते हैं।

स्फुर त्रिहरिद—हरिन् गैससे भरे बेलनमें स्फुर डालते ही जल उठता है और स्फुर त्रिहरिद, स्फुह$_3$ बन जाता है। इसके बनानेकी विधि इस प्रकार है:—एक भभकेमें लालस्फुर लो और उसमें शुष्क हरिन् प्रवाहित करके गरम करो। यह नीरंग द्रव है जिसका क्वथनांक ७६° है, अतः यह अच्छी तरह स्रवित किया जा सकता है। जलके संसर्गसे यह शीघ्रही विभाजित होजाता है और स्फुरसाम्ल प्राप्त होता है।

स्फुह$_3$ + ३ उ$_2$ ओ = उ$_3$ स्फु ओ$_3$ + ३ उह
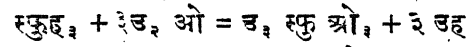
स्फुर पंचहरिद—स्फुह$_5$-एक पात्रमें स्फुर त्रिहरिद को भली प्रकार ठंडा करो। त्रिहरिदके पृष्ठ तल पर शुष्क हरिन् प्रवाहित करो। धीरे धीरे सम्पूर्ण पदार्थ ठोस हो जायगा। प्रक्रियामें बहुत ताप जनित होता है। यह ठोस पदार्थ ही स्फुर पंचहरिद है। गरम करने पर इसके रवे बिना पिघले ही वाष्पीभूत होजाते हैं। इस समय कुछ पंचहरिद त्रिहरिद में विभाजित भी होजाता है। स्फुर पंचहरिद जलके संसर्गसे स्फुरिकाम्लमें परिणत होजाता है।

स्फुह$_5$ + ४ उ$_2$ ओ = उ$_3$ स्फुओ$_4$ + ५ उह
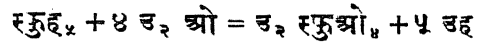
स्फुर ओष हरिद—स्फु ओह$_3$-यदि स्फुर पंचहरिद थोड़ेसे जलके संसर्गमें लाया जाय तो स्फुर ओषहरिद प्राप्त होगा।

स्फुह$_5$ + उ$_2$ ओ = स्फुओह$_3$ + २ उह
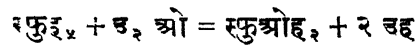
स्फुर त्रिहरिद को पांशुज हरेत द्वारा ओषदीकृत करनेसे भी यह प्राप्त हो सकता है।

३ स्फुह$_3$ + पांह ओ$_3$ = ३ स्फुओह$_3$ + पांह
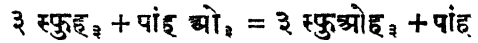
यह नीरंग द्रव है जिसका क्वथनाङ्क १०७° है। जलके संसर्गसे यह स्फुरिकाम्ल देता है।

स्फुओ ह$_3$ + ३ उ$_2$ ओ = उ$_3$ स्फुओ$_4$ + ३ उह
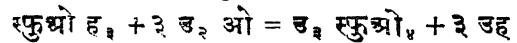
स्फुर पंच प्लविद, स्फुप्ल$_5$, स्फुर पंचहरिद और संक्षीणिक-त्रि-प्लविद की प्रक्रियासे प्राप्त हो सकता है। यह नीरंग गैस है।

चार्लस डारविन

(ले० श्री कृष्णबिहारी, एम० एस-सी०)

जीव विज्ञान पर लिखने और काम करने वालोंमें शायद किसीने चार्लस डारविनके समान प्रसिद्धता नहीं प्राप्त की। आज बहुतसे लोग जो थोड़े भी पढ़े लिखे हैं, चाहे वह जीव विज्ञानके विषयमें कुछ जानते हों या नहीं, डारविनके नामसे अवश्य परिचित हैं। जहां कहीं मनुष्यकी उत्पत्तिका जिक्र होता है, वहां डारविनका नाम जरूर लिया जाता है। मनुष्यकी उत्पत्तिका विषय ऐसा है जिसके ऊपर बहुत लोगोंने बहुत तरहके विचार प्रगट किए हैं। इस का कुछ न कुछ वर्णन हर मतके ग्रंथोंमें पाया जाता है। विषय भी ऐसा है जिसका संबंध सबसे है और जिसको सबही लोग जानना चाहते हैं। कुछ विशेष आश्चर्यकी बात नहीं है कि ऐसा मनुष्य जिसने न केवल मनुष्यकी उत्पत्तिके वारेमें अपनी राय प्रगट की बल्कि इस रायसे इस विषय पर संसारके उन विचारोंको जो उस समय प्रबल थे, बिलकुल जड़से हिला दिया और लोगोंके मनमें एक नई भावना पैदा कर दी। कुछ आश्चर्य नहीं है कि ऐसे मनुष्यका नाम पढ़े लिखे संसारके हर प्रांतमें सुना जाय।

कहा जाता है कि किसी मनुष्यकी बड़ाईका अनुमान इसके जीवनमें ठीक नहीं लगता। यह बात शायद डारविनके संबधमें सत्य है। जैसे २ समय बीतते जाते हैं, डारविनकी मर्यादा भी बढ़ती जाती है उनके बहुतसे विचार और निस्सन्दिग्ध सिद्ध होते जाते हैं और उन पर लोगोंका विश्वास और दृढ़ होता जाता है। ऐसे मनुष्य अमर कहे जा सकते हैं और ऐसे मनुष्यका जीवन चरित्र अवश्य लाभदायक हो सकता है।

इंगलण्डमें श्रूसबरी नामका एक छोटा शहर है। यहां पर १२ फरवरी १८०९ ईसवीको डारविनका जन्म हुआ। अपने पिताके ४ बच्चोंमें यह सबसे छोटे थे। इनके पिता डा० राबर्ट वारिङ्गडार्विन श्रूसबरीमें एक प्रसिद्ध वैद्य थे। जन्म लेनेके ८ वर्ष बाद इनकी माताने इनका साथ छोड़ ईश्वरकी शरण लेना स्वीकार किया। इनके दादा डा० इरेस्मस डार्विन अपने समयमें प्राणियोंके विषय पर अन्वेषण करने और लिखने वालोंमें बहुत प्रसिद्ध थे और उनके बहुतसे विचार अब तक माननीय समझे जाते हैं।

डारविनके बड़े भाईका मन प्रारम्भसे साहित्य और कलाकी ओर ज्यादा था, छोटे भाईका हृदय इसके विरुद्ध था, उनका मन खेल कूद, शिकार और घूमने फिरनेमें ज्यादा लगता था सिक्के मुहर(seals) और खनिज पदार्थके जमा करनेमें उनका समय अधिक व्यतीत होता था। बचपनके दिनोंमें थोड़ी रसायन विद्या भी पढ़ी और कुछ दिनों बाद वनस्पति शास्त्रकी ओर ध्यान जानेसे छोटे २ पौधोंके नाम भी जानने लगे। इनकी बचपनकी शिक्षा श्रूसबरी हीके एक स्कूलमें हुई परन्तु यहां ८ वर्ष पढ़ने पर भी डारविनको कुछ ज्यादा लाभ न हुआ। १६ सालकी अवस्थामें यह वैद्यक पढ़नेके लिए एडिनबरा गये। यहां पर भी सफलताने साथ न दिया। २ वर्ष बाद यह देखकर कि वैद्यककी ओर इनका मन नहीं लग रहा है इनके पिताने इनको एडिनबरासे हटाकर धार्मिक शिक्षाके लिए कैम्ब्रिज भेजा। धार्मिक पठन पाठनके कर्मके उपरान्त इन्होंने यहांपर अपने मनको विज्ञानकी तरफ ज्यादा लगाया। अधिक करके इनका प्रेम कीट विज्ञान (Entomology)में होने लगा, और छोटी छोटी तितलियोंके पकड़ने और जमा करनेमें इनको बड़ा आनन्द आने लगा इसी समय इनका परिचय कैम्ब्रिजके एक बड़े नामी और विद्वान प्रोफेसर हेन्सलो (Professor Henslowe) से हुआ जिन्होंने इन की थोड़ी वनस्पति विद्या पढ़ानी आरम्भ की। समय बीतने पर डारविन प्रो: हेन्सलोके बड़े मित्रों मेंसे हो गये। इस मित्रतासे न केवल डारविन

का प्रेम विज्ञान की ओर बहुत बढ़ गया बल्कि इस सबंधका प्रभाव डारविनके भविष्य जीवन पर बहुत पड़ा।

कैम्ब्रिज में रह कर डारविनको बहुत सी पुस्तकोंके पढ़नेका अवसर मिला और इनमेंसे दो पुस्तकें, जैसा कि वह स्वयम् लिखते हैं इनके लिये विशेष रूपसे लाभदायक हुई। वह पुस्तकें ये थीं:— हम्बल्टकी परसनलनेरेटिव। (personal narrative) जिसमें यात्रा सम्बन्धी अत्यन्त मनोहर वर्णन दिया गया है और सरजान हरसेल की प्रकृति परिज्ञान (Introduction to the study of National Philosophy)" थी। प्रोफसर हेन्सलोंकी सलाहसे इन्होंने भूगर्भ विद्या भी पढ़ना आरंभ किया और इस सिलसिलेमें यह प्रोफेसर सेजविकसे परिचित हुये। उसी समय बीगिल नामी जहाज पर कुछ लोग इंगलेण्डसे संसारकी यात्राके लिए भेजे जा रहे थे। जहाजमें एक प्रकृतिवेत्ताकी भी आवश्यकता थी। डारविन ने अपने गुरू प्रो॰ हेन्सलोकी सलाहसे इसको स्वीकार किया। जहाजकी यात्रामें ५ वर्ष (२७ दिसम्बर १८३१—९ अक्टूबर १८३६ तक) लगे। डारविनको इस समय में बहुत दूर के देश देशान्तरों के दर्शन हुए। समुद्री द्वीप, दक्षिण अमरीकाका समुद्र तट, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया इत्यादि इन सबही देशोंके पाससे बीगिल (Beagle) जहाज गुजरा। डारविन ने इन देशोंके जीव जन्तु पेड़ और चट्टानों और उनके अनेक २ प्रकारकी बनावटसे अपनेको खूब परिचित किया। जहाजकी यात्रामें एकाँत बहुत मिलता था, इस का नतीजा यह हुआ कि हर प्रकार के जीव, पेड़ पौधों और चट्टानों पर काम करनेके उपरान्त विचार का भी अवसर मिलता था। प्रकृति को अनेक दशाओंपर ध्यान करनेका इससे अधिक अच्छा अवसर कदाचित् डारविन को फिर नहीं मिलता।

५ वर्ष व्यतीत हुए, यात्रा समाप्त हुई। घर वापस आने पर डारविन ने इस यात्राके फलोंको एकत्रित करनेके निमित्त कई पुस्तक लिखीं। बीगिल का जीव विज्ञान (The zoology of the Beagle) विद्रुम भित्तियोंका निर्माण (The structure and distribution of coral Reefs, दक्षिणी अमरीका और ज्वालामुखी द्वीपोंका भौगर्भिक परीक्षण) Geological observations on volcanic islands and on South America) यह सब पुस्तकें इसी यात्राकी फल स्वरूप कही जा सकती हैं

घर छोड़ते समय डारविन एक बहुत मामूली आदमी थे, योग्यताभी कुछ बहुत अधिक न थी, यात्रा से लौटने पर यह एक बड़े विद्वान मनुष्यकी पदवी पर पहुँच गये। विज्ञानके बड़े बड़े नेताओंने इनका स्वागत किया और बहुत शीघ्र ही इनको भूगर्भ सभा (Geological Society) का मन्त्री बना दिया। यात्राके बहुत दिनों बाद तक डारविन केवल पुस्तकोंके लिखनेमें लगे रहे इन्हीं कुछ पुस्तकोंमें डारविनने पहली बार विद्रुम निर्माण (Coral formation) का सिद्धान्त स्थापित किया। इस बातसे एक लाभ यहभी हुआ कि अमरीकाके पश्चिम तट अर्थात् चिली देश की भूमिके उठनेका कारण लोगों को मालूम हो गया।

बीगिलकी यात्राके समय डारविनको बहुत बातों का ज्ञान हुआ। इसी यात्रामें अनेक अनेक देशोंके जीव, पेड़ पौधोंके देखनेसे और उन पर ध्यान देने से इनके मनमें बहुत तरहके विचार उत्पन्न हुए दक्षिणी अमरीकाके दक्षिणी भागमें पेड़ोंका बिलकुल न होना, जानवरों और पौधोंका अपनेको इस तरह बना लेना कि वह खारीसे खारी झीलोंके किनारे रह सके चट्टानों की तहोंमें प्राचीन समयकी ऐसी विशाल हड्डियोंका पाया जाना जो आजकलके जानवरोंके हड्डियोंसे मिलती जुलती हों, हवाके झोकोंके साथ छोटे छोटे कीड़े मकोड़ों और तितलियोंका मीलों चला जाना एकही स्थान पर एक जानवरकी बहुत सी जातियों (species) का मिलना इत्यादि इत्यादि।

अनेक रूपके जीव और पौधोंको देखनेसे डारविनके हृदयमें एक ओर विचार भी उत्पन्न हुआ संसारमें बहुत तरहके जानवर और वृक्ष हैं, क्या यह हमेशासे ऐसेही बनाये गये हैं या इनकी भावना समय समयके अनुसार बदलती रहती है। डारविनके समय

तक यह विचार प्रबल था कि प्राकृतिक जीवन (natural life) के रूपमें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है और जो जैसा आरम्भमें बन जाता है, वैसाही सदा बना रहता है। बहुत दिनों तक डरविन इस विषय पर सोचते रहे और इस पर जो विचार उन्होंने प्रगट किए उसका कुछ वर्णन किया जायगा। एक बात हमको ध्यानमें रखनी चाहिए। बहुत लोगों का यह विश्वास है कि उन्होंने पहलेतो यह निश्चित रूपसे बतलाया कि संसारमें अनेक प्रकारके जीव समयके साथ बदलते रहते हैं और नये तरहके जानवरोंकी उत्पत्ति भी इसी परिवर्तनके कारण होती है। दूसरे यह कि मनुष्य के पूर्वज बन्दर थे और हम सब की उत्पत्ति उन्हीसे हुई है। जो लोग ऐसा अनुमान करते हैं बड़ी भूल करते हैं। अनेक प्रकारके जीव और पौधों (Different species of plants and animals) का बदलना डारविनके पहले भी बहुत लोगों को मालूम था और इसके ऊपर बहुत विचार भी प्रगट हो चुके हैं, डारविनकी बड़ाई इस बातमें थी कि उन्होंने जावके इस प्राकृतिक परिवर्तनका एक युक्तिसंगत कारण बतलाया, दूसरा बात यह कि उन्हों ने स्वयं यह कभी नहीं बतलाया कि मनुष्य बन्दर से बने हुए हैं उनका कथन केवल इतना था कि मनुष्य और कुछ बड़े बड़े कपि जिन्हें अंग्रेजीमें Anthropoid apes कहते हैं एक पीढ़ीसे निकले हैं और बहुत संभव है कि दोनोंके पूर्व नेता एक ही तरहके रहे हों।

नयी जातियोंके बननेके विषयमें डारविनकी जो सम्मति है वह तीन बातोंपर निर्भर है। पहली बात तो यह कि संसारमें कोई दो जीव, चाहे वह मनुष्यमें भाई भाई ही क्यों न हो, बिल्कुल एक रूपके नहीं होते, कुछ अंतर होना आवश्यक है। दूसरी बात यह कि प्रकृतिमें जितने जीव रह सकते हैं उससे कहीं अधिक संख्यामें जन्म लेते हैं। उसका एक स्वयं फल यह होता है कि संसारमें केवल जीवन व्यतीत करने और भोजनका प्रबन्ध करनेके निमित्त जीव जीवमें बड़ा घोर युद्ध होता है और तीसरा बात यह बतलाई कि इस युद्धमें जो सबसे बलवान होता है, उसीकी जीत होती है। जो सबसे दुर्बल होता है उस कानाश होता है।

जीव विकास (Organic evolution) का कुछ न कुछ ज्ञान तो बहुत लोगोंको बहुत पहलेसे था। इस पर बहुत लोगों को विश्वास भी था। परन्तु डारविन के पहले किसी ने भी इसके कारण और विकास की विधिको इस दृढ़ताके साथ नहीं बतलाया, न इसके पहले किसी की रायपर इतना घोर वाद विवाद हुआ और न किसी और सिद्धान्त पर इस वाद विवादमें संसार के इतने बड़े बड़े और भिन्न भिन्न विषय पर विचार करने वाले मनुष्यों ने भाग लिया। १८५६ ईसवीमें डारविनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'जातियोंका मूल' (Origin of Species) निकली। आरम्भ में इस ग्रन्थ का बहुत अभिनन्दन कियागया लेकिन इसका विरोध भी बहुत हुआ। विशेष कर धार्मिक पादरियों और महन्तोंने तो इस पर आन्दोलन किया। बात यह थी कि बाइबिलमें लिखित सृष्टि उत्पत्तिके अनुसार हर प्रकारके जीव भिन्न २ औरएक उत्पन्न हुए हैं और उस समयसे ज्योंके त्यों चले आ रहे हैं। डारविनकी शिक्षा इसके विरुद्ध निकली और डारविनकी युक्तियाँ इतनी प्रबल प्रमाणित हुई कि उनका काटना करीब २ असंभवसा मालूम होने लगा। लेकिन समय बीतने पर जैसे २ विज्ञानकी उन्नति होती गई, पादरियोंके यह सब मूर्ख झगड़े मिटते गये, यहाँ तक कि आज शायद कोई साधारण मनुष्य नहीं है जो डारविनकी बहुत बातोंको किसी न किसी रूपमें न मानता हो। १८७१ ईसवीमें डारविनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक 'मनुष्य अवतरण' (The Descent fo Man)प्रकाशितहुई। (Origin of Species) पढ़नेके बाद लोगोंमें इस पुस्तकके ऊपर कुछ विशेष मत भेद नहीं हुआ लेकिन। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है विषय इतना रुचिकर था कि 'ओरीजिनआव स्पेसीज'के बाद डारविनकी और पुस्तकोंमें यह सबसे ज्यादा पढ़ी गई। डार्विनकी कुल पुस्तकों और लेखोंका केवल नाम भी देना स्वयं एक

पुस्तकका लिखना हो जायगा। इनकी कुछ प्रसिद्ध पुस्तकोंके नाम नीचे दिए जाते हैं।

1. Zoology of the voyage of H. M. S. 'Beagle'. 1840.
2. The Structure and distribution of coral Reefs 1874.
3. On the origin of species by means of Natural selection or the preservation of Favoured Races in the struggle for life 1859.
4. The movements and habits of climbing plants 1875.
5. The variation of animals and plants under domestication. 1858.
6. The Descent of man and selection in relation to sex. 1871.
7. The Expression of the Emotions in man and animals. 1872.
8. The effects of cross and self-fertilisation in the vegetable kingdom 1876

डारविनका बहुत बड़ा प्रभाव उनके समयके ऊपर पड़ा। जीवका मूल औरविकास (Developement) के विषय पर जो विचार उन्होंने प्रगट किये उससे संसारके विद्वानोंमें एक बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। उन्हींके विचारोंका परिणाम है कि आज लोगों का ध्यान बहुतसे नये नये विषयोंके अध्ययन की ओर जा रहे हैं। जानवरोंको पालनेवालोंका कामअब विज्ञानकी सहायता पर ज्यादा निर्भर होने लगा है। गर्भ विज्ञान (Science of embryology) इन्हींके परिश्रमके कारण आज कल सर्वोत्तम विज्ञानकी पदवी पर पहुंच गया है, प्राणियों और वृक्षोंके भौगोलिक विस्तार पर अब ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा है। बहुतसी नयी२ तरहकी चिड़ियों, उरगों(reptiles) और स्व प्राणियों (mammals) का पता लगाया है और उनके शारीरिक इतिहास पर लोगोंकी दृष्टि पड़ने लगी है और स्वयं मनुष्य शरीरके प्राचीन इतिहास (Ancesteral history of human body) पर बड़ी छानबीन हुई हैं, इन सब बातोंके लिए हम डारविनके अनुग्रहीत हैं।

कहा जाता है कि १९ वीं शताब्दीकी सबसे श्रेष्ठ खोज अन्वेषण विधि थी। कई बातें हमको डारविनके जीवनचरित्रमें मिलती हैं जिनसे पता लगता है इनके खोजके नियम अनोखे थे इन्होंने कभी किसी विचारके प्रगट करनेमें जल्दी नहींकी। धीरताके साथ पहले वह बहुतसे सामग्रीजो विषयसे संबंध रखतीहो जमा करते थे। फिर उनका ध्यानसे परीक्षण करते थे और जब हर प्रकार निसंदिग्ध होजाते तब संसारके निमित्त प्रस्तुत करते थे। डारविनकी बड़ाईके लिए यह आवश्यक नहीं कि उन के सबही विचार सत्य निकले। उनके विचारों पर अब तक मतभेद है और शायद हमेशा रहेगा। लेकिन वैज्ञानिक कार्यकी इन्होंने जो रीति बताई, गूढ़ विषयों पर जिस प्रकार उन्होंने विचार किया और विज्ञानमें जितना प्रेम दिखलाया, इसमें उनके समान दूसरा उदाहरण मिलना जीव-शास्त्रके इतिहासमें असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा।

कुछ ही सप्ताहकी बात है कि इङ्गलैण्डके लीडस नामी शहरमें बृटिश एसोसियेशन British Association for the Advancement of Science,का वार्षिकोत्सव हुआ, जिसमें बड़े अंग्रेज विद्वान जमा हुए जीव-विज्ञानके विभागमें (Biology Section) डारविनके विचारों पर घोर विवाद हुआ, अन्त में सर आर्थर कीथने जिन्होंने कि मनुष्य उत्पत्ति पर बहुत काफी और विचार किया है। डारविन के उन सिद्धान्तों पर अपना विश्वास प्रगट किया जो मनुष्य की उत्पत्ति कपियों (anthropoid से बतलाते हैं। संभव है कि समय बीतने पर शायद एक मनुष्य भी ऐसा न रहजाय तो डारविनके विचार को सत्य न स्वीकार करे।

डारविन अपने जीवनमें नीरोग न रहसके बहुधा उनका समय शारीरिक दुःखसे नष्ट होता था। २ घंटे से अधिक एक बार काम न कर सकते थे लेकिन उन की मानसिक शक्ति इतनी प्रबल थी और अपने कार्य के इतना प्रेम था कि अपनी ७३ वर्षकी अवस्थामें ऐसे कार्य किए जिसके लिए शायद साधारण मनुष्यको कई जीवन भी काफी न होते। स्वयं वह बहुत सरल स्वभावके मनुष्य थे दूसरों की सहायता करने और दूसरों की बड़ाई स्वीकार करनेमें बड़ा आनन्द आता था, हृदयमें किसी प्रकारका कपट या छल न था, और सत्यताके लिए उनका प्रेम अथाह एकजगह स्वयं लिखते हैं कि "मैंने प्रसिद्धता प्राप्त करनेके लिए अपनेको अपने मार्गसे एक इन्च भी नहीं हटने दिया"

डारविनकी मृत्यु वेलनडासके पास डउनमें १९ अप्रैल १८८२ को हुई। एक दिन बादकामन्सकी सभा के २० मेम्बरोंने डा० बोकलेसे जो वेस्टमिनिस्टरके सर्वाधिकारी थे यह इच्छा प्रगटकी कि डारविनका अन्तिम निवास वेस्टमिनिस्टर एबे हो, उन्होंने इसे स्वीकार किया। और डारविनका मृतक संस्कार वैस्ट मिनिस्टर एबेमें २६ अप्रेलको हुआ। फ्रांस, जर्मनी, इटली, रूस आदि देशोंके प्रतिनिधि इस मृतक संस्कारमें सम्मिलित हुए। इनकी समाधि सर आइज़क न्यूटनकी समाधिसे बहुत थोड़ी ही दूर पर है और इस पर यह लेख अंकित है।

चार्ल्स राबर्ट डारविन

जन्म १२ फरवरी १८०९

मृत्यु १९ अप्रेल १८८२
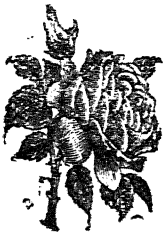
विद्युन्मय धूल के बादल

(ले० श्रीशैलसिंह कोठारी, बी. एस-सी.)

हुत पुराने समयसे मनुष्य अंबरको इस्तेमाल करते आयेहैं। यह मिस्राना, सार्डीना, दूसरी जगहकी कब्रोंमें पाया गयाहै। ग्रीसके लोग चमकीली पीली चीज़ोंको सूर्यके बच्चे समझतेथे। चूँकि वह सूर्यको 'इलक्टर' कहते थे इसलिये उन्होंने अम्बरको इलक्टरकी उपाधि देदी। अम्बरकी एक और विशेषता थी जिसे ग्रीसकी औरतों ने जो चरखा काता करती थीं मालूम किया, बड़े घरानेकी औरतें जो अपने चरखेमें कीमती अम्बरका रेठा लगा सकती थीं वह चरखा कातते समय यह देखती थीं कि जब कभी अम्बर का रेठा उनके कपड़ोंसे रगड़ खाता तो धागेके टुकड़े और दूसरी हलकी हलकी चीज़ोंको अपनी ओर खींच लेता था।

प्लेटोने अम्बरकी आकर्षण शक्ति और चुम्बककी आकर्षणशक्तिका कारण एकही समझा। अर्थात् आकर्षण करने वाली वस्तुसे छोटे छोटे परमाणु निकलते थे जो कि आकर्षित वस्तुसे जा मिलकर उसको खींच लाते थे। ७२७ ई० की एक चीनकी पुस्तकमें चुम्बकके आकर्षणका यह कारण बतलाया गयाहै कि लोहा उसकी ओर इसी तरह खिंचताहै जैसे बच्चे अपनी मांके नज़दीक जाकर दौड़ते हैं।

१६ वीं शताब्दि में एक इटलीके वैज्ञानिक गिरा। लेमो कार्डेनो ने पहले पहल यह साबित किया कि चुम्बक और अम्बरकी आकर्षण-शक्तिमें भेद है। इस तरहसे उसने अपने पुराने सब वैज्ञानिकोंके कथनका खंडन किया।

विलियम गिलबर्ट जो कि लन्दनमें १५४० ई० में पैदा हुआ, एक बहुत बड़ा डाक्टर और वैज्ञानिक

था। वह यह साबित करना चाहता था कि कापरनिकसका कथन कि "ज़मीन सूरजके चारों तरफ घूमती है" सत्य है। इसलिये उसने विद्युत्से वही प्रयोग किये जो उसको उपर्युक्त कथनको सिद्ध करनेमें मदद दे सकते थे। इस लिये वह बहुतसी बातें विद्युत्में जो आविष्कार कर सकता था, नहीं कर सका। उसने अम्बर और चुम्बकके आकर्षणमें जो भेद है उसको साफ साफ बतलाया और यह भी बतलाया कि अम्बरकी तरह और दूसरी वस्तुएं भी आकर्षणशक्ति रगड़ने पर प्रकट कर सकती हैं।

१,२६ ई० में निकोलस केबियसने यह बतलाया कि हलकी वस्तुऐं अम्बर पहले अपनी ओर खींच लेता है और जब वह हलकी चीज़ उससे जा मिलती है तो कभी कभी वह उसे फिर फेंक देता है।

१६३० ई० में ग्यूरेक ने जिसने न्यूमेटिक्स में कई नई बातें निकाली हैं, विद्युत् में भी कुछ नई बातें निकाली है। उसने यह देखा कि जब एक गन्धकका गोला हाथसे रगड़ दिया जाताहै तब वह हलकी चीजोंको, जैसे एक पंख या पर को अपनी ओर खींचताहै लेकिन जब वह पंख (पर) उससे छू जाता है तो फिर वह उसे अपने पाससे ढकेल देता है। इसका कारण उसने यह बतलाया है कि "जब गन्धकका गोला किसी वस्तुको खींचना चाहताहै तो खींच लेता है। जब वह खींचना नहीं चाहता तो नहीं खींचता।" वह यह समझता था कि गन्धकके गोलेमें कोई जान है। पृथ्वीको गन्धकके गोलेकी उसने मिसाल दी, जिस प्रकार गन्धकके गोलेमें हाथसे रगड़े जाने पर विद्युत् शक्ति प्रकट होती है उसी प्रकार वह समझता था कि पृथ्वी में सूर्य्य रश्मियोंकी रगड़ से विद्युत्-शक्ति उत्पन्न हो जाती है। वहभी अपनी ओर उन चीजोंको खींचती है जो उसको पसन्दहैं। और उन चीजोंको जैसे गरम हवा जो उसको पसन्द नहीं है अपने पाससे ढकेल देती है। दूसरे यह स्पष्ट है कि जब मनुष्य प्रयोगकी ओर पूरा ध्यान नहीं देते तो वह कितनी ग़लतियां कर सकते हैं।

१७४६ ई० में एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक चार्ल्स डफे ने जिसने अपनी ४१ वर्षकी ही उम्रमें विज्ञानके हर एक विभागमें बहुत बड़ी बड़ी बातोंको खोज की, बतलाया है कि अगर अम्बरका टुकड़ा जो रगड़ा गयाहै। किसी एक धातुकी वस्तुके पास लाया जाय तो उस धातुकी वस्तुका वह हिस्सा जो अम्बर से परे है, हलकी वस्तुओंको खींचनेकी शक्ति प्रगट करता है।

विद्युत्के अन्दर उसने सबसे बड़ी बात यह देखी कि विद्युत्शक्ति दो तरह की है। एक दिन वह एक काँच की नलीको रेशम से रगड़ कर सोने के हलके पत्रोंके पास ले गया तो वह पत्र पहले नलीकी ओर खिंच गया। उससे छूकर फिर वह अपने आप उस नलीसे दूर हट गया और हवामें तैरने लगा। गोंदके एक टुकड़ेको रगड़कर वह फिर उन पत्तोंके पास लाया तो उसको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह पत्तेजो उस काँचकी नलीको उनके पास लातेही दूर भागते थे। इस गोंदके टुकड़ेकी ओर दौड़ने लगे। इस पर वह लिखता है कि "मुझे कुछ सन्देह नहीं है कि गोंदके ऊपरकी विद्युत् शक्तियाँ दो तरहकी हैं।" काँचके ऊपरकी विद्युतको धनात्मक कहते हैं और दूसरीको। ऋणात्मक जबदो वस्तुओंपर विद्युत धनात्मक होता है या दोनोंपर ऋणात्मक हो तो वह दोनों वस्तुएं एक दूसरेको दूर ढकेलती हैं, और एक पर धनात्मक हो और दूसरे पर ऋणात्मक तो वह दोनों वस्तुएँ एक दूसरेको अपनी ओर खींचती हैं।

इस बारेमें राबर्ट सीमर (१५५९ ई०)की एक मनोरंजक कहानी कही जाती है। यह मनुष्य हमेशा दो जोड़ी मोजे पहना करता था। एक मोजा जो सूती और पुराना था उसको अन्दर पहनता था और दिखाने के लिये नये रेशमी मोजे ऊपर पहनता था। दोनों मोजोंको जब वह पाँवसेएक

साथ निकालता था और फिर सूती मोजेको रेशमी मोजेके अन्दरसे खींचता था तो दोनों मोजे, फूल मोजे एक दूसरेको अपनी ओरसे ढकेलते थे और सूती मोजोंको अपनी तरफ खींचते थे।

ऊपर यह कहा गया है कि काँचकी विद्युत् शक्ति धनात्मक कहलाती है। लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता है। जिस वस्तुसे काँच रगड़ा जाता है उस पर भी यह निर्भर है। रेशम के साथ रगड़नेसे काँच धनात्मक होता है और फलालेनके साथ रगड़ने से ऋणात्मक होता है। मैक्सवेल अपनी प्रसिद्ध पुस्तकमें लिखते है "सब वैज्ञानिक उस विद्युत् को जो पालिश किये हुए कांच जिंक अमलगम (दस्त पारद सम्मेल) से जो चमड़े पर फैला दिया गया है रगड़नेसे उत्पन्न होती है उसको धनात्मक कहते हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि कोई वस्तु धनात्मक विद्युत् बतलाये या ऋणात्मक, यह रगड़ने वाली वस्तु पर निर्भर है। नीचे दी हुई सूची से यह बात स्पष्ट है:—

रगड़ी जाने वाली वस्तु	धनात्मक या ऋणात्मक	किसके साथ रगड़ी गई
१—बिल्ली का चमड़ा	+	हर एक वस्तु।
२—पालिश किया हुआ काँच	+	सिवाय बिल्लीके चमड़े के हर वस्तु।
३—खुरदरा कांच	+	गन्धक, धातुएँ, सूखा हुआ तेलका भीगा हुआ रेशम।
	—	लकड़ी, कागज, पंख और ऊनी कपड़ा।
४—सफेद रेशम	+	काला रेशम, धातु, काला कपड़ा
	—	कागज, हाथ बाल
५—काला रेशम	+	लाख
	—	खरगोश का चमड़ा, सफेद रेशम

अगर एक वस्तु क जो कि वस्तु ख से रगड़े जाने पर धनात्मक होती है और वस्तु ख ग से रगड़े जानेसे धनात्मक होती है तो यह अक्सर होता है कि वस्तु क ग से रगड़े जाने पर धनात्मक ही होगी। इस सिद्धान्त पर नीचे लिखी हुई सूची दी जाती है जिसमें अगर कोई वस्तु उसके ऊपर लिखी हुई वस्तुसे रगड़ी जायगी तो वह ऋणात्मक होगी और उसके नीचे लिखी हुई वस्तु से रगड़ी जायगी तो धनात्मक होगी। यह सूची प्रसिद्ध वैज्ञानिक फैराडेकी पुस्तकसे ली गई हैं।

१— बिल्ली या रीछ की खाल
२— फलालेन
३— पंख
४— नमक का डला
५— काँच
६— रूई
७— सफेद रेशम
८— हाथ
९— लकड़ी
१०— धातुएं
११— गन्धक

यह अक्सर समझा जाता है कि विद्युत् उत्पन्न करनेके लिए रगड़ी जाने वाली वस्तुएं भिन्न होनी चाहिएँ। लेकिन इसकी सदा आवश्यकता नहीं होती। फैराडे ने अपनी पुस्तकमें सूची देकर यह लिखा है — "बिल्लीके खालका एक हिस्सा दूसरे हिस्सेसे रगड़े जानेपर विद्युत् उत्पन्न करता है। फलालेनके दो टुकड़े भी ऐसा ही करते हैं। विद्युत्

धनात्मक है या ऋणात्मक यह कभी इसपर भी निर्भर है कि वह दो वस्तुएं किस तरह रगड़ी गई हैं। एक पंख अगर केनवास पर हलकेसे गिराया जाय तो वह ऋणात्मक हो जायगा पर अगर वही पंख एक केनवास के कपड़े में लपेट कर उसमेंसे खींचा जाय तो धनात्मक हो जायगा। जब बहुत सी वस्तुओंके डंडे पारे में धीरे से डाले जायँ तो धनात्मक होंगे लेकिन अगर जोरसे डाले जायँ और हिलाये जायँ तो यह ऋणात्मक होंगे। दो टुकड़े जो कि एकही बड़े टुकड़े से काटे गये हो बहुत देरतक एक दूसरेसे रगड़े जायं तो यह कुछ अद्भुत बात बतलाते हैं यह प्रयोग श्रीयुत देवधर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हैं।

वस्तु	धनात्मक या ऋणात्मक	बहुत देर तक रगड़े जानेका फल
एबोनाइट	दोनों टुकड़े कभी धनात्मक कभी ऋणात्मक। कभी एक ऋणात्मक और दूसरा धनात्मक।	टुकड़ोंकी विद्युत् अक्सर धनात्मकसे ऋणात्मक और ऋणात्मकसे धनात्मकमें पलटती थी।
गन्धक	दोनों टुकड़े धनात्मक	विद्युत्में कोई तब्दीली नहीं।
कोयला	दोनों टुकड़े धनात्मक	"
मोमबत्ती	ऋणात्मक	"

एबोनाइटमें जो विद्युत्की तब्दीली रगड़े जानेपर पाई जाती है उसका शायद कारण यह है कि एबोनाइट एक रस नहीं है। (अपूर्ण)

वैज्ञानिकीय

पशु और बुद्धि

[लेखक — श्री अमीचन्द्र विद्यालङ्कार]
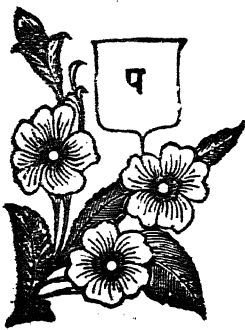
शु शब्द हम उसके लिए प्रयोगमें लाते हैं जिसे हम मूर्ख कहते हैं। नासमझीसे किए जाते हुए कामको देखकर हमारे मुँहसे काम करनेवालेके लिए निकल पड़ता है कि यह निरा पशु है। परन्तु हमारी यही उक्ति सर्वांशमें सत्य नहीं है। पशुओंमें भी कितने ही पशु बुद्धिमान् पाये जाते हैं। हाथीकी बुद्धिमानीकी कहानियाँ तो हम और आप अपनी रीडरोंमें ही पढ़ चुके हैं। जर्मनीमें घोड़े गणितके अच्छे अच्छे सवाल लगाते हैं कुत्तेकी बुद्धिमानीको तो देखकर आश्चर्य होता है। शीत प्रधान देशोंमें कुत्ते ग्वालेका काम तो देते ही हैं साथ ही साथ स्वयं सेवक सेनाका भी काम देते हैं। बर्फ़में दबे हुए मनुष्योंको ढूंढकर वे उन्हें खोद निकालते हैं। इस प्रकार न जाने कितने मनुष्योंकी जान बचती है। शिकार, घरकी रक्षा और ऐसे ही अन्य कार्योंमें भी कुत्तोंका बहुत उपयोग होता है। कबूतर चिट्ठी ले जानेके काम आते हैं। जापानने तो रूस जापान युद्धमें चूहोंको कागज पत्र चुरानेके काम में प्रयुक्त किया था। जापानियोंने लोमड़ियोंसे चर और पथ प्रदर्शकका भी काम लिया है। ऊपर हमने

जो उदाहरण दिये हैं उनमें इन जानवरोंको सधानेकी आवश्यकता होती है परन्तु कई पशुओंकी मौलिक शक्तियोंको देख कर आश्चर्य होता है।

शहद की मक्खीके छत्तेको देखकर एकदम मुँहसे निकल पड़ता है कि यह तो बड़ो ज्यामितिज्ञ होगी। उसके छत्तेका एक एक कोठा ऐसा सुन्दर और ऐसा पैमानेसे बना होता है कि उसके ज्यामितिक कुशलको देखकर आश्चर्य होता है। बीवर बहुत अच्छा इन्जीनियर है। यह नदीमें बांध बनाकर पानी रोक लेता है। बांध बनानेके लिए बड़े मोटे मोटे पेड़ काटकर ले आता है। बया, कितना सुन्दर घोसला बनाती है। सूचीमुख किस प्रकार पत्तोंको घासके रेशोंसे सी सी कर अपना घर बनाती है। आश्चर्य नहीं कि मनुष्यने सीना उसीसे सीखा हो। बरैयाके छत्तेमें कागज कितना सुन्दर बना होता है। कहते हैं एक मंगोलियन ने बरैको देखकर लुगदीसे कागज बनानेका अनुमान किया था।

मारमट (Marmot) न केवल अपना घर ही ऐसे बनाता है जैसे मनुष्य बल्कि वह उन घरोंको वर्षा आदिके पानीसे बचानेके लिए चारों ओर नालियोंका भी प्रबन्ध कर देता है। लूमड़ और खरहे भी अपने घर जमीनमें बहुत अच्छे ढगसे बनाते हैं कि उनमेंसे निकल भागने या उनमें आ पहुँचनेके लिए कई द्वार रहते हैं जिससे आपत्ति आपड़ने पर वे जहाँसे चाहें भाग खड़े हों। चूहे अपना अन्न भण्डार भी खूब अच्छा बनाते हैं। चींटियाँ अपने अन्न भण्डारकी पानी आदिसे रक्षाका भी प्रबन्ध कर लेती हैं। सचमुच जिन्हें हम मूर्ख, पशु कहकर घृणा करते हैं वास्तवमें मनुष्यके वे गुरु हैं। सीना, पिरोना, कपड़ा बनाना, कागज बनाना इत्यादि कितने ही काम मनुष्य ने उन्हींसे सीखे।

चींटियाँ तो इतनी बुद्धिमान होती हैं कि उनकी आबादी, उनके प्रबन्ध और उनके रहन सहनको देख कर मारे आश्चर्यके आँख खुलीकी खुली रह जाती हैं। चींटियाँ राजनीति सहयोग, समाजनीति आदि सभी शास्त्रोंमें खूब निपुण होती हैं। उन्हें सैनिक निर्मंत्रणका भी अच्छा परिचय होता है। पक्षी अधिकतर मस्त रहते हैं। उदासी उनके चेहरों पर कम देखी जाती है। प्रायः वे मस्त हो आनन्दमें मग्न हो जाते हैं और अपना मधुर राग अलापते रहते हैं।

हाथीकी बुद्धिमानीकी अनेक कहानियाँ प्रारम्भिक बाल पोथियोंमें हम पढ़ चुके हैं। ब्रह्मदेश (Burma) में हाथियोंको सधाकर उनसे बहुतसे काम लिये जाते हैं। विशेष कर भारी लकड़ीके ढोनेमें तो हाथी बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। हाथी प्रायः झुण्ड बनाकर रहते हैं। अपने झुंडमेंसे वे एक सरदार चुन लेते हैं। सरदार की आज्ञाओं को वे भली प्रकार पालन करते हैं। लड़ाई आदि के समय यदि कभी उनके साथी घायल हो जायें तो दूसरे हाथी घायलोंकी बगल में हो कर उन्हें सहारा देते हुवे चलाते हैं। उनके रहने सहनेके ढंगसे स्पष्ट पता लगता है कि उनका संगठन बहुत अच्छा होता है। उनके नियम भी बहुत विचारपूर्ण होते हैं। जब कहीं आपत्ति आनेकी सम्भावना होती है तब सब हाथी इकट्ठे हो जाते हैं जिस हाथीको आपत्तिका ज्ञान होता है वह शब्द संकेत द्वारा सबको बुला लेता है और भावी आपत्तिकी सूचना दे देता है। अभी हाल हीमें ट्रावनकोरमें एक ऐसी ही घटना घटी है जिससे उनकी बुद्धिमानीका बहुत अच्छा उदाहरण मिलता है।

एक जँगलके किनारे पर कुछ आदमियों ने एक पेड़ गिराया। वह सूखा था। पास ही आग जला कर वे सो गये। धीरे धीरे पेड़में आग लग गई। पेड़ जलने लगा। यदि पेड़ देर तक जलता रहता तो सारे जंगलमें आग लग जाती। इसी बीचमें एक हाथी आग देख कर उस पेड़के पास आया। वहाँ खड़े होकर उसने सारी भावी परिस्थितिका अनुमान कर बड़े जोरसे संकेत सूचक चिंघाड़ लगाई। थोड़ी ही देर में और भी बहुतसे हाथी आ पहुँचे। सब हाथी बिना देर लगाये वहाँसे न जाने कहाँ चले गये। थोड़ी ही देरमें वे फिर लौट कर आये। उनकी सूंड़ों में पानी था। उन्होंने पानीसे आग बुझा दी। इस

प्रकार उनकी बुद्धिमानीसे एक आती हुई बला टल गई।

अमरजीवन

प्रकृतिमें दो क्रियायें हमेशा होती रहती हैं उत्पत्ति और विनाश। जो चीज़ आज उत्पन्न हुई है वह किसी न किसी दिन नष्ट भी अवश्यहो जायगी। अपनी आँखोंके सामने यही होता हुआ हम प्रति दिन देखते भी हैं। मनुष्यका शरीरभी उत्पन्न और विनाश के नियमका पालन करता है। जो आज आया है वह ० बीस पचास सौ वर्ष बाद चला भी जायगा।

मनुष्यकी मृत्यु क्या है और वह क्यों होती है इस पर विचार करते हुए वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मृत्युका कारण शारीरिक यन्त्रमें अनियम होना ही है। इसलिए यदि इस अनियमको बन्द कर दिया जाय तो अमर जीवन प्राप्तहो सकता है। एक साधारण मैशीनको ज्यों ज्यों काममें लाते जाते हैं त्यों त्यों वह घिसती जाती है और कुछ समय बाद खराब हो जाती है। मनुष्यका शरीर भी इसी प्रकार खराब होता है। जब हम अधिक काम (मेहनत) करते हैं तो हमें इसी खराबीके कारण थकावट मालूम होने लगती है। मैशीनोंमें वृद्धिका साधन नहीं होता इसलिए वे तो जल्दीही खाराबहो जाती हैं। पर मनुष्य चेतन है। वह खाता है, पीता है और तरह तरहके साधनोंसे अपनी क्षतिको पूरा करता है। उदाहरणके लिए यह देखिए कि जब मनुष्य अधिक परिश्रम करता है तब अधिक क्षति होती है। उसके शरीर में मैल भर जाती है। उसे दूर करनेके लिए फेफड़े तेज़ीसे काम करने लगते हैं। और हम हाँफने लगते हैं। इस प्रकार जहाँ हमारी मैशीनके किसी यन्त्रमें गड़ बड़ हुई कि हमारे शरीर-मेंके रहने वाले इञ्जीनियर लोग झट पट वहाँ पहुँच कर अपना काम शुरू कर देते हैं। वैज्ञानिकोंका कथन है कि यदि क्षति अधिक होती गई तो शीघ्र ही शरीर निकम्मा हो जायगा। यदि जितनी क्षति हुई उतनी ही पूर्ति भी हो गई, क्षति और पूर्तिमें समता रहेगी और शरीर वैसेका वैसाही बना रहेगा। उसमें खराबी न आने पायगी। इसका यह मतलब नहीं कि आलसी बनकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें जिससे न परिश्रम करें और न क्षति हो। वास्तवमें आलससे भी बड़ी क्षति होती है, जिसे पूरा करनेके लिए बड़ा श्रम करना पड़ता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्तिको अपने शरीरको देखते हुए क्षति और पूर्ति दोनोंका हिसाब लगा कर दोनों में समता कर लेनी चाहिये इस समताके लिए उसे मित आहार, मित विहार, मित निद्रा, मित परिश्रम सब कार्य्य निश्चित्त पैमानेके अनुसार ही करना चाहिए। इस समताको स्थापित करनेके लिए ब्रह्मचारी रहना परमावश्यक है क्यों कि इसकी क्षतिको पूर्ति करना असम्भव है। इसीलिए प्राचीन समय में ऋषिमुनि ब्रह्मचारी रहते थे। और जब तक वे चाहते थे जीवन धारण करते थे, जब चाहतेथे इस लीला सम्बरण कर परलोकके लिए प्रयाणकर देते थे।

आज कल कितनेही वैज्ञानिक दीर्घ जीवन का ही नहीं अमर जीवन का भी सुख स्वप्न ले रहे हैं। कल्पना और विचारकी दृष्टिसे यह असम्भव नहीं है। वैज्ञानिकोंके भागीरथ प्रयत्नको देखते हुए यह आशा होती है कि शीघ्रही विज्ञानके सफलता प्राप्त कर मृत्युको वशमें कर सकेंगे तब इस वाक्य सत्यता को क्रियात्मक रूपसे सिद्धकर सकेंगे:—॥ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत' ब्रह्मचर्य और तपसे देवोंने मृत्युका वशमें किया।

समालोचना

श्रीमद्भगवद्गीता—ले० प० राममनोहर पाण्डेय विशारद प्रकाशक पं० सच्चिदानन्द पाण्डेय, हिन्दी-साहित्य पुस्तकालय प्रयाग, पृ० १०८; मूल्य आठ आना। छपाई सफाई उत्तम

लेखकके शब्दोंमें, जहाँ तक होसका है साम्प्रदायिकता की खींचा तानीसे बचते हुये गीताके मूल तत्वों तथा रहस्योंको कथात्मक रूपसे सरल और सुबोध हिन्दी भाषामें लिखनेका प्रयत्न किया गया है। पुस्तक सामान्य कक्षाके व्यक्तियोंके लिये

जिन्हें गीताकी गम्भीर व्याख्याओंके अध्ययन करनेका अवकाश नहीं मिलता है, सर्वथा उपादेय है। आशा है कि जनता इसको अपनायेगी।

मानसी—श्रीरामनरेश त्रिपाठीकी कविताओंका संग्रह संग्रहकर्ता श्रीगोपाल नेवटिया प्रकाशक हिन्दी मन्दिर प्रयाग, मूल्य आठआना पृ० सं० ८२ छपाई, कागज़ अत्युत्तम।

इस पुस्तकमें श्री त्रिपाठी जीकी कविताओंका संग्रह करके श्री नेवटिया जी ने बड़ी कृपाकी है। त्रिपाठी जीके बहुतसे कवित्त जो आजकल हिन्दी की श्रेष्ठ पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहते हैं, इस पुस्तकमें संग्रहीत हैं। कुछ पुरानी कवितायें भी हैं। संग्रहकर्ताने पुस्तकारम्भमें २३ पृष्ठों का एक 'परिचय' भी दिया है जिसमें कविकी कविताओं को समझानेका प्रयत्न किया गया है। त्रिपाठी जी सिद्धहस्त कवि हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर कहीं कहीं भावोच्चताके साथ साथ भाषाकी जटिलता अवश्य खटकती है—जैसे 'पृथ्वी पर नवीन जीवन का नया विकास विकसता है,' इसमें विकास 'विकसता है' में भाव प्रदर्शक शब्दोंका अभाव प्रतीत हो रहा है। 'हाथ पांव फूल उठे' इसका प्रयोग हिन्दी भाषी सभी जानते हैं कि उस समय किया जाता है जब घबराहट-की अवस्थाका चित्रण किया जारहा हो। पर त्रिपाठी जी ने 'एक दिन मोहन प्रभात ही पधारे उन्हें देख फूल उठे हाथ पाँव उपवन के' इस पंक्तिमें हर्षावस्था-में भी इन शब्दोंका प्रयोग करदिया है जो अधिक उचित नहीं प्रतीत होता है। पुस्तकमें उर्दू छन्दोंका भी व्यवहार किया गया है। कुछ पंक्तियां अत्यन्तही सरस हैं—उदाहरणार्थः—'होते गाँठके धन कहीं जो दीन जनके'; 'भक्त को भगवान मिलते हैं हृदय की हार से'। व्यंग भी रोचक और उत्तम हैं। हमें पूर्णाशा है कि त्रिपाठी जीका यह संग्रह आदरकी दृष्टिसे देखा जायगा।

—सत्यप्रकाश

बहु-उदिक मद्य और उनके यौगिक

[Polyhydric Alcohols]

(ले० श्री सत्यप्रकाश, एम.एस-सी.)

त अध्यायमें असंपृक्त उदकर्बनोंका वर्णन कियाजा चुका है। असम्पृक्त उदकर्बनोंके बहुतसे यौगिक बहु-उदिकमद्यों से बनाये जाते हैं जिनका वर्णन आगे दिया जायगा। दारील मद्य, ज्वलील मद्य आदि साधारण मद्य एक-उदिक-मद्य हैं क्योंकि इनमेंसे प्रत्येकमें केवल एक उदौषिल, ओ उ, मूल है।

दारील मद्य—क उ₃ ओ उ

ज्वलील मद्य—क₂ उ₅ ओ उ

पर ऐसे भी यौगिक हो सकते हैं जिनमें कई उदौषिल मूल हों। उदाहरणतः ज्वलेनके एक उदजनके स्थानमें एक उदौषिल मूल लगानेसे ज्वलीलमद्य मिलता है पर दो उदजनोंको दो उदौषिलों से स्थापित करनेसे मधुओल नामक द्वि-उदिक मद्य प्राप्त हो सकता है।

```
क उ₃            क उ₃              क उ₂ ओ उ
 |               |                 |
क उ₃            क उ₂ ओउ           क उ₂ ओ उ
ज्वलेन           ज्वलील मद्य         मधुओल
```

इसी प्रकार अप्रेनके प्रत्येक कर्बन के साथ एक एक उदौषिल लगा देनेसे मधुरोल या मधुरिन नामक त्रि-उदिक मद्य प्राप्त हो सकता है।

```
क उ₃            क उ₂ ओ उ
 |               |
क उ₂            क उ ओ उ
 |               |
क उ₃            क उ₂ ओ उ
अप्रेन           मधुरोल
```

इसी प्रकार चतुर् उदिक, पंच-उदिक-आदि मद्यों-को भी समझना चाहिये। हम यहां कुछ उपयोगी बहु-उदिक-मद्योंका वर्णन देंगे।

मधुओल (Glycol)

बुज नामक वैज्ञानिकने सं० १९१६ वि० में इसको तैयार किया था। इसका स्वाद मीठा होता है, इसीलिये इसका नाम मधुओल पड़ा है। ज्वलीलिन अरुणिद को जल और पांशुज कर्बनेतके साथ उबालनेसे मधुओल प्राप्त हो सकता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

क उ₂ रु | + उ₂ ओ + पां₂ क ओ₃ = क उ₂ ओ उ | + २पांरु + कओ₂
क उ₂ रु — क उ₂ ओ उ
ज्वलीलिन अरुणिद — मधुओल
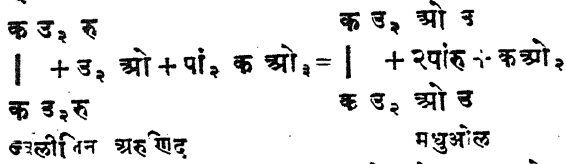
ज्वलीलिन को पांशुज पर मांगनेत के साथ ओषदीकृत करने से कभी मधुओल प्राप्त हो सकता है।

क उ₂ ‖ + उ₂ ओ + ओ = क उ₂ ओ उ |
क उ₂ — क उ₂ ओ उ
ज्वलीलिन — मधुओल
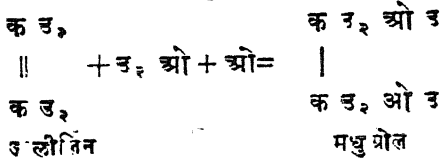
इस मधुओलको ज्वलीलिन मधुओल कहते हैं। मधुओल उन सब मद्योंका सामान्य नाम है जिनमें दो उदौषिल मूल होवें। अम्रीलिन मधुओल निम्न सूत्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

क उ₃ | क उ (ओ उ) | क उ₂ (ओ उ) अथवा क उ₂ ओ उ | क उ₂ | क उ₂ ओ उ
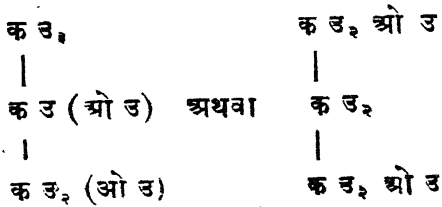
ज्वलीलिन मधुओल उसी प्रकार ओषदीकृत हो सकता है जिस प्रकार ज्वलीलमद्य। पर इसमें दो उदौषिल होनेके कारण प्रक्रियायें सदा दो प्रकारकी होंगी। एक प्रक्रियामें केवल एक उदौषिल मूल प्रभावित होगा और दूसरी प्रक्रियामें दोनों उदौषिल मूल प्रभावित होंगे—

क₂ उ₅ ओ उ —(ओ₂)→ कउ₃ क उ ओ —(ओ₂)→ कउ₃कओओउ
ज्वलीलमद्य — सिरकमद्यानार्द्र — सिरकाम्ल

क उ₂ ओउ | क उ₂ ओ उ
मधुओल
ओ₂ ↙ ↘ ओ₂

क उ₂ ओ उ | क उ ओ — मधुओलिक मद्यानार्द्र
| ओ₂ ↓
क उ₂ ओ उ | क ओ ओ उ — मधुओलिकाम्ल

क उ ओ | क उ ओ — मधुकाष्ठल
ओ₂ ↙ ↘ ओ₂
कउ ओ | क ओ ओ उ — मधुकाष्ठिकाम्ल
कओओउ | कओओउ — काष्ठिकाम्ल

वस्तुतः मधुओलके ओषदीकरणसे मधुओलिकाम्ल मधुकाष्ठिकाम्ल, और काष्ठिकाम्ल, ये तीनों प्राप्त हुए हैं।
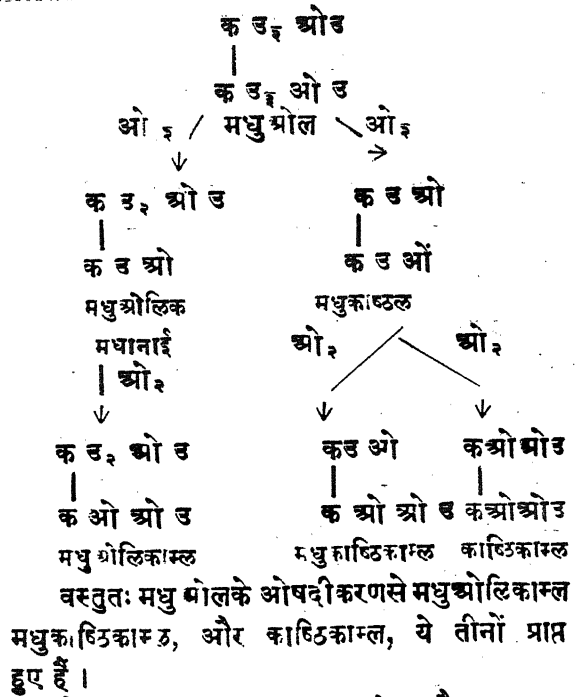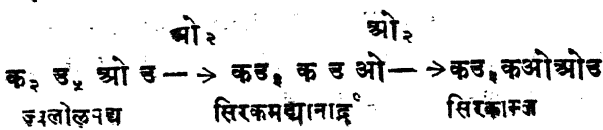
सैन्धकम् धातुके प्रभावसे मधुओल सैन्धक मधुओलेत और द्विसैन्धक मधुओलेतमें परिणत हो जाता है।

क उ₂ ओ उ | क उ₂ ओ उ + सै = क उ₂ ओ सै | क उ₂ ओ उ + उ
मधुओल — सैन्धकमधुओलेत

↓ २ सै
क उ₂ ओ सै | क उ₂ ओ सै
द्विसैन्धक मधुओलेत
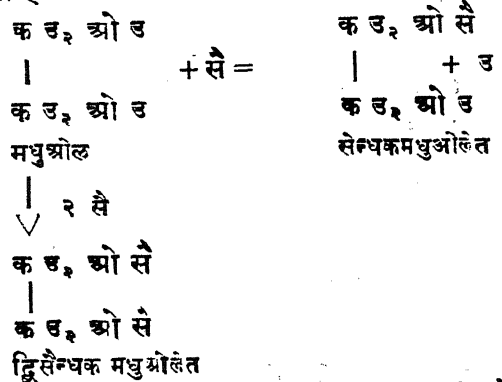
इसी प्रकार दो ज्वलक भी प्राप्त हो सकते हैं। इन सैन्धक मधुओलेतों पर मद्यील नैलिदके प्रभावसे ये ज्वलक बनाये जाते हैं—

क उ₂ ओ सै | क उ₂ ओ सै + २ क₂ उ₅ नै = क उ₂. ओ. क₂ उ₅ | क उ₂. ओ. क₂ उ₅ + २ सै नै
मधुओलद्वि ज्वलील ज्वलक

क उ$_2$ ओ सै क उ$_2$ ओ क$_2$ उ$_5$
| + क$_2$ उ$_5$ नै = |
क उ$_2$ ओ उ क उ$_2$ ओ उ

मधुओल ज्वलील ज्वलक
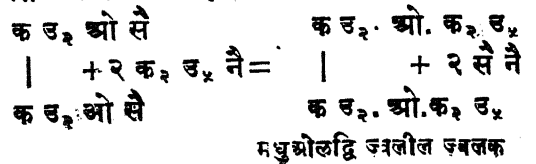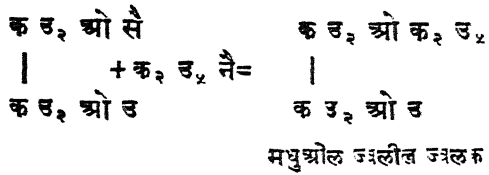
यदि मधुओलमें उदहरिकाम्ल प्रवाहित किया जाय तो इसका एक उदौषिल ही हरिन्से स्थापित होता है पर स्फुर पंचहरिद्के प्रभावसे दोनों उदौषिल मूल हरिन्से स्थापित हो जाते हैं:—

क उ$_2$ ओ उ क उ$_2$ ह
| + उह = | + उ$_2$ओ
क उ$_2$ ओ उ क उ$_2$ ओ उ

ज्वलीलिन हर उदिन

क उ$_2$ ओ उ क उ$_2$ ह
| + २ स्फुह$_5$ = | + २ स्फुओ ह$_3$
क उ$_2$ ओ उ क उ$_2$ ह + २ उह
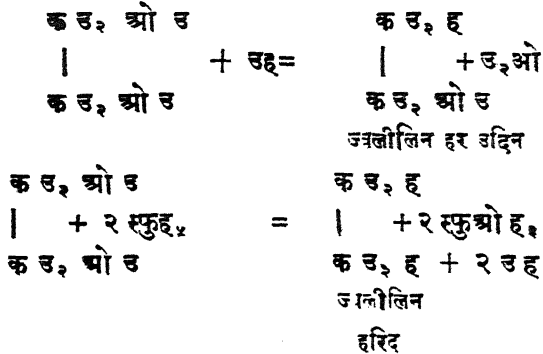
ज्वलीलिन हरिद

ज्वलीलिन हर उदिन पर सैन्धक उदौषिद्की प्रक्रिया करनेसे ज्वलीलिन ओषिद प्राप्त होता है।

क उ$_2$ ह क उ$_2$
| + सै ओ उ = | > ओ + सै ह
क उ$_2$ ओ उ क उ$_2$ + उ$_2$ ओ

ज्वलीलिन ओषिद
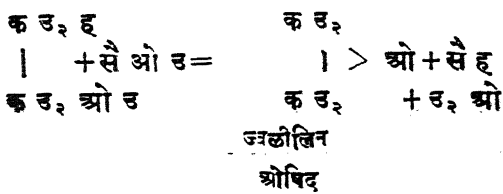
यह यौगिक जल, उदजन, उदहरिकाम्ल आदिसे विभाजित हो जाता है—

क उ$_2$ क उ$_2$ ओ उ
| > ओ + उ$_2$ओ = |
क उ$_2$ क उ$_2$ ओ उ

मधुओल

क उ$_2$ क उ$_3$
| > ओ + उ$_2$ = |
क उ$_2$ क उ$_2$ ओ उ

ज्वलीलमद्य

क उ$_2$ क उ$_3$
| > ओ + उ$_2$ = |
क उ$_2$ क उ$_2$ओ उ

ज्वलीलमद्य

क उ$_2$ क उ$_2$ह
| > ओ + उ ह = |
क उ$_2$ क उ$_2$ओ उ

ज्वलीलिन हरउदिन
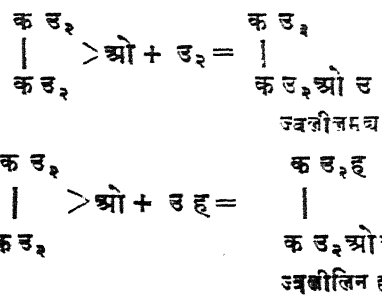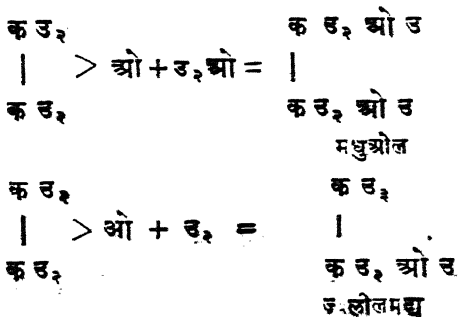
द्वि अमिन—ज्वलीलिन हरिद पर अमोनियाका प्रभाव डालनेसे दोनों हरिन् परमाणु अमिनो-मूलसे स्थापित हो जाते हैं। इस प्रकार ज्वलीलिन द्वि-अमिन प्राप्त होता है :—

क उ$_2$ह क उ$_2$ नो उ$_2$
| + ४ नो उ$_3$ = | + २ नो उह
क उ$_2$ह क उ$_2$नोउ$_2$
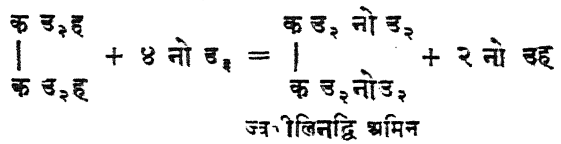
ज्वलीलिनद्वि अमिन

मद्यिक घोलमें सैन्धकम् द्वारा द्विश्यामिदोंके अवकरणसे भी द्विअमिन प्राप्त हो सकते हैं। ज्वलीलिन द्विश्यामिदसे चतुर-दारीलिन-द्विअमिन निम्न प्रकार बनेगा।

क उ$_2$ क नो + ४ उ$_2$ = क उ$_2$ क उ$_2$ नो उ$_2$
| |
क उ$_2$ क नो क उ$_2$ कउ$_2$नोउ$_2$
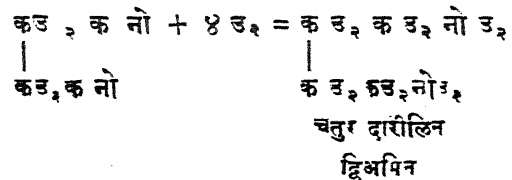
चतुर दारीलिन द्विअमिन

इस यौगिकमें चार दारीलिन मूल--क उ$_2$-हैं। अतः इसका नाम चतुर-दारीलिन-द्विअमिन पड़ा है।

मधुरोल (Glycerol)

यह त्रि-उदिक मद्य है, शीले नामक वैज्ञानिक ने सं० १८३६ वि० में इसका सर्वप्रथम अन्वेषण किया था। यह भी स्वादमें मीठा होता है। उसने जैतूनके तैलको सीस ओषिद (मुर्दासंख) के साथ गरमकरके इसे प्राप्त किया था। बादको चेवरुअल नामक रसायनज्ञ ने यह सिद्ध किया कि सम्पूर्ण प्राकृतिक तैलोंमें मधुरोल विद्यमान रहता है। यह गाढ़ा नीरंग द्रव होता है। ठण्डा करनेपर यदि शुद्ध हो तो रवेदार होजाता है जिसका द्रवांक १७°श है

इसका कथनांक २६° है। कथनांक पर यह विभाजित होने लगता है। इसे क्षीण दबावके अन्दर स्रवित करना चाहिये। यह जलके साथ पूर्णतः सब अनुपातोंमें मिलन शील है।

मधुरोलका संश्लेषण—सिरकोनसे मधुरोल बनाया जा सकता है।

प्रक्रियायें कई श्रेणीमें समाप्त होती हैं।

सिरकोनका अवकरण करनेसे सम अग्रील मद्य प्राप्त होता है, जिसे गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे अग्रीलिनमें परिणत किया जा सकता है। अग्रीलिन हरिन्के साथ अग्रीलिन हरिद देता है, जिसे नैलिन् हरिद, नैह$_2$, से प्रभावित करके त्रिहरोअग्रेन अथवा मधुरील त्रिहरिदमें परिणत कर सकते हैं। यह हरिद जलके साथ १७०° तक गरम करनेसे मधुरोल दे देता है।

```
कउ₃           कउ₃             कउ₃
 |             |               |
कओ ——>     कउ (ओउ) ——>      कउ
 |    उ₂       |     उ₂गओ₄     ||
कउ₃           कउ₃             कउ₂
सिरकोन        समअग्रील         अग्रीलिन
              मद्य

     कउ₃           कउ₂ह          कउ₂ओउ
——> |      ——>    |     ——>     |
                        उ₂ओ
ह₂  कउह     नैह₂   कउह           कउओउ
     |              |             |
    कउ₂ह           कउ₂ह          कउ₂ओउ
   अग्रीलिन        मधुरील
    हरिद           त्रिहरिद        मधुरोल
```
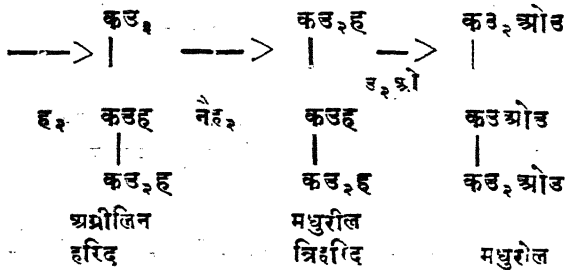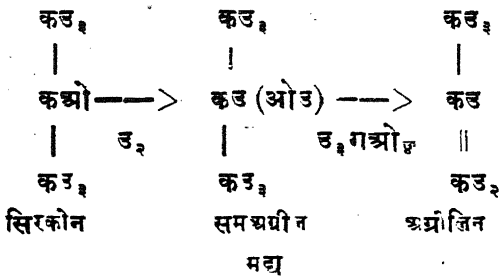
इस संश्लेषण विधिसे स्पष्ट है कि मधुरोलका संगठन ओउ कउ$_2$. कउ (ओउ). कउ$_2$ ओउ, ही होना चाहिये।

मधुरोलके गुण—मधुरोलमें तीन उदौषिल मूल हैं अतः यह सिरकिक अनार्द्रिदके साथ गरम किया जाय तो तीन प्रकारके सिरकील यौगिक प्राप्त होंगे, उन्हें एक-सिरकिन, द्वि-सिरकिन, और त्रिसिरकिन कह सकते हैं:—

```
कउ₂. ओ. कओ कउ₃
 |
कउ ओउ
 |
कउ₂ ओउ
मधुरोल-एक-सिरकिन

कउ₂.ओ. कओ कउ₃
 |
कउ. ओ. कओ कउ₃
 |
कउ₂ ओउ
 द्वि-सिरकिन

कउ₂. ओ. कओ कउ₃
 |
कउ. ओ. कओ कउ₃
 |
कउ₂. ओ. कओ कउ₃
 त्रिसिरकिन
```
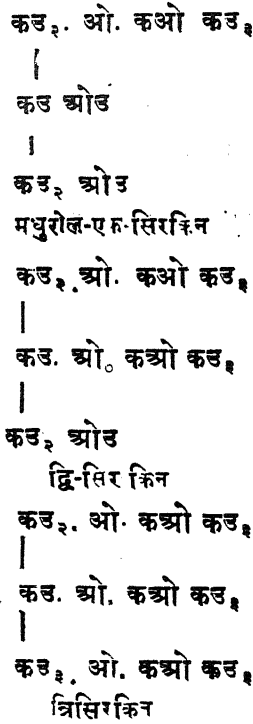
मधुरोलमें उदहरिकाम्ल गैस प्रवाहित करनेसे मधुरोल-अ-एकहर उदिन प्राप्त होता है। पर यदि मधुरोल को सिरकाम्ल में घुला कर उबाला जाय और उदहरिकाम्ल गैस प्रवाहित की जाय तो द्विहर उदिन प्राप्त होगा। मधुरोल पर स्फुर पंचहरिदके प्रभावसे मधुरीलत्रिहरिद प्राप्त हो सकता है।

```
कउ₂ह              कउ₂ह              कउ₂ह
 |                 |                 |
कउ. ओउ            कउ. ओउ            कउह
 |                 |                 |
कउ₂ ओउ.           कउ₂ह              कउह
मधुरोल-अ'-        मधुरोल-अ अ--'     मधुरील
हर उदिन           द्विहर उदिन        त्रिहरिद
```
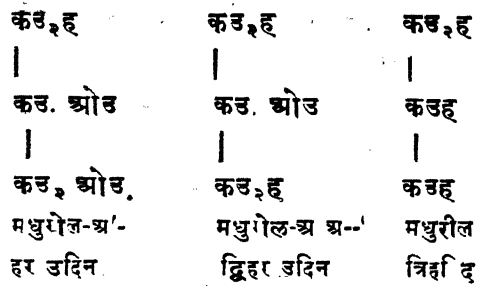
मधुरोलको हलके नोषिकाम्ल के साथ ओषदीकृत करनेसे मधुरिकाम्ल और इमलोनिकाम्ल (tartronic acid) प्राप्त होते हैं।

```
कउ₂ ओउ          कओ ओउ
|               |
कउ ओउ           कउ ओउ
|               |
कओ ओउ           कओ ओउ
मधुरिकाम्ल       इमलोनिकाम्ल
```

मधुरोल का व्यवसाय

व्यापारमें मधुरोलका बड़ा उपयोग होता है। इसके प्राप्त करनेके लिये सबसे उचित सामग्री तैलों, और चर्बियोंसे मिलती है। यह कहा जा चुका है कि जितने प्राकृतिक तैल हैं उन सबमें मधुरोल विद्यमान रहता है। मधुरोलके सूत्र से स्पष्ट है कि इसमें तीन उदौषिल मूल हैं। ये तीनों उदौषिल मूल किसी भी मज्जिकाम्ल के तीन अणुओंसे संयुक्त होकर सम्मेल बना सकते हैं। वस्तुतः तैल मज्जिकाम्ल और मधुरोलके सम्मेल ही तो हैं।

उदाहरणतः, चर्बिन मधुरोल और चर्बिकाम्ल का सम्मेल है, उद विश्लेषण करने से मधुरोल और चर्बिकाम्ल पृथक् पृथक् हो सकते हैं।

```
कउ₂. ओ.| कओ क₁₇ उ₃₅        उ ओउ
|       |
कउ. ओ.  | कओ. क₁₇, उ₃₅    + उ ओउ
|       |
कउ₂. ओ.| कओ. क₁₇, उ₃₅      उ ओउ
चर्बिन

  क उ₂ ओउ
= |
  कउ ओउ   +   ३ क₁₇, उ₃₅ क ओ ओ उ
  |
  कउ₂ ओउ
  मधुरोल                 चर्बिकाम्ल
```

मधुरोलके व्यवसायमें इन्हीं चर्बियों अथवा तैलों का उद-विश्लेषण किया जाता है। उद विश्लेषण के लिये थोड़ा से तीव्र गन्धकाम्ल अथवा चूनेकी थोड़ी मात्राकी उपस्थितिमें तप्त भापसे काम लिया जाता है। जहां गन्धकाम्लका उपयोग किया जाता है वहां थोड़ा सा मधुरोल विभाजित हो जाता है। शेष पदार्थसे मज्जिकाम्लकी सतह पृथक् करली जाती है। चूना वाली विधिमें मीठा रस जिसमें मधुरोल होता है गाढ़ा कर लिया जाता है। इसके रङ्गको दूर करनेके लिये हड्डीके कोयले द्वारा इसे छानते हैं। फिर वाष्पी भूत करके जितने घनत्वका मधुरोल आवश्यक हो, प्राप्त कर लिया जाता है।

साबुन बनानेके कारखानेमें जो शेष द्रव रह जाता है उससे मधुरोल अधिक मात्रामें तैयार किया जाता है। इस शेष द्रवमें सैन्धक हरिद, क्षार, और अन्य मज्जिक पदार्थों की अशुद्धियां विद्यमान रहती हैं। इस द्रवको अम्लीय करके छान लेते हैं, इस प्रकार मज्जिकपदार्थ पृथक हो जाते हैं, छने हुए द्रवको शिथिल करके क्षीण दबावके अन्दर वाष्पीभूत करके गाढ़ा कर लिया जाता है।

इन विधियोंसे जो मधुरोल प्राप्त होता है वह सर्वथा शुद्ध नहीं होता है। वाष्प-स्रवण करके इसको शुद्ध किया जा सकता है। स्रवित पदार्थके जलको भाप द्वारा गरम किये गये शून्य-कड़ाहों में औटा कर उड़ा दिया जाता है। ये शून्य कड़ाहे ऐसे पात्र होते हैं जिनकी थोड़ीसी हवा यन्त्र द्वारा निकाल ली जाती है।

मधुरोलका संश्लेषणमें उपयोग

मधुरोल अनेक पदार्थोंके बनानेके काममें आता है। कुछ पदार्थोंका विवरण यहां दिया जाता है।

(१) मधुरोलको काष्ठिकाम्लके साथ स्रवण करने से पिपीलिकाम्ल प्राप्त होता है।

```
क उ₂ ओ उ                  क उ₂ ओ उ
|                         |            + क ओ₂
क उ ओ उ ——>              क उ ओ उ
|                         |
कउ₂ ओ. क ओक ओओ उ          क उ₂. ओ क उ ओ
मधुरोल काष्ठिक सम्मेल        मधुरोल एक पिपीलिन

        क उ₂ ओ उ
        |              + उ क ओ ओ उ
  —>    क उ ओ उ         पिपीलिकाम्ल
        |
        क उ₂ ओ उ
```

पर यदि अधिक उच्चतापक्रम (२००°–२२०°) का उपयोग किया जाय तो मधुरोल कार्बिक सम्मेलसे लशुनील मद्य (Allyl alcohol) प्राप्त होता है।

क उ$_2$ ओ. क ओ. क ओ$_2$ उ   क उ$_2$ ओ क ओ
| | |
क उ ओ उ   —>   क उ ओ क ओ
| |
क उ$_2$ ओ उ   क उ$_2$ ओ उ
↓
क उ$_2$
||
क उ + २ क ओ$_2$
|
क उ$_2$ ओ उ
लशुनीलमद्य
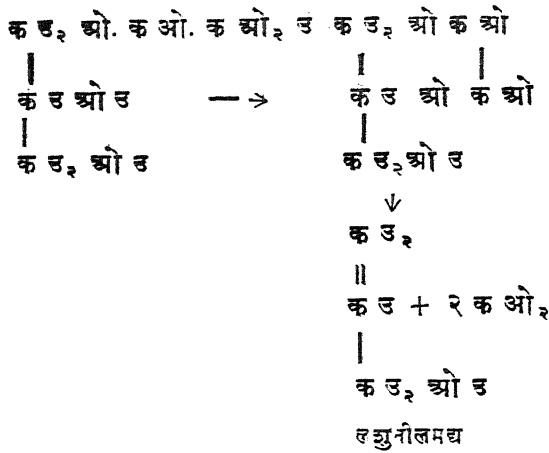
यह लशुनील मद्य नीरंगद्रव है जिसमें बड़ी तीक्ष्ण गन्ध होती है इसका क्वथनांक ९६° है। इसमें असम्पृक्त यौगिकों और मद्यों दोनोंके गुण विद्यमान हैं। यह लवणजनतत्त्वसे युक्त-यौगिक बना सकता है और तीव्र ओषदकारकोंके प्रभाव से मद्यानार्द्र, चरपरीलमद्यानार्द्र, (जिसे चरपरोलिन भी कहते हैं) देता है। यह मद्यनार्द्र पुनः ओषदीकृत होकर चरपरीलिकाम्लमें परिणत हो जाता है।

क उ$_2$ क उ$_2$ रु
|| |
क उ + रु$_2$ → क उ रु
| |
क उ$_2$ ओ उ   क उ$_2$ ओ उ
लशुनीलमद्य

क उ$_2$ —> क उ$_2$ —> क उ$_2$
|| || ||
क उ ओ$_2$ क उ   क उ
| | |
क उ$_2$ ओ उ   क उ ओ   कओओ उ
चरपरोलिन   चरपरीलिकाम्ल
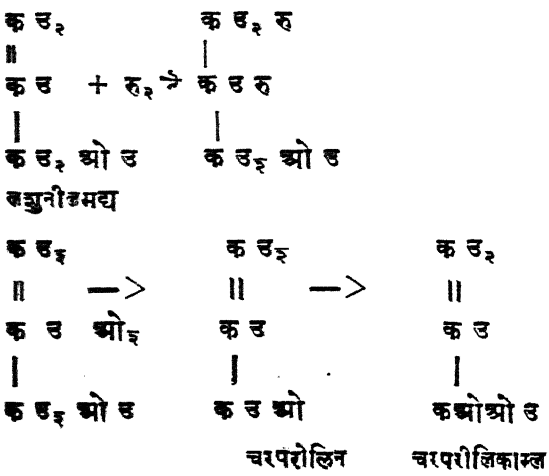
पांशुज परमांगनेत द्वारा ओषदीकृत होनेसे यह मधुरोलमें पुनः परिणत हो जाता है, जैसे ज्वलीलिन मधुओलमें परिवर्तित हुआ था।

क उ$_2$ क ओ उ
|| |
क उ + उ$_2$ओ + ओ =   क उ ओ उ
| |
क उ$_2$ ओ उ   कउ$_2$ ओउ
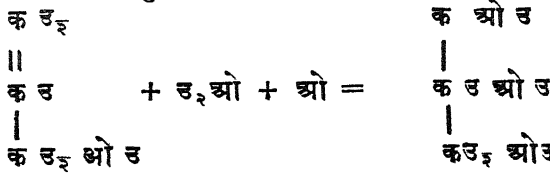
(२) चरपरोलिन (acrolein)—क उ$_2$:क उ. क उ ओ—चरपरोलिनमें मधुरोल की अपेक्षा जल के दो अणु कम हैं। मधुरोलको पांशुजअर्ध-गन्धेतके साथ स्रवण करनेसे चरपरोलिन प्राप्त हो सकता है।

क$_3$उ$_5$(ओउ)$_3$—२ उ$_2$ओ = क$_3$उ$_4$ओ
चरपरोलिन
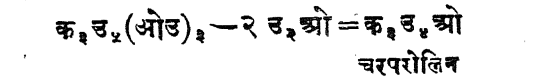
तीक्ष्ण गंधका यह नीरंग द्रव है जिसका क्वथनांक ५२° है। इसमें मद्यानार्द्र के गुण हैं अर्थात् यह रजत-नोषेत-अमोनिया घोलको अवकृत करके रजत दर्पण दे सकता है। सैन्धकअर्धगन्धेतके साथ युक्त यौगिक बना सकता है। अरुणिन्के अणुसे संयुक्त हो जाता है जिससे इसकी असम्पृक्तता सिद्ध है।
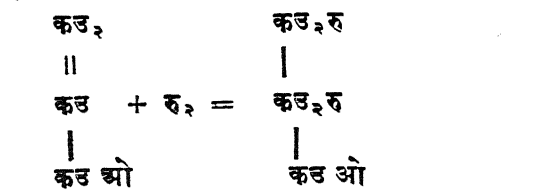
कउ$_2$ कउ$_2$रु
|| |
कउ + रु$_2$ =   कउ$_2$रु
| |
कउ ओ   कउ ओ
द्वि अरुणो अम्र मद्यानार्द्र

(३) स्फुर और नैलिन्के प्रभावसे भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें यह कभी सम अम्रील नैलिद, कभी लशुनील नैलिद और कभी अम्रीलिन देता है। स्फुर और नैलिन्के प्रभावसे उदनैलिकाम्ल जनित होता है जो मधुरोलपर निम्न प्रकार प्रक्रियायें करता है। यह कल्पना की जा सकती है कि प्रक्रियामें पहले मधुरील त्रिनैलिद बनता है जिसमेंसे नैलिन् के दो परमाणु पृथक् हो जाते है और लशुनील नैलिद बन जाता है। लशुनील नैलिद फिर उदनैलिकाम्लके एक अणुसे संयुक्त होकर अम्रीलिन नैलिद देता है, जो नैलिन् मुक्त करके अम्रीलिनमें परिणत हो जाता

है। पर यदि उदनैलिकाम्लकी समुचित मात्रा विद्यमान हो तो अग्रीलिन नैलिद अवकृत होकर सम-अग्रील नैलिदमें परिणत हो जाता है। प्रक्रियायें निम्न प्रकार हैं:—

```
कउ_२ ओउ                 कउ_२नै        कउ_२
|        + ३ उनै =      |     ——>      ||
कउ ओउ                   कउ नै         कउ
|                        |  +उ_२ओ      | + नै_२
कउ_२ ओउ                 कउ_२नै        कउ_२नै
                         मधुरील         लशुनील
                         त्रिनैलिद        नैलिद

कउ_२            कउ_३            कउ_३
||              |               |
कउ  + उ नै =कउनै     =      कउ  +नै_२
|               |               ||
कउ_२नै          कउ_२नै          कउ_२
                 अग्रीलिन         अग्रीलिन
                 नैलिद

कउ_३            कउ_३
|               |
कउनै            कउनै +नै_२
|  + नै उ=      |
कउ_२नै          कउ_३
                 सम अग्रील
                 नैलिद
```
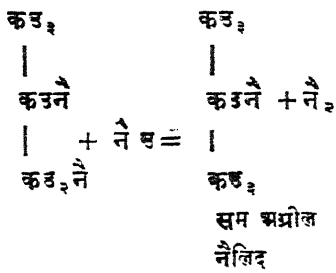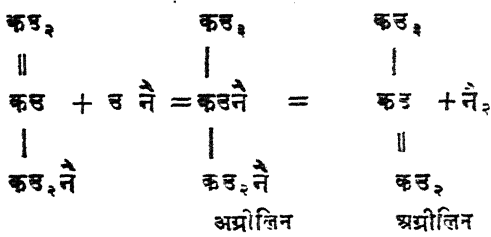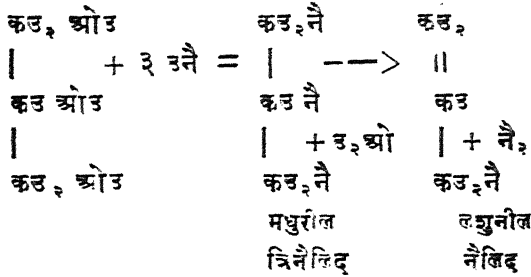
नोषोमधुरिन

सोब्रीरो नामक वैज्ञानिक ने सं० १६०३ वि०में नोषिकाम्ल और मधुरोलकी प्रक्रियासे नोषोमधुरिन $क_३ उ_५ (ओ नो ओ_२)_३$, बनाया। स्वेडेनके इंजीनियर जगत् विख्यात् नोबेलने इस यौगिकको व्यापारिक मात्रामें बनाना आरम्भ किया (सं० १६१६ वि०)। उसकी विधि इस प्रकार है:—१२ भाग धूम्रित नोषिकाम्ल और २० भाग गन्धकाम्लके मिश्रणको भलीप्रकार ठंडा किया जाता है और इसमें चार भाग मधुरोल एक विशेष योजना पूर्वक डाला जाता है। प्रक्रियामें नोषोमधुरिन निम्न प्रकार जनित होता है।

$$क_३ उ_५ (ओ उ)_३ + ३ उ नो ओ_३$$
$$= क_३ उ_५ (ओ नो ओ_२)_३ + ३उ_२ ओ$$
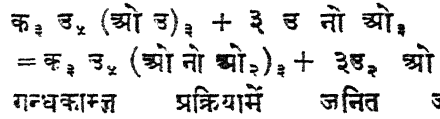
गन्धकाम्ल प्रक्रियामें जनित जलको सोखकर दूर कर देता है। थोड़ी देरके पश्चात् मिश्रणको रख देने से सतह पर नोषोमधुरिन तैरने लगता है। इसको जलके अन्दर उड़ेल दिया जाता है। जलमेंसे यह भारी तैलके समान पृथक् हो जाता है। इसे पानीके साथ जोरोंसे हिलाते हैं और सैन्धक कर्बनेतके घोल द्वारा इसके साथ जो भी कुछ भी अम्ल लगा हो शिथिल कर देते हैं। फिर भली प्रकार छान कर इसके पानीको अलग कर देते हैं फलालेन, या फेल्टके वस्त्रोंमें बहुधा छाना जाता है जिनके ऊपर नमक की एक सतह भी होती है।

नोषोमधुरिन भारी नीरङ्ग द्रव है जिसका घनत्व १·६ है। यह विषैला होता है। यदि बहुत फैलाकर यह जलाया जाय तो यह खामोशीसे जलता है पर यदि एक दम गरम किया जाय तो बहुत जोरों का विस्फुटन होता है।

३ भाग नोषोमधुरिन को १ भाग कीजलगूर मिट्टी के साथ मिलाकर डाइनेमाइट बनाया जाता है। विस्फुटन पदार्थों में डाइनेमाइटका बहुत उपयोग किया जाता है. पहाड़ोंमें सुरंग खोदनेके लिये भी इसकी सहायता ली जाती है।

वैज्ञानिक परिमाण

(ले० श्री डा० निहालकरण सेठी डी० एस-सी०)

५८. (ताप की इकाइयां)

(Heat-units)

तापक्रम —(Temperature) १ वायुमण्डल दबावपर शुद्ध बर्फके पिघलनेके तापक्रमको ०° श कहते हैं और उसी दबावपर जलके क्वथनांकको १००° श कहते हैं। इन दोनोंके बीचमें स्थिर-आयतन उद्-जनतापमापक सहायतासे १०० भाग किये गये हैं और प्रत्येक भाग १° शतांशमापक=१° श कहलाता है।

अंग्रेज़ी नाप— ०° श = ३२° फहरन हाइट = ३२° फ

१००° श = २१२° फ

$$\therefore \text{त}^\circ \text{श} = \left(\frac{\text{त} \times ९}{५} + ३२^\circ\right)^\circ \text{फ}$$

$$\text{और त}^\circ \text{फ} = \tfrac{५}{९} (\text{त} — ३२)^\circ \text{श}$$

ताप (Heat)—इकाई-कलारी = वह ताप जो १ ग्राम जलको त° श से (त + १)° श तक गर्म कर दे

गत्यात्मक इकाई (Dynamical or mechanical unit) अर्ग (देखो पृष्ठ)

मध्यकलारी = जो ताप १ ग्राम जल का तापक्रम ०° श से १००°श करदे उसका $\frac{१}{१००}$ वां भाग

= ४.१८४×१०^७ अर्ग. = ४. १८४ जूल

२०° — कलारी (त = २०° श) = ४.१८० जूल

१५° — कलारी (त = १५° श) = ४.१८४ जूल

गैसीय स्थिरांक 'र'—जो निम्न समीकरण में काम आता है:—

$$\text{द} \times \text{आ} = \text{र} \cdot \frac{\text{त}}{\text{भा}}$$

द=दबाव (डाइन /श म² ०); आ=आयतन (श म³ ०); त=तापक्रम (०° केलविन); भा=ग्राम-अणु का भार (ग्र)

$$\therefore \text{र} = \frac{\text{द आ भा}}{\text{त}} = ८{\cdot}३१५ \times १०^७ \text{ अर्ग / ग्राम अणु}$$

$$= १{\cdot}९८९ \text{ कलारी (२०°) / ग्राम अणु}$$

एक ग्राम गैसके लिये 'र' का मूल्य निकालने को अणुभारसे उपर्युक्त संख्याको भाग देना चाहिये।

नोट:— तापक्रम नापने की उस प्रथाको जिसमें —२७३° श को ०° का तापक्रम मानते हैं केल्विन की प्रथा कहते हैं और इस पर नापे हुए तापक्रम को °क लिखते हैं। बरफका तापक्रम इस प्रथामें २७३° और भापका ३७३° होते हैं।

५९—प्रमाण तापक्रम

(Standard Temperatures)

क्व० = क्वथनांक (Boiling Point); द्र० = द्रवांक (Melting point); प० = परिवर्त्तनांक (Transition Point)

वस्तु		तापक्रम	वस्तु		तापक्रम
उद्जन	क०	—२५३°श	दस्तम्	द्र०	४१९.४°श
ओषजन	क०	—१८३°	गंधक	क०	४४४.७
कर्बनद्विओषिद्	क०	—७७·२	स्फटम्	द्र०	६५७
पारद्	द्र०	—३८·८	सैन्धकहरिद्	”	८०१
जल	”	०°	पांशुज गन्धेत	”	१०७०
सैन्धक गन्धेत, सै₂गओ₄१०उ₂ओ)	प०	३२.३८३	पैलादम	”	१५५०
			परौप्यम्	”	१७५०
जल	क०	१००	वंगम्	क०	२२८०
नफथलीन	क०	२१८	विद्युत् चाप (Arc)	—	३६२० केलविन
वंगम।	द्र०	२३१·९	सूय	—	५८०० ”
बानजावो दिव्योन	क०	३०६·०			
संदस्तम्	द्र०	३२१·०			

६० द्रवांक और क्वथनांक

(Melting and Boiling Points)

वस्तु	द्रवांक M. P.	क्वथनांक B. P.	वस्तु	द्रवांक M. P.	क्वथनांक B. P.
पीतल	१,०१५°श		तैल तारपीन	—	१५६
कांसा	९००		” जैतून	—	३००
कपूर	१७५	२०४			
मक्खन	२८—३३				
घी	३६		जल	०	१००
चर्बी	३६—४०		नफथलीन	८०	
लोह ढला	१५२०				
नरम	१८०८				
स्पात (स्टील)	१३५०				
राल	१३९—१४७				
मोम (पैरेफिन सख्त)	५२—५६	३९०—४३०			
” (” नरम)	३८—५२	३५०—३९०			
” मक्खी का	६१—६४				

६१ लम्ब प्रसार गुणक
(Coefficient of Linear Expansion)

वस्तु	लम्ब प्रसार गुणक	वस्तु	लम्बप्रसार गुणक
	×१०⁻⁶		×१०⁻⁶
स्फटम्	२५.५	बर्फ (जल)	५०७
इस्पात (स्टील)	१०.५ – ११.६	मोम (वैरेकिम)	११०
ईंट	५.५	दस्तम्	२५.८ – २६.३
कांच	७.८ – ९.७	रजत (चांदी)	१८.८
गंधक	७०	लकड़ी (रेशे की ओर)	३ – ५
ग्रैफाइट (लेखनिक)	७.९	" (रेशे के ⊥)	३० – ६०
जर्मन चांदी	१८.४	लोह ढला	१०.२
वंगम्	२१.४	" नरम	११.९
ताम्रम्	१६.७	" स्टील	१०.५ – ११.६
नकलम्	१२.८	सीसा	२७.६
पीतल	१८.९	सुवर्ण	१३.९
पोर्सिलेन (चीनीमिट्टी)	२.५ – ३.४	संगमरमर	१.४—३.५
परर्रौप्यम्	८.९	स्फटिक अक्षके ∥	७.५
परर्रौप्यम् इन्द्रम्	८.७	" ⊥	१३.७
		स्लेट	६—१०

६२ आयतन प्रसार गुणक—द्रव

(Coefficient of Cubical Expansion)—Liquids)

द्रव	गुणक	द्रव	आयतन-प्रसार गुणक
	×१०⁻⁵		×१०⁻⁵
मीलिन्	८५	बानजावीन	१२४
ज्वलीलमद्य	११०	मधुरिन्	५३
दारीलमद्य	१२२	जल— ०°१—०°	५ ३
ज्वलक	१६३	जल— १०°—२०°	१५·०
		जल— २०°—४०°	३०·२
		जल— ४०°—६०°	४५·७
		जल— ६०°—८०°	५८·७
		तारपीन तैल	९४
		पारद	१८·१

६३ आयतन प्रसार गुणक-गैस

(Coefficients of Cubical Expansion of Gases)

गैस	आयतन गुणक स्थिर दवाव ७६० स. म पर	दबाव गुणक (स्थिर आयतनपर)
वायु (०°-१००°)	·००३६७१	·००३६७.४
उद्जन	३६६१	३६६२५
नोषजन	३६७३	३६७४३
ओषजन		३६७४

६४—आपेक्षिक ताप-ठोस
(Specific Heats-Solids)
(अधिकतर ०°-१००°५ के बीच के)

वस्तु	आपेक्षिक ताप	वस्तु	आपेक्षिक ताप
काच (क्राउन)	·१६	यूरिका	·०६८
(फ़्लिंट)	·१२	संगमरमर	·२१
लेखनिक ११°	·१६०	स्फटिक	·८६१
६००°	·४६७	एसबैसटस	·२०
जर्मन चाँदी	·०६५	एबोनाइट	·३३
पीतल	·०७९	रबड़	·२७-·४८
पोर्सिलेन (चीनीमिट्टी)	·२५५		
बर्फ़ (जल)	·५०२		
मोम (पैरेफिन)	·६९		

६५—आपेक्षिक ताप-द्रव
(Specific Heat—Liquids)

वस्तु	आपेक्षिक ताप	वस्तु	आपेक्षिक ताप
नीलिन्	·५१४	जल	१·०
ज्वलीलमद्य	·६१५	तारपीन तैल	·४२
दारीलमद्य	·६१३	पारद	·०३३
ज्वलक	·५६	पैरेफिन तैल	·५१-·५४
मधुरिन	·५७	बानजावीन	·३७

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफेसर ब्रजराज,

एम० ए०, बी० एस-सी०, एल० एल० बी०

श्रीयुत सत्यप्रकाश,

विशारद, एम० एस-सी०

भाग २५

मेष-कन्या १९८४

प्रकाशक

विज्ञान परिषत् प्रयाग।

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

अर्थशास्त्र

खपत — ले. श्री. विश्वप्रकाश बी. ए. विशारद १३०, २११

व्यापारिक समितियाँ — ले० श्री विश्वप्रकाश बी. ए. विशारद ... ७६

औद्योगिक रसायन

स्याही — ले० श्री० पं० इन्द्र विद्यालङ्कार एम. बी. एच. ... १

गुब्बारे — ले० श्री० डाक्टर शिखिभूषणदत्त डी. एस-सी. ... १४३

वायुयान — ले० श्री० डा० शिखिभूषणदत्त डी. एस-सी. ... १४५

शीशा और शीशेकी चीजें बनाना — ले० श्री डा० रामचन्द्र भार्गव एम बी, बी. एस. ७१

चिकित्सा-शास्त्र

छूत — ले० श्री डाक्टर रामचन्द्र भार्गव एम० बी, बी. एस. ... ५३

शारीरिक प्रक्रिया पर तापक्रम का प्रभाव — ले० श्री डा० नीलरत्नधर डी. एस. सी., आई. ई. एस. ११३, १४८

जीवन चरित

चार्लस डारविन — ले० श्री कृष्णविहारी एम. एस-सी. २६७

जेम्स क्लार्क-मैक्सवल ... २२२

मेडेम क्यूरो — ले० श्री कुंजबिहारी मोहनलाल बी. एस. सी. ... १६४

जीव-विज्ञान

चौपायों का प्रार्थना पत्र — ले० श्री० चिरंजीलाल माथुर बी. ए. एल. टी. ... ६

जीव जन्तुओंके व्यवहारसे ऋतुकी सूचना — ले. श्री अमीचन्द विद्यालंकार ... २१४

ज्योतिष

नवग्रह — ले० श्री० अमीचन्द्र विद्यालङ्कार ३२

सूर्यमंडल — ले० श्री शङ्करलाल जिन्दल एम. एस. सी, एल. एच. एस. ... १२

सूर्यसिद्धान्त — ले० श्री महावीर प्रसाद जी बी. एस. सी, एल. टी विशारद ... ६१, २३२

भौतिक शास्त्र

आश्चर्यजनक किरणें — ले० श्री अमीचन्द्र विद्यालङ्कार ... २५

एक साथ तस्वीर उतारना और सुनना — ले० श्री० अमीचन्द्र विद्यालंकार ... ८२

पृथ्वीकी गुरुत्व शक्तिके प्रभाव — ले० श्री कृष्णचन्द्र बी. एस. सी. ... ६८, १३३

बिजलीकी लहरों द्वारा खबर भेजना — ले० श्री बाबूलाल जी गुप्त एम एस.-सी ... २५२

विद्युन्मय धूलके बादल — ले० श्री दौलतसिंह कोठारी बी. एस-सी ... २७१

वनस्पति शास्त्र

फफूँदीसे मनुष्यको लाभ — ले० श्री कन्हैया लाल एम. एस.-सी ... ५७

बन्दस्थान में वनस्पतिक जीवन—ले० श्री पं० अमीचन्द्र विद्यालङ्कार और पं० इन्द्र विद्यालंकार ... ६०
वृक्षोंका भोजन—ले० श्री० ताराइत्त पांडे एम. एस.-सी. ... १३

रसायन शास्त्र

अमिन—ले० श्री० सत्यप्रकाश एम. एस.-सी. १०५
अम्लहरिद, अनाद्रिद और सम्मेल—ले० श्री सत्यप्रकाश एम-एस-सी ... ४६
असंपृक्त उदकर्बन—ले० श्री० सत्यप्रकाश एम-एस-सी ... २१७
गन्धक और गन्धिद—ले० श्री० सत्यप्रकाशजी एम. एस-सी. ... ६४
गन्धकके ओषिद और अम्ल—ले० श्री० सत्यप्रकाश एम. एस-सी ... ६७
जमीनका कांस निकालना—ले० शंकर राव जोशी एम. ए. जी ... ८१
धब्बे छुटानेका रसायन—ले० श्री चन्द्रप्रकाश जी अग्रवाल ... २५७
पानी—ले० श्री० रामलाल विशारद हायजिन इन्स्पेक्टर ... १८५, १६८
नोषजन और अमोनिया—ले० श्री सत्यप्रकाश एम ए स सी ... १५१
नोषजनके ओषिद और अम्ल—ले० श्री० सत्यप्रकाशजी एम. एस.-सी. ... २००
बहु उदिक मद्य और उनके यौगिक—ले० श्री सत्यप्रकाश एम. एस.-सी. ... २७७
भारतवासियों के साधारण भोजन पदार्थों में रासायनिक गुणोंका कुछ परिचय—ले० श्री० विमलकुमार मुकर्जी एम. एस-सी. १०६
मगनीसम और जल—ले० श्री० प्रकाशचन्द्रजी एम. एस-सी ... १११
रासायनिक युद्ध—ले० श्री० यमुनादत्तजी तिवारी एम-एस-सी ... २०७, २४७
वृद्धावस्था और जीर्णता ले० श्री डा० नीलरत्न धर डी. एस. सी, आई. ई. एस. ... १६६
श्यामजन यौगिक—ले० श्री सत्यप्रकाश एम. एस-सी० ... १७४
सुनारोंकी रसायनक्रिया—ले० श्री० शंकरलाल जिंदल, एम. एस-सी, एल एच० एस. १७
स्फुर—ले० श्री० सत्यप्रकाशजी एम. एस-सी २५६

साधारण

राज्य प्रबन्ध—[ले० श्री० पं० शीतलाप्रसाद तिवारी विशारद २०
विज्ञान और मिथ्यान्ध विश्वास—ले० श्री हरिवंशराय वर्मा २४१
विज्ञानप्रपंच—(सम्पादकीय) ... १९३
वैज्ञानिक परिमाण—ले० श्री० डा० निहालकरण सेठी डी. एस-सी. ३४-८७-११७-१८१-२२४,२८४
वैज्ञानिकीय—ले० श्री० अमीचन्द्र विद्यालंकार ३८,२७४
वैज्ञानिकीय—ले० श्री० शंकरलाल जिन्दल एम. एस-सी १६०
वैज्ञानिकीय—ले० श्री कुंजबिहारी मोहनलाल बी. एस-सी. २१३
समालोचना—ले० श्री कृष्णानन्द ... ६५
समालोचना—ले० श्री सत्यप्रकाश जी एम. एस-सी. २१५
समीकरण मीमांसा की भूमिका—ले० श्री पद्माकर द्विवेदी ४१
संश्लेषण-युग—ले० श्री० अमीचन्द्र विद्यालंकार १०८

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

मध्यमाधिकार ... ... ॥=)

स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)

त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी., एम-बी. बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० ... बी०के मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

भाग १ ... ... २॥)

भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद्—ले० प्रो० रामदास गौड १॥=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—दीवान वंशधारीलाल हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

पूर्ण संख्या—१५१

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A.708

भाग २६ Vol. 26. | तुला, १९८४ | संख्या १ No. 1

अक्तूबर १९२७

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allababad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय सूची

१—दैत्रासुर संग्राम—[ले० श्री० तत्ववेत्ता] ... १
२—गैस रक्षक और धुएँ के परदे—[ले० श्री०पं० यमुनादत्तजी तिवारी, एम० एस-सी०] २
३—संचीणम् और आञ्जनम्—[ले० श्री सत्यप्रकाश जी एम०एस-सी] ५
४—तना या पेड़ी—[ले० श्री० पं० शङ्करराव जोशी ११
५—विद्युन्मय धूलके बादल—[ले० श्री दौलतसिंह कोठारी बी० एस-सी] ... १८
६—ह्वान्ते आरहीनियस—[ले० श्री० कुञ्ज बिहारी मोहनलाल बी० एस-सी] ... १९
७—शर्करायें अथवा कर्ब-उदेत—[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०] २३
८—वैज्ञानिकीय— ३३
९—समालोचना—[लें० श्री सत्यप्रकाश एम. एस-सी ३६
१०—वैज्ञानिक परिमाण—[लें० डा० निहाल करण सेठी डी० एस-स] ३७
११—सूर्य सिद्धान्त [लें० श्री० महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव ४१

ज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २६ | तुला संवत् १९८४ | संख्या १

देवासुर संग्राम

[ले०—श्री० तत्ववेत्ता]

ज्ञानका आरम्भ कितना आशाजनक था, इसके नित्य नूतन चमत्कारों ने संसार-पर नया रंग जमा दिया। मनुष्य ने अपनी कल्पनाओंके घोड़ोंकी रासियां और भी मुक्त कर दीं। फिर क्या था—स्वतंत्र वाजी दल कुलांचें भरने लगा। आकाशमें उड़ा, भूमि पर दौड़ा, जल-के ऊपर तैरा और समुद्रोंके भीतर भी डुबकी लगाने लगा। यह आरम्भकाल था। प्रातःकालके अरुणोदयमें बाल सूर्य्यके समान इसकी मनोमोहनी आकृति भक्तोंके हृदयोंको संतृप्त कर रही थी। युगल कर-बद्ध, श्रद्धा-नत-मस्तक जिज्ञासु आराध्यदेवके सम्मुख सरस मधुर और श्रुति प्रिय शब्दोंसे स्तोत्रोंका मुहुर्मुहुः पाठ कर रहे थे। 'विज्ञान भगवान की जय!' बोल रहे थे और 'त्वमेव माता च पिता च सर्वम्' कहकर अपने अटल विश्वास और हृदयस्त की पावन भावनाओंको एक स्वर से गुञ्जायमान कर रहे थे।

आशुतोष बम्भोलाका रूप विज्ञान ने धारण किया, फिर क्या था, प्रयोगशालाओंमें थोड़ी देर बैठ कर साहस और धैर्य्य पूर्वक समाधिस्थ होइये। परखनलीमें जो कुछ चाहिये डालकर दीप देवके अर्पण कर दीजिये—बस इतने में ही इष्ट-सिद्धि और फल-प्राप्ति निश्चित थी। आँख मूंदकर बस मनमें ही विचार कीजिये कि हे औघड़ दानी विज्ञान भगवान! संसार पुरातन पांच तत्त्वोंसे अब ऊब उठा है—आप कृपा करके हमें नये-नये तत्त्वप्रदान कीजिये। दीन वत्सल करुणायतन महादेव प्रसन्न हो गये और उनके श्रीमुखसे 'तथास्तु' निकल होतो गया कि देखते ही देखते एक, दो, तीन, दस, बीस, तीस ही नहीं, पूरे ९२ तत्त्वोंका देवावतार होना आरम्भ

हो गया। जिस प्रकार श्रीकृष्ण के अवतरणके समय अन्य देवतागण लीला मात्र देखनेके उद्देश्यसे ब्रजमें आकर बस गये थे उसी प्रकार यूरोपकी पवन भूमिमें ये देवतागण तत्त्वोंके भिन्न-भिन्न रूप धारण करके आ ही तो गये।

कुछ दिनों तक बड़ी चहल पहल रही। देवासुर संग्राम आरम्भ हो गया। असुरोंके भयके मारे तत्त्व देवता कांपने लगे। स्वर्ण, परौप्यम् आदि बहुमूल्य देवता भूमिकी खानोंमें छिप गये। आलसी (आर्गन), नूतनम् (नेओन) आदि कुछ तत्त्व ऐसे भयभीत हो गये कि उन्होंने संसारके प्राचीन देवादिदेव वायुसे प्रार्थना की कि महाराज अब आपही हमें शरण दीजिये। बेचारेको दया आगई और अपने भीतर ऐसा छिपा कर रखा कि बहुत दिनों तक असुरोंको पता भी न चला कि ये कहां भाग गये। गुप्त-चर दौड़ाये गये, कोना-कोना ढूंढ़ डाला गया। फिर भी सफलता न मिली। असुराधिपति कंस महाराज ने घोषणा कर दी कि जहां कहीं छोटे-छोटे शिशु पाये जायं सब पकड़ कर मेरे पास भेजे जायं। इन महाराज ने दो दूतोंको विशेष काम सौंपा। इनकी भी करामात देखिये। जासूसी विद्यामें ये निपुण निकले। इन्हें अन्तमें वायु पर सन्देह हो ही तो गया। बेचारे ने हाथ जोड़ पैर छूकर पिण्ड छुड़ाना चाहा पर दूत-रैली और रैमजे क्यों मानने लगे। लगे वायुको परेशान करने। मारा पीटा, बर्फमें गलाया वायुको पानी पानी कर दिया, तब भी न माना तो टुकड़े-टुकड़े करने आरम्भ किये—भीषण अत्याचार हुआ, असुरोंसे दयाकी आशा रखना व्यर्थ ही था। धीरे धीरे वायुका हृदय चीरा गया। बस फिर क्या, शरणागतोंको वह कब तक शरण देता. असुरोंकी विजय होही तो गई, छिपे तत्त्व सामने आये।

अब आगेकी कथा सुनिये। असुराधिपतिको इन छिपे देवोंपर बड़ा क्रोध आया। लगे करने इनकी परीक्षा। क्रूक्स नामक एक क्रूर सरदार था, उसको ये सौंपे गये। उसने इन्हें ऐसी नलियोंमें बन्द करके रक्खा जहाँ सांस लेनेके लिये भी हवा न थी। फिर बेचारोंके तनमें बिजली द्वारा आग लगा दी गई। देवताओंके तनमें आग लगते ही रङ्ग बिरङ्गी ज्योति निकलने लगी। जितने देवता उतनी ही तरहकी ज्योति। फिर क्या था. सभी देवता एक एक करके पकड़े गये।

जो देवता भूमिके भीतर छिपे थे उनकी भी कहानी सुनिये। इन्होंने क्या काम किया कि दो-दो तीन-तीन तत्त्वोंके साथ ऐसे जम कर बैठ गये कि इनके रूप रङ्गका पता ही न चलता। इनके साथ असुरोंका व्यवहार भी देखिये. तेजसे तेज तेजाबमें इनको डुबोया गया, इन्हें आग पर फिर उबाला गया। छाना गया, घोला गया, पीसा गया, इनसे बार बार कहा गया कि निकलकर बाहर आओ। बिजलीकी भट्टियोंमें इन्हें तपाया गया, पिघलाया गया। बेचारे कब तक चुप बैठते। विद्युत् विश्लेषण द्वारा इनकी हड्डी चूर-चूर कर दी गई। ये भी पकड़ लिये गये। यह देवासुरसंग्राम अब भी चल ही रहा है। कलियुग है ही। देवता पकड़े ही जायँगे। राक्षसोंकी जीत होगी ही। असुरोंके बड़े अधिपति मैण्डलीफ़ महोदयका अब भी कहना है कि हे प्यारे दूतो! अभी कुछ देवता और भी छिपे हुए हैं. घबराओ नहीं, जब तक इन्हें भी पकड़ न लिया जायगा तब तक असुरोंको शान्ति नहीं मिल सकती है।

गैस-रक्षक और धुएँ के परदे

(Cas masks and smoke screens)

[ले०—श्री० पं० युगलकान्त त्रिवेदी एम० एस-सी०]

जब कि विषैले वायव्य पदार्थोंका समरमें प्रचुरतासे प्रयोग किया जाने लगा तो उनसे बचावके लिये भी कुछ साधन सोचने अत्यन्त आवश्यक हो गये। सिपाहियोंके लिये युद्धस्थल में ऐसे पहिनावेमें जिससे वायु भी उनको स्पर्श न कर सके जाना असम्भव ही है।

यदि सारा शरीर किसी भाँति वायुसे सुरक्षित करभी लिया जाय, सांसकी गति तो नहीं रोकी जा सकती। वैज्ञानिकोंने सोचा कि कोई यन्त्र ऐसा बनाया जाय जिसमें ऐसे पदार्थ भरे जा सकें जो कि विषैले वायव्योंको रोक लें और शुद्ध वायुको शरीरमें प्रवेश करने दें और जिसका आकार ऐसा हो कि चेहरे पर सुगमतासे पहन लिया जाय। ऐसे भिन्न भिन्न प्रकारके जो यन्त्र बनाये गये उनको गैस रक्षक या मास्क्स कहते हैं। ज्यों-ज्यों वायव्य पदार्थों द्वारा आक्रमण करनेका विधि परिष्कृत होती गई त्यों-त्यों उनसे बचावोंके भी उपाय सुधरते गये। वर्तमान समयमें ऐसा कोई भी यन्त्र ज्ञात नहीं है जो कि सब प्रकारके विषैले वायव्योंसे बचाव करले। इसलिये यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है कि इन यन्त्रोंमें भरे जानेवाले पदार्थ समय-समय पर बदलते गये। पहिले पहल कुछ ब्रिटिश गैस मास्क्स सिर्फ अत्यन्त शोषक लकड़ीके कोयले और सैन्धक चूनेसे ही भरे गये। आजकल मुख्यतः ये ही दो पदार्थ इन यन्त्रोंके बनानेके काममें लाये जाते हैं। अत्यन्त शोषक कोयला इन यन्त्रोंको बनानेके लिये सर्व प्रधान वस्तु है क्योंकि अभिशोषण और अधिशोषण शक्ति ही इस क्षेत्रमें, तीव्र और प्रखर रासायनिक पदार्थों से विषैले वायव्योंको रोकनेके लिये अधिक उपयोगी है। साधारणतः यह माना जाता है कि कोयलेकी यह शक्ति उसमें अति सूक्ष्म छिद्रोंके होनेके कारण है। अत्यन्त शोषक कोयलेको बनानेके लिये प्रधान पदार्थ ये हैं:—एन्थ्रेसाइट (Anthracite) पिच (pitch) लकड़ी नारियलका छिलका या और कर्बनवाले पदार्थ जो कि अग्नि देनेसे इस प्रकार जलते हैं कि उनके नोषजन, ओषजन और उद्जन पृथक् हो जाते हैं और कर्बनका ढांचा जिसमें अगणित छिद्र होते हैं, रह जाता है। इस कोयलेको बनानेके लिए जो महान् उलझनोंसे भरी हुई क्रियायें करनी पड़ती हैं, उनका यही अभिप्राय होता है कि कोयलेमेंसे सब उद्कर्बन चले जायं नारियलके छिलकेसे अति उपयोगी कर्बन मिलता है। नारियलके छिलके एक बन्द भट्टेमें ९००° तापपर साधारण वायुके दबाव पर करीब १२ घण्टे तक गरम किये जाते हैं। इसके बाद इस कोयलेके १.१०" के करीब जिनका व्यास हो टुकड़े बनाये जाते हैं और जब इसके ऊपर ९५०° तापपर भाप बराबर ७ घण्टे तक दिया जाता है। दूसरी क्रिया इसको बनानेकी यह है कि कर्बन वाले पदार्थ बहुत ही ऊँचे तापपर गरम किये जाते हैं और तब केवल वायुकी सहायता से ठण्डा किये जाते हैं और फिर गरम किये जाते हैं तीसरी विधि जो बहुत ही लाभकारक सिद्ध हुई है, वह यह है—चीड़के सदृश पेड़ोंकी लकड़ी (Coniferous wood) को दस्तहरिद, द ह२ से सम्युक्त किया जाता है। तब यह लकड़ी बहुत ऊँचे तापपर जलाई जाती है और फिर इससे नमक सदृश पदार्थ जलसे धोकर अलग कर लिए जाते हैं। चौथी विधि ऐसे कोयलेके बनानेकी यह है—नारियलका छिलका या और कर्बनवाले पदार्थ लेनेके बदले बहुत महीन पीसा हुआ एन्थ्रेसाइटपिच (Anthracite, pitch) और गन्धकका मिश्रण काममें लाया जाता है। इस विधिमें बनाये हुए कोयलेको कर्बनाइट (Carbonite) कहते हैं और नारियलके छिलके और एन्थ्रेसाइटसे जो बनता है उनको डोरसाइट (Dorsite) और और बेकराइट (Bachrite) कहते हैं। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि कोयलेको यदि उसका छिद्रीदार ढांचा है उसको बनाये रखनेके लिए काफी शक्ति होनी चाहिये जिससे कि वायुकी गति यन्त्रमें भरे हुए पदार्थसे रोकी न जाय—दूसरा पदार्थ जो कि इन यन्त्रोंके लिए अति उपयोगी है वह सैन्धक चूना है यह सैन्धक परमांगनेतके साथ मिलाकर काममें लाया जाता है। सैन्धक चूनेकी अधिशोषण शक्ति इतनी होनी चाहिये कि सैन्धक परमांगनेत अपनी ओषदकारक शक्ति यथा सम्भव काममें ला सकें। इसके साथ ही साथ यह भी बतला देना आवश्यक है कि यह पदार्थ जल्दी घिसकर चूर्ण न हो जाय और ऐसे वायव्यों पर बराबर अपना असर करता रहे जैसे फोसजीन (स्फुरजन) और उदश्यामिकाम्लको यन्त्रके

कोयले वाले भागमें नहीं सोखे जाते हैं। जो पदार्थ इस व्यवहारके लिए उपयोगी पाया गया है, वह रासायनिक प्रयोगशाला का सैन्धक चूना नहीं है बल्कि इस पदार्थ में सैन्धक चूनेके अतिरिक्त सिमेण्ट और किसलगुर रहता है। सिमेण्ट तो छोटे-छोटे टुकड़ोंको कड़ापन और दृढ़ता देता है और किसलगुर अभिशोषण शक्ति बढ़ानेमें बड़ा उपयोगी है। साधारणत: यह सैन्धक चूना नीचे लिखे हुए भागोंमें पदार्थोंको मिलानेसे बनता है।

चूना (जलसिञ्चित)	५६%
सिमेण्ट	१८.५%
किसलगुर	८%
सैन्धकक्षार	१.५%
जल	१३%

३ भाग सैन्धक परमांगनेत प्रत्येक १०० भाग ऊपरके पदार्थोंसे बने हुए सैन्धक चूनेमें मिलाये जाते हैं।

कोयला और सैन्धक चूना एक प्रकारके थैलेके आकारके यन्त्रमें भरे जाते हैं और यह यन्त्र तब सुगमतासे चेहरेपर पहिन लिया जाता है। जब मनुष्य इसको पहिनकर विषैले वायव्य प्रयोगको हुई भूमिमें जाता है तो जो वायु वह सांस लेता है इस यन्त्रसे होकर उसके नाक और मुँहमें पहुँचती है जिससे साधारणत: बहुतसे विषैले वायव्य पदार्थ इस यन्त्रमें रोक लिए जाते हैं। यह पहिले ही कहा जा चुका है कि कोई भी ऐसा पदार्थोंका मिश्रण ज्ञात नहीं है जो कि सब विषैले वायव्योंको वायुके अतिरिक्त रोक ले। जब प्रयोग किये जानेवाले विषैले पदार्थोंका गुण मालूम हो जाता है तब उनसे बचावके साधन सोचे जा सकते हैं परन्तु यह प्राय: निश्चित ही है कि बिना कोयले और सैन्धक चूनेके ऐसा यन्त्र बनाना अति कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव ही है।

धुएँके परदे (Smoke screens)

युद्धमें कुहरा और अँधियाराके समान प्राकृतिक संरक्षकोंकी उपयोगिता बहुत प्राचीनकालसे मानी गई है। चढ़ाई करनेके लिए और सेनाकी गति रोकने और बढ़ानेके लिए अँधियारेकी उपयोगिताके वर्णन पुरातन इतिहासमें भी मिलते हैं। वर्तमान सभ्यताका मुख्य उद्देश्य मनुष्यको प्रकृतिका सहारा लेनेसे बिलकुल ही स्वतन्त्र बनाना जान पड़ता है। उससे यह आशाकी जाती है कि कोहरा इत्यादि भी रासायनिक पदार्थोंके प्रयोगसे कृत्रिम बनाये जायं। नेपोलियनने अपनी सेनाकी गतिको गुप्त रखनेके लिए कई बार धुएँका सहारा लिया। अमेरिकन सिविल वारमें भी इसका सहारा लिया गया। यूरोपीय महासमरके समयमें भी धुएँके कृत्रिम बादल बनानेकी वैज्ञानिक खोज बड़ी संलग्नतासे की गई, कृत्रिम धुएँके परदे बनानेके लिए पदार्थोंमें नीचे लिखे हुए गुण होने चाहिये, तब ही कृत्रिम बादल धुएँके परदे बन सकते हैं।

१—पदार्थ अति शीघ्र सुगमतासे बादल बन जाय अर्थात् वायुमें खुलने पर ही पदार्थसे बड़ा ही घना धुंआ पैदा हो।

२—वायुमें पदार्थ सदा ही बहुत घने आकारमें उपस्थित रह सके और इसको बनानेमें बड़ी उलझनों का सामना न करना पड़े, अर्थात् यह पदार्थ बहुत ही उड़नशील न हो।

३—पदार्थसे बड़ा गाढ़ा लगातार जिससे आरपार बिलकुल न देख पड़े और जो बीच-बीचमें फटके टुकड़े न हो जाय ऐसा धुआँ निकले।

४—धुआँ बहुत जल्दी नष्ट न हो जाय बल्कि देर तक बना रहे। अति उत्तम धुएँका परदा बनानेके लिए पदार्थ में ऐसा कुहरा बनाना चाहिये, जो बहुत काल तक स्थिर रह सके, बहुत उड़नशील न हो, जल न शोषने वाले ठोस कणोंका बना हो जिससे बहुत कम परिवर्तन उसमें हो सके। रासायनिक बहुतसे ऐसे पदार्थोंको जानते हैं जो हवामें धुआँ देते हैं। जब कृत्रिम कुहरोंकी आवश्यकता प्रतीत हुई तो सर्व प्रथम इन्हींका उपयोग किया गया। स्फुर, गन्धक त्रिओषिद, वंगम्, शैलम् और टिटेनम्के चन्नारिक हरिद यौगिक काममें लाये गये। कार्ब-

निक पदार्थोंमेंसे कर्बन चतुर्हरिद् यौगिक बहुत ही काममें लाया गया बर्जर (Bergar) साहब धुएँके परदेका यह सूत्र देते है।

दस्तम्	२५%
कर्बन चतुर्हरिद्, कह₄	५०%
दस्तओषिद, द ओ	२०%
किसलगुर	५%

दस्तम् और कर्बन चतुर्हरिद् यौगिक जब जलते हैं तो एक दूसरे पर असर करते हैं जिससे दस्तहरिद, दह₂ और कर्बन बनता है। किसलगुर केवल कर्बन चतुर्हरिद् कह₄, को शोषनेके लिए काममें लाया जाता है। बादको जो सूत्र धुएँके परदेके निकाले गये हैं उनमें दस्तओषिद दओ, नहीं काममें लाया जाता है इसके बदले सैन्धक परहरेत, सैहओ₄, काममें लाया जाता है जो कि दस्तम्के ओषदीकरणमें सहायता देता है, ये पदार्थ अनुमानतः नीचे लिखे हुए भागोंमें मिलाये जाते हैं

दस्तम्	३५%
कर्बन चतुर्हरिद् कह₄	४%
सैन्धक परहरेत सैहओ₄	१०%
नौसादर (ammonium chloride)	१०%
मगनीस-कर्बनेत	५%

इसीके सदृश कई एक मिश्रण महासमरके समय धुएका बत्ती और सन्दूक आदि बनानेके काममें लाये गये। ये बत्तीके सदृश सन्दूक जब जलाये जाते हैं बड़ा ही घना धुआँ जो कि बिलकुल कुहरेके समान होता है और बहुत काल तक बना रहता है देते हैं बहुत ही थोड़ी ऐसी बत्तियाँ या सन्दूक ऐसा गहरा धुआँ बनानेके लिये काफी हैं जिससे तोपखाने और सेनाकी गति न जानी जा सके। धुएंके सन्दूक और कुप्पियां जहाजोंके बचावके लिए भी काममें लाई जाती हैं। धुएँके मिश्रणसे भरे हुए गोले भी तोपोंके काममें लाए जाते हैं।

विषैला धुआँ—महासमरमें जितने भी विषैले पदार्थ काममें लाये गये उन सबमें अधिक समय तक वायुमें रह सकनेवाले पदार्थ वही हैं जिनका क्वथनांक बहुत ज्यादा होता है, जिससे वे कम उड़नशील हों। वायुमें अधिक परिमाणमें विषैले पदार्थको बहुत काल तक बनाये रखना बड़ा दुस्तर कार्य है। इस बाधाको दूर करनेका सबसे बुद्धिमानीका उपाय विषैला धुएँका बनाना है। यह कहा जा चुका है कि रासायनिक धुएँका बादल कई घण्टों तक स्थिर रखा जा सकता है, धुएँकी बत्तीका मसाला यदि उपयुक्त विषैले पदार्थके साथ मिलाकर बनाया जाय तो विषैला कोहरा पैदा किया जा सकता है। धुएँका प्रवाह विषैले पदार्थके लिए वाहकका काम देता है।

—— ——

संक्षीणम् और आञ्जनम्

(Arsenic and Antimony)

[ले॰—श्री सत्यप्रकाश एम॰ एस-सी॰]

वर्त संविभागके ५ वें समूहमें नोषजन और स्फुरके पश्चात् संक्षीणम्, आञ्जनम् और विशद तत्व हैं आवर्त संविभागकी विशेषताके अनुसार स्फुर, संक्षीणम, और विशद गुणोंमें बहुत कुछ मिलते जुलते हैं, पर ज्योंही इस समूहमें हम ऊपरसे नीचेकी ओर आते हैं, हमको पता चलता है कि तत्वोंमें धातु गुण बढ़ते जाते हैं और अधातु-गुण धीरे-धीरे क्षीण होने लगते हैं। आञ्जनम् और विशद-में अधातुओंके गुण बहुत ही कम हैं। संक्षीणम् इन दोनोंकी अपेक्षा अधिक स्फुरके समान है, पर तो भी इसमें धातुके भी कुछ गुण विद्यमान हैं। अतः संक्षीणम् और आञ्जनम्को हम उपधातु या अर्ध-धातु कह सकते हैं। इस प्रकार सैन्धकम्, पांशुजम्, लोहम् आदि धातु तत्व हैं, हरिन् ओषजन स्फुर, ये अधातु तत्व हैं और संक्षीणम्, आंजनम् उपधातु

तत्व हैं। संचीणम् और आंजनम्के गुणोंका हम साथ-साथ वर्णन करेंगे क्योंकि ये दोनों परस्परमें बहुत ही समान हैं। विशद मुख्यतः धातु है, अतः धातु तत्वोंके साथही इसका विशेष वर्णन किया जायगा। संचीणम् और आंजनम्से जहां कहीं विशदकी उपयोगी समता प्रतीत होगी उसका कुछ निर्देश यहाँ अवश्य कर दिया जायगा।

उपलब्धि

संचीणम् प्रकृतिमें गन्धक, लोहा, नकलम् आदि तत्वोंसे संयुक्त पाया जाता है। इसके मुख्य खनिज ये हैं :—(१) रिअलगर, $च_2 ग_2$, यह संचीणम्का गन्धिद है. (२) मिसपिकल, लोचग, या $लो_2 च ग_2$; यह लोहसंचीण गन्धिद है (३) संचीणित नकलम्, न च।

आंजनम् भी गन्धिदके रूपमें पाया जाता है। मुख्य खनिज $आ_2 ग_3$ है, जो जापान, हंगेरी, बार्नियो आदि स्थानों में अधिक पाया जाता है।

प्राप्ति

संचीणम्के खनिजोंसे संचीणम् तत्व पृथक करनेकी विधि इस प्रकार है :— एक मिट्टीके बर्तनमें मिसपिकल खनिज रखते हैं और इसमें लोहेका भमका लगा देते हैं। खनिजको गरम करने पर संचीणम्की वाष्पें ऊपर उठने लगती हैं जिन्हें भमके द्वारा ठंडा करके संचित किया जा सकता है। वर्तनमें लोह गन्धिद शेष रह जाता है।

$$लो_2 च ग_2 = २ लो ग + च$$

(२) यदि अन्य खनिज पदार्थोंसे संचीणम् प्राप्त करना हो तो पहले खनिजको वायु प्रवाहमें भूँजते (roast) हैं। इस प्रकार संचीणम् उड़नशील संचीण ओषिदमें परिणत हो जाता है:—

$$४ न च ग + ६ ओ_2 = ४ न ओ + २ च_2 ओ_3 + ६ ओ_2$$

इस प्रकार खनिजके सब तत्व ओषिद बन जाते हैं। संचीणम् ओषिदकी वाष्पोंको ठंडा करके संचित कर लिया जाता है। इसमें फिर कोयला मिलाकर गरम करते हैं। कोयलासे ओषिदका अवकरण हो जाता है:—

$$च_2 ओ_3 + ३ क = २ च + ३ कओ$$

आंजनम् भी खनिजोंमेंसे इसी प्रकार निकाला जाता है। आंजन गन्धिद, $आ_2 ग_3$, को वायु प्रवाहमें भूंजनेसे यह आंजन ओषिदमें परिणत हो जाता है जिसे फिर कोयले द्वारा अवकृत करके आंजनम् तत्व प्राप्त कर लेते हैं:—

$$२ आ_2 ग_3 + ९ ओ_2 = २ आ_2 ओ_3 + ६ गओ_2$$
$$आ_2 ओ_3 + ३ क = २ आ + ३ कओ$$

आंजम् गन्धिदको लोहे और कुछ लवणोंके साथ गरम करनेसे भी एक दम आंजन धातु प्राप्त हो सकती है। लोहा लोह-गन्धिदमें परिणत हो जाता है।

$$आ_2 ग_3 + ३ लो = २ आ + ३ लोग$$

उपयोगी गुण

संचीणम्—शुद्धावस्थामें संचीणम् धातुके समान चमकदार पदार्थ होता है। यह इतना भञ्जनशील है कि खरलमें पीसा जा सकता है। इसे वायु शून्य पात्रमें गरम करके पिघलाया जा सकता है। काले चमकीले दर्पणके समान यह द्रव पदार्थ बन जाता है। पर यदि वायुकी विद्यामानतामें इसे गरम किया जाय तो नीरंग ज्वालासे जलने लगता है, और संचीणम् ओषिद, $च_2 ओ_3$, में परिणत हो जाता है जिसमें लहसुनकी सी गन्ध होती है। यह हरिन् वायव्यमें भी जल सकता है। हरिन्के संयोगसे संचीण-त्रिहरिद, $च ह_3$, प्राप्त होता है। यह हलके उदहरिकाम्ल या गन्धकाम्लमें तो घुलनशील है नहीं पर तीव्र संपृक्त गन्धकाम्ल द्वारा इसका ओषदीकरण हो जाता है, गन्धक द्विओषिद प्रक्रियामें बनता है :—

$$२ च + ३ उ_2 गओ_4 = २ उ_3 चओ_3 + ३ गओ_2$$

नोषिकाम्लके प्रभावसे यह संचीणिकाम्लमें परिवर्तित हो जाता है और नोषस ओषिदकी भूरी

वाष्पें निकलने लगती हैं। दस्तम्के साथ गरम करने से यह दस्त संक्षीणिद, $द_3 क्ष_2$, पदार्थ देता है।

जिस प्रकार स्फुर बहुरूपी पदार्थ था इसी प्रकार संक्षीणम् भी कई रूपका पाया जाता है। संक्षीणम्की वाष्पोंको अत्यन्त शीघ्रतासे ठण्डा करनेसे पीत संक्षीणम् प्राप्त होता है जो पहले स्फुरके समान माना जा सकता है। इसका आपेक्षिक घनत्व ३.७ है। कर्बन द्विओषिद्के प्रवाहमें साधारण संक्षीणमको ऊर्ध्वपतित करके भी इसे बना सकते हैं। यह कर्बन द्विगन्धिदमें घुलनशील है।

काला संक्षीणम्—यह कर्बनद्विगन्धिद, क $ग_2$, में घुलनशील नहीं है। इसका घनत्व ४.७ है। कांचकी नलिकामें उद्जनके प्रवाहके साथ साधारण संक्षीणम् को उड़ाकर यह बनाया जाता है।

भूरा संक्षीणम्—साधारण संक्षीणम् भूरा होता है। इसका घनत्व ५.७३ है। यह कर्बनद्विगन्धिदमें घुलनशील नहीं है।

संक्षीणमका वाष्प घनत्व ८६०° पर १५० है अतः इस तापक्रम पर इसका अणुभार ३०० हुआ। इसका परमाणुभार ७४.९६ है अतः इसके अणुमें ४ परमाणु हैं अर्थात् इसके अणुका सूत्र $क्ष_4$ माना जा सकता है। पर १५००° के लगभग इसका वाष्प घनत्व आधा रह जाता है और उस समय इसके अणुका सूत्र $क्ष_2$ ही हो जाता है।

आञ्जनम्—यह चांदीके समान चमकदार पदार्थ है जिसका घनत्व ६.८ है। यह भी पीसकर चूर्ण कर दिया जासकता है। इसका द्रवांक ६३०° है और क्वथनांक १४४०° है। वायुमें गरम करनेसे यह आंजन ओषिद $आ_2ओ_3$ या $अ_4$ $ओ_6$, में परिणत हो जाता है। यह हलके गन्धकाम्ल या उद्हरिकाम्लमें अघुल है पर उबलते हुए तीव्र उद्हरिकाम्लमें घुल जाता है। नोषिकाम्ल द्वारा ओषदीकृत होकर यह आंजन ओषिद, $आ_2ओ_4$ में परिणत हो जाता है। यह हरिन्में भी जल सकता है और आंजनहरिद $आ ह_3$ बन जाता है। इस प्रकार संक्षीणम् और आंजनम् में बहुत समानता है।

आंजन हरिदके घोलमें दस्तम् धातुके टुकड़े डालनेसे धातु आंजनम् अवक्षेपित हो जाता है:—

$$२ आ ह_3 + ३द = ३ द ह_2 + २ आ$$
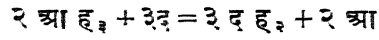
आंजनम्भी बहुरूपी पदार्थ है। पीला आंजनम्—ओषोन और द्रव आंजनिन, $आ उ_3$, के संसर्ग से ८०° श तापक्रम पर बनाया जाता है। यह अस्थिर चूर्ण है जो कर्बनद्विगन्धिद में बहुत कम घुलनशील है।—८०° श तापक्रम के ऊपर यह काले आंजनम् में परिणत हो जाता है। काले आंजनमका घनत्व ५.३ है।

संक्षीणिन और आञ्जनिन, $क्ष उ_3$; $आ उ_3$
(Arsine, Stibine)

जिस प्रकार नोषजन और स्फुर उद्जनसे संयुक्त होकर अमोनिया और स्फुरिन यौगिक बनाते हैं, उसी प्रकार संक्षीणम् और आंजनम् उद्जनके संयोगसे संक्षीणिन, $क्ष उ_3$ और आंजनिन, $आ उ_3$, देते हैं।

संक्षीणिन—संक्षीणिन् संक्षीणम् तत्व और उद्जनके संयोग से सीधा नहीं बनाया जा सकता है। पर नवजात (nascent) उद्जन द्वारा संक्षीणमके घुलनशील यौगिकोंको प्रभावित करनेमें यह अवश्य बन सकता है। यदि संक्षीणस ओषिदके घोलको दस्तम् और गन्धकाम्लके मिश्रणमें जिसमें उद्जन बन रहा है, छोड़ा जाय तो लहसुनकीसी बुरी दुर्गन्धवाली एक गैस निकलेगी। यह संक्षीणिन् है यह अत्यन्त विषैली है और लाल ज्वालासे जलती है। इस नीरंग गैसका क्वथनांक—५४.८° और द्रवांक—११३.५° है।

दस्तम् और संक्षीणमको घरियामें गरम करनेसे दस्तसंक्षीणिद, $द_3$ $क्ष_2$, यौगिकबनता है। इस यौगिक पर हलके उद्हरिकाम्लका प्रभाव डालनेसे शुद्ध संक्षीणिन प्राप्त होसकता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

द$_{३}$ क्ष$_{२}$ + ६ उह = २ क्ष उ$_{३}$ + ३ द ह$_{२}$

स्फटम् और संक्षीणम्के चूर्णोंको एक साथ गरम करनेसे स्फट संक्षीणिद, स्फ क्ष, प्राप्त होता है। यह गरम जलके संसर्गसे बहुत आसानी से संक्षीणिन दे देता है :—

स्फ क्ष + ३ उ$_{२}$ ओ = स्फ (ओ उ)$_{३}$ + क्ष उ$_{३}$

स्फुरिनके समान संक्षीणिन भी जलमें अघुल है। इस गुणमें ये दोनों अमोनियासे विरुद्ध हैं। स्फुरिन मद्यमें घुलजाता है पर संक्षीणिन मद्यमें घुलनशील नहीं है। यह तारपीन में घुलसकता है। संक्षीणिनको २६२° श तक गरम करनेसे यह विभाजित हो जाता है—

२ क्ष उ$_{३}$ = २क्ष + ३ उ$_{२}$

यदि रजत नोषेतके हलके घोलमें इसे प्रवाहित करें तो धातु रजतम् का काला अवक्षेप प्राप्त होगा, और अन्य पदार्थमें संक्षीणसाम्ल भी होगा—

६ रनोओ$_{३}$ + क्ष उ$_{३}$ + ३ उ$_{२}$ओ
= उ$_{३}$ क्ष ओ$_{३}$ + ६ उ नो ओ$_{३}$ + ६ र

पर यदि रजत नोषेतका घोल हलका न हो तो कोई अवक्षेप नहीं मिलेगा। केवल पीला घोल मिलेगा। पर इस घोलमें और अधिक पानी डालनेसे काला अवक्षेप प्राप्त हो जायगा पीले घोलमें रजत संक्षीणिद और रजत नोषेतका एक द्विगुण-लवण र$_{३}$ क्ष.३ रनोओ$_{३}$, था जो अधिक पानी डालनेसे रजतधातुमें परिणत हो गया है :—

क्ष उ$_{३}$ + ६रनो ओ$_{३}$ = र$_{३}$क्ष३ रनो ओ$_{३}$ + ३उ नो ओ$_{३}$
र$_{३}$क्ष.३ र नो ओ$_{३}$ + ३ उ$_{२}$ ओ = ६ र + ३ उ नो ओ$_{३}$
+ उ$_{३}$ क्ष ओ$_{३}$

आञ्जनिन—आंजनम्के लवणके घोलको दस्तम् और गन्धकाम्लके घोलमें जिसमे नवजात उदजन निकलरहा हो, छोड़नेसे आंजनिन गैस निकलेगी। इस प्रकार इसको प्राप्त करनेकी विधि संक्षीणिनकी विधिके समान है। यह गैस श्वेत प्रकाश युक्त ज्वालासे जलती है। जलनेमें आञ्जन-त्रिओषिद बनता है —

२ आ उ$_{३}$ + ३ ओ$_{२}$ = आ$_{२}$ ओ + ३ उ$_{२}$ ओ

इसकी ज्वाला पर चीनी मिट्टीकी ठंडी प्याली रखनेसे प्यालीमें काला दाग पड़ जायगा। इसीप्रकार का दाग संक्षीणित जलानेसे भी पड़ता है। यह दाग प्याली पर संक्षीणम या आञ्जनम् धातुके संग्रहीत हो जानेके कारण पड़ा है:—

२ आ उ$_{३}$ = २ आ + ३ उ$_{२}$

संक्षीणम् और आंजनम् दोनोंके दाग निम्न परीक्षाओंसे पहचाने जा सकते हैं:—

(१) दागको रङ्ग विनाशक-चूर्णके घोलसे भिगोओ : यदि दाग घुल जाय तो समझना चाहिये कि यह संक्षीणम् का दाग है। यदि न घुले तो आंजनमका दाग समझना चाहिये। संक्षीणम् रङ्ग विनाशक चूर्ण, ख (ओह)$_{२}$ के घोलके साथ संक्षीणिकाम्ल देता हैं पर आंजनम् इस प्रकारका कोई अम्ल नहीं नहीं देता है।

५ ख (ओह)$_{२}$ + ६ उ$_{२}$ ओ + ४ क्ष
= ५ ख ह$_{२}$ + ४ उ$_{३}$ क्ष ओ$_{४}$.

(२) यदि दागको इमलिकाम्लके गाढ़े घोलसे भिगोआ जाय तो संक्षीणम्का दाग न घुलेगा, पर आंजनम्का दाग घुल जायगा।

(३) दागको पीले अमोनियम गन्धिदके घोलसे भिगोकर वाष्पीभूत करो। यदि संक्षीणमका दाग होगा तो संक्षीण गन्धिदका पीला पदार्थ जम जायगा, पर आंजनम्का दाग होगा तो नारंगी रंगका आंजन गन्धिद आ$_{२}$ ग$_{३}$, रह जायगा।

रजत नोषेतके घोलके साथ आंजनिनभी काला अवक्षेप देता है। रजत अवक्षेपित हो जाता है।

संक्षीणम् और आंजनम्के हरिद

संक्षीण त्रिहरिद, क्ष ह$_{३}$—संक्षीणम्को हरिन् गैस में जलानेसे संक्षीण त्रिहरिद, बनता है। संक्षीणम् ओषिदको तीव्र गन्धकाम्ल और नमकके साथ गरम

करनेसे भी यह प्राप्त होसकता है। गन्धकाम्ल नमक-के साथ उदहरिकाम्ल देता है। यह उदहरिकाम्ल ओषिद पर निम्न प्रकार प्रभाव डालता है:—

क्ष$_2$ ओ$_3$ + ६ उ ह = २ क्ष ह$_3$ + ३ उ$_2$ ओ

यह तैलके समान स्निग्ध विषैला द्रव है, हवामें रखनेसे इसमें धुँआ निकलने लगता है। इसका क्वथनांक १३०·२°, द्रवांक −१३° और घनत्व २·२ है।

इसका पंचहरिद, क्ष ह$_5$, अत्यन्त अस्थायी पदार्थ है जो २५° पर ही विभाजित हो जाता है इसका अस्तित्व भी संदिग्ध ही है। संक्षीणप्लविद, क्ष प्ल$_3$, और क्ष प्ल$_5$ भी पाये गये हैं। संक्षीणम्को कर्बन-द्विगन्धिदमें घुले हुए नैलिन्के साथ गरम करने से संक्षीणनैलिद, क्ष नै$_3$, भी बनाया जा सकता है। संक्षीण अरुणिद, क्ष रु$_3$ भी इसी प्रकार की विधिसे बनाया जाता है।

आंजनत्रिहरिद—आ ह$_3$—आंजनगन्धिद आ$_2$ ग$_3$ को तीव्र उदहरिकाम्लमें घोलकर गरम करनेसे प्राप्त हो सकता है:—

आ$_2$ ग$_3$ + ६ उ ह = २ आ ह$_3$ + ३ उ$_2$ ग

यह श्वेतरवेदार पदार्थ है। जलके संसर्गसे यह विभाजित हो जाता है इसे उदहरिकाम्लमें घोलकर पानीमें उँडेलनेसे आंजनस ओषहरिद, आ ओ ह, का अवक्षेप प्राप्त होता है—

आ ह$_3$ + उ$_2$ ओ — आ ओ ह + २ उ ह

आंजन पंचहरिद—आ ह$_5$—आंजन त्रिहरिदको हरिन् साथ गरम करनेसे आंजन पंचहरिद प्राप्त हो सकता है। यह गाढ़ा पीला धुआँदार द्रव है जो २·८° तक ठंडा करके ठोस किया जा सकता है।

संक्षीणम्के समान आंजनम्के भी प्लविद, अरुणिद और नैलिद होते हैं।

संक्षीणम और आञ्जनम के ओषिद

संक्षीणसओषिद, क्ष$_2$ ओ$_3$ या क्ष$_4$ ओ$_6$—संखिया नामसे जो पदार्थ प्रचलित है वह संक्षीणस ओषिद ही है। विषके रूपमें इसका व्यवहार किया जाता है। यह तीन प्रकारका होता है—(१) बेरवा—जिसका घनत्व ३·७३ और द्रवांक २००° है। साधारण संखियाकी वाष्पोंको क्वथनांकके निकटके तापक्रम पर जमानेसे यह बनता है। यह कांचके समान पारदर्शक है। (२) अष्टतलीय—जिसका घनत्व ३·६९ है, यह बिनापिघले ही उड़ने लगता है। यह सब से अधिक स्थायी है। (३) समचतुर्भुजिक जिसका घनत्व ३·८५ है। यह बेरवा ओषिदको सैन्धकउदौषिद के घोल के साथ उबालकर स्फटिकीकरण करके प्राप्त हो सकता है।

संक्षीणम्के किसी भी खनिजको वायुमें भूँजनेसे संक्षीणस ओषिद प्राप्त हो सकता है जैसा कि आरम्भ में कहा गया है।

संक्षीणिक ओषिद, क्ष$_2$ ओ$_5$—यह पंचौषिद है। संक्षीणस ओषिदको ओषोन, उदजन पौषिद, हरिन्, या नोषिकाम्लसे ओषदीकृत करके इसे प्राप्त कर सकते हैं:—

क्ष$_2$ ओ$_3$ + २ ह$_2$ + २ उ$_2$ ओ
 = क्ष$_2$ ओ$_5$ + ४ उ ह

यह कहा ही जा चुका है कि संक्षीणस ओषिद-को कोयलेके साथ गरम करनेसे संक्षीणम् धातु प्राप्त होता है। इस प्रकार इस ओषिदका अवकरण किया जा सकता है—

क्ष$_2$ ओ$_3$ + ३ क = २ क्ष + ३ क ओ

यदि संक्षीणस ओषिदको ताम्रपत्र और उदहरि-काम्लके साथ उबाला जाय तो ताम्रपत्र पर संक्षीणम् जमा हो जायगा।

क्ष$_2$ ओ$_3$ + ६ उ ह + ६ ता
 = २ क्ष + ६ ता ह + ३ उ$_2$ ओ

श्वेत संक्षीणम्को तीव्र नोषिकाम्लके साथ गरम करनेसे संक्षीणओषिद, क्ष$_2$ ओ$_5$, प्राप्त हो सकता है—

क्ष$_2$ ओ$_3$ + २ उ नो ओ$_3$
 = क्ष$_2$ ओ$_5$ + उ$_2$ ओ + नो$_2$ ओ$_3$

आंजन त्रिओषिद—$आ_2 ओ_3$—यह खनिजके रूपमें पाया जाता है, आञ्जन-ओष हरिद, आ ओ ह, को सैन्धक कर्बनेतके घोलसे प्रभावित करनेसे भी यह मिल सकता है—

$$२ आ ओ ह + सै_2 क ओ_3 = आ_2 ओ_3 + २ सै ह + क ओ_2$$
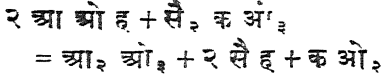
रक्त तप्त आञ्जनमपर भाप प्रवाहित करके भी यह बनाया जा सकता है। यह श्वेत पदार्थ है पर गरम करनेसे पीला पड़ जाता है। ६५६° श पर वह पिघलने लगता है और १५६०° पर वाष्पीभूत हो जाता है। इसके वाष्पघनत्वके अनुसार इसका सूत्र $आ_4 ओ_6$ है। यह क्षारोंमें घुल जाता है। सैन्धकउदौषिद में घुलकर सैन्धक-मध्य-आञ्जनित, सै आ ओ$_2$, ३ $उ_2$ओ में परिणत हो जाता है। उदहरिकाम्लके प्रभावसे यह आञ्जनहरिदमें परिणत हो जाता है—

$$आ_2 ओ_3 + ६ उ ह = २ आ ह_3 + ३ उ_2 ओ$$
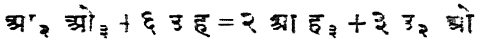
आंजन पंचौषिद, $आ_2 ओ_5$—आंजनको तीव्र नोषिकाम्लके साथ वाष्पीभूत करनेसे पीला चूर्ण बच रहता है। यह चूर्ण आञ्जन पंचौषिद है ४०° के ऊपर गरम करनेसे यह त्रिओषिद, $आ_2 ओ_3$ में विभाजित हो जाता है। त्रिओषिदको जलकी विद्यमानतामें नैलिन, हरिन् या पांशुजद्विरागेत द्वारा ओषिदकृत करनेसे उद-युक्त (hydrated) पंचओषिद प्राप्त होता है।

संक्षीणसाम्ल और आञ्जनसाम्ल

संक्षीणसाम्ल—यह अम्ल उदजनगन्धिद, $उ_2 ग$, से भी निर्बल है। संक्षीणसओषिद, $क्ष_2 ओ_3$, को जलमें घोलनेसे घोल कुछ अम्लीय होता है। थोड़ी देर पश्चात् घोलमेंसे त्रिओषिदके रवे पृथक् होने लगते हैं—

$$क्ष_2 ओ_3 + ३ उ_2 ओ \rightleftharpoons २ क्ष (ओ उ)_3 \text{ या } २ उ_3 क्ष ओ_3.$$
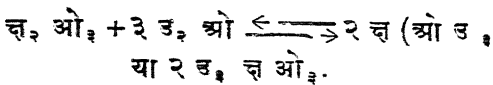
त्रिओषिदको सैन्धक उदौषिद या सैन्धककर्बनेत के साथ उबालनेसे सैन्धक मध्य संक्षीणित, सै क्ष ओ$_2$, प्राप्त होता है।

$$क्ष_2 ओ_3 + २ सै ओ उ = २ सै क्ष ओ_2 + उ_2 ओ$$
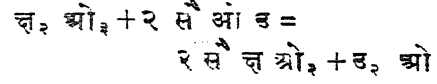
जिस प्रकार स्फुरेत तीन प्रकारके, अर्थात् पूर्व-मध्य- और उष्म होते हैं, उसी प्रकार संक्षीणसम्लके तीन प्रकारके लवण मिलते हैं—

पूर्व सैन्धक संक्षीणित, $सै_3 क्ष ओ_3$
मध्य सैन्धक संक्षीणित, सै क्ष $ओ_2$
उष्म सैन्धक संक्षीणित, $सै_4 क्ष_2 ओ_5$

संक्षीणसओषिदके घोलको अमोनियासे शिथिल करके रजतनोषेतका घोल डालनेसे रजत संक्षीणित, $र_3 क्ष ओ_3$, का पीला अवक्षेप प्राप्त होता है।

संक्षीणेत—संक्षीणपञ्चौषिदको जलमें गरम करके घोलनेसे ठण्डा होने पर संक्षीणिकाम्ल $उ_3 क्ष ओ_4$ के रवे जमने लगते हैं जिनका द्रवांक १०० है। १६०° तक गरम करनेसे जलके अणु पृथक हो जाते हैं और पञ्चौषिद शेष रह जाता है।

इस अम्लके लवण संक्षीणेत कहलाते हैं। ये भी मध्य, पूर्व और उष्मरूपके पाये गये हैं:—

पूर्व सैन्धक संक्षीणेत, $सै_3 क्ष ओ_4$
मध्य सैन्धक संक्षीणेत, सै क्ष $ओ_3$
उष्म मगनीस संक्षीणेत, $म_2 क्ष_2 ओ_7$

जिस प्रकार स्फुरेत तीव्र नोषिकाम्ल और अमोनियम मुनागेत के साथ पीला अवक्षेप देते हैं, उसी प्रकार संक्षीणेत के घोल भी तीव्र नोषिकाम्ल और अमोनियम मुनागेतके साथ गरम करने पर पीला अवक्षेप देते है। ठंडे घोल में अवक्षेप नहीं आता है। स्फुरेतों का अवक्षेप ठण्डे घोलमें आ सकता है।

आञ्जनित और आञ्जनेत—संक्षीणत्रिओषिद और पञ्चओषिदके समान आञ्जनमके ओषिद भी क्षारोंके संसर्गसे आंजनित और आंजनेत देते हैं। ये भी पूर्व, मध्य और उष्म-तीनों रूपोंके पाये गये हैं। त्रिओषिद सैन्धक ओषिदमें घुलकर सैन्धक मध्य

आंजनित, सै आ ओ, देता है। आञ्जनम्‌को यदि पांशुजनोषेनके साथ पिघलाकर ठण्डे जलसे प्रभावित किया जाय पांशुजमध्य आंजनेत, पां आ ओ$_3$ प्राप्त होता है। यह ठण्डे जलमें अघुल है पर गरम जलमें घुल सकता है।

संक्षीणम और आञ्जनमके गन्धिद

संक्षीण त्रिगन्धिद, क्ष$_2$ ग$_3$—यह खनिज पदार्थ रिअलगरके रूपमें पाया जाता है। संक्षीण त्रिओषिदको गन्धकके साथ गरम करनेसे संक्षीण द्विगन्धिद तैयार किया जा सकता है—

२ क्ष$_2$ ओ$_3$ + ७ ग = २क्ष$_2$ ग$_2$ + ३ग ओ$_2$

संक्षीणत्रिओषिदको उदहरिकाम्लमें घोलकर उदजनगन्धिद प्रवाहित करके त्रिगन्धिदका अवक्षेप आसानीसे बनाया जा सकता है—

२ क्ष ह$_3$ + ३ उ$_2$ग = क्ष$_2$ ग$_3$ + ६ उ ह

यदि स्रवित जलमें संक्षीणस ओषिदको गरम करके उदजन गन्धिद प्रवाहित करें तो कलाद्र संक्षीण त्रिगन्धिद का पीला घोल प्राप्त होगा। यह घोल छन्ना कागजसे छाना नहीं जा सकता है। इसमें यदि थोड़ा सा हलका उदहरिकाम्ल डाल दिया जाय तो संक्षीण त्रिगन्धिदके कण अवक्षेपित हो जायगे।

संक्षीणिकाम्लके गरम घोलमें जिसमें १०% उदहरिकाम्ल पड़ा हो उदजनगन्धिद तेजीसे प्रवाहित किया जाए तो संक्षीण पंचौषिद, क्ष$_2$ ओ$_5$, प्राप्त होगा।

आजनत्रिगन्धिद, आ$_2$ ग$_3$—यह भी खनिज रूप में मिलता है। आंजन हरिदके जलीय घोलमें उदजन गन्धिद प्रवाहित करनेसे नारङ्गी रङ्गका अवक्षेप मिलता है जो त्रिगन्धिदका है। इसका पंचौषिद, आ$_2$ ग$_5$, भी पाया गया है।

आंजनम और संक्षीणमके बहुतसे यौगिक ओषधियोंके रूपमें काममें लाये जाते हैं।

— ———

तना या पेंड़ी

[ले० श्री पं० शंकरराव जोशी]

जके अंकुरित होनेपर प्रारंभिक मूल जमीनकी ओरको बढ़ती है, और प्रारंभिक तना या अंकुर ऊपरकी ओर बढ़ता है। प्रारंभिक तना जमीनसे बाहर हवा और प्रकाशमें बढ़ता है। और उसपर पत्ते, शाखाएं, फूल आदि निकलते हैं प्रारंभिक तना एक हरी डंडीके रूपमें जमीनसे बाहर निकलता है। यही पौधेका भावी तना है। इसका अग्र भाग बहुत तेजीसे बढ़ता है।

कुछ पौधोंके तने जमीनके अन्दर ही बढ़ते हैं। ये महीन वल्क पत्रसे ढके रहते हैं। इन पर शाखाएं भी निकलती हैं।

जड़ों द्वारा जमीनमेंसे ग्रहणकी हुई खुराक तनेमेंसे हो करही पौधेके भिन्न भिन्न भागोंमें पहुँचती है, और पत्तों द्वारा पचाया हुआ रसभी तनेमेंसे ही पौधेके अवयवोंको पहुंचाया जाता है। पत्ते फूल आदिको हवामें ऊंचे उठाये रखने का काम भी तना ही करता है।

कलिका—(Bud) अंकुर या प्ररोहके सिरेपर एक हरी पत्तियों का गुच्छा सा होता है। यही पौधेकी प्रथम कलिका है। कलिका अविकसित अंकुर है। इसी में से शाखा, पत्ता, फूल आदि निकलते हैं। कलिका पौधेके जुदे जुदे भाग पर पैदा होती हैं और तदनुसार ही उसकी जुदे जुदे नाम दिये गये हैं। पत्तेको जन्म देनेवाली कलिका पत्र-कलिका या प्रवाल-कलिका, और पुष्पको जन्म देनेवाली कलिका पुष्प-कलिका कही जाती हैं। इसे कोरक भी कहते हैं। अंकुर या प्ररोहके सिरेपरकी कलिका 'कंडाग्रकलिका' और तनेके सिरेपरकी कलिका 'अग्रकलिका' कही जाती है। तनेके साथही बढ़कर कलिका नवीन शाखा या पत्तेको जन्म देती है।

वर्षायु पौधोंमें अक्षकोणीय कलिकाएं जल्दी पैदा होती हैं और उनमेंसे शाखाएं भी शीघ्र ही निकल आती हैं। बहु वर्षायु पौधोंमें ये देरीसे निकलती हैं और वल्क-पत्र या महीन छिलकेसे ढकी रहती हैं। ये विरत कलिकाएं (resting bud) कहाती हैं। ये एक लम्बे समय तक सुप्तावस्थामें रहती हैं और वसन्त ऋतुमें विकसित होती हैं।

यदि कलिका प्रांकुरके अन्तमें हो तो उसको अन्तिम कलिका (terminal bud) कहते हैं। पत्तेके अक्षकोणमें पैदा होनेवाली कलिका पार्श्वस्थ या बगली या अक्षकोणीय (axillary) कहाती है। किसी अन्य स्थानपर निकली हुई कलिका अनियमित (adventitious) कही जाती है। विलीन कलिकाएँ (Latent) और सुप्त कलिकाएँ (Dormant) पाला आदि दैवी आपदाओंसे साधारण कलिकाओंके नष्ट हो जानेपर विकसित होती हैं। अमर पत्ती और क्रोटन नामक पौधोंके पत्तोंपर भी कलिकाएं होती हैं। कुछ पौधोंकी कलिकाएं मुख्य पौधेसे जुदी होकर स्वतंत्र पौधेको जन्म देती है। ये स्वतंत्र (Bulbil) कलिकाएं कही जाती हैं। प्याजकी कुछ विशेष उपजातियोंके पौधे, लहसुन, टायगर लिलि आदि कुछ पौधोंमें ये कलिकाएं पाई जाती हैं।

कलिकाएं गोगुच्छाकृति (acropetal succession) से विकसित होती हैं। छोटी और नई कलिकाएं अन्तिम सिरेपर होती हैं और पुरानी आधारके पास।

प्रकृतिने कलिकाओंकी रक्षाका भी उत्तम प्रबन्ध कर दिया है। ये महीन वल्क-पत्रसे ढकी रहती हैं। कुछ पौधोंकी कलिकाओंके वल्क सूखे होते हैं। कुछके वल्क गोंद-जैसे चिपचिपे पदार्थसे ढके रहते हैं। कुछ वल्क चिकने होते हैं और कुछ पर रोएं होते हैं। अंजीर और अंगूरकी कलिका गोंद जैसे पदार्थसे ढकी रहती है। वल्क पत्रको हटाकर देखने से भीतरकी ओरको रोम नजर आवेंगे।

किसी पौधेकी टहनीको लेकर देखनेसे उसपर छोटे छोटे गोल चकत्ते या दाग नजर आवेंगे। ये चकत्ते या दाग कलिकाओंके आच्छादनकी गिरी हुई पत्तियोंका स्थान सूचित करते हैं। ये दाग पास पास होते हैं। जिससे टहनी पर मण्डल सा नजर आता है। इस मंडलको छत-वलय' कहते है। दो छत-वलयके बीचका स्थान एक सालकी बाढ़का द्योतक है।

हर एक तने या शाखाके सिरे पर, जब तक वह बढ़ती रहती है, कलिका रहती है। किन्तु अन्तमें एक न एक दिन अग्र पर मंजरी, फूल या फूल का गुच्छा निकल आता है और उसकी बाढ़ रुक जाती है।

मक्का, ज्वार, चना, मटर आदि पौधे सालमें सिर्फ एक ही बार फूलते फलते हैं और फलोंके पकनेपर वे मर जाते है। इनको (annuals) वर्षायु पौधे कहते हैं। गाजर, गोभी; मूली आदि पौधे, बोनेपर प्रथम वर्ष अपनी बाढ़के लिए सामग्री जुटाते रहते हैं और दूसरे सालमें फूलते फलते है। ये द्वि-वर्षायु (Biennial) पौधे हैं। नीम, बड़ा आम, पीपल आदि बहु-वर्षायु (Perennials) पौधे हैं। ये कई साल तक जिन्दा रहते हैं और हर साल फूला फला करते हैं।

कुछ पौधोंकी शाखाएं और तने प्रतिवर्ष अन्तिम कलिका द्वारा बढ़ते रहते हैं और पार्श्वस्थ कलिकासे फूल पैदा होते हैं।

कुछ पौधोंमें मुख्य तनेको अन्तिम कलिका ही विकसित होती हैं और पार्श्वस्थ कलिकाएँ अविकसित ही रहती हैं। इनकी पुष्प कलिकाएं अवश्य ही विकसित होती हैं। यथा ताड़, खजूर, नारियल।

तनेका ऊपरको बढ़ने वाला भाग उदग्र (ascending) कहाता है। यह पौधेका परमावश्यक अङ्ग है।

तनेके उस भागको जिस पर पत्ते निकलते हैं, ग्रन्थि या गाँठ (nodes) कहते हैं। दो ग्रन्थियों के बीचका स्थान पर्व (inter-nod) कहाता है।

पौधे तीनप्रकारके होते हैं:— १ हरितक २ झाड़ी और ३ वृक्ष

१ जिन पौधोंके वायवीय तने हरे, कोमल और रसदार होते हैं, उनको हरितक या तृण या

औषधि (Herb) कहते हैं। ये एक सालसे ज्यादा नहीं जीते हैं। यथा घास, ईख, ज्वार आदि —

२ झाड़ी या स्तम्ब (Shrub) नाम उन पौधोंको दिया गया है, जिनके मुख्य तनेकी बाढ़ कम होती है, और बगली या पार्श्वस्थ कलिकाओंसे निकली हुई शाखाओंकी वृद्धि अधिक होती है। इनका तना-कठीला होता है और ये कई साल तक हरे रहते हैं।

३ वृक्षका तना भूमिमेंसे निकलकर सीधा ऊपरको बढ़ता और खूब फैलता है। इनका तना बहुत ही मोटा और कठीला होता है।

झाड़ी और हरितकमें यह भेद है कि झाड़ीका तना हरितकके तनेसे अधिक कठोर, कठीला और मोटा होता है। ओषधिका तना मृदु, हरा और छोटा होता है। झाड़ी जमीनसे २०-२२ फूट तक ऊँची बढ़ती है और इसकी शाखायें जमीनके पास से निकलती हैं।

वृक्ष झाड़ी की अपेक्षा ऊंचे होते हैं। पहले तना सीधा बढ़ता है और तब शाखाएं निकलती हैं।

वायवीय-तना

मृदु बहुवर्षायु पौधेकी वायवीय शाखाएं, जिन-पर पत्ते, फूल और फल लगते है, हरसाल फसलका मौसम खतम होते ही, मर जाती हैं किन्तु उनकी बहु वर्षायु पेंडी या शाखायें भूमिके अन्दर जीवित रहती हैं। यह भूमिके अन्दरका तना भूरा या सफेद रङ्गका होता है। भौमिक तने जड़-जैसे ही होते हैं। वे महीन वल्क पत्रसे ढके रहते है। उनके अक्षकोणपर कलिकाएं या आँखे होती हैं, जिनमेंसे भौमिक या वायवीय शाखाएं निकलती हैं।

मृदु बहुवर्षायु पौधोंके वायवीय तने भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं।

१—सम्मूलनी (Runner) यह एक लम्बी और पतली शाखा है। जो झुकी हुई होती है। यह मुख्य पौधेके अक्षकोणसे निकलकर जमीन पर लेटी हुई बढ़ती है। इसकी ग्रंथि परसे जड़ें निकलकर जमीन-में घुस जाती हैं और पत्तोंका गुच्छा ऊपरको बढ़ता है। जिससे नया पौधा बन जाता है। यथा स्ट्रबेरी, क्रीपिङ्ग बटरकप आदि।

२—लघुमूलनी (off-set — यह एक प्रकारकी सम्मूलनी ही है। इसके पर्व सम्मूलनीके पर्वसे छोटे होते हैं।

३—मूलनी (Stolons) – कुछ वायवीय शाखाएं झुककर जमीनमें घुस जाती हैं और ग्रन्थिपर जड़ पकड़ लेती हैं। यथा दूब।

४—अधोमूलनी Sucker, गुलाब, पोदीना आदि कुछ पौधोंकी भौमिक शाखाएं कुछ दूरी तक जमीन-के अन्दर चलती हैं और तब बाहर निकल आती हैं। हर एक शाखा एक स्वतंत्र पौधा बन जाती है।

माली लोग पौधोंकी इस आदतसे लाभ उठाते हैं। वे पौधेकी शाखाको मट्टीके अन्दर दबाकर सिरा खुला रखते हैं। कुछ दिन बाद ग्रन्थि पर जड़ें और पत्ते निकल आते हैं। और तब वह शाखा एक स्वतंत्र पौधा बन जाती है।

भौमिक तने (under-ground stems)

कई पौधे ऐसे हैं, जिनके तने जमीनके अन्दर ही फैलते हैं। जमीनके अन्दर फैलनेवाले तने भौमिक तने कहे जाते हैं। ये कई प्रकारके होते हैं।

१—अधोवरोही या मूलस्कंध (Rhizome)—यह दिगन्त-सम या तिरछा बढ़ता है। तनेसे नीचेकी ओरको झकरा जड़ें निकलती हैं और जमीनसे बाहर निकलनेवाले भाग पर पत्ते और फूल निकलते हैं यथा आयरिस।

मूल-स्कंधका एक सिरा ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है, उसका दूसरा सिरा क्रमशः मरता जाता है। और उसके पृष्ठ भाग पर वार्षिक अंकुर और पत्तोंके दाग रह जाते हैं। हलदी, अदरख, केला आदि इसके उदाहरण हैं।
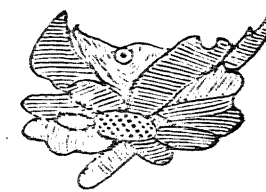
अदरख

मूलस्कन्ध

२—कन्दल या ग्रन्थिकन्द (Tuber)—यह

जमीनके अन्दर ही अन्दर बढ़ता है, किन्तु सारा का सारा तना कन्दलका रूप नहीं ग्रहण करता है। भौमिक तनेका केवल सिराही फूल कर मोटा होजाता है और शेष भाग पतला ही बना रहता है। तने के इस फूले हुये शिरे पर आँखें या कलिकाएं निकल आती हैं। कन्दलका आँखवाला टुकड़ा बोनेसे अंकुर निकल आता है।

कन्दलको भोजनका कोठार कह सकते हैं। कन्दल-के अन्दर जुटाई हुई खुराक खाकर ही नवांकुरित पौधा बढ़ता है। आलू, हाथीचक, जलकुम्भीदिना आदि इनके उदाहरण हैं।
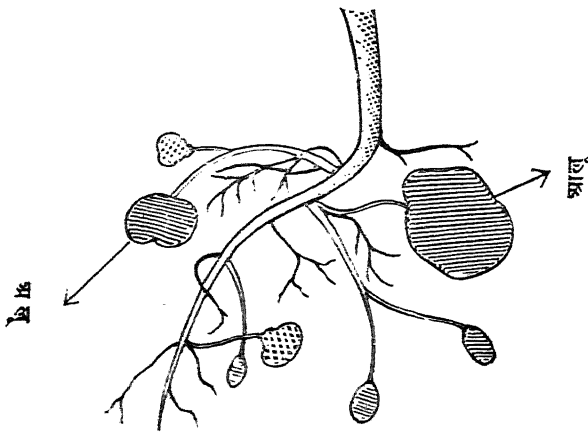
ग्रन्थिकन्द

३—कन्द या पत्रकन्द (bulb) यह भौमिक तना-कलिका जैसा होता है। इनका अक्ष मांसल होता है, जो महीन छिलकेसे ढका रहता है। यथा प्याजका कंद, केसर, रजनीगंधा।

४—ससारकन्द, खगाभकन्द, वा वज्रकन्द (corm) यह भौमिक तना कंदलसे मिलता जुलता है। यह ठोस, माँसल, चपटा और गोल होता है। यह झिल्ली जैसे महीन वल्क-पत्रसे आच्छादित रहता है। यथा अरवी, सूरण, क्रोकस।

वायवीय तनों और शाखाओंकी आकृति भी जुदे जुदे प्रकारकी होती हैं।

ज्वार, नीम, मक्का, साँठा आदिका तना गोल होता है। तिधारा थूहर और नागरमोथाका तना तिकोना है। पोदीना, तुलसी, हरसिंगार, अडूसा आदिका तना चौकोन होता है। कुम्हड़ा, तुरई आदिका तना नसेदार होता है। धान, गेहूं, जौ आदिका तना पोला होता है। तिल, तुलसी आदि कुछ पौधोंके तनेपर रोंएं होते हैं। थूहर, गुलाब, करौंदा, बेर, वज्रदन्ती, बबूल, खैर आदिके तनेपर काँटे होते हैं।
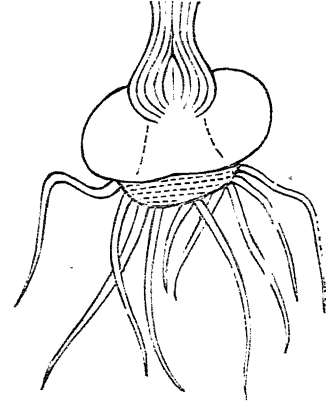
दल्कीकन्द

नीम, बड़, पीपल आदिका तना सीधा और खड़ा होता है। मूली, गाजर आदिका तना जमीनसे बाहर नहीं निकलता। खजूर, केला, ताड़, सूरजमुखी आदिके शाखाएं नहीं निकलतीं बाँस, ईख, बेंत और घास-वर्गके पौधोंके तनेमें पोइयाँ होती हैं।

भुईं चम्पा, गुलबब्बो आदिके तनेके सिरेपर फूल निकलता है। तना पत्र-हीन होता है। फूलके पास ही पत्ते होते हैं।

घीगुवार आदि कुछ पौधोंके पत्तोंके बीचसे पत्र-हीन तना निकलकर सीधा ऊपरको बढ़ता है। तनेके सिरेपर फूल लगते हैं।

जिन पौधोंका तना पतला, लम्बा और ज़्यादा कमजोर होता है, वे सहारेके बिना हवामें सीधे खड़े नहीं रह सकते। इनको लता, बेल या बल्लरी कहते हैं।

जिन पौधोंके तने जमीनपर पड़े रहते हैं किन्तु ग्रन्थि पर जड़ नहीं पकड़ते हैं, वे विनम्र (Prostrate) कहे जाते हैं। विसर्पी या प्रसर्पी (creeping) पौधे वे हैं। जिनके तने भूमि पर लेटे रहते हैं और

प्रतिग्रन्थि पर जड़ पकड़ लेते हैं। सहारे को लिपटकर और पकड़कर ऊपरको चढ़ने वाले पौधे आरोही (Climbing) कहे जाते हैं।

आरोही पौधे

आरोही लताएं छः प्रकार की होती हैं—

१ इश्कपेंचा, मोठ आदिकी लताएं सहारेके चारों ओर कुण्डल मार कर ऊपर चढ़ती हैं। ये दो प्रकारकी होती हैं। कुछ बाईं ओरसे चढ़ती हैं और कुछ दाईं ओर से।

कुण्डलारोही लतायें

२ जिन लताओंके तने पर हुक—जैसे अवयव होते हैं, वे हुककी सहायतासे सहारे पर चढ़ी हैं।

३ चम्पकलता, आइवी, मिर्च आदि अनुभवशील अङ्गों की सहायता से ऊपर चढ़ती हैं।

४ तुरई, अंगूर, मटर, पैशन फलावर आदिका तना प्रतान (tendril) की सहायतासे सहारेके पदार्थको पकड़कर ऊपर चढ़ता है।

५ नस्टेरियम, करिहारी आदिके पत्रनाल सहारेको लिपट जाते हैं इनके पत्रोंकी मध्य शिरा या रीढ़ लम्बी बढ़कर प्रतानका काम देती है।

६ कुछ लताएं अपने पत्तोंकी डंडियोंसे सहारेके पदार्थको पकड़कर ऊपर चढ़ती हैं।

अनुभवशील अङ्गकी सहायतासे ऊपर चढ़ने वाली लताएं दो प्रकारकी होती हैं। १ पत्रारोही (leafclimber) २ सूत्रारोही या प्रतानारोही (tendril climder)
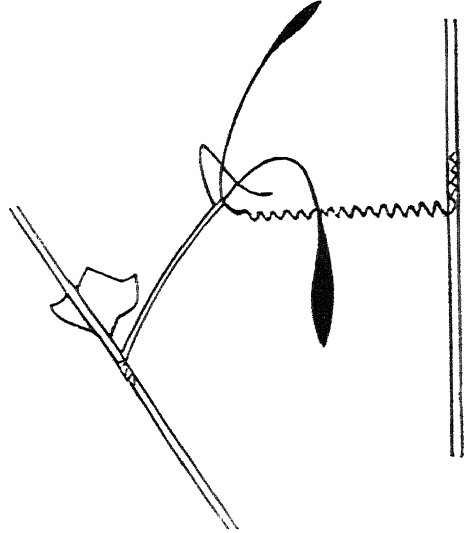
प्रतानारोही लता

क्लैमेटिस पत्तेकी सहायतासे ऊपर चढ़नेवाली लता है। इसका नवीन पत्र चारों ओर चक्कर मारता है और वृक्ष या किसी अन्य पदार्थको पाते ही उस पर चिपक जाता है।
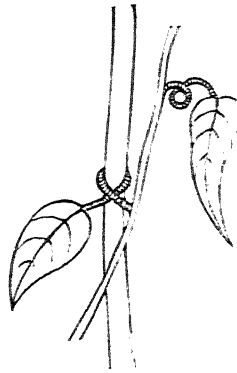
पत्रारोही लता

प्रतान या सूत्र पौधेके भिन्न भिन्न भागोंपर निकलते हैं। 'पैशन फलावर' की शाखाएं प्रतानमें बदल जाती हैं। अंगूरकी बेलमें पुष्पनाल प्रतानका काम देता है। मटर सेम आदिमें संयुक्त पत्र (leaf let) प्रतानका रूप ग्रहण कर लेता है। तुरई, खीरामें पत्रनाल [petiole] से आधार परके पुंख पत्र (stipules) ही सूत्र बन जाते हैं।

सूत्र या प्रतान सहारेकी तलाशमें चक्कर लगाता रहता है और सहारेका पदार्थ पाते ही उस पर चिपक जाता है। सूत्रके सिरे पर चिप चिपे पदार्थका ढेरसा हो जाता है। वह इस पर चिपक जाता है। दीवारसे छूते ही प्रतानका सिरा मोटा हो जाता है और उसमेंसे महीन छोटे छोटे तन्तु निकल कर दीवारके छेदोंमें घुसकर मजबूती से जम जाते हैं।

तनेके परिवर्तितरूप

परिस्थितिके कारण तने या शाखाएं नाना प्रकार-के आकार ग्रहण कर लेती हैं। ये परिवर्तित तने और शाखाएं अपना निजका कार्य छोड़ कर दूसरा विशेष कार्य सम्पादन करने लगते हैं।

कुछ पौधोंमें शाखाओं की बाढ़ रुक जाती है और वे काँटे या शूलमें बदल जाती हैं। काँटे या शूल पत्ते के अक्षकोण से ही पैदा होते हैं। और कभी कभी इनकी बाजू पर पत्ते या कलिकाएं-निकल आती हैं। वृद्धि रुक जाने से शाखा सख्त और नुकीली हो जाती है और इन्हें ही काँटे कहते हैं। काँटे परिवर्तित प्रांकुर ही हैं।

बार बेरीमें पत्ते शूल बन जाते हैं और रोबिनिया-में पुंखपत्र शूल का रूप ग्रहण कर लेते हैं। वर्जिनिया कीपर और अंगूर में शाखाएं प्रतान में बदल जाती हैं।

नागफनी, आदि कई पौधोंकी शाखाएं चपटी, हरी, तथा पत्तों जैसी होती हैं। इन्हें काण्ड-पत्र या पत्री-भूत तना (Cladodes) कहते हैं। ये पत्तोंके अक्ष कोणसे निकलती हैं। एसपैरेगस और स्माइलैक्स-में ये झिल्लीके समान पतली होती हैं।

शाखा-प्रशाखा

प्रारंभिक तनेके सिवा पौधेका प्रत्येक अंग दूसरे अवयवोंसे पैदा होता है। बादमें पैदा होनेवाले अवयव ठीक जनक-अवयव-जैसे ही होते हैं। शाखा-पर शाखा पैदा होती है और जड़ पर जड़।

खजूर, ताड़, नारियल, सूरज मुखी आदि कुछ पौधों को छोड़ कर, वनस्पती-संसारके अधिकांश पौधों पर शाखाएं-निकलती हैं। अतएव अब इस बात पर विचार किया जायगा कि तने पर शाखा-प्रशाखा किस ढंगसे निकलती हैं।

तनेके सिरे पर, जहाँ पत्र-कलिका होती हैं, प्रायः दो पत्ते निकलते हैं। इन पत्तों का बीच का भाग आगे बढ़ता है। पत्तकी डंडी और तने के बीच वाली जगह से शाखाएं निकलती हैं। इस शाखा पर बगलसे प्रशाखा या टहनी पैदा होती है। इस प्रकार शाखा-प्रशाखाकी वृद्धि होनेसे पौधा धीरे-धीरे वृक्ष बन जाता है।

सब से पहले मुख्य तनेका अग्र भाग दो भागोंमें विभक्त हो जाता है जिससे दो शाखाएं पैदा हो जाती हैं। बादमें इनके अग्र भी दो दो भागोंमें विभक्त हो कर प्रत्येकपर दो-दो शाखाएं निकल आती हैं। इस प्रकार प्रत्येक शाखा प्रशाखाका अग्र दो भागोंमें बँटता चला जाता है। चम्पाकी इसी प्रकारकी शाखाएं निकलती हैं।

कुछ पौधोंमें मुख्य तनेका अग्र दो भागोंमें विभक्त तो होता है, किन्तु उसका एक भाग जोरदार होता है और दूसरा कमजोर। जोरदार भाग बढ़कर शाखा बन जाता है और कमजोर भागकी बाढ़ रुक जाती है जोर दार शाखा फिर दो भागोंमें बँट जाती है। और कमजोर भागकी बाढ़ रुक कर जोरदार भाग पर दो शाखाएं निकल आती हैं। और इस प्रकार शाखा-प्रशाखाकी बाढ़ जारी रहती है।

शाखाके दो भागोंमें विभक्त होकर शाखा-प्रशाखाकी वृद्धि होनेकी रीतिको द्विभक्त शाखा क्रम (Dichotomus) कहते हैं। कुछ पौधोंमें जनक अवयवके वृद्धि-शक्ति भागकी दोनों बगलसे शाखाए फूटती हैं। इस प्रकारके शाखा क्रमको पार्श्व-शाखा-क्रम (lateral Branching) कहेंगे।

पार्श्व-शाखा-क्रम दो प्रकार का होता है, १ अपरिमित (monopodial) २ परिमित (Cymose)

यदि जनक-अवयव बढ़ता रहे और उसके अग्रपर कलिकासे शाखा निकल आवे और ये शाखाएं भी इसी प्रकार बढ़ कर प्रशाखाएं उत्पन्न करती रहें, तो

इस प्रकारका वृद्धि क्रम अपरिमित पार्श्व-शाखा-क्रम कहाता है। ऐसे पौधों पर शाखाएं अधिक होती हैं; किन्तु वे मुख्य तनेसे छोटी होती हैं। इस प्रकारके शाखा क्रममें बहुत सी शाखाएं नियमित क्रमसे निकलती हैं और नई शाखाएं बढ़ने वाले भागके पास और पुरानी-आधारके पास होती हैं।

यदि जनक-अंगकी वृद्धि एक या दो शाखाओंके निकलनेके बाद ही रुक जाय और इन शाखाओंसे ही पौधेकी वृद्धि होती रहे, तो इस प्रकारका शाखाभेद, परिमित-पार्श्व-शाखा-क्रम, कहा जाता है।

शाखा निकलने पर मुख्य तनेकी बाढ़ रुक जाती है और शाखाएं बढ़ने लगती हैं। टहनियों या प्रशाखाओंके निकल आने पर शाखाकी बाढ़ तो रुक जाती है और टहनियाँ बढ़ने लगती हैं। इस प्रकारका शाखा क्रम, भंगीभक्ति क्रम, कहलाता है। स्थानाभावके कारण इसके उपभेदों पर विचार नहीं किया है।

तनेके कार्य

पौधेके तनेको भिन्न भिन्न कार्य करने पड़ते हैं। वनस्पति-संसारमें भी श्रम विभागके तत्वपर ही कार्य किया जाता है। पौधेका प्रत्येक अवयव अपना-अपना कार्य करता रहता है। तनेके भिन्न भिन्न कार्यों पर ही यहाँ विचार किया जायगा।

१—पौधेके वायवीय अङ्गोंको हवामें ऊँचा उठाये रखना ही तनेका प्रथम कार्य है। शाखा-प्रशाखा, पत्ते आदिके विस्तारके कारण वायवीय अङ्गोंका वजन बहुत बढ़ जाता है। अतएव विस्तारके अनुसार ही तना मोटा होता है।

२—अन्न रसको पौधेके सभी अवयवोंमें पहुँचानेका काम भी तनेको ही करना पड़ता है। तनेके भीतर महीन नलियाँ होती हैं। इन्हींमेंसे होकर, जड़ों द्वारा सोखा हुआ भोजन, पौधेके भिन्न भिन्न अवयवोंमें पहुँचता है। तनेमें भोजन किस प्रकार चढ़ता है, यह बात नीचे लिखे हुए प्रयोगसे मालूम हो सकती है।

प्रयोग:—मक्का, ज्वार, सूरजमुखी आदि किसी एक पौधेको जमीनमेंसे सावधानीसे उखाड़ लो। स्मरण रहे कि जड़ोंपरके महीन रोओंको क्षति न पहुँचने पावे इस पौधेको लाल रङ्गके पानीसे भरे हुए बरतनमें जड़ें डुबोकर रख दो। कुछ घंटे बाद तनाके ऊपरका भाग तेज छुरीसे काटकर देखनेसे लाललाल बूंदे नजर आवेंगी। तनेके हीर भागमें महीन नलिकाएं हैं। लाल पानी इन्हीं नलिकाओंमेंसे होकर ऊपर आता हुआ दिखाई देगा। ये नलिकाएं पौधेके प्रत्येक अवयवमें जाल-सी फैली रहती हैं।

३—पत्तों द्वारा पचाया हुआ अहार-रस (organised food) तनेमेंसे होकर भिन्न भिन्न अवयवोंमें पहुँचता और उनकी वृद्धि करता है।

प्रयोग—किसी पौधेके तनेको खड़ा चीरकर देखो। खड़ी काली रेखा बाहरी छाल है। इसके पास ही अन्तर छाल (bast) है। यह पतली होती है। अन्तर्छालसे भीतरको मज्जा तन्तु (cambium) होता है। यह महीन झिल्ली जैसे कोषोंसे बना होता है। इससे भीतरको नवीन काष्ट (alburnum) है और तब हीर या पिथ (pith)। हीर चारों ओरसे काष्टसे घिरा रहता है। द्विदल जातिके पौधोंमें ही मज्जातन्तुका पर्त होता है और तनेकी पेटेन्दार नलिकाएं एक वृत्तमें संगठित होती हैं। एक पत्रक पौधोंमें मज्जातन्तु नहीं होता है। और न तनेकी नलिकाएं ही एक वृत्तमें संगठित होती हैं।
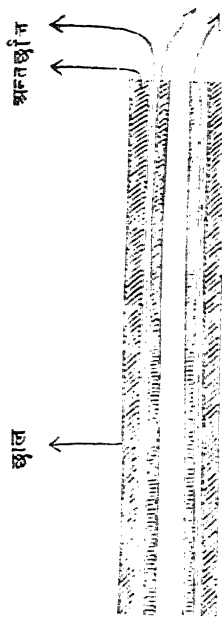
जड़ों द्वारा सोखा हुआ पानी या शरबत नवीन काष्ठमेंसे होकर ऊपरको चढ़ता है। और अहार-रस

अन्तर छालमेंसे होकर उतरता और भिन्न भिन्न-अवयवोंमें फैल जाता है।

ऊपर चढ़नेवाले शरबत और नीचे उतरनेवाले अन्न-रसके संयोगसे नवीन काष्ट बनता है। इस प्रकार रसको ऊपर ले जानेवाली नालिकाओं और अन्तरछालके कोषोंसे नाड़ियोंका गुच्छा बनता है।

पत्तोंमेंसे आनेवाले अन्नरसके मार्गमें रुकावट पहुँचनेपर पौधेकी वृद्धि और पोषणमें बाधा पड़ती है।

ज्वारके सूखे तनेका एक सिरा काटकर बारीकीसे निरीक्षण करनेसे महीन नलिकाओंके तन्तु नजर आवेंगे। यदि तनेके बीचका छिलका चाकूसे काटकर उसके दोनों सिरे पकड़ कर दोनों भाग अलग कर दिए जावेंगे, तो इन टुकड़ोंके सिरे पर कड़े और ऐंठनदार तन्तु हीरमेंसे निकले हुए नजर आवेंगे। यही नलिकाएं है।

साठेका रसदार भाग नलकिाओंके संयोगसे ही बना हुआ है। इसको मुँहसे चूस लेने या कोल्हूसे दबाकर रस निकाल लेने पर जो थोथा भाग बच रहता है, वही नलिकाओंका समूह है। *

विद्युन्मय धूलके बादल

(गतांकसे आगे)

[ले० श्री दौलतसिंह कोठारी बी० एस-सी०]

क ही वस्तुके दो टुकड़ोंकी रगड़से जो विद्युत् उत्पन्न होती है यह धूलके बादलोंमें बहुत अच्छी तरहसे जाहिर होती है। धूलके बादलोंमें विद्युत्के उत्पन्न होनेका विषय बेतारके तार और मेट्रियोलाजीसे सम्बन्ध रखनेके कारण बहुत महत्वपूर्ण हैं और हाल ही के सालोंमें वैज्ञानिकों ने इस पर बहुत प्रयोग किये हैं।

* लेखक की 'तरु-विज्ञान' नामक अप्रकाशित पुस्तकके एक परिच्छेदके आधार पर लिखित— —लेखक

१९१४ में डब्ल्यू एo डगलस रज ने रायल सोसाइटीके पत्रमें अपने प्रयोगोंका हाल लिखा है उन्होंने एक तख्तेपर किसी वस्तु जैसे नमक का चूर्ण रख दिया और उसको हवा देकर उड़ा दिया। एक जाली जो तख्तीके सामने रखी हुई थी और विद्युत् दर्शक यन्त्र (इलेक्ट्रोसकोप) से एक तार द्वारा जुड़ी हुई थी, चूर्णका विद्युत् बतलाती थी। एक रश्मिम् संग्राहक Radium collector) जो पास ही में रखा हुआ था अगर चूर्ण धनात्मक विद्युत् बतलाता था तो यह ऋणात्मक। अगर वह ऋणात्मक तो यह धनात्मक।

धूल	जालकी विद्युत	रश्मिम् संग्राहककी विद्युत
लाल सीसम्	—	+
रेता	+	−
आटा	—	+
खड़िया	—	+
दस्तम् चूर्ण	—	+
लोहेका चूर्ण	—	+

इतना थोड़ा चूर्ण कि जिसका वजन करना मुश्किल हो, हवामें उड़ाये जाने पर बहुत विद्युत् उत्पन्न करता है खास कर पारद गन्धिद बहुत विद्युत् बतलाता है। रज ने यह मालूम किया कि आम्लीय चीजोंको हवामें उड़ानेसे वे ज्यादातर धनात्मक विद्युत् बतलाती हैं और भस्मीय वस्तुएँ - विद्युत् बतलाती हैं।

मिस्टर देवधर ने १९२१ में कुछ प्रयोग किये जो फिज़िकल सोसाइटी लन्दनके पत्रमें प्रकाशित हुए। उनके प्रयोगसे भी रज साहबकी ऊपर कही हुई बातका समर्थन होता है। मिस्टर देवधर ने धूलको छलनियोंमें-से छान छानकर इस तरहकी धूलें बनाईं कि जिनके कण करीब करीब एक ही आकारके थे इससे उन्होंने यह साबित किया कि अगर हम एक ही वस्तुकी धूल

दो बराबर वजनके नमूने लें, एक-एक कण छोटे और एक-एक बड़े, तो छोटे कणवाली धूल हवामें उड़ाये जानेपर ज्यादा विद्युत् बतलायेगी। उन्होंने खुर्दबीन-से कणोंका आकार नापा और हवामें उड़ाये जानेपर विद्युत् उत्पन्न होनेवाली और कणोंके आकार का एक (graph) खींचा।
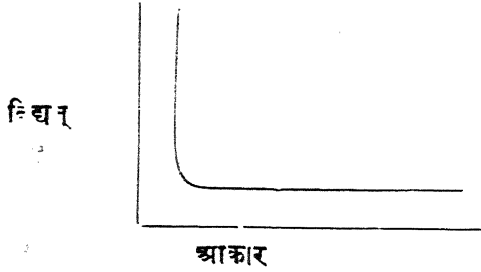
रज साहब ने अपनी जाल द्वारा और देववर साहबने भी अपने प्रयोगमें धूलका कुछ विद्युत् नापा यानी उन्होंने यह तो जान लिया कि धूल + है या लेकिन यह नहीं जाना कि उसके सब कण + हैं या सब कण — हैं या थोड़े + है और ज्यादा — इस बात-की जांच करनेके लिए विटमैनने अपने प्रयोग किये — उन्होंने कुल बादल का विद्युत् निकालनेके अलावा एक एक कणको विद्युत्को नापा। उनके प्रयोगोंसे यह जाहिर है कि अगर हम थोड़ा सा आटा लेकर, जिसके कण सब आकारके कोई छोटे कोई बड़े होंगे फूँक मारकर हवामें उड़ा दें और एक जाल रख कर — जाल विद्युत् दर्शकसे तारसे जुड़ा होगा — तो जाल विद्युत् बतलाएगी यानी आटेका बादल अगर तमाम देखा जाय तो उसका विद्युत् — है। विटमैन साहब ने धूलके कणोंकी विद्युत् नापकर यह बतलाया कि बड़े कण - हैं विद्युत् रखते हैं उनसे छोटे + उनसे छोटे फिर — और इसी तरह। विद्युत् रखनेवाले कण + विद्युत् रखने वालोंसे ज्यादा हैं और इसीलिए बादल — विद्युत् बतलाता है।

स्वान्ते आरहीनियस

[ले० श्री कुञ्जबिहारी मोहनलाल बी. एस-सी]

जन्म १९ फरवरी १८५९ मृत्यु ३ अक्तूबर १९२७

सी राजाको मरे हुये देर न हुई कि "महाराजा जुग-जुग जिये" की आवाजें आने लगती हैं। उसका उत्तराधिकारी फौरन ही मिल जाता है, पर विज्ञान या कलामें उत्तराधिकारी इतनी जल्द नहीं मिला करते। अब आरहीनियसको ही देखिये, उनकी ऐसी प्रतिभाके मनुष्य संसारमें बहुत कम पैदा होते हैं। रसायन, ज्योतिष, वैद्यक और भौतिक संसारोंमें उन्होंने बड़े-बड़े सिद्धान्तोंकी नींव डाल दी है और जब तक इस संसारमें बुद्धि और प्राण है तब तक वह उनकी चमत्कारी प्रतिभाके साक्षी रहेंगे।

आरहीनियसका जन्म एक कुलीन घरमें हुआ था। इनके पिता कारिन्दा थे और स्वीडनके प्रसिद्ध नगर उपसालके निकट एक गांव विकमें थे। आरही-नियसने १७ वर्षकी अवस्थामें मैट्रिकुलेशन परीक्षा बड़ी ही योग्यतासे पास की। बहुधा यह देखनेमें आता है कि जो बालपनमें बहुत कुछ बुद्धि व उत्साह-का परिचय देते हैं वह बड़े होनेपर कुछ अधिक प्रतिभाशाली नहीं निकलते और दुनियाके बड़े आद-मियोंमें बहुत कुछ ऐसे निकलेंगे जो बचपनमें ज्यादह होनहार न समझे गये थे। रसायनमें ही वैण्ट हाफ, रैमज़े आदि इसका प्रमाण हैं। हमारे भारतवर्षके कवि श्री रवीन्द्रमें बचपनमें कुछ विशेषता नहीं थी और कोई नहीं कह सकता था कि यह इतने बड़े प्रति-भाशाली होंगे या म० गांधीको ही लीजिये। यह इतने बड़े आदमी हो जायेंगे इसका किसीको स्वप्नमें भी विश्वास न होता पर इसका यह मतलब नहीं कि सभी जो बचपनमें अच्छे हों वह बड़े होने पर अच्छे न

रहें। मेडेम कूरी भी जैसा कि दिखाया जा चुका है हमेशासे अपनी प्रतिभाका परिचय देती आ रही है या आप हमारे भारतवर्षके प्रसिद्ध रासायनिक डाक्टर धरको ही लीजिये। इन्होंने अपनी बुद्धि और प्रतिभासे हमेशासे ही लोगोंको चकित किया है।

अस्तु, मैट्रिकुलेशन करनेके बाद यह पांच सालतक उपसाला यूनीवर्सिटीमें पढ़ते रहे। वहां इनके रसायनके प्रोफेसर क्लीव थे। क्लीवके व्याख्यानोंको सुनकर यह विज्ञानके विचार सागरमें बड़े-बड़े गोते खाने लगते थे। एक बार क्लीव ने कहा कि मामूली गन्नेकी शकरका साधारण सूत्र $क_{१२} उ_{२२} ओ_{११}$ है, पर वास्तविक सूत्र क्या है इसके निकालनेकी कोई भी विधि ज्ञात नहीं है। बस आरहीनियस शकरके साधारण सूत्रके पीछे पड़ गये और उन्होंने सोचा कि ऐसे भारी कामको बिजली ही कर सकेगी और बिजली द्वारा वह घोलोंके साथ प्रयोग करने लगे।

पर शायद रिजलीने शकरका साधारण सूत्र सूचित करना कोई ऐसा भारी काम नहीं समझा, वह इस कामको बिजली द्वारा नहीं कर सके। इसी बीचमें ग्रेनोंबुलके प्रोफेसरने शकरका सूत्र निकाल लिया, पर इस कालमें आरहीनियसको एक ऐसी चीज मिल गई जिसने उनका नाम दुनियामें थोड़े ही दिनोंमें प्रसिद्ध कर दिया। इनकी इस खोजकी ठीक जानकारीके लिये घोलोंका कुछ हाल जानना आवश्यक है।

यह सभी जानते हैं कि बिजली धातुके तारोंमें बड़ी अच्छी तरह जा सकती है। हम बिजलीको पारेमें होकर भी अच्छी तरह ले जा सकते हैं। पर खालिस पानी या और किसी खालिस द्रव्यमें होकर बिजली बड़ी ही कठिनतासे जाती है। पर पानीमें जब कुछ वस्तुएं घोली जाती हैं तो बड़ी विचित्र बात होती है. कुछ वस्तुओंके घोलनेपर तो पानीमें विद्युत् प्रवाहकी शक्ति आजाती है और कुछके घोलनेपर कुछभी नहीं होता। पहली तरहकी वस्तुओंको विद्युत् विश्लेष्य (electrolyte) कहते हैं, सभीतरहके लवण, क्षार, अम्ल विद्युत् विश्लेष्य होते हैं। और दूसरी तरहकी वस्तुओंको विद्युत् अविश्लेष्य कहते हैं। इनकी मामूली मिसाल है हरोपिपील (क्लोरोफार्म) शकर इन घोलोंके विद्युत् प्रवाह मामूली तारके विद्युत् प्रवाहसे बिलकुल ही भिन्न है। तारमें जब बिजली जाती है तो थोड़ी सी गर्मीके अतिरिक्त कुछ नहीं होता, पर जब घोलमें होकर बिजली जाती है तो घोलमें बड़े बड़े परिवर्तन हो जाते हैं। जैसे तूतियाके घोलमें बिजली जानेपर एक तार पर तो उदजन गैस निकलती है और दूसरे पर तांबा जमने लगता है। फिर विद्युत् विश्लेष्य और अविश्लेष्यके घोलोंमें भी बड़ी ही विभिन्नता है। हरोपिपील और नमक दोनोंमें हरिन् है पर इनके घोलोंमें यदि रजतनोषेत मिला दिया जाय तो हरोपिपीलमें तो कुछ भी न होगा पर नमकके घोलमें क्षणमात्रमें ही एक रजत हरिदका श्वेत अवक्षेप प्रकट हो जायगा। पानीमें कोई भी चीज घोलनेपर उसका क्वथनांक पानीसे ऊँचा और उसका द्रवांक पानीके द्रवांकसे नीचा हो जाता है। किसी भी अविश्लेष्यके अणुभारमात्राको १०० घ॰ शम॰ पानीमें घोलनेपर क्वथनांक एक बराबर ही बढ़ता है और द्रवांक एक बराबर नीचा होता है। विद्युत् विश्लेष्यके घोलनेपर यह बढ़ाव या घटाव दूना या तिगुना हो जाता है। इस तरह बहुत सी भिन्नताएं विद्युत् विश्लेष्य और अविश्लेष्यमें हैं इनका कारण कोई बता नहीं सकता था। इस भेदका पता २२ वर्षीय युवक आरहीनियस ने ज़रा सी बातसे निकाल लिया आरहीनियस ने कहा कि घोलमें विश्लेष्योंके अणुओं दो तरहके टुकड़े हो जाते हैं। एक तरहके टुकड़ेमें धन बिजली रहती है और दूसरेमें ऋण। दोनोंके मिलनेसे बिजली रहित अणु बनता है। इन टुकड़ोंको यवन (ion) कहते हैं यही टुकड़े या यवन बिजली को ले जाते हैं। जब घोलमें बिजलीके तारके दोनों सिरे रक्खे जाते हैं तो ऋण बिजलीके तारके पास धन बिजली वाले यवन जाकर अपनी बिजली दे डालते हैं और वहाँ पर मामूली हालतमें आ जाते हैं। तूतियाके घोलमें यह टुकड़े (तांबा + धन बिजली) और ($गओ_{४}$ + ऋण बिजली) हैं। एक तारके पास तांबा जा कर अपनी बिजली दे देता है और वहाँ आकर साधारण

ताँबेके रूपमें जमने लगता है। दूसरे तार पर गन्धेत यवन ग ओ₄" अपनी बिजली देकर पानीके साथ गन्धकाम्ल उ₂ ग ओ₄ बनाता है और पानीका ओषजन पृथक हो जाता है। गन्धकाम्लका पता द्योतक पत्रसे लग जाता है।

ग ओ₄ + उ₂ ओ = उ₂ गओ₄ + ओ

पानीके क्वथनांकका उत्कर्ष और उसके द्रवांकका अवकर्ष उसके अणुओंकी संख्याके ऊपर निर्भर है। जैसे जैसे संख्या बढ़ती जाती है वैसे ही यह उत्कर्ष या अपकर्ष बढ़ता जाता है। अब विद्युत् विश्लेष्यके टुकड़े हो जानेसे उसके वास्तविक अणुओंकी संख्या भी दूनी या तिगुनी हो जाती है। जिन अणुओं के तीन टुकड़े होते हैं उनमें तिगुना उत्कर्ष या अवकर्ष व बढ़ाव होना चाहिये, जैसे भारहरिद, भ ह₂, के तीन टुकड़े होते हैं धन बिजली वाले भ⁺⁺ और ऋण बिजली वाले दो गामी हरिन ह'। इसको घोलमें यह उत्कर्ष या अवकर्ष सचमुचमें तिगुना पाया जाता है जिससे आरहीनियस-के सिद्धान्तकी पुष्टि होती है और सैन्धक-हरिद आदि-के अणुओंके दो टुकड़े होते हैं। इसके घोलका उत्कर्ष या अवकर्ष सिर्फ दुगना ही होता है इस तरह आरहीनियस ने घोलोंके बहुतसे रहस्य अपने ज़रासे सिद्धान्तसे सुलझा दिये।

पर इसका उनके प्रोफेसरपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा जब वह अपने प्रोफेसर क्लीवके पास गये तो उन्होंने बिना कुछ सुने ही दरवाजा दिखा दिया। पर इससे आरहीनियस पर कुछ भी प्रभाव न हुआ उन्होंने बाहरके बड़े बड़े आदमियोंको लिखा। उनमेंसे बहुतों ने तो कुछ न पूछा पर जर्मनके प्रोफेसर आस्टवैल्डने फौरन ही इनको प्रोत्साहित करना आरम्भ किया और स्वयं आरहीनियससे मिलनेको गये। इसकी एक खास वजह थी, वह यह कि वह उन दिनों कुछ अम्लोंकी तेजी पर काम कर रहे थे उसमें उन्होंने देखा वही अम्ल तेज होते हैं जो कि पानीके घोलको सबसे ज्यादह विद्युत्प्रवाहके योग्य बना देते हैं। जब यह आरहीनियसके प्रोफेसरसे मिले तो उन्होंने पूछा, क्या आप भी इन यवनोंमें विश्वास रखते हैं। आस्टवेल्डने उत्तर दिया कि हाँ मुझे इसमें बहुत कुछ सत्य मालूम होता है। इस पर क्लीव ने उन पर एक ऐसी दृष्टि डाली जिससे साफ मालूम होता था कि वह उनके रसायनके ज्ञानको कुछ भी नहीं समझते हैं। यह उन बूढ़े रासायनिकों की समझमें ही नहीं आता था कि सैन्धकम् पानीमें बिना पानीसे मिलकर सैन्धक उदौषिद बनाये हुये किस प्रकार रह सकता है। आरहीनियसका कहना था कि यह सैन्धकम् बिजलीसे मिलकर विद्युत् रहित सैन्धकम् से बिल्कुल ही भिन्न हो जाता है, पर वह इस बात को बिलकुल नहीं समझ सकते थे।

आरहीनियस को आचार्य (Ph. D.) का डिग्री किसी तरह मिल गई पर यह साफ मालूम होता था कि वहां उनके महत्वको समझने वाला कोई नहीं था। आखिर उन्होंने देश छोड़ कर परदेश जाना ही उचित समझा और आस्टवैल्डकी प्रयोगशालामें काम करने लगे। इसी बीचमें उनके पिताका देहान्त होगया। जिससे उनको वापिस आना पड़ा। इसके बाद वह फिर आस्टवैल्डके पास कार्य करने लगे आरहीनियस दूसरे का चित्त आकर्षित करने में इतने कुशल थे कि थोड़े ही दिनोंमें उनमें और आस्टवैल्डमें बड़ा मेल हो गया। इसके बाद वह थोड़े दिनोंको हालैण्ड गये और वहाँ काम करने लगे। वहाँ पर उन्होंने प्रसिद्ध रासायनिक वैण्ट हाफका लेख देखा जिसमें उन्होंने लिखा था कि विद्युत विश्लेष्यसे घोलका निस्सरण (osmotic) दबाव अविश्लेष्योंके घोलोंके निस्सरण दबावसे अधिक होता है। इसको भी उन्होंने अपने सिद्धान्त द्वारा समझा दिया और इस बारे में एक पत्र वैण्टहाफ को लिखा, इसपर इसमें बराबर पत्रव्योवहार होने लगा और घनिष्ट मित्रता होगई। अब आरहीनियस ने अपना सिद्धान्त आद्योपान्त ठीक तरहसे लिखा - आस्टवैल्डने एक पत्रिका निकालनी आरम्भ की। उसमें यह और वैण्ट हाफ का लेख, वस्तुकी घोलावस्था और वायव्यावस्थाकी समानता, पर निकले।

दुनिया में किसी एक पत्र में ऐसे मार्क के दो लेख साथ साथ नहीं निकले हैं।

इस लेखका छपना था कि चारों ओर से इस पर घोर आक्रमण होने लगा। किसी ने बच्चेको अपनी हैसियतपर विचार रखनेकी सीख दी। किसी ने कुछ कहा, पर इस अपनी हैसियत पर विचार न रखनेवाले युवकको बचाने वाले भी बहुत निकले आये। अस्टवैल्ड, रैमजे और जोन्स ने जर्मनी, इंगलैण्ड और अमेरिकामें इसकी ओरसे लड़ना शुरू किया। थोड़े ही दिनोंमें 'यवनों' को युद्धमें विजय प्राप्त हुई और इस सिद्धान्त को सबने मान लिया। आरहीनियसको जर्मनी में बहुत अच्छी जगहें मिलने लगीं पर इन्होंने उसको न स्वीकार कर स्वदेश में एक व्याख्याता की छोटी जगह में कार्य करने लगे। थोड़ेही दिनों में वह वहां सर्वप्रिय हो गये। इसके पांच सालके पश्चात् यह वहां के रेक्टर चुने गये और इसकेबाद तीनबार बराबर फिर इसी पद पर निर्वाचित हुए। तीसरी बार इन्हों ने रेक्टर बनना स्वीकार नहीं किया क्योंकि इसके कार्योंमें उनका बहुत समय चला जाता था।

जर्मन लोग विद्वानोंकी प्रतिष्ठा करना जानते हैं उन्होंने आरहीनियस को फिर एक बहुत बड़ा पद देना चाहा। इस बार फिर आरहीनियस ने मना कर दिया। अब उनके देशवासोंकी आंखें खुलीं और उन्होंने उनको नोबेल इन्स्टीट्यूट आफ फिजिकिल केमिस्ट्री का डाइरेक्टर बना दिया। उस पद पर वे अपनी मृत्यु तक रहे। बादमें वह नोबेल बोर्ड आफ ट्रस्टीजके सभापति भी चुने गये थे।

आरहीनियस ने घोलोंके विषयमें बहुत कार्य किया है और घोलके विज्ञानको उन्होंने बिल्कुल गणितके ऊपर रखनेकी कोशिश की है। उनका एक सिद्धान्त यह भी है कि सभी चीजोंमें कई तरहके अणु होते हैं। उनमें कुछ तो ऐसी दशामें रहते हैं कि उनमें एक विशेष रासायनिक परिवर्तन हो सकता है और कुछ में वही रासायनिक परिवर्तन नहीं हो सकता। इसी सिद्धान्तको उन्होंने तापक्रमके बढ़नेपर रासायनिक परिवर्तनकी चाल के बेतरह बढ़नेपर लगाया है। उनका कहनाहै कि इस से पहले तरह के अणुओं की संख्या बेतरह बढ़ जाती है।

आरहीनियस ने सिर्फ रसायन ही के विज्ञान को नहीं बढ़ाया बल्कि उन्हीं ने ज्योतिष, भौतिक, और जीवविज्ञानको बहुत कुछ बढ़ा दिया है। यह संसार किस तरह शून्यसे बनते हैं और फिर इन पर किस तरह जीव पैदा होते हैं इन्होंने अपनी किताब (world in making) में बड़ी अच्छीतरह लिखे हैं। इनका कहना है कि नीहारिका नेबुलामें से सूर्य व पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है और इन पर आकाश-के कीड़ोंके अण्डे गिर पड़ते हैं। यह तो पहले रैम्ली आदि वैज्ञानिक भी कहते थे। शायद पहले पहल कीड़ोंके अण्डे ही आते हों और उनसे धीरे २ जगत् में और बड़े बड़े जानवरों का विकास होता हो, पर इन कीड़ोंको एक तारेसे दूसरे तारे तक ले कौन जाता है? आरहीनियस ने कहा कि इनका ले जाने वाला प्रकाश है। यह सबको मालूम है कि प्रकाश की किरणोंका भी दबाव होता है। यही किरण दुमदार तारेकी दुम को सूर्य्य से परे रखती हैं। दुमदार तारे की दुम बहुत ही हलकी होती है पर एक बात ध्यान देने योग्य है। एक तारेसे दूसरा तारा इतनी दूर है कि प्रकाश के आनेमें भी कई हजार वर्ष लग जाते हैं यद्यपि प्रकाश एक सैकेण्डमें १ लाख ८६ हजार मील चलता है। ध्रुवसे यहाँ तक प्रकाश आनेमें ४५ वर्ष लग जाते हैं।

इस गुत्थीको आरहीनियसने बड़े अच्छे ढंग से सुलझाया है। यह हम कह आये हैं कि तापक्रमका रासायनिक परिवर्तनों पर बहुत असर पड़ता है। आयु की अवधि भी इसी रासायनिक परिवर्तन पर निर्भर है। उष्ण रक्त प्राणिओंका तापक्रम जब वह जीवित रहते हैं एक रहता है (यदि बुखार न आया रहे)। और उसीके लिये उनको खाना खाकर गर्मी पैदा करनी पड़ती है डाक्टर धर ने दिखा दिया है कि सर्द देशका मनुष्य

या मामूली गर्म देशमें अधिक दिनों जियेगा। क्योंकि उसको अपने तापक्रम को क़ायम रखनेके लिये वहाँ गर्मी की जरूरत होगी और इससे उसकी क्षति कम होगी। कुछ ऐसे जीव होते हैं जिनका तापक्रम उनके आसपास के तापक्रमके बराबर रहता है। आरहीनियस ने कहा कि इन गरमोंकी उम्र आकाशके तापक्रमके बहुत नीचा रहनेसे करोड़ों गुना बढ़ जाती है। इससे जीवके एक संसारसे दूसरे संसारमें जाना सम्भव हो जाता है।

स्वान्ते आरहीनियस को अभिमान छू भी नहीं गया था। वह हमेशा प्रफुल्ल और मिलनसार रहते थे वे अन्त तक काम करते रहे। उनका अन्तिम लेख १७ सितम्बर को ही प्रकाशित हुआ है। उनको हर जगह सन्मान मिलता था, उनको यूनीवर्सिटियाँ डिग्री देतीं और सोसायटियां मेम्बर बनानेको लालायित रहती थीं। रसायनका नोबेल प्राइज़ भी इनको प्रदान किया गया।

भारतवर्ष पर इनकी बड़ी श्रद्धा थी। जब सर प्रफुल्लचन्द्र रायने अपनी किताब 'भारतके रसायनके इतिहास' की भेजी तो उसको आप आद्योपान्त पढ़ गये। और उन्होंने अपनी किताब "Chemistry in Modern life" में भारत को रसायन का जन्मदाता ठहराया है।

इसी वर्ष तीसरी अक्तूबरको इनकी मृत्यु होगई जब तक यह जिये तब तक सबके प्यारे रहे, और इनकी मृत्युसे संसार भरके वैज्ञानिकोंको बड़ा दुःख हुआ। इनके कार्य इनके जीवनके सच्चे और अमिट स्मारक रहेंगे।

शर्करायें अथवा कर्ब-उदेत

(Carbohydrates)

[ले० श्री सत्यप्रकाश एम, एस-सी]
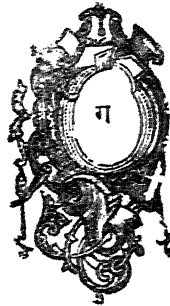
गत अध्यायमें बहुउदिक मद्योंका वर्णन किया जा चुका है। अब हम यहाँ कुछ उपयोगी उदौष—मद्यानार्द्रों और उदौष-कीतोनोंके विषयमें कुछ लिखेंगे। उदौष-मद्यानार्द्र उन यौगिकोंका नाम है जिनमें एक या अधिक उदौषिलमूल—ओउ—हों और उनके साथ साथ एक मद्यानार्द्र मूल—क उ ओ—भी हो। इसी प्रकार उदौषकीतोन उन यौगिकोंको कहते हैं जिनमें एक या अधिक उदौषिलमूलके साथ साथ एक कीतोनमूल—क ओ—भी हो। उदाहरणतः निम्न उदाहरण उदौष-मद्यानार्द्रों के हैं:—

```
क उ₂ ओ उ          क उ₂ ओ उ
|                 |
क उ ओ             क उ ओ उ
मधुओलिक           |
मद्यानार्द्र          क उ ओ
                  मधुरिक
                  मद्यानार्द्र
```
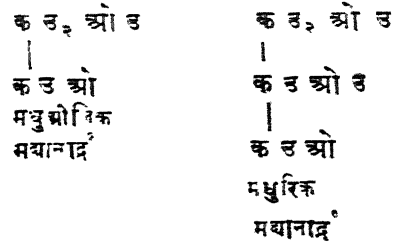
द्विउदौष-सिरकोन—उदौष-कीतोनका उदाहरण है:—

```
क उ₂ ओ उ
|
क ओ
|
क उ₂ ओ उ
द्विउदौष-कीतोन
```
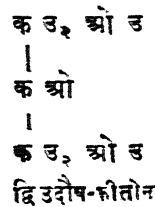
सरलताके लिये उदौषमद्यानार्द्रों को मद्यानोज़ (aldose) और उदौषकीतोनोंको कीतोज़ (Ketose) कहते है। इस प्रकार मधुओलिक मद्यानार्द्र को मद्या-

नो द्विओज, और मधुरिक मद्यानाद्रे को मद्यानो-त्रिओज कह सकते हैं। पहलेको द्विओज इसलिये कहा कि इसमें कर्बनके दो परमाणु हैं और दूसरेको त्रिओज इसलिये कहा कि इसमें कर्बनके तीन परमाणु हैं। इस नियमके अनुसार मद्यानो-पंचोज और मद्यनो षष्ठोज निम्न सूत्रों द्वारा चित्रित किये जायंगे:—

मद्यानोपंचोज़	मद्यानो षष्ठोज़
क ह₂ ओ उ	क उ₂ ओ ह
|	|
(क ह ओ ह)₃	(क ह ओ ह)₄
|	|
क ह ओ	क ह ओ
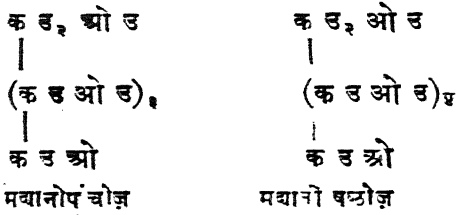
इसी प्रकार अन्य यौगिकोंको भी समझना चाहिये।

कर्बउदेत (carbohydrates)

उदोषमद्यानाद्रों और उदौषकीतोनोंमें पंचोज और षष्ठोज यौगिक अधिक उपयोगी और मुख्य माने जाते हैं। अंगूर, गन्ना, चुकन्दर, अथवा अन्य फलों को मिठासका कारण एक प्रकारकी शर्करा (शक्कर) है जो इन फलोंमें पायी जाती है। भिन्न भिन्न फलोंमें भिन्न भिन्न प्रकारकी शकरें होती हैं। गन्नेकी शक्कर द्राक्ष अथवा अंगूरकी शकरसे भिन्न होती है। दोनों के सूत्रोंका संगठन और इनमेंके कर्बन उदजन की मात्रा भी भिन्न होती है। पर इनमें एक नियम अवश्य दृष्टिगत होता है। वह यह कि इन शकरों में जितने ओषजनके परमाणु होते हैं उसके ठीक दुगुने उदजन के परमाणु होते हैं। इस प्रकार इन सब शर्करायोंका सामान्य सूत्र $क_य$ ($उ_२$ ओ)$_र$ माना जा सकता है, अथवा साधारणतः यह समझा जा सकता है कि कर्बनके कुछ परमाणुओंके साथ जलके कुछ अणु संयुक्त कर दिये गये हैं, इसीलिये इन यौगिकोंको एक सामान्य नाम कर्बउदेत या कर्बोदेत (अर्थात् कर्बन+उद=जल) दिया गया है। शकरोंके अतिरिक्त चावल, गेहूँ, आलू आदिसे निकला हुआ नशास्ता या माँड़ी), तथा पेड़ोंके अन्य पदार्थ जैसे गोंद, छिद्रोज आदिके भी सूत्रोंमें यही नियम व्यापक है, अतः इन्हें भी कर्बउदेत कहते हैं। वस्तुतः नशास्ता या छिद्रोजको हलके गन्धकाम्लके साथ उबालकर उदविश्लेषण करनेसे द्राक्षशर्करा प्राप्त होती है। इस प्रकार यह आवश्यक नहीं है कि सब कर्बउदेत शक्कर के समान मीठे ही हों।

सम्पूर्ण कर्बोदेत दो श्रेणियोंमें विभक्त किये गये हैं। पहली श्रेणीके कर्बोदेत स्वादमें मीठे होते हैं। स्फटीकरण द्वारा इनके रवे जमाये जा सकते हैं। दूसरी श्रेणीके कर्बोदेत स्वाद रहित होते हैं और ये रवेमें परिणत नहीं हो सकते हैं। रवेदार कर्बोदेत दो श्रेणियों में फिर विभाजित किये गये हैं।

एक श्रेणीके यौगिकोंको एक-शर्करोज (monosaccharose) कहते हैं। इनमें कर्बनके ५ या ६ परमाणु होते हैं। दूसरी श्रेणीके यौगिकोंको द्विशकरोज (disaccharose) कहते हैं। इनमें कर्बनके १२ परमाणु होते हैं। द्विशकरोज उदविश्लेषण द्वारा एक-शर्करोजमें परिणत किये जा सकते हैं—

$$क_{१२} उ_{२२} ओ_{११} + उ_२ओ = २ क_६ उ_{१२} ओ_६$$

कर्बोदेत
- मीठे रवेदार
  - एकशर्करोज: $क_६ उ_{१२} ओ_६$ या $क_५ उ_{१०} ओ_५$
  - द्विशकरोज: $क_{१२} उ_{२२} ओ_{११}$
- बेरवे: $(क_६ उ_{१०} ओ_५)_न$
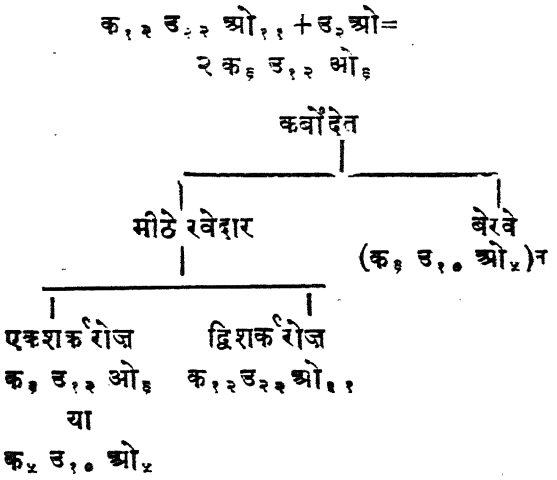
बेरवे कर्बोदेतोंको बहुशर्करोज (polysaccharose) कहते हैं क्योंकि इनके उदविश्लेषण पर एक शर्करोजके बहुतसे अणु प्राप्त होते हैं:—

(क$_{6}$उ$_{10}$ओ$_{5}$)न + न उ$_{2}$ओ = न(क$_{6}$उ$_{12}$ओ$_{6}$)
बहु शर्करोज

अब हम यहां कुछ मुख्य एक-शर्करोज, द्वि-शर्करोज और त्रिशर्करोजका वर्णन देंगे।

एक-शर्करोज (monosaccharose)

यह कहा जा चुका है कि इन शर्करोजोंमें कुछ उदौषिल-मूल होते हैं और एक कीतोनमूल या मद्यानार्द्र मूल होता है। इन दो प्रकारके मूलोंकी विद्यमानताके कारण शर्करोजोंमें मद्यके गुण भी होते हैं क्योंकि उदौषिल मूल मद्यका चिह्न है और इसके साथ साथ इसमें मद्यानार्द्रों अथवा कीतोनोंके भी गुण होते हैं। एक शर्करोजमें द्राक्षोज (glucose) और फलोज (fructose) अधिक प्रसिद्ध हैं। द्राक्षोज मद्यानोज है और फलोज कीतोज है। इन दोनोंका सूत्र क$_{6}$उ$_{12}$ओ$_{6}$ है। इनका रूप निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है:—

द्राक्षोज	फलोज
क उ$_{2}$ ओ उ	क उ$_{2}$ ओ उ
|	|
क उ ओ उ	क उ ओ उ
|	|
क उ ओ उ	क उ ओ उ
|	|
क उ ओ उ	क उ ओ उ
|	|
क उ ओ उ	क ओ
|	|
क उ ओ	क उ$_{2}$ ओ उ
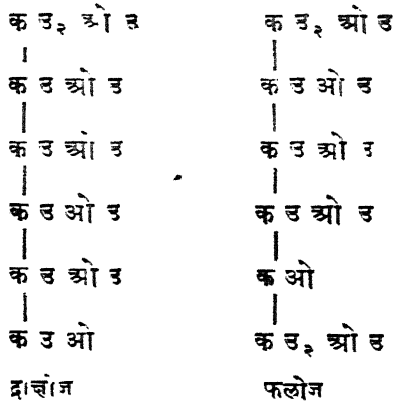
बहुउदिक मद्योंका वर्णन करते हुए कहा जा चुका है कि सिरकिक अनार्द्रिद द्वारा इनके उदौषिल मूलोंको सिरकीलेत किया जा सकता है। द्राक्षोज या फलोजके सिरकीलेत-यौगिकों की परीक्षा करनेसे ज्ञात होता है कि इन दोनोंमें ५ उदौषिल मूल हैं। यदि हम सिरकील मूल-क उ$_{3}$क ओ—को 'सिर' संकेतसे सूचित करें तो फलोज और द्राक्षोजके सिरकील यौगिक निम्न प्रकार दिखाये जायँगे—

पंच-सिरकील द्राक्षोज	पंचसिरकील फलोज
क उ$_{2}$ ओ. सिर	क उ$_{2}$. ओ. सिर
|	|
(क उ ओ. सिर)$_{4}$	(क उ ओ सिर$_{3}$)
|	|
क उ ओ	क ओ
	|
	क उ$_{2}$ ओ. सिर
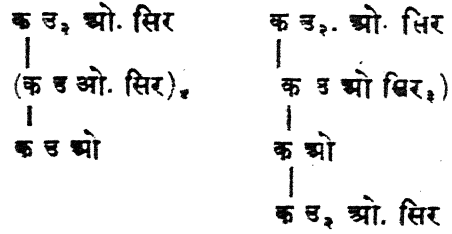
मद्यील मूलके साथ साथ द्राक्षोज और शर्करोज-में मद्यानार्द्र या कीतोनमूल भी हैं। अतः इन यौगिकोंमें मद्योंके अतिरिक्त इनके भी गुण हैं। हमने मद्यानार्द्र और कीतोनोंके गुण लिखते समय कहा था कि—

(१) ये यौगिक उदश्यामिकाम्लके साथ श्याम-उदिन नामक यौगिक देते हैं:—

$$\frac{र}{र'}>क ओ + उ क नो \longrightarrow \frac{र}{र'}>क<\begin{matrix}ओ उ\\ क नो\end{matrix}$$

श्यामउदिन

(२) ये यौगिक विक्रयील उदाजीविन, क$_{6}$ उ$_{5}$-नो उ नोउ$_{2}$ के साथ उदाजीवोन यौगिक देते हैं।

$$\frac{र}{र'}>क ओ + उ_{2} नो. नो उ. क_{6} उ_{5} \longrightarrow$$

$$\frac{र}{र'}>क: नो. नो उ. क_{6} उ_{5} + उ_{2} ओ$$
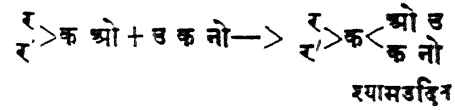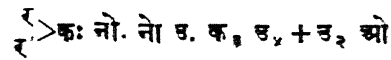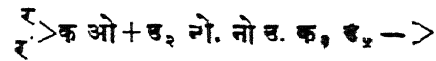
(३) इनका ओषदीकरण करनेसे अम्ल प्राप्त होते हैं। मद्यानार्द्रों द्वारा प्रदत्त अम्लोंमें कर्बनकी संख्या उतनीही होती है जितनी मद्यानार्द्रोंमें थी पर कीतोनों-के ओषदीकरण करनेसे जो अम्ल मिलते हैं, उनमें कीतोनोंकी अपेक्षा कर्बन परमाणुओंकी संख्या कम होती है।

$$क उ_{3} क उ ओ \xrightarrow{ओ} क उ_{3} क ओ ओ उ$$

$$क उ_{3} क ओ क उ_{3} \xrightarrow{३ओ}$$

$$क उ_{3} क ओ ओउ + क ओ_{2} + उ_{2} ओ$$
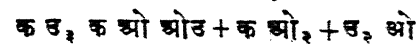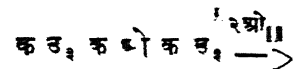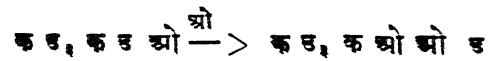
(४) इनका अवकरण करनेसे मद्य प्राप्त होते हैं—

$$\frac{र}{र'}>क ओ \longrightarrow \frac{र}{र'}>क उ ओ उ$$
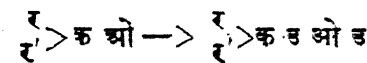
मधानाओं और कीतीनोंके ये चारों गुण द्राक्षोज और फलोज में भी पाये जाते हैं।

(१) द्राक्षोज और फलोज उद्श्यामिकाम्लसे संयुक्त होकर द्राक्षोज श्यामउद्रिन और फलोज श्यामउद्रिन देते हैं।

क उ₂ ओ उ — (क उ ओ उ)₄ — क उ ओ + उ क नो —> क उ₂ ओ उ — (क उ ओ उ)₄ — क उ (ओ उ) क नो

द्राक्षोज — द्राक्षोज श्याम उद्रिन

क उ₂ ओ उ — (क उ ओ उ)₃ — क ओ — क उ₂ ओ उ + उ क नो —> क उ₂ ओ उ — (क उ ओ उ)₃ — क (ओ उ)(क नो) — क उ₂ ओ उ

फलोज — फलोज श्यामउद्रिन
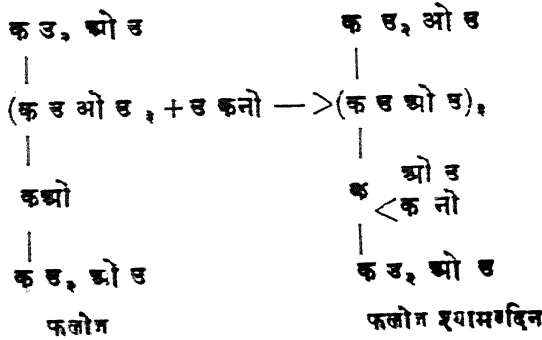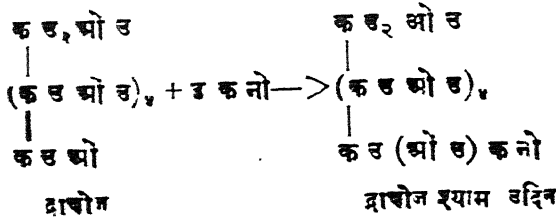
(२) द्राक्षोज और फलोज दिव्यील उदाजीविन-क₆ उ₅ नोउ नो उ₂ के साथ दिव्यील उदजीवोन देते हैं। द्राक्षोज निम्न प्रकार द्राक्षोज दिव्यील उदाजीवोन देगा।

(क) क उ₂ ओ उ — (क उ ओ उ₄ — क उ ओ + उ₂ नोउक₆ उ₅ —> क उ₂ ओ उ — (क उ ओ उ₄ + उ₂ ओ — क उःनो. नो उ क₆ उ₅
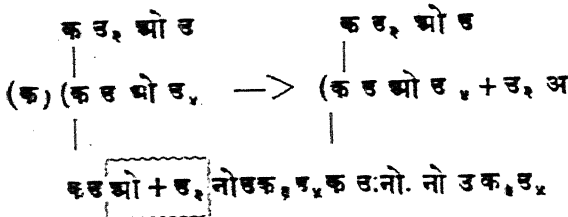
पर यह प्रक्रिया यहाँ पर ही समाप्त नहीं हो जाती है। द्राक्षोज दिव्यील उदजीवोन दिव्यील उदाजीविनके दूसरे अणुसे निम्न प्रकार ओषदीकृत हो जाता है और इस प्रक्रियासे जो यौगिक प्राप्त होता है उसे 'द्राक्षोसोन का दिव्यील उदाजीवोन' कहते हैं। यह यौगिक फिर दिव्यील उदाजीविनके तीसरे अणु से संयुक्त होकर एक और यौगिक देता है जिसे 'दिव्यील द्राक्षोसाजीवोन' (Phenylglucosazone) कहते हैं। प्रक्रियायें निम्न प्रकार हैं:—

(ख) क उ₂ ओ उ — (क उ ओ उ)₃ — क उ ओ उ — क उः नो. नोउ. क₆ उ₅ + नो उ₂. नो उ. क₆ उ₅ =

द्राक्षोज दिव्यील उदाजीवोन

क उ₂ ओ उ — (क उ ओ उ)₃ — क ओ — क उ₁ नो. नोउ. क₆ उ₅ + नोउ₃ + क₆ उ₅ नोउ₂

नालिन

द्राक्षोसोनका दिव्यील उदाजीवोन

(ग) क उ₂ ओ उ — (क उ ओ उ)₃ — क ओ — क उः नो. नोउ. क₆ उ₅ + नो उ₂. नोउ. क₆ उ₅ =

क उ₂ ओ उ — (क उ ओ उ)₃ — कः नो. नो उ. क₆ उ₅ — क उः नो. नोउ. क₆ उ₅ + उ₂ ओ
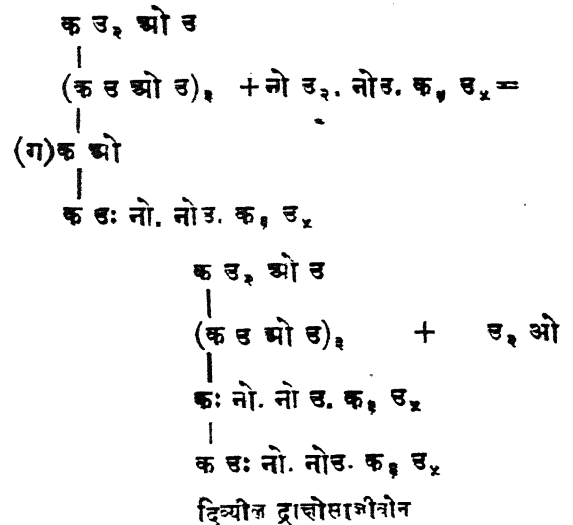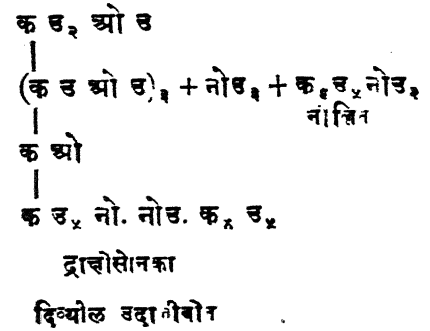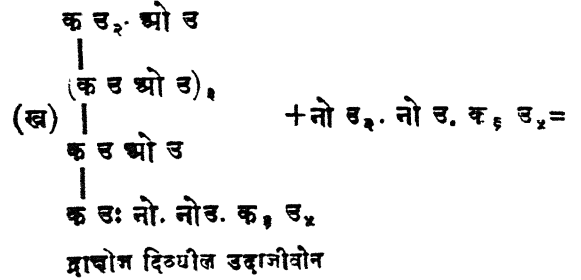
दिव्यील द्राक्षोसाजीवोन

फलोजसे भी इसी प्रकार की प्रक्रियायें होती हैं। पहले फलोज दिव्यील उदाजीवोन प्राप्त होता है जो

द्विघील उदाजीविनके दो और अणुओंसे संयुक्त होकर अन्तमें 'द्विघील फलोसाजीवोन' देता है।

द्विघील फलोसा जीवोन और द्विघील द्राक्षोसा-जीवोन दोनों एक ही पदार्थ हैं। दोनोंमें किसी भी प्रकार का भेद नहीं है। फलोजकी प्रक्रियायें निम्न प्रकार हैं।

(क) क उ$_2$ ओ उ
|
(क उ ओ उ)$_3$
|
क ओ + नोउ$_2$. क$_6$ उ$_5$ =
|
क उ$_2$ ओ उ
फलोज

क उ$_2$ ओ उ
|
(क उ ओ उ)$_3$
|
क: नो. नो उ. क$_6$ उ$_5$
|
क उ$_2$ ओ उ
फलोज द्विघील
उदाजीवोन

(ख) क उ$_2$ ओ उ
|
(क उ ओ उ)$_3$
|
क: नो. नो उ. क$_6$ उ$_5$ + नो उ$_2$ नो उ. क$_6$ उ$_5$ =
|
क उ$_2$ ओ उ
फलोज द्विघील उदाजीवोन

क उ$_2$ ओ उ
|
(क उ ओ उ)$_3$ + नो उ$_3$ + क$_6$ उ$_5$ नो उ$_2$
|
क: नो. नो उ. क$_6$ उ$_5$
|
क उ ओ

(ग) क उ$_2$ ओ उ
|
(क उ ओ उ)$_3$
|
क: नो. नो उ. क$_6$ उ$_5$
|
क उ ओ + नो उ$_2$. नो उ. क$_6$ उ$_5$

= क उ$_2$ ओ उ
|
(क उ ओ उ)$_3$
|
क: नो. नो उ. क$_6$ उ$_5$ + उ$_2$ ओ
|
क उ: नो. नो उ. क$_6$ उ$_5$
द्विघील द्राक्षोसाजीवोन
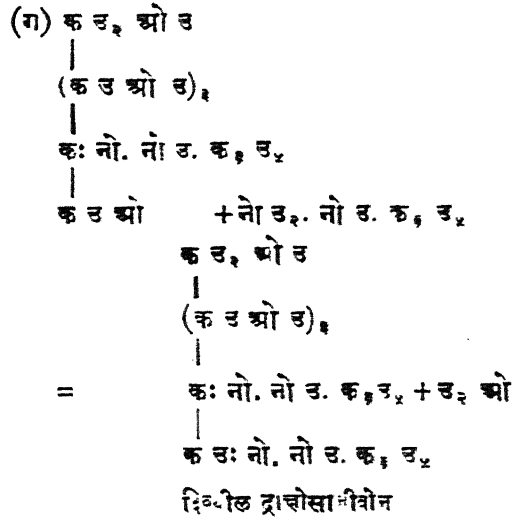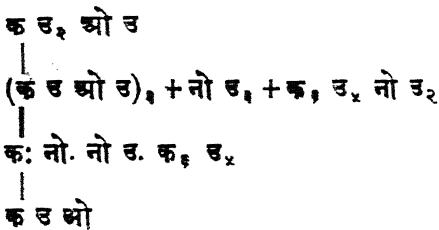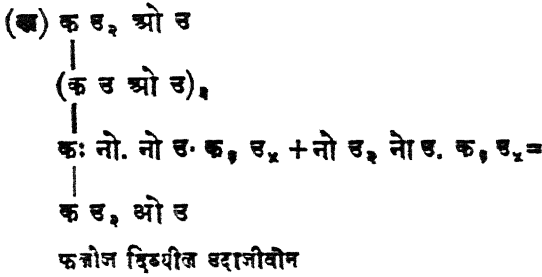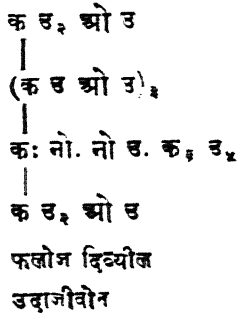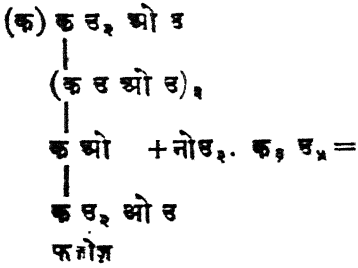
(३) मद्यानाद्रों और कीतोनोंके समान द्राक्षोज और फलोज ओषदीकृत होकर अम्ल देते हैं। अधिक ओषदीकरण करनेसे न केवल मद्यानाद्र मूल ही कर्बोषील मूल—क ओ ओ उ—में परिणत हो जाता है प्रत्युत दूसरी ओर का मूल—क उ$_2$ ओ उ-भी कर्बोषील बन जाता है। द्राक्षोज से पहले द्राक्षोनिकाम्ल मिलता है और फिर द्विभस्मिक शर्करिकाम्ल।
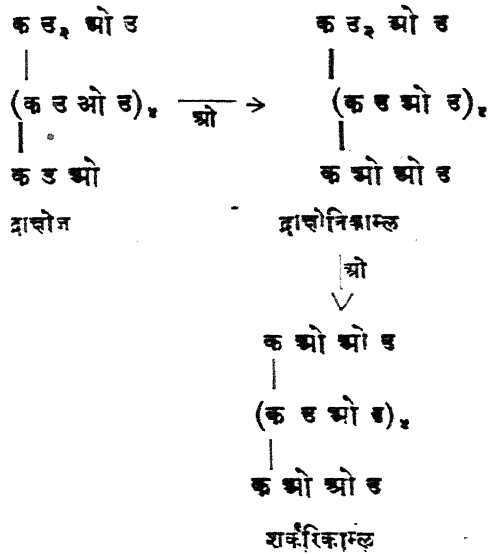
फलोज कीतोनों के समान अपनेसे कम कर्बन परमाणु वाला अम्ल देता है।
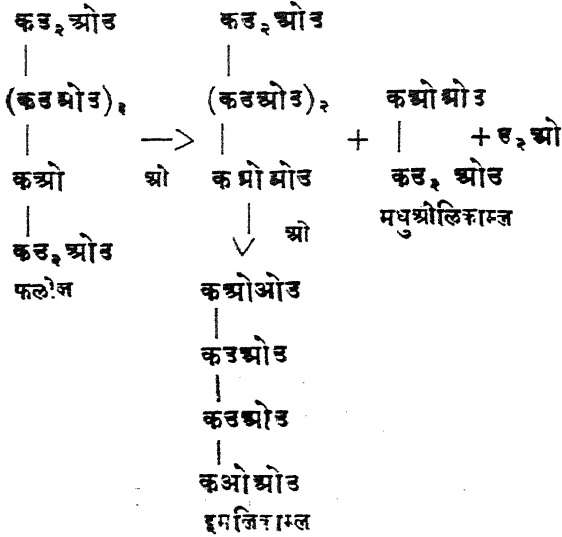
(४) अवकृत होने पर फलोज और द्राक्षोज दोनों एकही प्रकार षष्ठ उदिक मद्य देते हैं—

क उ२ ओ उ
|
(क उ ओ उ)४
|
क उ ओ
द्राक्षोज

क उ२ ओ उ
|
(क उ ओउ)
|
क ओ
|
क उ२ ओ उ
फलोज

उ२ / उ → क उ२ ओ उ | (क उ ओ उ)४ | क उ२ ओ उ
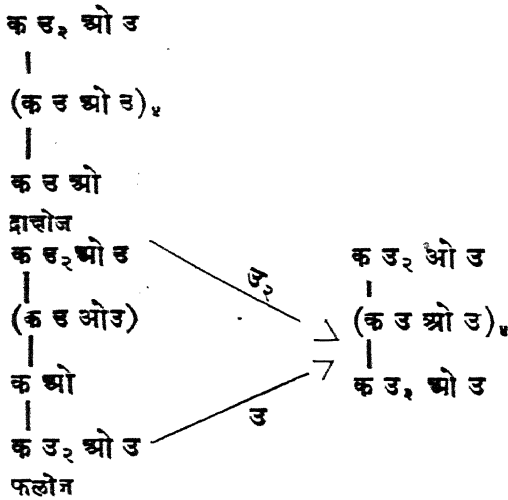
द्राक्षोज से फलोज बनाना:—इस प्रकार हमने देख लिया कि फलोज और द्राक्षोज दोनों के गुण परस्पर में बहुत मिलते जुलते हैं। जो कुछ इन दोनों में भेद है वह इनके कीतोन—अथवा मद्यानाद्-मूल के कारण है। यही नहीं, हम द्राक्षोज को फलोज में सरलता से परिणत भी कर सकते हैं। दिव्यील उदाजीवन के प्रभाव द्वारा पहले द्राक्षोजको दिव्यील द्राक्षोसाजोन में परिणत कर लेते हैं। इस प्रक्रिया के लिये प्रयोग इस प्रकार करते हैं। ०.५ ग्राम द्राक्षोज को ५ घ. श. म. जल में घोलो। दूसरी परख नलीमें एक ग्राम दिव्यील उदाजीविन लेकर १ ग्राम हैम सिरकाम्लमें घोलो और ८ घ० शम० के लगभग जल डाल कर इसे हलका कर लो द्राक्षोजके घोलमें इसे मिला दो और उबलते हुए पानीमें गरम करो थोड़ी देर दिव्यीलद्राक्षोसाजोनके पीले रवे पृथक होने लगेंगे जिनको पृथक् करके सुखाया जा सकता है। इनका द्रवांक २०४° के लगभग है।

दिव्यील द्राक्षोसाजोनको उदहरिकाम्ल द्वारा उदविश्लेषित करने पर द्राक्षोसोन (glucosone) यौगिक प्राप्त होता है जिसके अवकरण करनेसे फलोज प्राप्त हो सकता है।

क उ२ ओ उ
|
(क उ ओं उ)३
|
क : नो. नो उ क६ उ५ + २ उ२ ओ =
|
क उ : नो. नोउ, क६ उ५
दिव्यील द्राक्षोसाजोन

क उ२ ओ उ
|
(क उ ओ उ)३
|
क ओ + २ नो उ२ नो उ क६ उ५
|
क उ ओ

द्राक्षोसोन

|
V उ₂
क उ₂ ओ उ
|
(क उ ओ उ)₃
|
क ओ
|
क उ₂ ओ उ
फलोज़
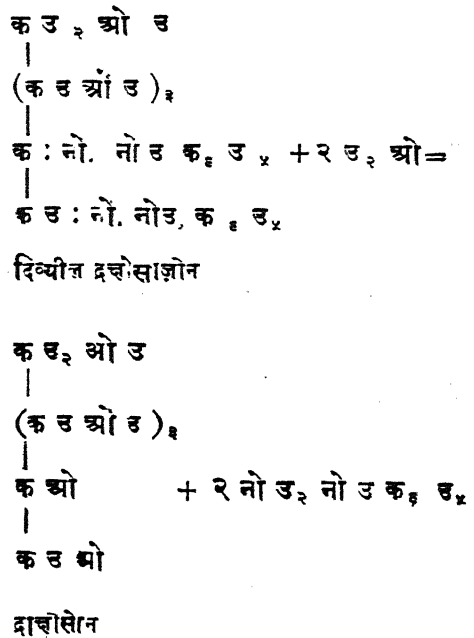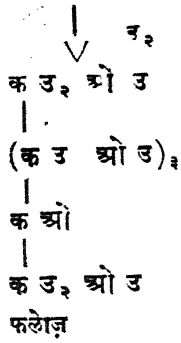
द्राक्षोज़

पौधोंके भिन्न भिन्न अंशोंमें जो मिठास होता है वह द्राक्षोज शर्कराके कारण होता है। इनमें द्राक्षोज के अतिरिक्त फलोज, गन्ना शर्करा आदि अन्य शर्करायें भी होती हैं। द्राक्षोज के नामसे ही स्पष्ट है कि द्राक्षों (अंगूरों) में यह शर्करा पायी जाती है। इस शर्कराके घोलमें यदि दिक प्रधान (Polarised light) प्रकाश भेजा जाय तो यह दाहिनी ओर घूमजायगा। इस गुणके कारण इसे दक्षिणोज (dextrose) भी कहते हैं। ऐसी भी द्राक्षोज शर्करा पायी गई है जो उत्तर भ्रामक है अर्थात् प्रकाशको बायीं ओर मोड़ती है।

गन्नेकी शक्करसे इसे बना सकते हैं। गन्नेकी शक्कर को ६०% मद्यमें घोलकर थोड़ेसे तीव्र उदहरिकाम्ल की विद्यमानतामें गरम करनेसे द्राक्षोज और फलोजमें परिणत हो जाती है। प्रक्रियामें उदविश्लेषण निम्न प्रकार होता है:—

क₁₂ उ₂₂ ओ₁₁ + उ₂ ओ =

क₆ उ₁₂ ओ₆ + क₆ उ₁₂ ओ₆
द्राक्षोज़ फलोज
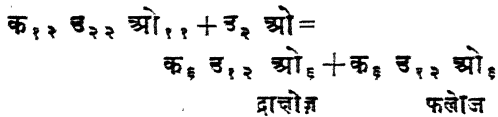
फलोज तो मद्यमें घुलनशील है पर द्राक्षोज अघुल है अतः उपर्युक्त प्रक्रियामें जनित फलोज तो घोलमें चली जाती है। और द्राक्षोज़के रवे पृथक् होजाते हैं।

नशास्ता अथवा मांड़ीको हलके गन्धकाम्ल के साथ उबालनेसे भी द्राक्षोज शर्करा प्राप्त हो सकती है।

द्राक्षोज मीठे स्वादका रवेदार पदार्थ है। जलीय घोल द्वारा दिये गये रवेमें एक अणु जल भी रहता है। इन रवोंका द्रवांक ८६°श है। यदि मद्यमें से यदि द्राक्षोजके रवे पृथक किये जांय तो अनार्द्र शर्करा प्राप्त हो सकती है जिसका द्रवांक १४६° है। यह जलीय घोलमें दक्षिण भ्रामक (दायां घुमानेवाला) है। इसका विशिष्ट घुमाव [अ]ड = + ५२.५°से स्पष्ट है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि प्रतिघ. श. म. घोलमें यदि एक ग्राम पदार्थ घोला जाय और इसघोल की १० श. म. लम्बाई में दिक्प्रधान प्रकाश भेजा जाय तो इतना घुमाव होता है।

द्राक्षोज़ की पहिचान—

द्राक्षोज को यदि सैन्धक क्षार (सैन्धकउदौषिद) के घोलके साथ उबाला जाय तो इसके घोलका रंग भूरा पड़ जायगा।

(२) रजत नोषेतके घोलमें हलके अमोनेया की दो तीन बूंदें डालो और फिर इसमें द्राक्षोजका घोल मिलाकर परख नलीको उबलते हुए पानीमें गरम करो। ऐसा करनेसे परख नलीकी सतह पर चांदीका चमकदार दर्पण बन जायगा।

(३) फेहलिंग घोल (Fehling's solution) के साथ द्राक्षोजके घोलको गरम करनेसे भूरा या लाल रंगका ताम्रस ओषिद अवक्षेपित हो जायगा। फेहलिंग घोल निम्नप्रकार तैयार किया जाता है। इसके दो भाग होते हैं—घोल १, घोल २

घोल १—३५ ग्राम शुद्ध ताम्र गन्धेतको जलमें घोलो और इसमें आधा घ. श. म. तीव्र गन्धकाम्ल डाल दो। उसमें जल मिलाकर ५०० घ. श. म. आयतन करलो। इसे अलग बोतलमें रक्खो।

घोल २— १७५ ग्राम रोशील लवण (अर्थात् सैन्धक पांशुज इमलेत) को ३०० घ. श. म. जल में घोलो और इसमें ५० ग्राम सैन्धक उदौषिदका घोल मिलाओ। सम्पूर्ण घोलका ५०० घ० श० म० आयतन करके, इसे दूसरी बोतलमें रक्खो।

जिस घोलमें द्राक्षोजकी परीक्षा करनी हो उसमें फेहलिग घोल सं० १ और फेहलिग घोल सं० २ की बराबर बराबर मात्रा मिलाकर गरम करना चाहिये। गरम करने पर भूरा अवक्षेप प्राप्त होगा।

(४) जैसा पहले लिखा जा चुका है द्राक्षोज की परीक्षा द्विव्यील उद्राजीविन द्वारा द्राक्षोसाजीवोन बनाकर कीजा सकती है।

फलोज़

क$_6$ उ$_{12}$ ओ$_6$

गन्नेकी शर्कराका उदविश्लेषण करनेसे फलोज भी प्राप्त होता है। प्राकृतिक फलोंसे जो फलोज प्राप्त होता है उसका घोल दिग प्रभान प्रकाश को बायीं ओर घुमा देता है। इसलिये इसे उत्तरोज भी कहते हैं। गन्नेकी शक्करसे यह इस प्रकार बनाई जाती है :— गन्नेके शक्करके घोलको हलके गन्धकाम्ल के साथ उबालो। उदविश्लेषण द्वारा द्राक्षोज और फलोज दोनों शर्करायें मिलेंगी। घोलमें भार-कर्बनेतका घोल डालकर गन्धकाम्ल-को शिथिल कर लो। भारगन्धेतका अघुल अवक्षेप छान कर पृथक कर लो। छने हुए द्रवको गाढ़ा करो और इसमें चूनेका दूधिया घोल डालो। घोल डालने से खटिक फलोजेत नामक खटिकम् और फलोज़का अघुल यौगिक अवक्षेपित हो जायगा, जिसे छानकर अलग किया जा सकता है। (खटिक द्राक्षोजेत घुलनशील है।) इसे फिर जलमें मिला देते हैं और कर्बन द्विओषिद प्रवाहित करते हैं जिससे खटिक कर्बनेत अवक्षेपित हो जाता है:—

खटिक फलोजेत + क ओ$_2$ = ख क ओ$_3$ + फोलज

फलोजके घोलको खटिक कर्बनेतके अवक्षेपसे छानकर पृथक् कर लेते हैं। इस घोलको गाढ़ा करके चासनी बना लेते हैं जिसे सुखाकर फलोजके रवे प्राप्त कर सकते हैं। इसके रवे सूच्याकार होते हैं जिनका द्रवांक ९५° है। यह उत्तर भ्रामक है जिसका विशिष्ट घुमाव [अ]$_ड^{२०°}$ = —९२° है। यह अनेक गुणोंमें द्राक्षोजके समान है जैसा पहले कहा जा चुका है। यह भी फैहलिंग घोलसे द्राक्षोजके समान प्रक्रिया देता है।

दूधसे निकली हुई शर्कराको हलके गन्धकाम्लके साथ उबालनेसे द्राक्षोजके अतिरिक्त एक दूसरी शर्करा भी मिलती है जिसे दुग्धस्योज (galactose) कहते हैं। यह भी गुणोंमें फलोजके समान है यद्यपि उसकी अपेक्षा जलमें कुछ कम घुलनशील हैं।

द्वि-शर्करोज (Disaccharoses)

क$_{12}$ उ$_{22}$ ओ$_{11}$

गन्नेकी शर्करा, दूधकी शर्करा, तथा यव (जौ) में से निकली हुई शर्करायें द्विशर्करोज कहलाती हैं। इन सबका सूत्र क$_{12}$ उ$_{22}$ ओ$_{11}$ है। हलके उद-हरिकाम्ल या गन्धकाम्लके साथ उबालने पर इनमेंसे प्रत्येकका एक अणु एक शर्करोजके दो अणुओंमें परिणत हो जाता है—

क$_{12}$ उ$_{22}$ ओ$_{11}$ + उ$_2$ ओ =
द्विशर्करोज

क$_6$ उ$_{12}$ ओ$_6$ + क$_6$ उ$_{12}$ ओ$_6$
एक-शर्करोज

इससे स्पष्ट है कि द्विशर्करोज का एक अणु एक-शर्करोजके दो अणुओंसे मिलकर बना हुआ है। गन्नेकी शर्कराको इक्षोज (इक्षु=ईख या गन्ना) कहते हैं, दूध की शर्कराका दुग्धोज और जौ की शर्कराको यवोज कहते हैं। ये शर्करायें उदविश्लेषित होने पर निम्न दो एक-शर्करोज देती हैं:—

इक्षोज = द्राक्षोज + फलोज
दुग्धोज = द्राक्षोज + दुग्धस्योज
यवोज = द्राक्षोज + द्राक्षोज

द्राक्षोज और फलोज का सगठित रूप हम कई बार लिख आये हैं। इन दोनोंके एक एक अणुको मिलाकर इक्षोज का सूत्र निम्न प्रकार चित्रित किया जा सकता है:—

द्राक्षोज		फलोज
क उ$_2$ ओ उ		क उ$_2$ ओ उ
|		|
क उ ओ उ		क उ ओ उ
|		|
क उ ओ उ	+	क उ ओ उ
|		|
क उ ओ उ		क उ ओ उ + २उ$_2$ओ
|		|
क उ ओ उ		क ओ
|		|
क उ ओ		क उ$_2$ ओ उ
द्राक्षोज		फलोज

इक्षोज, $क_{१२}$ $उ_{२२}$ $ओ_{११}$

ईख के शक्कर निकालना—भारतवर्षमें ईखसे शक्कर या चीनी निकाली जाती है। इसके निकालने की विधि इतनी सरल और प्रसिद्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति इससे परिचित है। एक मशीनमें जिसे बैल खींचते हैं गन्नेके टुकड़े डाल कर पेरे जाते हैं। इस प्रकार उनका रस निकल आता है। इस रसको उबालकर गाढ़ा कर लेते हैं और उसका गुड़ बना लेते हैं। इस गुड़से फिर चीनी या शक्कर बनायी जाती है। गन्नेमें १६ से १८ प्रति शतकके लगभग शक्कर होती है।

विदेशी विधिके अनुसार क्रियायें इस प्रकार की जाती हैं:—गन्नेके टुकड़ोंको गरम बेलनोंसे पेरते हैं, जिससे इसका रस निकल आता है। इस रसमें १६–२०% इक्षोजके अतिरिक्त बहुतसे अकार्बनिक लवण मिले रहते हैं और कुछ अण्डसितके समान प्रत्यमिन पदार्थ भी होते हैं। इस रसको तांबेके बर्तनमें दूधिया चूनाके साथ उबालते हैं। इस प्रकार प्रत्यमिन पदार्थ अधःक्षेपित (coagulate) हो जाते हैं और खटिक लवण पृथक् हो जाते हैं। रसके ऊपर इनकी एक पपड़ी जमा हो जाती है। इसे अलग कर लेते हैं। इस रसको फिर गाढ़ा करते हैं जब तक रवे न जमने लगें। इसे फिर छेददार बर्तनमें उँडेल देते हैं। इन छेदोंसे शीरा टपक टपककर अलग होजाता है। इस प्रकार की शक्करको फिर शुद्धकर साफ़ कर लिया जाता है। यह शक्कर भूरे पीले रङ्गकी होती है। इसे पानीमें घोलकर चूनेके साथ उबालते हैं फिर छानकर हड्डी के कोयलोंकी तहोंके ऊपर छानते हैं। इस कामके लिये लम्बे बेलनाकार बर्तन बने रहते हैं जिनमें हड्डी का कोयला भरा होता है। कोयलेकी सतह पर रस डाल देते हैं और वह कोयलेमें होकर नीचे टपकने लगता है। हड्डीके कोयलेमें यह गुण है कि वह रसके रंगको अलग कर देता है और स्वच्छ नीरंग द्रव प्राप्त हो जाता है। इस द्रवके क्षीण दबावमें गाढ़ा करके रवा जमनेके लिये रख देते हैं और इस प्रकार श्वेत रवेदार चीनी प्राप्त होती है।

चुकन्दरसे शक्कर निकालना—अन्य देशों मे चुकन्दरसे भी शक्कर निकाली जाती है। इसमें १४ प्रति शतक होती है। चुकन्दरके टुकड़ोंको काटकर गरम जलमें डाल देते हैं। इस प्रकार इसकी शर्करा और अन्य रवेदार लवण जलमें घुल आते हैं पर प्रत्यमिन आदिके बेरवे पदार्थ चुकन्दरके छिद्रोंमें ही रह जाते हैं। इस प्रक्रियाको निस्सरण कहते हैं इस रस में फिर चूना डालकर गरम करते हैं, जिससे अण्डसित पदार्थ अधः क्षेपित हो जाते हैं और अम्लोंका भी अवक्षेपन हो जाता है। शर्करा और चूना के संसर्ग से खटिक शर्करेत बन जाता है जो घुलनशील है। इसे छानकर अन्य अवक्षेपित पदार्थों से अलग कर लेते हैं। इसमें फिर कर्बन द्विओषिद प्रवाहित करते हैं जिससे खटिक शर्करेतमेंसे अघुल खटिक कर्बनेत

पृथक् हो जाता है और शर्करा घोलमें रह जाती है जिसे छान लेते हैं। कभी कभी कर्बन द्विओषिद्के स्थानमें गन्धक द्विओषिद्का व्यवहार किया जाता है। इससे अघुल खटिक गन्धत बन जाता है, और साथ साथ इसका रंग भी उड़ जाता है और स्वच्छ रस प्राप्त होता है। इसे शून्य कड़ाहोंमें औटा कर गाढ़ा कर लेते हैं। इस प्रकार रवेदार शक्कर बन जाती है। पर कभी कभी अन्य अशुद्धियोंके विद्यमानताके कारण केवल बे रवा गुड़ ही प्राप्त होता है।

इस गुड़से शक्कर बनानेके लिये बहुधा स्त्रंशिया विधिका उपयोग किया जाता है। गुड़के घोलम स्त्रंशम् उदोषिद, स्त (ओ उ) का गरम सपृक्त घोल छोड़ते हैं। इस प्रकार स्त्रंश शर्करेत क$_{१२}$ उ$_{२२}$ओ$_{११}$,स्तओ, नामक अघुल यौगिक अवक्षेपित हो जाता है, जिसे छानकर पृथक कर लेते हैं और जलमें मिलाकर उसमें कर्बनेत द्विओषिद प्रवाहित करते हैं। इस प्रकार स्त्रंश कर्बनेत अवक्षेपित हो जाता है और शक्कर घोलमें रह जाती है।

क$_{१२}$ उ$_{२२}$ ओ$_{११}$ स्त ओ + कओ$_{२}$ +
= क$_{१२}$ उ$_{२२}$ ओ$_{११}$ + स्त क ओ$_{३}$
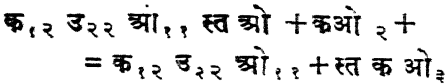
रसको छानकर उबाल कर गाढ़ा कर लेते हैं जिससे शक्करके रवे पृथक होने लगते हैं। यदि शक्कर रंगदार हो तो इसे हड्डीके कोयलेकी सहायतासे शुद्ध, स्वच्छ और श्वेत कर लेते हैं।

इक्षोजके गुण—इसके रवोंका द्रवांक १६०°-१६१° है। यदि इसके घोलमें तागे या लकड़ीकी तीलियाँ डाल कर रवे जमायें जाँय तो मिश्री प्राप्त होती है। हलके अम्लके साथ उबालनेसे द्राक्षोज और फलोज की बराबर बराबर मात्रा प्राप्त होती है। द्राक्षोज दक्षिण भ्रामक है। पर उदविश्लेषण होने पर इसका घोल उत्तर भ्रामक होजाता है। इस प्रक्रियाको शर्करा विपर्यय (Sugar inversion) कहते हैं। इसका कारण यह है कि उदविश्लेषण द्वारा फलोज और द्राक्षोज प्राप्त होते हैं और फलोजका विशिष्ट घुमाव ऋणात्मक [अ]$_{ड}$=—६२° और द्राक्षोजकी धनात्मक [अ]$_{ड}$=+ ५२·५ है इससे स्पष्ट है कि दोनोंके घुमाओं के मेल से ऋणात्मक घुमाव ही प्रकट होगी [—६२+५२.५ =—३९·५]। इस प्रकार विपर्यय हो जाता है।

इक्षोज रजत नोषेतके अमोनिया घोलको अवकृत करके रजत दपण नहीं देता है। यह फेहलिंग घोलके साथ भी प्रक्रिया नहीं करता है। पर अम्ल द्वारा उबाल कर विपर्यय करनेके पश्चात् यदि फिर सैन्धक उदोषिद्से अम्लको शिथिल कर लिया जाय और फिर फेहलिंग घोल से परीक्षा की जाय तो भूरा ताम्रओषिद अवक्षेपित हो जायगा। इस प्रकार इसकी परीक्षाकी जा सकती है।

जितने भी घुलनशील कर्बोदेत हैं, चाहे वे एक शर्करोज या द्विशर्करोज हों मालिश परीक्षा से पहचाने जा सकते हैं। यह परीक्षा इस प्रकार है। शर्करा के घोलमें अ—नफ़थोलकी मद्यील घोल डालो और परखनलीकी भित्तियोंके सहारे से तीव्रगन्धकाम्ल सावधानी से डालो। दोनों की सतहोंके जोड़ पर नीला या बेंजनी रंग यदि दिखाई पड़े तो कर्बोदेत की विद्यमानता समझनी चाहिये।

बहुशर्करोज (Polysaccharoses)

हम कह चुके हैं कि वे कर्बोदेत जिनका स्वाद भी मीठा नहीं होता है, बहुशर्करोज समूह की शर्करायों में स्थान पाते हैं। इन शर्करायों का वास्तविक संगठन अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है। इनके जलीय घोल बहुधा कलार्द्र (Colloid) होते हैं और इनका अणुभार भी बहुत ही अधिक होता है। बहु शर्करोजों में नशास्ता या माड़ी सब से अधिक प्रसिद्ध है।

नशास्ता (Starch) —(क$_{६}$ उ$_{१०}$ ओ$_{५}$)$_{न}$

पेड़ों के बहुत से भागों में नशास्ता होता है। चावल, आलू, जौ, गेहूँ, आदि से यह प्राप्त किया जाता है। निम्न सारिणी से भिन्न भिन्न पदार्थों में इसकी मात्रा ज्ञात हो सकती है :—

आलू	१५--२० प्रति शत.
गेहूं	६०-६५ ,,
चावल	७५-८० ,,

अरारोट, साबूदाना आदि भी नशास्ता ही मुख्य अंग है, जिस पदार्थ से नशास्ता निकालना हो उसे अच्छे प्रकार पीसते हैं। और तत्पश्चात बड़े बड़े बेलनों में जिनमें रेशम अथवा पतले तारों की चलनी लगी होती है, इसे भर भर पानी के फौआरों से धोते हैं। नशास्ता का घोल छनकर नीचे आजाता है। इसे सुखा कर नशास्ता अलग कर लेते हैं। मलमल या किसी अन्य प्रकार के अच्छे कपड़े में आटे की पोटली बनाकर यदि पानी के अन्दर हाथ से गूंथा जाय तो नशास्ता जल में चला आयगा और जल का रंग दूधिया हो जायगा।

हिमांक-अवकर्ष विधि द्वारा नशास्ता का अणुभार $क_{१२००} उ_{२०००} ओ_{१०००}$ सूत्र के अनुकूल पता चलता है। नशास्ताके घोल में यदि नैलिन् का घोल डाला जाय तो नीला रङ्ग प्राप्त होगा। इसी प्रकार नशास्ता की परीक्षा की जाती है। यह नीला रंग गरम करने पर उड़ जाता है पर ठंडा होने पर फिर प्रगट हो जाता है। नशास्ता ठंडे जल में बहुत ही कम घुलनशील है। इसे गरम जल (६०°श) में घोलना चाहिये। यह घोल दो तीन दिन में खराब हो जाता है, क्योंकि इसमें प्रेरक जीव अपनी क्रिया करने लगते हैं और इस प्रकार इसे विभाजित कर देते हैं। गन्धकाम्ल के साथ उदविश्लेषित करने से यह द्राक्षोज में परिणतहो जाता है

छिद्रोज (cellulose) $(क_{६} उ_{१२} ओ_{५})_{न}$—रुई, ऊन आदि में जो बहु शर्करा होती है उसे छिद्रोज कहते हैं। भिन्न भिन्न पदार्थों में ये भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। उदविश्लेषण करने से कुछ द्राक्षोज, कुछ दुग्धस्योज, कुछ पंचोज आदि शर्करायें देते हैं। इन पर अम्लों, क्षारों हरिन् आदि गैसों का प्रभाव नहीं पड़ता है। इसीलिये छन्ना कागज छिद्रोज के बनाये जाते हैं। दाहक क्षारों के अति तीव्र घोल में डालने से छिद्रोज के रेशे सिकुड़ने लगते हैं और उसमें अल्प पारदर्शिता आजाती है। इस प्रक्रिया को मर्सरीकरण (mercerising) कहते हैं। यह नाम इस प्रक्रिया के प्रथम अन्वेषक के नाम पर पड़ा है।

छिद्रोज तीव्र गन्धकाम्ल में घुल जाता है। यदि २ भाग गन्धकाम्ल में एक भाग जल मिलाकर छन्ना कागज को इसमें डुबोयें तो अल्पपारदर्शक पत्र प्राप्त होगा। धोकर इसके अम्ल को अलग कर सुखाने पर जो कागज प्राप्त होता है उसे चिमड़ा-कागज (parchment) कहते हैं। गन्धकाम्ल और नोषिकाम्ल के मिश्रण में छिद्रोज को डालने से नोषो छिद्रोज (nitro-cellulose) प्राप्त होता है। इस प्रकार ३ भाग धूम्रित नोषिकाम्ल और १ भाग तीव्र गन्ध काम्ल के मिश्रण में रुई डालने से षष्ठ नोषो छिद्रोज प्राप्त होता है। यह विस्फुटक पदार्थ है अतः इसे विस्फुटक रुई (gun cotton) कहते हैं। बन्दूक कार्ट्रिज में जोर से धमाका देने पर यह रौद्र रूप से विस्फुटन गुणप्रदर्शित करता है।

वैज्ञानिकीय

डा० नलिनीकान्त सूर तथा डा० राजेन्द्रनाथ घोष

हमें यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ है कि जबसे डा० मेघनाद शाहा डी० एस-सी., एफ. आर. एस., की नियुक्ति प्रयाग विश्वविद्यालयमें भौतिक विज्ञान विभागके अध्यक्ष पद पर हुई तब से इस विभागका रङ्ग ही बदल गया है। यहांके अध्यापकों और विद्यार्थियोंकी प्रवृत्ति खोजके कामकी ओर उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

इस वर्षके विश्वविद्यालय कानवोकेशनमें भौतिक विभागके दो माननीय अध्यापकोंको आचार्य-डी० एस. सी-की उच्चतम उपाधियां प्रदान की गई हैं जिसके उपलक्षमें हम युगल महानुभावोंको हार्दिक बधाई देते हैं। हमें पूर्णाशा है कि इनके द्वारा वैज्ञानिक संसारको भविष्यमें और भी अधिक अनमोल रत्न प्राप्त होंगे।

श्री डा० नलिनीकान्त सूर डी० एस-सी०, का जन्म सन् १८६० ई० में हुआ था। आपके पिता

श्री हरिदाससूरजी साधारण अवस्थाके व्यक्ति थे। आपने सन् १९०७ ई० में जुबली हाई स्कूल गोरखपुरसे मैट्रिकुलेशन परीक्षा पासकी और इसके पश्चात् आप प्रयागके क्रिश्चियनकालेजमें प्रविष्ट हुए। यहांसे सन् १९१२ में आपने बी० एस-सी० पास किया। तदुपरान्त सन् १९१४ ई० में म्योरसैण्ट्रल कालेज प्रयागसे एम. एस-सी. परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की, विद्यार्थीजीवन समाप्त करके आप क्रिश्चियन कालेजमें भौतिक अध्यापक नियुक्त हो गये, और बारह वर्षके लगभग इसकी सेवा की।

सन् १९२० ई० में कलकत्ताके प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० सी. वी. रमनकी सहकारितामें ६ मासके लगभग आपने खोजका काम किया। सन् १९२६ ई० में आप प्रयाग विश्वविद्यालयमें भौतिक अध्यापक नियुक्त हो गये। इसके पूर्व भी कई वर्षसे आप प्रयाग विद्यालयके आंशिक-अध्यापक थे।

डा० मेघनादशाहकी सहकारितामें यहाँ आपने रश्मि चित्रण (स्पैक्ट्रसकोपी) पर अन्वेषण का कार्य आरम्भ किया। आपने इस विषय की विशद गवेषणा की। आपके बीस के लगभग मौलिक लेख 'फिलोसोफिकल मैगजीन' और जाइट्सक्रिफ्ट फर फिजीक' नामक विख्यात् पत्रोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। इन खोजों की इङ्गलैण्ड और जर्मनी के विज्ञानाचार्योंने बड़ी प्रशंसा की है और वैज्ञानिक संसारमें इन लेखों का भली प्रकार अभिनन्दन किया गया है।

आजकल डा० सूर मिटिओरोलोजिकल आफिस में नियुक्त हो गये है। क्या ही अच्छा होता, यदि विश्वविद्यालय की सेवा आप इस समय भी करते होते।

श्री डा० राजेन्द्रनाथ घोष डी० एस-सी आयुमें डा० सूर से केवल ६ मास छोटे हैं। आपका जन्म प्रयागमें ही हुआ था। आपने जुबली हाईस्कूल गोरखपुर से सन् १९१२ में मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की और क्रिश्चियन कालेज प्रयाग से सन् १९१६ में बी० एस-सी० की उपाधि ली। तदुपरान्त आपने म्योर सैण्ट्रलकालेज में प्रवेशकिया और सन् १९१८ में एम. एस-सी की परीक्षा पास की।

डा० सी० वी० रमन की अध्यक्षता में एक वर्षके लगभग (१९१९—२०) आपने भी खोजका काम किया। डा० सूर के समान आप भी क्रिश्चियनकालेज में भौतिक अध्यापक नियुक्त हो गये, और सन १९२२ तक आपने यहां कार्य किया।

इसके पश्चातसे इस समय तक आप प्रयाग विश्वविद्यालय में भौतिक अध्यापक का कार्य कर रहे हैं।

आपने भौतिक विज्ञानके भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें खोजका काम किया है। प्रकाश विज्ञान, शब्द विज्ञान, विकिरण दबाव आदि अनेक विषयों पर आपने अपने अन्वेषणों द्वारा उपयोगी प्रकाश डाला है। फिजिकल रिव्यू, फिलोसोफिकल मैगजीन, इंडियन जर्नल आव् फिजिक्स आदि प्रसिद्ध पत्रों में आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। ध्वनिकी गवेषणा में आपने अपना समय विशेष रूपसे दिया है। पियानो और सारंगी (वायलिन) के विषयमें जो आविष्कार आपने किये हैं वे सिद्धान्त रूपसे तो महत्व के हैं ही पर प्रयोगात्मक रूपमें भी ये उपयोगी सिद्ध हुए हैं। विदेशी कारखानोंके अध्यक्षोंका ध्यान डा० घोषकी खोजोंकी ओर विशेष आकर्षित हुआ है, और उन्होंने इच्छा प्रगटकी है कि इन वाद्योंकेसम्बन्ध में डा० घोष अपनी खोजें उत्तरोत्तर करते रहें और वे उन्हें आवश्यक सहायता देनेको भी उद्यत हैं। डा० घोषको अपने अन्वेषणोंमें डा० शाहासे बड़ी सहायता मिला है, विशेषतः आप डा० शाहा द्वारा प्रदत्त पियानोफोर्टी के लिये अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

हमें यह कहते हुए हर्ष होता है कि डा० घोष और डा० सूरके अन्वेषण भौतिक विज्ञानकी उच्चतम प्रमाणित पुस्तकोंमें अंकित हो गये हैं। हमें विश्वास है कि आप ऐसे वैज्ञानिकोंके द्वारा भारतवर्षका मस्तक अवश्य उन्नत होगा।

—सम्पादक

हुक वर्म की बीमारी

देहातोंमें प्रायः ऐसे लोग देखे जाते हैं जिनका शरीर तो लहूके बिना पीला हो जाता है। पर जो

अकसर नहीं दुबजाते। अगर हम इनकी आंखोंके निचले पलकोंको खैंच कर देखें तो उनका रंग अजीब तरहका सफेद और बेचमक दिखाई पड़ता है—उनके चेहरे और पैर सूज जाते हैं। कभी कभी उनको भूख नहीं लगती और शुरू में पेटमें भी दर्द हो जाता है और बुखार भी आजाता है। उनमें काम करने की इच्छा ही नहीं होती या इच्छा रहते हुये भी वे काम नहीं कर सकते। जब यह रोग बच्चोंको होता है वे ठीक तरहसे नहीं बढ़ते और बहुत सुस्त हो जाते हैं। कई महीनों तक कि बीमारी से या तो दिलकी धड़कन बन्द हो जाने से या और किसी दूसरी बीमारीसे जो उन्हें निर्बलता-के कारण सहज में आ घेरती है मर जाते हैं।

इस रोगको पैदा करनेवाला एक आध इंच का नन्हा लम्बा कीड़ा है जो रोगीकी अंतड़ियों-में घर बना लेता है। वहां यह उसका लहू चूस कर एक तरह का ज़हर पैदा करता है। जिससे ऊपर कहे हुये रोगके चिह्न दिखाई पड़ने लगते हैं। यह कीड़ा शरीर में मुंह या पैर होकर घुसता है। भीगी जमीनमें इन कीड़ोंके बच्चे रहा करते हैं। इस कारण जब नंगे पैर चलने वाले ऐसी जगहों में फिरते हैं इन कीड़ोंके शिकार बन जाते हैं। हुक वर्म पहले पैरके चमड़ेको छेद कर लहूकी नालियोंमें चले जाते हैं और अन्तमें अँतड़ियों में पहुंच जाते हैं। वहां ये बढ़ते और अंडे देते हैं।

ये अण्डे मल के साथ बाहर आते हैं। जिनसे उचित गरमी और नमी के कारण कीड़े पैदा होते हैं।

बस पाखानेके साथ निकले हुये अण्डे ही सारी जमीन गन्दा कर देते हैं। गीली जमीन में ये कीड़े बहुत दिनों तक जीते रहते हैं। जिस जगहके चमड़ेको ये छेदकर शरीर में घुसते हैं वहां प्रायः घाव हो जाता है और दाने निकल आते हैं। कहीं कहीं इन दानों को "पानी घाव भी कहते" हैं।

जब किसीको यह रोग हो तो उसे डाक्टर से दवा करानी चाहिये क्योंकि दो या तीन खुराक दवा खानेसे ही यह रोग दूर हो जाता है।

रोगसे बचने के उपाय

१—खेतों में पाखाना मत फिरो।

२—पाखानों में पाखाना फिरो।

३—गड्हे और तालाबके पानीमें पनहूआ मत करो।

४—फल या तरकारी बिना धोए हुये मत खाओ।

५—मैदानों में नंगे पैर मत फिरो।

६—अगर मिट्टी छूओ तो हाथको खूब अच्छी तरहसे धोकर भोजन करो।

प्रकाश चन्द्रदास, एम. बी.

ब्रिस्टोल की नई प्रयोगशाला

ब्रिस्टोल विश्वविद्यालयके प्रोवाइस चैन्सलर श्रीमान् हेनरी हर्बर्ट महोदय ने विश्वविद्यालयको २ लाख पौंड धन इस हेतु भेंट किया है कि इस धन-से भौतिक विज्ञानकी एक प्रयोगशालाका निर्माण किया जाय। २१ अक्टूबरको संसार-प्रसिद्ध भौतिकविज्ञान-वेत्ता सर अर्नेस्ट रदरफोर्डने इसका उद्घाटन संस्कार किया है यह प्रयोगशालाके आकारकी बनी हुई है। इसमें त्रिपार्श्व द्वारा सूर्य रश्मि विभाजन और रेडियम-के अलफा कणोंके मार्गके चित्र अंकित किये गये हैं। प्रयोगशालाके नीचेके भागमें अन्वेषण करनेके कमरे हैं, तथा विद्युत् आदि उत्पन्न करनेके इञ्जिन हैं। इसके ऊपर पहली छत पर भी अन्वेषणके काम करनेके लिये और उच्च शिक्षाके विद्यार्थियोंकी शिक्षाके लिये कमरे बने हुए हैं दूसरी छत पर प्रकाश संबन्धी प्रयोगों के करने के लिये समुचित प्रबन्ध है। तीसरी छत पर पुस्तकालय और अध्यापकोंके कमरे हैं। पहली छतपर ३०० विद्यार्थियोंके बैठने योग्य एक विशाल व्याख्यान भवन (थियेटर) है। इसके नीचे भी १३० विद्यार्थियों के बैठने योग्य एक छोटा थियेटर हैं। ये दोनों भवनके नियमों पर समुचित ध्यान रख कर बनाये गये हैं। भविष्य की आवश्यकताओंके लिये स्थायी निधि भी

निश्चित कर दी गई है। एक मौतिक महोपाध्यायकी गद्दी और दो नई छात्र वृतियाँ भी स्थापित की गई हैं।

समालोचना

व्यंग्यार्थ मंजूषा—ले० लाला भगवानदीनजी 'दीन', प्रकाशक साहित्य सेवक कार्यालय काशी। पृ० संख्या ७२ मूल्य ≈)। छपाई, कागज़ अत्युत्तम

अब तक हिन्दी-साहित्यमें ध्वनि और व्यञ्जना पर कोई भी सरल और हृदय ग्राह्य ग्रन्थ नहीं था। साहित्यके इस अङ्गका अध्ययन करनेके लिये दास के काव्य निर्णय या संस्कृतके साहित्य दर्पण आदि पुरानी प्रथाके ग्रन्थोंका ही आश्रय लेना पड़ता था। लालाजी ने इस व्यंग्यार्थ मंजूषाको लिखकर हिन्दी के जिज्ञासुओंका उतना ही उपकार किया हैं जितना उन्होंने अलंकार मंजूषा द्वारा किया था। इस प्रकार के ग्रन्थ लाला जीकी स्मृतिको सदा स्थायी रखेंगे। साहित्यके गूढ़ विषयोंको सरल रूपमें समझाना लालाजी का ही काम है। हम इस ग्रन्थके उपलक्ष में पूज्यास्पद लालाजीको हृदयसे बधाई देते हैं। हमें आशा है कि इस ग्रन्थका समुचित समादर होगा हम लालाजीके इस विचारके अनुमोदन करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं कि लक्षणा और व्यञ्जना के सम झनेके लिये शृङ्गारी उदाहरण देना अनिवार्य है। हास्य और अद्भुत तथा वीर रसोंमें साहित्यके इन दोनों अंगोंका प्रचुर समावेश है। अलंकार मंजूषा की रचना में यह भी एक विशेष महत्ता थी।

सूर पंचरत्न—संकलयिता ला० भगवानदीन, श्री मोहन वल्लभ पंत, प्रकाशक रामनारायण बुकसेलर, मूल्य १॥) कागज़ छपाई आदि उत्तम।

इस पुस्तकमें १६४ पृ० का गद्य अन्तदर्शन है और १६२ पृ० में सूरदासजी के काव्यके सुन्दर चुने हुए पांच प्रकारके रत्न—विनय, बालकृष्ण, रूप माधुरी, मुरलीमाधुरी और भ्रमर गीत हैं। भूमिका युगल लेखकोंके विशेष परिश्रम और विशद अध्ययन की परिचायिका है। इस संसारकी असारतासे आरम्भ कर भक्ति मार्ग ब्रजभाषाकी विवादास्पद उत्पत्ति, सूरदासजी की संक्षिप्त जीवनी, उनके काव्यके भिन्न भिन्न अङ्गों का वर्णन, तुलसीदासके समावतरणोंसे तुलना और हिन्दी काव्यमें सूरदास का स्थान आदि उपयोगी विषयोंपर मनोमोहक और योग्यता पूर्ण प्रकाश डाला गया है। मूल सकलनमें समुचित टिप्पणियाँ दे देनेसे पुस्तक अत्यन्त उपादेय हो गई है। कालेजके विद्यार्थियोंको इससे विशेष लाभ होगा। इस उत्तम ग्रन्थके लिये प्रत्येक हिन्दी भक्तको युगल लेखकोंका कृतज्ञ होना चाहिये। हमें आशा है कि यह पुस्तक साहित्य सम्मेलन तथा यूनिवर्सिटीकी परीक्षाओंके पाठ्य ग्रन्थोंमें उचित स्थान पायेगी।

—सत्यप्रकाश

चमकदार मोती—ले० श्री महर्षि शिवव्रत लालजी एम० ए०, राधास्वामी धाम पृ० सं० १६५, मूल्य १) छपाई कागज़ उत्तम। प्रकाशक—दीवान बंशधारीलाल मैनेजर संत, चौक, प्रयाग।

संत पत्रिका के अन्तर्गत यह एक मौलिक उपन्यास अथवा कहानी है। श्री शिवव्रत लालजी गूढ़ विषयोंको रोचक रूप प्रदान कर देनेमें प्रसिद्ध हैं। इस सम्पूर्ण पुस्तकका उद्देश्य 'माया' के स्वरूप को जनताके सम्मुख रखना है। यह पुस्तक अत्यन्त सरस और मधुर है, विषय स्वयं उत्तम और उपादेय है। हिन्दीमें दार्शनिक उपन्यासोंको लिखनेका एक मात्र श्रेय महर्षि शिवव्रत लालजी को ही है। आशा है कि धार्मिक क्षेत्रमें पुस्तकका समुचित आदर होगा।
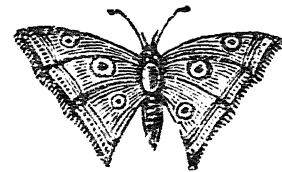
वैज्ञानिक परिमाण

(ले० श्री डा० निहालचन्द सेठी डी० एस० सी०)

६६—आपेक्षिक ताप—गैस

(Specific Heat—Gases)

गैस	स्थिर दबाव पर आपेक्षिक ताप	स्थिर आयतन पर आपेक्षिक ताप	आपेक्षिक तापों की निष्पत्ति	गैस	स्थिर दबाव पर आपेक्षिक ताप	स्थिर आयतन पर आपेक्षिक ताप	आपेक्षिक तापों की निष्पत्ति
वायु	·२३७२	·१७१५	१·४०२	ज्वलक वाष्प	·४२८		१·०२४
ओषजन	·२४१६	·१५५१	१·४००	ज्वलील मद्य	·४५३		१·१३३
उद्जन	३·४०२	२·४०२	१·४१६	दारील मद्य	·४५८		१·२५६
नोषजन	·२३५०	·१७५	१·४१				
हरिन्	·११५	·०६२८					
जल-वाष्प	·४६५२	·३४०	१·३०५				
अमोनिया	·५२०	·३९१	१·३३६				

६७—गुप्तताप—द्रवण का
Latent Heat of Fusion

वस्तु	गुप्तताप कलारी	तापक्रम	वस्तु	गुप्तताप कलारी	तापक्रम	वस्तु	गुप्तताप
जल शुद्ध	७६·७७	०° श	रजतम्	२२	६६०°		
जल समुद्र	५४		लोह	२३			
गंधक	६	११५°	सीसा	५	३२७		
बंगम्	१४	२३२°					
ताम्रम्	४३	—					
पारदम्	३	—					
परौप्यम्	२७	१७५०°					
मोम (मक्खीका)	४२·३	—					
दस्तम्	२८	४१८°					

६८—गुप्तताप—वाष्प बनने का
(Latent Heat of Vaporisation)

वस्तु	गुप्तताप कलारी	तापक्रम	वस्तु	गुप्तताप कलारी	तापक्रम	वस्तु	गुप्तताप
ज्वलील मद्य	२०६	७८°	ओषजन	५८	—१८८°		
दारील मद्य	२६४	६६°	हरिन्	६७	—२२		
ज्वलक	६१	३५°	नोषजन	४०			
गंधक	३६२	३१६	उद्जन	१२३			
जल	५३८.६	१००	कर्बन द्विओषिद	५७	०		
तारपीन तैल	७०	१५६°	अमोनिया	३४१			
पारद	६८	३५८°	गंधक द्विओषिद	६६	—१०°		

जल का गुप्तताप किसी अन्य तापक्रम पर (६३° – १६४°) निकालने के लिये निम्न सूत्र काम में लाना चाहिये।

=गु ६०६·५ – ६६५ त (त=तापक्रम)

६९—ताप-वाहन गुणक

(Thermal Conductiviy)

कलारी प्रति वर्ग शम० प्रति सैकंड

वस्तु	ताप-वाहन गुणक	वस्तु	ताप-वाहन गुणक
स्फट	·५०४	प्लैटिनाइड	·०६०
काच	·००१	मैंगनिन	·०५३
कांस्टन्टन (यूरिका)	·०५४	दस्तम्	·२६५
जर्मनसिलवर	·०७ - ·०६	रजत	१·००६
वेगम्	·१५५	लोह शुद्ध	·१६१
टंगस्टन	·३५	,, ढला	·१४
ताम्रम्	·६१८	,, नरम	·१४४
नकलम्	·१४२	,, स्पात	·११
पीतल	·२६०	सीसा	·०८३
परारौप्यम्	·१६६	सुवर्ण	·७००

७०—ताप-विकिरण

(Heat Radiation)

१—वीन का नियम → $ल_{ग्र} \times त = ·२८९०$

$ल_{ग्र}$= विकीर्णित किरण चित्र में अधिकतम शक्ति वाली तरङ्ग की लम्बाई शम. में

त = केलविन तापक्रम

२—स्टफिन का नियम → $श = क \times त^{४}$

श=सम्पूर्ण विकीर्णित शक्ति (पूर्ण विकीर्णक की) अर्ग प्रति सैकंड प्रति वर्ग श म.

त=केलविन तापक्रम

क=५.७२ × १०-५

३—प्लैंकका नियम > $श_{ल}$=ख × $\dfrac{ल^{-५}}{\left(ई^{\frac{च}{लत}}-१\right)}$

$श_{ल}$=ल सम० तरङ्ग लम्बाई की विकीर्णित शक्ति अर्ग प्रति वर्ग शम० प्रति सैकंड
ल=तरङ्ग की लम्बाई शम० में
त=तापक्रम (केलविन)
ई=नेपियर- लघुरिक्थ का मूल-
ख='३५३; च=१'४३१

४—सूर्य से पृथ्वीपर आने वाला ताप = १'९३५ कलारी प्रति वर्ग शम० प्रति मिनट
= '१३४ वाट प्रति वर्ग सम०

५—सूर्य के तापका आपेक्षिक परिमाण तरङ्ग-लम्बाईके हिसाबसे

तरङ्गलम्बाई × १०⁻⁵	४	४·५	५	५·५	६	७	८	१०	१२	१४·५	२१
आपेक्षिक शक्ति	१५.२	१८·४	१९	१६	१४	११	८·८	५·४	३·२	--२	·६

६—सूर्य का तापक्रम—५८४०° केलविन=५५६७°श

सूर्य-सिद्धान्त

[लेखक—श्री० महावीरप्रसाद् बी. एस. सी. एल. टी. विशारद]

(गताँक से आगे)

यदि छ घ को घ य के समान और छअ को च ल के समान मान लिया जाय तो

$$\frac{\text{च ल}}{\text{घ य}} = \frac{\text{छ अ}}{\text{छ घ}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$\therefore \text{च ल} = \frac{\text{घ य} \times \text{पलभा}}{१२}$$

$$= \frac{\text{ग्रहका शर} \times \text{पलभा}}{१२}$$

परन्तु च ल घ ग्रह का आक्षदृक्कर्म । इस लिये सिद्ध होता है कि जिस समय ग्रह क्षितिज पर होता है उस समय उसका आक्ष दृक्कर्म उसके शर को पलभासे गुणा करके १२ से भाग देने पर आता है। यही ८ वें श्लोकके पूर्वार्धका तात्पर्य है। इस प्रकार जब यह सिद्ध होगया कि क्षितिजस्थ ग्रह का आक्षदृक्कर्म क्या होता है और याम्योत्तरवृत पर उसका मान शून्य होता ही है तब अन्य समयके लिये उसकी गणना त्रैराशिकसे इस प्रकारकी जाती है कि जब ग्रहके आधे दिन में आक्षदृक्कर्मका मान कमसे कम शून्य और अधिकसे अधिक क्षितिजस्थ आक्षदृक्कर्मके समान होता है तब इष्ट नतकाल में इसका मान क्या होता है। अर्थात् दिनार्द्धः इष्टनतकाल :: क्षितिजस्थ आक्षदृक्कर्म : इष्ट आक्षदृक्कर्म यही ८ वें श्लोक का अर्थ है।

चित्र १०६ और १०७ में ग्रह पूर्वकपालमें दिखलाये गये हैं। यहाँ घ का शर दक्षिण है तो घ का समप्रोतवृत कान्तिवृत को ज विन्दु पर काटता है जो य से पूर्व है। इस लिये दक्षिण शर में य के भोगांश में घ का आक्ष दृक्कर्म जोड़नेसे ज का भोगांश आवेगा। परन्तु जब ग का शर उत्तर है तो ग का समप्रोतवृत कान्तिवृत को प स्थान पर काटता है जो य से पच्छिम है इस लिये उत्तर शर में य के भोगांश में ग का आक्ष दृक्कर्म घटानेसे प का भोगांश आवेगा। पच्छिम कपालमें इसके विपरीत होता है अर्थात दक्षिण शरवाले ग्रहका आक्ष दृक्कर्म ग्रह के भोगांशमें घटाना पड़ता है और उत्तर शरवाले ग्रहका आक्षदृक्कर्म ग्रहके भोगांशमें जोड़ना पड़ता है। यह बात १०६ से ही स्पष्ट हो जाती है क्योंकि यदि वह चित्र पच्छिम कपालका समझ लिया जाय तो ज विन्दु य से पच्छिम समझा जायगा और प विन्दु य से पूरब समझा जायगा क्योंकि पच्छिम कपालमें किसी विन्दुसे उसके नीचे का विन्दु पच्छिम होता है और ऊपर का विन्दु पूर्व होता है परन्तु पूर्व कपाल में किसी विन्दु से उसके नीचे का विन्दु पूर्व होता है और ऊपर का विन्दु पच्छिम होता है। इस प्रकार ९ वें श्लोक में बतलायी गयी जोड़ने घटाने की क्रिया की उपपत्ति भी सिद्ध हो गयी।

यह स्मरण रखना चाहिए कि ८ वें श्लोकमें बतलायी गयी रीति स्थूल है क्योंकि जिन कल्पनाओं से यह सिद्ध हुई है वह स्वयम् स्थूल है।

आयन दृक्कर्म—

चित्र १०६ से प्रकट है कि घ ग्रहका आयन दृक्कर्म च य है। अब देखना है कि सूर्यसिद्धान्त के अनुसार च य का मान जानने की क्या रीति है।

त्रिभुज च य छ इतना छोटा है कि च य को छ य के समान समझ लेने से कोई हानि नहीं हो सकती। त्रिभुज छ य घ को सरल समकोण त्रिभुज समझ लेने से भी विशेष हानि नहीं है क्योंकि घ ग्रह का शर घ य बहुत छोटा होता है और कोण घ छ य समकोण है क्योंकि अक्षरा य विन्दु का अहोरात्रवृत्त है और प छ घ घ का ध्रुवप्रोतवृत्त है। इस लिए समकोण त्रिभुज छ य घ में

$\frac{\text{छ य}}{\text{घ य}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ य}}{\text{ज्या}\angle\text{घ छ य}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ य}}{\text{ज्या}९०^{\circ}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ य}}{\text{त्रिज्या}}$

चूंकि ग्रह का शर बहुत छोटा होता है इसलिए कोण छ घ य या कोण घ घ क को कोण घ य क के समान समझ लेनेमें कोई हानि नहीं है। इस लिए यह कहा जा सकता है कि

$\frac{\text{छय}}{\text{घय}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{घ य क}}{\text{त्रिज्या}} \therefore \text{छय} = \frac{\text{घ य} \times \text{ज्या}\angle\text{घ य क}}{\text{त्रिज्या}}$

परन्तु कोण घ य क य विन्दुका अयन वलन है क्योंकि यह य के ध्रुवप्रोतवृत्त और कदम्बप्रोतवृत्त के बीचमें है (देखो चित्र १०१) और य के ९० अंश के आगे के भोगांश की क्रान्ति के समान होता है (देखो पृष्ठ ६८५, ६८६) इस लिए ज्या ∠घ य क की जगह पर य + ९०° की क्रान्तिज्या जो पृष्ठ ६८५ के समीकरण (२) के अनुसार ज्ञात होती है रखना चाहिए। यदि यह क्रान्तिज्या का के समान मान ली जाय तो $\text{छ य} = \frac{\text{घ य} \times \text{का}}{\text{त्रिज्या}}$। इस समीकरणमें सब परिमाणों को कलाओं में समझना चाहिए।

यह बतलाया गया है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १८०) कि परमक्रान्तिज्या का मान १३९७ कला है और परमक्रान्ति २४° के समान मानी गयी है। २४ का ५८ गुना १३९२ होता है जो १३९७ के बहुत निकट है इस लिए यदि यह मान लिया जाय कि २४ का ५८ गुना १३९७ के प्रायः समान है तो कोई हर्ज नहीं। इस लिए जब २४ अंश की ज्या २४×५८ कलाके समान होती है तब यह समझने में बहुत हानि नहीं है कि किसी अंश की ज्या उसकी ५८ गुनी कला के समान होती है।

इसलिए का = क्रान्त्यंश × ५८ और त्रिज्या = ९० × ५८ इस प्रकार उपर्युक्त समीकरण का रूप यह होगा :—

$\text{छय} = \frac{\text{घ य} \times \text{क्रान्त्यंश} \times ५८}{५८ \times ६०} = \frac{\text{घ य} \times \text{क्रान्त्यंश}}{६०} \text{ कला}$

कला की ६० गुनी विकला होती है इस लिए यदि ऊपर के समीकरण के दाहने पक्ष को ६० से गुणा किया जाय तो उसका मान विकलाओं में बदल जायगा। परन्तु ६० से गुणा करने पर नीचे वाला ६० कट जायगा और समीकरण का रूप यह होगा :—

छ य = घ य × क्रान्त्यंश विकला

यहां छ य = च य = आयन दृक्कर्म, घ य ग्रह घ का शर या विक्षेप कलाओं में है और क्रान्ति अंशों में है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि य के आगे के ९० अंश की क्रान्ति को अंशों में लिख कर इसको विक्षेप की कलाओं से गुणा कर देने पर जो आता है वह विकलाओं में घ ग्रह का आयन दृक्कर्म है जैसा कि श्लोक१० में बतलाया गया है। इस नियम का दूसरा सरल रूप यह भी हो सकता है कि ग्रहके आयन वलन को अंशों में लिख कर इसको ग्रह की विक्षेप कला से गुणा कर देने से जो आता है वह विकलाओं में ग्रह का आयन दृक्कर्म है।

अब यह देखना है कि यह आयनदृक्कर्म किस समय धनात्मक और किस समय ऋणात्मक होता है अर्थात् इस आयनदृक्कर्म को ग्रहके भोगांशमें किस समय जोड़ना चाहिए और किस समय घटाना चाहिये। स्पष्टाधिकारके पृष्ठ २९३ के चित्र ३९ को ध्यानपूर्वक देखनेसे पता चल सकता

है कि जब तक ग्रह उत्तरायन रहता है अर्थात् सायन मकर राशि के आदि विन्दु उ से सायन कर्कराशिके आदि विन्दु द तक कहीं रहता है तब तक उसका कदम्बप्रोतवृत्त ध्रुवप्रोतवृत्त से बायें रहता है अर्थात् कदम्ब प्रोतवृत्तका तल ध्रुवप्रोतवृत्त के तलसे ऊपर रहता है जैसा कि चित्र ३९ में दिखलाया गया है। परन्तु जब तक ग्रह दक्षिणायन रहता है अर्थात् सायन कर्क राशिके आदि विन्दु द से सायन मकर राशिके आदि विन्दु उ तक कहीं रहता है तब तक उसका कदम्बप्रोतवृत्त ध्रुवप्रोतवृत से दाहने रहता है अर्थात् उसका कदम्बप्रोतवृत्त का तल ध्रुवप्रोतवृत्तके तलसे नीचे रहता है जैसा कि चित्र १०६ में दिखलाया गया है।

चित्र ३९ से प्रकट है कि जब ग ग्रह उत्तरायण और इसका शर उत्तर है तब इसका ध्रुवप्रोतवृत्त प विन्दुसे पश्चिम है जहां इसका कदम्बप्रोतवृत्त, क्रान्तिवृत्तको काटता है। परन्तु यदि उत्तरायण ग्रहका शर दक्षिण, मानलो च पर हो तो स्पष्ट है कि इसका ध्रुवप्रोतवृत्त वही रहेगा जो ग का है परन्तु कदम्बप्रोतवृत्त चक (जो चित्रमें नहीं दिखलाया गया) क्रान्तिवृत्तको उससे पश्चिम काटेगा अर्थात् च ग्रहका क्रान्तिवृत्त पर जो स्थान होगा उससे आगे पूर्वमें ध्रुवप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्तको काटेगा। अर्थात् पहली दशामें ग्रहके भोगांशसे घटानेपर और दूसरी दशामें जोड़नेपर ध्रुवप्रोतवृत्त और क्रान्तिवृत्तके सम्पात का स्थान ज्ञात होगा।

इसी प्रकार चित्र १०६ से प्रकट है कि जब ग और ध ग्रह दक्षिणायन हैं इनके कदम्बप्रोतवृत्त ध्रुवप्रोतवृत्तसे दाहिने हैं। ऐसी दशामें उत्तर शर वाले ग ग्रहका ध्रुवप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त को क स्थान पर काटता है जो य से आगे पूर्वमें है इसलिए य के भोगांश में य क जोड़ने से क का स्थान ज्ञात होगा। परन्तु दक्षिण शर वाले ध का ध्रुवप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त के च स्थान पर काटता है जो य से पीछे पश्चिम में है इसलिए य के भोगांश में च य घटाने पर च का स्थान ज्ञात होगा।

यह प्रकट ही है कि जब ग्रह उत्तरायण रहता है तब इसके भोगांश में ९० अंश जोड़ने से जो भोगांश आता है उसकी क्रान्ति सदैव उत्तर रहती है क्योंकि जब ग्रह सायन मकर से आगे सायन कर्क तक कहीं रहता है तब इससे ९० अंश आगे का भोगांश सायन मेष से आगे और सायन तुला के पहले रहता है जिसकी क्रान्ति उत्तर होती है। इसी प्रकार जब ग्रह दक्षिणायन रहता है तब इसके भोगांश में ९० अंश जोड़ने से जो भोगांश आता है उसकी क्रान्ति सदैव दक्षिण होती है। इसलिए जो बात ऊपर उत्तरायण और दक्षिणायन के संबंध में कही गयी है वही उत्तर क्रान्ति और दक्षिण क्रान्तिके सम्बन्धमें भी लागू होती है जैसा कि १०-वें श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है।

१२-वें श्लोक की उपपत्ति—आक्ष और आयन दृक्कर्म संस्कार करने पर ग्रहोंके जो भोगांश आते हैं इनका अंतर जानकर यह देखना चाहिए कि दोनों ग्रहों का यह अंतर कब शून्य होता है। जिस समय यह अंतर शून्य होता है उसी समय दोनों ग्रहोंकी युति समप्रोतवृत्तपर होती है। इस समय यदि दोनों ग्रहों के शर एक ही दिशा में हों अर्थात् दोनों उत्तर या दोनों दक्षिण हों तो दोनों का अन्तर निकालने पर और यदि दोनों ग्रहों के शरों की दिशाएं भिन्न हों अर्थात् एकका उत्तर और दूसरेका दक्षिण हो तो दोनों

शरों का योग करने पर जो आता है उतने ही अन्तर पर दोनों ग्रह समप्रोतवृत्त पर देख पड़ते हैं।

इस प्रकार सूर्यसिद्धान्तके अनुसार आक्ष और आयन दृक्कर्मका संस्कार करनेकी रीतिकी उपपत्ति सिद्ध होती है जिससे यह पता तो चलता ही है कि यह रीति स्थूल है क्योंकि कई कल्पनाओं से यह सिद्ध की गयी है।

भास्कराचार्य जीके अनुसार दृक्कर्म —

भास्कराचार्यजी कहते हैं कि जिस समय ग्रहके क्रान्तिवृत्त का स्थान क्षितिजमें लग्न होता है उस समय ग्रह अपने शरके कारण क्षितिजके ऊपर रहता है या नीचे रहता है। जिस समय ग्रह क्षितिजके ऊपर रहता है उस समय वह अपने क्रान्तिवृत्तके स्थानसे पहलेही उदय हो जाता है और जिस समय नीचे रहता है उस समय वह पीछे उदय होता है। कितना पहले या पीछे उदय होता है यह दृक्कर्म से जाना जाता है। इस दृक्कर्म के २ खंड होते हैं। एक खंड ग्रहके आयनवलनपर और दूसरा आक्षवलनपर आश्रित रहता है। जो आयनवलनपर आश्रित होता है उसको आयन दृक्कर्म और जो आक्षवलनपर आश्रित रहता है उसको आक्षदृक्कर्म कहते हैं।

चित्र १०८ में ग ग्रह का शर उत्तर है। ग का अहोरात्रवृत्त अ ग च छ र क्षितिजको छ विन्दुपर काटता है इस लिए जिस समय ग के क्रान्तिवृत्तका स्थान गा क्षितिजपर है उस समय ग के अहोरात्रवृत्तका छ विन्दु क्षितिजपर है इस लिए ग का उदय गा से उतना पहले हुआ है जितनी देर में ग के अहोरात्रवृत्तका ग छ खंड क्षितिजके ऊपर आया है। परन्तु ग छ=ग च+च छ जिनमेंसे प्रत्येकका मान इस प्रकार जाना जाता है:—

चित्र १०८

उ छ गा द = पूर्व क्षितिज वृत्त

उ = उत्तर विन्दु

ध = उत्तर ध्रुव

क = कदम्ब

उ ध अ वि द = याम्योत्तरवृत्त

ग = ग्रह

गा = क्रान्तिवृत्त पर ग ग्रहका स्थान, इस समय यह पूर्व क्षितिज पर लग्न भी है। क्रान्तिवृत्त इसलिए नहीं दिखलाया गया कि चित्र साफ रहे।

आ ग च छ र = ग का अहोरात्र वृत्त

वि म प क वी = विषुवद वृत्त

क ग गा = ग का कदम्बप्रोतवृत्त

ध च गा प = गा का ध्रुवप्रोतवृत्त

ध छ फ = छ का ध्रुवप्रोतवृत्त

ग च = आयनदृक्कर्म

च छ = आक्षदृक्कर्म

ग गा = ग ग्रहका शर या विक्षेप

गा च = ग ग्रह का स्पष्टशर (देखो गणिताध्याय ग्रहच्छायाधिकार श्लोक३)

$<$ ग गा च = गा का आयनवलन

$<$ ग गा ध = गा का अक्षवलन

गच की गणना

गलीय समकोण त्रिभुज ग गा च में ग च गा कोण समकोण है क्योंकि गा का ध्रुवप्रोतवृत्त ग के अहोरात्रवृत्त को च स्थान पर काटता है इसलिए

$$\frac{\text{ज्या ग च}}{\text{ज्या ग गा}} = \frac{\text{ज्या} \angle \text{ ग गा च}}{\text{ज्या ९०}} = \frac{\text{आयनवलन ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\therefore \text{ज्या ग च} = \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयन वलन ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \quad \ldots \ldots (१)$$

परन्तु ग च अहोरात्रवृत्त का खंड है और इसके सामने का कोण ध्रुव पर ग ध च के समान है जो विषुवद्वृत्त के म प खंडके समान है। इसलिये यह जाननेके लिए कि ग च खंड कितना देरमें उदय होता है हमें मप खंडका जानना आवश्यक है जो इस अनुपात से जाना जाता है —

$$\frac{\text{ज्या ग च}}{\text{ज्या म प}} = \frac{\text{ज्या ग ध}}{\text{ज्या ध म}} = \frac{\text{ज्या ग ध}}{\text{त्रिज्या}} \quad \ldots \ldots \quad (२)$$

परन्तु ग ध = ध म−ग म = ९०°−ग की क्रान्ति ∴ ज्या ग ध = ग की क्रान्ति कोटिज्या

$$\therefore \text{ज्या म प} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{ज्या ग च}}{\text{ज्या ग ध}}$$

$$= \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ग की क्रान्ति कोटिज्या}} \times \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलन ज्या}}{\text{ग की क्रान्ति कोटि ज्या}}$$

$$\therefore \text{आयनदृक्कर्म} = \frac{\text{शर ज्या} \times \text{आयन वलन ज्या}}{\text{क्रान्ति कोटि ज्या}}$$

इस क्रियासे म प का जो मान आवेगा वह कलाओं में होगा यदि ज्याओं और कोटिज्याओं की गणना भारतीय रीतिसे की जायगी। इसका अर्थ यह हुआ कि केवल आयन-वलन के कारण ग का उदयकाल गा के उदयकाल से म प असुओंके समान आगे होगा। यदि यह जानना हो कि इतनी देरमें क्रान्तिवृत्तका कौन सा खंड उदय होगा तो इसको १८०० से गुणा करके जिस राशिमें ग्रह हो उसके लंकोदयासुओं से भाग देना चाहिए क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है कि जब राशिके लंकोदयासुओंमें राशिका ३० अंश या १८०० कला उदय होता है तब जितने समयमें म प का उदय होता है उतने समयमें राशिका कितना खंड उदय होगा। यही ग्रहच्छायाधिकारके श्लोक ४ का सार है।

च छ की गणना

समकोण गोलीय त्रिभुज च गा छ में गा च छ कोण समकोण है क्योंकि गा च ध्रु घ प्रोतवृत्तका खंड है च छ अहोरात्रवृत्तका खंड है जो ध्रुव प्रोतवृत्तसे समकोण पर होता है। गा च को भास्कराचार्यजी ने ग का स्पष्ट शर माना है और भेद दिखलाने के लिए ग गा को मध्यम शर माना है। कोण च गा छ = कोण ध-गा ट = अक्षवलन। यदि गा विषवद् वृत्तके पास हो तो कोण ध गा ट अक्षांशके समान माना जा सकता है। ऐसी दशामें और यदि च गा छ त्रिभुज समतल त्रिभुज मान लिया जाय क्योंकि

ग्रहका स्पष्ट शर गा च साधारणतः बहुत छोटा होता है तब च-छ गा कोण लम्बांशके समान माना जा सकता है क्योंकि ९०°-अक्षांश = लम्बांश। ऐसी दशामें चूंकि गोलीय त्रिभुज च गा छ में,।

$$\frac{\text{ज्या च छ}}{\text{ज्या} \angle \text{च ग छ}} = \frac{\text{ज्या च गा}}{\text{ज्या च छ गा}}$$

$$\text{अथवा ज्या च छ} = \frac{\text{ज्या स्पष्ट शर} \times \text{ज्या आक्षवलन}}{\text{लम्बज्या}}$$

परन्तु च छ का मान विषवद् वृत्तके प फ खंडके समान है जो सजातीय त्रिभुज घ च छ और घ प फ से इस प्रकार जाना जाता है :—

$$\frac{\text{ज्या प फ}}{\text{ज्या च छ}} = \frac{\text{ज्या ध प}}{\text{ज्या ध च}} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ज्या } (90^\circ\text{-चप})} =$$

$$\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ज्या } (90^\circ\text{-ग्रहकी क्रान्ति})} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$\therefore \text{ज्या प फ} = \frac{\text{ज्या चछ} \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या स्पष्ट शर} \times \text{ज्या आक्षवलन} \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या} \times \text{लम्बज्या}}$$

यही ग्रहच्छायाधिकार के ७वें श्लोकका अर्थ है। इस प्रकार प फ का जो मान कलाओंमें आवेगा वही अक्ष दृक्कर्म है।

अक्ष और आयन दृक्कर्म किस समय जोड़ना और किस समय घटाना चाहिए इसके लिए वही नियम है जो पहले सूर्य सिद्धान्तके संबंधमें बतलाया गया है।

स्पष्ट शर को जाननेकी एक रीति जो कुछ स्थूल है भास्कराचार्यजी ने ग्रहच्छायाधिकारके तीसरे श्लोकमें यों बतलायी है :—

ग्रहके भोगांशमें तीन राशि जोड़ने से जो भोगांश आवे उसकी क्रान्तिकी कोटिज्याको अर्थात् धुज्या को मध्यम शरसे गुणा करके गुणनफल को त्रिज्यासे भाग दे देना चाहिए। यह नियम चित्र १०८ के गोलीय समकोण त्रिभुज ग गा च से स्पष्ट है। क्योंकि ग्रह के भोगांशमें ९०° जोड़नेसे जो आता है उसकी क्रान्ति अयनवलनके समान होती है (देखो चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक २५) जो यहां गा ग च कोणके समान है इसलिए उसकी क्रान्ति कोटिज्या अयनवलन कोटिज्याके समान होगी। यदि गा ग च त्रिभुज समतल समकोण त्रिभुज मान लिया जाय तो $\angle$ गा ग च $= 90^\circ - \angle$ ग गा च $= 90^\circ -$ आयनवलन

$$\therefore \frac{\text{ज्या ग गा}}{\text{ज्या} \angle \text{गचगा}} = \frac{\text{ज्या गा च}}{\text{ज्या} \angle \text{गागच}} = \frac{\text{ज्या गा च}}{\text{ज्या} (90^\circ - \text{आयनवलन})}$$

$$\therefore \text{ज्या गा च} = \frac{\text{ज्या गगा} \times \text{ज्या} (90^\circ - \text{आयनवलन})}{\text{ज्या } 90^\circ}$$

$$= \frac{\text{ज्या मध्यम शर} \times \text{ज्या} (90^\circ - \text{आयनवलन})}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{मध्यम शर ज्या} \times \text{आयनवलन कोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$ ।

ग्रहोंके बिम्बमान—

कुजार्किज्ञामरेज्यानां त्रिंशदर्धार्ध वर्धिताः ।
विष्कम्भाश्चन्द्रकक्षायां भृगोः षष्टिरुदाहृताः ॥१३॥
त्रिचतुष्कर्णयुत्याप्तास्तेद्विघ्नास्त्रिज्ययाहताः ।
स्फुटाःस्वकर्णास्तिथ्यांशा भवेयुर्मानलिप्तिकाः ॥१४॥

अनुवाद—(१३) मंगल, शनि, बुध, गुरु और शुक्र के बिम्बोंके व्यास चन्द्रकक्षामें क्रमानुसार ३०, ३७॥, ४५, ५२॥ और ६० योजन हैं । (१४) किसी ग्रहके बिम्बका स्पष्ट व्यास जाननेके लिए उस ग्रहके ऊपर लिखे हुए व्यासके दुगुने को त्रिज्या (३४३८) से गुणा करके गुणनफलको त्रिज्या और उस ग्रहके चतुर्थ शीघ्रकर्णके योगसे भाग देनेसे जो लब्धि आती है वही बिम्बका स्पष्ट व्यास होता है । यदि इसको १५ से भाग दे दिया जाय तो कलाओं में बिम्बका परिमाण मालूम हो जाता है ।

विज्ञानभाष्य—१३वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि ग्रहोंके बिम्बोंके व्यास चन्द्रकक्षामें क्या हैं । इसके आधार पर चन्द्रग्रहणाधिकारके श्लोक १-३ के अनुसार यह विलोम रीतिसे जाना जा सकता है कि अपनी कक्षामें ग्रहके बिम्बका व्यास क्या है । परन्तु युतिके सम्बन्धमें यह जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं होती । यहां तो केवल यह जानना चाहिए कि युतिकालमें ग्रहबिम्बका कलात्मक मान क्या होता है । परन्तु किसी पिण्डका कोणात्मक या कलात्मक मान उसकी दूरी पर अवलंबित होता है (देखो स्पष्टाधिकार पृ० १२७-१२८) और पृथ्वीसे ग्रहकी दूरी एक सी नहीं रहती घटा बढ़ा करती है इसलिए पहले यह जानना आवश्यक है कि ग्रहबिम्बका मध्यम कोणात्मक मान क्या है । यहां चन्द्रमाकी कक्षामें ग्रह बिम्बका जो परिमाण योजनोंमें समझा गया था वही दिया गया है । साथ ही साथ अगले श्लोकमें यह भी बतलाया गया है कि अभीष्टकालमें ग्रहबिम्बका जो स्पष्टमान योजनोंमें आवे उसको १५ से भाग देनेपर उसका स्पष्ट कलात्मक मान आ जाता है । चंद्रग्रहणाधिकारके पृष्ठ ६४५ पर यह बतलाया गया है कि चन्द्रकक्षाका १५ योजन १ कलाके समान कैसे होता है । इसलिए यह स्पष्ट है कि चन्द्रकक्षाके बिम्बमानोंको १५ से भाग देनेपर इसका परिमाण कलामें क्यों आ जाता है । इस प्रकार चन्द्रकक्षामें ग्रहोंका बिम्बोंका कलात्मक मान नीचे लिखे अनुसार हुआः—

मंगलका बिम्ब	= ३० योजन	= ३० ÷ १५ = २	कला
शनि ”	= ३७॥ योजन	= ३७॥ ÷ १५ = २॥	कला
बुध ”	= ४५ योजन	= ४५ ÷ १५ = ३	कला
गुरु ”	= ५२॥ योजन	= ५२॥ ÷ १५ = ३॥	कला
शुक्र ”	= ६० योजन	= ६० ÷ १५ = ४	कला

इनसे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्य मंगलके बिम्बको सबसे छोटा समझते थे । इससे बड़ा शनिका बिम्ब समझा

था, इत्यादि। परन्तु स्पष्टाधिकार के १४४ पृष्ठ की सारणीसे प्रकट होता है कि यदि सब ग्रह द्रष्टासे उतनी दूर हों जितनी दूर सूर्य पृथ्वीसे है तो बुधके बिम्बका व्यास सबसे छोटा अर्थात् ६.६८ विकला है। मंगलका इससे बड़ा अर्थात् ६.३६ विकला है। इसके बाद शुक्र, शनि और गुरुके बिम्बोंके व्यास क्रमानुसार १६.८०, १६६.५ और १८४.३६ विकला हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि हमारे आचार्यों ने स्थूल मंत्रोंके द्वारा बिम्बोंके जो परिमाण निकाले थे वे अत्यन्त अशुद्ध हैं जैसा कि म० म० सुधाकर द्विवेदी जी ने भी लिखा* है।

अब यह प्रकट है कि जब १३ वें श्लोकमें दिये हुए बिम्बों के परिमाण ही अशुद्ध हैं तब इन्हींके आधार पर अगले श्लोक के अनुसार स्पष्ट बिम्बके परिमाण ठीक ठीक कैसे जाने जा सकते हैं।

अब यह विचार किया जायगा कि अगला श्लोक कहां तक शुद्ध है। इस श्लोककी प्रथम पंक्ति का सार यह है :—

$$\text{स्पष्ट बिम्ब} = \frac{\text{मध्यमबिम्ब} \times २ \times \text{त्रिज्या}}{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्र कर्ण}}$$

$$\text{अथवा स्पष्टबिम्ब} = \frac{\text{मध्यबिम्ब} \times \text{त्रिज्या}}{\frac{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२}}$$

इसको त्रैराशिकके रूपमें इस प्रकार लिखा जा सकता है:—

$$\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२} : \text{त्रिज्या} :: \text{मध्यबिम्ब} : \text{स्पष्ट बिम्ब}$$

नियमके इस रूपसे सिद्ध होता है कि हमारे आचार्यको यह बात अच्छी तरह मालूम थी कि जब त्रिज्याकी दूरी पर ग्रह बिम्ब अपने मध्यममानके समान होता है तब इससे अधिक दूरी पर स्पष्ट बिम्ब का मान कम होगा और कम दूरी पर स्पष्ट बिम्बका मान अधिक होगा जैसा कि स्पष्टाधिकार पृष्ठ १२८ में दिखलाया गया है। परन्तु त्रिज्याको ३४३८ मानने से काम नहीं चल सकता। यदि त्रिज्याकी जगह वह दूरी रखी जाय जो चन्द्रमासे पृथ्वीकी दूरी है और $\frac{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२}$ की जगह वह दूरी रखी जाय जो इष्टकाल में पृथ्वीसे इष्टग्रहकी दूरी है तो यह अनुपात ठीक हो सकता है। कोई कोई आचार्य इस त्रैराशिकके पहले पदमें त्रिज्याकी जगह तृतीय कर्ण लेते हैं। परन्तु इससे भी उतनी शुद्धता नहीं आ सकती जैसी आनी चाहिये। पृथ्वीसे किसी ग्रहकी दूरी इष्टकालमें क्या होती है। इसकी गणना करनेके लिये पहले यह जानना होता है कि सूर्यसे उस ग्रहकी दूरी स्पष्टाधिकारके पृष्ठ २५३-२६४ में दिये हुए सूत्रके अनुसार क्या है। फिर उसी अधिकारके पृष्ठ २६८ में दिये हुए चित्रके अनुसार पृथ्वीसे उस ग्रहकी दूरी अर्थात् शीघ्र कर्ण जानना चाहिये। अब यदि १४४ पृष्ठमें दिये हुए मध्यबिम्बको पृथ्वी और सूर्यके बीच की दूरीसे गुणा करके इसी शीघ्रकर्णसे भाग दिया जाय तो ग्रहका स्पष्ट बिम्ब शुद्धता पूर्वक जाना जा सकता है। आचार्य केतकर को ज्योतिर्गणितके अनुसार पंच तारा ग्रहोंके बिम्बोंके

क्रमशः

* सूक्ष्म दृग्दर्शक यन्त्रादिना बुध शुक्रयोरपि शशिवत् सितवृद्धि हानित्वं शृङ्गोन्नतिश्चोपलभ्यते। आचार्य समये तादृश यन्त्राणामभावाद् दृष्ट्या शृङ्गोन्नतिः सितासित बिम्बमितिश्च नोपलब्धांऽतोऽनुमानेन रवेरासन्नत्वादित्यादि कल्पना न समीचीनेति सर्वं स्फुटमत्रं।

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त ग्रहयुत्यधिकार श्लोक १-४ की टीका।

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१५३ Reg. No. A.708

भाग २६ Vol. 26. वृश्चिक, धन १९८४ संख्या २,३ No. 2,3

नवम्बर, दिसम्बर १९२७

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

व्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य [illegible]] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य [illegible]

विषय सूची

१—क्रान्तिकारी विज्ञान—[ले० श्री० [illegible]] ... [illegible]

२—स्वर्गीय श्री० श्रीनिवास रामानुजम् एफ० आर० एस०—[ले० [illegible] श्री [illegible], एम० ए०, डी० [illegible] श्री रामानुजम् [illegible]] ५१

३—वह तारा कितनी दूर है—[ले० श्री० डा० गोरखप्रसाद जी, डी० एस-सी०] ... ५७

४—हवा—[ले० श्री० धर्मनाथप्रसाद कोहली बी० एस-सी०] ६६

५—संसार वासियों का भोजन—[डा० नीलरत्नधर डी० एस-सी, आई० ई० एस० तथा सत्यप्रकाश ... ... [illegible]

६—वैज्ञानिकीय— ७६

७—समालोचना— ८०

८—[illegible] और कीतोनिक अम्ल—[ले० श्री सत्यप्रकाश एम. एस-सी ८२

९—दीमक की बुद्धिमत्ता—[ले० श्री० पं० शङ्करराव जोशी ८८

१०—वैज्ञानिक परिमाण—[ले० डा० निहालकरण सेठी] ९१

११—वार्षिक वृत्तान्त— १०१

१२—चाँदी की कलई करना—[ले० श्री० कालिकाप्रसाद शर्मा बी० एस सी०, एल० टी- विशारद १०३

१३—रोगोपचार के साधन—[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस सी०]... ... १०५

१४—बत्रन और शैलम्—[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी] १०९

१५—सूर्य सिद्धान्त ११३

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग २६ | वृश्चिक, धन संवत् १९८४ | संख्या २, ३

क्रान्तिकारी विज्ञान

—◇◇—

(ले० श्री तत्ववेत्ता)

उन्नतिके मार्गमें अवरोध प्रस्तुत करनेके लिये सन्तोषसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। 'सन्तोषं परमं सुखम्' का सिद्धान्त विचार शून्य योगीके लिये चाहें सत्य क्यों न हो पर वैज्ञानिक समुदायके लिये यह विष तुल्य है। असन्तोष ही वैज्ञानिक की आशा है; उसके जीवनका यह प्राण है। पुरातन पदार्थों का उपयोग और व्यवहार करना वैज्ञानिक की दृष्टिमें संकीर्णता और अन्धविश्वास है। विज्ञानका मार्ग अनन्त है. इस पथके पथिकोंकी पिपासा कभी तृप्त नहीं होती है। परिवर्त्तन' वैज्ञानिकोंका परमप्रिय मित्र है। कल क्या था, आज क्या है, और फिर कल क्या होगा बस इसके रहस्यको समझ लेना ही विज्ञानका अध्ययन करना है। कवि अपनी कल्पनासे आकाशमें विहार कर सकता है, जलके अन्दर डुबकियाँ लगा सकता है, भूमिके अदृष्ट स्थलोंमें परिभ्रमण कर सकता है पर वैज्ञानिक उस कविकी कल्पनाको प्रत्यक्ष रूप प्रदान कर देता है। आकाशमें विमानों द्वारा जलके भीतर पनडुब्बियों द्वारा और अज्ञात् स्थलों पर विविध विधान द्वारा वह पहुंच जाता है।

वैज्ञानिकको किसीसे भी मित्रता नहीं है, पर न वह किसीका शत्रु ही है, उसकी प्रवृत्ति उदासीन व्यक्तियोंके समान भी नहीं है। उसका जीवन रहस्य-मय है. रहस्योंके अन्वेषणमें संलग्न व्यक्ति स्वयं एक रहस्य बन गया है। उनकी मनोवृत्ति योगी की वृत्ति नहीं है जिसका उद्देश्य संयमता हो. वह क्षुब्ध हृदय चाहता है। मनकी चंचलता ही उसका संयम है. चित्त की चेतना विक्षोभ में है, विप्लव में है। शान्तिका

आलाप आलसियोंका वचन है, क्रान्ति जीवनका लक्षण है।

प्राचीन लेखों पर विश्वास करना, बाप दादोंके निर्दिष्ट मार्गका अवलम्बन करना और 'महाजनो येन गतःसपन्था, ऐसे सिद्धान्त बना लेना केवल विचार शून्य व्यक्तियोंका ही आदर्श है। वैज्ञानिक अपने पूर्वजोंका आदर करता है, पर वह उनकी किसी बातको भी माननेके लिये तैयार नहीं है। पूर्व-कथनोंकी वह कड़ीसे कड़ी परीक्षा करता है, इसीमें उसे आनन्द मिलता है. उसकी दृष्टि संसारके विकासकी ओर है। सामान्य जनताके लिये संसारका स्वर्णयुग भूत अतीत कालमें था पर वैज्ञानिक भविष्यमें इस स्वर्गकी कल्पना करता है। इसका निर्माता और विधायक वह स्वयं अपनेको मानता है। धर्मान्ध व्यक्तियोंके कल्पित स्वर्गके संचालन और निर्माणमें बेचारे जीवोंका कोई भी हाथ नहीं है। वहाँ परतन्त्रता और एक तन्त्रता है। पर जिस स्वर्गकी सामग्रीके संचयमें वैज्ञानिक समुदाय संलग्न है, उसमें सर्वतन्त्रता और स्वतन्त्रता होगी। इसीलिये वैज्ञानिक आशावादी है, नैराश्यको वह घोर अन्धकार समझता है।

उपदेशकों और समाजसुधारकोंका प्रमत्त प्रयत्न संसारके मार्गके कण्टकोंको दूर करना है। पर वैज्ञानिक अपनी प्रखर बुद्धि द्वारा सन्मार्ग पर कांटों, झाड़ झंखाड़ोंको प्रस्तुत करनेमें आनन्द समझता है। तीक्ष्ण त्रिशूलों पर वह नृत्य करता है, संसारकी नाटकशालामें भांति-भांतिके खेल दिखाता है। भला इसमें भी कोई जीवन है कि साफ सुथरे मखमलके मार्ग पर पथिक झूमता निकले संग्राम ही जीवन है, युद्धही बौद्धिक विकासका एक मात्र साधन है, इस संग्रामके लिये रौद्रमय सामग्री प्रस्तुत करना विज्ञानका लक्ष्य है। शंकरके भस्मान्तकारी दिव्य लोचन द्वारा वह संसारकी महा प्रलय कर देना चाहता है।

समालोचकोंका कथन है कि आधुनिक विज्ञानके कार्य्यविधान का कोई उद्देश्य नहीं है, इसका प्रत्यक्ष फल यह हो रहा है कि संसारके एक कोनेसे दूसरे कोने तक अशान्ति आच्छादित हो गई है। इन आलोचकोंसे एकही विनयकी जा सकती है। वह यह कि इन्हें परोक्ष प्रिय होना चाहिये, क्या उपनिषदोंमें यह कथन नहीं है कि देवता प्रत्यक्षद्विष् और परोक्ष प्रिय होते हैं? वर्तमानकालमें द्वेष और अशान्ति फैलाकर भविष्यकी शान्तिकी कल्पना करनाही दिव्य गुण है। विक्षोभसे ही संसारकी सृष्टि होती है, विक्षोभसे ही संसारकी पालन होता है और प्रलय भी इसी विक्षोभ में है।

विज्ञानका पवित्र उद्देश्य है—मस्तिष्ककी चेतना सम्बन्धी वासना की तृप्ति। मधुर रागोंसे जिस प्रकार कानोंको आल्हाद प्राप्त होता है, सोमसुधा आदिके पानसे जिस प्रकार रसनेन्द्रिय मुग्ध हो जाती हैं, अथवा अन्य वासनेन्द्रियायें अपने अपने अनुकूल रसोंके आस्वादनसे तृप्त होती हैं उसी प्रकार मानव शरीरके अन्तरतरकी विकास प्रिय सूक्ष्मेन्द्रिय विज्ञान रस पानसे ही तृप्त होती है। विज्ञानको नीरस कहनेवाले सरसताके भावसे ही अनभिज्ञ हैं। यह वह रस है, वह यह मादक द्रव्य है, यह वह पेय पदार्थ है जिसके आस्वादनसे व्यक्ति अपना सर्वस्व खो बैठता है, तन मन और धनकी स्थूल आकांक्षायें समाप्त हो जाती हैं। न्यूटनके समान और गैलीली सदृश व्यक्ति अथवा लवाशियेसे रसायनज्ञों की आत्माओंसे पूछो कि इस नीरसतामें उन्हें कैसी सरसता मिली; यह वह बूटी है जिसके एक बार छानने से 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे' का स्मरण हो आता है। हृदय की ग्रन्थियाँ सुलझ जाती है, सर्व संशयोंका क्षय हो जाता है। और अधिक चाहिये ही क्या?

कुछ व्यक्तियोंका संशय पूर्ण विश्वास है कि विज्ञान का उद्देश्य है—एक मात्र सत्यकी खोज करना। पर सत्य तो उसे कहते हैं जो भूत भविष्यत् और वर्तमान तीनो कालोंमें एवं सर्व दिशाओंमें अटल अपरिवर्त्तित रहे;—नहीं नहीं, जिसे दिशा और काल की अपेक्षा ही न हो। यदि यह बात ठीक है तो विज्ञान और सत्य का क्या सम्बन्ध है! वैज्ञानिक निरीक्षण करता है परिवर्त्तनोंका न कि स्थायी पदार्थोंका। प्रक्रियायें

अवस्थाएं हो सकती हैं, चाहे वे रासायनिक हों, या भौतिक अथवा शारीरिक। अतः परिवर्तन और सत्य शब्द दोनों विरोधी ही तो कहे जायंगे, इस प्रकार यह स्पष्ट ही है कि परिवर्त्तनोंके अन्वीक्षणोंसे सत्यताकी खोज करना विडम्बना मात्र है। इस परिवर्त्तनशील जगत्में सत्यकी आवश्यकता ही क्या है! सत्य मृत्यु है, परिवर्तन जीवन है, सत्य जड़ है, परिवर्त्तन चेतन है। हमारे ऐसे चैतन्य जीवन प्राणियोंके लिये आवश्यकता है एक मात्र क्रान्ति की, काया पलट की।

स्वर्गीय श्री० श्रीनिवास रामानुजन, एफ. आर. एस.

[ले० श्री डा० प्यारेलालजी श्रीवास्तव, एम. ए., डी. फिल. तथा श्री रामाधुगलाल श्रीवास्तव]

ज हम 'विज्ञान' के पाठकोंके सन्मुख एक ऐसे महापुरुषकी जीवनी उपस्थित करते हैं जो भारतके ही नहीं वरन् संसारके उन थोड़ेसे मनुष्योंमेंसे थे जिनका जन्म लेना अखिल विश्वके लिये परमात्माकी महान् कृपाका उदाहरण हुआ करता है, जिनका जीवनकाल अलौकिक प्रतिभा और चमत्कारसे परिपूर्ण रहता है, जिनका पौरुष संसारकी रंगभूमिमें युगान्तर उपस्थित कर देता है और जिनका वृत्तान्त विश्वके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमें अङ्कित किया जाता है।

हमारे चरित्र नायकका नाम था श्रीनिवास रामानुजन। आपका जन्म ता० २२ दिसम्बर, सन् १८८७ में मद्रास प्रान्तके इरोद ग्राममें एक उच्च परन्तु निर्धन ब्राह्मण वंशमें हुआ था। आपके पिता तथा पितामह तंजोर जिलेके कुम्भकोनम ग्रामके निवासी थे और वहीं पर कपड़ेके व्यापारियोंके यहां गुमाश्तागिरीका काम कर जीवन निर्वाह किया करते थे। आपके नाना इरोद में मुन्सिफी कचहरीमें अमीन थे। सामाजिक रीतिके अनुसार आपकी माता प्रथम प्रसवके लिये अपने मायके इरोद चली गईं और वहीं श्री० रामानुजनका जन्म हुआ। कहा जाता है कि विवाहके कई वर्ष बाद तक सन्तान हीन रहनेके कारण इनकी माता चिन्तित रहा करती थीं। अपनी पुत्रीको चिन्ताकुल देख इनके नाना ने नामाकल ग्राम जाकर वहांकी नामाकरी देवीकी आराधनाकी और पुत्रीके लिये सन्तान मांगी। इसके थोड़े ही दिनों बाद श्री० रामानुजनका जन्म हुआ।

पांच वर्षकी आयुमें आपकी शिक्षा प्रारम्भहुई। देहातकी मामूली पाठशालामें आप भर्ती किये गये। वहां दो साल शिक्षा पाकर आप कुम्भकोनमके हाई स्कूलमें भेजे गये और प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने लगे। सन् १८९७ में आपने प्राइमरी परीक्षा पासकी और सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। सफलताको पुरस्कृत करनेके लिये आगेकी कक्षाओंमें आपकी फीस आधी कर दी गई।

बालकालसे ही आपकी प्रतिभा जब तब अपनी आभा दिखलाने लगी। आप मामूली शिक्षा प्राप्त करते हुए भी ऊंची ऊंची उड़ान लेनेके लिये आकुल रहा करते थे। अपने साथियोंसे कभी तारागण, कभी संसारकी परिधिके बारेमें पूछताछ किया करते थे। एक बड़ी चिन्ता आपके पीछे यह लग गई थी कि गणित शास्त्रमें सबसे प्रामाणिक सिद्धान्त कौन सा है? अपनेसे ऊंची कक्षामें पढ़नेवाले बालकोंसे आप सदैव इन विषयों पर ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न किया करते थे। इनके कुछ साथियोंका अनुमान था कि पाइथागोरसका प्रमेयोपपत्ति, सबसे अधिक प्रामाणिक सिद्धान्त है पर कुछ साथियोंका मत इसके विपक्षमें था। उनका विश्वास था कि 'स्टाक और शेयर' के मुकाबिले कोई सिद्धान्त ठहर ही नहीं सकता। जब आप तीसरे दर्जेमें पढ़ते थे तब एक दिन मास्टर साहेब यह समझा रहे थे कि किसी संख्याका भाग यदि उसी

संख्यासे दिया जावे तो भागफल 'एक' होगा। आपने तत्काल प्रश्न किया कि 'शून्य' के बारेमें भी यह नियम सत्य हो सकता है क्या?

आपने अबतक तीनों श्रेणियों Three progressions) का पूरा अभ्यास कर लिया था और चौथी क्लासमें पहुंचते ही आपने त्रिकोणमितिका अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। बी० ए० के एक छात्रसे आपने 'लोनी' की त्रिकोण मितिकी पुस्तक मांगी। वह दंग रह गया कि चौथी क्लासका लड़का इस पुस्तकका करेगा क्या। पर जब उसने देखा कि बिना किसीकी सहायताके रामानुजन प्रश्न पर प्रश्न हल किये जाते हैं, तब तो उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। आगे जब कभी उससे त्रिकोणमितिका कोई सवाल हल न होता था तब वह सीधे रामानुजनके पास चला जाया करता था। पांचवें दर्जेमें पहुँच कर साइन, कोसाइन और कोज्याका विस्तार जो पहले पहल 'आइलर' ने किया था, आपने भी किया।

सन् १९०३ में जब ये छठवीं कक्षामें थे, इनके जीवनमें एक उल्लेखनीय घटना हो गई। इनके किसी मित्र ने स्थानीय गवर्नमेन्ट कालेजसे कार लिखित, सिनोप्सिस आवप्योर मेथेमेटिक्स (Carr's synopsis of pure mathematics) नामक पुस्तक इन्हें लाकर दी, फिर क्या था अंधा चाहे दो आंखें। इनके लिये एक नये जगतकी सृष्टि हो गई। उसी वक्त कमर कस कर भिड़ पड़े। नये नये प्रश्न हल करनेके आनन्दमें ये मग्न हो गये। तन बदनकी सुध भूल गई।

यहां यह बतला देना आवश्यक है कि इस समय इन्हें न तो किसी गुरुकी सहायता नसीब थी न ऐसी पुस्तकोंकी जिनसे कुछ मदद ली जा सके। अतएव यह छठवीं क्लासका बालक इस समय जो खोज करता था वह बिल्कुल मौलिक खोज थी और उसका स्थान वही होना चाहिये जो बड़े बड़े प्रोफेसरोंकी नवीन तथा स्वतंत्र खोजका होता है।

सन् १९०३ में मैट्रीकुलेशन परीक्षा पास कर जब आप कुम्बकोनम गवर्नमेण्ट कालेजकी फर्स्ट इयर क्लासमें पहुंचे तब आप सिवाय गणितके और किसी कामके न रह गये थे। क्लासमें कुछ भी पढ़ाया जाता हो आप गणितमेंही मग्न रहते थे। फल यह हुआ कि फर्स्ट इयरकी परीक्षामें आप फेल हो गये। आपको बहुत रंज हुआ। पहले तो आप कालेज छोड़ छाड़ कर भाग गये। फिर कुछ सोच विचार कर लौट आये पर यह जान कर कि इम्तेहानमें बैठनेके लिये अब आपकी हाज़िरी पूरी नहीं हो सकती आप मद्रास चले गये और वहां पच्चपैया कालेजमें भरती होगये। बीमार पड़ जानेके कारण आप वहांसे भी आगये और सन १९०६ में प्राइवेट तौरसे आप एफ० ए० के इम्तेहानमें बैठे और फेल भी होगये।

इस तरह आपकी कालेजकी पढ़ाई लिखाईका अन्त हुआ। सन् १९०८ तक आप घर ही में गणित शास्त्रका अध्ययन करते रहे। इसी साल आपका विवाह हुआ। अब आपको जीविकाकी फिक्र हुई। बहुत दौड़ धूप करने पर आपको मद्रासमें अकाउण्टेण्ट जनरलके दफ़्तरमें थोड़े दिनोंके लिये एक नौकरी मिल गई। कुछ दिनों बाद यह नौकरी छूट भी गई। आपने ट्यूशन करके जीवन निर्वाह करनेका प्रयत्न किया परन्तु असफल रहे। फिर नौकरीकी फ़िक्रमें निकले और कुछ गणितज्ञोंकी सिफारिशसे आपको सन् १९१३ में मद्रास पोर्ट ट्रस्टके दफ़्तरमें ३०) मासिककी एक क्लर्की मिल गई। इससे आपको बड़ा संतोष हुआ। गणितका अध्ययन तो जारी ही था। क्लर्कीसे निर्वाह चिन्ता हट गई और खोज काम दूने उत्साहसे आरम्भ हो गया।

आपका पहला लेख मद्रासकी इण्डियन मैथमेटिकल सोसाइटीके पत्रमें फर्वरी सन १९११ में निकला। उसी सालके दिसम्बरके अङ्कमें एक लेख और छपा। सन १९१२ में भी इस पत्रमें इनके दो लेख और कई प्रश्न छापे गये।

इन लेखोंके कारण गणित संसारमें इनकी थोड़ी बहुत ख्याति हो गई। सन् १९१३ में आपने कुछ मित्रोंकी सलाहसे ट्रिनिटी कालेज, कैम्ब्रिज, के फेलो श्री० जी० एच० हार्डीको अपने एक लेखका कुछ भाग भेजते हुए एक पत्र लिखा जिसका आशय यह

था कि यदि उक्त साहब इनके लेखको उपयोगी समझें तो उसपर अपनी समुचित राय प्रगट करनेकी कृपा करें और उस लेखको प्रकाशित करा देनेका भी प्रयत्न कर दें। श्री० हार्डीने इस लेखसे इनकी प्रतिभाका अनुमान कर लिया और इनके पत्रका सहानुभूतिपूर्ण उत्तर ही नहीं दिया बल्कि अच्छे अच्छे गणितज्ञोंके साथ रहकर अपनी प्रतिभाका पूर्ण विकास करनेके लिये इन्हें विलायत आनेको भी उत्साहित करने लगे। श्री० रामानुजन समुद्र यात्राके विरोधी थे इस कारण श्री० हार्डीको पहले पहल कोई सफलता प्राप्त न हो सकी। तथापि इन्होंने अपना प्रयत्न जारी रखा और फिलहाल मद्रास विश्व विद्यालयसे लिखा पढ़ी करके ७५) मासिककी स्कालरशिप इन्हें दिलवादी क्लर्कीसे इस तरह छुटकारा मिला। इसके बाद पार्जीवन श्री० रामानुजन गणित शास्त्रके अध्ययन ही में लगे रहे।

इधर हार्डीसाहब भी मनोवाञ्छापूर्ण होनेके दिन भी समीप आये। सन् १९१४ में मद्रास विश्वविद्यालयने ट्रिनिटी कालेज कैम्ब्रिजके फेलो श्री० ई० एच० नेविलको अपने यहां व्याख्यान देनेके लिये निमन्त्रित किया। उन्होंने भी स्वीकार कर लिया। यात्राके पहले श्री० हार्डी इनसे मिले और रामानुजनको विलायत आनेके लिये आग्रह करनेका भार इनको सौंपा। श्री० रामानुजनके मित्र विलायत जानेके लिये लगातार इनके पीछे पड़े हुए थे। समुद्र यात्रामें सबसे बड़ी विपत्ति श्री० रामानुजनकी माताको थी। एक दिन उन्होंने भी अपनी स्वीकृत देदी। उन्होंने स्वप्न देखा कि उनका पुत्र एक बड़े भारी मकानमें बैठा हुआ है चारों ओरसे अंग्रेज उसे घेरे हुए हैं एवं उसका मान सन्मान कर रहे हैं। नामाकरी देवी स्वयं उनसे कह रही हैं कि अपने पुत्रकी ख्याति-प्राप्तिमें तू आपत्ति मत डाल। अतएव उन्होंने देवीकी आज्ञानुसार अपने पुत्रको विलायत जानेकी अनुमति दे दी। श्री० नेविलको श्री० रामानुजनकी स्वीकृतकी सूचना मिली। लिखा पढ़ी करके उन्होंने श्री० रामानुजनको २५० पौंड सालानाकी स्कालरशिप मद्रास विश्वविद्यालयसे दिलवा दी। स्कालरशिपसे माता पिताके निर्वाहका उचित प्रबन्ध कर श्री० रामानुजन १७ मार्च सन् १९१४ को विलायत रवाना होगये।

श्री० हार्डी और श्री० लिटिलवुडकी अध्यक्षतामें आप केम्ब्रिजमें अध्ययन करने लगे। सालभरके बाद श्री० हार्डीने आपके बारेमें जो रिपोर्ट मद्रास विश्वविद्यालयमें भेजी उसका कुछ हिस्सा इस प्रकार था:—

"लड़ाई छिड़ जानेके कारण रामानुजनकी उन्नतिमें बहुत कुछ बाधा आगई है। श्री० लिटिलवुड लड़ाईपर चले गये हैं। मुझे अकेले ही रामानुजनको पढ़ाना पड़ता है। रामानुजन जैसे कुशाग्र बुद्धिके विद्यार्थीके लिये एक शिक्षक काफी नहीं हो सकता। .... निस्सन्देह रामानुजन आधुनिक कालके सर्वोत्तम भारतीय गणितज्ञ हैं। ....प्रश्नोंके सुनाबनेमें अथवा उन्हें हल करनेमें रामानुजनमें हमेशा कुछ कच्चापन बना रहेगा। ....परन्तु रामानुजनकी अलौकिक योग्यतामें कोई सन्देह नहीं हो सकता; कई तरहसे वे मेरे जान पहचानके सब गणितज्ञोंसे अधिक प्रतिभाशाली हैं"।

सन् १९१७ तक श्री० रामानुजन सफलतापूर्वक अध्ययन करते रहे। समय समयपर श्री० हार्डी तथा अन्य गणितज्ञोंके प्रशंसा सूचक पत्र मद्रास विश्वविद्यालयके पास आते रहते थे। इस अरसेमें इनके बारह तेरह लेख यूरोपीय पत्रोंमें प्रकाशित हुए जिनका खूब मान हुआ।

मई, सन् १९१७ में श्री० हार्डीके पत्रसे मालूम हुआ कि श्री० रामानुजनको तपेदिककी शिकायत शुरू हो गई है। कारण यह बतलाया गया कि ये मानसिक परिश्रम तो बहुत करते थे पर शारीरिक व्यायामकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे। इसके सिवाय उनकी विलायत की रहन सहन भी वहांके जलवायुके प्रतिकूल थी। वे अपने ही हाथ से भोजन बनाते थे। चांवल और साग ही उनका नित्यका भोजन था। उनसे कई बार यह ढंग बदलनेके लिये कहा गया पर उन्होंने इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया।

उस वक्त भारत वापस आनेमें खटका था। लड़ाईके कारण समुद्र यात्रा कंटकमय हो गई थी। इसलिये वे पहले कैम्ब्रिजमें एक अस्पतालमें रखे गये और फिर वेल्स, मेटलाक और लन्दनके कई प्रसिद्ध अस्पतालोंमें उनकी दवादारू होती रही। सन १९१८ में उनकी हालत कुछ कुछ सुधरने लगी।

२८ फरवरी १९१८ को श्री० रामानुजन रायल सोसाइटीके फेलो बनाये गये। ये पहले भारतीय थे जिन्हें यह सन्मान प्राप्त हुआ। विशेष उल्लेखनीय बात इसमें यह है कि ३० वर्षकी अवस्थामें ही ये रायल सोसाइटीके फेलो हो गये और पहली नामजदी में ही इनको सोसाइटी ने अपना फेलो बनाना स्वीकार कर लिया।

इस सफलतासे उत्साहित हो इन्होंने अस्वस्थता की परवाह न कर फिरसे जोरोंसे खोज प्रारम्भ कर दी। १३ नवम्बर १९१८ को ये ट्रिनिटी कालेज कैम्ब्रिजके भी फेलो नियुक्त हुए। पुरस्कार स्वरूप २५० पौंड सालानाकी एक स्कालरशिप भी इन्हें छः वर्ष के लिये मिली। इस समाचार को सूचित करते हुए श्री० हार्डी ने मद्रास विश्व विद्यालयको लिखा कि "रामानुजम इतने बड़े गणितज्ञ होकर भारत लौटेंगे जितना अब तक कोई भारतीय नहीं हुआ और मुझे आशा है कि भारत उन्हें अपनी अमूल्य सम्पत्ति समझकर उनका उचित मन्मान करेगा।" मद्रास विश्वविद्यालय ने भी पांच वर्षके लिये उन्हे २५० पौंड सालाना की स्कालरशिप दी और वापस आने पर उन्हें अपने विद्यालयका सर्वोच्च प्रोफेसर बनानेका निश्चय किया।

अब लड़ाई ठंडी पड़ती जाती थी। अतएव २७ फरवरीको विलायतसे रवाना होकर श्री० रामानुजन २७ मार्च १९१९ को मद्रास वापस आये। प्रवासके कारण उनके स्वास्थ्यमें बहुत अन्तर पड़ गया था। शरीर कृश था और मुख पर पीलाहट आगई थी। मद्रासमें उनके लिये अच्छेसे अच्छे इलाजकी व्यवस्था की गई। परन्तु कुछ लाभ न हुआ। मद्राससे वे कावेरी किनारे कोडूमंडी ग्रामको चले गये और वहांसे अपनी जन्मभूमि कुम्बकोनम को आ गये। औषधि सेवन और पथ्यसे उन्हें घृणा थी। कभी कभी तो दवापानी से वे साफ इन्कार ही कर दिया करते थे। हालत ज्यादा बिगड़ते देख उन्हें फिर मद्रास पहुँचाया गया परन्तु इलाजसे उन्हें कुछ फायदा नहीं हुआ। अन्त में ता० २६ अप्रेल सन् १९२० को केवल ३३ वर्ष की अवस्थामें मद्रासके पास चेटपुट ग्राममें इस महापुरुषने अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। भारतका एक उज्ज्वल नक्षत्र टूट कर अनन्तमें समा गया। अलौकिक प्रतिभा थोड़े ही दिनों अपना चमत्कार दिखला कर विलीन हो गई। श्री० रामानुजनके कोई सन्तान नहीं है पर उनके माता पिता और धर्मपत्नी अभी जीवित हैं।

श्री० रामानुजनका स्वभाव बहुत शान्त और सरल था। ऊपर लिखा जा चुका है कि विलायत जा कर भी आपने धार्मिक नियमोंका अनेक कठिनाइयां सहते हुए भी किस प्रकार पालन किया। आप की आन्तरिक धारणा यह थी कि जाति, पांति, छुआ, छूतके बन्धन ईश्वरीय नहीं है, समय और परिस्थितिको देखते हुए इनको बनाये रहना उचित भी नहीं है; तथापि आप समाजके प्रचलित नियमोंमें हस्तक्षेप करना अपने अधिकारके बाहर समझते थे और जहां तक बन सकता था, उनके पालन करनेका प्रयत्न किया करते थे श्री० रामानुजन की माता पिता में जो अविरल भक्ति थी उसका उदाहरण भी पाठकोंको ऊपर मिल चुका है।

अब इनकी खोजका कुछ वर्णन करके इस लेखको हम समाप्त करेंगे। श्री० रामानुजनकी सफलताके मुख्य कारण थे इनकी असाधारण स्मरणशक्ति, अध्यवसाय और गणनाशक्ति। इन शक्तियोंके प्रताप से ये बात की बातमें सिद्धान्तोंको गढ़ा करलेते थे, उनके नतीजोंका स्पष्ट अनुमान लगा लेते थे और उन्हें हल करके रख देते थे। इन सब चमत्कारोंका दिग्दर्शन कराने में वे अपने समयमें अपने ही समान थे। बीज गणितके फार्मूलों और अनन्त श्रेणियोंके रूपान्तर में इनकी पहुंच बहुत बढ़ी चढ़ी थी। इन

विषयोंका जिक्र करते हुए हार्डी साहेब लिखते हैं:— मैंने इनकी बराबरीका गणितज्ञ आज तक नहीं देखा। मैं इनकी तुलना आईलर और जैकोबीसे ही कर सकता हूं।' धनात्मक पूर्णांकोंसे गुणमें भी इनका ज्ञान चमत्कार पूर्ण था। लिटिलवुड साहेब कहा करते थे कि हर एक धनात्मक अङ्कोंसे और रामानुजनसे बड़ी गहरी दोस्ती है। एक बारकी बात है कि जब श्री रामानुजन बीमार थे, श्रीहार्डी उनसे मिलनेके लिये गये। अस्पतालमें इनके निवासस्थानका नम्बर १७२९ था। हार्डी साहेब ने यह विचार करके कि यह नम्बर तीन विषम संख्याओं (७ × १३ × १९) का गुणक है, श्री रामानुजनसे कहा कि कैसे मनहूस कमरेमें रहते हो प्रश्नके होते ही तत्काल श्री रामानुजन ने उत्तर दिया कि 'नहीं साहेब! यह नम्बर बड़ा ही मनोरञ्जक है। यह सबसे छोटा वह नम्बर है जो दो भिन्न भिन्न प्रकारके दो घनोंके योगके रूपमें प्रकट किया जा सकता है, (१७२९=१०³+९³=१२³+१³) इस उत्तर से हार्डी साहेबको रामानुजनकी गणित दूरदर्शिता का परिचय मिल गया और इस कौतूहल जनक उत्तर की उन्होंने बड़ी सराहना की।

श्री० रामानुजनकी अधिकतर खोज संख्याओंकी मीमांसा (Theory of Numbers) में हुई है। अधिक यौगिक संख्याएँ (Highly Composite Numbers) पर उनका लेख (Proceeding of the London Mathematical Society, 2, 14 (1915) में बहुतही महत्त्वपूर्ण है।

इस लेख से विषम-बीजगणित (algebra of inequalities) में इनके असाधारण पांडित्यका पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है। वर्गोंके योग द्वारा संख्याओंकी प्रदर्शन विधिकी मीमांसा—(Theory of representation of numbers by sums of squares) पर भी इन्होंने कई पांडित्यपूर्ण लेख लिखे हैं जिनमें से मुख्य ये हैं :—

(१) कुछ अङ्कगणितीय फलोंके सम्बन्धमें—

(1) On certain Arithmetic functions (Transaction of the Cambridge Philosophical Society, 22, No. 9 (1916).

(२) त्रिकोणमितीय योगफल और उनका अङ्कसिद्धात्मक प्रयोग।

(2) On certain Trigonometrical sums & their application in the Theory of numbers (Transactions of the Cambridge Philosophical Society, 22, No. 13 (1918).

प्रोफेसर हार्डी का कहना है कि श्री० रामानुजन की पूर्ण प्रतिभा भाग-मीमांसाका दीर्घवृत्तात्मक-फलसे सम्बन्ध तथा संलग्नभिन्न (Theory of partitions and the allied parts of the theory of elliptic functions and continued fractions) में ही देखनेमें आती हैं। इस विषयमें इनके लेख ये हैं:—

(१) न के भागमानोंके कुछ गुण—

(1) Some properties of p (n), the number of partitions of n (Proceedings of the Cambridge Philosophical society 19 (1919)

(२) एकादि भेद-विश्लेषण सम्बन्धी सरूपताओं का साधन।

(2) Proof of certain identities in combinatory analysis (Proceeding of the Cambridge Philosophical Society 19 (1919)

इस लेखमें इनका निम्नलिखित फार्मूला बहुत ही चित्ताकर्षक समझा जाता है।

$$\text{भ}(४) + \text{भ}(९)\,\text{य} + \text{भ}(१४)\,\text{य}^२ + \ldots = ५\,\frac{\{(१-\text{य}^५)(१-\text{य}^{१०})(१-\text{य}^{१५})\ldots\}^५}{\{(१-\text{य})(१-\text{य}^२)(१-\text{य}^३)\ldots\}^६}$$

जहां भ (न), न के भाग—मानों की संख्या है।

श्रीयुत रामानुजने अपसृत-श्रेणियों के नये सिद्धान्त का जन्म दिया और उसे बहुत उन्नत किया। इस सिद्धान्तके अनुसार १+२+३+... आदिका योग

फल ११ है। भारतमें उन्होंने ज—फलके शून्यों को वास्तविक मान लिया था परन्तु वह गलत है इसीलिये उनको रूढ़-संख्याओंकी मीमांसा भी ग़लत है।

इनके खोजकी विलक्षणताका ज़िक्र करते हुए हार्डी सा० कहते हैं:—"श्री रामानुजनकी खोज किस ढङ्ग की हुई, किस आदर्श को सामने रख कर इनके कामको आलोचनाकी जाय अथवा इनकी कलाका महत्व भविष्यमें गणितशास्त्रके ऊपर किस प्रकार पड़ेगा, इन सब बातोंमें मतभेद हो सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि इनकी खोज इतनी सरल और स्पष्ट नहीं है जितनी होनी चाहिये। इसमेंभी सन्देह नहीं कि यदि इनका काम एक निराले ही ढंगका न होता तो उसका महत्व और भी अधिक होता। परन्तु इन सब त्रुटियोंके होते हुए भी इनके काममें एक बड़ी भारी विशेषता है। वह यह कि इनकी खोज में अभेद और अखंड मौलिकता देखने को मिलती है। यदि विद्यार्थी अवस्थासे ये कूट पीट कर आधुनिक नियम और शैलीके अनुसार आगे बढ़ाये जाते तो इतना जरूर है कि गणित संसारमें इनका स्थान अभी जो है, उससे कहीं ऊंचा होता और इनकी खोज अभी जैसी है। उससे कहीं महत्व पूर्ण होती परन्तु ऐसी हालतमें रामानुजन रामानुजनका सब अस्तित्व खो बैठते और निरे यूरोपियन प्रोफेसर रह जाते। और इस परिवर्तन से गणित संसारको लाभ के बनिस्बत हानि ही अधिक होती।"

श्री० रामानुजनके प्रयत्नसे खोजके लिये बहुतेरे मार्ग खुल गये हैं। इण्डियन मेथेमिटक्ल सोसाइटीके पत्रमें इन्होंने लगभग ६० प्रश्न दिये थे जिनमें से २० अभी तक हल नहीं हो सके हैं। नीचे हम इन २० प्रश्नोंमेंसे कुछ उद्धृत करते हैं और हल किये हुए प्रश्नोंके कुछ नतीजे भी देते हैं:—

सिद्ध करो कि

$$(अ)\quad \frac{१}{इ^{२\pi}-१}+\frac{२}{इ^{४\pi}-१}+\frac{३}{इ^{६\pi}-१}+\cdots$$

$$=\frac{१}{२४}-\frac{१}{८\pi}$$

$$(ब)\quad \int_{0}^{\infty}\frac{ज्या\ न\ य\ ता\ य}{य+\frac{१}{य+}\frac{२}{य+}\frac{३}{य+}}$$

$$=\frac{\sqrt{\frac{\pi}{२}}}{य+\frac{१}{य+}\frac{२}{य+}\frac{३}{य+}}$$

$$(स)\quad \left(७\sqrt[३]{२०}-१९\right)^{\frac{१}{६}}=\sqrt[३]{\frac{५}{३}}-\sqrt[३]{\frac{२}{३}}$$

उनके कुछ प्रसिद्ध सिद्धान्त ये हैं:—

$$(१)\quad \sqrt{(१+२\sqrt{\{१+३\sqrt{१+\ldots}\}})}=३$$

$$(२)\quad \int_{0}^{\infty}\frac{कोज्या\ २\ नयताय}{कोहज्या\ \pi\ य}=\frac{१}{२\ कोहज्यान}$$

$$(३)\quad \int_{0}^{\infty} इ^{-य^२}\ कोज्या\ २\ न\ य\ ताय$$

$$=\frac{१}{२}\sqrt{\pi}\ इ^{-न^२}$$

$$(४)\quad \frac{१}{१}+\frac{इ^{-२\pi}}{१+}\frac{इ^{-४\pi}}{१+}\frac{इ^{-६\pi}}{१}\cdots+$$

$$=\left(\sqrt{\frac{५+\sqrt{५}}{२}}-\frac{\sqrt{५}+१}{२}\right)$$

$$(५)\quad १-५\left(\frac{१}{२}\right)^{३}+९\left(\frac{१\times३}{२\times४}\right)^{३}-\cdots=\frac{२}{\pi}$$

अन्तमें हम श्री० जी० एच० हार्डी, श्री० पी० वी० सेशु ऐयर और श्री० वी० एम० विल्सनको हार्दिक बधाई देते हैं। इन सज्जनोंके परिश्रमसे श्री० रामानुजनके पूर्व प्रकाशित लेख पुस्तकाकार प्रकाशित हो गये हैं। प्रकाशनमें मद्रास विश्वविद्यालय, रायल सोसाइटी और ट्रिनिटी कालेज कैम्ब्रिजने आर्थिक सहायता पहुँचाई है। अतएव ये सब भी हमारे धन्यवादके पात्र हैं। पुस्तक यूनीवर्सिटी प्रेस कैम्ब्रिजमें छपी है। मूल्य तीस शिलिङ्ग है। गणितशास्त्रमें रुचि

रखने वाले प्रत्येक सज्जनके लिये पुस्तक काम ही की नहीं वरन अनिवार्य है।

श्री० रामनुजनके बहुतसे लेख अब भी अप्रकाशित हैं। खास कर वे नोट बुक जिनमें उनके विलायत जानेके पहलेका बहुत सा काम अङ्कित है अब भी जैसीकी वैसी है रखी हैं। क्या हम यह आशा करें कि इस महापुरुषकी स्मृतिके सन्मानके लिये हमारे भारतीय धनी भाइयों व संस्थाओंमें से कोई आगे बढ़कर उनका प्रकाशन करेंगे और अपनी गुणग्राहकताका परिचय देते हुए गणित संसारकी कृतज्ञता तथा धन्यवादके भी पात्र बनेंगे।

वह तारा कितनी दूर है ?*

[ले० श्री० डा० गोरखप्रसाद जी, डी० एस-सी०]

वह तारा कितनी दूर है, क्या यह प्रश्न भी आपके मनमें कभी उत्पन्न हुआ है? सम्भव है हुआ हो। कदाचित् आपने कहीं पढ़ा भी होगा कि अमुक तारे की दूरी इतने खरब, इतने अरब मीलसे भी अधिक है। परन्तु क्या आपने इस पर भी विचार किया है कि यह दूरी नापी कैसे गई?

यह सुन कर कि प्रकाशको भी, जिसे १ लाख ८६ हजार मील चलनेमें केवल एक सेकेण्ड लगता है, निकटतम तारेसे भी यहां तक आने में ३ वर्ष से अधिक समय लग जाता है, एक बार आश्चर्य अवश्य होता है; परन्तु किस प्रकार वह दूरी नापी गई यह और भी आश्चर्यजनक है।

वह तारा कितनी दूर है यदि इस प्रश्नके उत्तरमें मैं १ घण्टे तक आपको १ हजार ताराओं की दूरी बतलाता रहूं,

ग्रूमब्रिज नम्बर ३४—६ पदुम ९० खरब मील,
ईटा कैसोपिया— ९ पदुम ८० खरब,
टा सेटी— ६ पदुम ५ खरब,
ऐल्फा सेन्टारी— २ पदुम ४० खरब,

इत्यादि इत्यादि, और यदि इस हालके दरवाजे बन्द करा दूं ताकि आप लोग चुपकेसे खिसक न सकें, तो व्याख्यानके अन्त तक आप मुझे क्या गालियां देने न लगेंगे।

डरिये नहीं, मैं आपको सब ताराओंकी दूरी बतलाने नहीं आया हूँ। मैं बहुत ही सरल रीतिसे यह बतलाना चाहता हूँ कि ये दूरियां नापी कैसे गयीं।

आपने सुना होगा कि कुछ लोग चन्द्रमा तक सदेह जानेकी तैयारियां कर रहे हैं। बात कोई नई नहीं है। पुराने साहित्यमें भी ऐसी कल्पनाओं का जिक्र है। इससे यह न समझ लीजिये कि ज्योतिषी लोग इसी प्रकारकी सैर किया करते हैं। यदि हवाई जहाज पर बैठ कर आप सबसे पास ही वाले तारे तक जाना चाहें, और ढाई सौ मील प्रति घण्टेके हिसाबसे बराबर चलते रहें, तो भी वहां तक पहुंचनेमें आपको १ करोड़ वर्षसे अधिक लग जायँगें, बिना अमृत पिये काम ही न चलेगा।

ताराओं तक पहुंच कर उनकी दूरी नापने की बात ही क्या, पहले पृथ्वी ही की बात कीजिये। यहीं कई एक स्थान ऐसे हैं जहां हम नहीं पहुँच सकते और यदि पहुँच सकते हैं, तो भी वहां तक जाने की तकलीफ़ उठाना नहीं चाहते। एक साधारण उदाहरण लीजिये। आप मुझे देखते हैं। यदि मैं पूछूँ कि मैं आप से कितनी दूर हूँ तो आप बैठे ही बैठे बता सकेंगे कि मुझमें

---

* विज्ञान परिषद् के वार्षिक अधिवेशनमें यह व्याख्यान श्री डा० गोरख प्रसादजीने दिया था। इसके समझानेके लिये २५ स्लाइड दिखलाये गये थे और लगभग ३० चित्र श्यामपट पर खींचे गये थे।

—सम्पादक

और आपके बीचमें १०, या २०, या ३०, फुटकी दूरी होगी। पर क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि आपने यह कैसे जाना? दूरीका अन्दाज़ा लगाना सरल है, परन्तु यह बतलाना कि कैसे अन्दाज़ा लगाया उतना सरल नहीं है। यदि आप न जानते हों तो मुझसे सुनिये। दूरीके अन्दाज़ा लगानेमें मुख्यतः चार बातों से सहायता मिलती है। आकार अर्थात् डील डौल एक, दृष्यमें विषयकी स्थिति या पर्स्पेक्टिव (perspective) दो, आँखोंके नसों पर ज़ोर पड़ना या (strain of accommodation) तीन और चौथा परमेश्वर की कृपा से हम सबों को दो आँखोंका रहना।

चित्र १

चित्र १ को देखिये। क्या इसे देखतेही हम यह नहीं कह सकते हैं कि यह आदमी जो पुस्तक पढ़ रहा है, औरोंसे बहुत नज़दीक है? निस्सन्देह, हम ऐसा कह सकते हैं। एक तो औरोंकी अपेक्षा इस पुरुषकी डीलडौल और फिर चित्रमें इसके पैरोंकी स्थिति हमें यह बतलाते हैं कि यह मनुष्य औरों की अपेक्षा हमारे बहुत समीप है। यह चित्र डील डौल और पर्स्पेक्टिव (perspective) समझानेके लिये दिखलाया गया है, परन्तु इन दोनों बातोंसे दूरीका अन्दाज़ा लगानेमें धोखा हो सकता है। इस नये चित्रमें आप उसी पुराने चित्रको देखते हैं, पर साथ साथ यह भी आप देखरहे हैं कि पहला चित्र वास्तविक मनुष्यों का न था। वह चित्र कुछ काठके खिलौनोंका था जो बड़े दिन के त्यौहारमें क्रिसमस वृक्षमें लटकाये गये थे। इनके पैर पृथ्वी पर न थे, इससे

चित्र २

पर्स्पेक्टिवके नियमानुसार शुद्ध फल न निकला। इनकी वास्तविक डील डौल एकसा न थी। इसलिये इनके आकारसे हम इनके दूरीका पता ठीक न लगा सके। अब हम देखते हैं ये तीनों प्रायः एक ही दूरी पर हैं।

अब रही आँखके नसों पर बल पड़ना। आप लोगों ने फ़ोटोका कैमेरा देखा होगा, या कमसे कम आपने किसी फ़ोटोग्राफ़रको फ़ोटो लेते देखा होगा। आपने सुना होगा कि वह फ़ोकस (focus) कर रहा है। बात यह है कि फ़ोटो लेनेके लिये फ़ोटोके प्लेटको लेन्ज़ (ताल) से एक विशेष दूरी पर रखना होता है और यह दूरी उस वस्तुकी दूरी पर निर्भर है जिसका हम फ़ोटो खींचते हैं। फ़ोकस करनेके सुभीते के लियेकुछ कैमेरोंमें एक फ़ोकस-मापक लगा रहता है ३ फुट, ५ फुट, १० फुट, १५ फुट और अनन्त दूरी के लिये चिह्न लगे रहते हैं। यदि जिस विषयका हम फ़ोटो ले रहे हों वह १५ फुटसे भी अधिक दूर हो,

जैसे कि ३० या ५० फुट पर हो, तो हम लेन्जको "अनन्त-दूरी" चिन्ह (infinity mark) पर रक्खेंगे ठीक इसी प्रकार आँखको विषय की दूरीके हिसाबसे अपने को ठीक करना पड़ता है। समीपके विषयों को स्पष्ट देखनेके लिये आँखकी नसोंको आँखके भीतरजो लेन्ज है उसे और भी उन्नतोदर अर्थात् (convergent) बनाना पड़ता है। इससे आँखको पता चल जाता है कि विषय कितनी दूरी पर है। परन्तु आँखको भी पहिले दिखलाये गये कैमेरेकी भांति १५ या २० फुट से अधिक दूर की सभी वस्तुयें एक साथ ही स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। इसलिये १५ फुटसे अधिक दूरकी वस्तुओं की दूरी जाननेमें आँखोंकी नसों पर कम या अधिक जोर पड़नेसे कुछ सहायता नहीं मिलती।

चौथी बात बड़े महत्त्व की है। हमें दो आँख हैं और दोनोंसे हम साथ ही देखते हैं। प्रत्येक आँखसे एक भिन्न ही दृश्य दिखलाई पड़ता है। स्टिरियस्कोप (stereoscope) में, जिसे लोग साधारणतः सैरबीन कहते हैं, दो चित्र एक साथ ही देखे जाते हैं। इसमें ऐसा प्रबन्ध है कि प्रत्येक आँख एक उसी प्रकारका चित्र सैरबीन द्वारा देखती है जैसा वह यदि दर्शक वास्तविक दृश्यके सामने होता तो देखती। इसका चित्र ऐसे कैमेरे से लिया जाता है जिसमें दो लेन्ज रहते हैं। इन दोनों लेन्जोंके बीच में उतना ही अन्तर रहता है जितना आँखोंके बीच में। इस प्रकारसे लिये फ़ोटोको जब सैरबीन द्वारा हम देखते हैं तो पूरा उभारदार दृश्य दिखलाई पड़ता है। जान पड़ता है जैसे हम असली ही दृश्यको देख रहे हैं। देखिये एक सैरबीनमें लगानेका यह चित्र (चित्र ३) है। बांये आँखसे देखनेके लिये बांया चित्र है और दाहिनेके लिये दांया। इस बत्तकको ध्यान पूर्वक देखिये। एक चित्रमें यह मनुष्यके ठीक पीछे है, परन्तु दूसरे चित्रमें यह कुछ हटा हुआ दिखलाई पड़ता है। इसको हम इस नक़शेसे समझा सकते हैं।

क, ख, दर्शकके आँख हैं। ग आदमी है और घ बत्तक। क से आदमी और बत्तक एक सीधमें हैं। ख से नहीं है। साथ ही यह भी देखिये कि जब हम मनुष्यको देखते हैं तो एक आँख क ग दिशामें देखती है और दूसरी ख ग। इन दोनोंमें क ग ख कोण बनता है। यदि हम बत्तककी ओर देखते हैं तो यह कोण कम हो जाता है। इस कोण के घटने बढ़नेका सन्देशा, अर्थात् हमारे आखोंके कम या अधिक घूमने का पता, हमारे मस्तिष्कको लगा करता है, जिससे उसे दूरी का ज्ञान हुआ करता है। साथ ही दोनों आंखोंमें एकसा दृश्य न दिखलाई देनेके कारण जब हम किसी एक वस्तु को ध्यानसे देखते हैं, तो उससे कम और अधिक दूरीकी वस्तु स्पष्ट नहीं दिखलाई देतीं। इस बात का समर्थन आप स्वयं प्रयोग करके देख सकते हैं।

चित्र ४

यदि हम सबको साइक्लोप्स (cyclops) जाति के दानवोंकी तरह एक ही आंख होती तो हमको वस्तुओंकी दूरीका पता लगानेमें बड़ी कठिनाई होती। कदाचित् एक दूसरेसे रोज ही टकराया करते। यदि आप को इस कथन पर कि दो आँखोंसे दूरी जाननेमें विशेष सुविधा है विश्वास न हो तो आप एक आंख बन्द कर लीजिये, और आंख के सामने लगभग २४ इञ्चकी दूरी पर एक पुस्तक रख लीजिये। फिर बाईं हाथकी अँगुलीको पुस्तकके सामने आँखसे लगभग १८ इंच पर और पुस्तकसे ६ इंच पर रखिये। एक आँख बन्द किये ही दूसरी अंगुली को पहलीके पास ३ या ४ इंच पर रखिये। दोनों अंगुलियोंके बीच की दूरी ३ इंच से कम न होने पावे। दाहने हाथ की अंगुली को आँखसे उतनीही दूर न रखिये, जितनी दूर दूसरी अँगुली है; उसे कुछ कम ही दूर पर रखिये, जैसे ½ इञ्च कम। आप देखेंगे कि एक आँखसे देखनेके कारण आप ठीक ठीक यह नहीं बता सकते कि दाहिनी अँगुली बाईंसे कितनी नजदीक है। आपको इसका भी पता चलेगा कि आप पुस्तक और दोनों अँगुलियोंको एक

साथही स्पष्ट देख सकते हैं। अब दूसरी आँखको भी खोल दीजिये। आपको तुरन्त पता चल जायगा कि दाहिनी अँगुली कितनी नजदीक है और यह भी आप देखेंगे कि जब अँगुली साफ़ दिखलाई पड़ती है तब पुस्तक स्पष्ट नहीं है और जब पुस्तक स्पष्ट है तब अँगुली नहीं है।

अब ताराओंकी दूरीको लीजिये। ताराओंमें कोई बहुत चमकीले और कोई कोई इतने फीके हैं कि वे बड़ीसे बड़ी दूरबीनमें नहीं दिखलाई देते। जैसे बड़े आकारसे हम समझ जाते हैं कि वह वस्तु हमसे बहुत दूर नहीं है, वैसेही क्या हम यह समझ सकते हैं कि सब चमकीले तारे हमसे औरोंकी अपेक्षा अत्यन्त निकट हैं? हो सकता है यह ठीक हो, बहुत सम्भव है कि यह ठीक है, परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि प्रत्येक तारा जो फीका है वह हमसे बहुत दूर है। कुछ फीके तारे तो हमारे बहुत नजदीक हैं जैसा हमको अभी मालूम हो जायगा। इस प्रकार हम ताराओंकी व्यक्तिगत दूरीके लिये उनकी चमक पर विश्वास नहीं कर सकते। दूसरी बात थी परपेक्टिव, परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि यह ताराओंके विषयमें साधारणतः लागू नहीं है। रहा फ़ोकसका विषय, उससेभी कुछ सहायता नहीं मिलती, क्योंकि ग्रह और तारायें सभी इतनी दूर हैं कि यदि चन्द्रमा फ़ोकसमें है तो ताराभी फ़ोकसमें मिलेगा।

परन्तु अन्तिम पहचान बड़े महत्वका है। हमारी दो आँखें तो ताराओंकी दूरी नापनेमें समर्थ नहीं हैं परन्तु हाँ, यदि एक दूरबीन ख़ूब उत्तरकी ओर और एक ख़ूब दक्षिणकी ओर लगाये जायं तो इन दोनोंसे वेध करने पर चन्द्रमाकी दूरी निकल आयेगी और चन्द्रमाकी दूरी इसी तरह निकाली ही गई है। क्षेत्रमापक, (surveyor), भी तो इसी रीतिसे दूरस्थ विन्दुकी दूरी नापता है। वह दो स्थानोंके बीचकी दूरीको नाप लेता है और दोनों स्थानसे दूरस्थ विन्दुकी दिशाका ज्ञान कर लेता है। अब एक त्रिभुजके दो कोण और एक भुज मालूम हैं। इसलिये बाकी भुजाओंका नाप सरलतासे निकल आता है। यदि यही तरीका ताराओंकी दूरी नापनेके लिये प्रयोग किया जाय तो दोनों कोण लगभग बराबर आते हैं। दोनोंके नापनेमें कुछ न कुछ गलती हो ही जाती है। इसलिये ताराओंकी दूरी कभी बहुत कम, कभी अनन्त और कभी ऋण निकलता है। जैसे मान लीजिये कि तारेकी वास्तविक दूरी ५६ खरब मील है और आपके दोनों दूरबीन ८००० मीलके दूरी पर हैं, अर्थात् एक दुनियाके एक सिरे पर है तो दूसरा दूसरे सिरे पर। इससे दूर आप जा ही नहीं सकते। यदि पैमानेके हिसाबसे नक्शा खींचा जाय और दोनों दूरबीनोंके बीचकी दूरी $\frac{1}{10}$ इंच मान ली जाय तो तारेकी दूरी इस नक्शेमें

$$\frac{५६,००,००,००,००,०००}{८००० \times १०} \text{ इञ्च}$$

की हुई। १ मील में १७६० × ३६ इञ्च=६३,३६० इञ्च होते हैं। इसलिये नक्शेमें तारे की दूरी $\frac{५६००००००००००००}{८०००\times१०\times६३३६०}$ या १००० मीलसे अधिक होगी मान लीजिये कि त्रिभुजका एक कोण ९० अंशके बराबर है और इसके नापनेमें कुछ भी भूल नहीं हुई है। अब यदि कहीं दूसरा कोण $\frac{1}{10}$ विकला कम नप गया तो दूरी नकशेमें १००० मीलके बदले केवल १½ मील ही रह जायगी। यदि कहीं यह कोण $\frac{1}{10}$ विकला अधिक नप गया तो ये भुजायें तारेकी ओर न मिल कर दूसरी ओर जा मिलेंगी! इसलिये इस रीतिसे कुछ भी आशा तब तक नहीं की जा सकती जब तक हमें दूरबीनोंको लगानेके लिये और बड़ा मैदान न मिल जाय।

पहले तो लोग पृथ्वीको ही अचल मानते थे, पर जबसे कोपरनिकसने यह बतलाया कि पृथ्वी सूर्यके चारो ओर घूमती है तब लोगोंने देखा कि पृथ्वीके चलनेके कारण ताराओंमें एक दूसरेके हिसाबसे गति होगी। इस गतिको हम "लम्बन" कहेंगे।

मान लीजिये कि सू सूर्य है पृ पृथ्वी है और दीर्घ वृत्त ख व पृथ्वीका मार्ग है। क से तारा क ता दिशामें दिखलाई पड़ेगा और ख से ख ता दिशामें। स्पष्ट

चित्र १०

चित्र ६
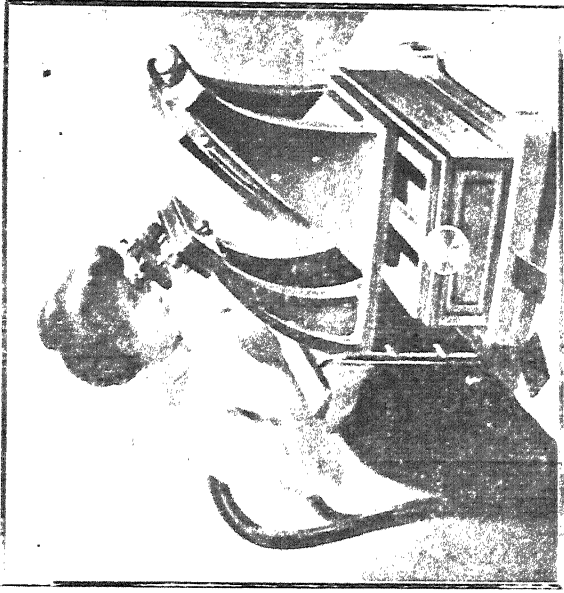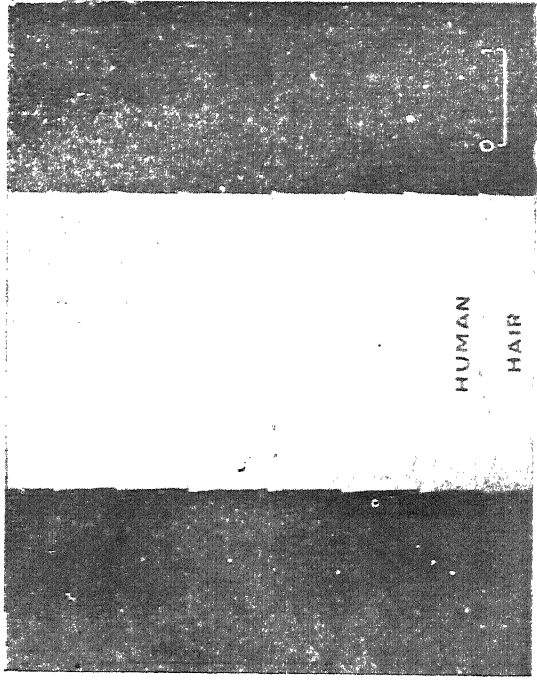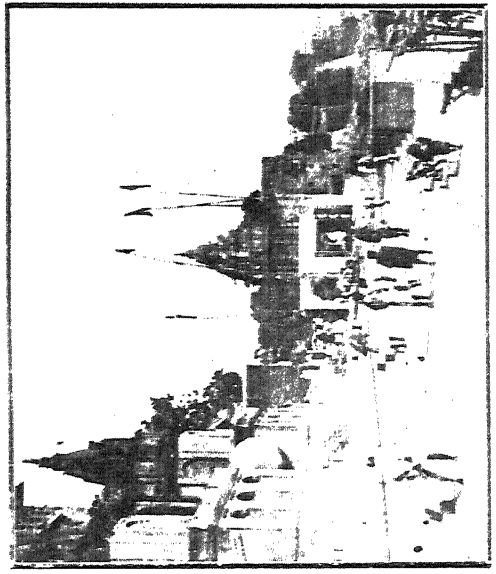
चित्र ३
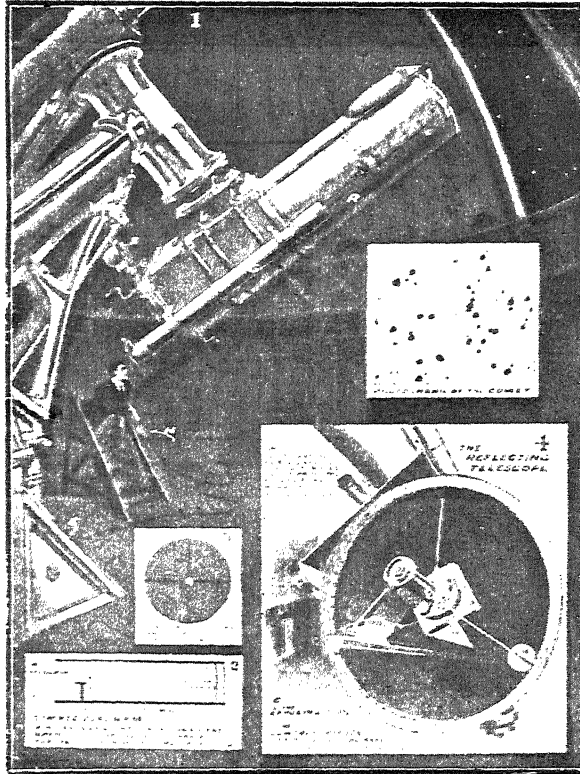
चित्र ८

है कि यह तारा दूरके ताराओंकी हिसाबसे एक दीर्घवृत्त (ellipse) में चलता हुआ दिखलाई पड़ेगा।

चित्र ५

टाइको ब्राही (Tycho Brahe) ऐसे नामी ज्योतिषी ने कहा कि हमको तारे चलायमान नहीं दिखलाई पड़ते, इसलिये पृथ्वी अवश्य स्थिर है। परन्तु धीरे धीरे लोगोंका विश्वास दृढ़ हो गया कि पृथ्वी स्थिर नहीं है। तब लोग ताराओंकी दूरी नापनेके लिये नये उत्साहसे उद्योग करने लगे। पिकार्ड (Picard) ने १७वीं शताब्दीके उत्तरार्ध में यह सिद्ध कर दिया कि ध्रुव ताराकी कान्तिमें ४० विकला का अन्तर प्रति वर्ष पड़ता है। अर्थात् यदि ता ध्रुव तारा है और ना वृ नाड़ीवृत्त (equator) है और ता क ध्रुवतारासे नाड़ी वृत्त पर लम्ब गिराया गया है और यदि म ध्रुवतारे का मध्यम स्थान है तो ध्रुव तारा म से २० विकला कभी क की ओर, और २० विकला कभी इसकी विपरीत दिशा, में हटा हुआ दिखलाई पड़ता है। यदि यह अन्तर पृथ्वीके चलाय मान होनेके कारण,

चित्र ६

अर्थात् लम्बनके कारण, पड़ता, तब तो ध्रुव तारा हम लोगोंके बहुत समीप ही निकलता। परन्तु बात यह नहीं है। इसका सबूत जेम्स ब्रैडलीने दिया। इस ज्योतिषी ने अपने खमध्यसे एक तारेकी, जिसका नाम गामड्रैकोनिस (Draconis) है, दूरी साल भर तक नापता रहा। उसने देखा कि इस तारे की खमध्य से दूरी घटती बढ़ती अवश्य है परन्तु यदि यह घटना बढ़ना लम्बनके कारण होता तो तारा सबसे अधिक दक्षिण दिसम्बर में होता, परन्तु वेध करनेसे दिखलाई पड़ा कि यह तारा सबसे अधिक दक्षिण मार्च में होता है। सोचते सोचते ब्रैडलीने असली कारण का पता लगा लिया जिसको हम यों समझा सकते हैं:—जब हम पानीमें छाता लगा कर खड़े होते हैं और बूंदे सीधी गिरती हैं तब हम छाता सीधा रखते हैं। पर जब हम चलने लगते हैं तब छातेको तिरछा करना पड़ता है, क्योंकि तब हमको बौछार तिरछी आती मालूम होती है। इसी प्रकार यदि पृथ्वी अचल होती तो तारेको देखनेके लिये दूरबीन एक विशेष दिशामें लगानी पड़ती, पर क्योंकि पृथ्वी चल रही है, दूरबीन तिरछा लगाना पड़ता है। परन्तु पृथ्वी एक वृत्तमें घूमती है। इसलिये कभी उत्तर जाती है तो कभी दक्षिण और इसलिये कभी दूरबीनको एक ओर और कभी दूसरी ओर झुकाना पड़ता है। इसलिये तारा चलायमान जान पड़ता है।

चले थे खोजने लम्बन। हाथ लगी एक नई बात, भूचलन संस्कार (aberration)।

इसके लगभग ५० वर्ष बाद मिस्टर (और पीछे सर विलियम) हरशेल (Herschell) ने लम्बन नापने का एक नया तरीका बतलाया। इस तरीकेको समझने के लिये हम एक बहुत साधारण उदाहरण पर पहले विचार करेंगे। मान लीजिये एक रेल की पटरी १ मील लम्बी है। एक किनारा स्थिर है और हम यह नापना चाहते हैं कि पहले किनारेसे दूसरे किनारे की दूरी किस प्रकार घटती बढ़ती है। यदि हमारे पास केवल एक तीन फुटका गज है तो १ मील की दूरी नापनेमें कभी कम और कभी अधिक त्रुटि रह जाया करेगी। बार बार नापने पर और औसत निकालने पर हमको शायद पता लगे कि जाड़के दिनोंमें यह दूरी १·२०३ मील है। मान लीजिये कि यदि एक बारका नाप १·२०४ मील है तो इसके और औसतके बीच अन्तर ·००१ मील हुआ। यदि दूसरी बार का नाप १·२०० मील था तो इस बारका अन्तर ·००३ मील हुआ। इसी प्रकार हम सब अन्तरोंकी गणना कर डालें और उनका औसत निकाल लें तो मान लजिये कि फल ·००१ मील निकलेगा। ऐसी दशामें हम रेलकी पटरीकी लम्बाई यों लिख सकते हैं।

$$१·२०३ \pm ·००१ \text{ मील}$$

[यद्यपि इसकी विशेष आवश्यकता यहाँ पर नहीं है तिसपर भी मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि साधारणतः मध्यम त्रुटि को .८४५ से गुणा करने पर जो आता है उसे, और न कि मध्यम त्रुटि को धन ऋण (±) चिह्न के बाद रखते हैं]

यदि गरमी के दिनोंमें यह दूरी

१·२०३४±·००१ मील

निकले तो क्या हम शर्तिया कह सकते हैं कि पटरी अब ·० ०४ मील बढ़ गई ? नहीं, क्योंकि यद्यपि १·२०३ मील और १·२०३४ मील में ·०००४ मीलका अन्तर अवश्य है तिसपर भी इसका सम्भव त्रुटि (probable error) ·००१ मील से अधिक है। इस प्रकारका फल वैसा ही है जैसे कोई पूछे कि भई यहांसे सेनेट हाल कितनी दूर और किस ओर है, तो आप उत्तर दें सिनेटहाल यहांसे शायद २ फरलांग पर है और शायद उत्तर की ओर है; पर हम ठीक नहीं कह सकते; शायद यह दक्षिण ही की ओर दो तीन फरलाँग पर हो, या शायद उत्तर ही हो पर ६ या सात फरलाँग पर हो।

पर यदि आप रेलके पटरीकी लम्बाईको न नाप कर दूसरे सिरेके पास एक कील गाड़ देते, और दूसरे सिरेकी दूरी इस कीलसे नापते तो इतनी दुविधा न रह जाती। आप तुरन्त जान लेते कि यह सिरा २५ इञ्च हट गया और शायद इस नापमें १ या २ इञ्च से अधिक का अन्तर नहीं पड़ा होगा।

हरशेल ने ठीक इसी प्रकार बतलाया कि किसी एक तारेका स्थान ध्रुव या खमध्यसे नापना कठिन है परन्तु यदि हम उस तारेकी दूरी पासवाले फीके ताराओं की सहायतासे नापें तो शुद्ध लम्बनका निकालना सरल हो जायगा। यदि क वह तारा है जिसकी दूरी हम निकालना चाहते हैं और ख खमध्य है, तो क ख के नापनेमें वर्तन (refraction), अयनांश (precession और nutation),

चित्र ७
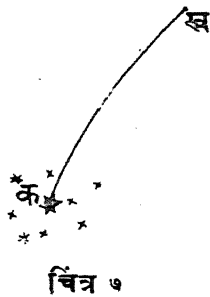
और भूचलन संस्कार aberration) सभी विघ्न डालते हैं। हवाके वर्तनसे तारा क्षितिजसे उठा हुआ देख पड़ता है [illegible] पातके कारण [illegible] का पैदा ऊपर उठा दिखलाई पड़ता है। अयनांश के कारण ध्रुवसे ताराओंकी दूरी घटती बढ़ती रहती है और भूचलनका फल तो हम देख ही चुके हैं। पर यदि हम तारा क की दूरी खमध्य या ध्रुवसे न नाप कर इसके पास के फीके ताराओंसे नापें तो ऊपर बतलाई गई एक भी कठिनाई नहीं पड़ती। हरशेल ने इस लिये पहले उन ताराओं की एक सूची बनाने का निश्चय किया जिसके समीप फीके तारे हैं। फीके ताराओं के चुननेसे यह प्रयोजन है कि साधारणतः वे चमकीले ताराओं से अधिक दूर होंगे (पर क्रिसमस वृक्ष वाली मूर्त्तियोंसे धोखा खाने की बात मत भूलियेगा)। दो ही महीनेमें हरशेलने पौने तीन सौ ताराओं की सूची बना ली और २० वर्ष तक इसी काम में लगे रहने पर भी यद्यपि हरशेल ने ताराओं की दूरी को न नाप पाया, तो भी उसने एक बहुत ही अनोखी नई बात का पता चलाया। वह यह कि बाज तारे दूसरों के इर्द गिर्द भ्रमण कर रहे हैं। फिर भी लम्बन हाथ न आया और एक नई ही बात मिली।

आज से कोई १०० वर्ष पहले इङ्गलैन्ड के राज-ज्योतिषी, पौण्ड (Pond) ने कहा थाः—

मुझे जान पड़ता है कि लम्बन का इतिहास यह है। हमारे यन्त्र जितने ही स्थूल बने थे उतना ही अधिक वे ज्योतिषियों को बहका देते थे कि ताराओं में नापने योग्य लम्बन है। इटली में इस प्रकार बड़े से बड़े ज्योतिषियों ने धोखा खाया। डबलिन (Dublin) का यन्त्र इनके यन्त्रों से बहुत बढ़िया है, इसी कारण इससे जितना लम्बन इटली के ज्योतिषी गण विश्वास करते हैं कि उन्होंने देखा है उससे कहीं कम लम्बन दिखलाई पड़ता है। इस बात पर विश्वास कर कि मैंने प्रमाणित कर दिया है कि ग्रिनिच का यन्त्र और भी अधिक दोष रहित है, मैं और किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकता सिवाय इसके कि यही कारण है जिसकी

वजह से इस यन्त्र से कुछ भी लम्बन नहीं दिखलाई पड़ता।

परन्तु इस कथन के १५ वर्ष भीतर ही और लगभग एक साथ ही सन १८३८—३९ के शरद ऋतु में स्ट्रूवे (Struve), बेसेल (Bessel) और हेन्डरसन (Henderson) ने क्रमसे अभिजित, न ६१ हंस और ऐल्फा सेन्टारीका लम्बन नापा। स्ट्रूवेने दूसरे ताराओं से अभिजित (Alpha Lyrae) की दूरी को ३ वर्ष में लगभग ६० भिन्न भिन्न रातों में नापा। उसने माईक्रोमीटर (micrometer) का प्रयोग किया था और उसने यह प्रमाणित कर दिया कि इसका लम्बन

$$0''.262 \pm 0''.025$$

है, अर्थात् यदि क पृ ख पृथ्वी की कक्षा है (चित्र ५ देखिये) और ता तारा है तो कोण क ता ख का आधा .२६२ विकला है और इस नाप में ०''.०२५ विकला से अधिक त्रुटि होने की सम्भावना बहुत कम है। लम्बन जानते ही ताराओं की दूरी हम जान जाते हैं। अरब खरब मीलोंमें दूरी बतलाने से यही सुगम है कि लम्बनकी बातकी जाय। इसलिये हम लम्बन निकल आने पर ही रुक जाया करेंगे। स्ट्रूवे, बेसेल और हेन्डरसन के बाद कई एक ताराओंकी दूरी नापी गई। कई एक ताराओं की दूरी ऋण निकलती थी। इसके यह माने नहीं हैं कि वह तारा है on the otherside of nowhere जैसा किसी ने एक बार कहा था। उसका मतलब यह है कि लम्बन उस तारे का बहुत कम है और त्रुटि उससे अधिक और ऋण है। यदि किसी तारे का असली लम्बन ०''.००४ है और कभी त्रुटि +.०१ हो गयी तो लम्बन निकलेगा ०''.०१४; कभी त्रुटि —.०१ हो गयी तो लम्बन निकलेगा −०''.००६। पहले लोग लम्बन के ऋण निकलने पर उसको नहीं छापते थे और लम्बन धन (+ve) निकलने पर उसे अवश्य छापते थे। फल यह होता था कि ताराओं की औसत दूरी बहुत कम निकलती थी। पीछेसे जबसे लोग इन बातोंको अधिक समझने लगे तब से वे ऋण लम्बनोंका भी उसी सावधानीसे आदर करते थे जैसे धन लम्बनोंका। ताराओंकी दूरी इत्यादि के सम्बन्धमें सबसे अधिक खोज हौलैण्डके प्रसिद्ध ज्योतिषी कैप्टाइन (Kapteyn) ने किया, जो अभी हाल ही में मरे हैं। इन्होंने यह देखा कि दो चार ताराओं की दूरी जानने से नक्षत्र संसारके विषय में हम अधिक बात नहीं जान सकते, और हमसे यह भी नहीं बन पड़ता कि हम प्रत्येक तारेकी दूरीका पता लगावें। इसलिये उन्होंने अपने प्रसिद्ध प्लैन आफ सेलेक्टेड एरियाज़ (Plan of selected areas) का प्रचार किया। उन्होंने आकाशके १८ छोटे छोटे भागोंको चुन लिया और उन्हें कई एक बड़े वेधशालाओं के सिपुर्द किया कि इन भागोंमें जो तारे हों उनकी दूरी इत्यादिका पता लगावें। तभी से ताराओं की दूरी इत्यादि के विषयमें ज्योतिषियोंका उत्साह बहुत बढ़ गया है। इन दिनों ताराओंकी दूरी नापनेके लिये फोटोग्राफीका प्रयोग करते हैं। प्रोफेसर श्लेजङ्गर (Schlesinger) ने ही प्रत्येक ब्योरोंपर विशेष विचार कर फोटोग्राफीसे लम्बन नापनेकी रीति को बहुत सुगम और अत्यन्त शुद्धकर दिया। अब तो लम्बनके नापमें कम त्रुटि केवल .००५ विकला ही रहती है। जिस तारे का लम्बन नापना रहता है उसका फोटो उचित अवसर पर लेते हैं और फिर छः छः महीने बाद बारबार चार पांच वर्ष तक फोटो लेते हैं। इन फोटोग्रफोंके तुलनासे यह मालूम हो जाता है कि तारा का लम्बन और दूरी कितनी है।

आप जानते हैं कि तारे प्रति रात पूर्वकी ओर निकल कर पश्चिमकी ओर जाते हैं। आप यह भी जानते हैं कि फोटो लेने के लिये या तो क्षणिक प्रकाश-दर्शन देना चाहिये या विषय को स्थिर रखना चाहिये। फोटोग्राफर जब आपका चित्र उतारता है तो कहता है "रेडि प्लीज़" (ready please) और आप बड़ी शान से, स्थिर होकर, बैठ जाते हैं। ज्योतिषी फोटोग्राफर तो ताराओं को "रेडि प्लीज़" (ready please) का हुकम दे नहीं सकता। वह स्नैप शाट भी नहीं ले सकता क्योंकि ताराओं में काफी प्रकाश नहीं है। वह बिचारा क्या करे?

यदि आप साधारण कैमेरेको उत्तरी ध्रुव की ओर मुँह फेर कर रातके समय एक आध घंटे रखदें और तब देखें कि कैसा चित्र उतरा तो प्रत्येक तारा ध्रुवके चारों ओर चक्कर लगाता दिखलाई पड़ेगा। इसलिये ज्योतिषी अपने दूरबीनको स्थिर नहीं रखता। वह उसको इस प्रकार रखता है कि यह भी एक धुरीके चारों ओर घूम सके। इस धुरीको ध्रुव की दिशामें रखते हैं, इसलिये नक्षत्रके चलायमान होने का प्रतिकार केवल दूरबीन को इस धुरी पर घुमानेसे किया जा सकता है। एक घड़ीकी सहायतासे हम दूरबीनको इस प्रकार बगैर हाथसे छुये चला सकते हैं कि यदि कोई तारा इसमें इस समय दिखलाई देता हो तो २ घंटे बाद भी वही तारा दिखलाई देता रहेगा। परन्तु घड़ी घड़ी ही है। कितना ही इसे सूक्ष्म बनाइये इसकी चालमें अन्तर आ ही जाता है इसलिये साथ साथ ज्योतिषी भी एक दूसरी दूरबीनसे झाँकता रहता है (चित्र ८)। जरा भी आवश्यकता हुई तो वह एक खटके द्वारा बिजली भेज घड़ीकी चालको तुरन्त दुरुस्त कर देता है। कभी कभी इन फोटोग्राफोंके लेनेमें एक एकघंटेका प्रकाश-दर्शन (exposure) देना पड़ता है।

फोटो तैयार हो जाने पर इनको नापने वाली मशीनमें रखकर नापते है (चित्र ९)। इससे इंचके हजारवें हिस्सेको बड़ी सुगमतासे नाप सकते हैं। ऊपर हम बतला चुके हैं कि इनदिनों सम्भव-त्रुटि ·.१ विकला से कम रहती है। कदाचित आप इसका अनुमान न कर सकते होंगे कि यह कितनी सूक्ष्म मात्रा है परन्तु नीचे लिखी बात से आपको कुछ ज्ञान हो जायगा। आप जानते ही हैं कि फोटो लेनेमें जितना ही बड़े फोकल लम्बान (focal length) का लेन्ज लिया जायगा उतना ही बड़ा चित्र उतरेगा। यदि वेस्ट पाकेट कैमरामें किसी दो सितारों के बीचकी दूरी $\frac{1}{20}$ इंचके बराबर उतरे तो ३० इन्चके दूरबीनसे यह दूरी लगभग १ फुटकी उतरेगी। परन्तु इतने बड़े कैमरेसे भी, जिसके लेन्जका व्यास ३० इञ्च है, एक विकला बहुत ही कम स्थानमें आ जाता है। चित्र १० में मनुष्यका बाल है और उसी पैमाने पर एक विकला दिखलाया गया है। अब आप सोचिये कि एक विकलाका सवाँ भाग ($\frac{1}{100}$ विकला) नापना बालकी खाल खींचना नहीं है तो और क्या है ?

अब हमने देख लिया कि ताराओंकी दूरी किस प्रकार नापी जाती है। हमने यह भी देखा है कि पहलेके लोग इस सम्बन्धमें कई बार धोखा खा चुके हैं। कहीं हम भी तो धोखा नहीं खा रहे हैं? यदि ताराओंके दूरीका किसी और तरहसे समर्थन हो सकता तो क्या ही अच्छी बात होती। पर है कोई दूसरी रीति भी? उत्तर है, है।

जब हम रेलकी पटरियोंको देखते हैं जो बहुत दूर तक समानान्तर चली जाती हैं तो हमको ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक दूसरेसे सटती जारही हैं और कहीं जाकर मिल जायँगी। इसी प्रकार किसी भी चित्र में आप देखिये तो यही दिखलाई पड़ेगा। (चित्र ११) बनारसके एक घाटका चित्रहै। देखिये सीढ़ियां ऐसी दिखलाई पड़ती हैं कि वे कहीं जाकर एक दूसरेसे मिल जायँगी। इसी प्रकार यदि आपने चिड़ियोंको समानान्तर रेखाओंमें उड़ते हुये देखा होगा तो आपने यह अवश्य देखा होगा कि ऐसा जान पड़ता है कि उनका मार्ग किसी एक बिन्दुमें जा मिलेगा।

आकाशमें कुछ तारे ऐसे हैं जिनकी निजी गति एक ही बिन्दुकी ओर जान पड़ती है। (चित्र १२) ये तारे अवश्यसमानान्तर (Parallel) रेखाओंमें चलते होंगे। और क्योंकि वे अभी तक बहुत बिखरे हुये नहीं हैं और उनका जन्म कई करोड़ वर्ष पहले हुआ होगा, इसलिये हम देखते हैं कि वे एक ही गतिसे चलते होंगे। आपने सुना होगा कि डापलर (Doppler) के नियमानुसार यह निकालना कि कोई हमारी ओर किस वेगसे आरहा है बहुत कठिन नहीं है। (चित्र १३) समयके अभावसे हम इस बातको बिना आदिसे समझाये ही मान लेंगे। अब मान लीजिये कि न नक्षत्र है और यह क से देखने पर ख की ओर जाता हुआ

जान पड़ता है। नक्षत्र न ग दिशामें चलता होगा जहां न ग क र व के समानान्तर है। न घ दिशामें नक्षत्रके

चित्र १२

वेगका अंश मालूम है और कोण ग न घ भी मालूम है क्योंकि यह कोण ख क न के बराबर है। इसलिये नक्षत्रका न च दिशामें भी वेग तुरन्त मालूम हो जायगा। इस प्रकार न च दिशामें तारा १ वर्षमें कितने मील चलेगा यह मालूम हो जायगा। मान लीजिये कि तारा १ वर्षमें न से छ तक जाता है तो यह मालूम है कि न छ कितना
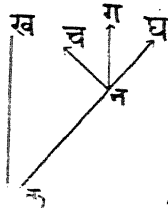
चित्र १३

मील है। तारेके निजी गतिसे यह भी मालूम है कि कोण न क छ कितना बड़ा है। इसलिये हम यह तुरन्त जान सकते हैं कि नक्षत्र हमसे कितनी दूर है। वृषराशिमें जिसका चित्र हम ऊपर दे चुके हैं, ३९ तारे एक ही बिन्दुकी ओर जाते दिखलाई पड़ते हैं।
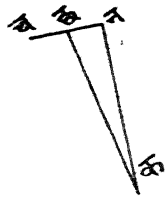
चित्र १४

ऊपरकी रीतिसे उनका मध्यम लम्बन निकला

०".०२५

फ़ोटोग्राफ़ीसे इनका लम्बन निकला है

०".०२३+०".००२५

आप देखते हैं दोनों रीतिसे एक ही दूरी मिली। इसलिये ज्योतिषी लोग समझते हैं कि अब कोई धोखा नहीं है।

अब ताराओंकी दूरी नापनेकी एक तीसरी रीति बतलाई जायगी। यदि श्वेत प्रकाशको एक शीशेकी कलमसे पार किया जाय तो जैसा आप जानते हैं प्रकाशका कई रंगोंमें विश्लेषण हो जायगा। यदि ताराओंके प्रकाशका विश्लेषण-चित्र खींचना होता है तो कलम (त्रिपार्श्वया prism) को दुरबीनके लेन्ज़ (objective) के सामने लगाते हैं। एक जातिके ताराओंके रश्मि-विश्लेषण-चित्रमें कई एक काली लकीरें उतर आती हैं। इनमें से यदि दो लकीरें चुन ली जाँय तो उनके घनत्व (density) में एक विशेष सम्बन्ध मिलता है। इस सम्बन्धको हम यों समझा सकते हैं। यदि सब ताराओंको हम पकड़ कर सूर्यके दूरीपर ला दें तो वे भिन्न भिन्न चमकके दिखलाई पड़ेंगे। कुछ तो बहुत ही चमकीले और कुछ बहुत कम चमकीले और शेष इन्हींके बीचमें रहेंगे। सूर्यके दूरीपर जो चमक किसी तारेका रहेगा उसको हम उस तारेकी वास्तविक चमक कहेंगे। जिन ताराओंकी दूरी हमको मालूम है उनका वास्तविक चमक हमें थोड़ी सी गणनासे सहजमें ज्ञात हो जाता है क्योंकि दूरी आधी हो जाने से प्रकाश चौगुना और दूरी तिहाई हो जानेसे प्रकाश नौ गुना बढ़ जाता है इत्यादि। अब जो माउण्ट विलसन (Mt. Wilson) के प्रसिद्ध ज्योतिषी ऐडम्स (Adams) ने जाँच की तो पता लगा कि तारेके वास्तविक चमकमें और उसके रश्मि-विश्लेषण चित्र (Spectrum) की दो रेखाओंके घनत्वके बीचमें ऐसा सम्बन्ध है कि वास्तविक प्रकाशका पता इन दो रेखाओंकी घनत्वसे तुरन्त लग जाता है। इसलिये ऐडम्सने रश्मि विश्लेषण चित्रसे लगभग १ हज़ार नक्षत्रोंके वास्तविक चमकका पता लगाया और फिर, क्योंकि इनका

प्रत्यक्ष चमक मालूम है उनकी दूरीका पता लगाया। इस रीतिसे दूसरोंने भी ताराओंकी दूरी नापी है और अब तक लगभग ढाई हजार ताराओंकी दूरी नापी गई है।

जो तारे इतने दूर हैं कि उनकी दूरी ऊपर की रीतिसे भी नहीं निकलती, उनकी दूरीका अंदाजा उनकी निजी गतिसे (proper motion) लगाया जाता है। यदि निजी गति कम है तो समझेंगे कि तारा बहुत दूर है, और यदि निजी गति अधिक है तो उस तारेको निकट समझेंगे। इतना तो स्पष्ट है कि इस प्रकारसे हम एक एक तारेकी दूरी ठीक ठीक नहीं बतला सकते, परन्तु हाँ दो चार सौ ताराओंकी औसत दूरी अवश्य इस रीतिसे ठीक ठीक बतला सकते हैं।

कुलका निचोड़ यह है कि हम ताराओंकी दूरी उसी सिद्धान्तके अनुसार निकालते हैं जिसकी सहायतासे हम प्रति दिन पृथ्वी परकी वस्तुओंकी दूरीका अन्दाज़ा लगाते हैं और जिसकी सहायतासे सरवेयर (Surveyor) अगम्य वस्तुओंकी दूरी नापता है। अन्तर इतना ही है कि हमारी आँखोंके बीच सिर्फ ४ इंचका फासला है, परन्तु ताराओंके देखनेके लिये दो आँखोंको १८ करोड़ मील पर रखना होता है। और फिर जब हम कई नये दूरीके ताराओंकी सहायतासे रश्मि विश्लेषण चित्रको पढ़ना सीख लेते हैं तब हम केवल इन चित्रसे ही ताराओंकी दूरी पढ़ सकते हैं। मैंने अब यह दिखला दिया कि ताराओंकी दूरी कैसे नापी जाती है। वे मनोरञ्जक बातें जो इन दूरियोंसे नक्षत्र संसारके विस्तार और बनावटके विषयमें मालूम होती हैं, खेद है, हम इस व्याख्यानमें नहीं बतला सकते। यहाँ अब केवल एक सच्ची घटनाका वर्णन कर इस व्याख्यनको समाप्त करेंगे जिससे ज्योतिष अध्ययन-महात्मका पता चलता है।

सन् १९१२ में जूनका महीना था जब सारे अमेरिकामें नये प्रेसीडेण्टके चुनावका आन्दोलन मचा हुआ था। उस समय लिक (Lick) वेधशालाके ज्योतिषीने दर्शकोंकोएक तारा-समूह दिखलाया जिसमें एक साथ ही ६ हजार तारा दिखलाई पड़ते हैं एक दर्शकने पूछा क्या कहा ? क्या सचमुच इनमेंसे प्रत्येक तारा एक सूर्य है। ज्योतिषीने कहा " जी हाँ "।

"और प्रत्येक सूर्यके साथ कई एक ग्रह हो सकते हैं ?" उत्तर मिला "जी हाँ"।

"और इन ग्रहोंमें प्राणी रह सकते हैं" ? फिर उत्तर मिला "जी हाँ"

दर्शकने गम्भीर भावसे कहा "तब हमें रत्ती भर भी फिकर नहीं है कि आगामी सप्ताहमें रूज़वेल्ट या टैफ्ट प्रेसीडेण्ट चुने जायँगे"।

हवा

[ले० श्री धर्मनाथ प्रसाद कोहली बी० एस-सी]

वायुके बारेमें कुछ भी कहना बड़ी जटिल समस्या है। एक ओर तो असाधारण वाक्यों और शब्दोंका प्रयोग किये बिना काम ही नहीं चलता, दूसरी ओर जनसाधारण इसका तिरस्कार करते हैं। यह विषय बहुत विस्तृत है : वास्तवमें इसका सम्बन्ध सबसे है। प्रति दिनके जीवनमें, और तनिक भी हिलनेमें, भी तो इसके बिना काम नहीं चलता। मल्लाहको समुद्रमें वायुके उत्थान पतनका पूरा पूरा ज्ञान होना आवश्यक है जो लोग हवाई जहाजमें जाते हैं उनके लिये वायुका बदलना जीवन मरणका प्रश्न है। वायुके पूर्ण ज्ञान सेआँधी का उठना, जलवर्षा होना आदि पहले ही से जाना जा सकता है, जिससे हानिसे बचनेका प्रबन्ध किया जा सकता है।

पिछली बड़ी लड़ाईमें, गोले गोलियोंपर वायुके वेगका जो असर होता है, उसके बारेमें बड़ी खोज हुई। यह तो सभी जानते हैं कि जलमें गोली उतनी दूर नहीं जाती जितनी दूर साधारण हवामें जाती है।

खोज करनेपर यह साबित हो गया कि जितनी तेज़ हवा चलेगी उतनीही कम दूर गोली जावेगी। जिस प्रकार एक पेंच घुमाते घुमाते लकड़ी और लोहेको भी छेद देता है, उसी प्रकार गोली जब घूमती हुई जाती है तो अधिक दूर तक जाती है। यह प्रत्यक्ष अनुभव किया गया है और गणित द्वारा साबित भी हो सकता है। इसी कारणसे आज कल लड़ाईकी बन्दूकों (राइफिल) में गोली सीधी नहीं जाती बल्कि उसे एक चक्करदार मार्ग (spinning path) से जाना पड़ता है और आज कलतो तारकी खबरें बहुत फैल रही हैं इस कारणसे भी हवाके बारेमें ज्ञान रखना अत्यन्त आवश्यक है। वास्तवमें जैसे जैसे विज्ञानमें ज्ञानकी वृद्धि हुई, वैसेही वैसे वायुके अन्तरगत विषयोंका अध्ययन हुआ।

पृथ्वीके ऊपर बहुत दूर तक वायुमण्डल है, इसके बारेमें मुख्यतः पांच सूत्रों द्वारा खबर मिली है। ये पांच नीचे लिखे हैं :—

(१) पतङ्ग तो बहुत दिनोंसे उड़ाई जाती है, और प्रत्येक मनुष्य इसके बारेमें जानता है। इसके द्वारा वायु मंडलमें करीब करीब ४½ मील ऊपरका हाल मिला है। किन्तु ऐसी खबरका विश्वास अधिक नहीं किया जा सकता। ये उस समय काममें लाये जाते थे जब और किसी प्रकार वायुमंडलका ज्ञान प्राप्त करना कठिन था।

(२) जबसे हवाई जहाज़ चले हैं, तबसे बहुत कम लाभदायक बातें मालूम हुई हैं। पहले पहलेतो वायुयान अति ऊँचे नहीं उड़ सकते थे। आजकल सबसे अधिक उँचाई जहां तक हवाई जहाज़ उड़ सके हैं, वह ७ मील है।

(३) इसके पहले आदमियों वाले गुब्बारे (manned balloons) काममें लायेजाते थे। उनसे बहुत कुछ मालूम हुआ और वे भी ७ मील तक उड़ सकते हैं।

(४) पता चलाने वाले गुब्बारे (Sounding Balloons) के द्वारा हमको २२ मील तकका ज्ञान प्राप्त हुआ है। इससे आश्चर्य न करना चाहिये क्योंकि कुछ ही समय हुआ कि

(५) पाइलट गुब्बारे (Pilot Balloons) ने हमको लगभग ६५ मील तकका हाल बतलाया है। यदि हमको इससे भी ऊपरका समाचार जानने की इच्छा है तो हम संधिप्रकाशचाप (Twilight arch) की ऊँचाई (४७ मील) नापते हैं अथवा ये देखते हैं कि टूटे हुये तारे किन मार्गोंपर चलते हैं। इससे १२५ मील तकके समाचारका केवल अनुमान ही किया जा सक्ता है।

इन सब उपायोंसे बहुत कुछ पता लगा है, किन्तु प्रत्येक अनुभवका उल्लेख करना अति दुष्कर है। बहुधा लोगोंका मत है कि जैसे जैसे हम ऊपर जावेंगे हमें अधिक ठंड लगेगी। किन्तु यह बात नहीं है। कुछही दूर जाने के उपरान्त एक ऐसी जगह आती है जिसके आगे गर्मीमें कमी नहीं आती। इसको समतापक्रम तल (Isothermal region) कहते हैं—अथवा स्ट्रेटोस्फीयर आजकल (Stratosphere) कहते हैं। इस प्रान्तमें उचाईके साथ साथ गर्मीमें कमी नहीं होती।

इसके नीचे जो तल है उसको ट्रोटोस्फीयर (Trotosphere) कहते हैं। यहाँपर ऊपर जातेही ठंडक बढ़ जाती दोनों जहां मिलते हैं उसको ट्रोटोपैाज (Trotopause) कहते हैं। यह १ मील के नीचेही मिलता है। अर्थात् एक मील के ऊपर गर्मीमें कमी नहीं होती। यह देखा गया है कि ट्रोटोस्फीयर की वायु भली भाँति "मिली" रहती है. अर्थात प्रत्येक समय और दशामें, ओषजन नोषजन और कर्बनद्विओषिदकी मात्रामें अन्तर नहीं पड़ता। किन्तु स्ट्रेटोस्फीयर में यह सब भली भाँति नहीं मिलतीं।

हम समउष्ण प्रान्तका एक कारण बता सकते हैं यह तो हम जानते हैं कि सूर्यकी गरमी समस्त वायुमंडलपर पड़ती है। इसमें से कुछ वायुमें रह जाती है। किन्तु वायुमंडलभी अपने चारों ओर की ठंडी वस्तुओं को गर्मी पहुँचाता है। जब कि किसी प्रान्त को उतनीही गर्मी पहुँचाती है जितनी कि वह दूसरी वस्तुओंको देखता है, तब उसकी गर्मीमें कोईभी

अन्तर नहीं होगा। यह तो पहले कहा जा चुका है कि यह प्रान्त लगभग १ मीलके ऊपर होता है। यहाँका तापक्रम—५५ श है। अर्थात् यहाँ ध्रुवोंसे भी अधिक ठंड है।

वायुका विषय बहुत विस्तृत है। मैं केवल थोड़ी ही बातों के बारेमें कुछ लिखूंगा। यदि पृथ्वीके प्रत्येक भागका तापक्रम एकही होता तो संसारमें वायु कभी चलती ही नहीं। किन्तु वास्तवमें भूमध्यरेखा के निकटवर्ती देशोंमें ध्रुवोंमे अधिक गर्मी पड़ती है। प्रायः भूमध्यरेखा सबसे गर्म है और ध्रुव सबसे ठंडे। बीचके प्रदेशोंमें उतार चढ़ावकी गर्मी होती है। जैसे ध्रुवसे चलते हैं, गर्मी बढ़तीही जाती है, यहाँ तक कि भूमध्य रेखापर सबसे अधिक हो जाती है। हवाका दबाव तापक्रमपर निर्भर है। ध्रुवोंपर दबाव बहुत होता है और भूमध्य रेखापर कम। इसके कारण वायु वर्ष भर चलती रहती है। भूमध्य रेखाकी वायु गरम होकर हलकी होजाती है और ऊपर उठती है। इसकी जगह लेनेके लिये ध्रुवों से हवा आती है। इस प्रकार पृथ्वीके निकट वायु ध्रुवोंसे आती हैं, किन्तु वायुमंडलके ऊपरी तलोंमें वायु भूमध्य रेखासे ध्रुव की ओर जाती है। इससे यह प्रत्यक्ष प्रतीत होगा कि पृथ्वी पर कहाँ कितना तापक्रम है, यह जानना अत्यन्त आवश्यक है। यदि प्रत्येक प्रदेशमें पृथ्वीकी सतह एकही सी होतीतो एक ही रेखान्तरपर सब जगह उष्णता बराबर होती। किन्तु यह तो है ही नहीं कहीं पहाड़ हैं कहीं नदिया कहीं झील हैं कहीं सागर। इस कारणसे एकही रेखान्तरपर एकसाँ गर्मी नहीं पड़ती है।

नीचे दिये हुये चित्रमें पता चल जायगाकि संसारमें कहाँ कितनी गर्मी पड़ती है। इसमें प्रत्येक रेखान्तरकी औसत गर्मी दिखाई गई है। इसमें गर्मी और सर्दी दोनों ऋतुओंका हाल है। देखनेसे ज्ञात होगा कि भूमध्य रेखाके समीप साल भर गर्मी प्रायः एकसी रहती है जैसे जैसे हम ध्रुवके निकट जाते हैं दोनों में अन्तर बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि ६० रेखान्तरमें गर्मीमें ताप +१५° रहता है और जाड़े में —१५° रहता है। उत्तरी ध्रुवपर बहुत अधिक अन्तर पड़ जाता है। गर्मीके दिनोंमें भूमध्य रेखा और उत्तरी ध्रुवके तापक्रममें केवल २७°श का है किन्तु जाड़े के दिनों में यह अन्तर ६०°श का है। इसी कारण जाड़ेके दिनोंमें उत्तरी ध्रुवसे ठण्डी हवा बहुत चलती है। उत्तरी गोलार्ध और दक्षिणी गोलार्ध में एक और अन्तर है। दक्षिणी गोलार्धमें जल बहुत है और उत्तरी गोलार्धमें थल की अधिकता है। जलकी अधिकतासे वहाँ तापक्रममें अधिक कमी नहीं होती और दक्षिणी ध्रुव परभी ताप वर्ष पर्य्यन्त ०°श लगभगके रहता है।

वायुकी गति तापक्रम पर किस प्रकार निर्भर है इसका तो भारतवर्षके नकशेही से पता चल जावेगा। जूलाईके महीनेमें भारतवर्षके आन्तरिक प्रान्तोंमें अधिक गर्मी पड़ती है। इसी कारणसे वर्षा ऋतुमें परम सुख दायी जल भरी वायु भारतीय महासागरसे चलती है।

इसी प्रकार जनवरीके मासमें तिब्बत और मध्यमी एशियामें ठंडक बहुत पड़ती है। वहांसे एक वायु चलती है जो हिमालयके पार करके भारतवर्षमें आती है।

वायुका एक कारण तो यह हुआ, दूसरा कारण भापका बराबर बराबर प्रत्येक जगह न होना है। भाप हवासे हलकी होती है। यदि वायुका वजन १ सेर होगा, तो उतनी ही भाप, उसी प्रकार तौलनेसे वजनमें ०·७२२ सेर होगी। कहीं भाप अधिक है, कहीं कम। अर्थात् कहीं पर हवा और भाप मिल कर वजनमें उतनी नहीं हैं जितना कि वजन दूसरी जगहकी हवा और भापका है। इस कारणसे दबावमें भी अन्तर हो जाता है। भूमध्य रेखाके समीप भाप बहुत बनती है—इस कारण वहाँ की हवा ध्रुवोंकी हवाकी अपेक्षा हलकी होती है। इस कारणसे भी वायु चलती है।

यदि और किसी प्रकारकी बाधा न पड़ती तो इन दोनों कारणोंसे उत्तर और दक्षिणकी दिशामें ही वायु अधिक चलती। किन्तु बहुतसे और कारण पड़

जाते हैं। यहाँ पर बहुत सी शक्तियाँ काम कर रही हैं। और कोई सरल और सीधा नियम नहीं बनाया जा सकता है। हवाकी स्निग्धता सामर्थ्यका व्यवस्था सामर्थ्यका गति सामर्थ्यमें बदलना पृथ्वीकी सतहपर कई प्रकारके अन्तर, (जैसे कहीं नदी कहीं पहाड़, कहीं ऊपर भूमि कहीं लहलहाते खेत आदि) होते हैं। इन सबसे वायुकी गतिमें अन्तर पड़ जाता है। निकटवर्ती स्थानके गरम होनेसे या ठंडे होनेसे भी कभी कभी वायु चलने लगती है। कहीं कहीं पर्वतों द्वारा वायु रुक जाती है और दूसरी ओर बहने लगती है। और सबसे अधिक तो पृथ्वीके घूमनेसे हवामें अन्तर पड़ता है। पृथ्वी पश्चिमसे पूर्वकी ओर घूमती है, इसके कारणसे उस पर रहने वालोंको वायु पश्चिमसे पूर्वकी ओर जाती हुई मालूम होती है। यह हवा वर्ष भर ऊपरी तलोंमें चला करती है। इसकी दिशाका पता ऊँचे उड़ने वाले बादलोंसे लग जाता है। ज्वालामुखी पहाड़ोंसे जो धुआँ और राख आदि बहुत ऊपर तक पहुँच जाती है वह फिर उसी स्थान पर नीचे नहीं आती। इस पश्चिमी वायुके कारण वह कुछ दूर पूर्वकी ओर जाकर गिरती है। इस वायुके बारेमें और भी अनुभव किये गये हैं। ऊँचे ऊँचे पर्वतोंके शिखरों पर जो हवा चलती है वह सदा पश्चिमसे पूर्वकी ओर जाती है। इससे अब कोई संदेह नहीं रहता है।

कई प्रकारकी हवा चलती हैं। अब हम इनके पृथक् पृथक् विभाग करेंगे। इनके लिये कई प्रकारके विभाग किये जा सकते हैं। हवाके वेगके अनुसार विभाग किया जा सकता है, जैसे "मन्द बयारि चल रही है" "हवा तेज है" "आँधी आ गई" इत्यादिसे ज्ञात होगा या हवा चलनेके समय और स्थानमें विभाग हो सकता है, जैसे सदा चलने वाली हवा (regular wind) व्यापारी हवा, या समयान्तर चलने वाली (periodic) हवा जैसे 'मौसमी'। हवा यह सब प्रति दिनकी बातें हैं और प्रत्येक मनुष्य जानता है कि ये हवा क्यों चलती है और कब चलती है। इस कारण मैं हवा का विभाग निम्न लिखित रीति पर करूंगा। और उदाहरणार्थ कुछ खास खास हवा का उल्लेख करूंगा।

१—हवा जो किसी एक स्थान के गर्म हो जानेके कारण चलती है:—जैसे बवंडर, संचित प्रवाह (cumulus convection) घाटी की हवा (valley breeze) समुद्रपवन (sea breeze)

२—जो किसी स्थानके ठंडा हो जानेके कारण उत्पन्न होती है। जैसे स्थलपवन, पर्वत पवन (land breeze, mountain breeze हिमानीहवा (glacier wind) बोरा मिस्ट्रल, नारवेजियन और महाद्वीपके समीर (bora, minstral, norwegian fall winds, continental fall winds.)

३—हवा जो एक स्थानके गर्म होने और दूसरे किसी स्थानके ठंडे हो जानेके कारण चलती है—जैसे कि आंधी।

४—जो बहुत दूर तक गर्मी या सर्दी फैलनेके कारण चलती हैं या जो दबावमें अन्तर (gradieut winds) हो जानेके कारण चलती है।

५—ऐसी हवा जो कि दूसरी हवाके प्रेरित करने पर चलती हैं (forced wind) जैसे भँवर हवा, चिनूक और आंधी पानी या घूर्णवायु (eddies, chinooks, and tornadoes.)

किसी एक स्थानके गर्म हो जानेके कारण जो हवा चलती है उनमेंसे बवंडर एक बहुत ही उत्तम उदाहरण है। जब सूर्य की किरणें पृथ्वी पर पड़ती हैं तो पृथ्वी गर्म होती है। इससे सतह पर की हवा भी गर्म हो जाती है। गर्म होते ही यह और हिस्सोंसे हलकी हो जाती है और यह आशा की जा सकती है कि यह तत्काल ही ऊपर उठ जावेगी। किन्तु एक तो यह पृथ्वीके साथ है दूसरे कुछ वायुमण्डलसे दबी है, इसलिये यह तब तक ऊपर नहीं उठ सकती जब तक किनारेसे ठंडी हवा का झोंका इसमें सामर्थ्यका सचार न कर देवे। किसी शक्तिसे उत्प्रेरित होकर यह आकाशकी ओर जाती है। ठंडी हवा इसकी जगह ले लेती है। यह हवा भी गर्म हो जाती है और हलकी भी होती है। यह भी फिर ऊपर

ही जाती है और यह प्रयोग होता ही रहता है और यह हवा ऊँची उठती जाती है। जब यह हवा ऊपर उठती है तो इसमें कोणिक गति (angular velocity) का उत्थान होता है, और वेग के कारण इसके साथ धूर, तिनका, पत्तियां आदि उड़ जाते हैं।

यह हवा कभी कुछ ही ऊपर उठती है और कभी बहुत दूर तक जाती है। यह सतह की गर्मी पर निर्भर है। अगर ताप अधिक है तो वह बहुत ऊँचे जाती है कभी कभी वह बहुत देर तक चलती रहती है। जैसे जैसे यह गर्म हवा ऊपर उठती है ठंडी हवा उसकी जगह आजाती है और उसी प्रकार क्रम लगा रहता है।

किसी स्थान पर और किसी काल में ये हवा बहुधा चलती है कहीं कहीं बहुत कम इसका चलना न चलना निम्न लिखित कारणों पर निभर है

(१) पृथ्वी की सतह का आकार।

(२) इसके चहुँ ओर की परिस्थिति।

(३) अक्षांश

(४) ऋतु

(५ समय (दैनिक)

यह हवा गर्मी में तीसरे पहर बहुत चलती है, किन्तु जाड़े में कम। और यह भूमध्य रेखा के निकटवर्ती देशों में, ऊसर भूमि पर, किन्तु चौरस समतल) जगह पर अधिक दिखाई देती है। जहाँ जल है अथवा हरियाली है वहाँ यह बहुत कम चलती है।

घाटी की हवा (vall y breez.)—भी स्थानिक गर्मी के कारण चलती है जैसे एक चिमनी में नीचे से हवा आती है और ऊपर से निकल जाती है उसी प्रकार इसमें भी होता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि निकटस्थ समतल में हवा फैलती है जिससे दवाव में अन्तर हो जाता है

"फोन" एक हवा है जो आल्पस पहाड़ की घाटियों में चलती है। यह ऊँचे स्थल से अधिकतर शरद ऋतु में चलती है। कभी कभी इसका वेग बहुत हो जाता है। ऊँचे स्थानों और नीचे स्थानों में जो दवाव में अन्तर होता है उसी के कारण यह हवा चलती हैं। इसकी तासीर गर्म और सुखाने की है जो कि यकायक दब जाने से हुई है (dynamical compression) इसी प्रकार जो हवा ग्रीन देशमें और रोकी पहाड़ पर तथा हिमालय पर चला करती है।

समुद्र-पवन स्थल पवन, और वन पवन-समुद्र, झील और जंगलके ऊपरकी वायु और इनके चारों ओर की पृथ्वीके ऊपर की वायुमें बहुत अन्तर होता है। दोनों के तापक्रममें अन्तर है। और यही कारण हवा के चलने का है। जैसे, संध्या समय पृथ्वी पानी से अधिक गर्म होती है इस पर की वायु का तापक्रम जल पर की वायुसे अधिक होगा और सागर से पृथ्वी की ओर हवा चलेगी। यह हवा जल की सतह से उठती है किन्तु कभी कभी तो यह ऊपर ५५० गज तक फैल जाती है। इसकी गतिक्रम (v locity) १० मील फी घंटे से अधिक नहीं होता। गतिक्रम तापक्रम पर निभर है। यह २०,२२ मील तक पृथ्वी पर चली जाती है, किन्तु जैसे जैसे यह आगे बढ़ती है इसकी गति मन्द पड़ जाती है और तापक्रम बढ़ता जाता है।

स्थल पवन :यह हवा पृथ्वीसे जलकी ओर चलतीहै। जिस प्रकार पृथ्वी जलसे पहिले गर्म होती है, उसी प्रकार उसका तापक्रम जलसे पहले घट जाता है। प्रातःकालके समय जल पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक गर्म होता है। इसके ऊपरकी वायुभी गर्म होती है, और उसका दबाव कम होता है। यह वायु ऊपरको उठती है, और थलकी ओरसे हवा चलती है। किन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि यह हवा चक्रमें चलती है। वास्तवमें जो वायु ऊपर उठ कर जाती है वह फिर उसी स्थान पर नीचे नहीं आती।

हिमानी हवा (Glacier winds)—ऊँचे पहाड़ोंकी घाटियोंमें बहुधा बर्फ जम जाती है। सूर्य की किरणोंसे और अधिकतर Regelation के कारण यह पिघलने लगती है। कभी कभी इसके नीचेके भागमें खोहसी बन जाती है। इसमें से वायु बाहरकी ओर आती है, और यदि यह हिमानी बड़े हों तो हवा चलने लगती है। इसी

प्रकारकी हवा पहाड़की खोहके निकट भी चलती हैं। गर्मी में बाहरकी वायुका तापक्रम अधिक होता है और खोहसे बाहरकी ओर हवा चलती है। जाड़में इसके विपरीत होता है, और खोहकी ओर हवा चलती है। गर्मीके दिनोंमें जो हवा खोहसे बाहर आवेगी वह ठंडी होगी। जापानमें लोग इसका लाभदायक प्रयोग करते हैं। कुछ चीजें अधिक गर्मीसे खराब हो जाती हैं, इसलिये वे ऐसी जगह रक्खी जाती हैं जहाँ यह ठंडी हवा लग सके। वह चीजें कुछ अधिक काल तक ठीक दशा में रहेंगी।

प्रायः हम लोग देखते हैं कि सारे वर्ष भर कोई न कोई हवा चला करती है। समस्त भूमण्डलमें ऐसा ही होता है। प्रत्येक स्थानपर हवा चलती है। किन्तु ध्रुवोंके समीप इनकी गति बहुतही तेज हो जाती है खासकर शरदऋतुमें हवाकी गति आँधीके समान हो जाती है। ग्रीनदेशमें जो कि १०,००० फीट तक बर्फ से ढका है, साल भर उत्तरसे दक्षिणकी ओर और ऊपरसे नीचेकी ओर हवा चला करती है। दक्षिणी ध्रुवके समीप एण्टार्टिका (Antarctica) में भी ऐसाही हाल है। साल भर, हवा ५० मील प्रति घंटेकी औसत गतिसे चला करती है। एक आविष्कारक, सर डोगलस मेकासनने लिखा है, "प्रति दिन हवा आँधी और झंझावात (Hurricane) की गतिसे चलती थी। १०० मील प्रति घंटेसे भी अधिक गति से हवा चली थी"

ऐसेही और स्थानों पर भी कुछ खास खास हवा चलती हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

'चिनूक'—यह हवा राकी पहाड़के ढालों पर चलती है। यह शरदऋतुमें शुष्क तथा गर्म है, किन्तु ग्रीष्ममें यह ठंडी होती है। यह बड़ी लाभदायक है। एक तो चारों तरफकी वायु न अधिक गर्म ही होती है न अधिक ठंडी, यह उसे मध्यम कर देती है। दूसरे इससे पैदावारको बहुत लाभ होता है। बर्फको तो यह "चाट" जाती है।

मिस्ट्रल—Minstral—फ्रांसके दक्षिणी भागमें प्रोवेन्स नाम का प्रान्त है। यह हवा उत्तरी ठंडे प्रान्तोंसे आती है जहाँ पर दबाव अधिक होता है जब गर्मी हवा चलती है, तब आकाशमें बादल नहीं होते, सूर्यकी किरणें चहुँ ओर फैली रहती हैं, किन्तु वायुमंडलमें शुष्कता आ जाती है, और कटकटा जाड़ा पड़ता है। इसकी तुलना भारतवर्षमें संयुक्तप्रान्तमें, जो हवा जाड़ेमें उत्तर पश्चिमकी ओर से चलती है, उससेकी जासकती है। उसमें भी यद्यपि धूप निकलती है किन्तु ठंड अधिक पड़ती है।

"हरमत्तन"—Harmattan यह एक गर्म, शुष्क हवा है, और जहाँ जाती है वहाँ सूखा पड़ता है। यह दिसम्बर, जनवरी और फरवरीमें, ऊपरी गायना (Upper Gunica) के किनारे चलती है। इसके साथही साथ आकाशमें एक लाल धूरसी छा जाती है जिससे अंधेरा हो जाता है। जब तक यह हवा चलती रहती है, गायना के देशवासी अपने शरीर पर तेल अथवा चर्बी मल लेते हैं, नहीं तो शरीरका मांसही सूख जावे।

सिरोको—Sirocco यह भी स्थानीय हवा है किन्तु दो भिन्न भिन्न स्थानोंमें चलती है। एक तो भूमध्य सागर पर जाड़ेमें वर्षा कालमें चलती है, और सवत्र विख्यात है। पूर्वकी ओर दबावमें कमीहो जानाही इसका मुख्य कारण है, और जब तक यह चलती है वहाँ की जलवायु नम रहती है। बादल छाये रहते हैं और वर्षा होती है।

दूसरी इसके बिलकुल विपरीत है। यह बहुतही शुष्क, रेगिस्तानसे आती है और रेत और धूरसे भरी होती है। इसका यह नाम सेसली और दक्षिण इटली में पड़ा है।

—(क्रमशः)

संसार वासियोंका भोजन

[डा० नीलरत्नधर डी. एस-सी. आई. ई. एस. तथा—
सत्यप्रकाश एम-एस. सी.]

मनुष्यके भोज्य-पदार्थोंकी मीमांसा करनेके पूर्व यह कह देना अनावश्यक न होगा कि शारीरिक प्रक्रियाओंके सञ्चालनके लिये कोई एक सर्व-गुण-सम्पन्न-पदार्थ निश्चित नहीं किया जा सकता है। जलवायु, तापक्रम, तथा अन्य परिस्थितियोंपर भी भोजनकी मात्रा निर्भर है। देशकी आर्थिक सम्पत्ति और उपजपर भी ध्यान देनाही पड़ता है। दीन हीन व्यक्तिके लिये ऐसे ही पदार्थोंका आदेश करना चाहिये जो गुणकारी तो हों, पर वे इतने मूल्यवान न हों, जिन्हें वह खरीद भी न सकता हो। यद्यपि यह बात ठीक है कि आधुनिक अन्त-र्जातीय सम्बन्धने ऐसे सुलभ साधन प्रस्तुत कर दिये हैं कि मछलीपर निर्भर रहने वाले प्रदेशमें भी गेहूँ पहुँचाये जा सकते हैं और अन्नाहारी प्रान्तोंको भी सैकड़ों मील दूरीपर किये गये शिकारोंका भोजन मिल सकता है, पर भारतीय परिस्थितिके अनुसार यह मानना ही पड़ता है कि यह अन्नप्रधान देश है, यहाँके मांसाहारी व्यक्तिभी सर्वथा मांस पर निर्भर नहीं रहते हैं उनके भोजनका अधिकांश अन्न और शाक होता है।

भोजनकी दो उपयोगितायें हैं: पहली शरीर रचना और दूसरी शक्ति संचालन। जन्मसे लेकर युवावस्था तक शारीरिक निर्माण विशेष वेगसे होता है, पर इसके पश्चात् शारीरिक वृद्धि उतनी स्पष्ट नहीं होती है, यद्यपि इस समयभी पुराने जीर्ण कोष्ठोंके स्थानमें कुछ नवीन कोष्ठ अवश्य बनते हैं। भोजनकी दूसरी उपयोगिता शक्ति-संचालन है। निर्जीव और सजीव शरीरमें यही केवल भेद है कि एक शरीर गतिवान और क्रियाशील है और दूसरा गतिशून्य और शिथिल। क्रिया और गतिभी भोजन पर निर्भर है। मनुष्यके शरीर और इंजिनमें इतना ही भेद है कि इञ्जिन में कोयला और पानी से गति और क्रिया-का ही उद्घाटन होता है पर इञ्जिनके निर्माणमें ये पदार्थ कारण नहीं होते हैं। शरीरमें भोजनको दोनों प्रकारका काम करना पड़ता है।

यह कहा जा चुका है कि युवावस्थाके व्यक्तियोंके लिये अधिकांश भोजन शक्ति-संचालनका ही काम करता है, पर बच्चोंके लिये इसे शरीर निर्माण और शक्तिसंचालन दोनों प्रकारके ही काम करने पड़ते हैं। पर यह होते हुए भी सब जानते हैं कि बच्चोंकी अपेक्षा बड़े आदमी अधिक भोजन करते हैं। इसका कारण यह है कि छोटे बच्चोंके शरीरकी अपेक्षा मनुष्यके विशाल शरीरमें गति और क्रिया उत्पन्न करनेके लिये अधिक शक्तिकी आवश्यकता होती है, और इसीलिये अधिक भोजन करना पड़ता है।

यह कहना अत्यन्त कठिन है कि संसारमें भोजन-का विकास किस प्रकार हुआ। कल्पना कीजिये कि सृष्टिकी आदि अवस्थामें पहले जंगल ही जंगल थे। जिसप्रकार वनमें अन्य प्राणी आहार विहार करते हैं, उसीप्रकार सृष्टिका सबसे अनमोल रत्न 'मनुष्य' भी अपने दिवस व्यतीत करता होगा। जंगली कंदमूल या तो उसके खाद्य पदार्थ होंगे या निर्बल प्राणियोंको आहत करके वह अपनी उदर पूर्ति करता होगा। निस्सन्देह, खेतीबारीका प्रचार उन दिनों न होगा। हंटिंग्टनका कहना है कि कृषिका व्यवहार आदि-जातियों ने तब तक कदापि न किया होगा जब तक उन्होंने जानवरोंको पालतू बनाना न सीखा हो। खेतों और जंगलोंमें इतना ही तो भेद है कि वनोंमें फल फूल अथवा अन्नके पौधे इधर उधर अनियमित रूपसे बिखरे रहते हैं। जब जहाँ जैसा बीज अकस्मात् गिर गया वहाँ वैसे ही पौधे उग उठते हैं। खेतोंमें पौधे नियमित रूपके निश्चित् ऋतुमें उगाये जाते हैं। यह काम बिना पालतू जानवरोंकी सहायताके कैसे हो सकता है। कहा जाता है कि चावल अवश्य संसारके प्राचीनतम भोज्य पदार्थोंमेंसे है। जंगली चावल जो जलमें विकसित होता है आदि-निवासियोंका रुचिकर भोजन माना जाता रहा है। पशुओंके आक्रमणसे

वे इस पत्रकी भवश्य रक्षा करते थे। घासके बीज अधिकतर पक्षियोंके भागमें पड़ते थे और बन्दर बहुधा नरम स्वादिष्ट पत्तियों पर अपने दिन व्यतीत करते थे। विकास वादियोंके सिद्धान्तके अनुसार धीरे धीरे मनुष्य ने खाना पकाना, आग जलाना और खेती करना सीखा होगा। मेरे विचारमें जिस व्यक्ति ने सबसे पहले आगका अन्वेषण किया होगा उसे संसारके अनमोल रत्नोंमें सब प्रथम स्थान मिलना चाहिये। सभी जानते हैं कि एक छोटी सी रोटी बनानेमें कितनी प्रक्रियायें होती हैं कौन कह सकता है इनके विकासमें कितने लाख वर्ष व्यतीत हुए होंगे।

प्राचीन भारतमें दो तीन अन्न अधिक प्रचलित प्रतीत होते हैं, यव या जौ, तिल, चावल, उर्द ये यज्ञोंमें विशेषतः व्यवहृत होते थे। गेहूंका अधिक प्रचार न था। वेदोंमें यवको विशेष महत्त्व दिया गया है, 'धन-धान्य' शब्द इस बातका प्रमाण है कि बादको धान या चावल लोगोंका और भी अधिक उपयोगी प्रतीत हुए होंगे। दूध, दही, घी, और मधु ये भी मनुष्यके प्राचीन रुचिकर भोजन थे। वैदिककालमें मक्खनका अधिक प्रचार नहीं था। वेदोंमें फलोंका विशेष वर्णन नहीं मिलता है। सेब, अनार, अंगूर, यहाँ तक कि रसाल या आम भी जिसे सर्वोत्तम भारतीय फल कहा जा सकता है, इनमेंसे किसीको भी अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है। द्राक्ष अवश्य प्राचीन फल है जिससे कदाचित् सुरा निकाली जाती थी। यज्ञमें नारियलकी उपस्थिति विचित्र प्रतीत होती है।

मांसाहारी व्यक्ति वैदिक कालमें थे या नहीं, यह विवादास्पद बात है। यह कहना कठिन है कि किन किन प्राणियोंका मांस उस समय प्रचलित था। यदि गोमेध, अश्वमेध आदि शब्दोंके प्रचलित अर्थ भी स्वीकृत किये जायँ तो भी यह अस्वाभाविक प्रतीत होता है कि उस समयके व्यक्ति घोड़ेका मांस खाते होंगे। अस्तु, एक बात स्पष्ट है कि पक्षियोंके मांस खानेकी प्रथा उस समय कदाचित न थी। सबसे उपयोगी बात यह है कि प्राचीनतम कालसे मध्यकाल तकके ग्रन्थोंमें कहीं भी अण्डे खानेका नामनिर्देश भी प्रतीत नहीं होता है।

मिश्र देशके प्राचीन निवासियोंके भोजन परभी दृष्टि डालना अनुचित न होगा रुफ़र (१९२१) नामक व्यक्तिका कहना है कि मिश्रदेशके व्यक्तियोंको 'रोटियोंका खाने वाला' कहकर चिढ़ाया जाता था। रोटियोंका इनमें इतना प्रचार था कि बादको इनकी भाषामें 'रोटी' शब्दही भोजनके अर्थमें उपयुक्त होने लगा। ये जौ या गेहूंकी बनाई जाती थीं। दालका भी प्रचार था। अन्नको दो पत्थरोंके बीचमें दबाकर पीसा जाता था। ये चक्कियां भारतीय चक्कियोंसे मिलती जुलती थीं। मूसलसे कूटकर खरल ऐसे पदार्थ में भी आटा तैयार किया जाता था। रुफ़रका कथन है कि मिश्रके सिपाहियोंके दांतोंको दो सेर आटेकी मोटी मोटी रोटियाँ चबानेमें अच्छी कसरत करनी पड़ती थी। ये गोभी, चुकन्दर, भिन्न भिन्न प्रकारकी फलियाँ पकाकर खाते थे पर लहसुन प्याज आदि पदार्थ कच्चेही खाये जाते थे। अंगूर, अंजीर, खजूर, अनार, सेब आदि मिश्रवासियोंके रुचिकर फल थे। पर खजूर और सिंघाड़ोंको छोड़कर अन्नफल केवल अमीर ही खा सकते थे, क्योंकि ये फल मिश्रमें बहुआयतसे नहीं होते थे। इस प्रकार मिश्रके लोग मुख्यतः शाकाहारी ही थे। पर प्राचीन अवशेषोंसे यह भी पता चलता है कुछ पशुओंका मांसभी खाया जाता होगा। बहुतसे पशु पालतू रखे जाते थे जिनसे दूध आदि मिलता था। इसके अतिरिक्त कुछ जंगली चिड़ियां और जानवर इस प्रकार पाले जाते थे कि वे दिन प्रतिदिन मोटे होते जाते थे। तत्पश्चात् उनके मांसका व्यवहार किया जाता था। नील नदी और अन्य नहरोंमें मछलियाँ भी बहुत थीं, जिनका शिकार किया जाता था, यहभी कदाचित् उनका रुचिकर भोजन था। बच्चोंके भोजनके विषयमें वहाँके बेहा (Beha) के शिला लेखमें ये वाक्य अंकित हैं:—

"छोटे बड़े सब साठ बच्चे थे। दुर्राके १२० इफाहा (Iphaha) तीन गौओं, ५२ भेड़ों और ९ गधियों का दूध और २ पीपे तैल इनके भोजनमें व्यय होता

था।" इस प्रकार अमरोंके बालकोंका भोजन मुख्यतः रोटी, दूध और तैल था, एक शिला लेखमें अंकित है कि 'राजदूतोंको प्रतिदिन अच्छी रोटी, बैलका मांस शराब, मोठा तैल, चर्बी, मधु, अञ्जीर, मछली और तरकारियाँ मिलती थीं।'

अब अरब देशके वासियोंका भोजन देखिये। दूध इनके खाद्यपदार्थका मुख्य अंश है, इसके साथ साथ मांस दाल और खजूरभी ये खाते हैं। कृषि प्रधान प्रदेशोंमें अनार और सेव खानेकी भी प्रथा है। भेड़ बकरी, और ऊँटनियोंके दूधका इनके यहां विशेष व्यवहार है, पर इसे तत्काल जमाकर दहीमें परिणत कर लिया जाता है, और तब खाया जाता है। इसका कारण यह है कि दहीके रूपमें इसे बहुत समय तक सुरक्षित रख सकते हैं, अन्यथा वहांकी गरम जलवायुमें दूधतो बहुत ही शीघ्र खराब हो जाता है। पनीर, और मैमन (सूखा दही) भी खाया जाता है इस प्रकार अरब वासियोंका भोजन मुख्यतः पशुओंसे ही प्राप्त होता है चाहे वह दूधके रूपमें हो या मांसके रूपमें। अरब वासियोंके शक्तिशाली और बलवान होनेका कारणही यह है कि इनका अधिकांश भोजन दूध पर अधिक निर्भर है और फल, वनस्पतियों, दाल, मांस आदि पर कम, बृटेनिका विश्वकोषमें लिखा है कि 'अरब जाति संसार की सबसे अधिक बलवती, स्वस्थ और सुशील जाति है।' नेपोलियनने जिस समय मिश्र और सीरियापर आक्रमण किया तो उसके प्रसिद्ध राजवैद्य वैरन डिलेरीने अरब वासियोंकी अवस्थाके विषयमें लिखा था 'इनकी शारीरिक अवस्था योरोपियनोंकी अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम है, उनकी ज्ञानेन्द्रियां अधिक विकसित हैं, उनकी आकृति और क़द सामान्य अवस्था से कहीं अधिक बढ़कर है। वे अन्य जातियों के समानही बुद्धिमान। हैं वे बुढ़ापेमें भी स्वस्थ प्रतीत होते हैं। अस्तु, इस सबका कारणही यह है कि अरब वासी दूध पर अपना निर्वाह करते हैं। उत्तरी अफ्रीका अरब, मेसोपोटामिया बालकन राज्य और एशियाके अन्य स्थानोंका निरीक्षण करके यह सामान्य बात पाई गई है कि जहाँ कहींभी अधिक चरागाह हैं, और जहां अधिक दुग्धपान किया जाता है वहांके रहनेवाले अत्यन्त स्वस्थ हैं।

डगलस नामक व्यक्तिने खट्टे दूधका बहुतही मनोरञ्जक वृत्तान्त लिखा है खट्टे दूधके पूर्वके भिन्न भिन्न स्थानोंमें ये नाम है:—शेनीना, लेबेन, योहुई, केफिर काउमिस, मतजूम और दधि या दही। इन देशोंमें गाय, भेड़, बकरी, और घोड़ियोंके दूधको जमाकर दही प्राप्त किया जाता है, दहीमें दुग्धिकाम्ल के साथ साथ कुछ मादकद्रव्य मद्य भी होता है।

भोजनकी व्यवस्थाकी दृष्टिसे ध्रुव प्रदेशोंमें रहने वाले एस्किमोके खाद्यपदार्थ विशेष उल्लेखनीय हैं, उनके भोजनमें खटिकम् धातु (केलशम) का बहुत कम अंश रहता है और स्फुर (फास्फोरस) की मात्रा बहुतही अधिक होती है। यह सर्वविदित बात है कि हड्डियोंके निर्माणके लिये खटिकम्की बड़ी आवश्यकता पड़ती है इस प्रकार एस्किमोंका भोजन उनको शरीरके लिये विशेष हानिकर है। ये लोग ग्रीनलैण्ड के उत्तर पश्चिमी किनारों पर रहते हैं। उनके भोजन वस्त्र, ईंधन आदि सम्पूर्ण पदार्थ जानवरोंसे ही प्राप्त होते हैं। प्रत्येक पशुका ये आहार कर सकते हैं। जिसको पाते हैं, उसे ऐसा चबा डालते हैं कि हड्डी तककी भी चूर शेष नहीं रहने पाती। अपने देशमें उगने वाले पोधोंको ये कदाचित् ही कभी खाते होंगे। थलचर पशु अधिकतर इन्हें अपनी खाल द्वारा वस्त्र ही प्रदान करते हैं, पर मांस भोजनके हेतु एस्किमोंको टारमिगन (Tarmigan) पक्षी पर ही निर्भर रहना पड़ता है, सामुद्रिक जन्तुओंकाभी इस हेतु हनन किया जाता है। इन्हीं जीवोंको जलाकर ईंधनका काम निकालते हैं।

एकब्लो (Ekblow) व्यक्ति जो अधिक काल तक एस्किमोंके साथ रहा था लिखता है कि ये लोग मछली बहुतही कम खाते हैं क्योंकि वर्षके बहुत कम भागमें केवल सालमन मछली इन्हें प्राप्त हो सकती है। कभी कभी तो महीनों और वर्षोंके बाद उन्हें थलचरोंकी अस्थिमज्जा (मज्जाका वह अंश जो

हड्डियोंके बीचमें होता है) खानेका अवसर प्राप्त होता है क्योंकि ये बहुधा समुद्री जीवों परही निर्भर रहते हैं, जिनकी अस्थि मज्जाको ये नहीं खाते हैं ध्रुवीय रीछों । छोड़ कर अन्य सब प्राणियोंकी पसलीको ये बड़ीही रुचिसे खाते हैं। कभी कभी लाखों देवेकी (Devky) मुर्रे (Murreh) ईदर, गुलेमोट (Guillemot) आदि प्राणी तट पर आजाते हैं, जिनके मांस और अंडोंको शीत ऋतुके लिये ये संग्रह कर लेते हैं क्योंकि जाड़ेके दिनोंमें शिकार मारना बड़ाही कठिन होजाता है। नियमित और सरल भोजनके कारण एस्किमोंकी शारीरिक अवस्था, उनके केश, दांत आदि अङ्ग बड़े सुदृढ़ पाये गये हैं, उनमें स्कर्वी, रिकेट आदि बीमारियांभी नहीं होती हैं जो बहुधा खराब भोजनके कारण हुआ करती है।

पैनम (१८४७ ई०) व्यक्तिने फैरो (Faroe) द्वीप के निवासियोंके भोजनके सम्बन्धमें लिखा है कि ये मोटे जौकी रोटी, मट्ठा, और भेड़का सूखा हुआ मांस खाते हैं। भेड़के मांसको जाड़े भर ये लटकाये रखते हैं और इस प्रकार हवामें जब खूब सूख जाता है तब वसन्तऋतुमें यह खानेके योग्य माना जाता है। पैनमका कहना है कि यहाँके निवासियोंके सत्तरवर्ष की अवस्थामें भी दांत नहीं टूटते हैं।

लैपलैंडके निवासी सर्वांश मांसाहारी हैं। हिरनों, मछलियों और ढोरोंके मांस पर ये जीवित रहते हैं। ग्रीष्ममें ये जंगली चिड़ियोंके अण्डे भी खाते हैं। ये छोटे क़दके पर बड़े बलवान और सहनशील होते हैं। आइसलैंडके व्यक्तियोंका भोजन भी मनोरञ्जक है। नवीं शताब्दीमें आयरलैंड और स्कैण्डिनेवियासे लोग आकर यहाँ बस गये थे और अपने साथ पालतू पशु भेड़ और घोड़े लाये थे। कई शताब्दियों तक इनका भोजन मांस ही रहा। १५०० ई० के लगभग मार्टिन बीहेम ने इसके विषयमें यह वर्णन दिया है 'मैं ने अस्सी अस्सी वर्षकी आयुके ऐसे व्यक्तियोंको देखा है जिन्हें जीवनमें एक बार भी रोटी खानेका अवसर नहीं मिला है। इस देशमें अन्न उपजता ही नहीं है और यहाँ के लोग मछली खाते हैं। इन लोगोंमें दाँतोंकी बीमारी और रिकेट आदि रोग नहीं देखे गये थे। पर जबसे, लगभग ५० वर्ष से, इनके प्रदेशमें अन्न पहुँचाया गया है इनके दांत खोखले पड़ने लगे हैं, अन्नाहारी प्राचीन मिश्र वासियोंके भी दाँत खराब हो जाते हैं।

फिनलैण्ड-वासियोंके भोजनका निरीक्षण सखडस्ट्रम ने सन् १८०६ में बड़े विस्तारसे किया था ये रोटी, मछली और मट्ठे या दही पर ही बहुधा निर्भर रहते हैं। बहुतसे लोग प्रति दिन तीन बार भोजन करते हैं, और प्रत्येक बार आलू अवश्य खाते हैं। मक्खन, दूध और सुअरके मांस भी सेवन किया जाता है।

हेब्रिडीजके निवासियोंका भोजन भी आइसलैंड वालोंके समान है। यहाँ शलजम और आलूके अतिरिक्त और कोई अन्न उत्पन्न नहीं होता है। हरेक घरमें लगभग दो दो गायें अवश्य होती हैं। मछलीके शिकारकी भी बहुत प्रथा है। यहांके पुराने लोगोंकेदांत आजकलके स्कौच लोगों की अपेक्षा जो आधुनिक रीतिसे भोजन करते हैं, कहीं अधिक अच्छे हैं।

भारतवासियोंके भोजनके विषयमें लिखना ही व्यर्थ है। गेहूं, जौ, मक्का, जुआर, और चावल यहाँ का मुख्य भोजन है। पञ्जाब और संयुक्तप्रान्तके लोग रोटी अधिक खाते हैं, बिहार और बङ्गालमें चावल अधिक खाया जाता है। शरीर निर्माणके लिये चावल बड़ा ही हानिकर सिद्ध हुआ है। बङ्गालमें मछली खानेकी प्रथा अधिक है। यहाँ के लोगोंमें चाय पीनेकी आदत उत्तरोत्तर बढ़ती जारही है। दक्षिणमें भी लोग चाय बहुत पीने लगे हैं। बहुधा अण्डे खानेकी प्रथा बहुत कम है। बकरे और भेड़ोंका मांस कुछ व्यक्ति अवश्य खाते हैं यद्यपि केवल मांस पर निर्भर रहनेवाले व्यक्ति भारतवर्षमें दुर्लभ ही हैं। दालका सेवन इस देशमें अनिवार्य है। दूधके सेवनका प्रचार दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है दूध देनेवाले पशुओंकी अवस्था इस समय बहुत ही शोचनीय हो

रही है। मक्खन खानेकी प्रथा अधिकतर लुप्त ही हो गई है। घी अवश्य खाया जाता है पर बहुत थोड़ा ही। विदेशोंसे दूधके डिब्बे बच्चोंके अनुपानके लिये बहुत आते हैं और इनका प्रचार बढ़ रहा है। यहां के फलोंमें आम, अमरूद और केला बहुत व्यवहृत होते हैं, जामुन और बेर भी ऋतुके अनुसार खाये जाते हैं। साग खानेकी प्रथा यहाँ बहुत ही अच्छी है। पालक बथुआ, चना, सरसों, मैथी और सोयाका साग प्रत्येक घरमें बना करता है। आलू और घुइयाके अतिरिक्त जमीकन्द, बण्डा और शकरकन्द आदि कन्द लोग बहुत खाते हैं। लौकी, कुम्हड़ा भिण्डी और तोरई विशेष तरकारियां हैं। भारतवर्षमें मुसलमान लोग कच्चा खाना बनानेमें सिद्ध हस्त माने जाते हैं उनकी रोटियाँ हल्की, और बड़ी एवं पाचक होती है पञ्जाबमें तंदूर खानेकी प्रथा है तो राजपूतानेमें बाटी बनाई जाती हैं। पूरबके लोग अरहरकी दाल अधिक पसन्द करते हैं पर पश्चिमके उर्द की दाल। महाराष्ट्र में अमटी खाने की प्रथा है। हिन्दुओं के समान पक्वान बनाने वाली जाति इस संसारमें अन्य नहीं मिलेगी, बंगाली मिठाईकी ओर शिक्षित जनताकी रुचि बढ़ रही है पर मथुराके चौबों को तो मलाईके लड्डू और पेड़ोंके समान और कुछ नहीं है।

वैज्ञानिकीय

डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्मा

गत वर्ष विज्ञान विषयक मंगलाप्रसाद पारितोषिक 'हमारे शरीर की रचना' नामक ग्रन्थके लेखक डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा जी को मिलना निश्चित हुआ था। सम्मेलनके अधिवेशनमें श्रीवर्मा जी उपस्थित न हो सके थे अतः ता० २८ नवम्बर सं० १९२७ को सम्मेलन भूमि प्रयागमें कविवर श्री श्रीधर पाठकजी की अध्यक्षता में एक उत्सव मनाया गया, और उक्त डाक्टर महोदय को प्राचीन परिपाटी के अनुसार एक ताम्रपत्र और १२००) नक़द प्रदान किया गया। इस अवसर पर श्रीहृदयनाथ कुँजरू और मान्यवर सी. वाई. चिन्तामणि महोदय के अत्यन्त अवसरोपयोगी भाषण भी हुए थे। श्रीवर्माजी ने भी अपने सूक्ष्म वक्तता में कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए कहा था कि इस पुस्तक की रचना तथा प्रकाशन में उन्हें किस प्रकार नैराश्यजनक कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं, और जिस समय उन्होंने ग्रन्थ लिखा था उन्हें कदापि यह आशा न थी कि एक दिन इसको इसप्रकारका सम्मान मिलेगा। डा० त्रिलोकीनाथजी वर्मा 'विज्ञान' और विज्ञान परिषद के पुराने सहयोगी और मित्र हैं। हम आपके इस कीर्तिलाभ पर हृदयसे बधाई देते हैं, आपने इस पारितोषिक मेंसे ०००) साहित्य सम्मेलन को इसलिये भेंट दिया है कि वह इस धनसे वैज्ञानिक विषयों पर लिखनेवालोंको उचित रूपसे पुरस्कृत करे।

—सम्पादक

वार्षिक चुनाव

विज्ञान परिषद् कौन्सिलका एक अधिवेशन ता० १० नवम्बर सन ०७ को ३ बजे इलाहाबाद यूनिवर्सिटीके फ़िज़िक्सडिपार्टमेण्टमें हुआ। जिसमें निम्नलिखित सज्जनोंका चुनाव हुआ।

श्रीमान् महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथझा एम० ए० डी० लिट० सभापति वाइसचैंसलर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

श्रीमान् डाक्टर एन० आर० धर, डी० एस-सी० उपसभापति

श्रीमान् प्रो० एस० सी० देव एम० ए० प्रधान मंत्री

" प्रो० सालिग राम भार्गव एम० एस-सी० "

" प्रो० ब्रजराज जी एम० ए०, बी० एस-सी एल० एल० बी० - मन्त्री

" सत्य प्रकाश जी एम० एस-सी० विशारद "

" श्री रंजन जी एम० एस-सी० खजानची

श्रीमान् पं० अमरनाथ झा एम०ए० रेजिडेण्ट काउन्सिलर

" पं० कन्हैयालाल भार्गव "

" एस० सी० बनर्जी एम० ए०, एम० एस-सी०

जादू

जादू शब्दके कहनेसे जो असर एक दूसरे मनुष्य पर पड़ता है वास्तवमें वह बात नहीं है। जितने जादूगर हैं उनमें कोई दैविक शक्ति नहीं है परन्तु वे उन चालाकियोंको जानते हैं जो कि देखने वालोंको मालूम नहीं हैं। वह मनुष्य जिसने विज्ञानको कुछ समय तक सीखा है जब लिट्मसको नीले रंगको लाल और लाल को नीला करते देखता है तो उसको तनिक भी आश्चर्य नहीं होता है कारण कि वह जानता है कि यह तो एक मामूली सी अम्ल व क्षार की परीक्षा है

पुराने समयके इतिहासमें कई जगह यह बात पाई जाती है कि चालाक मनुष्योंने अपनी चालाकियों से भोली भाली जनताको अपनी ओर जादूके बहानेसे आकर्षित कर लिया था और बड़े बड़े राजाओंके विरुद्ध उपद्रव खड़े कर दिये थे। आधुनिक समय में भी जो वैज्ञानिक युग कहता है जादू के तमाशे प्रायः कभी कभी देखने में आते हैं कारण यह है कि अब भी साधारणतः मनुष्य विज्ञानको नहीं जानते हैं यदि उनको उसका पता लग जावे तो जादू शब्द का अन्त ही हो जावे—अमेरिकामें भूत विद्याके सम्बन्धमें बहुतसे मनुष्योंकी चालाकी पकड़ी गई हैं और उनको काफी सजाएं भी दी गई हैं। इस लेख में हम केवल कुछ रासायनिक जादू के बारेमें उल्लेख करेंगे।

१-जलती हुई मोमबत्तियों को बुझाना

एक मेज़ पर चार या पांच मोम बत्तियाँ एक कतारमें जलाकर रख दो और तमाशा देखनेवालों से कहो कि मेरे पास शीशे का एक गिलास है जो कि बिल्कुल खाली है परन्तु इसके इन बत्तियोंके ऊपर उंडेलनेसे मैं इनको बुझा सकता हूँ और ऐसा करके दिखलादो। इस जादू की चालाकी है यह कि शीशे के गिलासको कर्बन द्विओषिद से भर दो और मेज़ पर सीधा रख दो चूंकि यह गैस भारी होती है इस वास्ते यह गिलासके बाहर नहीं जावेगी और यदि चाहो तो एक प्यालीसे गिलास को ढक दो। जब उसको बत्तियोंके ऊपर उंडेलोगे तो वह गैस भारी होने की वजहसे बत्तियोंके ऊपर गिरेगी और उनको बुझा देगी क्योंकि उस गैसमें बत्ती जलानेकी शक्ति नहीं है।

(२) एक बत्ती को दूसरी बत्ती से मिलाने से दोनों का जल उठना।

एक बत्तीको तेज़ गन्धकके तेजाबमें भिगा दो और दूसरी को शक्कर व पांशुज हरेत (Potassium chlorate)। के चूर्ण में लपेट दो शक्कर और पांशुज हरेत को अलग अलग पीस कर पीछे मिलाना चाहिये वरना खतरा है जब दोनों बत्तियाँ मिलेंगी तो फौरन ही आग पैदा होकर दोनों को जला देगी।

(३)सिगरेटका धूआं दो बन्द गिलासोंमें भेजना

एक गिलासमें चन्द कतरे तेज़ अमोनिया घोल के डाल दो और दूसरेमें तेज़ नमकके तेजाब डाल दो। एक गिलासमें को दूसरे गिलास पर रख कर एक रूमालसे ढक दो और ज़रा अलग खड़े होकर एक सिगरेट को पीओ और कहो कि मैं इसका धूआं इन गिलास में भेजता हूं और रूमालको उठा दो तो सबको आश्चर्य होगा इसका कारण यह है नौसादरके कण इतने छोटे छोटे बन जाते हैं कि धुआं सा मालूम होने लगते हैं।

(४) पानी को शराब और शराबका पानी बनाना

पाँच खाली शीशे गिलास मेज़ पर रख दो और एक बड़े बर्तन से पहिले गिलासमें पानी डालो और जब दूसरेमें डालोगे तो लाल शराब हो जायगा और तीसरेमें डालोगे तो फिर पानी हो जावेगा और चौथे

में डालनेसे पुनः शराब बन जावेगी बना बर्तन अब खाली हो जावेगा और चारों गिलासोंको बड़े बर्तनमें उंडेल दो और फिर चारों गिलासोंके इससे भरो तो अबकी सबमें हल्की शराब बन जावेगी इसको फिर बड़े बर्तनमें डालकर गिलासोंको भरनेसे पानी हो जावेगा। इन चारों गिलासोंको फिर खाली करके बड़े बर्तनमें डाल दो और पुनः पाँचवे गिलासमें जो कि अभी तक इस्तेमाल नहीं हुआ है बड़े बर्तनको उडेल दो तो फिर शराब बन जावेगी। इन सबका कारण इस प्रकार है कि बड़े बर्तनमें सबसे पहिले बजाय पानीके टेनिनका हल्का घोल है जो कि पानीके सदृश मालूम होता है। पहिला और तीसरा गिलास खाली है और दूसरे व चौथे में चन्द कतारे लोहपरहरिद के हैं जिनकी वजहसे टैनिन के घोलका रंग लाल हो जाता है चारों गिलासोंको जब वापिस बड़े बर्तनमें डालते हैं तो लाल रंग हल्का पड़ जाता है जिसको कि गिलासोंमें भर कर दिखला दिया जाता है इसको जब वापिस फिर बड़े बर्तनमें डालते हैं तो चुपके से कर्पठिकाम्ल की एक छोटी सी डली उसमें डाल दी जाती है जिसकी वजहसे लाल रंग उड़ जाता है। पाँचवें गिलासमें आधा चम्मच आमोनिया पड़ी रहती है जिसमें कार्बिट-काम्लके असरके दूर करनेकी ताकत होती है और इसी वजहसे पानीकी फिर शराब बन जाती है

पानी की रोशनाई और रोशनाईका पानी बनाना

दो गिलासोंको जो कि एक दूसरेसे कुछ दूरी पर रक्खे हैं दिखाओ कि एक में पानी है और दूसरेमें रोशनाई। फिर उनको रुमालोंसे ढक दो। जबकी रुमाल हटा दो तो पानीकी रोशनाई और रोशनाईका पानी बन जावेगा। देखने वाले यही कहेंगे कि गिलासोंने अपनी जगह बदल दी हैं। वास्तवमें बात यह है कि पानी वाले गिलासमें टेनिन का घोल है और रोशनाई वाले में टैनिन और हरे कसीस लोहम-गन्धेतका मिश्रण है जो कि रोशनाई कहलाती है। रुमाल ढकते समय पानी वाले गिलासमें एक डली हरे कशीसकी और रोशनाई वालेमें एक डली कार्बिटकाम्लकी डाल दी जाती है थोड़ी देरमें पहिले गिलासमें रोशनाई बन जाती है और रोशनाई वाले में कार्बिटकाम्लके कारण रंग उड़ जाता है

— शङ्कर लाल जिंदल

हमारे संसारका अन्त कैसे होगा

इस संसारका अन्त धूम्राकार धड़ाके साथ होगा। ज्यों ज्यों यह भूमण्डल पुराना होता जायगा त्यों त्यों इसके ऊपर वृद्ध मनुष्योंके मुखके ऊपरकी भांति दरारे पड़ जायेंगी। जिसके पश्चात् थोड़े समयमें यह कुण्डका रूप धारण कर लेगी और अन्तमें हमारा भूमण्डल टुकड़े टुकड़े होकर उड़ जायगा। एक बृहत धड़ाका होगा आकाश मण्डलमें बिजली सी चमके जायगी और यह भूमण्डल अनगिन्ती टुकड़ों में फट कर सदैवके लिये नाश हो जावेगा। पर यह सृष्टि पहले ही की भांति चलती रहेगी।

इसके युगों पहले पृथ्वीके ऊपर मनुष्य मात्र पहाड़ों पर चन्द्रमाका भी इसी प्रकार नाश होता देखनेके लिये एकत्रित होंगे। वे हमारे इस नक्षत्रको बारूदके समान फूटता हुआ देखेंगे।

समुद्रमें ज्वार भाँटेका आना बन्द हो जायगा। रात्रियाँ केवल कुछ तारागणोंके प्रकाशके अतिरिक्त घोर अन्धकारमयी हो जावेंगी।

कई पीढ़ियोंके बाद एक वह दिन आवेगा जब हम लोगोंकी संतानें हमारे मंगल नक्षत्रका भी इसी प्रकार सर्वनाश देखेंगी कि जिसके बाद शीघ्र ही इस पृथ्वी के भी भाग्यका निर्णय किसी न किसी तरह हो जायगा क्योंकि यह तो निश्चय ही है कि सारे तार मन्डल का नाश अवश्य ही इसी प्रकार होगा।

यह है हमारे उस ज्योतिषीकी कल्पना। जो कि इस समय अमरीकामें कैन्सस [cAnsos] नगर के विश्व विद्यालयके ज्योतिषी विभाग के प्रधान है और जिनका कि नाम डाक्टर जिम्समोर आउटर है। इसका आधार इनका १५ वर्षका निरूपण तथा

नक्षत्रोंके दूरबीन सम्बन्धी अध्ययनका पुराना अनुभव है।

उनका कहना है कि जो छोटे छोटे नक्षत्र इस समय दिखाई पड़ते हैं वे किसी एक नक्षत्रके छोटे छोटे टुकड़े हैं जिसका कि कभी प्राचीन समयमें इसी प्रकार सब नाश हुआ था। कुछ तो इतने बड़े हैं कि जिन में अच्छे और बड़े नगर बस सकते हैं परन्तु बहुतसे ऐसे हैं जो कि किसी प्रकार भी फुटबालसे बड़े नहीं हैं; परन्तु सब पर इस प्रकारके चिन्ह मौजूद हैं जो कि इस बातको प्रमाणित करते हैं कि यह किसी एक बड़े नक्षत्रके टुकड़े हैं और जो सृष्टिकी रचना के सहस्रों वर्ष पहले इस प्रकाश मंडलसे अलग हो गया था। उनका कहना है कि उन सूक्ष्म तारागणों की स्थिति तथा स्वभावसे यह बात भी ज्ञात होती है कि वह अलग हुआ नक्षत्र मंगल तथा शुक्रके ग्रह पथोंके बीचमें किसी स्थान पर था और इसके सम र्थनमें उनको बहुतसे अद्भुत प्रमाण भी मिले हैं।

परन्तु अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह नक्षत्र फटा क्यों ?

यह बात सब लोगोंको मालूम है कि जब कोई चीज़ गरम की जाती है तो वह बढ़ती है और जब ठंडी की जाती है। तो सिकुड़ती है; और यदि उस वस्तुका बाहरी हिस्सा भीतरी हिस्सेसे शीघ्र ठंडा हो जाये तो उसके अन्दर एक प्रकारकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो कि फल स्वरूप उसको तोड़नेकी शक्ति करती है यदि वह शक्ति बहुत बढ़ी हो जाती है तो वस्तु चिटक कर टुकड़े टुकड़े हो जाती है।

किसी समयमें हमारा सारा तारा मंडल बहुत गरम था और धीरे धीरे ठंडा होने लगा जिन नक्षत्रोंने बहुत भारी शक्ति उत्पन्न हो गई वे फट गये और दरारें पड़ गई थोड़े समयमें दरारोंने बृहत रूप धारण कर लिया और फल स्वरूप धड़ाकेके साथ फट गया। उनका कहना है कि पृथ्वीके फटनेके पहले उस का तापक्रम इतना कम हो जावेगा कि उस पर कोई जीवित ही न बचेगा और यदि कोई बच भी गया तो जिस समय पृथ्वी फटेगी वह मरणासन्न होकर पृथ्वी परसे सदाके लिये चल बसेगा।

—चन्द्र मोहन शर्मा

३ ज्वलन

दीप्ति:—यदि किसी पदार्थका तापक्रम इतना बढ़ जाय कि वह प्रकाश देने लगे तो इस पदार्थको 'दीप्त पदार्थ' तथा इस घटनाको 'दीप्ति' कहते हैं।

प्रयोग (१) लोह तथा मगनीशमके टुकड़े लेम्बनिक (प्रेफाइट) कोयला तथा लोह चूर्ण लो। इनमें से पहले पाँचोंको गरम करो तथा लोह चूर्णका बुन्सन दग्धककी भुक्ता ज्वालामें गिरा दो। प्रत्येक वस्तु प्रकाश देगी परन्तु प्रयोगके बाद पता चलेगा कि परगौण्यम ग्रेफाइट तथा लोहा तो ठण्डे होने पर अपनी वास्तविक दशाको प्राप्त हो गये हैं। परन्तु कोयला, लोह चूर्ण और मगनीस ओषिद बन जानेके कारण परिवर्तित हो गये हैं।

प्रयोग (२) लगभग १ तोला आमोनियमद्विरागेत एक चीनीके बर्तनमें सावधानीसे गरम करो और कोई भी परिवर्तित दिखाई पड़ते ही ज्वाला हटा लो और देखो कि लाल रंगके रवे जिस समय हरे रंग के चूर्णमें परिवर्तन होंगे वे एक प्रकाश देंगे।

हर प्रकारसे दीप्तिका कारण या तो बाह्य ताप अथवा रासायनिक परिवर्तनके कारण उत्पन्न हुआ ताप होता है।

द्रव तथा गैसें भी इतनी दीप्त हो सकती हैं कि वे दीप्त हो जावें जैसा कि उदजन तथा ओषजनमें विद्युत प्रवाह करते समय प्रकाश होता है।

दीप्तिका सबसे बड़ा उदाहरण ज्वाला है।

ज्वाला—जब कोई गैस अथवा वाष्प ऐसे वातावरणमें लाई जावे, जिसके साथ यह रासायनिक क्रिया कर सके तथा इस रासायनिक परिवर्तनसे उत्पन्न हुआ ताप इतना अधिक हो कि उस गैसके कण दीप्त हो जावें तो ज्वाला उत्पन्न हो जाती है। ताप और ज्वाला उस स्थान पर उत्पन्न होती हैं, जहाँ कि रासायनिक परिवर्तन हो रहा है। अर्थात् जहाँ पर इन दोनों गैसोंका बरातल मिल।

है जैसा कि उद्जनमें भरा हुई नंचेका मुँह हो किये हुए जलती हुई बोतलमें रखनेसे ज्ञात होगा। जब हम कहते हैं कि उद्जन अथवा कोल गैस ज्वलनशील है अथवा वायु ज्वलनपोषक है तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि उद्जन अथवा कोल गैस वायुमें जलते हैं परन्तु जैसा कि नीचेके परीक्षणसे ज्ञात होगा, वायु कोल गैसमें जलाई जा सकती है। यहाँ पर वायु ज्वलनशील तथा कोल गैस ज्वलन पोषक है।

प्रयोग [३] एक मामूली लम्पकी चिमनीमें एक दो छिद्रों वाले काककी डाट लगा दो तथा उन दो छिद्रोंमें दो नलिकायें जिनमें से एक सीधी हो तथा दूसरी समकोण बनाती हुई झुकी हुई हो। इस दूसरी नलिकाका सम्बन्ध एक रबड़ की नालीके द्वारा कोल गैससे कर दो। चिमनीके ऊपरका छिद्र बन्द करदो तथा गैसको सीधी नलिकासे बाहर निकलनेदो जब तक कि पूरी चिमनी वायुसे रिक्त न हो जाय। अब सीधी नलिकाके बाहरी भागको जहाँसे गैस निकल रही है जला दो और ऊपरके छिद्रको खोल दो अब वह ज्वाला धीरे धीरे काँचकी नालीके अन्दरसे होती हुई ऊपर चढ़ जावेगी। यहाँ पर वायु कोल गैसमें जल रही है अथवा वायु ज्वलनशील है तथा कोलगैस ज्वलनपोषक। कोलगैस को हम अब ऊपर के छिद्र पर भी जला सकते हैं। इस स्थान पर पहलेका उलटा अर्थात् कोलगैस के ज्वलन शील है और वायु ज्वलन पोषक।
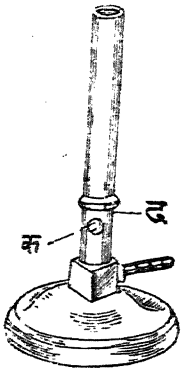
चित्र ३५

दोनों जगह ज्वाला उसी स्थान पर है जहाँ वायु और कोल गैसके धरातल आपसमें मिलते हैं और दोनों गैसोंमें रासायनिक परिवर्तनके कारण उद्जन और कर्बन (यह दोनों कोलगैसमें उपस्थित रहते हैं क्रमशः वायुके ओषजनके साथ मिल कर जल तथा कर्बन द्विओषिद बनाते हैं।

(१) क + ओ$_2$ = क ओ$_2$
कर्बन + ओषजन = कर्बन द्विओषिद

(२) २उ$_2$ + ओ$_2$ = २ उ$_2$ ओ
उद्जन + ओषजन = जल
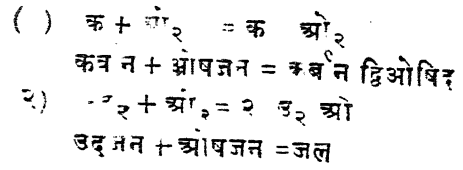
जब दोनों आपसमें अच्छी तरहसे मिलाई जा कर तब जलाई जाती है तो रासायनिक परिवर्तन बहुत शीघ्र हो जाता है तथा वे गैस एक दम भभक उठती हैं तथा यदि एक गैस ऐसे वातावरण में जिसमें वह जल सके नियमित रूपसे लाई जावे तो वह धीरे २ स्थिर ज्वालाके साथ जलती हैं और उसका ज्वाला का आकार गैसके परिमाण उस छिद्र के आकार जिसमें होकर वह निकल रही है तथा वायु की धाराओं पर निर्भर होता है।

—०—

समालोचना

हिन्दी बुक कीपिंग—ले० श्रीचतर सैनजैन, बी० कोम मिलनेका पता—प० खजान सिंह शर्म्मा, बुकसेलर, मेरठ पृ० सं० ३२ + ४०।

बहीखाता सम्बन्धी ज्ञातव्य विषयों पर इस पुस्तकमें उपयोगी सामग्रीका समावेश किया गया है। अकाउण्ट बैलेन्स शीट, कैशबुक, चैक, हुंडी आदि के नियम दिये गये हैं पुस्तकको भाषा अतिसाधारण है अंग्रेजी हिन्दी और उर्दू तीनोंका मिश्रण तैयार किया गया है। अंग्रेजी शब्द अंग्रेजी लिपिमें ही लिखे गये हैं, अतः अंग्रेजी न जानने वालोंके लिये यह पुस्तक सर्वथा व्यर्थ ही सिद्ध होगी। बहुतसे अंग्रेजी शब्दों का जिनके हिन्दी पर्य्यायवाची पद प्रचलित भी हैं, यदि हिन्दी नाम दिया जाता तो अधिक उपयुक्त होता। निस्सन्देह पुस्तकका विषय अत्यन्त उपयोगी है। सब बातें समझा कर स्पष्ट रूपमें लिखी गई हैं। यदि भाषा सम्बन्धी दोष दूर हो जायं तो पुस्तकका प्रचार हो सकता है।

मेघमहोदय वर्षप्रबोध—अनुवादक तथा प्रकाशक—पं० भगवानदास जैन सेठिया जैन प्रिंटिंग प्रेस बीकानेर पृ० सं० ५१२ मूल्य ४) सजिल्द।

फलित ज्योतिषमें विश्वास रखने वालोंके लिये यह पुस्तक कदाचित उपयोगी सिद्ध होगी। हम तो फलित ज्योतिषको मिथ्यान्धविश्वास और कल्पना मात्र समझते हैं अतः इसके विषयमें कुछ लिखना ही आवश्यक है। इस ग्रन्थके मूल रचयिता श्री मेघविजय सूरि हैं। जैन समुदायके लेखकोंमें इनका समुचित सम्मान होता है। सम्पूर्ण ग्रन्थमें तेरह अधिकार हैं जिनमें वायु विचार भिन्न भिन्न राशियोंमें गुरुफल, भिन्न भिन्न ऋतुओं बादलोंके पृथक पृथक प्रभाव आदि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। अनुवादक महोदयने मूल श्लोकोंके अनुवादमें सफलता पाई है। भाषा अति उत्तम है।

मीठी चुटकी—लेखक 'त्रिमूर्ति' प्रकाशक साहित्य मन्दिर दारागंज प्रयाग। पृ० स० १७०, सजिल्द, मूल्य १॥) छपाई कागज उत्तम।

हिन्दी भाषाके तीन होनहार युवकों (पं० भगवतीप्रसाद जी बाजपेयी, श्रीमनोज तथा श्रीरघुनन्दनजी सकसेना साहित्यरत्न) की लेखनी द्वारा यह छोटा उपन्यास अवतरित हुआ है। इस प्रकारके सहकारी परिश्रम द्वारा हिन्दीमें लिखा गया यह पहला उपन्यास है। शिक्षित युवक अतुल और साहित्य-प्रेमिका युवती सौदामिनीके आकस्मिक प्रेम द्वारा इसकी आख्यायिकाका आरम्भ होता है। अतुल का चरित्र आरम्भसे अन्त तक विशेष गम्भीरता से युक्त है। उसके आरम्भमें प्रेम उद्रेक है, उसके जीवनके मध्यकालमें नारी स्वतन्त्रताके रहस्यकी उलझनें हैं और अन्तिम जीवनमें अनुरक्त वैराग्य है। सौदामिनी का रुधिर स्वयम नारी पददलित अवस्थाका सुधार करनेके लिये नित्य-नित्य उग्र और उत्तप्त होता रहता है। यह अबोध बालिका संसारके कार्य्य-क्षेत्रमें पदार्पण करना चाहती है पर इस समाजकी कूटनीतियों का उसे परिचय नहीं है। लेखकों ने जिस मर्मस्पर्शिनी लेखनी द्वारा अतुल-सौदामिनी परित्याग विषयक स्टेशनका दृश्य अंकित किया है, वह सम्पूर्ण उपन्यास की कीर्ति को स्थायी रक्खेगा।

उपन्यासके कुछ अंश विशेष सन्देहजनक प्रतीत होते हैं। सौदामिनीको सशस्त्र अवतरित कर देना अकबरके 'मीना बाजार' का स्मरण दिला देता है। लेखकों ने पाश्चात्य-स्वातन्त्र्य-युक्ता सौदामिनीको राजपूतना श्रृंगार पहिना कर अवश्यही अक्षम्य अस्वाभाविकता प्रदर्शित की है। बेगारके प्रश्न को अतुल द्वारा सम्पादित कराया गया है। उपन्यास पाठकोंके लिये यह विषय अब कुरुचिपूर्ण हो गया है। यदि उपन्यास लेखक ग्रामीण-जीवन पर रहस्यमयी दृष्टि डालें तो उन्हें बहुत सी ऐसी कुरीतियोंका पता चल जायगा जो साधारणतः कुरीतियाँ नहीं समझी जाती हैं पर उनके परिणाम बड़े भयंकर होते हैं।

उपन्यास में गुलबदन और राजकिशोर के चरित्र विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रेम-दीपक पर सर्वस्व परित्याग करना गुलबदन का ही काम है। उसके जीवन की संयम स्वाभाविकता और उसके अन्तिमकाल की करुणाजनक अवस्था हृदय पर सदाही अङ्कित रहेगी। राजकिशोरका जीवन रहस्य मय रहा है। इनके हृदय का प्रेम सदा रहस्य के आवरणसे ढकी रही है।

उपन्यासके आरंभ भाग की भाषा ललित, स्वाभाविक तथा मञ्जु है, अन्तिम पृष्ठों की कृत्रिम पर श्रृंगार युक्त है और मध्यका मध्यम है। यदि उपन्यास-पाठकों ने ग्रन्थ का समादर किया तो इन्हीं लेखकों में से बंकिम, शरद, या प्रेमचन्द उत्पन्न हो सकते हैं।

—सत्यप्रकाश

उदौष और कीतोनिक अम्ल

(Hydroxy and ketonic acid)

(ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी)

धारण मद्जिकाम्लोंका वर्णन पहले दिया जा चुका है। प्रत्येक कार्बनिक अम्लमें कमसे कम एक कर्बोषील मूल—कओओउ होता है। ऐसे भी अम्ल पाये जाते हैं जिनमें कर्बोषील मूलके अतिरिक्त उदौषिलमूल, कीतोनिक मूल, मद्यानाद्रिक मूल अथवा अमिनोमूल भी हो। ऐसी अवस्थामें अम्ल उदौषाम्ल, कीतोनिकाम्ल, मद्यानाद्रिकाम्ल अथवा अमिनो अम्ल कहे जायंगे।

```
क उ₃          क उ₂ओ उ        क ओ क उ₃
|             |              |
क ओ ओ उ       क ओ ओ उ        क ओ ओ उ
सिरकाम्ल      उदौषसिरकाम्ल    कीतोनिकाम्ल

क उ ओ          क उ₂ नो उ₂
|              |
क ओ ओ उ        क ओ ओ उ
मद्यानाद्रिकाम्ल   अमिनोसिरकाम्ल
```
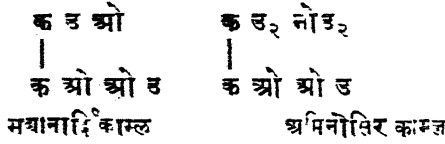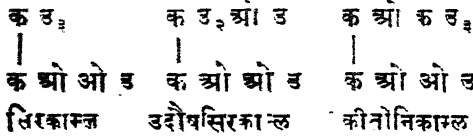
इस प्रकारके कुछ अम्लोंका वर्णन यहां दिया जावेगा।

उदौषाम्ल

उदौष सिरकाम्ल और उदौष अम्रिकाम्ल इस प्रकारके अम्लोंमें मुख्य हैं। उदौष सिरकाम्लको मधुओलिकाम्ल भी कहते हैं क्योंकि यह मधुओलके ओषदीकरणसे प्राप्त होता है जैसा कि पहले कहा जा चुका है। मधुओल पर हलके नोषिकाम्लका प्रभाव निम्न प्रकार होता है:—

```
क उ₂ ओ उ                क उ₂ (ओ उ)
|          + ओ₂ =       |              + उ₂ ओ
क उ₂ ओ उ                क ओ ओ उ
मधुओल                   मधुओलिकाम्ल
```
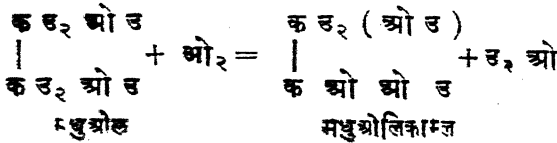
यह पहले बताया गया है कि सिरकाम्लमें हरिन गैस प्रवाहित करनेसे हर-सिरकाम्ल, ह क उ₂ क ओ ओ उ, बनता है। यदि इस अम्लके पांशुज लवण के जलीय घोलको उबालें तो हरिमूल उदौषिल मूल से स्थापित हो जाता है और उदौषसिरकाम्ल अर्थात् मधुओलिकाम्ल प्राप्त हो जाता है।

```
क उ₂ ह                          क उ₂ ओ उ
|          + उ₂ ओ =             |            + पां ह
क ओ ओ पां                       क ओ ओ उ
पांशुज हर सिरकेत                 मधुओलिकाम्ल
```
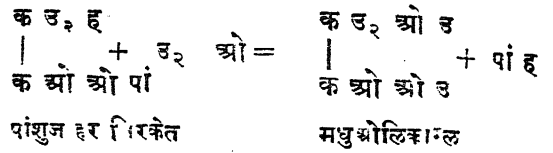
मद्यानाद्रों के अथवा कीतोनोंके श्याम उदिनों का उदविश्लेषण करनेसे भी उदौषाम्ल बनते हैं। सिरकमद्यानाद्रि श्यामउदिन इस प्रकार उदौष—अम्रिकाम्ल देता है।

```
क उ₃                                   क उ₃
|                                      |
क उ ∠ ओ उ      + २ उ₂ ओ =              क उ ओ उ + नो उ₃
      क नो                             |
                                       क ओ ओ उ
                                       उदौष अम्रिकाम्ल
```
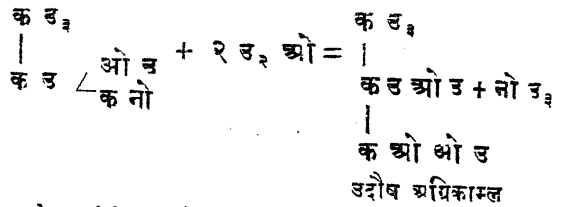
उदौषाम्लोंमें उदौषीलमूल होनेके कारण अम्लोंके अतिरिक्त मद्योंके गुण भी विद्यमान रहते हैं ये तत्सम्बन्धी मद्जिकाम्लोंकी अपेक्षा जलमें अधिक घुलनशील हैं। स्फुर पंचौषिदके प्रभावसे उदौषिलमूल हरिन से स्थापित हो जाते हैं। कर्बोषिल का उदौषिल अंश भी हरिन्से स्थापित हो जाता है।

```
क उ₂ ओ उ              क उ₂ ह
|            →        |
क ओ ओ उ               क ओ ह
                      हर सिरकील हरिद
```
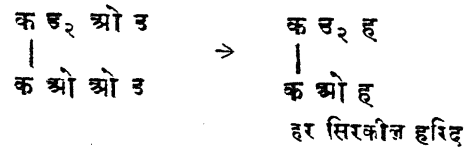
धातु सैन्धकम्से दो सैन्धकम् अणु दो उदजनों के स्थान ले लेते हैं।

```
क उ₂ ओ उ                क उ₂ ओ सै
|           + २ सै =    |
क ओ ओ उ                 क ओ ओ सै
                        द्विसैन्धकमधुओलेत
```
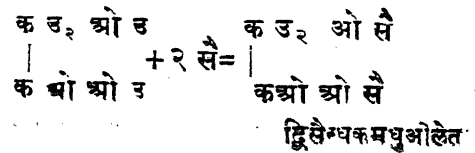
मधुओलिकाम्लके ओषदीकरण करने पर पहिले तो मद्यानादिकाम्ल-मधुकाष्ठिकाम्ल बनता है जो पुनः ओषदीकृत होनेपर काष्ठिकाम्लमें परिणत हो जाता है:—

क उ₂ ओ उ → क उ ओ
| |
क ओ ओ उ   क ओ ओ उ
मधुओलिकाम्ल   मधुकाष्ठिकाम्ल
↓
क ओ ओ उ
|
क ओ ओ उ
काष्ठिकाम्ल
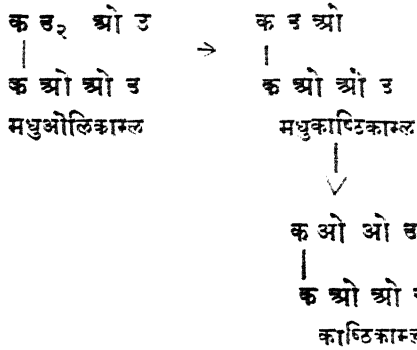
उदौषअग्रिकाम्ल—अग्रिकाम्लमें उदौषिलमूल दो प्रकारसे स्थापित किये जा सकते हैं:—

क उ₃	क उ₃	क उ₂ ओ उ
क उ₂	क उ (ओ उ)	क उ₂
क ओ ओ उ	क ओ ओ उ	क ओ ओ उ
अग्रिकाम्ल	क-उदौष अग्रिकाम्ल	ख-उदौषअग्रिकाम्ल
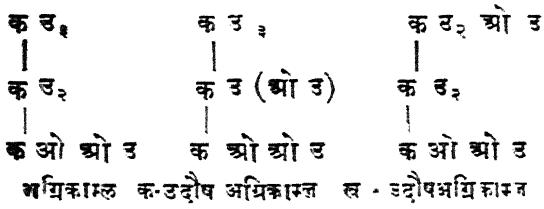
इनमेंसे एक प्रकारके अम्लको क-उदौषद अग्रिकाम्ल और दूसरेको ख उदौष अग्रिकाम्ल कहते हैं। कर्बोषीलमूलके पास वाले पहले कर्बनमें यदि कोई मूल-हरो उदौष अमिनो आदि—स्थापित हुआ हो तो इस अम्लको क हरो, क उदौष आदि अम्ल कहेंगे। यदि कर्बोषीलसे गिनने पर दूसरे कर्बनमें मूल स्थापित किये गये हों तो ख-अम्ल प्राप्त होते हैं, तीसरे कर्बन से संयुक्त होने पर ग-अम्ल, और इसी प्रकार अन्य समझना चाहिये—
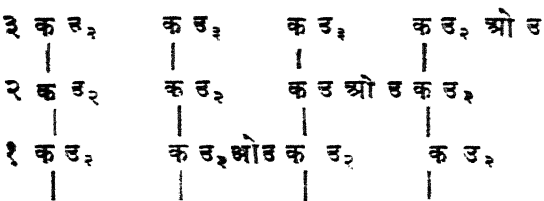
३ क उ₃	क उ₃	क उ₃	क उ₂ ओ उ
२ क उ₂	क उ₂	क उ ओ उ क उ₃	
१ क उ₂	क उ₂ ओउ	क उ₂	क उ₂
कओओउ	कओओउ	कओओउ	कओ ओउ
नवनीतिकाम्ल	क-उदौषद् नवनीतिकाम्ल	ख-उदौष नवनीतिकाम्ल	ग-उदौष नवनीतिकाम्ल

गरम करने पर ये तीन प्रकारके उदौषाम्ल तीन भिन्न भिन्न पदार्थों में परिणत हो जाते हैं। क—उदौष अग्रिकाम्ल निम्न प्रकार दुग्धिद (lactide) नामक यौगिक देता हैं:—

क उ₃ क उ ओ उ उ ओ ओ क
| + |
क ओ ओ उ ओ उ   क उ क उ₃

क उ₃ क उ — ओ — क ओ
= | | + २ उ ओ
क ओ — ओ — क उ क उ₃

दुग्धिद
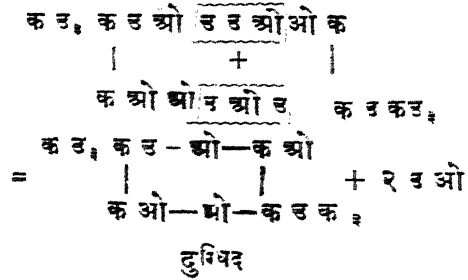
ख—उदौष अग्रिकाम्ल गरम करने पर चरपरीलिकाम्ल में परिणत हो जाता है।

क उ₂ ओ उ   क उ₂
| ||
क उ₂ = क उ + उ₂ ओ
| |
क ओ ओ उ   क ओ ओ उ

चरपरीलिकाम्ल
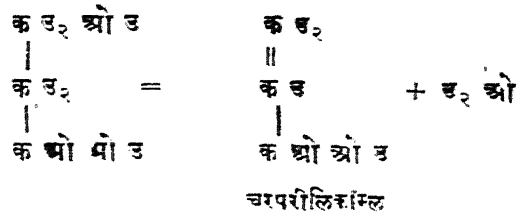
ग-उदौष नवनीतिकाम्ल गरम करने पर ग—नवनीत—दुग्धोन (lactone) देता है—

ग—नवनीत दुग्धोन
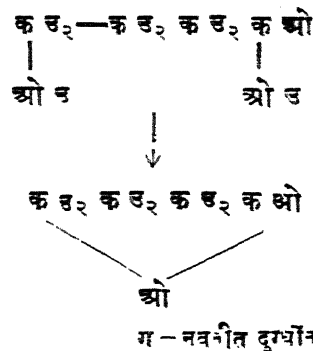
दुग्धिकाम्ल (lactic acid)—क-उदौष अग्रिकाम्ल कउ₃ कउ (ओउ) क—ओ ओ उ—शीले नामक वैज्ञानिकने सं० १८३७ वि० में दहीसे इस अम्लको

पृथक किया था। दूधकी शक्कर दुग्धोजके विभाजन से यह अम्ल बन जाता है। द्राक्षोज नशास्ता अथवा गन्नेकी शक्करसे भी यह बन सकता है।

$क_६ उ_{१२} ओ_६ = २ क उ_३ क उ (ओउ) कओ ओउ$

द्राक्षोज दुग्धिकाम्ल

क—हर अम्लसाम्लको पानीके साथ उबालकर भी यह बनाया जा सकता है।

$क उ_३ क उ ह कओ ओउ + उ_२ ओ$

क—हर अम्लिकाम्ल

$= क उ_३ क उ (ओउ) क ओ ओ उ$

दुग्धिकाम्ल

हलके गन्धकाम्लके साथ इसे उबालनेसे यह सिरकमद्यानाद्र और पिपीलिकाम्ल दे देता है:—

$क उ_३ क उ (ओउ) क ओ ओ उ$

$= क उ_३ क उ ओ + उ क ओ ओ उ$

दुग्धिकाम्ल दिग् प्रधान प्रकाशको मोड़नेमें अशक्त है। इसका दस्त-लवण गरमजलमें मणिभ रूपमें तैयार बनाया जा सकता है। इस दस्त लवणमें स्फटिकीकरण के तीन जल-अणु होते हैं। इसका सूत्र यह है—

$\left.\begin{matrix} क उ_३ क उ (ओ उ) क ओ ओ \\ क उ_३ क उ (ओ उ) क ओ ओ \end{matrix}\right> द + ३ उ_२ ओ$

दस्त-दुग्धेत

पल दुग्धिकाम्ल—(Sarco $क उ_३ क उ$ (ओ उ) कओ ओ उ—लीबिग ने इसे मांसके रससे निम्न प्रकार बनाया था। मांसके रसको जलमें घोलकर मद्यद्वारा ऋण्डसित पदार्थों को अवक्षेपित कर लिया गया जाता है। अवक्षेपित पदार्थोंको छानकर अलग कर लो। फिर इसके मद्यको उबालकर उड़ा दो। शेष पदार्थमें अम्ल डालो। पल सिरकाम्ल पृथक् हो जायगा जिसे ज्वलक द्वारा निष्कासित करसकते हैं। पलदुग्धिकाम्लका सूत्र वही है जो साधारण दुग्धिकाम्ल का सूत्र था। पर यह दिग् प्रधान प्रकाश को दायें हाथकी ओर मोड़ देता है अर्थात् दक्षिण भ्रामक है। इसके दस्त-लवणमें स्फटिकीकरणके केवल दो जल अणु होते हैं। इन दो गुणों में यह दुग्धिकाम्ल से भिन्न है। पल शब्द का अर्थ मांस है मांस के रस से अम्ल के निकाले जाने के कारण इसका नाम पल-दुग्धिकाम्ल पड़ा है।

इस अम्ल की प्रकाश-भ्रामक-शक्ति (optical-activity) इसके असमसंगतिक कर्बन परमाणु के कारण है अर्थात् इसमें एक ऐसा कर्बन परमाणु है जिसकी चारों संयोग शक्तियाँ चार भिन्न भिन्न मूलों से संयुक्त हैं—

```
      क उ₃
       |
  उ — क — ओ उ
       |
     क ओ ओ उ
```
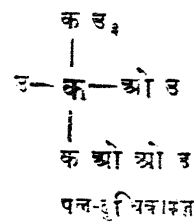
पल-दुग्धिकाम्ल

अतः तीन प्रकारके दुग्धिकाम्ल हो सकते हैं एक तो वह जो दिग्प्रधान प्रकाशको दाहिनी ओर मोड़े, और दूसरा वह जो इसे बायीं ओर मोड़े। यदि इस प्रकारके दाहिनी और बायीं ओर मोड़ने वाले दोनों कर्बनों की सम मात्रा मिलाकर एक मिश्रण तैयार किया जाय तो यह दिग् प्रधान प्रकाशको किसी ओर नहीं मोड़ेगा। दही से निकला हुआ दुग्धिकाम्ल, वस्तुतः, ऐसा ही अम्ल है। यह दक्षिण भ्रामक और उत्तर भ्रामक अम्लोंका सम-मिश्रण है। उत्तर-अम्ल दुग्धिकाम्ल और दक्षिण पल दुग्धिकाम्ल के रूपको में निम्न प्रकार चित्रित कर सकते हैं

```
  क उ₃                     क उ₃
  |                          |
  क — कओओउ          कओओउ — क
  /\                         /\
 उ  ओउ                    ओउ  उ
```

हम एक अम्लको दूसरे अम्लका प्रतिबिम्ब कह सकते हैं।

उद्चरपरिकाम्ल—ज्वलीलिनदुग्धिकाम्ल—$क उ_२$ (ओ उ) $क उ_२$ क ओ ओ उ—

मधुओलिकाम्ल से ओषदीकरण के बनाया जा सकता है।

क उ₂ ओ उ | + ओ = क उ ओ | + उ₂ ओ
क ओ ओ उ — क ओ ओ उ
मधुओलिकाम्ल — मधुकाष्ठिकाम्ल
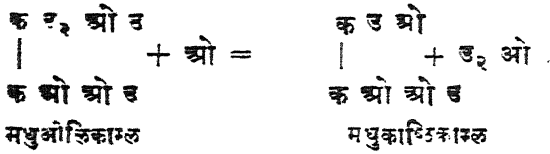
द्विहर सिरकाम्लको जलके साथ उबालनेसे भी यह निम्न प्रकार बन सकता है:—

क उ ह₂ | + २ उ₂ ओ = क उ (ओ उ)₂ | + २ उ ह
क ओ ओ उ — क ओ ओ उ
द्विहरसिरकाल

↓

क उ ओ | + उ₂ ओ
क ओ ओ उ
मधु ष्ठिक म्ल
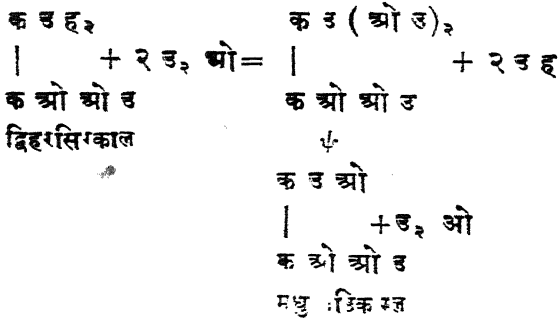
कीतोनिकाम्ल (Ketonic acid)

तीन कीतोनिकाम्ल विशेष उल्लेखनीय हैं:—

१. दाह-इमलिकाम्ल (pyruvic acid)

२. सिरको सिरकाम्ल acetoacetic)

३. उत्तरिकाम्ल (Laevulic)

दाह-इमलिकाम्ल—या सिरको पिपीलिकाम्ल-क उ₃कओ. कओ ओ उ.-जैसा कि इस अम्लके नाम से स्पष्ट है, यह इमलिकाम्ल को पांशुज-उदजन गन्धेत के साथ स्रवण करनेसे बनाया जा सकता है—

क ह ओ उ. क ओ ओ उ | = क उ₃ | + क ओ₂ + उ₂ ओ
क उ. ओ उ. क ओ ओ उ — क ओ.क ओ ओ उ
इमलिकाम्ल — दाह-इमलिकाम्ल

इसके अवकरण करनेसे दुग्धिकाम्ल मिलता है—

क उ₃ | क ओ + उ₂ | क ओ ओ उ = क उ₃ | क उ ओ उ | क ओ ओ उ
दाह इमलिकाम्ल — दुग्धिकाम्ल
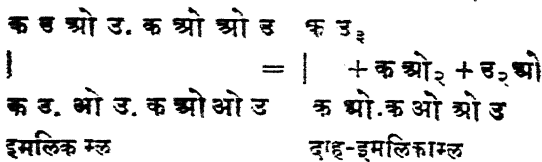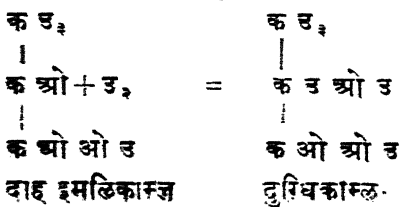
और इसके ओषदीकरणसे सिरकाम्ल और कर्बन द्विओषिद मिलता है:—

क उ₃ | क ओ | क ओ ओ उ + ओ = क उ₃ | क ओ ओ उ + क ओ₂
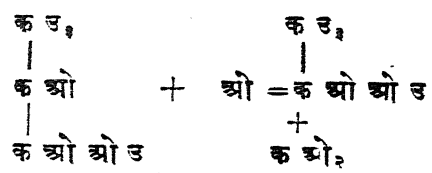
अतः यदि अमोनिया मिश्रित रजतनोषेत घोल के साथ यह उबाला जाय तो इसका ओषदीकरण हो जायगा और रजत-दर्पण दिखाई पड़ेगा।

सिरको सिरकाम्ल—कउ₃कओ कउ₂ कओ ओ उ यह अम्ल केवल सम्मेल रूपमें पाया गया है। ज्वलील सिरको सिरकेत, क उ₃कओकउ₂कओ ओज्व का उपयोग अनेक संश्लेषणोंमें किया जाता है। सुविधाके लिये हम ज्वलील मूल—क₂उ₅—को 'ज्व' संकेतसे सूचित करेंगे। ज्वलील सिरको सिरकेत ज्वलील सिरकेतसे निम्न प्रकार बनाया जा सकता है—

एक कुप्पीमें दस भाग शुद्ध ज्वलील सिरकेतमें सैन्धकम् धातुके छोटे छोटे टुकड़े अथवा तार डालो। आरम्भमें प्रकिया धीरे धीरे होगी पर बादको यह इतनी प्रचंडतासे होगी कि द्रव उबलने लगेगा। कुप्पीको उलटे भभकेसे संयुक्त कर दो। यदि कुछ सैन्धकम् बिना घुले शेष रह जाय तो इसे जल कुण्डी पर गरम करके घुला दो। इस प्रकार ज्वलील सिरको सिरकेत का सैन्धक यौगिक बन जाता है। अब यदि इसमें हलका सिरकाम्ल डाला जाय तो ज्वलील सिर-को सिरकेत सम्मेल तैलके समान पृथक् हो जायगा अलग करके तैलका आंशिक स्रवण कर लो १७५°-१८५° श के बीचमें जो द्रव स्रवित होगा वह ज्वलील सिरको सिरकेत है।

ज्वलील सिरकेत पर सैन्धकम् का प्रभाव तभी पड़ता है यदि कुछ ज्वलील मद्य भी विद्यमान हो। सब प्रक्रियायें किस प्रकार होती है यह कहना अत्यन्त कठिन है। क्लैसनके कथनानुसार सब प्रक्रियायें चार श्रेणियोंमें होती हैं:—

(१) सैन्धकम् पहले ज्वलील मद्यपर प्रभाव डाल कर सैन्धक ज्वलीलेत बनाता है:—

२ क$_2$ उ$_5$ ओ उ + से = २ क$_2$ उ$_5$ ओ सै + उ$_2$

(२) फिर सैन्धक ज्वलीलेत ज्वलीज सिरकेत पर प्रभाव डाल कर एक युक्त यौगिक बनाता है:—

कउ$_3$ कओओ ज्व + ज्वओसै = क उ$_3$ (—ओ सै, —ओ ज्व, —ओ ज्व)

यह युक्त यौगिक केवल कल्पित है और यह पृथक नहीं किया जा सकता है।

(३) उपर्युक्त प्रक्रियामें जनित युक्त यौगिक ज्वलील सिरकेत के एक और अणु से प्रक्रिया करके ज्वलील सिरको-सिरकेत का सैन्धक यौगिक बना देता है:—

कउ$_3$ क (—ओ सै, —ओ ज्व, —ओ ज्व) + कउ$_2$ क ओ ओ ज्व

= कउ$_3$ क (ओ सै): कउक ओ ओ ज्व + २ ज्वओउ

सैन्धक सिरके सिरकिक सम्मेल   ज्वलील मद्य

(४) सैन्धक सिरकोसिरकिक सम्मेल में सिरकाम्ल डालने से सिरकोसिरकिक सम्मेल पृथक् हो जाता है—

कउ$_3$ क (ओ सै): कउकओओज्व + कउ$_3$ कओओउ

= कउ$_3$ क ओउ : कउकओओज्व + कउ$_3$—

या = कउ$_3$ कओकउ$_2$ कओओज्व (२) कओओज्व

सिरको सिरकिक सम्मेल

इस प्रकार समस्त प्रक्रियाओं द्वारा सिरकोसिरकिक सम्मेल बन जाता है। चौथी प्रक्रिया से यह भी स्पष्ट है कि सिरको सिरकिक सम्मेल का सूत्र दो प्रकार से लिखा जा सकता है। इसमें एक उद्जन भ्रमणशील है—

कउ$_3$ क ओ , कउ क ओ ओ ज्व

↖ ↑
उ

इस प्रकारके गुणको भ्रमण रूपता (tautomerism) कहते हैं।

ज्वलील सिरको सिरकेत नीरंग द्रव है जिसमें केले की सुन्दर सुगन्ध होती है। इसका क्थनांक १८२° है। लोहिक हरिद के घोलके साथ यह बैंजनी रंग देता है। इसका उपयोग अनेक संश्लेषणों में होता है जिनमें से कुछ का वर्णन किया जायगा।

(क) यदि सिरको सिरकिक सम्मेलमें मद्यमें घुला हुआ सैन्धकम् छोड़ा जाय तो सैन्धक सिरको सिरकिक सम्मेल बनता है, इस सैन्धक यौगिक को किसी मद्यील नैलिद के साथ उबाला जाय, तो सैन्धकम् के स्थान पर मद्यील मूल स्थापित हो जायगा दारील नैलिद और सैन्धक सिरको सिरकिक सम्मेल से दारील सिरको सिरकिक सम्मेल निम्न प्रकार बनता है :—

क उ$_3$ क ओ क उ सै क ओ ओ ज्व

\+

क उ$_3$ नै

= क उ$_3$ क ओ क उ क ओ ओ ज्व (| क उ$_3$) + सै नै

दारील सिरको सिरकिक सम्मेल

इस प्रकार सम्मेलके एक उद्जनके स्थानमें मद्यीलमूल स्थापित हो जाता है, यदि दूसरे उद्जनके भी स्थानमें मद्यील मूल स्थापित करना हो तो दारील सिरको सिरकिक सम्मेलमें फिर सैन्धकम्के मद्यील घोलकी उपयुक्त मात्रा छोड़कर सैन्धक यौगिक बना लेना चाहिये। यह सैन्धक यौगिक फिर मद्यील नैलिदके दूसरे अणुसे संयुक्त होकर, द्विदारील सिरको सिरकिक सम्मेल बना देता है।

क उ$_3$ क ओ क (| क उ$_3$) सै क ओ ओ ज्व + क उ$_3$ नै

= क उ$_3$ क ओ क (क उ$_3$ | कउ$_3$) क ओ ओ ज्व + सै नै

द्विदारील सिरको सिरकिक सम्मेल

से दीमक सभ्यता की ओर कदम बढ़ाती चली जा रही है और यह बात निश्चय पूर्वक कही जा सकती है कि दीमक वर्तमान काल में सभ्यता की जिस मंजिल पर पहुँची हैं, उस मंजिल की ओर मनुष्य प्राणी धीरे धीरे कदम बढ़ाता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है। सभी प्रकार के वैज्ञानिक साधनों के होते हुए भी आज मनुष्य की अकल, दीमक के मुकाबिले में, एकदम बेकार है। कहें तो कह सकते हैं कि दीमक के सामने बेचारे मनुष्य की कोई वकत ही नहीं है।

मनुष्यको अभिमान है कि उसने अपनी बुद्धि के बलसे अनेकानेक यंत्र और मशीनें तैयार की हैं, जिनके द्वारा वह असंभव को भी संभव कर दिखा सकता है। मगर दीमक भी मनुष्य से रत्ती भर भी पीछे नहीं है। अपनी परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार उसने भी विशेष प्रकार के साधन निर्माण कर लिए हैं। यदि सफलता की दृष्टि से तुलना की जायगी तो दीमक का पलड़ा ही भारी रहेगा। उनके नगर की रचना अद्वितीय है। इंजीनियरिंग का काम तो इतना अपूर्व है कि मनुष्य अभी तक उतनी उन्नति कर ही नहीं पाया है। दीमक को कुछ ऐसे रासायनिक गुह्य (chemical secrets) ज्ञात हैं, जो मनुष्य के लिए इस समय तक, अज्ञय हैं। दीमक कुकुर-मुत्त (Mushroom) की उन जातियों की सफलता पूर्वक खेती करती हैं, जिनकी काश्त मनुष्य प्राणी आजतक कर ही नहीं पाया है। सम्पूर्ण बुद्धिमत्ता और कौशल को खर्च कर देने पर भी मनुष्य प्राणी के लिये इन जातियों की काश्त करना असम्भव-सा है। दीमक ने वानस्पतिक भोज्य पदार्थ-सेल्यूलोज (ग्लिूकोज) बनाने की रीति भी ढूंढ़ निकाली है। मनुष्य अभी तक इसका पता ही नहीं पा सका है।

यह एक सर्वमान्य बात है कि कोई प्राणी लकड़ी का बुरादा पचा नहीं सकता। दीमक को भी यह नियम लागू होता है। मगर अपनी बुद्धिमता के बल पर दीमक लकड़ी का बुरादा पचाने में समर्थ हो सकी है। मजदूर जाति (workers) की दीमक ने अपने शरीरमें कुछ कीटाणुओं (protozoa) का प्रवेश कर दिया है, जो बुरादे को पचाने का काम करते हैं। ये कीटाणु नर, नारी (मादा) और सैनिक जाति की दीमक की देह में नहीं पाए जाते हैं। उपनिवेश या छत्ते के कामों में मजदूरों की ही प्रधानता रहती है। मजदूर दीमक के शरीर में के कीटाणु बुरादे को पचा कर सेल्यूलोज निर्माण करते हैं। मजदूर दीमक यही सेल्यूलोज नर, मादा और सैनिकों को खिलाती हैं।

अब छत्ते या उपनिवेश के आन्तरिक-जीवन पर दृष्टि डालिए। आपको कहीं गड़बड़ या अव्यवस्था नहीं नजर आवेगी। प्रत्येक व्यक्ति यंत्र की तरह अपने काम में मशगूल दिखाई देगा। सहयोग-मिलकर काम करने की पद्धति का जीता जागता उदाहरण देखकर भी हम भारतीय फूट-महारानी के अंध-भक्त बन रहे हैं। इस तुच्छ और घिनौने माने जाने वाले प्राणी की सहकार-प्रवृत्ति (co-operation) को देखकर भी हम भारतीयों को तनिक भी लज्जा नहीं आती।

दीमक के कार्योंको देखकर बुद्धि चकरा जाती है। और उसकी तुलनामें मनुष्य तुच्छातितुच्छ जीव माना जा सकता है।

संसारके कुछ विशेषज्ञोंका कहना है कि जन-संख्या तेजी से बढ़ रही है और कुछ ही सौ वर्षों बाद जन-संख्या इतनी बढ़ जायगी कि भोज्य-पदार्थों का अकाल पड़ जायगा, और इस अकाल के दूर करने के उपाय सोचे जा रहे हैं। किन्तु दीमक ने इस प्रश्न को बहुत पहले ही हल कर लिया है। उसने कुछ ऐसे कीटाणुओं का पता लगा लिया है, जिनकी सहायतासे वह सभी प्रकार की वनस्पति से भोज्य-पदार्थ निर्माण कर अपना भरण पोषण कर सकती है। हजारों गुनी संख्या बढ़ जाने पर भी दीमक के सामने भोज्य-पदार्थोंके अकाल का प्रश्न उठ ही नहीं सकता। संभव है मनुष्य भी किसी दिन वनस्पति के अवयवों को भोज्य-पदार्थ में परिणत करने का साधन करलें।

दीमकमें संकटोंसे सामना करनेकी भी अपूर्व शक्ति है। हरएक बार संकट उपस्थित होने पर वह नया उपाय ढूंढ निकालती है। इसके लिए उनको सोचने विचारने की भी जरूरत नहीं होती। मौके पर उन्हें यह उपाय एकदम सूझ जाता है। मान लीजिए कि दीमक आपके घर पर चढ़ गई हैं। उनका हमला इतनी शान्ति और गुप्तरीति से होता है कि किसी को उसका पता ही नहीं चल सकता है। यदि किसी जगह उन्हें बाहर निकल कर जाना आना पड़ेगा, तो वे अपने मार्ग को इस ढंग से तैयार करेंगी कि एकाएकी किसी को मालूम ही नहीं होगा। मकान के प्रत्येक भागमें रास्ते बना लिए जायंगे, मगर क्या मजाल कि किसी को इन बातों का पता लग जाय।

मकानके अन्दर पैर रखने पर हरएक चीज़ पहले जैसी ही दिखाई देगी। आपको कहीं कुछ भी फेरबदल नहीं नज़र आवेगा। आप चट से कुर्सी पर बैठ जायंगे। आपके बैठते ही कुर्सी चूर चूर होकर ढेर हो जायगी। सहारे के लिए टेबल पर हाथ रखते ही वह भी जमींदोस्त हो जायगा। दीमक ने यह सब काय कितनी होशियारी और अक्लमंदी से किया है! आप इसी सोच विचार में रहेंगे कि यह क्या बला है और इसी बीच सारा का सारा मकान धराशायी हो जायगा।

कल्पना कीजिए कि किसी कमरेकी दीवारों पर तसवीरे टंगी है दीमक अपनी करामात दिखाती है। वह चित्र और उसके चौखटको खा कर नष्ट कर डालती है। मगर मजाल क्या कि काँच जमीन पर गिर जाय! दीमक शीशे को ऐसे मसाले से चिपका देती है कि वह अपनी जगह पर ज्यों का त्यों लगा रहता है। संभव है किसी रोज मनुष्य इंजीनियर इस मसाले को तैयार करने में समर्थ हो जायँ।

चींटियों की कुछ जातियाँ दीमक की दुशमन हैं। ये चीटियाँ बहुत ही भयानक हमले करती हैं। छत्ते को नष्ट कर डालती हैं। दीमक इनके सामने नहीं ठहर सकती है। दुशमनके हमला करने पर सैनिक छत्ते से बाहर निकल आते हैं और जान हथेली पर रख कर दुशमन पर टूट पड़ते हैं। जान रहते तक ये पीछे कदम नहीं रखते। युद्ध-क्षेत्र में पीठ दिखाना तो ये जानते ही नहीं।

सैनिकोंके छत्तेसे बाहर निकलने पर मजदूर दीमक मार्ग बंद कर देती है।

दीमक की सभ्यता बहुत ही ऊंचे दरजेकी है। छत्ते में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को समाज के लिए परिश्रम करना पड़ता है। छत्ते या उपनिवेश में 'व्यक्ति समष्टि के लिए' माना जाता है। व्यक्तिका प्रत्येक कार्य—यहां तक कि उसका जीवन भी, समाज के लिए ही होता है। जो व्यक्ति समाज के लिए तन मन से परिश्रम नहीं करता है वह बड़ी निर्दयता से मार डाला जाता है। व्यक्तिके सुखका कोई विचार ही नहीं किया जाता है। उपनिवेशके राज-नियमों का ज्ञान हमें नहीं है और हम यह भी नहीं जानते हैं कि शासन-कार्य किस प्रकार सम्पन्न किया जाता है, फिर भी, इतना तो निश्चय पूर्वक कहा जाता है कि शासन-कार्य उत्कृष्ट बुद्धिमता और श्रेष्ठ निपुणता से सम्पादित किया जाता है। संभव है, उपनिवेशमें 'सोवियट' शासन व्यवस्था हो, और जिसमें सारे समाज को मिलकर श्रम करने और हिलमिल कर ही आनन्द पूर्वक जीवन बिताने का अटल नियम हो।

उपनिवेशके शासन-विधानके संबन्धमें भिन्न २ विद्वानोंके मत जुदे जुदे हैं। स्थानाभावके कारण इस लेखमें इन मतों पर विचार नहीं किया जा सकता है*

* संकलित—

वैज्ञानिक परिमाण

तापरसायन

७१ यौगिक बनने का आणविक (अणु) ताप

(Molecular Heat of Formation)

अणुभार के बराबर ग्राम मात्रा में तत्वोंसे यौगिक बनते समय जितना ताप उत्पन्न होता है उसे यौगिक बननेका आणविक ताप (ब० त०) कहते हैं। नीचे की सारणीमें कुछ यौगिकोंका यह आणविक ताप दिया जाता है। जहां यौगिक की अवस्थाका निर्देश न किया गया हो वहां साधारण तापक्रम और दबाव समझना चाहिये। (ब० त०) के पूर्व ऋण चिह्न(−) से तात्पर्य यह है कि यौगिक बनते समय इतना ताप व्यय हुआ है।

इकाई—ग्राम कलारीताप (१५° से २०° श तक) यौगिक के प्रति ग्राम अणु। जहाँ 'जलीय' लिखा हो वहाँ जल की बहुत सी मात्रा में घोल समझना चाहिये। प्रक्रियामें दबाव स्थिर है।

उदाहरण—ताम्रगन्धेत, ता ग ओ$_4$ का ब० त०=१८३,०००; ताम्रगन्धेत, जलीय का ब० त०=१९८,८००, अतः ताम्रगन्धेतके घोल का ताप = १९८००० — १८३००० = १५८०० कलारी प्रति ग्राम अणु.।

अकार्बनिक यौगिक

यौगिक	आणविक ताप (ब. त.) कलारीमें	यौगिक	आणविक ताप (ब. त) कलारीमें
			×१०³
अधातु	×१०³	नो ओ$_2$/२२°	-१·७
उह-वायव्य	२२·०	स्फु$_2$ओ$_5$ ठोस	३६९
उह-जलीय	३९·३	,, जलीय	४०५
उरु-वायव्य	८·४	क ओ (हीरा से)	२६·१
उरु-जलीय	२८·६	क ओ$_2$ (,,)	९४·३
उनै-वायव्य	-६·१	टं$_2$ओ$_3$	॰७३
उनै-जलीय	१३·२	शै ओ$_2$ जलीय	१८०
उ म- ,,	३८·५	त्तं$_2$ओ$_3$	१·५
उ$_2$ओ द्रव	६८·४	कह$_4$(हीरा से)	७६
,, वायव्य	५८·१	आह$_3$ ठोस	९१·४
उ$_2$ओ$_2$ जलीय	४७·०	कग$_2$	−१९
उ$_2$ग	२·७	उ$_2$गओ$_4$, द्रव	१९३
नोउ$_3$	१२·०	,, जलीय	२१०
सउ$_2$	-३६·७	उ नो ओ$_3$, द्रव	४१·६
गओ$_2$	७०·०	,, जलीय	४९
नो$_2$ओ	-१९	उ क नो, गैस	−३०·५
नो ओ	-२१·६	,, , द्रव	−२४·८

यौगिक	आणविक ताप (ब.त.) कलारीमें	यौगिक	आणविक ताप (ब.त.) कलारीमें
			×१०^{३}
धातु	×१०^{३}	मांओ	९१
नोउ$_{४}$ह	७६.३	मांह$_{२}$	११२
(नोउ$_{४}$)$_{२}$गओ$_{४}$	२८३	र$_{२}$ओ	५.९
नोउ$_{४}$,ओउ जलीय	९०	र नो ओ$_{३}$	२८.७
को ह$_{२}$	७६.५	" जलीय	२३.३
ख क ओ$_{३}$	२७०	रह	२९.२
ख ग ओ$_{४}$	३१८	लो ओ	६४.६
ख(नोओ$_{३}$)$_{२}$	२०२	लोग ओ$_{४}$ ५ ओ	२४०
ख ह$_{२}$ जलीय	१८७.४	लोह$_{३}$	९६
खक$_{२}$	−७.२५	बओ	७०
ता ओ	३७.२	बह$_{२}$	८१
ता ग ओ$_{४}$	१८३	वह$_{४}$	१०८
ता ग ओ$_{४}$.५उ$_{२}$ओजलीय	−२.७५	वि$_{२}$ओ$_{३}$	३०
ताह$_{२}$	५१.६	विह$_{३}$	९१
थ ह	४८.६	वो$_{२}$ओ	१००
द ओ	८५.४	शो$_{२}$ओ	१४०
दग ओ$_{४}$.५उ$_{२}$ओ जलीय	−४.२६	शो ओ उ	१११
		शो$_{२}$गओ$_{४}$	३३४
		शो नो ओ$_{३}$	११२
द ह$_{२}$	९७.३	शोह	९४
न ओ	५९.७	सं (ओउ)$_{२}$	६६
न ह$_{२}$	७४.५	सं गओ$_{४}$	२२२
प ह$_{४}$	५९.४	सं ह$_{२}$	९३
पा$_{२}$ओ	२४.९	सी ओ	५०.३
पा ओ	२१.१	सीओ$_{२}$	६२.४
पा ह$_{२}$	५३.२	सी गओ$_{४}$	२१६
पां ओ उ, जलीय	११७	सी (नो ओ$_{३}$)$_{२}$	१०५.५
पां$_{२}$ग ओ$_{४}$	३४४	सीह$_{२}$	८३
पां नो ओ$_{३}$	११९	सै ओ उ	१०२.३
पां ह	१०६	" जलीय	११२.२
भ ओ	१२६	सै$_{२}$क ओ$_{३}$	२७२
भ(ओ उ)$_{२}$	२१७	सै$_{२}$गओ$_{४}$	३२८.३
भह$_{२}$	१९७	सै नो ओ$_{३}$	१११
म ओ	१४३	सैह	९७.८
म ग ओ$_{४}$	३०२	स्तह$_{२}$	१८५
मह$_{२}$	१५१	हफह$_{३}$	१६१
		हवह$_{३}$	२३

७२—शिथिल करनेका आणविकताप

(Molecular Heat of Neutralisation)

इकाई—१५° से २०° श तक ग्रामकलारी क्षार के प्रति ग्राम-अणु। इस प्रकार
पां ओउ (जलीय) + उ ह (जलीय) = पां ह (जलीय) + $उ_2$ओ + १३७५० कलारी

क्षार	उह	उप्ल	उनो$ओ_3$	उकनो	$\frac{1}{2}उ_2गओ_4$	$\frac{1}{2}उ_2कओ_3$	$\frac{1}{3}उ_3स्फुओ_4$	१ कालिक
	× १०³	× १०³	× १०³	× १०³	× १०³	× १०³	× १०³	× १०³
१ सै ओ उ	१३·७४	१६·३	१३·७	२·८	१५·६४	१०·१	१४·८	१३·८
२ सै ओ उ	—	—	—	—	३१·३८	२०·२	२७·१	२८·३
१ पां ओ उ	१३·७	१६·१	१३·८	२·८	१५·७	१०·१	—	१३·८
१ $नोओ_4ओउ$	१२·३	१५·२	१२·३	१·३	१४·३	८·४	१३·५	१२·७
½ ख ओ उ	१४.०	१८·४	१३·९	३·२	१५·६	९·३	—	—
½ स्त ओ उ	१३·८	१७·८	१३·९	३·१५	१५·४	१०·४	—	—
½ भ ओ उ	१३·९	१६·१	१४·१	३·१५	१८·४	११·०	—	—
½ $म(ओउ)_2$	१३·८	१५·२	१३·८	१·५	१५·३	८·९५	—	—
½ $ता(ओउ)_2$	७·५	१०·१	७·६	—	९·२	—	—	—

७३—कार्बनिक पदार्थों के भस्मीकरण और बननेका ताप

कार्बनिक पदार्थों को भस्म करने में जितना ताप जरूरी होता है उसे भस्मीकरण का ताप (भ. त.) कहते हैं।

इकाई—१५° से २०° श पर ग्राम कलारी प्रतिग्राम अणु

उदाहरण—१६ ग्राम दारेन, कउ$_४$, जब स्थिर दबाव पर जलाकर जल और कओ$_२$ में परिणत कर दी जाती है तो २१२००० ग्राम कलारी ताप पैदा होता है।

यौगिक	ब. त. (बनने का आणविक ताप)	भ. त. (भस्मीकरण का ताप)
	× १०^३	× १०^३
दारेन, क उ$_४$	२१२	२१·७
ज्वलेन, क$_२$ उ$_६$	३७०	२८·६
सिरकीलिन, क$_२$ उ$_२$	३१०	−४७·८
बानजावीन, क$_६$ उ$_६$	७९९	−१२·५
नफ थलीन, क$_{१०}$उ$_८$	१२३९	—
दारीलमद्य, क उ$_४$ ओ	१८२	५१·४
ज्वलीलमद्य, क$_२$ उ$_६$ओ	३४०	५८·५
ज्वलक, क$_४$ उ$_{१०}$ ओ	६६०	७०
सिरकाम्ल, क$_२$ उ$_४$ ओ$_२$	२२५	१०५·३
नीलिन, क$_६$ उ$_७$ नो	८३८	−१७·४
मिरीद्दिन क$_५$ उ$_५$ नो	६७५	−१९·४
शर्करा, क$_{१२}$ उ$_{२२}$ ओ$_{११}$	१३६४	—

७२—ध्वनि का वेग

(Velocity of Sound)

किसी वस्तु में ध्वनि का वेग (सीधी) तंरग

$$व = \sqrt{ल/घ}$$

यदि ल लचक हो और घ इनका घनत्व। वायव्यों और द्रवों ल के लिये तापावरोधी आयतन लचक होती है। समस्थिति ठोस छड़ों और नलों में ल यंग का गुणक है। वायव्यों के लिये

$$व = \sqrt{\frac{ग द}{घ}}$$

यहि द दबाव हो और ग वायव्य के स्थिर दबाव और स्थिर आयतन पर के आपेक्षिकताप की निष्पत्ति हो।

साधारण तापक्रम परिवर्त्तन के हेतु, वायव्यों में ध्वनिका वेग निम्न समी कारण द्वारा ज्ञान होता है :—

$व = व_० (१ + \frac{१}{२} अत) = व_० + \cdot ६१$ त श. म. प्रति सैकण्ड शुष्क वायु के लिये ($अ = \cdot ००३७$)

पदार्थ	तापक्रम	वेग
वायव्य		श.म. सैकण्ड
हवा-(शुष्क)...	० श	$३\cdot३१४५ \times १०^४$
,,	-४५·६	३·०५६ ,,
,,	-१८२·४	१·८१५ ,,
,,	१००	३·८६५ ,,
,,	५००	५·५३ ,,
,,	१०००	७·० ,,
उदजन	०	१२·८६ ,,
ओषजन	०	३·१७२ ,,
,,	१८४·७	१·७३७ ,,

पदार्थ	तापक्रम	वेग
नोषस ओषिद नो$_2$ओ	०	२·६० "
अमोनिया, नो उ$_3$	०	४·१६ "
कर्बन एकौषिद, क ओ	०	३·३१ "
कर्बनद्वि ओषिद, कओ$_2$	१०—२४	२·५७३ "
कोयला-गैस	०	४·६-५·११ "
गन्धक द्विओषिद	०	२·०६ "
जलवाष्प	०	४·० "
० " संपृक्त	११००	४·१३ "
द्रव—		
जल......	८·१	१४.३५×१०^४
"	४	१३·६६ "
"	२५	१४·५७ "
" (समुद्री) भङ्ग तरंग	१८	१७·३-२०·१ "
मद्य (निरपेक्ष) क$_2$उ$_5$ओ	८·४	१२·६ "
ज्वलक (क$_2$उ$_5$)$_2$ ओ	०	११·४ "
तारपीन, क$_{१०}$उ$_{१६}$	३.५	११·७ "

ठोस	वेग शम/सै	ठोस	वेग शम./सै.
स्फटम्	५१.० × १०^{४}		× १०^{४}
संद्स्तम्	२३.१ ”	रजतम्	२६.४ ”
कोबल्टम्	४७.२ ”	वंगम्	२४.६ ”
ताम्रम्	३६.७ ”	दस्तम्	३६.८ ”
स्वर्णम्	२०.८ ”	कांच (सोडा)	५०.५३ ”
लोह (पिटवां)	४६-५१ ”	” (बिल्लूरी)	४० ”
” (ढला)	४३ ”	पीतल	३६.५ ”
स्पात	४७-५२ ”	महोगनी	४[illegible]-३६ ”
सीसम्	१२.३ ”	चोड़	३३
नकलम्	४६.७ ”	इंडिया रबर	०·५- ०·७ ”
पररौप्यम्	२६.८ ”		

७३ -वायु में वेग और दवाव

वातावरणों में दवाव	ध्वनि का आपेक्षिक वेग	
	०°श	-७६.२°श
१	१.०००	.८४२
२५	१.००८	.८३१
५०	१.००२	.८३०
१००	१.०६४	.८८५
१५०	१.१३२	१.०४७
२००	१.२२२०	१.२३६

७४—स्वर (Pitch) के सम्बन्ध में कान की सूचकता (Sensitiveness)

भूज़न संख्या	सम ध्वनित्व के लिये सिकोड़
५१२	१
२५६	१.६
१२८	३.२
८५	६.४

७५—बाँसुरी (Organ pipe)

सिरों के लिये शोधन

जिस बांसुरी के खुले हुए सिरे पर घेरा होता है उसमें चल विन्दु सिरे से ·८२ × (बांसुरी का अर्द्ध व्यास) की दूरी पर होता है। जिसका सिरा बिना घेरे के होता है उसके लिये शोधन ·५७ × (अर्द्ध व्यास) होता है।

तरंग लम्वाई

ल= बांसुरी की लम्ब ई

बन्द बाँसुरी—४ ल , $\frac{४ल}{३}$, $\frac{४ल}{५}$ इत्यादि

खुली " —२ ल , $\frac{२ल}{२}$, $\frac{२ल}{३}$, "

७६—कान

कान द्वारा अनुभूत न्यूनतम समय = ·००७ सैकण्ड

मन्द से मन्द सुनी जानेवाली ध्वनि का कम्प विस्तार (झोटे की दौड़) = $१०·४ \times १०^{-८}$ श, म. (रैले, १८७७)

दबाव परिवर्त्तन जिसको साधारण कान अनुभव कर सके = ४×१०^{-९} सम. पारद

सुनाई की नीची सीमा $\left(\frac{\text{कंपन (झोटे)}}{\text{सैकण्ड}}\right)$ = ३० के लगभग

" उच्च (") = २४००० से ४१००० तक

कान की हद = ११ सप्तक

बाजों की हद = ७ सप्तक

—:०: –

पियानो का उच्चतम स्वर—३५२०

—:०:—

७७—छड़ों का खड़ा कम्पन (Transverse Vibration)

ल=लम्बाई, क=मध्यच्छेद का भ्रमण व्यासार्द्ध, थ=थंग का गुणक, घ=घनत्व

	अचल बिन्दुओं की संख्या (node)	एक सिरे से अचल बिन्दुओं की दूरी	भूजन संख्या (frequency) $\propto \frac{क}{ल^2}\sqrt{थ/घ}$
दोनों सिरे	२	·२२४ ल; ·७७६ ल	१
छुट्टे	३	·१३२ ल; ·५ ल; ·८६८ ल	२.७६
	४	{·०६४ ल; ·३५६ ल; ·६४४ ल; ·९०६ ल}	५.४०
	०	—	१
एक सिरा	१	·२२६ ल	६·२७
बँधा हुआ	२	·१३२ ल; ·५ ल	१७·५
	३	{·०६४ ल; ·३५६ ल, ·६४४ ल}	३४·४

किसीदुसूल (बजते हुए) के झोटोंकी संख्या का तापक्रम-शोधन – इसके लिये निम्न समीकरण का उपयोग किया जाता है:—

$$झ_त = झ_० (१ - ·०००११ त)$$

$झ_त$ = त° श तापक्रम पर झोटोंकी संख्या

झ० = ०° श " " " "

—:o:—

७८ सरगम स्वरों की संख्याओं की (झोटोंकी) निष्पत्ति

	स	र	ग	म	प	ध	नि	स
स्वाभाविक माप		९/८	१०/९	१६/१५	९/८	१०/९	९/८	१६/१५
	१	९/८	५/४	४/३	३/२	५/३	१५/८	२
	२४	२७	३०	३२	३६	४२	४५	४८
	१·०००	१·१२५	१·२५०	१·३३३	१·५००	१·६६७	१·८७५	२·०००
मिली हुई सममाप	१·०००	१·१[illegible]२	१·२६०	१·३३५	१·४९८	१ ६८२	१ ८८८	२·०००

वार्षिक वृत्तान्त

विज्ञान परिषद् प्रयाग की सन् १९२६ से व १९२७ तक की रिपोर्ट

गत रिपोर्ट में चूँकि पिछले ५ वर्षोंमें जो काम परिषद् ने किया उसका पूरा हाल दिया जा चुका है। इसलिए इस रिपोर्ट-में केवल पिछले सालमें पहली अक्तूबर सन् १९१६ से ३० सितम्बर सन् १९२७ तक) जो काम किया गया है उसका हाल देता हूँ। इस साल परिषद्की जमीन पर दो कमरे एक १६ × १० दूसरा १० × १०—११५०) की लागत से बन गये। यह कमरे जनवरी सन् १९२७ में तैयार हो गये थे और उसी मासमें सब चीजें वहाँ पहुँचा दी गई थी। ९ महीनों-से दफ्तर वहाँ ही है। कमरे बननेके पहले ऐसा समझा जाता था कि इनमें पुस्तकें और विज्ञानकी पुरानी फाइलें आजावेंगी और कुछ जगह दफ्तरका काम करनेके लिए भी मिल जायगी। परन्तु ऐसा न हो सका। ९००० के लगभग पुस्तकें हैं और विज्ञानके पुराने अंक भी ५००० से कम नहीं है। इन्होंने बहुत सी जगह घेर ली और एक १००० के लगभग ब्लाकों ने भी काफी जगह घेर ली है और ऐसा ख्याल है कि यदि नई पुस्तकें छपवाई गईं तो उनके रखनेके लिए हमारे पास जगह नहीं मिलेगी। परन्तु जगह बढ़ानेका भी हमारे पास इस समय कोई उपाय नहीं। हमारी आर्थिक अवस्था शोचनीय है। जितनी आमदनी है उससे अधिक खर्च होता है। विज्ञानके ग्राहक बहुत कम हो गये हैं। इस साल केवल ५५०) के लगभग ग्राहकों से मिला। १२ अंकोंके निकालनेमें १५०० से कम खर्च नहीं होता है। यदि गवर्नमेण्टसे सहायता न मिले तो किसी प्रकार भी विज्ञान न चलाया जा सके हमको आशा थी कि जब मदरसोंमें पढ़ाई मातृभाषा द्वारा होने लगेगी तो विज्ञान मदरसोंमें जाने लगेगा परन्तु हमारी यह आशा पूर्ण होती हुई नजर नहीं आती। मदरसोंमें इसका जाना कम ही होता जा रहा है। ग्राहकोंसे भी पत्र द्वारा ग्राहक बढ़ानेकी प्रार्थना की गई है। देखिये इसका क्या फल होता है किसी प्रकारकी आशा दिलाना मेरे लिए गतवर्षकी चाल देखते हुए असंभव है। सरकारसे ६००) हर साल मिलते चले जावेंगे परन्तु इस सहायताके मिलने पर भी परिषद्की ४००) के लगभग घाटा रहेगा। यह कहना कठिन है कि हम लोग इतना घाटा सहते हुए कब तक विज्ञान चला सकेंगे। परिषद्के सभ्योंसे भी चन्दा नहीं मिलता है। इस साल यदि ५००) आजन्म सभ्योंसे चन्देका और ५००) पुस्तकोंकी बिक्रीसे न मिलते तो इस समय हमारे हाथमें कुछ न होता और विज्ञानको तुरन्त बन्द कर देनेका शायद सवाल आ जाता। हम सभ्योंसे बराबर यही प्रार्थना करते आये हैं और फिर करते हैं कि यदि चन्दा हमको न मिलेगा तो हमारे लिए काम चलाना असम्भव है।

इसी स्थान पर यह कह देना अनुचित न होगा कि इस प्रकारकी हानि सहते हुए विज्ञानका चलाते रहना असम्भव और कठिन ही प्रतीत होता है। ऐसी अवस्थामें गवर्नमेण्टसे ही हमारा अनुरोध है कि वह हमारी सहायता करे। अब तक हमें गवर्नमेण्ट से ६००) वार्षिक की सहायता मिलती रही है। पर हमारी प्रार्थना है कि इतने धन से इतने बड़े कार्यका सम्पादित होना अत्यन्त कठिन है। हमारा निवेदन है कि यदि हमें १०००) की सहायता सरकारसे प्रतिवर्ष मिलती रहे तो हमारी असुविधायें कुछ दूर हो सकती हैं। अबतक हम गवर्नमेण्ट को विज्ञानकी ५० प्रतियाँ प्रतिमास भेंट करते रहे हैं पर यदि हमें सरकार प्रतिवर्ष १०००) की सहायता देगी तो हम ५० के स्थान में २०० प्रतियाँ प्रतिमास गवर्नमेंट को दे सकेंगे इस प्रकार जितने हाई स्कूल इस प्रान्त में हैं उन सबमें विज्ञान की प्रतियाँ गवर्नमेण्टकी ओरसे बिना मूल्य जा सकेंगी। विज्ञान के साहित्य का भी प्रचार होगा और सब स्कूल इससे लाभ उठा सकेंगे। हमें पूर्ण आशा है कि सरकार हमारी

आयःजनाको स्वीकार करेगी और विज्ञान का कार्य निर्विघ्न चलता रहेगा।

पं० सुधाकर द्विवेदी लिखित समीकरण-मीमांसा एक भाग जिसको छपवाने के लिए गवर्नमेण्ट ने परिषद् को १२५०) दिये थे तैयार हो गया है और बिक्री के लिए दफ़र में है। गवर्नमेण्ट को जो ५० प्रतियां भेजनी हैं दो चार रोज में भेजा दी जायँगी।

लाला रामनारायण लाल ने मिफ्ताहुल फनून का ५०० प्रतियों का दूसरा संस्करण छपवाया है। क्योंकि उन्होंने लिखवाकर हमारे पास भेजा इसलिए परिवर्त्तन न कर सके। यदि लिखानेके पहले हमपर अपनी इच्छा प्रकट करते तो विज्ञान प्रवेशिकाके तीसरे संस्करणका उर्दू अनुवाद छपवाते।

प्रो० ब्रजराजजीको समयाभावके कारण विज्ञानके सम्पादनमें कठिनाई पड़ती थी इसलिए श्रीसत्यप्रकाश-जी उनको सहायताके लिये नियुक्तकर दिये गये। आप बड़े उत्साही हैं। अभीतक आपने काम खूब किया है। आशा की जाती है कि आपकी सहायतासे अब विज्ञानके सम्पादन की कठिनाइयाँ दूर हो जावेंगी। आपने साधारण और कार्बनिक रसायनका एक एक भाग (अध्याय) विज्ञानमें छपवाकर पुस्तकाकर भी छपवा लिया है। एक कमी तो अवश्य ही पूरी हो जायगी। अब हम विज्ञानमें वैज्ञानिक परिमाण भी निकाल रहे हैं। इसका काम डा० निहालकरणसेठी ने आरंभ कर दिया था। इनके छपजानेसे बड़ी भारी कमी दूर हो जावेगी। यदि यह पुस्तक मदरसोंमें चल गई तो हम लोगोंके बनाये हुए यह (Terms) काममें आने लगेंगे, और जो आक्षेप कि आजकल होते रहते हैं बन्द हो जाजावेंगे।

कुछ लोगोंका ऐसा ख्याल है कि विज्ञानको रोचक बनानेका यत्न नहीं किया जा रहा है। उनकी सेवामें मेरा यही निवेदन है कि जबतक परिभाषा तैयार होकर प्रचलित न होजाय तबतक रोचकसे रोचक लेखभी पाठकोंकी समझमें नहीं आ सकेगा। वैज्ञानिक परिमाणसे यह सुविधा तो लोगोंको होजायगी कि यदि किसी समय उनको किसी शब्दकी परिभाषा जाननेकी आवश्यकता हो तो मिल जावेगी। परन्तु इससे एक कोषकी कमी दूर नहीं हो सकती। यदि हम लोगोंको कहीं से धन मिलनेकी सहायता मिले तो अब दूसरा काम जो हमको करना चाहिए वह सब कोष ही तैयार करना है। परन्तु इसके बनानेमें जितना व्यय होगा उसका प्रबन्ध हमारी निगाहमें नहीं है।

अन्तमें उन सब लेखकों और सज्जनोंको धन्य-वाद देता हूं कि जिन्होंने हमारी इस काममें सहायता करके साहित्यकी उन्नतिमें भाग लिया है।

सतीशचन्द्र एम. ए.
शालिग्राम भार्गव एम. एस-सी
प्रधान मन्त्री

सन् २७ के लिए यह हिसाब पास हुआ था—

आय

२०)	रिप्रिंट्स
५४७॥=)॥	विज्ञानके ग्राहकोंका चन्दा
२४०)	सभ्योंका चन्दा
५००)	आजन्म सभ्योंका चन्दा
१२००)	सरकारसे
५१४)॥	पुस्तकोंकी बिक्री
१११)	दान
५९)	विज्ञापन छपाई

व्यय

११८२=)।	भवन निर्माण
१०७॥=)	टिकट
१३१)	कलार्क
०३।-)	ब्लाक
२५४।≡)॥	कागज
१२४६-)	छपाई विज्ञान
३८॥=)॥	फुटकर
३००३।)॥	
६१७।≡)	
३६२१≡)॥	योग

५४) ब्लाकों (पैमाइश) की बिक्री
२४७≡) फुटकर
३४८८॥=)।
१३२।-) पिछले सालका शेष
३६२१≡)॥ योग

चांदीकी कलई करना

(ले० श्रीकालिका प्रसादजी वर्मा, बी.एस. सी. एल.टी.विशारद)

दी की कलई करनेके लिए एक मुख्य प्रकारके लवणकी आवश्यकता पड़ती है जिसे रजत नोषेत (Silver nitrate) कहते हैं। अतः पहिले यहां पर उसी लवणके बनानेका नियम लिखा जायगा।

बहुधा देखा गया है कि शुद्ध-से शुद्ध चाँदीमें भी कुछ तांबेका असर रहता ही है जिसका अलग करना कलई करने वालेके लिये अत्यन्त आवश्यक है इसलिये निम्न-लिखित प्रयोगको काममें लाना चाहिये।

थोड़ीसी चाँदीकी डली लेकर किसी सोनारसे बहुत पतले पतले पत्तर बनवालो और उसे छोटे छोटे टुकड़ोंमें बाँटकर धीरे धीरे वे टुकड़े हलके नोषिकाम्ल (nitric acid) में डालते जाओ। जब सब गल जाँय तो उस घोलको पानीमें डालकर हलका करलो थोड़ा थोड़ा करके या तो सैंधा नमक या उदहरिकाम्ल (Hydrochloric) डालते जाओ तो दही के समान उजला तलछट नीचे बैठ जायगा—(नमक काफ़ी डालना चाहिये ताकि जौहर सब निकल जावे) अब इस सफेद जौहरको जोकि रोशनी पड़नेसे पहिले बैजनी और बादको श्यामल हो जाता है. पानीसे तीन या चार बार धोडालो और फिर उसमें थोड़ा सा नमक का तेजाब डालकर दस्तम्के टुकड़े डाल दो तो रासायनिक क्रिया द्वारा सब जौहर टूटकर भूरे रंगकी चाँदीके दानोके रूप में बन जायगा। इस प्रकार प्राप्त हुई चाँदी अत्यन्त शुद्ध होती है।

इस उपर्युक्त चाँदीको पुनः पतले नोषिकाम्लमें डाल दो और धीरे धीरे हिलाते जाओ तो सब चाँदी उसमें डालकर रजत नोषेत नामक लवण घोलके रूपमें बन जायगा जिसे छान कर भाप पर सुखा लेनेसे बहुत ही अच्छा रवादार नोषेत लवण बन जाता है और प्रत्येक काममें लाया जा सकता है।

नोट—१ इस प्रयोगमें नमकका तेजाब (उदहरिकाम्ल) काफी डालना चाहिये जिससे दस्तम् (Zinc) बिलकुल गल जाय

२. शोरके तेजाब (नोषिकाम्ल) में चाँदी घुलनेके बाद सिवाय स्रवित जलके और कुछ न डालना चाहिये क्योंकि मामूली पानीमें कुछ न कुछ नमकका भाग अवश्य होता है जिससे रजत नोषेत टूट कर रजत हरिद (Silver chloride) बन जाता है।

३. नोषेत लवणमें शोरेका तेजाब (नोषिकाम्ल) स्वतन्त्र अवस्थामें बिलकुल न रहना चाहिये नहीं तो चाँदीके पानीको जो तैयार होनेवाला है खराब कर देगा। इससे बचनेका आसान तरीका यही है कि नोषिकाम्ल इतना होना चाहिये जिससे चाँदीका कुछ हिस्सा गलने से रह जाय।

४. शोरेके तेजाबकी क्रिया खुली जगहमें होनी चाहिये क्योंकि इसमें एक भूरे रंग की गैस निकलती है जो विषैली होती है।

५. रजत नोषेत घोल में धूप न लगने पावे नहीं तो यह घोल श्यामल हो जायगा।

कलई जल

आवश्यकतानुसार कलई दो प्रकारसे चढ़ाई जाती है एकको साधारण डोब (Simple immersion) और दूसरे को विद्युत नियम (Electric Process) कहते हैं। पहिले मैं इस दूसरे नियम को बताने की चेष्टा करूंगा क्योंकि यह नियम पहिले की अपेक्षा अधिक उपयोगी है और इसके द्वारा चढ़ी हुई कलई मजबूत और अधिक दिन तक ठहरनेवाली होती है। रोजगारके विचारसे भी लोग इसी नियमको काममें लाते हैं।

यह तो सदैवके लिये याद रख लेना चाहिये कि अधिकांश दशामें कलई जल एक मुख्य नमकसे जिसे पांशुज श्यामिद (पोटासियम साइनाइड) कहते हैं, बनाया जाता है और यह नमक अत्यन्त ही भयंकर विष हैं इसलिये इसके प्रयोगमें विशेष सावधानी रखनी। चाहिये दूसरी रजत श्यामिद (सिल्वर साइनाइड)—

सबसे अच्छा कलई जल रजत श्यामिद से बनता है जिसके बनाने का निम्नलिखित नियम है :—

१तो०९ मा०रजत नोषेत (silver nitrate) लेकर २१ से भभके से टपकाये हुये जल में घुलालो फिर ६८°/₀का २ तो ० ६ मा० पांशुजश्यामिद पोटासियम साइनाइड) १½सेर पानी में घुला कर धीरे धीरे डालों और बर्तन के मिश्रण को हिलाते जाओ तो तली में कुछ तलछट से बैठता हुआ देख पड़ेगा। अगर घोल गदला हो तो बूंद बूंद कर के कुछ और श्यामिद घोल डाल दो। जब तलछट निकल जावे तो ऊपरके जलको पृथा कर रख दो और तलछट में तेज पांशुज द्रावण डालो ताकि सब घुल जाय बस बिजली के लिये जल तैयार हो गया।

इस प्रयोग में जिन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये वे ये हैं।

१ रजत श्यामिद(सिल्वर साइनाइड)श्यामिदघोल में घुल कर द्वि श्यमिद (Double cyanide) बनता है। इसलिये पांशुज श्यामिद थोड़ा थोड़ा कर के डालना चाहिये और अन्त में विशेष सावधानी की आवश्यकता है ताकि तलछट घुले नहीं पर अगर अधिक पड़ने से तलछट घुल ही गया। जैसा कि नये प्रयोग करने वालों के साथ अक्सर होगा, तो विशेष हरज नहीं थोड़ा सा रजत नोषेत घोल और डाल दो ठीक हो जायगा।

२ ऊपर तेज श्यामिद घोल लिखा गया है वह इस प्रकार बनता है—जितना पांशुज श्यामिद (पोटासियम साइनाइड) तलछट बनाने के लिये लिया गया हो उतना ही और लेकर थोड़े से पानी में घुला दो बस उपयुक्त कार्य के लिये घोल बन गया।

३ तलछट घुलाने के बाद इस घोल में इतना पानी डालो कि कुल ५ सेर हो जाय।

४ अब इसमें दूसरी बार लिये हुये पांशुज श्यामिद (पोटास साइनाइड) का पाचवाँ भाग और श्यामिद डाल देना चहिये ताकि यह चाँदी के ध्रुव को गला सके

५. घोल की ताकत इतनी होनी चाहिये कि जिसमें ५ सेर में १५ माशासे लेकर ७५ माशा तक शुद्ध चाँदी रहे। इससे अधिक व कम होनेसे अच्छी कलई नहीं चढ़ती।

६. चाँदी की तौल जाननेके लिये यह याद रखना चाहिये कि प्रत्येक १७० भाग रजत नोषत (Silver nitrate) वा १३४ भाग रजत श्यामिद (Silver cyanide) में १०८ भाग चाँदी रहती है।

७. श्यामिद जो ऊपर अधिक डालनेको कहा गया है कामके अनुसार कम वा वेश हुआ करता है पर पाचवाँ भाग अधिकांश दशाओंमें अच्छा काम देता है।

८. अगर चाँदी की कलई तावें पर करनी हो तो पाचवें भागसे कम लगभग आठवां भाग डालना चाहिये।

रोगोपचारके साधन (१)

(ले० सत्यप्रकाश)

प्रत्येक प्राणी रोगसे ग्रसित रहता ही है, इसका कारण भी अत्यन्त स्वाभाविक है। परमात्माने हमें शरीर प्रदान किया है और शरीरकी रक्षाका भार भी हमारे ऊपरही छोड़ा है, पर इस उत्तरदायित्वमें एक विचित्रता है। वह यह कि जिस पदार्थ पर हमें शासन करनेका अधिकार दिया गया है उसके विषयमें हमें ज्ञान अत्यन्तही कम मिला है। क्या यह आश्चर्य्यजनक बात नहीं है कि इतने दिनोंके घोर परिश्रम और असंख्य प्रयोगोंके पश्चात् भी हम शरीर विज्ञानके अति सामन्य और प्राथमिक नियमोंसे भी अनभिज्ञ हैं।

रोग तीन प्रकारके माने जा सकते हैं। एक तो जो आहार विहार तथा परिस्थितिके प्रभावसे उत्पन्न होते हैं, जैसे बुखार, खांसी, जुकाम, सिरका दर्द प्लेग आदि। दूसरे रोग वे हैं जो मानसिक व्यथाओं और कल्पनाओंसे उत्पन्न होते हैं, भय, ईर्षा कामवासनाओं की उत्पत्ति आदिसे इस प्रकारके रोग बहुधा हो जाते हैं। तीसरे प्रकारके रोग दुर्घटनाओं अर्थात् आकस्मिक घटनाओंसे उत्पन्न होते हैं जैसे पैरमें मोच आजाना, रेल या गाड़ीसे गिरकर चोट खा लेना, युद्ध, या बलवेमें मारपीटके कारण आघात और व्रणोंका होना, इत्यादि।

आहार विहार और परिस्थितिसे होने वाले रोगोंका जो उपचार किया जाता है, वह मानसिक कल्पनाओं द्वारा उत्पन्न हुए रोगोंके लिये सफल नहीं हो सकता है। इसी प्रकार आकस्मिक घटनाओंके द्वारा जनित रोगोंके निवारणार्थ जो उपचार किये जायंगे वे अपने ढगकेही निराले होंगे।

वैद्यकशास्त्रके इतिहास पर दृष्टि डालिये तो विचित्र संग्रामका पता चलेगा। यदि एक सम्प्रदायवाला व्यक्ति एकही रोग की चिकित्सामें फलोंका सेवन करना उपयोगी बताता है तो दूसरा सम्प्रदायवाला फलोंके विषतुल्य समझता है। बहुतसे सुगन्ध सेवन आरोग्यका कारण बताते हैं पर ऐसा भी एक वैद्य-सम्प्रदाय है जिसकी औषधियोंकी महत्ता सुगन्धियोंसे नष्ट हो जाती है। बेचारे रोगीकी आफत है, वैद्यक विद्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है, नित्य नूतन चमत्कृत अन्वेषण हो रहे हैं पर इस सबका फल यह होरहा है कि संसार वैद्योंके प्रति उदासीन ही होता जारहा है। साधारण जनताका तो यही विश्वास है कि चिकित्सकोंने रोगोंके उपचार ढूंढनेका यत्न किया पर उन्हें उपचार तो मिले नहीं, नये रोग और उन्हें पता चल गये। अस्तु, जो कुछ हो, रोगोपचार की समस्या सदा एकसी ही रहेगी।

आजकल तीन प्रकारसे रोगोंके निवारण करनेका यत्न किया जाता है:—(१) मिथ्यान्धविश्वास जनित विधियों द्वारा (२) परिच्छिन्न विधियों द्वारा तथा (३) वैज्ञानिक विधियों द्वारा। तीनों ही विधियाँ संसारमें अपने अलौकिक और अद्वितीय गुण प्रकट कर रही हैं, तीनों विधियों के वैद्यों के पास एक से एक बढ़कर प्रशंसापत्र मौजूद हैं और प्रत्येकके विश्वासपात्रोंकी संख्या भी कम नहीं है।

'प्रकृति स्वयं रोग का निवारण करती है' इसपर कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसे सन्देह हो। पर साथ ही एक और भी बात है, वह यह है कि इन सब प्रक्रियाओं में यश और अपयश का भागी भी तो किसी को होना है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा ही था कि हे अर्जुन! जितने व्यक्ति तुम युद्ध में देख रहे हो वे मारे तो जावेंगे ही, तुम न मारोगे तो मैं इनका संहार कर ही डालूंगा। पर तुम्हें जो श्रेय मिलना है वह न मिलेगा। बस यही अवस्था बहुधा रोगों के निवारण में भी देखी जाती है। कौन कह सकता है कि किन किन परिस्थितियोंके कारण रोग उत्पन्न हुआ है और किन साधनों द्वारा इनका उपचार हो रहा है, पर जिस बिचारे वैद्य को कीर्ति और अपकीर्ति का भागी होना होता है उसी की दवा का प्रभाव माना जाता है। तात्पर्य्य यह है कि बहुत सी

स्थितियों में यह कहना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि जो कुछ उपचार हो रहा है वह किसी ओषधि विशेषके कारण ही हो रहा है या अन्य अज्ञात शक्तियों के प्रभाव के कारण।

प्रत्येक वैद्य यही कहता है कि उसकी ओषधियों की सत्यता और उपयोगिता का यही प्रमाण है कि उसने इनका प्रयोग अमुक अमुक व्यक्तियों पर किया और उन्हें इतना इतना लाभ हुआ। बस यही युक्ति सबके पास है, चाहे वह किसी सम्प्रदायका क्यों न हो। सभी इंडक्टिव तर्क शास्त्रकी दुहाई देते हैं। ऐसी अवस्थामें किस सम्प्रदाय वाले को श्रेयस्कर समझा जाय यह कहना अत्यन्त ही कठिन है।

मिथ्यान्धविश्वास जनित विधियों अथवा छल-कपट द्वारा चिकित्सक समुदाय मालामाल होरहा है, इसमें किसीको सन्देह नहीं है। उदाहरणतः मूर्ख और अज्ञ जनताका विश्वास पैग़म्बरोंकी क़बरों, फक़ीरोंकी मिन्नतों और फूंकों पर, मंत्र, जार, तावीज़, और आशीर्वादों पर है; कौन नहीं जानता है कि इनके द्वारा कितने गरीबोंका भला होरहा है। बच्चे और बूढ़े, सभीको इन विधियोंसे प्रत्यक्ष लाभ होते हुए सुना जाता है, कमसे कम जनताका इनपर विश्वास अवश्य है तभी तो इनका प्रचार बढ़ रहा है। कहीं काली, दुर्गा, गंगा यमुना और हनुमान बजरंगीके प्रसादसे लोगोंके रोग दूर किये जाते हैं तो कहीं भूत और प्रेतोंको वशमें करनेकी कल्पनाकी जाती है, चाहें हरसूका चौरा हो, चाहें पीरकी क़बर, बात एकही है। छल कपट न कहें तो अन्धविश्वास तो अवश्य ही कहेंगे।

पढ़े लिखोंका छल कपट औरभी विचित्र है। इनके फन्दे से संसारकी मुक्ति कभी नहीं होने की। ये लोग समयके अनुसार अपनी कल्पनाओंको आश्रय देते हैं। वैज्ञानिक युगमें विज्ञानके नाम पर दम्भ और पाखंड रचनेवाले कम नहीं हैं। सब युगों और सब प्रदेशोंमें मनुष्य मात्रकी प्रवृत्ति और प्रकृति एकसी ही रही है, इसमें किसीकोभी सन्देह नहीं करना चाहिये। विज्ञानके नामपर आजकल जितनी ठग-विद्या और धूर्त्त विद्या प्रचलित होरही है उससे तो भगवान बम-भोलाही रक्षा करें तो कर सकते हैं, और तो कोई उपाय नहीं है।

इस वैज्ञानिक कपटने संसारमें कितना आंतक जमाया है, इसका एक मात्र उदाहरण देखना है तो 'होमयोपैथिक' ओषधियोंके प्रचार और प्रसारकी ओर दृष्टि डाल लेना ही समुचित होगा। छोटी छोटी प्यारी सुन्दर श्वेत मीठी गोलियोंमें बम्बके गोलेसेभी अधिक शक्ति भर दी जाती है, यह बम्बका गोला कभी एक सप्ताह बाद, कभी एक मास बाद और कभी कभी तो एक बरसके बाद फूटता है और और अपना अनुपम प्रभाव दिखाता है। यदि गंगोत्रीके पास गंगामें एक बोतल शुद्ध ओषधि डाली जाय और प्रयागमें गंगाजलकी एक बोतल भरली जाय तो वह होमयोपैथिक ओषधि हो जायगी।

रासायनिक सिद्धान्तों और परीक्षाओंसे यदि इन गोलियोंकी जाँचकी जाय तो किसीभी गोलीमें कोई ओषधि विद्यमान न पायी जायगी। अन्य सम्प्रदायके वैद्य तो अपनी ओषधियोंको देखकर, सूंघकर अथवा अन्य रासायनिक प्रयोग करके पहिचान सकते हैं, पर होमयोपैथिकमें एकमात्र शब्द प्रमाणका ही आश्रय लेना पड़ता है। यदि दो अज्ञात गोलियाँ इनके डाक्टरों और इन दवाइयोंके बनाने वालोंको देदी जायँ तो संसार भरमें कोई भी ऐसा व्यक्ति न मिलेगा जो इनकी पहिचान अनन्तकालमें भी कर सके। ऐसी अवस्थामें कौन कह सकता है कि इन गोलियोंमें शक्कर अथवा मद्यके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है या नहीं। इसका क्या प्रमाण है कि इन ओषधियोंके बनाने वाले संसारको अपने छल, कपट, तथा, धूर्त्ततासे ठग नहीं रहे हैं।

'जितना ही हलका घोल होगा उतना ही उसका अधिक प्रभाव होगा' यह सिद्धान्त आरहीनियसके विद्युत् विश्लेषण सिद्धान्तके अनुकूल बताया जाता है, पर होमयोपैथिक उपचारमें यह सिद्धान्त इस सीमा तक पहुंच गया है कि वह घोल जिसमें ओषधिकी मात्रा शून्य होगी सबसे अधिक प्रभावशाली

होगी। इस विचित्र प्रहेलिकाकी बलिहारी हो है। हम यहाँ होमयोपैथीकी बुराई करने नहीं चले हैं। तात्पर्य इतना ही है कि इस उपचारको वैज्ञानिक कलेवरमें रंगकर संसारमें अन्धविश्वास बढ़ाया जा रहा है। बायोकेमी होमयोपैथीका भी पराहत कर रही है।

क्रोमोपैथी भी एक ऐसी ही विद्या है। रंगबिरंगी बोतलोंमें पानी भर कर धूपमें रख दीजिये और ओषधि तैयार हो जायगी। विश्वास चाहिये और आपके सब रोग दूर हो जायँगे। इस सम्प्रदायके आचार्य भी विज्ञानका आश्रय लेते हैं। उनका कहना है कि प्रकाशके कारण संसारमें कितनी रासायनिक प्रक्रियायें होती हैं। वृक्ष फलते फूलते हैं, प्रकाश प्राणि-मात्रका जीवन है। कथन सर्वथा सत्य है पर सत्य सिद्धान्तके आश्रयमें एक मिथ्या कल्पना करली जाती जाती है, वह यह कि जल पर प्रकाशकी भिन्न भिन्न तरंगोंका भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है बस हेत्वाभास है तो इसी जगह पर। जिन्हें प्रकाश रसायन (photo chemistry) का कुछ भी ज्ञान है वे जानते हैं कि प्रकाशका जल पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है प्रकाशसे शुद्ध जलमें किसी प्रकारकी भी रासायनिक प्रक्रिया नहीं होती है। अस्तु, क्रोमोपैथी की सत्यता भी सन्दिग्ध ही प्रतीत होती है। इसका प्रचार भी बहुत कम ही हुआ है, पर तब भी इसका भी कुछ न कुछ साहित्य अवश्य ही है।

एलेक्ट्रो, रेडियो, केमि, आदि शब्दोंकी आड़में अनेक तावीजों और यन्त्रों का प्रचार हो रहा है। बच्चों के दाँत निकलनेके समय कष्ट होता ही है, और इसके निवारणके बहुत से उपचार किये जाते हैं। साधारण अवस्था के व्यक्ति साधुओं और फ़क़ीरों की बताई हुई जड़ी-बूटियों को गले में लटका देते हैं। इन जड़ी-बूटियों में बहुधा सूखी लकड़ी के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं है। 'जड़ी-बूटी' शब्द ही लोगों को ठगने मात्र के लिए काफी है। ऐसी ठगी जाने वाली जड़ी बूटियों सदा दुर्गम और दुर्भेद्य जंगलों अथवा पर्वतों के शिखरों पर साधुओं और योगियों को ही प्राप्त होती हैं-यह भी ढोंग फैलाने का और जनताको विश्वास दिलाने का एक सुगम और स्वाभाविक साधन है पढ़े लिखे आधुनिकसभ्यता के मनुष्योंके लिये इन जड़ी बूटियोंके प्रति इतना आकर्षण नहीं है पर कोई भी तावीज हो जिसके पहले रेडियो या इलेक्ट्रो शब्द लगा हो बस उस पर ये मुग्ध हो जाते हैं। नामकी महत्ता में ही वस्तुकी महत्ता है। चाहे किसी कपड़े और तार की पट्टी में बिजली की कोई बैटरी न भी हो, चाहे किसी विद्युत् शास्त्र वेत्ता के सूक्ष्म से सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा विद्युत् अथवा रेडियम के गुण इनमें न पाये जाते हों, पर शिक्षित समुदाय को इसकी परीक्षा करने का समय ही कहां है। अंग्रेजी अखबारों में मोटे मोटे अक्षरों में विज्ञान की दुहाई दे कर कोई विज्ञापन निकला है तो उसकी सत्यता में सन्देह करना विडम्बना मात्र है। हमारे यहाँ के डाक्टरी-उपाधि धारी वैद्य भी रोगियों को इनके उपयोग करने का परामर्श दे दिया करते हैं, बस फिर क्या है, और चाहिये ही क्या।

योग विद्या की विभूतियाँ भी कुछ कम कौतूहल जनक नहीं हैं। सामान्य व्यक्तियों के लिये योग के दो अंग हैं, एक तो प्राणायाम और दूसरा आसन। ध्यान, धारणा और समाधि बहुत ऊँची कक्षा वालों के लिये है इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आसनों के भली प्रकार करने से बहुत से रोगों का निवारण हो जाता है और प्राणायाम से श्वास सम्बन्धी दोष दूर हो सकते हैं। पर कभी कभी जनताको धोखा देने के लिये और उनको लूटने के लिये बहुत से ऐसे योगी और महात्मा आ जाते हैं जिनसे भगवान ही रक्षा करे। भारतवासी स्वभावतः श्रद्धालु होते हैं। जिस प्रकारसे लोग इन्हें विज्ञानके नामपर ठगते हैं वैसे योगके नाम-पर भी काफी ठगाई होती है।

कहा जाता है कि योगविद्या का ही दूसरा रूप मेस्मेरज़म और स्प्रिचुवेलिज़्म है। मेस्मेराइज़ करनेकी विधि योगके 'ध्यान' अंग पर निर्भर बताई जाती है। असलमें कुछभी हो यहभी मायावी लोगोंका कपट जालही अधिकतर है। जादूगरका तमाशा और हाथ

एवं दृष्टिकी सफाईको छोड़कर और कोई अधिक चातुर्य्य इसमें नहीं है। जलको मेग्नेशियम करके शक्तिसम्पन्न करा देना और उसके जलमें रोगोंको दूर करना बच्चोंका हँसी खेलही तो है, और इसे हम क्या कह सकते हैं। प्रत्येक नगरमें एक आध ऐसे सिद्ध चिकित्सक अवश्यही होते हैं। यदि इनमें ऐसी अलौकिक शक्ति है कि हाथके इधर उधर घुमानेसे और इच्छाशक्तिके प्रबल करनेसे जल अमृत बन जाता है तो ये किस देवता और ऋषिसे कम हैं। प्रभु ईसाके दर्शन करनेसे जल यदि प्यारी मदिरामें परिणत होगया तो कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है।

ऐसे योगिराजोंकी महिमा जितनीही की जाय थोड़ीही है। योगिराज प्रयागमें हों और आपको कलकत्तेमें सांपने काटा है तो भाग्यविधाता सिद्ध योगिराजको एक तार भेज दीजिये आपके शरीरसे जान निकलभी गई हो तोभी योगीतारकी शक्तिसे वापस आजायगी। लोगोंने ऐसी घटनायें आँखोंसे देखी हैं, कानोंसे सुनी हैं, अब कहिये, विश्वास क्यों न किया जाय! बुद्धि गवाही दे या न दे तर्कशास्त्र चाहे आगमेंही क्यों न जलादेना पड़े, पर ऐसे योगियोंकी चालबाजियों पर जनता की श्रद्धा कुछ कालके लियेतो अवश्यही जम जाती है। इसीका नाम है—आँखोंके होते हुए अन्धे कहलाना और कानोंके होते हुए बहिरे बनाना। संसार नाटककी सीध चलनेके लिये नहीं है, सावधानीसे जीवन बितानेकी आवश्यकता है

ज्यों ज्यों मनुष्यकी अविद्याशक्ति बढ़ती जाती है त्यों त्यों इस मानवसृष्टिमें भूत और प्रेतों की संख्याभी बढ़ रही है। कहा जाता है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने प्रेत संसारकी खोज की है, और परिश्रम और त्याग द्वारा उन्होंने सूक्ष्मात्माओंको अपने वशमें कर पाया पाया है। भूतनाथ महादेवजीकी सम्पूर्ण सेना आज प्रेतविज्ञोंके हाथ कठपुतलियोंके समान नाच रही है। बेचारे दीनहीन व्यक्तियोंपर ये प्रेत अपनी लीला करते हैं, बस उनकी सम्पूर्ण व्याधियां और रोगोंका कारण इन्हींके सिर मढ़ा जाता है। प्रेतविज्ञान की अभिवृद्धिने वैद्यकशास्त्रको नयाही रंग देदिया है। प्लानचेटही एक मात्र यन्त्र है, धूर्तों की मण्डलीही वैद्य है, सबके सिर पर प्रेत नाचने लगते हैं। इनके विषयमें कुछ भी कहना व्यर्थ है। इस विद्या की आड़में हरएक महात्माको भी एक सहारा मिल गया है। देखिये भविष्यके लिये कुछ नहीं कहा जा सकता है पर इसके भी सब रहस्य प्रकट होही जायंगे। कुछ दिनोंका मनोरञ्जन अवश्य है।

अस्तु, इस लेखमें हमने केवल इतना स्पष्ट करने का यत्न किया है कि रोगोंके निवारणार्थ शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों समुदायोंमें अविद्याजन्य अन्धविश्वास युक्त उपचारों का प्रयोग होरहा है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्यक्षरूपमें यह आभास अवश्य होता है कि इन उपचारोंसे जनता को लाभ होरहा है। पर यदि सदसद्विवेकवतीबुद्धिका आश्रय लिया जाय तो अवश्य ही हम इन उपचारोंको छल कपट अथवा अन्धविश्वासजन्य विधान ही मानेंगे। पर इन सबसे हम एक उपयोगी सिद्धान्त तक अवश्य पहुँच जाते हैं। सभी जानते हैं, कि अन्य ओषधियों की अपेक्षा होमियोपैथी की दवायें अधिक सस्ती होती हैं, अतः धनहीन व्यक्ति इनका सेवन कर सकते हैं। हम कह चुके हैं कि होमियोपैथी की सब दवाओंमें शक्कर या मद्यके अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं है। चाहें नाम केलकेरिया कार्ब हो, या एकोनाइट, कास्टिक हो या और कोई स्पेसिफिक, २०० डाइल्यूशन की दवा हो चाहें १००० डाइल्यूशन की, विज्ञानवेत्ता और रसायनज्ञके लिये होमियोपैथीके ये नाम ढोंग मात्रही हैं, पर इनसे लाभ होही रहा है, प्रतिदिन सहस्रों रोगी इनसे सन्तुष्ट होकर जाते हैं। इन गोलियोंमें ओषधि की मात्रा शून्य होती है, अतः यह निश्चित परिणाम निकाला जा सकता है कि हमारे बहुतसे रोग शून्य ओषधियोंसे स्वभावतः दूर हो जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें हम इसको इस प्रकार कह सकते हैं कि साधारणतः रोग निवारणके लिये ओषधियों की अनिवार्य्य आवश्यकताही नहीं है। दुर्घटना जन्य आघातों और रोगों की बात जाने दीजिये। पर साधारण परि-

स्थिति और ऋतु आहार विहार के अभ्यासे जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे बहुधा कालान्तरमें अपने आप अच्छे हो जाते हैं। शरीर निर्माण की यही विशेषता है। जहां कहीं भी एक रोग हुआ, शरीर की सम्पूर्ण अज्ञात आन्तरिक शक्तियाँ इस रोगको दूर करनेके लिये प्रयत्न शील होजाती हैं। इस स्थान पर हम इतना ही कह देना चाहते है। रोगोपचार की परिच्छिन्न और अन्य वैज्ञानिक विधियों की मीमांसा फिर कभी की जायगी।

कर्बन और शैलम्

(Carbon and Silicon)

(ले॰ श्री सत्य प्रकाश एम॰ एस-सी)

आवर्त संविभाग के चौथे समूहमें दो अधातु तत्त्व हैं जिनका नाम कर्बन और शैलम है। संविभागका चौथा समूह एक बातसे विशेष उल्लेखनीय है। सातों समूहोंमें बीचका होनेके कारण इसमें एक ओर तो धनात्मक तत्त्वोंके गुण पाये जाते हैं और दूसरी ओर ऋणात्मक तत्त्वोंके। या यह भी कहा जा सकता है कि इसके तत्त्वोंमें धनात्मक और ऋणात्मक कोई भी गुण नहीं हैं। कर्बन एक ओर तो उदजनके चार परमाणुओंसे संयुक्त होकर दारेन यौगिक बनाता है तो दूसरी ओर हरिन् ऐसे ऋणात्मक तत्त्वके भी चार परमाणुओंसे संयुक्त होकर कर्बनचतुर्हरिद बना सकता है—

```
     उ              ह
     |              |
उ—क—उ        ह—क—ह
     |              |
     उ              ह
   दारेन       कर्बनचतुर्हरिद
```
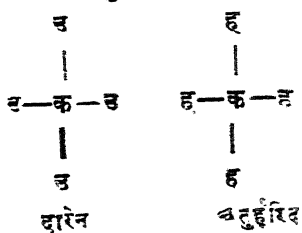
इस प्रकारके विचित्र गुणोंके कारण संसारमें कर्बनके जितने यौगिक विद्यमान हैं उतने किसी अन्य तत्त्वके नहीं हैं। लकड़ी, कोयला, रंग, कागज़, भोज्य पदार्थ तथा जितने अन्य आवश्यक पदार्थ हैं, उन सबोंमें कर्बन किसी न किसी रूपमें विद्यमान है। इस कारण रसायनज्ञों ने रसायन शास्त्रका एक नया पृथक् विभाग ही कर दिया है जिसे 'कार्बनिक रसायन' कहते हैं। इस स्थान पर हम कर्बनके साधारण भौतिक गुणोंका, और उसके तीन यौगिकोंका, अर्थात् कर्बन एकौषिद, कर्बनद्विऔषिद तथा कर्बनेतोंका ही वर्णन करेंगे। शेष यौगिकोंका वर्णन 'कार्बनिक रसायन' नामक पुस्तकमें देखना चाहिये।

शैलम् भी कर्बनके समान ही ऋणात्मक और धनात्मक दोनों ही है। जैसा कि इसके नामसे प्रगट होता है यह पत्थरोंमें शैलेतके रूपमें पाया जाता है। यह भी चतुर्शक्तिक है और उदजन या हरिन्के चार परमाणुओंसे संयुक्त हो सकता है:—

```
     उ               ह
     |               |
उ—शै—उ   ;   ह—शै—ह
     |               |
     उ               ह
शैलचतुरुदिद     शैल चतुर्हरिद
```
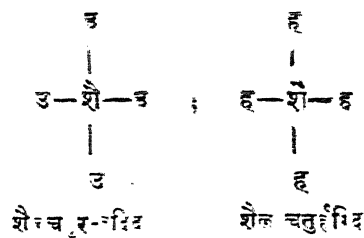
काँचका मुख्यतः अंश शैलम् ही होता है। यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि आजकल काँचका उपयोग संसारमें कितना होता है। इस प्रकार शैलम् तत्त्व भी महत्वपूर्ण है। इसका औषिद, शैओ$_2$, विशेष उल्लेखनीय है।

कर्बनके बहुरूप

जिस प्रकार गंधक, स्फुट, संक्षीणम् आदि तत्त्व कई रूपके पाये गये हैं उसी प्रकार कर्बन भी तीन मुख्य रूपोंमें प्राप्त होता है:—

(१) हीरा

(२) लेखनिक (graphite)

(३) कोयला

साधारणतः देखनेसे यह संदेह हो सकता है कि हीरेके समान चमकनेवाली बहुमूल्य पारदर्शक वस्तु और कोयलेके समान साधारण काला पदार्थ दोनों एक ही कैसे हो सकते हैं पर रासायनिक विधियोंसे जांच करनेसे पता चलेगा कि तीनों ही कर्बनके शुद्ध-रूप हैं। कोयलेके समान हीराको भी जलाकर कर्बन द्विओषिदमें पूर्णतः परिणत किया जासकता है। यदि लेखनिक, हीरा और कोयला तीनोंके बराबर भारको लेकर वायुमें जलावें और जल में उत्पन्न कर्बन-द्विओषिदको तौले तो तीनों अवस्थामें कर्बनद्विओषिदका भार एक ही मिलेगा। कर्बन-द्विओषिदके अतिरिक्त तीनोंसे और कोई पदार्थ नहीं मिलेगा। इससे सिद्ध है कि तीनों एकही प्रकारके कर्बन ।

हीरा—संसारमें अति प्राचीन समय से हीरेकी बहुमूल्यता चली आरही है। सं० १८३७ वि० के लगभग लवाशिये नामक वैज्ञानिकने सबसे प्रथम यह सिद्ध किया था कि यह कर्बनकाही रूपान्तर है। उसने पारदके ऊपर एक बर्तनमें जिसमें शुद्ध हवा थी हीरेको लेकर आतशी शीशेसे जलाया। जलनेके पश्चात् निकली हुई गैस चूनेके पानीको दुधिया करनेका गुण रखती थी अतः उसने दिखा दिया कि यह गैस कर्बनद्विओषिद है। डेवीने अपने प्रयोगोंसे दिखाया कि जब हीरा वायुमें जलाया जाता है तो पानी नहीं बनता है। इससे स्पष्ट है कि हीरेमें उद्जनके परमाणु नहीं हैं—केवल कर्बन हीके परमाणु हैं।

जब यह मालूम होगया कि हीरा कर्बन काही दूसरा रूप है तो लोगोंने यह प्रयत्न करना आरम्भ किया कि किस प्रकार हम कोयलेसे हीरा बना सकते हैं। इस समस्या का समाधान सबसे पहले मोयसाँ नामक वैज्ञानिकने किया द्रव लोहेमें कर्बन घुलनशील है। मोयसाँ ने कर्बन की घरियामें लोहेके एक टुकड़ेको हड्डीके कोयलेके साथ रक्खा। घरिया को विद्युत् भट्टीमें गरम किया गया, लगभग ४०००°श तापक्रम पर द्रवलोहेमें कोयला घुल गया। इस अवसर पर मोयसाँ ने घरिया को एकदम ठंडे पानीमें छोड़ दिया। इस प्रकार एकदम ठंडे होनेके कारण द्रव पदार्थके ऊपर एक मोटी ठोस तह तो जम गई पर अन्दर इतना दबाव बढ़ा कि लोहेमें घुला हुआ कुछ कोयला हीरा बन गया और कुछ लेखनिक। इस प्रकार मोयसांने अपने प्रयोगसे सिद्ध कर दिया कि कोयलेसे भी हीरा बन सकता है। इस विधिसे हीरा इतनी कम मात्रामें बनता है कि व्यापारिक सफलता इस प्रकार प्राप्त नहीं हो सकती है। हीरा सबसे अधिक कठोर है, यह पारदर्शक चूर्ण है रोञ्जन रश्मियाँ इसमें होकर पार जासकती हैं। यह किसी द्रवमें घुलनशील नहीं है।

पांशुजद्विरागेत और तीव्र गन्धकाम्लके मिश्रणमें यह २०० श तापक्रम पर कर्बनद्विओषिदमें परिणत हो जाता है।

लेखनिक—इस कोयलेको रगड़नेसे कागज पर काले चिह्न पड़ जाते हैं अतः पैन्सिल बनानेमें इसका उपयोग किया जाता हैं। यह विद्युत्का अच्छा चालक है अतः विद्युत् ध्रुव इसके बनाये जा सकते हैं। यदि हवा या ओषजनमें इसे जलाया जाय तो यह कर्बन द्विओषिदमें परिणत होजाता है। पांशुजद्विरागेत और गन्धकाम्लके मिश्रणसे यह ओषदीकृत होकर कर्बनद्विओषिद देता है।

बेरवा कोयला—मोमबत्ती, चिराग आदिके जलनेसे जो धुँआ उठता है उसे किसी बर्तन पर जमानेसे काजलके समान बेरवा पदार्थ मिलता है। वह कर्बनका अशुद्धरूप है। इससे जूतोंकी पालिश और छापाखाने की रोशनाई बनाई जाती है।

लकड़ीका कोयला—लकड़ीको कम हवामेंकी भट्टीमें जलानेपर जो कोयला बच रहता है वह लकड़ीका कोयला कहलाता है। इसको ईंधनके रूपमें जलानेके काममें लाते हैं।

हड्डीका कोयला—बन्द भभकोंमें हड्डी या रुधिरको गरम करनेसे हड्डीको कोयला मिलता है। इसमें १० प्रति. शत. कर्बन होता है और शेष अन्य कार्बनिक

यौगिक होते हैं। हड्डीका कोयला पदार्थोंके शुद्ध करने के काममें आता है। यदि शक्करको इसके साथ उबाल कर छाना जाय और इसका फिर स्फटिकीकरण कर लिया जाय तो स्वच्छ श्वेत शक्कर प्राप्त होगी।

पत्थरका कोयला—वनस्पति, पेड़, पौधे आदि कालान्तरमें जमीनमें दब जाते हैं। कुछ समयके पश्चात् ये पत्थरके कोयलेमें परिणत हो जाते हैं। इस कोयलेकी खानें भारतवर्ष और अन्य देशोंमें भी बहुत हैं मशीन, कारखानों और इञ्जिनोंमें यह कोयला जलाया जाता है।

संसारमें कर्बनके इतने यौगिक पाये जाते हैं कि इनके अध्ययन करनेके लिये रसायनका एक नया विभाग ही कार्बनिक रसायन नामसे बना दिया गया है।

हम यहाँ केवल तीन विषयोंका उल्लेख करेंगे—

(१) कर्बन एकौषिद
(२) कर्बन द्विओषिद
(३) कर्बनेत और अधकर्बनेत

कर्बन एकौषिद, क ओ,

(carbon monoxide)

कर्बनको यदि थोड़ीसी हवामें गरम किया जाय तो कर्बन एकौषिद, क ओ, बनता है—

$२ क + ओ_२ = २ क ओ$
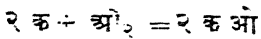
इसी प्रकार यदि कर्बन द्विओषिदको अधिक कर्बनकी विद्यमानतामें गरम किया जाय तो भी यह मिल सकता है।

$क ओ_२ + क = २ क ओ$
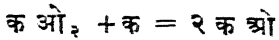
दस्तओषिद, सीसओषिद आदिको कर्बन द्वारा अवकृत कर सकते हैं। प्रक्रिया द्वारा धातु और कर्बन एकौषिद मिलेगा।

$द ओ + क = द + क ओ$
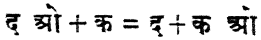
प्रयोगशालामें यह बहुधा पिपीलिकाम्ल (formic acid) और गन्धकाम्लको गरम करके बनाया जाता है। एक कुप्पीमें तीव्र गन्धकाम्ल लो। इसमें पेंचदार कीप और वाहक नली लगा दो। गन्धकाम्लको १००° तापक्रम तक गरम करो। कीप द्वारा पिपीलिकाम्लको टपकाओ। कर्बन एकौषिद गैस उत्पन्न होगी जिसे बेलनोंमें भरा जा सकता है।

प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

$उ क ओ ओ उ + उ_२ ग ओ_४ = उ_२ ग ओ_४$
पिपीलिकाम्ल
$+ उ_२ ओ + क ओ$
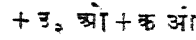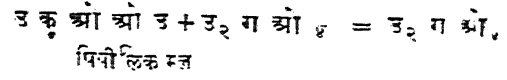
पिपीलिकाम्लकी जगह इसका कोई लवण, सैन्धक पिपीलेत आदि लिया जा सकता है।

कर्बन एकौषिद नीरंग, स्वाद तथा गन्धरहित विषैला वायव्य है। एक आयतन जलमें २० श पर यह ०·०२३ आयतन घुलनशील है: वायुदबावपर —१९०° पर यह द्रवीभूत हो जाता है और —२०३° तापक्रम पर ठोस हो सकता है। यदि दियासलाई जलाकर इसमें छोड़ी जाय तो यह गैस नीली ज्वालासे जलने लगती है और दियासलाई बुझ जाती है। इस प्रकार यह गैस स्वयं ज्वलनशील है पर अन्य पदार्थोंके जलनेमें साधक नहीं है।

कर्बन एकौषिदमें अवकरण करनेके गुण होते हैं। यह अमोनिया-रजतनोषेत घोलको अवकृत कर देता है। लोह-ओषिद, $लो_२ ओ_३$ इसके साथ गरम करने पर लोहेमें परिणत हो जाता है—

$लो_२ ओ_३ + ३ क ओ = २ लो + ३ क ओ_२.$
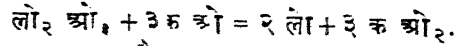
यह वायव्य सैन्धक अथवा पांशुज क्षारके घोलोंमें घुलनशील नहीं है। कर्बनद्विओषिद इनमें घुल जाता है। ताम्रसहरिद और उदहरिकाम्लके संयुक्त घोलमें कर्बन एकौषिद अभिशोषित किया जा सकता है। गैस-विश्लेषणमें कर्बन एकौषिद की मात्रा निकालनेके लिये ताम्रसहरिद का इसलिये उपयोग किया जाता है। यह वायव्य अत्यन्त विषैला है। यदि वायुमंडलके सौ भागमें १ भाग भी यह मिला हो तो श्वास लेनेसे मृत्युतक हो सकती है।

संगठन—कर्बनएकौषिदके १०० आयतनको १०० आयतन ओषजनके साथ जलानेसे १५० आयतन कर्बनद्विओषिद मिलता है। इस प्रकार जनित गैस को यदि पांशुज क्षार घोलके साथ हिलाया जाय तो

केवल ५० आयतन ओषजन शेष रह जाता है। इससे स्पष्ट है कि प्रक्रियामें १०० आयतन कर्बनएकौषिद केवल ५० आयतन ओषजनसे संयुक्त हुआ था और १०० आयतन कर्बनद्विओषिद बना। कर्बनएकौषिद का वाष्प घनत्व १४ है अर्थात् यह उदजनसे १४ गुणा भारी है अतः इसका अणुभार १४ × २ = २८ हुआ। इस प्रकार उपर्युक्त प्रक्रिया निम्न सूत्रके अनुसार प्रतीत होती है—

$$२\ क\ ओ + ओ_२ = २\ क\ ओ_२$$
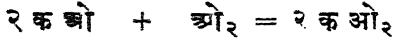
२. आयतन १ आय. २ आय.

कर्बनका परमाणु भार १२ और ओषजनका १६ है अतः कर्बन एकौषिद्का सूत्र क ओ' हुआ।

कर्बनद्विओषिद (क ओ$_२$).

(Carbon dioxide)

वायुमंडलमें ०.०३ प्रति. शतके लगभग कर्बनद्विओषिद विद्यमान है। प्रत्येकप्राणी श्वास द्वारा वायुका ओषजन शरीरके अन्दर लेजाता है और यहां इस ओषजनका उपयोग भोजन आदिके ओषदीकरणमें होता है। ओषदीकरण द्वारा कर्बनद्विओषिद निकलता है। जिसे हम श्वास द्वारा बाहर निकाल देते हैं यह कर्बनद्विओषिद वायुमण्डलमें फैल जाता है। वृक्षोंमें यह गुण है कि वे क्लोरोफील नामक हरे रंगके पदार्थकी विद्यमानतामें प्रकाशकी सहायतासे कर्बनद्विओषिद को कर्बन और ओषजनमें विभाजित कर देते हैं। यह कर्बन वृक्षोंके शरीर निर्माणमें काम आता है और वृक्ष ओषजनको श्वास द्वारा बाहर फेंक देते हैं। इस क्रियासे वायुमें फिर अन्य प्राणियोंके उपयोगके लिये शुद्ध ओषजन प्राप्त होजाता है। वृक्ष रातमें कर्बनद्विओषिद श्वास द्वारा अन्दर नहीं लेजाते हैं। उन्हें इस समय ओषजन लेना पड़ता है। रातकोवे अन्य प्राणियोंके समानही ओषजन ग्रहणकर कर्बनद्विओषिद बाहर निकालते हैं।

कर्बनद्विओषिद बनाने की विधि—

१. खड़िया मिट्टी या चूनेके पत्थर (खटिककर्बनेत) को जोरोंसे गरम करनेसे कर्बनद्विओषिद निकलने लगता है।

$$ख\ क\ ओ_३ = ख\ ओ + क\ ओ_२$$

२. किसी कर्बनेतमें हलका उदहरिकाम्ल डालनेसे कर्बनद्विओषिद वायव्य निकलने लगता है। खड़िया-मिट्टी, संगमरमर आदिके टुकड़ोंको कांचकी एक कुप्पीमें लो और उसमें पेंचदार कीपसे उदहरिकाम्ल-का हलका घोल डालो। वाहक नली द्वारा कर्बनद्विओषिद को किसी गैसके बेलनमें भर लो। यह हवासे भारी होता है अतः आसानीसे सीधे बेलनमेंही भरा जा सकता है। प्रक्रियामें खटिकहरिद भी बनता है—

$$ख\ क\ ओ_३ + २उह = खह_२ + उ_२\ ओ + कओ_२$$
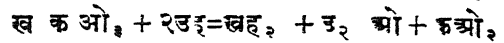
३. कोयलेको या किसी कार्बनिक पदार्थ, शक्कर, मोम, तेल आदिको समुचित ओषजनकी मात्रामें गरम करके जलानेसेभी कर्बनद्विओषिद बनता है।

गुण—यह नीरंग गैस है जिसमें हलका अम्लीय स्वाद होता है। यह उदजनकी अपेक्षा २२ गुनी भारी है। यह पानीके समान एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें उँडेला जा सकती है क्योंकि यह वायुसे भारी है। इसमें वस्तुके जलानेकी शक्ति नहीं है। जलती हुई दियासलाई इसमें बुझ जावेगी। केवल जलता हुआ मगनीसम्‌तार इसमें जलता रह सकता है। मगनीसम् स्वयं ओषिदमें परिणत हो जाता है, और कर्बनके कण पृथक् हो जाते हैं:—

$$क\ ओ_२ + २\ म = २\ म\ ओ + क$$
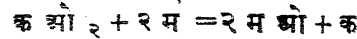
यह वायुमंडलके दबाव पर जलमें घुलनशील है। ०° श पर एक ग्राम जलमें १.८ आयतन यह वायव्य घुल सकता है पर २०° श पर केवल ०.६ आयतन ही घुलनशील है। पर यदि दबाव अधिक कर दिया जाय तो वह और अधिक घुल सकता है। सोडावाटर की बोतलोंमें यह गैस दबावके कारण पानीमें अधिक मात्रामें घुली रहती है पर यदि बोतलकी डाट खोली जाय तो दबाव कम होता है और गैसके बुदबुदे जोरोंसे निकलने लगते हैं। पानीमें घुलकर यह जलको अच्छा स्वाद दे देती है।

(क्रमशः)

सूर्य-सिद्धान्त

[ले० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी, एल० टी०, विशारद]

लघुतम और परम मान तथा लघुतम और परम लम्बन त्रिप्रश्नाधिकारके पृष्ठ ५६० में दिये गये हैं। इनसे यह प्रगट होता है कि बिम्बोंका परिमाण लम्बनके अनुसार बदलता है अर्थात् यदि लंबन अधिक होता है तो स्पष्ट बिम्ब भी अधिक होता है और लंबन कम होता है। तो स्पष्ट बिम्ब कम होता है। परन्तु लंबनका परिमाण दूरीके विलोम अनुपातके अनुसार बदलता है अर्थात् जब दूरी अधिक हो जाती है तब लम्बन कम हो जाता है और जब दूरी कम हो जाती है तब लंबन अधिक हो जाता है (देखो पृष्ठ ५५७)।

चित्र ३४ (देखो पृष्ठ २६८) से प्रकट है कि जिस समय ग्रहका शीघ्र केन्द्र शून्य होता है उस समय पृथ्वीसे ग्रहकी दूरी अत्यन्त अधिक होती है अर्थात् उस समय ग्रहका शीघ्र-कर्ण अत्यन्त अधिक होता है तथा यह पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी और सूर्यसे ग्रहकी दूरीके योगके समान होता है। परन्तु जिस समय ग्रहका शीघ्र केन्द्र १८० अंश होता है उस समय पृथ्वी से ग्रहकी दूरी अत्यन्त कम होती है तथा यह पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी और सूर्यसे ग्रहकी दूरीके अंतरके समान होती है। ग्रहके शीघ्रकर्ण और बिम्बोंका संबंध नीचेकी सारणीसे अच्छी तरह प्रकट होता है :—

ग्रह	स्पष्ट बिम्ब		शीघ्र कर्ण	
	लघुतम	परम	परम	लघुतम
	विकला	विकला		
मंगल	४.४	२१.२	२५२४	५२४
बुध	४.८	१०.६	१३८७	६१३
गुरु	३१.६	४६.७	६२०३	४२०३
शुक्र	६.६	६०.०	१७२३	२७७
शनि	१५.८	१६.५	१०५३६	८५३६

* यह बड़े हर्ष की बात है कि आचार्य वेङ्कटेश बापू केतकर अभी जीवित हैं और अपने सुपुत्र के साथ बीजापुर में रहते हैं और पिता पुत्र दोनों ज्योतिष के अध्ययनमें अभी तक लगे हुए हैं। मैंने भूलसे आपके नामके पहले पृष्ठ २७७ में आपको 'स्वर्गीय' लिख दिया था क्योंकि मैं समझता था कि आप स्वर्गीय हो गये होंगे। परन्तु श्रीमान् पदमम एस. एम्. कोड्रेज Padam S. M. codrez के पत्रों से मालूम हुआ कि आप अभी जीवित हैं। इस सूचना के लिए मैं इन महाशय का बड़ा कृतज्ञ हूं। पूना के महाराष्ट्रीय पंचांगैक्य मंडलके १६८२ वि० के प्रथम अधिवेशन के वृत्तान्त से सिद्ध होता है कि आप वृद्ध होते हुए भी ज्योतिष संबंधी वाद विवादों में सम्मिलित होते हैं। लेखक

यहां पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी अथवा सूर्यका शीघ्रकर्ण १००० माना गया है।

युतिकालमें ग्रहोंका वेध करने की रीति—

छाया भूमौ विपर्यस्ते स्वच्छायाग्रेतु दर्शयेत् ।
ग्रहः स्वदर्पणान्तस्थः शङ्क्वग्रे सम्प्रदृश्यते ॥१५॥
पञ्च हस्तोच्छ्रितौ शङ्कू यथा दिग्भ्रम संस्थितौ ।
ग्रहान्तरेण विक्षिप्तावधो हस्तनिखातगौ ॥१६॥
छायाकर्णौ ततो दद्याच्छायाग्राच्छङ्कुमूर्धगौ
छाया कर्णाग्रसंयोगे संस्थितस्य प्रदर्शयेत् ॥१७॥
शङ्कुमूर्धगौ व्योम्नि ग्रहौ दृक्तुल्यतामितौ ॥

अनुवाद—(१५) समतल भूमि पर जिस पर शंकु गाड़कर छाया नापी जाती है, शंकुकी जिस दिशामें ग्रह हो उसकी विपरीत दिशामें, ग्रहकी युतिकालिक छायाके अग्रमें रखे हुए दर्पणमें ग्रहको दिखलाना चाहिए। ऐसे दर्पणमें ग्रह शंकुकी नोकके साथ मिला हुआ देख पड़ता है। (१६) पांच हाथके ऊंचे दो शंकुओंको उन दिशाओंमें गाड़े जिनमें युतिकालके ग्रह हों। इन शंकुओंका परस्पर याम्योत्तर अंतर उतना ही होना चाहिए जितना उन ग्रहोंका अन्तर हो। इनको दृढ़ता पूर्वक खड़ा रखनेके लिए एक एक हाथ पृथ्वीके नीचे गड्ढा खोदकर गाड़ना चाहिए। (१७) ग्रहकी युतिकालिक छायाके अग्रविन्दु से शंकुकी चोटी तक छायाकर्ण बतलानेवाला एक डोरा सीधा बाँधे। देखनेवालेको चाहिए कि अपनी आंख छाया कर्णके इसी सूत्र पर रखे। (१८) ऐसा करनेसे ग्रह आकाशमें शंकुकी चोटीसे लगा हुआ देख पड़ेगा।

विज्ञान-भाष्य—यह साढ़े तीन श्लोक बड़े महत्वके हैं। इनसे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्य ज्योतिषकी सूक्ष्म गणना इसीलिए करते थे कि इससे ग्रहोंका प्रत्यक्ष स्थान वही आवे जो वेधसे देख पड़ता है क्योंकि जब तक ग्रहोंकी गणना बिलकुल शुद्ध नहीं होगी तब तक हम उनको इस प्रकार देख ही नहीं सकते जैसा कि इन श्लोकोंमें बतलाया गया है। इससे एक बात और भी ज्ञात होती है कि हमारे आचार्योंको प्रकाश के परावर्तनका नियम भी ज्ञात था।

यहां ग्रहोंकी छायाकी गणना करने के लिए त्रिप्रश्नाधिकार में बतलायी हुई रीतिके अनुसार युतिकालिक ग्रहोंका नतकाल उनके भोगांश, क्रान्ति और चरसे पृष्ठ ४८५ में बतलायी गयी रीतिके अनुसार जानना चाहिए। नतकाल जान लेने पर पृष्ठ ४३० और ४३१ के समीकरण (ख) और (ग) के अनुसार ग्रहोंके नतांश जानना चाहिए। नतांशसे पृष्ठ ४०४ के समीकरण (ख) के अनुसार दिगंश अथवा अग्रा जानना आवश्यक है। नतांशसे छाया जाननेके लिए नतांश की स्पर्श-रेखाको शंकुके परिमाण से गुणा कर देना चाहिए। यहां १५वें श्लोकके लिए यदि शंकुका परिमाण १२ अंगुलका हो तो कुछ हर्ज नहीं परन्तु १६ वें श्लोक के लिए शंकुका परिमाण ४ हाथ का होना चाहिये। ऐसा होने से द्रष्टा खड़ा होकर ग्रहों का वेध सुगमता पूर्वक कर सकता है।

१५ वें श्लोक का सार चित्र द्वारा इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है:—

चित्र १०७

ग=युतिक लिक ग्रह का स्थान

क ख=समतल भूमि में गड़ा हुआ शंकु

ख द=ग ग्रह की छाया

द=ख द छाया का अग्रविन्दु जहाँ दर्पण रखा जायगा।

न=द्रष्टाका नेत्र

द्रष्टाका नेत्र द न रेखा के किसी विन्दु पर होने से दर्पण में ग्रह ग और शंकु की चोटी क एक साथ मिले हुए देख पड़ेंगे।

यदि क ख शंकु चार हाथ का हो तो ख द छाया के अग्रविन्दु द से शंकु की चोटी क तक जो सूत्र क द ताना जायगा उस पर किसी जगह द्रष्टाका नेत्र हो तब भी ग्रह ग शंकु की चोटी क से मिला हुआ देख पड़ेगा। यही १६, १७ और १८ वें श्लोक के पूर्वार्द्ध का सार है।

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि आजकल यह वेध तभी ठीक ठीक आ सकता है जब ग्रह का नतांश दृग्गणितके अनुसार शुद्ध शुद्ध जाना जाय। इस कामके लिए हमारे सिद्धान्त ग्रन्थोंमें नवीन वेधोंके अनुसार संशोधन करना अत्यन्त आवश्यक है।

इन श्लोकोंसे यह भी प्रकट होता है कि ज्योतिष-विज्ञान-का अध्ययन ग्रन्थोंके आधार पर ही नहीं होना चाहिए वरन् वेध भी करना चाहिए। इसलिए सिद्ध है कि ज्योतिषका पठन पाठन उचित रीतिसे तभी सम्भव है जब ज्योतिष विद्यालयके साथ अच्छी वेधशाला भी हो। ऐसी वेधशालामें शंकु इत्यादि के स्थानमें आजकलके सूक्ष्म यंत्र दूरदर्शक इत्यादि हों तभी वेधोंमें शुद्धता आ सकती है और सिद्धान्त ग्रन्थोंमें उचित संशोधन करके उनका जीर्णोद्धार भी हो सकता है।

पांच प्रकारकी युतियोंके लक्षण—

उल्लेखं तारकास्पर्शाद्भेदे भेदः प्रकीर्त्यते ॥ १८ ॥

युद्धमंशुविमर्दाख्यमंशु योगे परस्परम् ।

अंशादूनेऽपसव्याख्यं युद्धमेकोऽत्र चेदणुः ॥ १९ ॥

समागमोंऽशादधिके भवतश्चेद्बलान्वितौ ।

अनुवाद—(१८) का उत्तरार्ध-यदि युतिकालमें दोनों ग्रहों-के बिम्बोंका केवल स्पर्श होता हो तो ऐसी युतिको उल्लेख नामक युति कहते हैं। परन्तु यदि एकका बिम्ब दूसरेके बिम्बको भेद करे अर्थात् कुछ ढकले तो ऐसी युतिको भेद नामक युति कहते हैं। (१९) यदि दोनों ग्रहोंके बिम्ब तो कुछ दूर हों परन्तु उनकी किरणें मिली हुई देख पड़ें तो ऐसी युतिको अंशुविमर्द नामक युद्ध कहते हैं। यदि दोनों ग्रहोंके बिम्बोंका अन्तर एक एक अंशसे कम हो तो ऐसी युतिको अपसव्य युद्ध कहते हैं। इस युद्धमें यदि एकका बिम्ब छोटा हो तो अपसव्य व्यक्त होता है

अन्यथा अव्यक्त होता है। (२०) यदि दोनों बिम्बोंका अन्तर एक अंशसे अधिक हो तो ऐसी युतिको समागम कहते हैं। यदि दोनों ग्रह बली हों अर्थात् स्थूल हों तो व्यक्त समागम होता है। अन्यथा अव्यक्त समागम होता है।

विज्ञान-भाष्य—यहां केवल परिभाषा बतलायी गयी है जो स्पष्ट है। इसलिए इस पर कुछ अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

पराजित और बिजयी ग्रहोंका लक्षण—

अपसव्ये जितोयुद्धे पिहितोऽणुरदीप्तिमान् ॥ २० ॥
रूक्षो बिवर्णो विध्वस्तो विजितो दक्षिणाश्रितः।
उदक्स्थो दीप्तिमान् स्थूलो जयी याम्येपियोबली ॥२१॥

अनुवाद—(२०) अपसव्य नामक युद्धमें जिस ग्रहका बिम्ब ढक जाता है, छोटा और तेजहीन होता है, (२१) रूखा वर्ण हीन या फीका होता है और दक्षिणकी ओर होता है वह पराजित समझा जाता है। परन्तु जिस ग्रहका बिम्ब उत्तरकी ओर होता है तेजवान और बड़ा होता है वह विजयी समझा जाता है। बली अर्थात् बड़ा और तेजवान ग्रह दक्षिणकी ओर हो तब भी विजयी समझा जाता है।

विज्ञान-भाष्य—यह भी स्पष्ट है।

आसन्नावप्युभौ दीप्तौ भवतश्चेत्समागमः।
स्वल्पौ द्वावपि विध्वस्तौ भवेतांकूटविग्रहौ ॥२२॥

अनुवाद—(२२) यदि दोनों ग्रह पास होते हुए भी प्रभायुक्त हैं तो समागम नामक युद्ध होता है और यदि दोनों ग्रह छोटे और फीके हैं तो कूटविग्रह नामक युद्ध होता है।

उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भार्गवः प्रायशोजयी।
शशाङ्केनैवमेतेषां कुर्यात्संयोग साधनम्। २३॥

अनुवाद—(२३) शुक्र चाहे उत्तरकी ओर हो चाहे दक्षिणकी ओर बहुधा बिजयी होता है। इसी प्रकार चद्रमाके साथ पांचों ताराग्रहोंकी युतिका साधन करना चाहिए।

विज्ञान-भाष्य-पांच ताराग्रहोंकी लघुतम और परम बिम्ब मानोंकी सारणीसे यह प्रकट है कि शुक्र ग्रहका लघुतम बिम्ब मंगल और बुधके लघुतम बिम्बोंसे बड़ा है इसलिए इनकी युतिके समय तो शुक्र ही अधिक दीप्तिमान और स्थूल होनेसे विजयी होता है। जिस समय मंगलका बिम्ब परम होता है उस समय यह सूर्यसे १८० अंश आगे होता है ऐसी दशामें शुक्रके साथ इसकी युति हो ही नहीं सकती; शुक्र और मंगलकी युति तभी हो सकती है जब मंगल भी सूर्यके पास रहे। ऐसी दशामें मंगलका बिम्ब शुक्रके बिम्बसे सदैव छोटा रहेगा। इसलिए मंगल और बुधसे शुक्र सदैव अधिक दीप्तिमान और विजयी होता है। हां, गुरु या शनिके साथ शुक्रकी जब युति होती है तब शुक्र पूर्वमें अस्त होनेके पहले और पच्छिममें उदय होने पर कुछ समय तक इनसे छोटा होता है। इसलिए यह शनि या गुरुसे पराजित कहा जा सकता है परन्तु ऐसी अवस्था बहुत कम होती है। इसीलिए इस श्लोकमें कहा गया है कि शुक्र प्रायः विजयी होता है।

भावाभावाय लोकानां कल्पनेय प्रदर्शिता।
स्वमार्गगा प्रयान्त्येते दूरमन्योन्यमाश्रिता ॥२४

अनुवाद—(२४) लोगोंके शुभाशुभ फलके लिए ग्रहोंके युद्ध समागम इत्यादिकी कल्पनाकी गयी है। यथार्थमें ग्रह अपनी अपनी कक्षामें भ्रमण करते हैं और एक दूसरेसे बहुत दूर हैं परन्तु परस्पर आश्रित अथवा बहुत निकट देख पड़ते हैं।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोकमें आचार्य ने फलित ज्योतिषके सम्बन्धमें कुछ संकेत किया है परन्तु इस पर अच्छा तरह विचार नहीं किया है कि किस प्रकारके युद्ध या समागमसे कैसा फल होता है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि यह सिद्धान्त ज्योतिषका ग्रन्थ है इस लिए इसमें विस्तारके साथ फलित ज्योतिषकी चर्चा करने के लिए स्थान नहीं है।

इस प्रकार ग्रहयुत्यधिकार नामक सातवें अधिकारका विज्ञानभाष्य समाप्त हुआ।

नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार नामक आठवां, अध्याय

संक्षिप्त विवरण

[श्लोक १—नक्षत्रोंके भोगसे उनके ध्रुव कैसे जाने जाते हैं। श्लोक २—९—नक्षत्रोंके भोग और विक्षेपोंके मान। श्लोक १०, ११ और १२ का पूर्वार्ध—अगस्त्य, मृगव्याध, अग्नि और ब्रह्म हृदय नामक तारोंके भोग, ध्रुव और विक्षेप। श्लोक १२ का उत्तरार्ध-ध्रुव और विक्षेपकी परीक्षा करने की रीति। श्लोक १३—रोहिणी शकट भेद कब हो सकता है। श्लोक १४-१५—तारेके साथ ग्रहकी युति का काल और स्थान जानने की रीति। श्लोक १६-१९ नक्षत्र पुंजों का कौन तारा योगतारा है। श्लोक २०-२१—प्रजापति, अपांवत्स और आप ताराओंके ध्रुव और विक्षेप।]

इस अधिकारमें यह बतलाया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहोंके मार्गमें कौनकौन नक्षत्र पुंज पड़ते हैं, उनके स्थान कहां हैं और ग्रहोंके साथ उनके मुख्य तारे अथवा योगतारेकी युतिका समय कैसे जाना जाता है। कुछ ऐसे तारोंकी भी चर्चा आ गयी है जो अत्यन्त प्रतिभावान होनेके कारण प्राचीनकालके साहित्यमें विशेष स्थान रखते हैं, परन्तु जिनके साथ ग्रहोंकी युति नहीं होती। परन्तु ऐसे सब तारों या तारापुंजों की चर्चा यहां मालूम नहीं क्यों नहीं की गयी। मैं परिशिष्टमें ऐसे तारों या तारापुंजोंकी भी चर्चा करूंगा जो इस अधिकारमें नहीं दिये गये हैं परन्तु प्राचीन साहित्यमें आये हैं अथवा विशेष महत्व रखते हैं जैसे सप्तर्षि, काश्यप

मंडल, इत्यादि। इन ताराओंके विषयमें आजकल नवीन वेधोंसे जो कुछ मालूम हुआ है वह भी संक्षेपमें नहीं दिया जायगा।

प्रोच्यन्ते लिप्तिकाभानां स्वभोगोऽस्थ दशाहतः।
भवन्त्यतीतधिष्ण्यानां भोगलिप्तायुताध्रुवाः ॥१॥

अनुवाद—(१) अश्विनी आदि तारोंके जो भोग आगे कहे जाते हैं उनको दस से गुणा करके गुणनफल को गत नक्षत्रों की भोग कलाओंमें जोड़ने से जो आता है वही उन तारों के ध्रुव हैं।

विज्ञानभाष्य - इस श्लोकके पूर्वार्धमें जो स्वभोग शब्द आया है उसका अर्थ भोगांश नहीं है और न इसका परिमाण अंशों या कलाओंमें ही है। तारे के स्वभोग का अर्थ है तारे का अपने नक्षत्र के आदि विन्दु से अन्तर। यह अन्तर ऐसी इकाई में है जिसको न तो अंश कह सकते हैं और न कला। इसीलिए यह बतलाया गया है कि यदि इस स्वभोगको दससे गुणा किया जाय तो इसका परिमाण कलाओंमें मालूम होता है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रचलित इकाइयोंसे भिन्न इकाई का प्रयोग संक्षेपके लिए किया गया है। दससे गुणा करनेपर जो आता है वही तारे की अपने नक्षत्रके आदि बिन्दुसे कलाओं में दूरी होती है। इस दूरीको गत नक्षत्रकी भोग कलाओं में जोड़नेसे अश्विनीके आदि विन्दुसे अर्थात् राशि चक्र के आदि विन्दुसे उक्त तारेका ध्रुव कलाओंमें जाना जाता है। पहले बतलाया गया है कि अश्विनीके आदि विन्दुसे किसी ग्रहका क्रान्तिवृत्त पर जो अन्तर होता है वह भोगांश कहलाता है और उस ग्रहका कदम्ब प्रोतवृत्तपर जो अन्तर होता है वह विक्षेप कहलाता है। परन्तु यहां भोगांश न कहकर ध्रुवांश या ध्रुव कहा गया है यह चित्र १०८ से स्पष्ट हो जाता
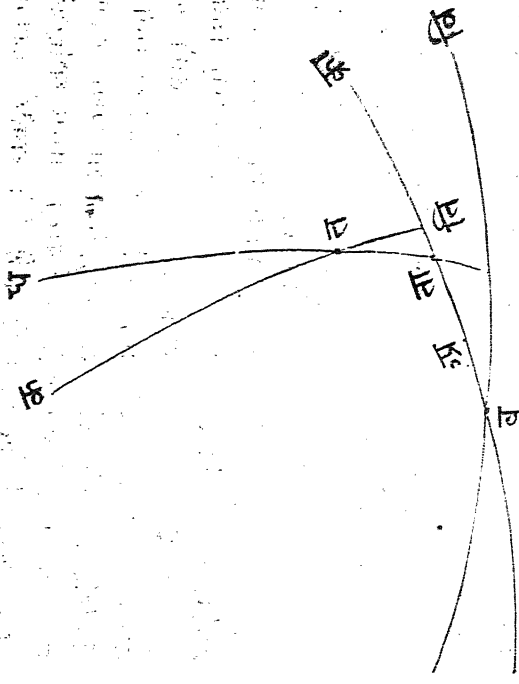
चित्र ११०

वका=क्रान्तिवृत्त
व वि=विषुवद्वृत्त
व=वसन्त सम्पात
अ=अश्विनीका आदि विन्दु
त=तारे का स्थान
क=कदम्ब
ध=ध्रुव
धमता=त तारेका ध्रुवप्रोतवृत्त
कतति=त तारेका कदम्बप्रोतवृत्त
अता=त का ध्रुवाभिमुख भोग या ध्रुव।
तता=त का ध्रुवाभिमुख विक्षेप
अति=त का कदम्बाभिमुखभोग अथवा भोग
तति=त का कदम्बाभिमुख विक्षेप अथवा विक्षेप

है। यदि त तारे से जाते हुए कदम्बप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त खींचे जाय तो ये क्रान्तिवृत्त पर दो भिन्न विन्दुओंपर मिलते हैं। क्रान्तिवृत्तके जिस विन्दु ति पर कदम्बप्रोतवृत्त मिलता है उससे अश्विनीके आदिका जो अन्तर होता है उसे तारे का भोग अथवा कदम्बाभिमुख भोग कहते हैं जैसा कि पहले के अध्यायोंमें बतलाया गया है और इसी विन्दुसे तारे के अन्तर तति को विक्षेप या शर कहते हैं। जिसे यहां कदम्बाभिमुख विक्षेप कहना अधिक उपयुक्त होगा परन्तु इस अध्यायमें भोग और विक्षेप दूसरे अर्थमें प्रयोग किये गये हैं। भोगका अर्थ कदम्बाभिमुख भोग नहीं है वरन् ध्रुवाभिमुख भोग है और आगे जिस विक्षेपकी चर्चाकी गयी है उसका अर्थ कदम्बाभिमुख विक्षेप नहीं वरन् ध्रुवाभिमुख विक्षेप है। यह बात चित्रके नीचे जो विवरण दिया है उससे और भी स्पष्ट हो जाती है। एक ही परिभाषिक शब्दसे दो भिन्न अर्थ प्रकट करनेमें भ्रम हो जाता है इसलिये इसको अच्छी तरह ध्यानमें रखना चाहिये।

ग्रहयुत्यधिकारमें यह बतलाया गया है कि ग्रहोंके भोगों और विक्षेपोंमें आयन दृक्कर्म और आक्षदृक्कर्म दो संस्कार करने पड़ते हैं। ग्रहोंके भोगमें आयम दृक्कर्मका संस्कार करनेसे जो आता है वही ग्रहका ध्रुवाभिमुख भोग अथवा ध्रुव होता है। इसलिए जब इस अध्यायमें ग्रहोंका ध्रुवाभिमुख भोग हा प्रयोग किया गया है, तब नक्षत्रोंके साथ आयनदृक्कर्मकी आवश्यकता न पड़ेगी, केवल आक्षदृक्कर्मकी आवश्यकता पड़ेगी जैसा कि इसी अध्यायके १४वें श्लोकमें बतलाया गया गया है। इस प्रकार यह प्रकट है कि तारोंका ध्रुवांश लिखनेमें यही सुभीता है कि इसमें आयनदृक्कर्म नहीं करना पड़ता।

तारोंके स्वभोग और विक्षेप—

अष्टार्णवाः शून्यकृताः पञ्चषष्टिर्नगेषवः।
अष्टार्था अब्धयोऽष्टागा अङ्गागमनवस्तथा ॥२॥
कृतेषवो युगरसः शून्यवाणा वियद्रसाः।
खवेदाः सागरनगा गजागाः सागरर्तवः ॥३॥
मनवोऽथ रसा वेदा वैश्वमाप्यार्धभोगगम्।
आप्यस्यैवाजितमान्ते वैश्वान्ते श्रवण स्थितिः ॥४॥
त्रिचतुः पादयोः सन्धौ श्रविष्ठा श्रवणस्यतु।
स्वभोगतो वियन्नागाः षट्कृतिर्यमलाश्विनः ॥५॥
रन्ध्राद्रयः क्रमादेषां विक्षेपाः स्वादपक्रमात्।
दिङ्मास विषयाः सौम्ये याम्ये पञ्चदिशो नव ॥६॥
सौम्ये रसाः खं याम्ये गाः सौम्ये खार्कास्त्रयोदश।
दक्षिणे रुद्रयमलाः सप्तत्रिंशदथोत्तरे ॥७॥
याम्येऽध्यर्ध त्रिकृता नवसार्धशरेषवः।
उत्तरस्यां तथा षष्टिस्त्रिंशत् षट्त्रिंशदेवहि ॥८॥
दक्षिणेत्वर्धभागस्तु चतुर्विंशतिरुत्तरे।
भागाः षड्विंशतिः खंच दस्रादीनां यथाक्रमम् ॥९॥

अनुवाद—अश्विनी से लेकर पूर्वाषाढ़तक के योग तारोंके स्वभोग क्रमसे ४८, ४०, ६५, ५७, ५८, ४, ७८, ७६, १४५४, ६४, ५०, ६०, ४०, ७४, ७८, ६४ १४, ६, ४ हैं; उत्तराषाढ़ का योग

तारा पूर्वाषाढ़ नक्षत्रके आधे पर, अभिजित के योग तारे का भोग पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के अंतमें, श्रवण का योग तारा उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अन्त में, धनिष्ठा का योग तारा श्रवण नक्षत्र के तीसरे और चौथे चरणों की सन्धि में अर्थात् तीसरे चरण के अंतमें हैं। शतभिषक, पूर्वाभाद्रपद, उत्तरा भाद्र पद, और रेवती के योग तारोंके स्वभोग क्रम से ८०, ३६, २२ और ७६ हैं। क्रान्तिवृत्त से इन अश्विन्यादि योग तारोंके विक्षेप क्रम से ०, १२ ५, उत्तर की ओर; ५, १०, ६ दक्षिण की ओर; ६, ० उत्तर की ओर; ७ दक्षिण की ओर; ०, १०, ३ उत्तर की ओर; ११, २ दक्षिणकी ओर; ३७ उत्तरकी ओर; १½, ३, ४, ६, ५½, ५ दक्षिण की ओर; ६०,३०, ३६, उत्तरकी ओर; ½,२४ दक्षिणकी ओर; २६, और ० अंश उत्तरकी ओर हैं।

विज्ञान भाष्य—प्रत्येक तारेके स्वभोगको पहले श्लोकके अनुसार १० से गुणा करनेपर तारेका स्वभोग कला आ जायगी। इसको गत नक्षत्रों की भाग कलाओं में जोड़ देनेसे उस तारे का भ्रुव ज्ञात होगा। जैसे अश्विनी तारे का स्वभोग ४८ है इसको १० से गुणा किया तो इसका स्वभोग ४८० कला हुआ। अश्विनी तारा अश्विनी नामक पहलेही नक्षत्र में है इस लिए गत नक्षत्र शून्य हुआ इस लिए ४८० कला अथवा ८ अंश ५७० हुआ। रोहिणी के पहले तीन नक्षत्र अश्विनी, भरणी, कृत्तिका गत हैं इस लिए इनका भोग ३ × ८०० कला हुआ क्योंकि एक नक्षत्र ८०० कलाओंके समान होता है (देखो स्पष्टाधिकार श्लोक ६४)। इसलिए रोहिणी तारेका ध्रुव = ५७० + ३ × ८०० कला = ५७० + २४०० कला = २९७० कला = ४९ अंश ३० कला।

इसी प्रकार प्रत्येक तारेका भ्रुवांश जाना जा सकता है। उत्तराषाढ़, अभिजित, श्रवण और धनिष्ठा तारों के स्वभोगों में विशेषता है, इसलिए इनके भ्रुवांश नीचे लिखे अनुसार बतलायेजाते हैं:—

उत्तराषाढ़का तारा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के आधेपर अर्थात् पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के ४०० कला पर है। पूर्वाषाढ़ के पहले अश्विनीसे मूल तक १९ नक्षत्र होते हैं जिनके भोग १९ × ८०० कला = १५२०० कला के समान है। इसलिए उत्तराषाढ़ का भ्रुव ४०० + १५२०० कला = १५६०० कला = २६० अंश हुआ।

अभिजित तारा पूर्वाषाढ़ के अंतमें बतलाया गया है, इसलिए इसका भ्रुव २६० अंश + ४०० कला अर्थात् २६६ अंश ४० कला हुआ।

श्रवण तारे का भ्रुव उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अंतमें है। एक नक्षत्र = १३ अंश २० कला पूर्वाषाढ़ नक्षत्र का अंत २६६ अंश ४० कला पर होता है, इसलिए उत्तराषाढ़ के अंतमें श्रवण तारेका भ्रुव २८० अंश हुआ।

धनिष्ठा तारा श्रवण नक्षत्रके तीसरे चरण के अंत में है। नक्षत्र के तीन चरण ६०० कला अथवा १० अंश के समान होते हैं। इसलिए धनिष्ठाका भ्रुव २८० + १० = २९० अंश हुआ।

विक्षेप तो अंशोंमें दिया ही हुआ है, इसलिए इसपर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

यहां यह बतला देना आवश्यक है कि ऊपर दिये हुए तारों के भ्रुव सब सिद्धान्त ग्रन्थोंमें समान नहीं हैं इसके कई कारण

हो सकते हैं—(१) वेधों की भिन्नता २) अश्विनीके आदि विन्दुकी स्थितिके निश्चय करनेमें भिन्नता (३) योग ताराओंके निश्चयमें भिन्नता और (४) सम्पात विन्दुकी गति। पहला कारण तो स्पष्ट है क्योंकि वेध यन्त्रोंकी स्थूलताके कारण वेधके फलोंमें भिन्नता स्वाभाविक है। दूसरा कारणभी विशेष महत्त्व का है। इससे यह जान पड़ता है कि अश्विनीके आदि विन्दुके निश्चयमें पुराने आचार्यों में भी मतभेद था जैसा कि आजकल है। परन्तु इस मतभिन्नता आजकल संक्रान्तियों और मलमासों के निश्चय करनेमें बड़ी कठिनाई उपस्थित हो रही है जिससे अखिल भारतीय तिथियों और पर्वोंकी स्थिरता ही नहीं हो सकती। इस बात पर सब प्रान्तोंके ज्योतिषाचार्योंमें एकता हो जाय तो बड़ा भारी काम हो जायगा और इसके उद्योगमें जो सज्जन तन मन धन लगावेंगे वे बड़े पुण्यके भागी होंगे। महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्तोंमें इसके सबन्धमें बहुत दिनोंसे उद्योग हो रहा है परन्तु अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ।

इसी प्रकार संपात विन्दुकी गतिके कारण तारोंके ध्रुवों और विक्षेपोंमें अन्तर पड़ता जाता है यद्यपि इनके कदम्बाभिमुख भोगों और शरोंमें स्थिरता रहती।

अब १०-१२ श्लोकोंमें बतलाये गये तारोंके ध्रुवक और विक्षेप देकर कई सारणियोंमें यह बतलानेका उद्योग किया जायगा कि तारोंके ध्रुवांशोंके सम्बन्धमें प्राचीन और अर्वाचीन आचार्योंके क्या मत हैं।

अशीति भागैर्याम्यायामगस्त्यो मिथुनान्तगः।
विंशेन मिथुनस्यांशे मृगव्याधो व्यवस्थितः ॥१०॥
विक्षेपो दक्षिणे भागैः खार्णवैः स्वादपक्रमात्।
हुत भुग्ब्रह्महृदयौ वृषे द्वाविंश भागगौ॥११॥
अष्टाभिस्त्रिंशताचैव विक्षिप्तावुत्तरेणतौ।
गोलं बध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं स्फुटम्॥१२॥

अनुवाद—(१०) अगस्त्य तारेका ध्रुव मिथुन राशिके अन्तमें अर्थात् ९० अंश और दक्षिण विक्षेप ८० अंश है। मृगव्याध अथवा लुब्धक तारेका ध्रुव मिथुनके २० अंश पर अर्थात् ८० अंश है। (११) इसका विक्षेप क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण ४० अंश पर है। अग्नि और ब्रह्महृदय दोनो तारोंके ध्रुव वृषराशिके २२ अंशपर अर्थात् ५२ अंश हैं। (१२) इनके विक्षेप क्रमसे ८ अंश और ३० अंश क्रान्तिवृत्तसे उत्तर की ओर हैं। गोलयंत्रके द्वारा इन स्फुटविक्षेपों और ध्रुवकोंकी परीक्षा करना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—१२ वें श्लोकका उत्तरार्ध बड़े महत्वका है। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्योंको लकीरका फकीर होना इष्ट नहीं था इसीलिए वह स्थान स्थान पर कहते गये हैं कि यंत्रोंके द्वारा ग्रहों और नक्षत्रोंका वेध करके जो ध्रुवक यथार्थ आवें उनको मानना चाहिए। यहां उन्होंने केवल गोलयंत्रकी चर्चाकी है। त्रिप्रश्नाधिकारके ११ वें श्लोकमें बतलाया गया है कि शंकुकी छायासे सूर्यका जो भोगांश आता है उससे गणितसे निकाले हुए भोगांशका जो अन्तर होता है वही स्पष्ट अयनांश है। इन बातोंसे स्पष्ट होता है कि हमारे आचार्योंको

यह इष्ट था कि ज्योतिष सम्बन्धी गणितका मिलान आकाशके प्रत्यक्ष वेधसे करके उचित संशोधन भी करते रहना चाहिए।

यहां गोलयंत्रकी विशेष चर्चा नहीं की जायगी क्योंकि यह विषय ज्योतिषोपनिषदध्याय नामक १३ वें अध्यायमें जहां और यंत्रोंकी चर्चा है स्वयम् आवेगा इसलिए वहीं यह चित्र देकर अच्छी तरह समझाया जायगा। साथही साथ यह भी बतलाया जायगा कि इस समय कुछ नवीन यंत्रों जैसे दूर-दर्शकयंत्र इत्यादिसे बहुत ही सूक्ष्मतापूर्व कैसे काम लिया जासकता है और प्रत्येक ज्योतिष विद्यालयोंके साथ नवीन ढंगके एक एक वेधालयकी कितनी आवश्यकता होती है।

अब हम सारिणी देकर यह बतलाएंगे कि भिन्न भिन्न आचार्योंके मतसे उपर्युक्त तारोंके ध्रुवक और विक्षेप क्या है। ब्रह्मगुप्त सिद्धान्तके ध्रुवक और विक्षेप भास्कराचार्यकी सिद्धान्तशिरोमणिके ध्रुवक और विक्षेपसे मिलते हैं। लल्लतंत्र, दामोदरीयभट तुल्य, और सुन्दर सिद्धान्तके ध्रुवक और विक्षेप स्वर्गीय शंकर बालकृष्ण दीक्षितके भारतीय ज्योतिष शास्त्रसे लिये गये हैं। दीक्षितजीने चित्रा तारेका ध्रुवक १८० अंश मानकर सन् १८८७ ई० में नाटिकल अलमैनेकमें दिये हुए तारोंके विषुवांशों और क्रान्तियोंसे जो ध्रुवक और विक्षेप स्थिर किये थे वे भी इस सारिणीमें दिये जायंगे। दीक्षितजीने रेवती तारेके दो ध्रुवक और दो विक्षेप दिये हैं। इसका कारण यह है कि इनके मतसे रेवतीका योग तारा ज़ीटा पिसियम या म्यूपिसियम हो सकता है। इसीलिए पहला ध्रुवक या विक्षेप ज़ीटा पिसियम है और दूसरा म्यूपिसियमका है।

नक्षत्रों के योग ताराओं तथा कुछ अन्य ताराओं के ध्रुवाभिमुख भोग (ध्रुव)

(देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५२)

नक्षत्र की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		दामोदरीय भट तुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		अन्य तारोंके अंग्रेजी नाम
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१	अश्विनी	८	०	८	०	८	०	८	३०	८		८		७	४	
२	भरणी	२०	०	२०	०	२०	०	२१	१५	२०		२१		२१	१५	
३	कृत्तिका	३७	३०	३७	२८	३६	०	३७	४५	३८		३८		३६	२	
४	रोहिणी	४९	३०	४९	२८	४९	०	४९	०	५०		४९		४७	३७	
५	मृगशिरा	६३	०	६३	०	६२	०	६२	०	६३		६२		६१	२६	
६	आर्द्रा	६७	२०	६७	०	७०	०	६६	०	६७		६६		७५	४३	

नक्षत्र की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		द्वितीयार्य भट तुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		आधुनिक तारोंके अंग्रेज़ी नाम
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
७	पुनर्वसु	९३	०	९३	०	९२	०	९२	५०	९३		९४		९१	२१	
८	पुष्य	१०६	०	१०६	०	१०५	०	१०६	०	१०६		१०६		१०५	४३	
९	आश्लेषा	१०९	०	१०८	०	११४	०	१०७	१५	१०८		१०७		१०८	२८	
१०	मघा	१२९	०	१२९	०	१२८	०	१२९	०	१२९		१२९		१२६	५९	
११	पूर्वा फाल्गुनी	१४४	०	१४७	०	१३९	२०	१४८				१४८		१४४	३१	
१२	उत्तरा फाल्गुनी	१५५	०	१५५	०	१५४	०	१५५	३०	१५५		१५५		१५४	१	
१३	हस्त	१७०	०	१७०	०	१७३	०	१७०	०			१७०		१६५	६	
१४	चित्रा	१८०	०	१८३	०	१८४	२०	१८३	०	१८३		१८३		१८०	०	
१५	स्वाती	१९९	०	१९९	०	१९७	०	१९८	३०	१९९		१९८		१९३	२८	
१६	विशाखा	२१३	०	२१२	५	२१२	०	२१२	१५	२१२		२१२		२०२	११	
१७	अनुराधा	२२४	०	२२४	५	२२४	५	२२४	१५			२२४		२१९	८	
१८	ज्येष्ठा	२२९	०	२२९	५	२२८	०	२२९	३०	२२९		२३०		२२५	५९	
१९	मूल	१४१	०	२४१	०	२४१	०	२४२	०			२४२		२४०	४५	
२०	पूर्वाषाढा	२४५	०	२५४	०	२५४	०	२५५	३०	२५४		२५५		२४०	४१	
२१	उत्तराषाढा	२६०	०	२६०	०	२६७	२०	२६०	०	२६०		२६१		२५३	२३	
	अभिजित	२६६	४०	२६५	०	२६७	०	२५९	४५			२५८		२६३	५	
२२	श्रवण	२८०	०	२७८	०	२८३	१०	२७५	१५	२७८		२७५		२५६	१०	
२३	धनिष्ठा	२९०	०	२९०	०	२९६	२०	२८७	३०	२९०		२८६		२७२	५८	

नक्षत्र की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		दामोदरीय भटतुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		अन्य तारोंके अंग्रेजी नाम
		अंश	कला	अंश	कल	अंश	ला	अंश	कला	अंश	कल	अंश	कला	अंश	कल	
२४	शततारका	३२०	०	३२०	०	३१३	२०	३२०	०	३२०		३२०		२८४	४७	
२५	पूर्व भाद्रपद	३२६	०	३२६	०	३२७	०	३२५	०	३२६		३२०		३१८	४३	
२६	उत्तर भाद्रपद	३३७	०	३३७	०	३३५	२०	३३७	०	३३७		३२५		३२२	३	
२७	रेवती	३५९	५०	०	०	३५९	०	०	०	०		३३७		३४०	३५	Cano-pus
	अगस्त्य	९०	०	८७	०	८७	०			८७		०		३५६	५७	Sirius
	व्याध	८०	०	८६	०	८६	०			८६		८०		१	२०	β Ta uri
	अग्नि	५२	०							५२		८१				α auri-gae (cap-
	ब्रह्मा	५२	०							५२		५३				ella) β au-
	प्रजापति	५७	०							५७		५६				rigae θvir-
	अपांवत्स	१८०	०									६१				ginis * δvirg-
	आपस	१८०	०									१८३				inis *

Popular Hidu astronomy Port I pp. 240-241

नक्षत्रोंके योगताराओं तथा कुछ अन्य ताराओंके ध्रुवाभिमुख शर या विक्षेप

(देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५३)

नक्षत्रोंकी क्रम-संख्या	ताराओंके नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		द्वितीय आर्यसिद्धान्त		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		शर की दिशा
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१	अश्विनी	१०		१०		१०		१०		१०		१०		९	५	उत्तर
२	भरणी	१२		१२		१२		१२	१५	१२		१२		१०	५७	उत्तर
३	कृत्तिका	५		४	३१	५		४	३०	४		५		५	९	उत्तर
४	रोहिणी	५		४	३३	५		४	३०	४	३०	५		५	३२	दक्षिण
५	मृगशिरा	१०		१०		१०		१०		०		१०		१३	२४	दक्षिण
६	आर्द्रा	९		११		११		११		११		११		६	४६	दक्षिण
७	पुनर्वसु	६		६		६		६		६		६		६	४६	उत्तर
८	पुष्य	०		०		०		०		०		०		०	५	उत्तर
९	आश्लेषा	७		७		७		७		७		७		११	२४	उत्तर
१०	मघा	०		०		०		०		०		०		०	२९	दक्षिण
११	पू. फाल्गुनी	१२		१२		१२		११	४५			१२		१०	३१	उत्तर
१२	उ. फाल्गुनी	१३		१३		१३		१२	४५			१३		१३	२४	उत्तर
१३	हस्त	११		११		८		११		११		११		१२	१७	उत्तर
१४	चित्रा	२		१	४५	२		१	४५	१	१४	२		२	१३	दक्षिण
१५	स्वाती	३७		३७		३७		३७	१५			३७		३२	५६	दक्षिण
१६	विशाखा	१	३०	१	२३	१	३०	१	१५			१		०	२२	उत्तर

नक्षत्रों की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्यसिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		दामोदरीय भट्ट तुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		शरकी दिशा
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१७	अनुराधा	३	०	१	४४	३		१	४५			२		२	१	दक्षिण
१८	ज्येष्ठा	४		३	३०	४		३	३०			३		४	३७	दक्षिण
१९	मूल	९		८	३०	८	३०	८	३०			८		१३	४८	दक्षिण
२०	पूर्वाषाढ़	५	३०	५	२०	५	२०	५	३०			५		२	७	दक्षिण
२१	उत्तराषाढ़	५		५		५		५				५		१	२८३	दक्षिण
	अभिजित्	६०		६२		६३		६२		६२		६२		६१	५५	उत्तर
२२	श्रवण	३०		३०		३०		२९	३०	३०		३०		२९	४९	उत्तर
२३	धनिष्ठा	३६		३६		३६		२५	३०	३६		३६		३४	१५	उत्तर
२४	शततारका	०	३०	०	१८	०		०	१५	०	२०	०		०	२५	दक्षिण
२५	पू. भाद्रपद	२४		२४		२४		२३	४५			२४		२१	६	उत्तर
२६	उ. भाद्रपद	२६		२६		२६		२६				२७		१३	४५	उत्तर
२७	रेवती	०		०		०		०				०		० ३	१४ १८	दक्षिण
	अगस्त	८०		७७		८०				७७		७६				दक्षिण
	व्याघ्र	४०		४०		४०				४०		४०				दक्षिण
	अग्नि	८								८		८				उत्तर
	ब्रह्मा	३०								३०		३०				उत्तर
	प्रजापति	३८								३८		३९				उत्तर
	अपांवत्स	३										३				उत्तर
	आप	९														उत्तर

ग्रहका रोहिणी शकट-भेद कब होता है—

वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योऽशकद्वयात् ।
विक्षेपोऽभ्योधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तुसः ॥ १३ ॥

अनुवाद—(१३) वृषराशिके १७ वें अंश पर स्थित जिस ग्रह का दक्षिण विक्षेप २ अंशसे अधिक होता है वह ग्रह रोहिणी नक्षत्रके शकटको भेद करता है ।

विज्ञान भाष्य—रोहिणी नक्षत्र में ५ तारे हैं जिनकी आकृति गाड़ी की तरह अथवा अंग्रेज़ीके वी (V) अक्षरकी तरह है । इन पांच तारोंमें सबसे उत्तर वाले तारेका दक्षिण विक्षेप २ अंश ३५ कलाके लगभग है । इस तारेको आजकल एपसिलानटारि कहते हैं । और रोहिणीके योग तारेकका दक्षिण शर ५ अंश ३२ कला है । जिस ग्रहका दक्षिण शर या विक्षेप इन दो सीमाओंके बीचमें होता है वह रोहिणीके सकटके भीतर हो जाता है । इसीको रोहिणीके शकटकी भेदन कहते हैं । यह प्रकट है कि ग्रहका विक्षेप उसके पातपर आश्रित रहता है । चंद्रमाकी पात १८ वर्षोंमें एक फेरा करता है । इस एक फेरेमें चन्द्रमा केवल ५,६ वर्ष तक शकटका भेद करता है । यदि चंद्रमाकी दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से अधिक हो और ५ अंश ३२ कलासे कम और उस समय यह रोहिणी नक्षत्रमें हो तो यह अवश्य रोहिणीके शकटमें होकर चलेगा इसलिए चन्द्रमाकी रोहिणी-शकट-भेद होगा । अब यह देखना है कि जिस समय चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें होता है उस समय इसकी दक्षिण शर २ अंश ३५ कलासे अधिक कब होता है ।

मध्यमाधिकारके पृष्ठ १९३ में बतलाया गया है कि चन्द्रमा की परमविक्षेप ५ अंश ८ कला ४२ विकला है । इसका अर्थ यह है कि जब चन्द्रमा राहुसे ९० अंश आगे रहता है तब इसका उत्तर शर ५ अंश ८ कला और ४२ विकला होता है और जब यह केतुसे ९० अंश आगे रहता है तब इसका दक्षिण शर इतनाही होता है । परन्तु जब यह राहु या केतुपर रहता है तब इसका शर शून्य होता है । इस लिए स्पष्टाधिकारके श्लोक २८, पृष्ठ १८१ चित्र २५ के आधारपर यह सहजही जाना जा सकता है कि चन्द्रमाका शर २ अंश ३५ कलासे अधिक कब होता है । इस चित्रमें यदि व स चन्द्रमाकी कक्षा, व प क्रान्ति वृत्त, व राहुका स्थान स चन्द्रमाका स्थान, स प चन्द्रशर और स व प चन्द्रमाका परम विक्षेप मान लिया जाय तो व स और स प का संबंध सहजही जाना जा सकता है । यहां यदि स प को २ अंश ३५ कला मान लिया जाय तो ।

$$\text{ज्या (वस)} = \frac{\text{ज्या (सप)}}{\text{ज्या (सवप)}} = \frac{\text{ज्या } २^\circ ३५'}{\text{ज्या } २^\circ ९'} = \frac{·०४५१}{·०८९८} = ·५०२२$$

∴ व स = ३० अंश ९ कला

अर्थात् जब चन्द्रमा अपने पातसे एक राशि आगे रहता है तब इसका शर २ अंश ३५ कलासे अधिक होता है । परन्तु रोहिणी क्रान्तिवृत्तके दक्षिण है और इसका ध्रुवाभिमुख भोगांश सूर्यसिद्धान्तके अनुसार ४९ अंश ३० कला और शंकर बाल कृष्ण दीक्षितके अनुसार ४७ अंश ३७ कला है तथा कदम्बाभिमुख भोगांश सूर्य सिद्धान्तकी गणनासे ४८ अंश ९ कला और शंकर बालकृष्ण दीक्षितकी गणनासे ४५ अंश ५७ कला है । इसलिए यदि रोहिणीके योग ताराका कदम्बाभि-

मुख्य भोगांशकी ४ अंश मान लिया जाय तो जिस समय चन्द्रमा-का भोगांश इतनाही होगा उस समयही रोहिणी-शकट-भेद हो सकता यदि इसका दक्षिण शर भी २ अंश ३५ कलासे अधिक हो। ऐसी दशामें चन्द्रमाको केतुसे कमसेकम १ राशि आगे रहना चाहिए अर्थात् जब केतुका भोगांश कमसेकम १६ अंश हो तभी रोहिणी-शकट-भेद हो सकता है।

ऊपरकी गणनासे यह सिद्ध हुआ कि जब केतुसे चंद्रमा १ राशि आगे रहता है तब इसका दक्षिण शर ४ अंश ३५ कला होता है। इसके बाद इसका दक्षिण शर बढ़ते बढ़ते ५ अंश ८ कला हो जाता है। उस समय यह केतुसे ३ राशि आगे हो जाता है। फिर इसका दक्षिण शर घटने लगता है और जब यह केतुसे ५ राशि आगे अथवा राहुसे १ राशि पीछे रहता है तब तक इसका दक्षिण शर २२ अंश ३५ कलासे कम नहीं होता। इसी सीमाके भीतर चन्द्रमा रोहिणीके शकटका भेद करता है। परन्तु ऊपर सिद्ध हुआ है कि जब केतुका भोगांश १६ अंश होता है अर्थात् जब केतु मय राशिके १६ अंश पर होता है तब यदि चन्द्रमाका दक्षिण विक्षेप २ अंश ३५ कला हो तो रोहिणी शकट भेद होगा। इसके बाद केतु अपनी वक्री गतिसे जब पीछे हटता जायगा तबभी चन्द्रमा रोहिणीके शकट को भेद करेगा क्योंकि उस समय रोहिणी नक्षत्रमें इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कलासे अधिक होता जायगा। इस प्रकार जब तब केतु भेषके १६ अंशसे ४ राशि पीछे नहीं चला जाता तब तक रोहिणी नक्षत्रमें चन्द्रमाका दक्षिण शर २ अंश ३५ कलासे कम नहीं होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जब केतु मेष राशिके १६ अंश पर आवेगा तब चन्द्रमाके रोहिणी-शकट-भेदका आरंभ होगा और जबतक यह धनुके १६ अंशपर नहीं आवेगा तबतक चन्द्रमाके प्रति फेरेमें रोहिणी नक्षत्रमें चंद्रमा-का रोहिणी-शकट-भेद होगा। परन्तु राहु केतुसे ६ राशि आगे रहता है। इसलिये यह भी कहा जा सकता है कि जब तक राहु मिथुनके १६ अंशसे तुलाके १६ अंश तक की सीमामें रहता है तब तक चन्द्रमाका रोहिणी शकट भेद रहता है।

इसी प्रकार अन्य ग्रहोंको भी रोहिणी-शकट-भेद की गणना की जा सकती है। परन्तु मध्यमाधिकार पृष्ठ ११३ में दी हुई सारिणीसे यह प्रकट होता है कि शुक्र और बुधके सिवा किसी ग्रहका परमशर २ अंश ३१ कलासे अधिक नहीं है इसलिए बुध और शुक्र का ही रोहिणी शकट-भेद संभव है। शनिका परमशर २ अंश २६ कला ३६ विकला है। इसलिए शनिका रोहिणी शकट-भेद भी असंभव जान पड़ता है। परन्तु वराह मिहिर तथा ग्रहलाघवकारने लिखा है कि शनि अथवा मङ्गलका रोहिणी शकट भेद होनेसे बड़ा अनिष्ट होता है।

क्रमशः

---

† रोहिणी शकटमर्कनंदनो यदि भिनत्ति रुधिरोऽथवा शशी।
किं वदामि यदि नष्टसागरे जगदशेषमुपयाति संक्षयं ॥३४॥

बृहत्संहिता २४ अध्याय

कभशकटमसौ भिनत्त्यस्टक् शनि रुदुपे। यदि चेज्जनक्षयः ॥६॥

× भौमार्योः शकटभिदा युगान्तरे स्यात् सेदानींनहि भवतीदशि स्वपनि ॥८॥

ग्रहलाघव, नक्षत्रच्छायाधिकार

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)
७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।-)
६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले०स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)
९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)
१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)
११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)
१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)
१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० ... बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥
१६—कपास और भारतवर्ष—ले० ते० शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)
१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

भाग १ ... ... २॥)
भाग २ ... ... ३)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)
भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)
वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १।=)
वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)
गृह-शिल्प— ... ... ॥)
खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री
विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हि[illegible]

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
पूर्ण संख्या—१५४ *Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A.708

भाग २६ Vol. 26. | कुम्भ १९८४ | संख्या ४ No 4

जनवरी १९२८

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय सूची

१—विचित्र कल्पना—[ले० श्री० 'तत्ववेत्ता'] १२६

२—द्विभस्मिक अम्ल और उनके यौगिक—[ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०] १३२

३—हवा—[ले० श्री० धर्मनाथप्रसाद कोहली बी० एस-सी०] १४५

४—कविता और विज्ञान—[ले० श्री० सुदक्षिणा देवी] १५१

५—पत्ता और रोम [ले० श्री० पं० शङ्करराव जोशी] १५२

६—चश्मे—[ले० श्री रघुवीर प्रसाद माथुर] १५६

७—कर्बन और शैलम् [ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०] १६१

८—वैज्ञानिकीय—[ले० श्री अमीचन्द्रजी विद्यालंकार] १६६

९—सूर्य-सिद्धान्त—[महाबीरप्रसाद बी एस-सी, एल-टी० विशारद]— ... १६६

ज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग २६ | कुम्भ, संवत् १९८४ | संख्या ४

विचित्र कल्पना

(ले० श्री 'तत्ववेत्ता')

संसारकी गूढ़ समस्याओंका जब कोई समाधान नहीं मिलता है तो उपेक्षावाद (अगनेस्टिसिज़म) का आश्रय लेना ही पड़ता है। उपेक्षावादीका इससे कोई तात्पर्य्य नहीं कि जो कुछ बाह्यजगत् में हम देख रहे हैं वह वस्तुतः उसी प्रकारका है या नहीं। हमारी आंखें हमें धोखा तो नहीं दे रही हैं। या हमारे कान हमें असत्य ज्ञान तो नहीं प्रदान कर रहे हैं। इस प्रकारके प्रश्न आलसियोंके कामके ही समझे जाते हैं। विचारवेत्ताओंकी सृष्टि और साधारण व्यक्तियोंकी सृष्टि भिन्न भिन्न होती है। रोटीको रोटी समझ लेना और लड्डूको लड्डू मानना बच्चोंका काम है पर लड्डूमें रोटीको देखना और रोटीमें लड्डुओंका आभास पाना तत्ववेत्ताओंका गुण है। यही अवस्था पाप और पुण्यके विषयमें है। बहुत सम्भव है, कि बहुतसे कृत्य जो जनतामें पापके नामसे प्रचलित हैं वे वस्तुतः ऊँचे दर्जेके पुण्य हों। उदाहरणतः मद्यपान पाप समझा जाता है, इसी प्रकार बहुतसे गन्दे पदार्थों का सेवन त्याज्य समझा जाता है,—यह क्यों, केवल दो कारणोंसे—एक तो शारीरिक प्रभावोंके कारण और दूसरा वासना सम्बन्धी गुणोंके कारण—पर कल्पना कीजिये कि किसी सिद्ध तत्ववेत्ताने अपने शरीर पर इतना अभ्यास कर लिया है कि कालकूट भी उस पर विषैला प्रभाव नहीं डाल सकता और यदि उसने अपनी वासनेन्द्रियों पर इतना अधिकार जमा लिया है कि उसे हलवेमें भी उतना ही स्वाद प्रतीत होता है जितना अन्य त्याज्य और गलीज वस्तुओंमें, तो ऐसी अवस्थामें वह वस्तु जिसका उपयोग करना

साधारण व्यक्तियोंके लिये दोष है उसके लिये श्रेयस्कर ही समझा जायगा।

संसार क्या है ?—यह कोई नहीं कह सकता, कुछ है भी या नहीं, यह भी विवादास्पद विषय है, पर एक बात असन्दिग्ध है, वह यह कि यह वैसा नहीं है जैसा हम समझते हैं। जितनाही हम ज्ञान की अभिवृद्धि करते जाते हैं, हमें यह पता चलता जाता है कि अमुक वस्तुको हमने कुछ समझा था पर वह कुछ निकली। वैज्ञानिक जगत्में जो परिणाम स्थिर किये जाते हैं उससे इस कथन की सत्यता शत प्रतिशत स्पष्ट हो रही है। अतः इस कल्पनामें कोई भी हेत्वाभास नहीं है कि संसार चाहे कुछ भी हो (या न भी हो) पर वह वह नहीं है जो हम समझ रहे हैं।

थोड़ी देरके लिये एक कल्पना कीजिये। हमारा एक शरीर है। इसे हम अपना कहते हैं, इसके अस्तित्वका हमको ज्ञान है। हमारे शरीरके अन्दर भी बहुतसे शरीर हैं, यद्यपि उन शरीरोंको हम अपना नहीं कहते हैं पर वे किसीके तो अवश्य ही हैं। कितने ही छोटे छोटे कीटाणु हमारे शरीरमें विद्यमान हैं। इनमेंसे बहुत सों को हम अपने सूक्ष्मदर्शकयन्त्रों द्वारा देख सकते हैं और बहुतसे ऐसे भी होंगे जिन्हें हम किसी प्रकार नहीं देख सकते। इन जीवाणुओंके भी हमारे समानही या कुछ साधारण भेदके साथ इन्द्रियां होंगी। इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है, उनमें कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ और प्राणेन्द्रियाँ तीनों ही हैं। अपनी अपनी अवस्थाके अनुकूल सबमें संवेदनायें और ज्ञान होता ही होगा। अस्तु, एक प्रश्न पर विचार कीजिये। ये कीटाणु आपके इस विशाल शरीरको क्या समझते होंगे, और वे अपने अपने शरीर को और अपनेसे छोटे और कीटाणुओंको क्या समझते होंगे? मैं तो यही समझता हूँ कि हमारा यह शरीर ही उनके लिये अज्ञेय, अपार, ब्रह्माण्ड होगा। जिस प्रकार हमारे ब्रह्माण्डमें प्रकाश और ताप देनेके लिये सूर्य्य तारे और चाँद हैं उसी प्रकार इन छोटे छोटे जीवाणुओंके जीवनके लिये भी ताप और प्रकाशका होना अनिवार्य्य है, चाहें वह किसी श्रेणीका ताप और प्रकाश क्यों न हो। अतः इस कल्पनाको भी सत्य समझना चाहिये कि हमारे शरीरकी त्वचाके छिद्रोंमें होकर भिन्न भिन्न प्रकारका जो थोड़ा बहुत प्रकाश और ताप इन आन्तरिक प्राणियों के पास पहुँचता होगा वह उनको ऐसाही प्रतीत होता होगा कि हमारे शरीरके अन्दर भी एक आकाश मण्डल है जिसमें उन प्राणियोंके अनुकूल सूर्य्य और तारे चमक दमक रहे होंगे। उनके यहाँ भी दिन रात होते होंगे। हम इस शरीरमें श्वास द्वारा जो वायु अन्दर ले जाते हैं, हैं, उसका वृहद तूफान शरीरमें उठता होगा, इन जीवाणुओं को यह प्राण-वायु ही हमारे वायु-मण्डलके समान मालूम होता होगा। उनके लोकमें भी बिजली चमकती होगी, बादल आते होंगे और पानी बरसता होगा, जिस प्रकारसे हमारी सृष्टिमें बड़े बड़े समुद्र और नदियाँ पर्वतादि हैं, उसी प्रकार हमारे शरीरके अन्दर उन छोटे जीवोंके लिये भी अनेक समुद्र, द्वीप, महाद्वीप, नदी, पर्वत आदि होंगे।

कौन जानता है कि इन छोटे प्राणियोंके भी बड़े बड़े भौतिक विद्यालय होंगे, उनकी भी रसायनशालायें वेधशालायें और अन्य अन्वेषण करनेके स्थान और साधन होंगे। उन लोगोंके ज्योतिषी, गणितज्ञ, ब्रह्माण्डकी प्रहेलिकाओंके समाधान करनेमें लगे होंगे और नित्य नूतन नियमोंका आविष्कार होता होगा और एक वैज्ञानिक दूसरे वैज्ञानिककी कल्पनाओं को निराधार और त्रुटिपूर्ण प्रमाणित करनेके लिये व्यग्र हो रहा होगा। पर यह सब खोज किस बृहत् ब्रह्माण्ड के विषयमें हो रही होगी! केवल उसीके विषयमें जिसे हम अपनी अपेक्षासे अपना साधारण शरीर कहते हैं, बस यही शरीर जिसे हम अपने ब्रह्माण्डकी अपेक्षासे बिन्दु बराबर भी मान नहीं देते हैं, वही छोटे कीटाणुतत्ववेत्ताओंके लिये एक विशेष चमत्कार पूर्ण रहस्य बन रहा होगा।

अब तक जो कुछ यहां कहा गया है उसमें कदाचित् ही किसीको सन्देह करने की आवश्यकता

पड़ेगी। पर अब हम उपर्युक्त सापेक्षवादकी घटनाओं को सम्मुख रखकर एक नवीन कल्पनाको प्रकट करना चाहते हैं। क्या यह सम्भव नहीं है कि इस अज्ञेय महान ब्रह्माण्ड को हम भी उसी प्रकारका समझें जैसा कि कीटाणु और हमारे शरीरका सम्बन्ध है! इसमें किसीको भी संशय न होना चाहिये। यह ब्रह्माण्ड वस्तुतः एक बृहद् प्राणी का शरीर है। हमें उस प्राणी के शरीरके कीटाणु हैं, इसे हम देवता कह सकते हैं, या बड़ा भारी भूत या प्रेत मान सकते हैं। जिस प्रकार मोहन, सोहन, राम आदि भिन्नभिन्न मनुष्योंके पृथक पृथक शरीर है उसी प्रकार यह अखिल ब्रह्माण्ड तो केवल एक किसी भूत देवताका शरीर होगा। ऐसे लाखों देवता और होंगे। राम के शरीरके अन्दर रहने वाले कीटाणु मोहनके शरीर के विषय में कुछ कल्पना कर ही नहीं सकते, उसके अस्तित्वका भी अनुभव नहीं कर सकते हैं, उसी प्रकार हम किसी एक महाप्राणी के शरीरके कीटाणु, अनुशायी जीव हैं। इस ब्रह्माण्डका अभिमानी जीव भी कोई और होगा और ऐसे अभिमानी जीव और न जाने कितने होंगे। सापेक्षावाद की दृष्टिसे यह कल्पना सम्भव प्रतीत ही नहीं होती हैं, प्रत्युत है भी ऐसा ही। हमारी शरीर की बहुत सी प्रक्रियाएँ हमारी इच्छा पर निर्भर हैं, कभी हम श्वास वेगसे लेते हैं और कभी धीरे धीरे, कभी हमारा शरीर रोगी हो जाता है। अब बतलाइये कि इस प्रकारके आकस्मिक परिवर्त्तन इस शरीरके अन्दरके वैज्ञानिक कीटाणुओंके निरीक्षणों और परीक्षणों पर क्या प्रभाव डालते होंगे! मेरा तो यही विश्वास है कि उन कीटाणुओंके प्रयोग समय समय पर हमारी शरीरकी आकस्मिक घटनाओंके कारण अपवाद युक्त ही सिद्ध होते होंगे। हमारे स्वयं प्रयोग भी तो प्रतिदिन ब्रह्माण्डके विषयमें नया नया और अपवादयुक्त ज्ञान ही तो देते हैं, और इसका कारण भी स्वाभाविक है, इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का जो अभिमानी जीव है, वह कभी सोता होगा, कभी प्राणायाम करता होगा कभी खाना खाता होगा और कभी दौड़ता, कूदता होगा, कभी कभी रोगी भी हो जाता होगा। ऐसी अवस्था में उसके शरीर के अन्दर की सम्पूर्ण स्थिति बदल जाती होगी। अर्थात् जिसे हम ब्रह्माण्ड कहते हैं उसमें उस चेतन आत्माकी विद्यमानता के कारण दैवी परिवर्त्तन होते रहते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि हम अपने ज्योतिषियों, गणितज्ञों और भौतिक विज्ञान वालोंके प्रयोगों और सिद्धान्तों को भ्रम पूर्ण और अपवाद युक्त समझें तो आश्चर्य ही क्या है! वस्तुतः, यही कारण है, कि इतने दिनोंके परिश्रम के पश्चात् भी अबतक एक भी सत्यसिद्धान्त का अन्वेषण नहीं हुआ है, और न कभी होगा ही।

मनुष्य शरीर ४०,५० या १०० वर्षके लगभग की आयु में क्षीण हो जाता है, हम मर जाते हैं, हमारा यह मरना ही हमारे आन्तरिक कीटाणुओंके लिये महाप्रलय है। हम अपनी भाषामें तो कहते हैं कि हम १०० वर्ष में मरे, पर ये १०० वर्ष ही इन कीटाणुओं की अपेक्षासे अरबों वर्षों के समान होंगे। हमारी १०० वर्ष की आयुमें इनके न जाने कितने युगान्तर और मन्वन्तर बीतते होंगे। इतने ही कालमें इनकी लाखों पीढ़ियां हो जाती होंगी। कौन जानता है कि हमारा एक दिन इनके एकएक वर्ष के बराबर होता होगा! बस यही अवस्था हम अपने ब्रह्माण्डके लिये भी समझ सकते हैं। निष्पत्ति वही रहेगी इस महाप्राणीका एक जीवनकाल हमारी सृष्टिके आदि काल से प्रलयकाल तक होगा। आर्य्य साहित्यमें जिस ब्रह्म दिन और ब्रह्मरात्रि की कल्पना की गई है, वह भी कुछ ऐसी ही है, भेद केवल इतना ही है कि हमारी कल्पना में यह ब्रह्म एक अखिल जगदीश्वर नहीं हैं, न जाने इस अपार लोक मेंकितने ब्रह्माण्ड होंगे, अपने शरीरके अन्दर रहने वाले कीटाणुओं के लिये हम भी तो एक ब्रह्महैं; सभी जानते हैं कि हमारे ऐसे कितने ब्रह्म हैं कौन जानता है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' का तात्पर्य्य भी यही हो!

अतः सापेक्षवाद पर युक्ति संगत विश्वास रखते हुए हम इसी सिद्धान्त पर पहुँचते हैं, कि हम सब एक महाप्राणी के शरीर के अन्दर रहने वाले छोटे छोटे कीटाणु हैं और इस प्रकार के महाप्राणियों की संख्या भी संसार में लाखों होगी और कौन जानता है कि वे महाप्राणी भी किसी महत्तर प्राणी के अन्दर रहने वाले अनुशयी जीव होंगे। यह शृंखला कहाँ समाप्त होगी यह कहना कठिन है। यजुर्वेद के पुरुषसूक्त के भी यही भाव होंगे।

द्विभस्मिक अम्ल और उनके यौगिक

(Dibasic Acids)

(ले० श्री सत्यप्रकाश, एम. एस-सी.)

अब तक हमने जिन अम्लों का वर्णन किया था उनमें एक ही कर्बोषील मूल—क ओ-ओ उ—था, अर्थात् इनमें एक ऐसा उदजन परमाणु था जो धातुओं या मद्यीलमूलों द्वारा स्थापित किया जा सके। अब हम कुछ ऐसे अम्लों का वर्णन देंगे जिनमें दो उदजन इस प्रकार के हों कि जो धातुओं या मद्यीलमूलोंसे स्थापित होसकते हों! उदाहरणतः काष्ठिकाम्ल, (कओओउ)$_2$ इसी प्रकार का अम्ल है, इसमें दो कर्बोषील मूल हैं, अतः यह निम्न प्रकार के लवण और सम्मेल दे सकता है—

```
क ओ ओ उ      क ओ ओ पां     क ओ ओ उत्र
   |             |             |
क ओ ओ उ      क ओ ओ पां     क ओ ओ ज्व
काष्ठिकाम्ल    पांशुजकाष्ठेत   द्विज्वलीलकाष्ठेत

   क ओ ओ उ              क ओ ओ ज्व
      |                     |
   क ओ ओ पां             क ओ ओ उ
पांशुजउदजन काष्ठेत      ज्वलील काष्ठिकाम्ल
```

कार्बनिकाम्ल, उ$_2$क ओ$_3$, को भी हम द्विभस्मिक कह सकते हैं क्योंकि यह दो प्रकार के लवण दे सकता है, एक तो सैन्धक कर्बनेत, सै$_2$ क ओ$_3$ के समान और दूसरा अध कर्बनेत, सै उ क ओ$_3$ के समान। निम्न प्रकार ये लवण चित्रित किये जा सकते हैं—

```
     ओ उ           ओसै          ओसै
क ओ<         क ओ<         क ओ<
     ओ उ           ओ उ          ओस
कार्बनिकाम्ल   सैन्धकअर्ध कर्बनेत   सैन्धक कर्बनेत
```

कार्बनिकाम्ल को छोड़कर अन्य जितने द्विभस्मिकअम्ल हैं वे सब श्वेत (या नारंग) रवेदार ठोस पदार्थ हैं। ये जलमें घुलनशील हैं, इनके घोल काफी अम्लीय होते हैं। नीचे की सारिणीमें कुछ द्विभस्मिक अम्ल दिये जाते हैं। इनका सामान्य सूत्र क$_न$ उ$_{२न-२}$ ओ$_४$ है।

अम्ल	सूत्र	द्रवांक
काष्ठिकाम्ल	क ओ ओ उ. क ओ ओ उ	१८९°श
सेबोनिकाम्ल	क ओ ओ उ. क उ$_2$ क ओ ओ उ	१३४°
रालिकाम्ल	क ओ ओ उ (क उ$_2$)$_2$ क ओ ओ उ	१८२°
गोंदिकाम्ल	क ओ ओ उ (क उ$_2$)$_3$ क ओ ओ उ	९७°
पीनिकाम्ल	क ओ ओ उ (क उ$_2$)$_4$ क ओ ओ उ	१५०°

इन द्विभस्मिक अम्लों के बनाने की मुख्यतः तीन विधियाँ हैं।

(१) मधुओलोंके ओषदीकरणसे ये अम्ल बनाये जा सकते हैं। ज्वलीलिन मधुओल से काष्ठिकाम्ल निम्न प्रकार बनता है:—

क उ₂ओ उ | क उ₂ओ उ (मधुओल) + २ ओ₂ = क ओ ओ उ | क ओ ओ उ (काष्ठिकाम्ल) + २ उ₂ओ
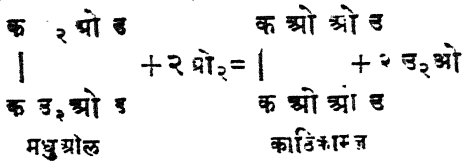
(२) हर-सिरकाम्लको पांशुज श्यामिद द्वारा प्रभावित करने से श्याम-सिरकाम्ल प्राप्त होता है जिसके उदविश्लेषण से द्विभस्मिक अम्ल मिल सकता है। हरसिरकाम्ल से सेवेतिकाम्ल निम्न प्रकार प्राप्त होता है:—

क उ₂ ह | क ओ ओ उ (हर सिरकाम्ल) —पांक नो→ क उ₂ कनो | क ओ ओ उ (श्याम सिरकाम्ल) —उ₂ओ→ क उ₂ < क ओ ओ उ, क ओ ओ उ (सेवेतिकाम्ल)
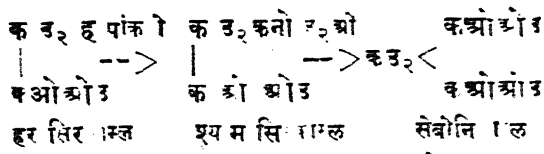
जहाँ कहीं भी श्यामजन मूल हो वहाँ उद विश्लेषण से कर्बोषील मूल, क ओ ओ उ स्थापित किया जा सकता है:—

- कनो + २ उ₂ ओ = — क ओ ओ उ + नो उ₃
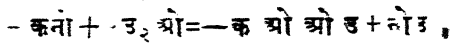
(३) एक द्वि-भस्मिक अम्लसे दूसरा द्विभस्मिक अम्ल बनानेकी एक विधि इस प्रकार है। किसी द्विभस्मिक अम्लके पांशुज मद्यील लवण लो और उसका विद्युत-विश्लेषण करो इस प्रकार प्रक्रियामें उस द्विभस्मिक अम्ल से उच्चतर द्विभस्मिक अम्ल का मद्यील सम्मेल प्राप्त हो जायगा। पांशुज ज्वलील सेवोनेत से द्विज्वलील राले त निम्न प्रकार बनता है:—

पां ओ ओ क क उ₂ क ओ ओ ज्व
\+ पां ओ ओ क क उ₂ क ओ ओ ज्व

= क उ₂ क ओ ओ ज्व | क उ₂ क ओ ओ ज्व + क ओ₂ + क ओ₂ + पां + पां

\+ ध्रुव (—) ध्रुव

द्विज्वलील रालेत
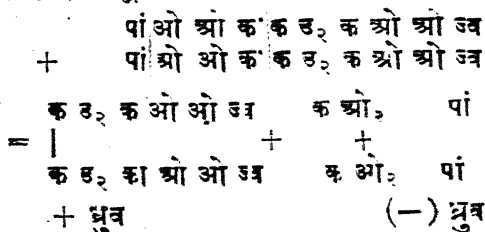
विद्युत विश्लेषण में धनध्रुव पर द्विज्वलील रालेत और ऋण ध्रुव पर पांशुजम् संचित हो जाता है।

कार्बनिकाम्ल के यौगिक

कर्बन द्विओषिद जल में घुलने पर क्षीण अम्ल देता है जिसे सुविधाके लिये निम्न प्रकार सूचित किया जा सकता है। यह अम्ल अत्यन्त अस्थायी है और शुद्ध रूप में पृथक् नहीं किया जा सकता है, पर इसके लवण स्थायी होते हैं:—
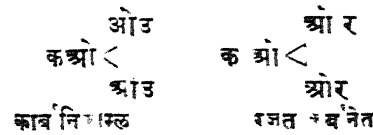
क ओ < ओउ, ओउ (कार्बनिकाम्ल) क ओ < ओर, ओर (रजत कर्बनेत)

रजत कर्बनेतको मद्यील नैलिद के साथ उबालने से मद्यील कर्बनेत बन जाते हैं:—

क ओ < ओर, ओर + २ क₂उ₅नै = क ओ < ओज्व, ओज्व + २ र नै

ज्वलील कर्बनेत
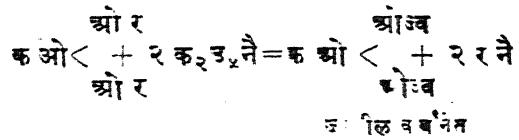
कर्बनील हरिद क ओ ह₂—डेवी ने सं० १८६८ वि० में धूपमें कर्बनएकौषिद और हरिनके संयोगसे एक गैस बनाई जो कर्बनील हरिद है:—

क ओ + ह₂ = क ओ ह₂
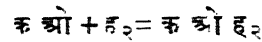
गन्धक त्रिओषिद और कर्बन चतुर्हरिदके संयोगसे यह यौगिक सुगमतासे बनाया जा सकता है—

क ह₄ + २ग ओ₃ = क ओ ह₂ + ग ओ₂ह₂ ग ओ₂
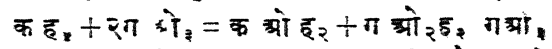
एक कुप्पीमें सीधा भभका लगाओ और इसमें ५० घ. शम. कर्बन चतुर्हरिद रखो और जलकुंडी पर गरम करो। जब यह उबलने लगे तो पेंचदार कीपसे ६० घ. शम. के लगभग धूम्रित गन्धकाम्ल धीरे धीरे छोड़ो भभके में एक वाहक नली लगादो जिसका संयोग एक चूल्हाकार नलीसे करदो। चूल्हाकार नलीको बर्फके अन्दर रक्खो। इस नली में कर्बनील हरिद ठोसाकार संचित हो जायगा।

व्यापारिक मात्रा में बनानेके लिये कर्बनएकौषिद और हरिनके मिश्रणको कोयलेके अन्दर प्रवाहित करते हैं जहां संसर्ग प्रक्रिया (Contact action) से दोनोंमें संयोग होकर कर्बनीलहरिद बन जाता है।

इव गैसका द्रवांक ८° है, इसमें तीक्ष्ण और कटु गन्ध होती है नम वायुमें यह विभाजित हो जाता है—

क ओ ह₂ + २ उ₂ ओ = क ओ₂ + उ₂ ओ + २ उ ह

मद्यमें प्रवाहित करनेसे हर—पिपीलिक सम्मेल प्राप्त होता है:—

कओह₂ + क₂ उ₅ ओ उ = ह क ओ ओक₂ उ₅ + उह
हर पिपीलिक सम्मेल

इस सम्मेलपर अमोनियाका प्रभाव डालनेसे **मूत्र-ज्वलेन**(urethane)प्राप्त होता है। हरिन् अमिनो मूल—नो उ₂ में स्थापित हो जाता है। इसे कार्बमिक सम्मेल (carbamic ester) भी कह सकते हैं—

ह क ओ ओ उर + २ नो उ₃
= नो उ₂ क ओ ओ उर + नो उ₃ ह
मूत्रज्वलेन
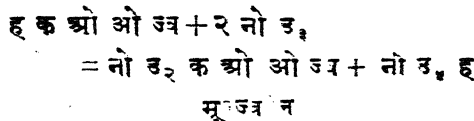
नो उ₂ क ओ ओ उ को कार्बमिकाम्ल कहते हैं।

मूत्रिया (urea) क ओ (नो उ₂)₂—यदि कर्बनीलहरिदमें अमोनिया डाला जाय तो मूत्रिया नामक यौगिक प्राप्त होता है। इस यौगिक को हम कार्बनिकाम्ल का द्विअमिद या कर्बामिद कह सकते हैं:—

क ओ <ह ह + २ नो उ₃ = क ओ < नो उ₂ नो उ₂ + २ उह
मूत्रिया
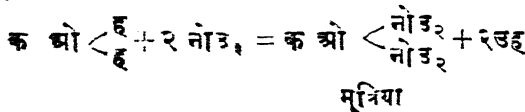
ठीक इसी प्रकार सिरकीलहरिदसे सिरकामिद बनाया गया था—

क उ₃ क ओ ह + नो उ₃ = क उ₃ क ओ नो उ₂ + उह

प्रक्रियाओंमें जनित उदहरिकाम्ल अमोनियाके संसर्गमें अमोनियमहरिदमें परिणत हो जाता है जिसके कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

मूत्रियाको सैन्धकक्षारके साथ उबालनेसे अमोनिया निकलती है:—
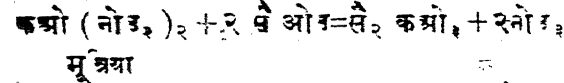
कओ (नो उ₂)₂ + २ सै ओ उ = सै₂ क ओ₃ + २नो उ₃
मूत्रिया

मूत्रियाको जलमें घोलकर थोड़ासा सैन्धक नोषित और उदहरिकाम्ल डालकर उबालनेसे नोषजन निकलने लगता है:—नोषसाम्ल निम्न प्रकार प्रभाव डालता है:—

नो उ₂ कओ नो उ₂ + ओ उ नो ओ ओ उ नो ओ = २नो₂ + क ओ₂ + ३ उ₂ ओ
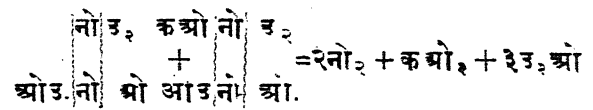
इन सब प्रक्रियाओंसे स्पष्ट है कि मूत्रियामें दो अमिनो मूल है। नोषितोंको विभाजित करनेके लिये उपर्युक्त प्रक्रिया बहुत काममें आती हैं। नोषितोंको अम्लकी विद्यमानतामें मूत्रियाके साथ उबाल देते हैं, बस इनका विभाजन होता है।

मूत्रिया बनानेकी व्हूलर विधि श्यामजन यौगिकोंका वर्णन करते हुए दी जा चुकी है। पांशुज श्यामेत और अमोनियम गन्धेत द्वारा अमोनियमश्यामेत बनाया जाता है। इसे गरम करनेसे रूपपरिवर्त्तन होकर मूत्रिया बन जाता है।

नो उ₄ क नो ओ —> क ओ < नो उ₂ नो उ₂
अमोनियम-श्यामेत मूत्रिया
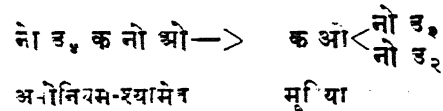
यह नीरंग रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक १३२° है। यह जलमें और गरम मद्यमें घुलनशील है। इसे गरम करनेसे अमोनिया, द्विमूत्रित (biuret) और श्याम-मूत्रिकाम्ल प्राप्त होते हैं: —

नो उ₂ क ओ नो उ₂ + नो उ₂ क ओ नो उ₂
= नो उ₂ क ओ नो उ. क ओ नो उ₂ + नो उ₃
द्विमूत्रित
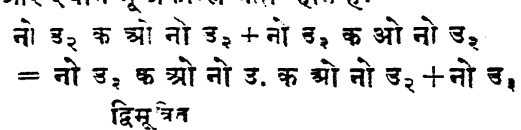
द्विमूत्रितमें ताम्र गन्धेत घोलकी दो बूंद और सैन्धक क्षारघोल डालनेसे बैंजनी रंगका घोल मिलता है। इस प्रक्रियासे मूत्रिया और द्विमूत्रितकी पहिचानकी जाती है। मूत्रियाके रवोंको मन्दी ज्वालामें धीरे धीरे गरम करो। ये पहले पिघलेंगे। जब अमोनिया निकलने लगे तो इसे ठंडा करके पानीकी दो तीन बूंदे डालकर ताम्र गन्धेत घोल और सैन्धक क्षार घोल की दो दो बूंदे डालो। बैंजनी रंग दिखाई पड़ेगा।

मूत्रिया नोषिकाम्ल और काष्ठिकाम्लके संपृक्त घोलके साथ अवक्षेप देता है। प्रक्रियामें मूत्रिया नोषेत और मूत्रिया काष्ठेत बन जाते हैं—

क ओ (नो उ₂)₂ उ नो ओ₃

मूत्रियानोषेत

[क ओ (नो उ₂)₂] २ क₂ उ₂ ओ₄ + उ₂ ओ

मूत्रियाकाष्ठेत

सैन्धक उपहरित या उपअरुणितके क्षारीय घोल को मूत्रियाके घोल में डालनेसे बुद बुदे उठने लगेंगे। नोषजन निकलने लगेगा। प्रक्रियामें कर्बनद्विओषिदभी बनता है पर वह क्षारमें अभिशोषित होजाता है अतः केवल शुद्ध नोषजन गैस ही निकलता है। इस नोषजनकी मात्रा नाप कर यौगिकमें नोषजनका का अनुपात निकाला जा सकता है इसविधिका बहुत उपयोग किया जाता है। नोषजनका आयतन नापनेके लिये लुंगेका नोषजन मापक बहुधा काममें लाया जाता है प्रक्रिया निम्न प्रकार है —

उ₂ नो — क ओ — नो उ₂ + ३ सै ओ ह सै ओ ह सै ओ ह = ३ सैह + नो₂ + कओ₂ + २उ₂ओ
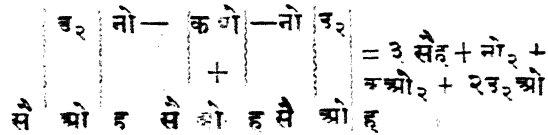
प्रत्येक मनुष्यके मूत्रमें प्रतिदिन ० ग्राम मूत्रिया विद्यमान रहता है। मूत्र को उबाल कर गाढ़ा कर लेते हैं और फिर मद्य द्वारा इसका निष्कर्ष निकालकर, मद्यको सुखा कर मूत्रियाके रवे प्राप्त किये जा सकते हैं।

काष्ठिकाम्ल (Oxalic acid)

क ओ ओ उ. क ओ ओ उ २ उ₂ ओ

काष्ठिकाम्ल पौधों और लकड़ियोंमें लवणोंके रूपमें विद्यमान रहता है। कुछ खमीराणुओं और कीटाणुओंमें यह गुण होता है कि वे शक्करको काष्ठिकाम्लमें परिणत कर देते हैं। शीलेने सं० १८३३ वि० में शक्कर को तीव्र नोषिकाम्ल द्वारा गरम करके काष्ठिकाम्ल बनाया था। १०० घ. शम. तीव्र नोषिकाम्लको एक कुप्पीमें जलकुंडी पर गरम करो। अब खुले मैदानमें लेजाकर ३० ग्रामके लगभग गन्नेकी शक्कर इस कुप्पीमें डालो। धीरे धीरे नोषजन ओषिदों की घनी वाष्पें निकलने लगेंगी। प्रक्रिया बड़ी ही तीव्रतासे होती है। जब भूरा वाष्पें निकलनी बन्द हो जाय तो द्रवको जलकुंडी पर उबालकर एक चौथाई कर लो। ठंडा होने पर इसमेंसे काष्ठिकाम्लके रवे पृथक् होने लगेंगे।

चीड़ लकड़ीके बुरादे या सैन्धक पिपीलेतको दाहक क्षारोंके साथ पिघलानेसे भी काष्ठिकाम्लके लवण प्राप्त हो सकते हैं:—

२ उ क ओ ओ सै = (क ओ ओ सै)₂ + उ₂

सैन्धक पिपीलेत सैन्धककाष्ठेत
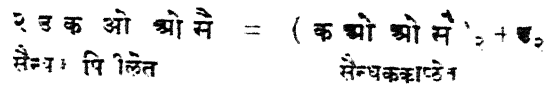
श्यामजनका जलीय घोल कुछ समयके बाद अमोनियम काष्ठेतमें परिणत हो जाता है —

क नो | क नो + ४ उ₂ ओ = क ओ ओ नो उ₄ | क ओ ओ नो उ₄

श्यामजन अमोनियम काष्ठेत
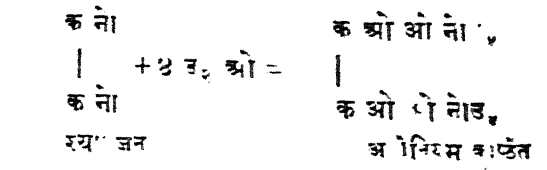
काष्ठिकाम्ल नीरंग रवेदार पदार्थ है इसमें स्फटिकीकरणके दो जल अणु होते हैं। तीव्र गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे यह कर्बन द्विओषिद और कर्बन एकौषिदमें विभाजित हो जाता है। तीव्र गन्धकाम्ल इसमें से जलका एक अणु खींच लेता है:—

क ओ ओ उ | क ओ ओ उ = क ओ₂ + क ओ + उ₂ ओ
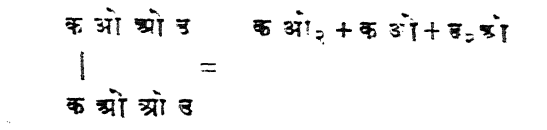
एक परखनलीमें थोड़ा काष्ठिकाम्ल या काष्ठेत लवण लो। इसमें थोड़ा तीव्र गन्धकाम्ल मिलाकर गरम करो। अम्लमें बिना झुलसे (Char) हुए ही बुदबुदे उठने लगेंगे। कर्बन एकौषिद नलीके मुहपर जलाया जा सकता है।

हलके गन्धकाम्लकी विद्यमानतामें काष्ठिकाम्ल पांशुज परमांगनेत द्वारा ओषदीकृत हो जाता है। प्रयोग में इस प्रक्रिया का बहुत उपयोग किया जाता है।—

५ क₂ उ₂ ओ₄ + २ पां मां ओ₄ + ३ उ₂ ग ओ₄ = १० कओ₂ + ८ उ₂ ओ + पां₂ गओ₄ + २मगओ₄
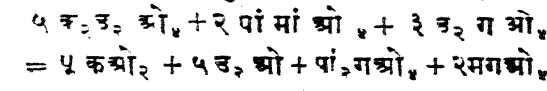
स्फुर पंचहरिद के संसर्ग से यह काष्ठील हरिद में परिणत हो जाता है। काष्ठील हरिद नीरंग द्रव है जिसका क्वथनांक ६४ श है।

क ओ ओ उ   क ओ ह
| + २ स्फुह५ = | + २ स्फु ओह३ + २उह
क ओ ओ ओ उ   क ओ ह

काष्ठील हरिद
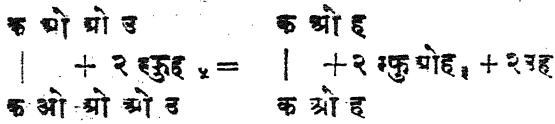
अनार्द्र काष्ठिकाम्लको मद्योंके साथ उबालनेसे मद्यील काष्ठेत सम्मेल प्राप्त हो सकते हैं। दारील काष्ठेत ठोस पदार्थ है जिसका द्रवांक ५१° और क्वथनांक १६२° है। ज्वलील काष्ठेत द्रव है जिसका क्वथनांक १८६° श है। काष्ठिकाम्लके अनेक लवण भिन्न भिन्न कामोंमें उपयुक्त होते हैं, रोशनाईके धब्बे उड़ाने के लिये पांशुज चतुर्काष्ठेत, क२ओ४ उपां क२उ३ ओ४, + उ२ओ—का बहुत उपयोग किया जाता है।

दारील या ज्वलील काष्ठेतमें तीव्र अमोनिया डालने से काष्ठामिद नामक यौगिकका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है:—

क ओ ओ ज्व   क ओ नो उ२
| + २नो उ३ = | + २ज्वओउ
क ओ ओ ज्व   क ओ नो उ२

ज्वलील काष्ठेत   काष्ठामिद
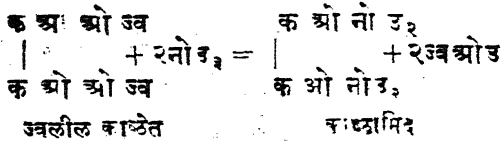
यह काष्ठामिद स्फुर पंचौषिद द्वारा श्यामजन में परिणत हो जाता है और उदविश्लेषण द्वारा काष्ठिकाम्ल में।

सेबोनिकाम्ल (Malonic Acid)

क उ२ (क ओ ओ उ)२
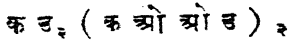
यह चुकन्दरकी जड़में खटिक लवणके रूप में विद्यमान है। सबसे पहले यह सेबिकाम्लके ओषदीकरणसे बनाया गया था। इस लिये इसका सेबोनिकाम्ल नाम पड़ा है जैसा कि आरंभमें कहा जा चुका है अब यह हरसिरकाम्ल पर पांशुजश्यामिद और उदविश्लेषण की प्रक्रियायें करके बहुधा बनाया जाता है। पांशुजहरसिरकेत या पांशुजश्यामिद के साथ उबालकर पांशुजश्यामसिरकेत बनाते हैं जिसे तीव्र उदहरिकाम्ल द्वारा उदविश्लेषित करके सेबोनिकाम्लमें परिणत कर लेते हैं। यह नीरंग रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक १३२° श है। यह पानी, मद्य और ज्वलक में घुलनशील है। १४०° तक गरम करने से इसमें से कर्बनद्विओषिद पृथक् होजाता है और सिरकाम्ल बनजाता है—

$$क उ_2 < \begin{matrix} क ओ ओ उ \\ क ओ ओ उ \end{matrix} = क उ_3\ क ओ ओ उ + क ओ_2$$

सेबोनिकाम्ल   सिरकाम्ल
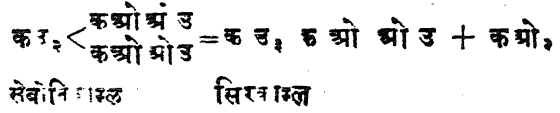
इसे स्फुर पचौषिदके साथ गरम करनेसे कर्बन-उपओषिद (C_3O_2), क३ ओ२, नामक एक वायव्य प्राप्त होता है—

क उ२ (क ओ ओ उ)२ = क३ ओ२ + २ उ२ ओ

श्यामसिरकाम्लको मद्य और गन्धकाम्लके साथ गरम करनसे सेबोनिक सम्मेल प्राप्त होता है।

कउ२कनो   कउ२कओओउ   कउ२कओओज्व
| —→ | —→ |
क ओ ओ उ   क ओ ओ उ   क ओ ओ ज्व

द्विज्वलीलसेबोनेत
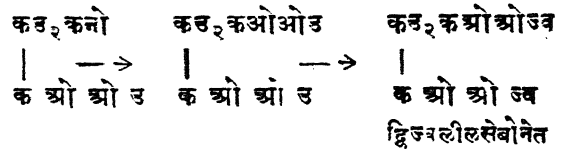
जिस प्रकार सिरकोसिरकिक सम्मेलका उपयोग अनेक संश्लेषणोंमें होता है उसी प्रकार सेबोनिक सम्मेलका भी उपयोग बहुत किया जाता है।

सेबोनिक सम्मेलके मद्यील घोलमें सैन्धक मद्यके डालनेसे सम्मेलका सैन्धक यौगिक प्राप्त होता है। इसी प्रकारका सैन्धक यौगिक सिरकोसिरकिक सम्मेलसे भी मिला था।

$$क उ_2 < \begin{matrix} कओओज्व \\ कओओज्व \end{matrix} + सैओज्व = कउसै < \begin{matrix} कओओज्व \\ कओओज्व \end{matrix} + ज्वओउ$$

सेबोनिक सम्मेल   सैन्धकसेबोनिक सम्मेल
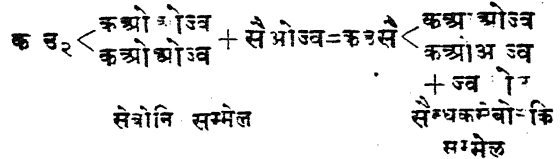
इस यौगिकके मद्यीलघोलमें अब यदि मद्यील नैलिदकी उपयुक्त मात्रा डाली जाय और यदि मिश्रण को उबालें तो मद्यील सेबोनिक सम्मेल प्राप्त होगा। दारील नैलिद निम्न यौगिक देता है:—

$$कउसै < \begin{matrix} कओओज्व \\ कओओज्व \end{matrix} + कउ_3 नै = क उ (कउ_3) < \begin{matrix} कओओज्व \\ कओओज्व \end{matrix} + सै नै$$

दारील सेबोनिक सम्मेल
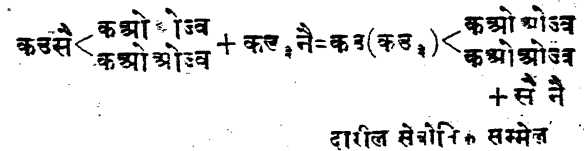
इस दारीलसेबेकि क सम्मेठका फिर सैन्धक यौगिक बनाकर मद्यील नैलिदम पुनः प्रभावित करके सेबोनिक सम्मेलका दूसरा उदजनभी मद्यीलमूलसे स्थापित किया जा सकता है सैन्धक यौगिक और ज्वलील नैलिद निम्न प्रकार प्रक्रिया करेंगे।

(क उ₃)' क सै (क ओ ओ उ)₂ + क₂ उ₅ नै

= (क उ₃) क (क₂ उ₅) < क ओ ओ उ / क ओ ओ उ

दारील उ लि सेबोनिक सम्मे।

इन सम्मेलों की दाहक क्षारों द्वारा उदविश्लेषण करने से द्विभस्मिक अम्लोंके सैन्धक लवण प्राप्त हो जायगे जिनमें उदहरिकाम्ल डालनेसे द्विभस्मिक-अम्ल पृथक हो जायंगे। ये द्विभस्मिकअम्ल गरम करने पर कर्बन द्विओषिदका त्याग कर देते हैं और एक-भस्मिक अम्लोंमें परिणत होजाते हैं: —

क उ₂ (क ओ ओ उ)₂ = क उ₃ कओओउ + कओ₂

सेबोनिकाम्ल सिरकाम्ल

क उ₃ क उ (क ओ ओ उ)₂

दारील सेबोनिकाम्ल

= क उ₃ क उ₂ क ओ ओ उ + क ओ₂

अम्बकाम्ल

क उ₃ / क उ₃ > क (क ओ ओ उ)₂

द्विदारील सेबोनिक सम्मेल

= क उ₃ / क उ₃ > क उ क ओ ओ उ + क ओ₂

सम नवनीनिकाम्ल

क उ₃ / क₂ उ₅ > क (क ओ ओ उ)₂

क उ₃ / क₂ उ₅ > क उ क ओ ओ उ

दारीलज्व लिमिरकाम्ल

इस प्रकार सेबोनिक सम्मेलकी सहायतासे अनेक मज्जिकाम्लोंका संश्लेषण किया जा सकता है।

ज्वलीलिन अरुणिद और द्विसैन्धक सेबोनिक सम्मेल त्रिदारीलिन द्विकर्बोषिलिक सम्मेल देता है—

क उ₂ रु
| + सै₂ क (क ओ ओ ज्व)₂ =
क उ₂ रु

क उ₂
| > क (क ओ ओ ज्व)₂ + २ सै रु
क उ₂

त्रिदारीलिन द्विकर्बोषिलिक सम्मेल

गालिकाम्ल

(क उ₂ क ओ ओ उ)₂

गालके स्रवण करनेसे यह प्राप्त हो सकता है। इमलिकाम्ल और सेबिकाम्लको उदनैलिकाम्ल द्वारा अवकृत करनेसे भी यह प्राप्त हो सकता है।

क उ (ओ उ) क ओ ओ उ
| + २ उ₂ =
क उ (ओ उ) क ओ ओ उ

इमलिकाम्ल

क उ₂ क ओ ओ उ
| + २ उ₂ ओ
क उ₂ क ओ ओ उ

गालिकाम्ल

ज्वलीलिनसे भी यह अम्ल संश्लेषित किया गया है। इस विधि द्वारा इस अम्लका संगठन निश्चित रूपसे स्थिर किया जा सकता है ज्वलीलिन अरुणिनके संयोगसे ज्वलीलिन अरुणिदमें परिणत किया जाता है। इससे पांशुज श्यामिद द्वारा ज्वलीलिन श्यामिद बनाते हैं जिसके उदविश्लेषणसे गालिकाम्ल मिल जाता है :—

क उ₂ रु₂ क उ₂ रु पांक्नो
‖ —> | —>
क उ₂ क उ₂ रु

ज्वलीलिन ज्वलीलिन अरुणिद

क उ₂ क नो क उ₂ क ओ ओ उ
| —> |
क उ₂ क नो क उ₂ क ओ ओ उ

ज्वलीलिन श्यामिद गालिकाम्ल

ख—नैल अग्निकाम्लको पांशुजश्यामिद द्वारा ख-श्याम अग्निकाम्लमें परिणत करके उदविश्लेषण करने से भी रालिकाम्ल उपलब्ध हो सकता है—

नैकउ$_2$कउ$_2$कओ ओउ → कनो कउ$_2$ कउ$_2$ कओ ओउ

ख—नैल अग्निकाम्ल पांकनो ख—श्याम अग्निकाम्ल

→ कओ ओउ· कउ$_2$ कउ$_2$ कओ ओउ

उ$_2$ओ रालिकाम्ल
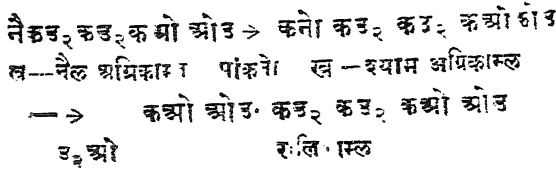
रालिकाम्ल श्वेत रवेदार पदार्थ है जिसका द्रवांक १८० है। इसको गरम करनेसे रालिक अनार्द्रिद (Succinic anhydride) मिलता है।

कउ$_2$ कओ ओउ   कउ$_2$ कओ
| → | > ओ + उ$_2$ओ
कउ$_2$ कओ ओउ   कउ$_2$ कओ

रालिक अनार्द्रिद
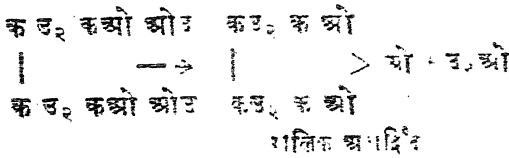
इस अनार्द्रिद को अमोनियाके प्रवाहमें गरम करनेसे रालिकइमिद (Succinimide) बनता है—

कउ$_2$ कओ   कउ$_2$कओ
| >ओ + नोउ$_3$ = | >नोउ + उ$_2$ओ
कउ$_2$ कओ   कउ$_2$कओ

रालिकइमिद
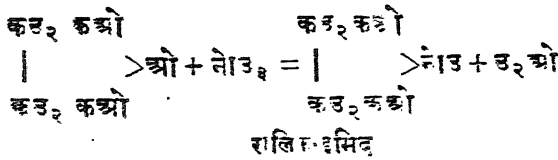
गोंदिकाम्ल (Glutaric) कओ ओउ. (कउ$_2$)$_3$ कओओउ, तथ पीनिकाम्ल (Adipic) कओओउ (कउ$_2$)$_4$ कओ ओउ, अधिक उपयोगी अम्ल नहीं हैं। ख-नैल अग्निकाम्ल को रजतचूर्णसे विभाजित करनेसे पीनिकाम्ल प्राप्त हो सकता है।

नै कउ$_2$ कउ$_2$ कओ ओउ
र$_2$ +
नै कउ$_2$ कउ$_2$ कओ ओउ
ख-नैल अग्निकाम्ल

↓

कउ$_2$ कउ$_2$ कओ ओउ
२ रनै + |
कउ$_2$ कउ$_2$ कओ ओउ
पीनिकाम्ल
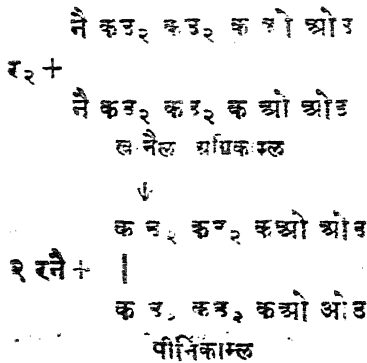
उदौष द्विभस्मिक अम्ल

यह कहा जा चुका है कि द्विभस्मिक अम्लोंमें दो कर्बोषील मूल होते हैं यदि इन अम्लोंमें कर्बोषील मूलोंके अतिरिक्त उदौषीलमूल-ओउ भी हो तो इन्हें उदौष द्विभस्मिक अम्ल कहेंगे। दो उदौष द्विभस्मिक अम्ल अधिक उपयोगी हैं अतः उनकाही यहां स्थान दिया जायगा। रालिकाम्लमें एक उदौषीलमूल स्थापित करनेसे सेबिकाम्ल बनता है और दो उदौषील मूलस्थापित करनेसे इमलिकाम्ल बनता है:—

कउ$_2$ कओ ओउ   कउ (ओउ) कओ ओउ
| |
कउ$_2$ कओ ओउ   कउ$_2$ कओ ओउ
रालिकाम्ल   सेबिकाम्ल

कउ (ओउ) कओ ओउ
|
कउ (ओउ) कओ ओउ
इमलिकाम्ल
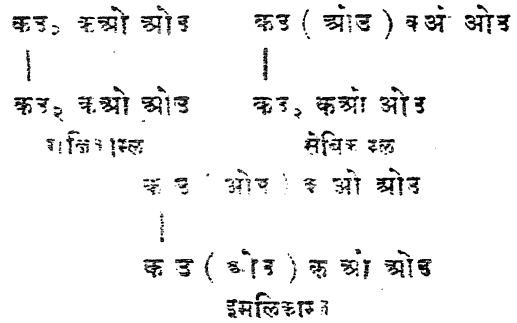
सेबिकाम्ल (malic acid) उदौषरालिकाम्ल कओ ओउ कउ (ओउ) कउ$_2$ कओ ओउ— शीलेने कच्चे सेबोंमेंसे सं० १८४२ वि० में इस अम्ल को पृथक् किया था। कई प्रकारकी रसभरियोंमें भी यह विद्यमान रहता है। इनके रसको दूधिया चूनेके साथ उबालते हैं। इस प्रकार सेबिकाम्ल का खटिक लवण-क$_4$उ$_4$ ओ$_5$ख- अवक्षिप्त होजाता है। इस खटिक लवणको हलके गरम नोषिकाम्ल द्वारा रवेदार बना लेते हैं रवोंमें गन्धकाम्ल डालनेसे खटिक गन्धेत अवक्षेपित होजाता है और शुद्ध अम्ल द्रव में रह जाता है। अवक्षेप को छान कर पृथक् कर लेते हैं और द्रवमेंसे सेबिकाम्लका स्फटिकीकरण कर लेते हैं। यह रवेदार पदार्थ है जिसका क्वथनांक १००° के लगभग है। नम वायुमें रखनेसे यह पसीजने लगता है। गरम करने पर इसमेंसे जलका एक अणु पृथक् होजाता है और दो समरूपी अम्ल जिन्हें वासिकाम्ल (fumaric और सेविकाम्ल (maleic) कहते हैं, प्राप्त होते हैं—

क ओ ओ उ. क उ ओ उ. क उ₂ क ओ ओ उ=
क ओ ओ उ क उ: क क ओ ओ उ + उ₂ ओ

सेविकाम्लको उदनैलकाम्ल द्वारा अवकृत करने पर रालिकाम्ल प्राप्त होता है।

कउओउकओओउ + उ₂ = कउ₂कओओउ + उ₂ओ
क उ₂ कओओउ कउ₂कओओउ
सेविकाम्ल रालिकाम्ल
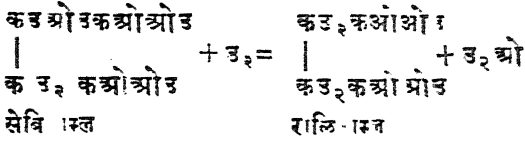
एक-अरुणो-रालिकाम्लको नम रजत ओषिदके साथ प्रभावित करनेसे सेविकाम्लका संश्लेषण किया जा सकता है:—

रओउ + रुकउकओओउ = कउ(ओउ)कओओउ + रुरु
कउ₂कओओउ कउ₂कओओउ
एक-अरुणोरालिकाम्ल सेविकाम्ल
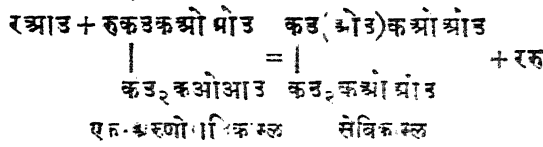
सेविकाम्लका उदौषीलमूल सिरकिक अनाद्रिद द्वारा सिरकालित भी किया जा सकता है। इन सब प्रक्रियाओंसे सेविकाम्लमें उदौषील मूलकी विद्यमानता और इनका रालिकाम्लसे सम्बन्ध स्पष्ट ही है।

सेविकाम्लमें एक असम-संगतिक कर्बन परमाणु है, अर्थात् इसमें एक ऐसा कर्बन है जिसके चारों बन्ध चार भिन्न भिन्न मूलोंसे संयुक्त हैं। अतः जिस प्रकार दुग्धिकाम्ल दो प्रकारके अर्थात् दक्षिण भ्रामक और उत्तर भ्रामक पाये गये थे उसी प्रकार सेविकाम्लको भी दो प्रकार चित्रित कर सकते हैं:—
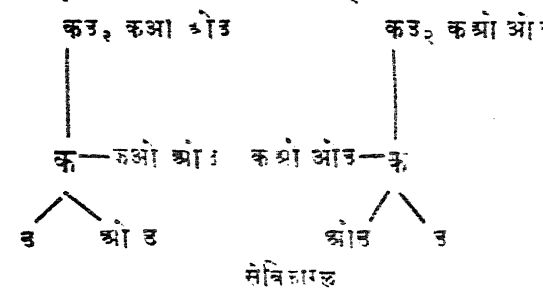
सेविकाम्ल

एकको हम द-सेविकाम्ल और दूसरेको उ-सेविकाम्ल कहेंगे। दोनों दिग्प्रधान-प्रकाशको क्रमशः दाहिनी और बायीं ओर मोड़ते हैं। यही दोनोंमें भेद है। रासायनिक गुणोंमें दोनों एक समान हैं। दोनोंकी बराबर बराबर मात्रा मिलानेसे अशक्त-सेविकाम्ल (racemic malic acid) मिलता है। यह दिग्प्रधान प्रकाशको किसी भी ओर नहीं मोड़ता है।

अमिनो रालिकाम्ल, कओओउ क उ (नो उ₂) क उ कओओउ को पौधिकाम्ल (asparatic acid) कहते हैं क्योंकि यह चुकन्दरके पौधेके गुड़से प्राप्त होता है। नोषसाम्लके प्रभावसे यह सेविकाम्लमें परिणत हो जाता है।

इमलिकाम्ल (Tartaric acid), कओओउ कउओउ क उ ओ उ' क ओ ओ उ या द्विउदौष रालिकाम्ल जैसा कि इसके नामसे स्पष्ट है, यह इमलीमें पाया जाता है इसके अतिरिक्त अंगूरके रस, तथा अन्य फलोंके रसोंमें भी यह विद्यमान है। शीले ने सं० १८०६ वि० में इसका प्रथम परिज्ञण किया था। अंगूरके रसमें इस अम्लका अम्लीय पांशुज लवण विद्यमान रहता है। रसके खमीरण करनेसे कुछ मद्यजनित होता है। इस मद्यके पैदा हो जानेके कारण अम्लीय पांशुज लवणके भूरे रंगके रवे पृथक होने लगते हैं। इन्हें आर्गल कहते हैं। आर्गलका फिर स्फटिकीकरण करनेसे शुद्ध लवण प्राप्त होता है। जिसे इमलीकी मलाई (cream of tartar) कहते हैं।

इमलिकाम्ल प्राप्त करनेके लिये आर्गलके उबलते घोलको खड़िया मिट्टी (खटिककर्बनेत) से शिथिल कर लेते हैं इस प्रकार कुछ खटिक इमलेत अवक्षिप्त हो जाता है। प्रक्रियामें कुछ घुलनशील पांशुज इमलेत भी बनता है। इसे छान लेते हैं और और द्रवमें खटिक हरिद डालकर इसको भी अघुल खटिक इमलेतमें परिणत कर लेते हैं।

२ क₄ उ₄ ओ६ पां + ख क ओ₃ =
अम्लीय पांशुज इमलेत

क₄ उ₄ ओ₆ ख + क₄ उ₄ ओ₆ पां₂
खटिक इमलेत पांशुज इमलेत
+ क उ₂ + उ₂ओ

क₄ उ₄ ओ₆ पां₂ + खह₂ = क₄उ₄ ओ₆ ख + २पांह
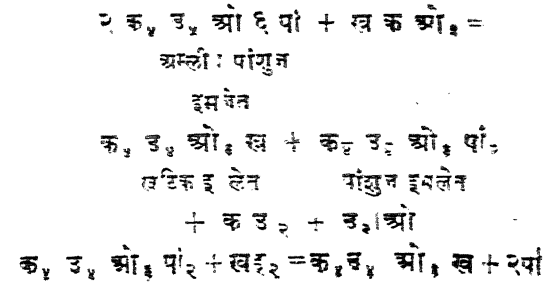
खटिक इमलेतमें गन्धकाम्ल डाला जाता है जिस से अघुल खटिक गन्धेत अवक्षेपित हो जाता है और घुलनशील इमलिकाम्ल द्रवमें चला जाता है। द्रवको छान कर और वाष्पीभूत करके गाढ़ा कर लेते हैं। इसमेंसे इमलिकाम्ल के रवे पृथक् होने लगते हैं। इस प्रकार फलोंके रससे शुद्ध इमलिकाम्ल अलग कर लिया जाता है। इमलिकाम्ल जल और मद्यमें घुलनशील है। इसका द्रवांक २०५°श है। जलीय घोलोंमें यह दक्षिण भ्रामक है।

इसके लवण बहुत ही प्रसिद्ध हैं। सैन्धक पांशुज इमलेत क ओ ओ सै. क उ. ओ उ क उ ओउ. क ओ ओ पां, ४ उ₂ ओ को रोशील लवण कहते हैं क्योंकि इसका सर्व प्रथम अन्वेषण डि-ला-रोशीलने किया था। इमली की मलाई अर्थात् अम्लीय पांशुज लवण क ओ ओ उ (क उ ओ उ)₂ क ओ ओ पां में सैन्धक कर्बनेत डालने से यह बनाया जा सकता है। इमलीकी मलाई के घोल में यदि आञ्जनस ओषिद घोला जाय तो वमन इमलिक लवण (tartar emetic) प्राप्त होता है। वमन (कय) करने के लिये औषधियों में इसका उपयोग किया जाता है।

पहिचान—१. इमलिकाम्लके घोलमें यदि खटिक हरिद डालकर हिलाया जाय तो खटिक इमलेत का अवक्षेप प्राप्त होगा, जो क्षार और सिरकाम्ल में घुलनशील है। (खटिक काष्ठेत इनमें घुलनशील नहीं है)।

२. रजतनोषेत के अमोनिया युक्त घोलमें इमलिकाम्ल डालकर गरम करने से रजतदर्पण प्राप्त होता है। परख नलीमें कुछ इमलिकाम्ल या इमलेत लवण का घोल लो। इसमें रजतनोषेत का घोल डालो जब सम्पूर्णतः अवक्षेप आजाय तो हलके अमोनिया घोल को बूंद बूंद करके डालो। जब सब अवक्षेप घुल जाय तो परखनलीको गरम जल में रख दो। नलीकी भित्तियों पर चमकदार रजतदर्पण दिखाई पड़ेगा।

इमलिकाम्ल का संगठन—ऊपर लिखे गये लवणों-जैसे रोशीललवण से यह स्पष्ट है कि यह अम्ल द्विपास्मिक है। यह मद्योंकी प्रक्रियासे द्विमद्यील सम्मेल भी बनाता है। इस सम्मेल को यदि सिरकील हरिद से प्रभावित किया जाय तो दो सिरकील मूल स्थापित हो जाते हैं जिससे स्पष्ट है कि इसमें दो उदौषिल मूल हैं—

क उ ओ उ क ओ ओ उ
| —>
क उ ओ उ क ओ ओ उ
इमलिकाम्ल

क उ ओ उ क ओ ओ ज्व
| —>
क उ ओ उ क ओ ओ ज्व
द्विज्वलील इमलेत

क उ (ओ सिर) क ओ ओ ज्व
|
क उ (ओ सिर) क ओ ओ ज्व
द्विसिरकील इमलिक सम्मेल
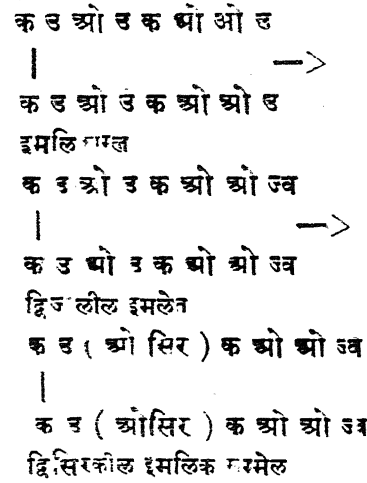
इन प्रक्रियाओं से स्पष्ट है कि इमलिकाम्ल को द्वि-उदौष द्विकाम्ल कहना चाहिये।

अंगूरिकाम्ल-या अशक्ताम्ल (Racemic acid) साधारण इमलिकाम्ल को बन्द नलीमें जलके साथ १७५° तक गरम करने से एक अम्ल प्राप्त होता है जो सब गुणों में इमलिकाम्ल के समान है, पर यह दिग-प्रधान प्रकाश को मोड़ने में अशक्त है। इसका द्रवांक २०५° है। इसे अंगूरिकाम्ल या अशक्ताम्ल कहते हैं। मधुकाष्ठल द्वारा इसका संश्लेषण भी किया जा सकता है। उदश्यामिकाम्ल द्वारा इसका श्यामउदिन बनाते हैं जिसके उद्विश्लेषण से अशक्ताम्ल मिल जाता है।

क उ ओ   क उ (ओ उ) क नो   क उ ओ उ क ओ ओउ
| —> | —> |
| उ क नो | जल |
क उ ओ   क उ (ओ उ) क नो   क उ ओ उ क ओ ओउ
मधुकाष्ठल   श्यामउदिन   अशक्ताम्ल
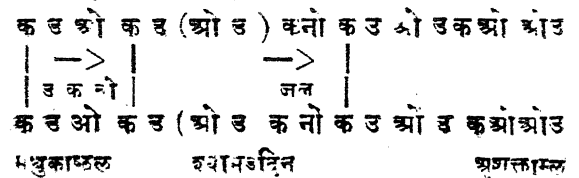
मध्यइमलिकाम्ल (mesotartaric acid) इमलिकाम्ल, अशक्ताम्ल, और मध्यइमलिकाम्ल तीनों के सूत्र एक ही है साधारण इमलिकाम्ल को जल के साथ १६५ तक गरम करने से अथवा सैन्धकक्षार के साथ गरम करने से मध्यइमलिकाम्ल प्राप्त होता है। द्विअरुण शालिकाम्ल को रजतउदौषिद के साथ प्रभावित करके यह संश्लेषित किया जा सकता है—

रु क उ क ओ ओ उ   क उ (ओ उ) क ओ ओ उ
| + २ र ओ उ = | + २ र रु
रु क उ क ओ ओ उ   क उ (ओ उ) क ओ ओ उ
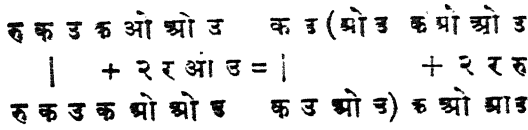
द्विअरुण शालिकाम्ल   मध्यइमलिकाम्ल

इस अम्ल का द्रवांक १४० श है और जल में यह अशक्ताम्ल की अपेक्षा अधिक घुलनशील है। यह भी दिग् प्रधान प्रकाश को किसी ओर नहीं मोड़ता है।

इमलिकाम्लों की अवकाश-समरूपता (Streoisomerism —पास्टूर नामक फ्रेञ्च रसायनज्ञ ने तीन प्रकार के इमलिकाम्लों के संगठन का भेद सर्वप्रथम प्रकट किया। उसने सैन्धक अमोनियम इमलेत का ०० श तापक्रम के लगभग स्फटिकीकरण किया। रवे बनाने पर उसे दो प्रकारके रवे प्राप्त हुए। दोनों प्रकार के रवे एक दूसरे के प्रतिबिम्ब थे। उसने सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा देख देख कर दोनों जातियों के रवों पृथक पृथक कर लिये। अम्ल के संसर्ग से दोनों प्रकार के लवण-रवों से उसने इमलिकाम्ल बनाया। परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि एक इमलिकाम्ल दक्षिण भ्रामक है तो दूसरा उत्तर भ्रामक इन दोनों प्रकार के अम्लोंके सम्मिश्रणसे जो अम्ल पास्टूरको मिला वह दिग्प्रधान प्रकाशको मोड़नेमें अशक्त था। पास्टूरने दक्षिण और उत्तर भ्रामक सशक्ताम्लोंको निम्न प्रकार चित्रित किया।
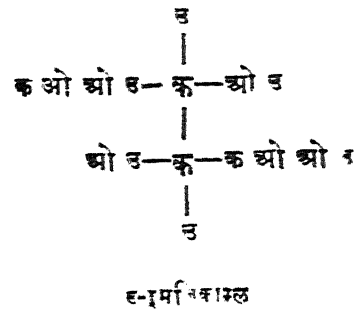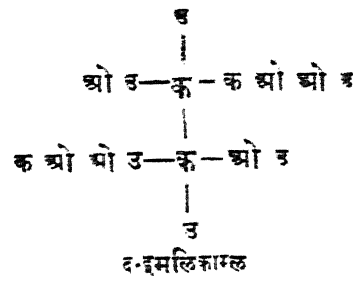
द-इमलिकाम्ल

द-इमलिकाम्ल

पास्टूरके सिद्धान्तानुसार दक्षिण और उत्तर इमलिकाम्लोंके सम-मिश्रणसे अंगूरिकाम्ल या अशक्ताम्ल मिल सकता है। स्फटिकीकरण द्वारा अशक्ताम्ल मेंसे उ-इमलिकाम्ल और द-इमलिकाम्ल पृथक् किये जा सकते हैं।

मध्य-इमलिकाम्लकी समस्याका पास्टूरने इस प्रकार समाधान किया। यह अम्ल दिग् प्रधान प्रकाशको मोड़नेमें अशक्त है अतः इस गुणमें तो यह अंगूरिकाम्ल अशक्ताम्लके समान है। पर दोनोंमें भेद यह है कि मध्य-इमलिकाम्लका स्फटिकीकरण करनेसे द-इमलिकाम्ल और उ-इमलिकाम्ल पृथक् नहीं किये जा सकते हैं इमलिकाम्लमें दो असममंगतिक कबन परमाणु हैं। अतः दोनों पर दिग्प्रधान प्रकाशका मुड़ना निर्भर है। यदि कहीं ऐसा हो कि एक असमसंगतिक कर्बनके कारण दिग् प्रधान प्रकाश दाहिनी ओर मुड़े और दूसरेके कारण बायीं ओर तो भी अशक्त—इमलिकाम्ल प्राप्त हो सकता है। वास्तवमें, मध्य इमलिकाम्लमें यही बात है। पास्टूरने इसे निम्न प्रकार चित्रित किया—
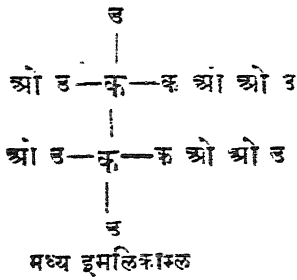
मध्य इमलिकाम्ल

इस चित्रको द-इमलिकाम्ल और उ-इमलिकाम्लके चित्रसे तुलना करनेपर भेद स्पष्ट हो जायगा द-इमलिकाम्लके चित्र पर विचार कीजिये। 'कवी 'ओ उ' से 'उ' होकर 'क ओ ओ उ' आनेका मार्ग उस दिशामें है जिसमें घड़ीकी सुइयाँ घूमती हैं, पर उ-इमलिकाम्ल में किसी 'ओ उ' से 'उ' होकर 'क ओ ओ उ' आनेमें घड़ीकी सुइयोंके घूमनेके विपरीत घूमना पड़ेगा। हम एक को 'घड़ी-अनुकूल' और दूसरे को 'घड़ी विपरीत' (anti clockwise) कह सकते हैं। मध्य इमलिकाम्लमें ऊपर वाले 'ओ उ' से 'उ होकर क ओ ओ उ' आनेमें हमें 'घड़ी अनुकूल' चलना पड़ेगा पर नीचेवाले 'ओ उ' से 'क ओ ओ उ' तक आनेमें 'घड़ी विपरीत' चलना पड़ेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि इसमें एक कर्बनका असमसंगतिक प्रभाव दूसरे कर्बनके असम संगतिक प्रभावसे सर्वथा विरुद्ध है इस प्रभावको हम अन्तर निष्करण (internal compensation) कह सकते हैं क्योंकि यौगिकके संगठनके अन्दर ही दो कर्बन ऐसे हैं जो एक दूसरे के प्रभावको क्षीण कर रहे हैं।

हम सशक्त इमलिकाम्ल (उ- और द-), अशक्त इमलिकाम्ल और मध्यइमलिकाम्लके दूसरी तरह भी सूचित कर सकते हैं। कल्पना कीजिये कि नीचेके चित्रमें दो असमसंगतिक कर्बन परमाणु हैं जिनमें इमलिकाम्लके उ, ओ उ और क ओ ओ उ मूलक, ख और ग से सूचित किये गये हैं:—
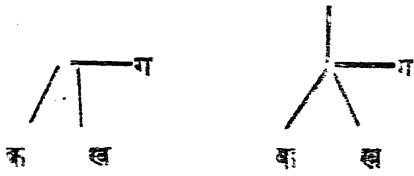
इन दोनों एक से चित्रों। एक दूसरे पर तीन प्रकार से रखा जा सकता है, जिससे सब इमलिकाम्लों का रूप स्पष्ट हो जायगा—
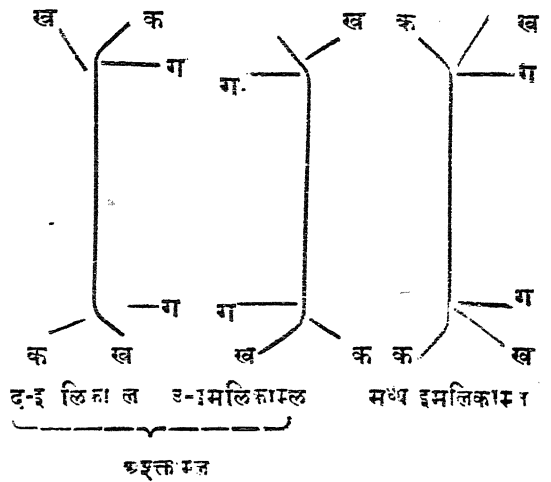
अशक्ताम्ल द-इमलिकाम्ल और उ-इमलिकाम्ल का सम-मिश्रण है। उ-इमलिकाम्ल और द-इमलिकाम्ल एक दूसरेके प्रतिबिम्ब हैं। अशक्ताम्ल की अशक्तता बाह्य निष्करण (external compensation) के कारण है इसीलिये ये साधारण प्रयोगों द्वारा दो सशक्ताम्लोंमें पृथक् किये जा सकते हैं।

बाह्य निष्करणवाले यौगिकोंको सशक्त-यौगिकमें पृथक् करनेकी तीन विधियाँ पास्टूर ने निकाली थीं—

(१) किसी निश्चित ताप-क्रमके नीचे यदि अशक्त यौगिकका स्फटिकीकरण किया जाय तो दोनों सशक्ताम्लोंके रवे पृथक् होंगे जिन्हें सूक्ष्म दर्शक यन्त्रकी सहायतासे पहचानकर अलग अलग किया जा सकता है।

(२) अशक्त अम्ल को यदि किसी सशक्त क्षार या भस्मसे संयुक्त कराया जाय तो एक प्रकारका लवण पहले रवादार बनेगा।

$$\underbrace{\text{उ अम्ल} + \text{द अम्ल}}_{\text{अशक्त अम्ल}} + \text{द-क्षार} =$$

$$\underbrace{\text{उ-अम्ल} + \text{द-क्षार}}_{\text{एक लवण}} + \underbrace{\text{द अम्ल} + \text{द-क्षार}}_{\text{दूसरा लवण}}$$

नीबूइकाम्ल का संश्लेषण—मधुरोल को मिरकाम्लमें घोल कर गरम करके उदहरिकाम्ल गैस प्रवाहित करनेसे मधुरोलद्विहरउदरिन प्राप्त होता है जैसा कि पहले कहा जा चुका है। मधुरोलद्विहरउदरिनका ओषदीकरण करनेसे द्विहरिरकीतोन प्राप्त होता है। इसको उदश्यामिकाम्लके प्रभावसे श्यामउदरिनमें परिणत कर सकते हैं जिसके उदविश्लेषण से द्विहर-क-उदौष नवनीतिकाम्ल मिल जाता है। इस अम्ल पर पांशुजश्यामिद का प्रभाव डालनेसे द्विश्याम-क-उदौषनवनीतिकाम्ल मिलेगा इसके उदविश्लेषण करनेसे नीबूइकाम्ल मिल जायगा।

कउ₂ ओउ   कउ₂ ह
| |
क उ ओउ → कउ (ओउ)—>
| उह | ओ₂
कउ₂ ओउ   कउ₂ ह
मधुरोल   मधुरोलद्विहरउदरिन

कउ₂ ह   कउ₂ ह
| |
क ओ   —>   क (ओउ) कनो
| उकनो |
कउ₂ ह   कउ₂ ह
द्विहरिरकीतोन

कउ₂ ह
|
—> क (ओउ) कओ ओउ —>
उ₂ ओ | पकनो
कउ₂ ह
द्विहर-क-उदौष
नवनीतिकाम्ल

कउ₂ कनो
|
क (ओउ) कओ ओउ —>
| जल
कउ₂ कनो
द्विश्याम-क-उदौष
नवनीतिकाम्ल

कउ₂ कओ ओउ
|
क (ओउ) कओ ओउ
|
कउ₂ कओ ओउ
नीबूइकाम्ल

असम्पृक्त द्विकार्बसिमिकाम्ल
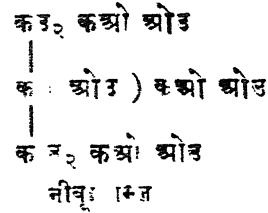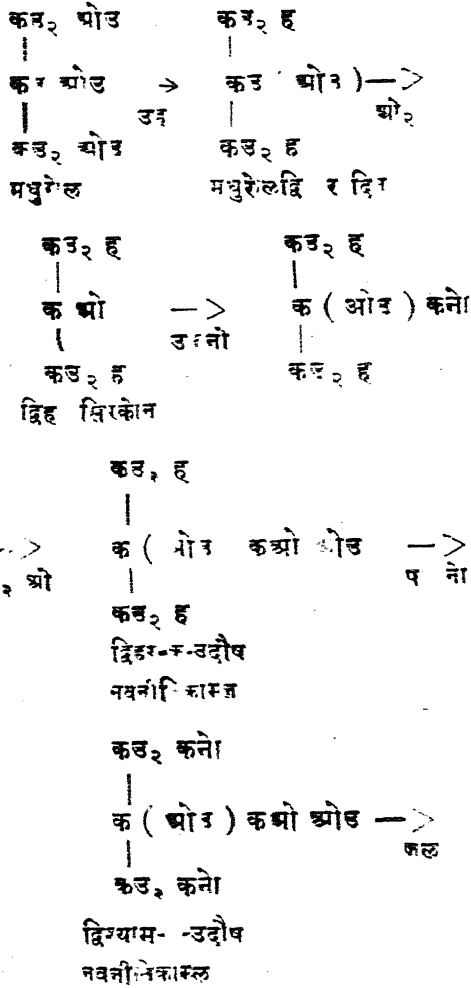
सेबजिकाम्ल (maleic) **और वामिकाम्ल** (fumaric)—यह अभी कहा जा चुका है कि जब सेबिकाम्लको गरम करते हैं तो दो समरूपी अम्ल प्राप्त होते हैं। इन्हें सेबजिकाम्ल और वामिकाम्ल कहते हैं। यदि एक भभके में सेबिकाम्ल गरम किया जाय तो सेबजिकाम्ल अनाद्रिद के रूपमें भभकेकी गर्दनमें ऊर्ध्वपतित होकर आजायगा और वामिकाम्ल भभकेमें ही रह जायगा।

कउ (ओउ) कओ ओउ =
|
कउ₂ कओ ओउ
सेबिकाम्ल

कउ कओ ओउ
|| + उ₂ ओ
कउ कओ ओउ

सेबजिकाम्ल रवेदार पदार्थ है। यह जल में बहुत घुलनशील है। इस तापक्रम से अधिक गरम करने पर यह अनाद्रिद में परिणत हो जाता है—

क उ क ओ ओ उ   क उ क ओ
|| + || >ओ + उ₂ ओ
क उ क ओ ओ उ   क उ क ओ
सेबजिकाम्ल   सेबजिक
                अनाद्रिद
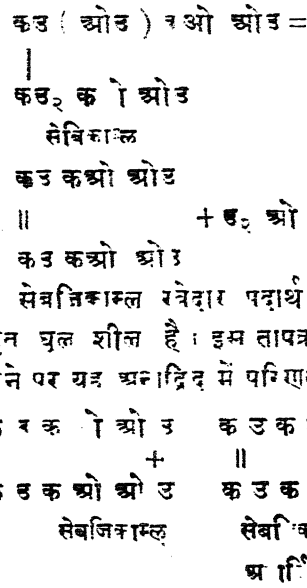
वामिकाम्ल जलमें बहुत कम घुलनशील है। गरम करने पर यह पिघलता नहीं है और ऊर्ध्वपतित होकर सेबजिकाम्ल में परिणत होजाता है। इस प्रकार दोनोंके गुणों में थोड़ा सा भेद है। वामिकाम्ल अनाद्रिद देनेमें असमर्थ है। अतः दोनों अम्लों का निम्नप्रकार सूचित किया जा सकता है—

कउकओओउ	कउकओओउ
‖	‖
कउकओओउ	कओओउकउ
सेवजिकाम्ल	वासिकाम्ल

सेवजिकाम्ल में दोनों कर्बोषीलमूल द्विबन्ध के एक ही ओर स्थित किये गये है। वासिकाम्ल में दोनों कर्बोषील एक दूसरे से दूर दूर हैं। अत: ये अनद्रिद नही दे सकते हैं। द्विबन्ध के कारण दोनों कर्बन परमाणु ऐसे जकड़ गये हैं कि वासिकाम्ल का एक कर्बोषील दूसरे के निकट आने में असमर्थ है। ली बेल और वान्ट हौफ ने इस प्रकार की समरूपता का नाम चित्र समरूपता (Geometric isomerism) दिया है। दो प्रकार के यौगिक निम्न तरह से सूचित किये जा सकते है —

च—क—छ	च—क—छ
‖	‖
च—क—छ	छ—क—च

वासिकाम्ल और सेवजिकाम्ल, दोनों अवकरण करने से रालिकाम्ल देते हैं दोनों उदब्रुहिकाम्ल के साथ एक-अरुण रालिकाम्ल देते है —

कउकओओउ		कउ₂कओओउ
‖	+ उरु।	
कउकओओउ		कउरुकओओउ
		एक-अरुण-रालिकाम्ल

जल के साथ गरम करनेसे ये दोनों सेबिकाम्ल में परिणत हो जाते हैं। इन सब गुणों में दोनों समान हैं।

हवा

(ले० श्रीरमनाथ प्रसाद कोहली, बी० एस-सी)

(गतांक से आगे)

हवाकी गति

कुछ कालसे हम लोग ठीक ठीक नाप (Absolute measurements) लेने को बहुत प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु हमारे उद्योगके विपरीतही हम देखते हैं, कि प्रत्येक वस्तु दूसरे पर निर्भर है। यदि गाड़ी चलती है और हम उस पर बैठे हों और बाहरकी कोई वस्तु न देख सकते हों तो वह हमको स्थायी ज्ञात होगी। पृथ्वी प्रतिदिन घूमती है, किन्तु हम इसका अनुभव नहीं कर सकते हम किसी वस्तु को तौलते हैं तो पहले वजन की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार प्रत्येक नाप के लिये एक इकाई की आवश्यकता पड़ती हैं। प्रायः प्रत्येक मनुष्य कहता है कि आज हवा तेज है, परसों आंधी चली थी, किन्तु इसका अभिप्राय ? हवा किस वेगसे जा रही है यह जानना तो आवश्यक ही है। कितनी गति होनी चाहिये कि हम आंधी कह सकें, या कितनी मन्द हवा हो कि हम उसे बयारि कह सकें। सन् १८०५ ई० में सर फ्रान्सिस व्यूफर्ट ने एक माप बनायी जिससे कि हवा की शक्ति का अनुभव किया जा सके। किन्तु इससे हवा की गतिके बारेमें कुछ भी पता न चला। नीचे लिखी हुई सारिणी से पता चल जायेगा कि व्यूफर्ट माप और निरपेक्ष गति में क्या समानता है।

व्यूफर्टस्केल के नम्बर	हवा	गति, (मीलकी घंटेमें
०	निश्चल (Calm)	२ से कम
१—३	Light Breeze (बयार)	२ से १२ तक
४—५	Moderate wind मध्यम पवन	१३ से २३ तक
६—७	Strong wind तेज हवा	२४ से ३७ तक
८—९	Gale बहुत तेज हवा	३८ से ५५ तक
१०—११	Storm आँधी	५६ से ७५ तक
१२—	Hurriccaine तूफान	७५ से अधिक

व्यूफर्ट के दिनोंमें हवाकी गति नापने का कोई अच्छा यन्त्र नहीं था। आजकल तो बहुतसे यन्त्र

चले हैं जिनसे गति ठीक ठीक नापी जा सकती है। ज्यों ज्यों ये यन्त्र काम में लाये जाने लगे त्यों त्यों आश्चर्य जनक और मनोरञ्जक बातें ज्ञात होना प्रारम्भ हो गईं। यंत्रों द्वारा यह ज्ञान हुआ कि पृथ्वी की सतहपर गतिमें बड़ा अन्तर पड़ता है।

इसका पहले कौन विश्वास करता कि एक क्षण हवा पूर्व की ओर जा रही है और दूसरे ही क्षण में हवा पश्चिम की ओर उसी गति से चलने लगी। या यह कि दो यन्त्र जो केवल ५० फीट की दूरी पर हैं अलग अलग दो जवाब दे रहे हैं, यद्यपि औसत दोनों जगह पर एक ही है। अर्थात् यदि घंटे भर की हवाका औसत लिया जावे तो दोनों स्थानोंपर एक ही गति मिलेगी किन्तु किसी एक क्षणमें दोनों जगह बिलकुल विभिन्नता होना असम्भव नहीं है। बहुतसे कारणोंसे ऐसा होता है। एक खास जगह की स्थिति और उसके चहुँओर की अवस्था पर बहुत कुछ निर्भर है। उस स्थान की ऊँचाईसे भी गतिमें अन्तर पड़ जाता है। और फिर निकटमें स्थित पहाड़, मकान, बुर्ज, घरेरों, और वृक्षों आदिके कारण हवाकी गति पर प्रभाव पड़ता है।

यहाँ पर दिये हुये नक्शोंसे भी इस क्षणिक अन्तर का पता चल जावेगा। किंग्स कालेज प्रयोगशाला एबरडीन (Kings College Observatory, Aberdeen) में किसी एक दिन हवाकी गति और समयका बदलना दिखलाया गया है। यह यंत्र ऐसा था जिससे सदा ही गतिका नाप होता रहता है। इससे ज्ञात हो जावेगा कि एक क्षणमें भी कभी कभी हवामें कितना अन्तर हो सकता है। इसी कारण गतिमापक यन्त्र मकान या वृक्ष आदिसे दूर ऊँचेपर रखने चाहिये।
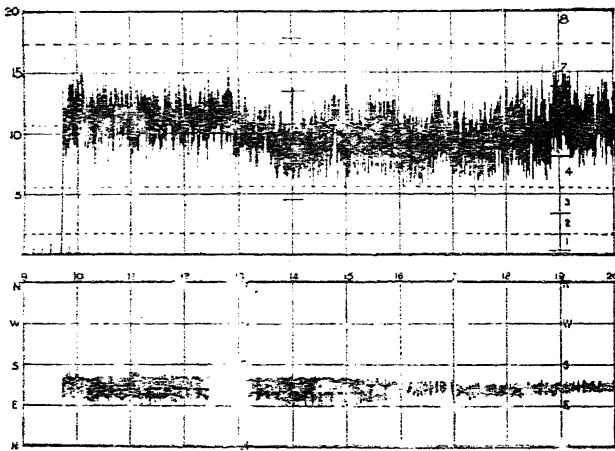
हवाकी गति अधिकतर तापक्रम पर निर्भर है। सदा लिये जाने वाले रेकर्डसे (Continuous Records) यह पता चलता है कि दिन रातमें जो हवाकी गतिमें अन्तर पड़ता है वह तापक्रमके अनुसारही। दिनमें जब सबसे अधिक गर्मी पड़ती है तब हवा भी तेज होजाती है। १२—और २ बजे दिनके मध्यमें हवाकी गति प्रायः दिन भरमें सबसे अधिक होती है। और ऋतुके साथ साथ भी कुछ ऐसाही अन्तर पाया जाता है। गर्मीमें हवा बहुतही तेज चलती है किन्तु यह न समझना चाहियेकि इसके विपरीत कभी होताही नहीं। असलमें यह सब औसतका हाल लिखा है। किसी एक दिन और समयमें तो कितनेही कारण हो जाते हैं, और कितनीही शक्तियाँ काम करती हैं।

अब हम गति मापक यन्त्रोंका वर्णन करेंगे। इनको दो विभागोंमें बांट सकते हैं (१) एकसे तो गतिही नापते हैं, और (२) दूसरेसे दबावका पता चलता है किन्तु एकका दूसरेसे बहुत सम्बन्ध है। प्रत्येक दूसरेके बारेमें खबर दे सकता है। जैसे जब दबाव अधिक होगी तो गतिभी अधिकही होगी। किन्तु गति नापने वालोंको भी हम दो भागोमें बांट सकते हैं (१) जिनमेंवायु प्रदर्शक (Wind cock) की आवश्यकता होती हैं। और (२) जिनमें इसकी आवश्यकता नहीं होती।

वायु प्रदर्शक से हवाका दिशाका पता चल जाता है। यह किसी धातुका हलका टुकड़ा होता है जो पहले चौखूंटा होता है फिर नोकदार हो जाता है। यह एक लम्बे डंडेमें लगा रहता है जो चारों तरफ घूम सकता है। यह डंडा एक नलीमें होता है। इसके नीचे एक सुई लगी रहती है

जो एक गोले पर लगा रहता है जो एक गोले पर दिशा बताता है। जिधरको हवा जाती है उधर इसकी
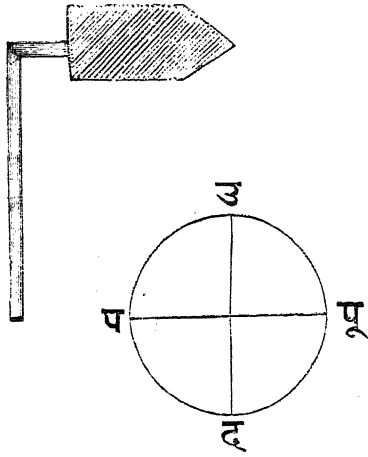
नोक रहती है। यदि नीचे कोई यन्त्र लगा दिया जावे तब अविच्छिन्न लेखा Continuous record) लिया जा सकता है।

रोबिन्सन अनीमोमीटरका आविष्कार १८४६ई० में डाक्टर थामस रोम्ने रोबिन्सनने किया था। यह प्रायः बहुतही प्रसिद्ध है और हर जगह इसका अधिकतर प्रयोग होता है। इसमें किसी वात सूचक (wind vane) की आवश्यक्ता नहीं होती। इसमें दो भुजायें जो आपसमें समकोण बनाती हैं और पड़ी (Horizontal) होती हैं। इन दोनोंके प्रत्येक किनारे पर एक एक गोलार्ध लगा रहता है। यह प्यालेकी तरह रहता है, और खड़ा लगाया जाता है। जहाँ यह भुजाऐं मिलती हैं, वहाँ पर एक सीधा डंडासा लगा देते हैं जिसके चारों ओर प्याले घूमते हैं। एक नियत समयमें यह धुरी जितने पूरे चक्कर करती है वे गिन लिये जाते हैं। यह बहुतसे पहियोंसे होजाता है। इस प्रकार गतिका पता चल जाता है। ये प्याले बराबर दूरी पर रक्खे जाते हैं जिसमें किसी पर दूसरोंसे अधिक प्रभाव न पड़े और शक्ति सबको ठीक ठीक मिले। हवाके सामने किसी एक न एक प्यालेका मुँह अवश्यही रहेगा और दूसरेका पेंदा। पहले प्याले पर हवाका प्रभाव अधिक होगा और इसीसे घूमना प्रारम्भ होगा। और चूँकि सदा एक प्यालेका मुँह हवाकी ओर होगा, इसलिये जब तक हवा चलेगी ये घूमतेही रहेंगे। जैसेही एक प्याला सामने आया वैसेही शक्ति बढ़ जाती है।

इस गतिमापक यंत्रकी दो बड़ी खूबियां यह हैं;

(१) इसकी सरलता, और (२) किसीवायु प्रदर्शक (विण्ड काक) की अनावश्यक्ता। किन्तु यह केवल कुछ समय की औसत गति बता सक्ती है। इससे प्रतिक्षणकी गति का पता नहीं चल सक्ता। यदि बीचमें कभी क्षण भरके लिये यकायक गति बढ़ गई तो यह यंत्र उसको बताही नहीं सक्ता। डाक्टर रोबिन्सनने तो कहा था कि प्याले सदा हवाकी गतिकी तिहाई गतिसे घूमते हैं, किन्तु बादमें पता चलाकि यह सत्यतः ठीक नहीं है। प्यालोंकी गति उनके गोलाई तथा भुजाओंकी लम्बाई पर भी निर्भर है। इनकी गति हवासे ⅓ और ½ के बीचमें कुछभी हो सक्ती है। प्रत्येक यंत्रका किसी आदर्श के साथ मिलान करके यह पता लगा लिया जाता है। प्रथम कार्य करने वालोंको इससे बहुत धोखा हुआ और वे अशुद्ध अन्त पर पहुँचे। यह आश्चर्यजनकतो अवश्य मालुम होगा, किन्तु इस मूलके कारण कहीं कहीं छपे हुये लेखाओं में ५० फी सदी की त्रुटि रह गई।

दूसरे प्रकारके यंत्र हवासे चलने वाली चक्की के आधार पर हैं। रोबिन्सन यंत्रमें धुरी खड़ी (vertical) है, किन्तु इन यन्त्रोंमेंपड़ी (horizontal) रहती है। और उसको हवाके समानान्तर भी होना चाहिये। हवातो अपनी दिशा प्रायः प्रतिक्षणही बदला करती है इस कारणसे धुरी को उसके समानान्तर रखनेके लिये एक वात सूचक (wind uane) की आवश्यकता पड़ती है। अगर वात सूचक न लगाया जावे तो कोई और उपाय करना होगा। यह यंत्र ऐसे स्थान पर बहुत उपयोगी होते हैं जहाँ हवा की दिशामें अन्तर नहीं

होता। उदाहरणके लिये खानोंको लेलीजिये। इसमें हवा जानेके लिये एक मार्ग बनाया जाता है। हवा का एक निश्चित गतिसे जाना बहुत आवश्यक है। वहाँ पर मार्ग तो बनाही है और दिशामें अन्तर नहीं होता इसलिये ऐसे एनीमोमीटर लगाये जासक्ते हैं।

कुछ एनीमोमीटर केवल हवाका दबावही नापते हैं और उसीसे गतिका पता चल जाता है। इनको भी दो भागोंमें बाँटा जासक्ता है। एकतो प्लेट (plate) वाले और दूसरे जिनमें नली का प्रयोग होता है। पहले विभागमें कितनाही फेर फार होता रहता है और उसका कोई निश्चित रूप नहीं है। सबसे सरलमें एक सपाट प्लेट होती है, जो वर्गाकार अथवा गोलाकार होती है। एक वातसूचक लगा रहता है जो इनको सदा हवाके सामने सामने सीधा रखता है है, जिससे हवाका दबाव सब प्लेट पर पड़े। यह दबाव को एक कमानी रोकती है। कमानी का घुमाव ही हवाके दबावको नापता है। जितना अधिक दबाव होगा, उतनीही अधिक रूपकी विकृति (Distortion) होगी। या तो यह एक चिह्न पट पड़ा जासक्ता है, या एक कलमसे कागज़ पर लिखा जा सक्ता है घटीयत्रके प्रयोगसे एक कलम लिखती है और नीचे रक्खे कागज़ को छूती है। यह कागज़ बराबर चला करता है। जिस क्षणमें जहाँ पर कलम रही वहाँ निशान पड़ जाता है और प्रतिक्षणकी हवाकी गति का पता चल जाता है। यह बहुत काल तक प्रयोगमें थे और बनानेमें त्रुटिहो जानेके कारण बहुतसी अशुद्ध बातों पर इन्हींके कारण विश्वास किया गया इसके कारणये हैं कि (१) यंत्र केवल स्थायी दबावही नाप सक्ता है। यदि कभी झोंका आया तो प्लेट अपनेही गति के कारण उस स्थानसे अधिक पीछे चली जावेगी जावेगी जहाँकि उसको ठहरना चाहिये। इससे वास्तविक दबावसे कुछ अधिक नापा जाता है।

(२) और कलम कितनेही कमानी और चेन द्वारा प्लेटसे मिली है. जिनसे दबावमें जो अन्तर होता है उससे अधिक मालुम होता है। इन दोनों कारणोंसे वास्तविक दबावसे अधिकही नापा जाता है कभी कभी तो दुगनेकी गलती हो जाती है।

और भी बहुतसे यंत्र कुछ फेरफार करके बनाये गये हैं। प्रायः एक गोलसे ठीक काम चलेगा। क्योंकि सब और एकही रूप होनेके कारण इसमें मौसम प्रदर्शक (Weather cock) की आवश्यक्ता नहीं होगी। किसी ओरसे हवा चले असर बराबरही होगा। इसके उपलक्षमें एक छोटा हलका गोला ३० या ४० फीट लम्बे सीनेवाले सूतके धागेमें बाँधकर एक पतंगमें लटका दिया गया और पतंगके पासकी हवाकी गतिका पता धागेके तनाव से लग जाता है। इस प्रकारसे संतोषजनक बातें ज्ञात हुई हैं।

लिंडका गतिमापक यंत्र—Lind's Anemometer—इसमें केवल एक चूल्हाकार नली होता है जिसकी एक भुजा इसप्रकार मुड़ी रहती है कि वह पड़ी रहे और हवा का सामना कर सके। जैसे ही हवा उससे टकराती है, उसके भीतरकी हवा पर दबाव पड़ता है। इस प्रकार एक भुजाका दबाव दूसरेसे अधिक हो जाता है। यह नाप लिया जाता है। जितनी तेज हवाकी गति होगी उतना ही अधिक दबावमें अन्तर होगा। यदि उस भुजाको सीधी रक्खा जावे और उसके मुखको पड़ा रक्खा जावे तो ज्यों ज्यों हवा चलेगी इस भुजाकी वायुका दबाव कम होता जावेगा। किन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हैं क्योंकि वह मुख हवाके बिल्कुल ही समानन्तर होना चाहिये। यदि तनिक भी अन्तर हुआ तो जवाबमें बहुत गलती होने की सम्भावना रहती है। पहले ऐसा ही प्रयोग होता था, इसीसे आधुनिक चूल्हाकार नलीके एनीमोमीटरकी उत्पत्ति हुई है।

इस यंत्रमें दोनों बातोंसे लाभ उठाया जाता है। एक भुजाका मुख तो हवाकी ओर रहता है और दूसरे भुजाका मुखबन्द रहता है। इसमें छेद बने रहते हैं और हवा इन्हीं छेदों परसे होकर चली जाती है। इसप्रकार एक भुजामें दबाव अधिक होता है और दूसरेमें कम। दोनों मिलकर एक भुजाके दबाव और दूसरी भुजाके दबावमें अधिक अन्तर हो जाता है और बहुत मन्द

हवाकी गति भी नापी जा सकती है। वास्तवमें यदि हवा वात सूचक को चला सकती है तो उसकी गति नापा भी जा सकती है। इसमें एक बात सूचक अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि एक मुख तो सदा हवाके सामने रहनी ही चाहिये।

इसमें एक बड़ा लाभ यह है कि ये दोनों भुजायें तो कहीं एक ऊंचे स्थान पर रख दी जावें, और जिस भागसे पढ़ना होगा और नापना होगा उसके किसी एक ऐसे स्थान पर रख लिया जावे जहां पढ़नेमें सुभीता हो। दूसरी बात यह है कि इसमें न तेल देने की आवश्यकता है न कुछ बिगड़नेका डर। एक बार ठीक किया हुआ यंत्र, कई वर्ष तक ठीक काम दे सकता है।

प्रायः यह विचार किया जा सकता है कि एक ही भुजाके दबावमें अन्तर करनेसे काम चल जावेगा। अर्थात् या तो दबावका बढ़ना ही नाप लिया जावे या उसका घटना नाप लिया जावे इसमें नलीकी एक भुजा वायुमण्डलके साथ मिली होगी। किन्तु ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि यदि यह भुजा ऐसे कमरेमें है जहाँका दबाव बढ़ता घटता है, तो हवाकी गतिके नापमें भी अन्तर हो जावेगा। वास्तवमें दबावमें जो अन्तर हवाके कारण होता है वह भी थोड़ा ही होता है, इसलिये तनिक भी अन्तर जो दूसरे कारणोंसे होगा वह गड़बड़ मचा देगा। यदि एक कमरेमें ऐसा यंत्र रक्खा जावे और उसके सब द्वार और खिड़कियाँ बन्द कर दी जावें और फिर कुछ कागज उस कमरेके एक कोनेमें जलाया जावे तो यंत्रसे ऐसा पता चलेगा कि दस मील फी घंटेकी हवा चल रही है। इस कारणसे यह विधान तो प्रयोग नहीं लाया जा सकता और दोनों भुजायें उसी प्रकार लगाई जाती हैं जैसा कि लिखा जा चुका है। इस यंत्रमें हम दबावका अन्तर नापते हैं और उसीसे गतिका पता चलाते हैं। दोनोंमें क्या सम्बन्ध है, इसका पता ठीक ठीक नहीं चला है। कुछ लोगों ने यह सूत्र दिया है:—

$$\text{दबाव} = 0\cdot 005\ (\text{गति})^2$$

जहाँ दबाव पौंड फी वर्गफुट में नापा जाता है और गति माइल फी घंटे में। यह सूत्र १८वीं शताब्दिके अन्तमें दिया गया था और महीन अक्षरोंमें साथ ही यह भी लिखा था कि इस पर बहुत कम भरोसा किया जा सकता है। पुस्तक छापनेवालों ने इसको तो देखा नहीं और सूत्र छापते गये इस प्रकार यह फैल गया किन्तु वास्तवमें इसके बाद जो खोज हुई उससे यह बिलकुल अशुद्ध साबित हुआ और ०·००५ की जगह ०·००३ ठीक माना जाता है। यह भी इसी समय शुद्ध होता है जब वायुमण्डलमें कुछ गड़बड़ न होवे। जब घनत्व साधारण होवे, और जब हवा चपटी सतह पर टकराती हो। इस सतह की लम्बाई चौड़ाईका असर तो दबाव पर अवश्य ही पड़ेगा किन्तु दबाव बिलकुल इस पर निर्भर नहीं है। ऐसे स्थानोंमें जहाँ घनत्व मामूली औसत नहीं है, ठीक गति जानने के लिये प्रायः गतिमें कुछ जोड़ना पड़ता है। यदि एनीमामीटर समुद्रकी सतहसे १००० फीट ऊपर हो तो जो नापनेसे आवे उसमें २ फीसदी और जोड़ना चाहिये और फिर प्रत्येक १००० फीटके लिये इसी प्रकार २ फी सदी बढ़ाना चाहिये।

तप्ततार गतिमापक (Hot-wire Anemometry) कुछ ही काल से एक गरम तार भी गति नापनेके काम लाया गया है। पहले पहल सन् १९०९ में कनेली (Kennelly) लिखा था कि इसका प्रयोग हो सक्ता है। ४ वर्षोंके उपरान्त किङ्ग ने इसका प्रयोग किया और १९१४ में यह प्रमाणित हो गया कि इसके द्वारा गतिका पता बहुत ही उत्तमतासे लग सकता है। एक तार यदि गरम करके हवामें रख दिया जावे तो वह बहुत जल्द ठंडी होवेगा। जितनी ही तेज हवा होगी उतनी ही जल्दी वह तार ठंडा होवेगा। इस रीतिसे गतिका पता लगाया जाता है।

एक परौप्यम् की तार ली जाती है, जिसका व्यास बहुत ही कम होता है। प्रायः ८० स. म. व्यास का तारको विद्युत् धारा से इतना गर्म करते हैं कि इसका तापक्रम साधारण तापक्रमसे ७० अधिक हो। फिर इसकी बाधा को व्हीटस्टन ब्रिज द्वारा नापा

जाता है जैसे हवा लगती है, उसका तापक्रम कम होता है, और ब्रिज का समाबिन्दु गड़बड़ हो जाता है। फिर तारको उतना ही गर्म करनेके लिये धारा को बढ़ाना पड़ता है। इसी धारा को नापनेसे गतिका पता चल जाता है क्योंकि यह गति के वर्गमूल पर निर्भर है इसका प्रयोग करना बहुत कठिन है, और बहुत सी बातोंका ध्यान रखना पड़ता है। इसके द्वारा बहुत धीमी हवाकी गति भी नापी जाती है और अविच्छिन्न लेखा भी लिये जा सकते हैं।

समाप्त करनेके पहले मैं उसका उल्लेख करना चाहता हूँ जो गत २५ वर्षों में वायुमण्डलके बहुत ऊपरी भागमें हुआ है। आजकल लोग बड़ी शीघ्रताके साथ ऊपर उड़े जारहे हैं। बहुत दूर दूर का पता चल गया है। १९ वीं शताब्दीमें तो पर्वत शिखर पर तथा गुब्बारोंमें बहुत से निरीक्षण किये गये थे। किन्तु यह सब पूर्णतया निरीक्षण शुद्ध नहीं माने जा सक्ते और न इन पर निर्भर रहनेसे ही काम चल सक्ता है। इनमें एक खराबी यह थी कि तापमापक को खुली हवा नहीं लगती थी। गत शताब्दीके अन्तमें खोज फिरसे हुई। इनमें तापमापक में हवा लगती थी, जिससे किसी स्थानके तापक्रमका ठीक ठाक पता लग गया है।

सन् १८९६ में एक अन्तर्जातीय कमीशन बैठा, जिसने इस कार्यको प्रारम्भ कराया किन्तु उत्तम उन्नति केवल १९०६ में ही हुई जबकि माउण्ट वैदर में खास तरहसे गुब्बारोंही द्वारा काम होने लगा। सबसे ऊँचे केवल पाइलट गुब्बारे (Pilot Balloons) ही उड़ सके हैं, और उनके द्वारा २३ मील तकका पता लगा है जहाँ तक कि मनुष्य कभी पहुँचनेका विचारही नहीं कर सक्ता क्योंकि इसके पहलेही श्वास चलना बन्द होजायगा।

एक गुब्बारामें उदजन गैस भरी जाती है, और उसको छोड़ दिया जाता है। जैसे जैसे वह ऊपर उठता जाता है, उसको दुर्बीन द्वारा देखते जाते हैं। इस प्रकार उसके मार्गका पता चल जाता है और इससे हवाकी गति आदिका भी पता चलता है। इस तरह यह मालूम होजाता है कि हवा ऊपर किस प्रकार बदलती जाती है।

एक बार देखा गयाकि ज्यों ज्यों गुब्बारा ऊपर जाता था दक्षिणी हवाकी गति मन्द पड़ती जाती थी यहाँ तककि कुछ ऊपर जानेके बाद दक्षिणी हवाका नामभी नहीं था। और एक जगह देखा गया कि पृथ्वी पर पूर्वी हवा चल रही थी, किन्तु ऊपर उस हवाकी गति बहुत मन्द होजाती थी। बहुत ऊपर जाने पर यह हवातो बन्द होगई, और एक पश्चिमी हवा चलने लगी। जैसे जैसे ऊपर गुब्बारा उठता है, इस हवाका वेग बढ़ताही जाता है। यही वह हवा है जो संसार भरमें पश्चिमसे पूर्वकी ओर चलती है और जिसका उल्लेख किया जा चुका है। बहुतसी आंतरिक्षिक घटनायें इस पर निर्भर हैं।

अब रहा तापक्रमका अन्तर। यदि हम ११०० गज ऊपर जावेंगे तापक्रममें ५ का अन्तर होगा। पहले पहल हैम (Ham) ने यह लिखा था।

कुछ काल पहले जो निरीक्षण हुये हैं उनके हिसाबसे तो प्रत्येक ११०० गजके लिये तापक्रम में ४° से ६° तक कमी होसक्ती है इसके औसत में और ५° में अन्तर नहीं है। किन्तु तापक्रममें जो अन्तर होता है वह ऋतु परभी निर्भर होता है। गर्मी में ११०० गज ऊपर जानेसे तापक्रममें कहीं अधिक कमी होगी। और जाड़ेके दिनोंमें उतना अन्तर नहीं होगा।

अब हम बहुतही ऊपरका कुछ हाल बतलावेंगे जिसमें अधिकतर पता गणित द्वाराही लग सका है। नीचे जो जो बातें देखनेमें आती हैं, उन्हींके द्वारा ऊपरकी बातोंका विचार किया जाता है।

पृथ्वीके समीपमें वायुमण्डलमें नोषजन ⅘ हिस्सा है और ओषजन ⅕ हिस्सा। कुछ थोड़ी और गैसें भी हैं—और जलवाष्प भी है। १० मीलके उपरान्त प्रायः जलवाष्प समाप्त हो जाती है। किन्तु १४ मील तकके नोषजन और ओषजन में कुछ अन्तर नहीं होता, उसके उपरान्त यह कम होते जाते हैं। इनके स्थान पर उदजन

और हिमजन बढ़ते जाते हैं जैसे पहले लिखा जा चुका है—प्रायः १६ मीलके लगभगसे समतापिक का प्रदेश प्रारम्भ होजाता है बहुत ऊपर (२०० मीलके लगभग) केवल उदजन और हिमजन ही बचते हैं।
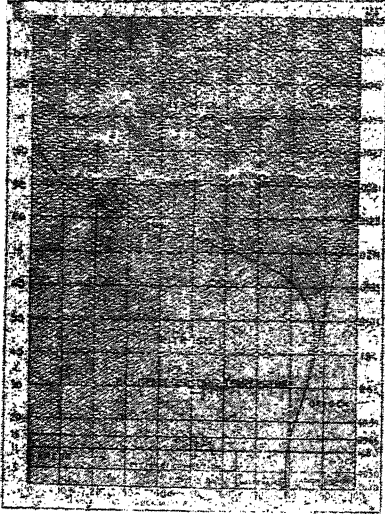
जो वक्ररेखा यहाँ पर दिखाई गई है उससे यह बात बड़ी सरलतासे समझमें आजावेगी। पहले नोषजन और ओषजन की रेखायें साथ साथ चलती हैं—फिर अलग होजाती हैं और अन्तमें समाप्त होजाती हैं। इससे ज्ञात होगाकि नोषजन अति शीघ्रता पूर्वक कम होता है। और ऊपर उसका और ओषजन की निष्पत्ति ४ : १ से कम होता है। इस नक्शेसे यहभी पता चल जावेगाकि दबाव और ऊँचाईमें क्या सम्बन्ध है—वह किस प्रकार घटता जाता है।

यह सब बातें कितनी कौतूहल-बर्धक और आश्चर्यजनक हैं। इनसे अज्ञात लोकका बहुत कुछ पता चला है और अभी बहुत कुछ मालुम होनेकी सम्भावनाभी है।

यद्यपि अज्ञात लोकमें चलनेके लिये मार्ग बन गया है किन्तु अभीतक केवल थोड़ेसे उत्साही जनोंका ही पदार्पण हुआ है। कुछही ऐसे लोग हैं जो इनसे सहानुभूति रखते हैं। यदि हम इसपर प्रतिदिन विचार करेंगे, तो हमको प्रकृतिके आश्चर्यजनक और छिपे हुये नियमोंका पता लगेगा।

कविता और विज्ञान

(ले० श्री० सुदक्षिणा देवी)

वर्तमान समयमें जबकि दिन प्रतिदिन नये नये आविष्कार हो रहे हैं और नानाप्रकारके विचार सुननेमें आते हैं, यदि कविता और विज्ञानमें कुछ विरोध दिखाई पड़े तो कुछ आश्चर्यका विषय नहीं है परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि इन दोनोंमें विरोध है। कविता और विज्ञान परस्पर अति सहायक हैं।

कविता वह वस्तु है जिसको कवि अपने मनोवेग और कल्पना द्वारा बनाता है। कवि अपनी कल्पना द्वारा ही हमारे सुख दुःख आदिका चित्र अपनी कवितामें इसप्रकार खींचता है कि पढ़नेवालेका मन उस तरफ आकर्षित हो जाता है किसी वस्तुकी सुन्दरता और मधुरता तथा कुरूपताका अनुभव हमें कवितासे ही ज्ञात होता है। वहीं पर हमको इसप्रकार की सामग्री प्राप्त होती है और कहीं नहीं।

वैज्ञानिक मनुष्य तो सर्वदा प्राकृतिक तत्वोंकी खोज किया करते हैं। वह प्रतिदिन इसी पर विचार करता है कि अमुक वस्तुका निर्माण कौन कौनसे कारणोंसे हुआ और ऐसा होनेमें कितना समय व्यतीत हुआ है। वह कई वस्तुओंका मिश्रण करके उनके परिणामके ऊपर विचार करता है।

जब हम विज्ञानका अध्ययन करते हैं तब हम प्राकृतिक घटनाओंके रूप, रंग, आकार आदि और जिस कारणसे उसका आविर्भाव हुआ है, इन्हीं पर विचार करते हैं। जब हम इस सब विषयोंका यथार्थ

ज्ञान प्राप्त करलेते हैं तब हमारे मनमें उनकी सुन्दरता के जो भाव जाग्रत होते हैं उनको हम कविताके रूपमें प्रदर्शित करते हैं। इससे यह पता लगता है कि कविता और विज्ञानमें एक प्रकारका सम्बन्ध है।

वैज्ञानिक मनुष्य संसारमें जितनी खोज करते हैं और जितने नये विचार उत्पन्न होते हैं उन सबका प्रभाव कविके ऊपर अवश्य पड़ता है। यह सब उसके आवश्यक और सहकारी होते हैं। कवि उन सभी बातोंको अपनी कवितामें स्थान देनेका प्रयत्न करता है परन्तु यह नहीं कि विज्ञानकी भाषामें कवि उसका निर्माण करता है किन्तु वह कुछ वैज्ञानिक चिह्नोंको ग्रहण करके अपनी कल्पना द्वारा उसको अन्य ही रूप दे देता है सारांश यह है कि चाहे कवि पर उन बातों का भला या बुरा जो कुछ भी प्रभाव पड़े यह उन सब पर ध्यान देगा और किसी न किसी और सूक्ष्मसे सूक्ष्म रूपमें उनका उल्लेख करेगा। अतएव यह कहना अनुचित है कि उन दोनों में कोई सम्बन्ध ही नहीं हैं।

बहुधा यह देखनेमे आता है कि जो छोटे और नये कवि हैं, पुरानी प्रथाके पक्षपाती हैं। वे नये विचारोंसे अपरचित हैं। इसके पश्चात् जब उन्हें उन बातोंका पता भी लगता है तो वे उन पर ध्यान नहीं देते। यहां पर हमें कविता और विज्ञानमें विरोध दिखाई पड़ेगा। परन्तु जो कवि प्रतिभाशाली होगा, वह वैज्ञानिक आविष्कारोंका भली प्रकार निरीक्षण करेगा और उनके परिवर्तनका भी अनुभव करेगा। और तब अपनी कविताकी रचना करके यह दिखला देगा कि यह दोनों विरोधी नहीं परन्तु सहायक हैं।

कवि इस बातमें स्वतंत्र नहीं है कि वह अपनी कल्पनाके अनुसार जो चाहे बनाये, चाहे वह ठीक न हो। जब वह प्राकृतिक विषयों पर रचना करनेको उद्यत होता है तब वह वैज्ञानिक सिद्धान्तोंको सामने रखकर उनके सदृश्य अपनी कल्पनाको बनाकर रचना करता है। ऐसी कोई भी वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं है जो कि मनुष्य जानकर भी उसको कविताका रूप न दे सके। कवि उसे सुन्दरताका रूप देकर कविताके गुणोंसे विभूषित कर देता है।

अतएव यह बात सिद्ध हुई कि कविता में विज्ञानका स्थान सहायक का है विरोधीका नहीं। कवि विज्ञानका विरोध नहीं कर सकता परन्तु उसे उससे किसी न किसी प्रकारकी सहायता अवश्य लेनी पड़ती है।

पत्ता और रोम

(ले० श्री पं० शंकर राव जोशी)

विज्ञानके किसी गतांक में तना या पेड़ी पर विचार कर आए हैं। तना या शाखा के अक्षसेही पत्ता निकलता है। तना और पत्ते में बहुत नजदीक का रिश्ता है। यहाँ तक कि तना और पत्तेको एकही मान कर 'प्रांकुर' नाम दिया गया है।

बोल चालकी भाषासे सर्व साधारण वृक्ष या पौधेके हरे पत्तों को ही 'पत्र या पत्ता' कहते हैं। किन्तु वनस्पतिशास्त्र में 'पत्र' शब्द बहुत ही व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। फूलकी पंखुड़ियाँ भौमिक तने परके झिल्ली-जैसेमहीन छिलके, प्याज की गांठ परके छिलके, लहसुन की कली कोढकनेवाले छिलके, बीज-दल आदि पत्र ही कहे जाते हैं। इनका रंग हरा नहीं होता, और न ये असली पत्तों का काम ही अंजाम देते हैं। किन्तु इनमें 'पत्ते' के सभीगुण वर्तमान रहते हैं। भौमिक तने पर के छिलके रक्षा करने का काम करते हैं। बीज-दल प्ररोहको प्रारंभिक अवस्थामें भोजन पुराते और बीजके अंदर के प्रारंभिकमूल और प्रारंभिक तनेकी रक्षा करते हैं फूलोंकी पँखुड़ियाँ फल और बीजकी उत्पत्ति में सहायक होती हैं।

पत्ते भोजनको पचाकर अन्न-रसको पौधेके सभी अवयवों को पहुँचाने का काम करते है। यह

क्रिया पौधेके शरीरमें मानव शरीरकी तरह ही होती है भेद इतना ही है कि मनुष्य देह में भोजन जठराग्नि में पचता है और पौधोंमें पत्ते की रसायन शाला में। पत्ते भोजन किस प्रकार पचाते हैं, यह बात आगे चलकर बतलाई जायगी।

तना या शाखा पर पत्ते क्रमबद्ध रीति से निकलते हैं। नया पत्ता शाखा या तनेके सिरे पर होता है और पुराना पत्ता उसके आधारके पास। पहले निकले हुए पत्ते के नीचे नया पत्ता कदापि नहीं निकलता। इस प्रकार के वृद्धिक्रम को 'गोपुच्छाकार-क्रम' कहते हैं।

पत्ता, जिस रेखा पर तना या शाखा से जुड़ा रहता है, उसको 'संयोग रेखा' कहते हैं। पत्ते के गिर जाने पर पत्ते से संयोग-स्थान पर जो चिन्ह रह जाता है। उसे नाल चिन्ह कहते हैं।

खजूर, ताड़ आदि कुछ पौधों के पत्ते तो सूख कर गिर जाते हैं; किन्तु उनकी डंडी आधार पर लगी रह जाती है।

बीज-दल ही प्रारंभिक तने का पहला पत्ता है ओक, आम, लोबिया आदि में ये दल जमीन के अंदर ही रह जाते हैं। तुरई, कद्दू, सूरजमुखी इमली, आदि में ये जमीन के बाहर निकल आते हैं और हवा और प्रकाश के प्रभाव से हरा रंग ग्रहण कर लेते हैं। ये असली पत्तों-जैसे दिखाई तो देते हैं किन्तु इनकी आकृति बाद में निकलने वाले पत्तों से भिन्न होती हैं।

कई पौधों में, विरत कलिका को आच्छादित रखने वाले वल्कपत्र असली पत्ते या प्रामाणिक पत्ते बन जाते हैं।

पौधेके बढ़ने वाले सिरे पर ही पत्ते निकलते हैं पहले पत्ते कलिकाके रूप में निकलते हैं और तब कलिकाओं के विकसित होने पर जुदे जुदे होकर फैल जाते हैं। पर्व के बढ़जाने पर वे दूर दूर हो जाते हैं कुछ पौधे ऐसे भी हैं जिन में पत्ते एक ही स्थान पर इकट्ठे निकलते हैं। पत्तों के गुच्छे को 'पत्र गुच्छक' नाम दिया गया है।

पत्ते चार प्रकार के होते हैं १. असली पत्ते या प्रामाणिक-पत्र २ वल्क-पत्र ३ पुष्पपत्र ४ कुसुमायित-पत्र।

१ प्रामाणिक पत्र पौधेके साधारण पत्रों को, जो हरे होते हैं, कहते हैं।

२ कलिकाओं को ढाँकने वाले पत्र वल्क पत्र कहे जाते हैं। ये झिल्ली जैसे महीन होते हैं। ये तने पर ही लगे रहते हैं। कुछ पौधों में वल्क-पत्र मांसल बड़े और रंगहीन होते हैं। पर भोजी पौधेमें ये असली पत्तों का काम करते हैं।

३ पुष्पपत्र का एक मात्र काम पुष्प की रक्षा करना है। ये पत्तों के परिवर्तित रूप हैं। पुष्पपत्र, पुष्पके पास या पुष्पनाल के नजदीक होते हैं।

४ कुसुमायितपत्र—ये भी परिवर्तित पत्र हैं। इनका रंग जुदाजुदा होता है ये मिलकर 'कटोरी' या 'मुकुट' कहाते हैं।

प्रत्येक पौधेमें चारों प्रकार की पत्तियों का होना अनिवार्य्य नहीं है। पौधोंमें इनमें से एक या एक से अधिकका अभाव रहता है।

परिपूर्ण प्रामाणिक-पत्र—प्रत्येक परिपूर्ण प्रामाणिक पत्ते में दो मुख्य भाग होते हैं। १ पत्र-दल या फलका और २ वृन्त या पत्र-नाल। कुछ पौधों के पत्तोंमें डंठल से जुड़ा हुआ एक तीसरा भाग और होता है, जिसे कोष कहते हैं। यह तनेको ढँके रहता है।

फलका या पत्र-दल

फलका ही मुख्य पत्र है। यह चौड़ा और चपटा होता है। इसमें नसें फैली रहती हैं। इसका रंग हरा होता है।

वृन्त या डंठल पत्ते का वह भाग है, जो फलके को टहनीसे जोड़े रहता है। इसकी आकृति भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है।

मटर, गुलाब आदि कुछ पौधोंके वृन्तपर पत्राकृति-सी लगी रहती है इसको वृन्तानुबंध या पुंख-पत्र कहते हैं। पुंख पत्र कई प्रकार के होते हैं। पुंखपत्र हीन पत्ता अपुंख-पत्री कहा जाता है।

नीबू-बीच आदि में पुंख पत्र भूरा या रंगहीन होता है। पत्ते के बढ़ जाने पर पुंख पत्र गिर जाते हैं। और यही कारण है कि पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए पत्रों में पुंख-पत्र दिखाई नहीं देता है।

स्वतंत्र पुंख-पत्रका नीचे का भाग पत्र नाल से मिला रहता है अनुबंध पत्र-कलिकाको ढके रहते हैं। पत्तेके साथ ही साथ पुंख-पत्र भी बढ़ता रहता है और पत्रके नीचेके भागसे जुड़ा रह जाता है। इस प्रकारके अनुबंधको पत्ताकृति या नाललग्न कहते हैं। पत्तेके अक्ष कोणसे जुड़ा रहनेवाला पुंख-पत्र अक्षकोणीय पुंख पत्र कहा जाता है। कुछ पौधोंमें अनुबंध बढ़कर फैल जाता है और असली पत्ते-जैसा दिखाई देता है। यह तनेको चारों ओर से घेर लेते हैं इसलिए इनको परिवृन्तानुबंध कहते हैं। पत्राकृति अनुबंध पत्ते जैसा दिखाई देता है। प्रतान जैसा अनुबंध प्रतानाकार कहलाता है।

प्याज, गोभी, राई, मूली आदि पौधोंके पत्ते वृन्त हीन होते हैं।

कोष या पत्राधार—कोष या पत्राधार पत्तेका वह भाग है, जिससे पत्ता शाखा या तने से जुड़ा रहता है। गाजर में यह साफ दिखाईदेता है कुछ पौधोंमें पत्राधार फैल कर तनेसे चिपट जाता है। इस प्रकारके पत्राधारको सम्पुट (vagina) कहते हैं। घासवर्गके पौधोंका पत्राधार पत्र-नालको चारों ओरसे घेर लेता है। घासवर्गके कुछ पौधोंमें पत्रनाल लम्बी नलीके आकारका होता है और वह एक ओरसे फटा रहता है। पत्ते को डंठल नहीं होता और वह कोषसे जुड़ा रहता है। इसे पृष्ठज या पट्टाकृति कहते हैं।

नाड़ी-क्रम या शिरा-संगठन

पत्तोंमें नसोंके संगठन क्रमको शिरा संगठन कहते हैं। भिन्न भिन्न पौधोंमें नाड़ीक्रम जुदी जुदी तरह का होता है। इन शिराओंके कारण पत्तोंका फलका फैला हुआ रहता है और खूराक भी इन्हीं में से होकर पौधे के हर भाग में पहुँचती है।

नाड़ीक्रम दो प्रकार का होता है-१ समानान्तर शिरा संगठन और २ शिरा-जाल या जाल नाड़ीक्रम।

समानान्तर शिरा संगठन—मक्का, ज्वार, गेहूँ, जौ, बाजरा आदि घासवर्ग के पौधों के पत्तों की नाड़ियाँ आधार से निकल कर पत्राग्र तक समानान्तर पर फैली रहती है। ये छोटी छोटी समकोणित नसों द्वारा एक दूसरी से मिली रहती हैं। इस प्रकार का शिरासंगठन एक पत्रक (इक दलवर्ग) पौधों में पाया जाता है।

जाल नाड़ी क्रम—इस प्रकार से शिरा-संगठन में पत्ते के बीच में एक मुख्य और मोटी शिरा रीढ़ की हड्डी की तरह रहती है। इस मुख्य शिरा से कई शाखाएं और गौणशिराएं इसके दोनों बाजूपर निकलकर पत्ते के किनारे तक चली जाती है इन शाखा शिराओं से भी महीन शिराएं निकल कर सारे पत्ते में फैल जाती हैं। इस प्रकार के शिरा जाल संगठन को पत्ताकृति-क्रम या पिच्छाकृति क्रम कहते हैं। इन पत्तों में सिर्फ एक ही मध्य-शिरा होती है। इसलिए इसको एक पर्शुक पत्ताकृति शिराजाल कहते हैं।

कुछ पौधोंके पत्तोंमें, वृन्त से तीन, चार या पाँच मुख्य शिराएं निकल कर पत्र के किनारे तक चली जाती हैं। इन मुख्य शिराओं से कई कई छोटी शिराएं पत्ते के पृष्ट भाग पर फैल जाती हैं। इसे करतलाकार नाड़ीक या करतलाकृति शिरा-जाल करते हैं। जो पत्ते डंडी के पास से चौड़े होते हैं, इन्ही में इस प्रकार का शिराजाल पाया जाता है। पान, खरबूजा, तुरई, पपीता, अरण्डी, कपास आदि इसके उत्तम उदाहरण हैं। इन पत्तोंमें मुख्य शिरा से निकलने वाली शिराएं हाथकी अंगुलियों की तरह फैली हुई रहती हैं। कपास, पपीता, अरण्डी आदि के पत्ते कई हिस्सों में बँट जाते हैं और प्रत्येक भाग में एक मध्य शिरा रहती है। इसलिए इस प्रकार के शिरा जाल को बहुपर्शुक भी कहते हैं।

तने या टहनी पर पत्ते भिन्न भिन्न रीति से लगे रहते हैं। जो पत्ता डंडी या नाल द्वारा जुड़ा रहते हैं। उसे सनाल या सवृन्त-पत्र कहते हैं डंडी रहित पत्ता विनाल या अवृन्तपत्र कहाता है यदि अवृन्तपत्रके आधारपर दो गोल कर्ण-जैसे भाग हों, तो उसको कर्णिक-पत्र कहते हैं। यदि ये कर्ण-जैसे भाग तने से चिपटे हों, तो उस पत्ते को तनासक्त-पत्र कहेंगे। जिस पत्ते के फल के किनारे तने से नीचे को लटके रहें उसे अधोवलम्बी-पत्र कहा जाता है। जिस विनाल पत्र का आधार तने के चारों ओर इस तरह से फैला हो कि देखनेवाले को यह जान पड़े कि तना पत्ता के बीच में से निकला हुआ है उसको परिकांड-पत्र कहते हैं।

आमने सामने निकले हुए दो अवृन्त-पत्रों के आधार मिले हुए हों तो उन्हें सहजात-पत्र कहते हैं। यदि किसी सनाल-पत्र का आधार नाल से कुछ आगे तक बढ़ जाय और देखने वाले को यह भ्रम हो कि डंडी फलके नीचे के भाग में लगी हैं। ऐसे पत्तेको लघु-सूक्ष्म-नाल-पत्र कहा जाता है।

पत्र या पत्ता

प्रामाणिक पत्र दो प्रकार के होते हैं-१ साधारण पत्ते और २ संयुक्त या संसृष्ट-पत्र।

साधारण पत्र—एक फलके वाला पत्ता साधारण-पत्र कहाता है कि कई साधारण पत्र विभक्त भी होते हैं। विभक्त होने के कारण पत्ता कुछ हिस्सों में बँट जाता है। उन हिस्सों के कर्ण या विच्छेद कहते हैं। यहाँ इतना अवश्यही स्मरण रखना चाहिए कि ये विच्छेद पत्ते की मध्य-शिरा या रीढ़ तक नहीं पहुँचते है और न ये रीढ पर अलग अलग जुड़े हुए ही होते हैं।

संयुक्त पत्र—इसमें दो या इससे अधिक फलके होते हैं। संयुक्तपत्र के हरएक हिस्से को पत्रक या लघुपत्र दल कहते हैं। संयुक पत्र के विच्छेद मध्य-शिरा के नीचे से जुदे होते हैं और उसके पत्रक डंडी पर प्रामाणिक पत्तेकी नाईं ही स्वतंत्रता पूर्वक जुड़े रहते हैं।

साधारण पत्ता

साधारण पत्ते भिन्न भिन्न आकार के होते हैं। फलके की आकृतिके अनुसार पत्तों को जुदे जुदे नाम दिए गए हैं। इनका वर्णन नीचे किया जाता है।

१ सूच्याकार पत्ता लम्बा, पतला और नुकीला होता है। यथा ईसबगोल, इश्कपेंचा, और घास जाति के पौधों के पत्ते।

२ रेखाकार पत्ता सँकड़ा और लम्बी रेखा जैसा होता है यथा पतावर व घास जाति के कुछ पौधों के पत्ते।

३ आयताकार पत्ते आधार और अग्र दोनों सिरों पर चौड़ा होता है। यथा इमली, तिल, आम, नारंगी।

४ अण्डाकार या उपमंडलाकृति पत्ते का आकार अण्डे जैसा होता है। यथा आक, सेव, गुल फिरंगी।

५ भालाकार या शल्याकृति पत्ता बीच में से अधिक चौड़ा होता है और उसके आधार व अग्र नुकीले होते हैं। यथा सीताफल, देवदार।

६ लट्टाकार पत्तेका अग्र नुकीला और आधार ज्यादा चौड़ा होता है यथा बड़ का पत्ता।

७ व्यस्तलट्टवाकार पत्ता अग्रपर चौड़ा और आधार पर अणीदार होता है।

८ व्यस्तशल्याकृति पत्तेका आकार आधार के पास भाले के फल जैसा होता है।

९ ताम्बुलाकार या हृदयाकृति पत्ते का आकार ठीक नागर बेलके पान जैसा होता है। इन पत्तोंके आधार पर गोल कटाव और सिरा नुकीला होता है।

१० वृक्काकृति पत्ता गुर्दे-जैसा होता है यथा सिंघाड़ा कुमोदनी।

११ व्यस्त हृदयाकार पत्ते के सिरे पर दोगोलाकार भागों के बीच में कटाव होता है और आधार नोकदार।

१२ सूचकाकार पत्ता लम्बा और पतला होता है। इसका सिरा जूता सीने की सुईकी तरह नोकदार होता है यथा लूनिया का पत्ता।

१३ चमसाकार पत्ते का सिरा चमचेके समान चौड़ा और गोला होता है इसका आधार पतला होता है। यथा कासनी का पत्ता।

१४ फलाकृति पत्ते की नोक भाले की तरह अणीदार होती है, किन्तु पत्ते के नीचे दो भाग दाएं बाएं तलवार के कब्जेकी तरह निकले रहते हैं।

१५ बाण मुखाकृति पत्ते का आकार बाण के फल के समान होता है यथा अरुई का पत्ता

१६ टंकाकार पत्ते का अग्र चौड़ा और चपटा होता है और आधार पतला।

ऊपर पत्तों की मुख्य मुख्य आकृतियों पर विचार कर आए हैं। इनके अलावा पाँच सात प्रकार की आकृति के पत्ते और पाए जाते हैं।

जिस पत्ते का आकार सूत्र की तरह होता है। वह सूत्राकार और जानवर के बाल-जैसी आकृति का पत्ता 'केशाकार' कहा जाता है। तीन या उससे अधिक कोणवाले पत्ते 'कोणित' कहे जाते हैं। हँसिया, ढाल, और तलवार की आकृति-जैसे पत्ते भी होते हैं। इनको क्रमशः दात्राकार, असित्राणाकार और खड्गाकार कहते है।

पत्तों के अग्र

पत्तों के अग्र की नोक भी जुदे जुदे प्रकार की होती है। पीपल के पत्ते का अग्र नुकीला पतला और लम्बा होता है। इस प्रकार की नोकको दीर्घ-तीक्ष्ण या शुण्डाकृति कहते हैं। कपास, सेमल आदि के पत्तों का अग्र नोकदार तो होता है, पर अधिक लम्बा नहीं होता इनको 'तीक्ष्ण' या शिताग्र नाम दिया गया है। कुछ बढ़ी हुई और कुंठित नोकवाले पत्ते कुण्ठित कल्प या कशेरूकाग्र कहे जाते हैं। इनका अग्र कुंठित तो होता है, मगर बीचमें जरासी नोक होती है। तथा सेमका पत्ता। तिलके पत्ते जैसी भोंथरी नोक वाले पत्तोंको कुंठित कहेंगे। नताग्र या मध्य-निम्न अग्र वाले पत्तेका सिरा गोल होता है। इसके नोक नहीं होती और बीचमें गढ़ा-सा होता है यथा कचनारका पत्ता। बेरके पत्ते का अग्र चपटा होता है, इसे लूनाग्र करते हैं।

पत्तोंके किनारेभी भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। पत्ते के किनारेको धार, या बाह्य प्रान्त कहते हैं। साधारणतः पत्तोंका किनारा या धार सादी या पूरी होती है। इस प्रकारके किनारे को अखण्ड धार या पूर्ण धार कहते हैं यथा बड़, पीपल, आम, ज्वार, आदिके पत्तोंका किनारा।

बहुतसे पत्तोंका किनारा खण्डित या कटा हुआ होता है। कुछ पत्तोंके किनारेपर आरे-सी दँतियाँ होती हैं। कुछ पत्तोंमें गोल दंतियां होती हैं। कुछ पत्तोंके किनारे इतने कटे हुए होते हैं कि पत्ता कई भागोंमें विभक्त होजाता है। पत्तेके इन भागोंको कर्ण या विच्छेद कहते हैं।

१ सदन्तुर किनारे वाले पत्तेकी धारपर आरे-जैसी दंतियां होतीं हैं। ये सिरे की ओर को झुकी हुई होती हैं यथा गुलाबमें।

२ दोहरे दाँत वाली पत्तियोंको द्विदन्तुर नाम दिया गया है यथा फालसा।

३ यदि दन्तियां नोकदार और बाहरकी ओरके रुख वाली हों और दो दांतोंके बीचकी-गहराई गुलाई लिए हुए हो, तो ऐसे पत्तेको विदन्तुर कहेंगे।

४ गोल दाँत वाले पत्तेका चाप दन्तुर या कुंठित दन्तुर कहते हैं।

५ लहरीदार पत्तोंकी धार लहराई हुई सी होती है यथा सरसोंका पत्ता।

६ झालरदार पत्तोंकी धारपर महीन रोओंकी झालर होती है।

७. कंटकित या सकंटक पत्तोंकी धार परकी दन्तियां लम्बी और तेज नोक वाली होती हैं।

साधारण पत्तेमें कई प्रकारके विच्छेद देखे जाते हैं। पिच्छाकार कटाव वाले पत्तेके विच्छेद करीब करीब मध्य शिरातक होते हैं। यथा पोश्तके पत्ते। यदि ये विच्छेदभी कम गहरे कटावसे कटे हों तो उसे

दुरावृत्त पिच्छाकार कटाव कहते हैं यथा धनियाका पत्ता।

जिस साधारण पत्तेके विच्छेद डंठल परसे ही शुरू हों और उनमें-गहराई कमहो, तो उसे करतल कटाव और गहराई ज्यादा हो, तो करतल विभिन्न कटाव कहते हैं।

भिन्न भिन्न पत्तोंके कटाव जुदे जुदे प्रकारके होते हैं। ऊपर मुख्य कटावोंका ही वर्णन किया गया है। अनावश्यक समझकी गौण प्रकारोंको छोड़ दिया है।

संयुक्त पत्र।

पत्तेके वृन्तपर कई छोटे २ पत्रक लगे होते हैं और इन्हींके समुदायको-पत्ता नाम दिया गया है। यथा इमलीका पत्ता

संयुक्त पत्रभी-पिच्छाकार कटाव और करतलाकार कटाव वाले होते हैं। युग्म पत्राकार पत्तेके बीचकी रीढ़ या शिरापर दोनों ओर छोटे २ पत्रक होते हैं। इसके पत्रकोंकी संख्या दोनों ओर बराबर होती है और पत्तेके सिरेपर कोई पत्ती (पत्रक) नहीं होती। यथा इमलीका पत्ता। यदि पिच्छाकार पत्रके भी फिर विभाग हो जायं, तो उसे द्विपिच्छाकार कहते हैं। यथा बबूलका पत्ता। यदि युग्म पत्राकार पत्तेके सिरेपर एक पत्रक हो या अन्तिम पत्रक अयुग्म हो, तो उसे अयुग्म पिच्छाकार संयुक्त पत्र कहेंगे। यथा नीम। गुलाब यदि सयुक्त पत्तेके तीन विभाग हो जाय, तो उसे त्रिपिच्छाकार कहते हैं।

करतलाकार संयुक्त पत्रके पत्रक डंठल पर उंगलियोंकी तरह-फैले हुए होते हैं। इस प्रकारके संयुक्त पत्रमें जितने पत्रक होते हैं, वह उतने ही पत्रकका संयुक्त-पत्र कहलाता है यथा द्विपत्रक, त्रिपत्रक, पंच पत्रक आदि।

पत्तेका बयनभी भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। कुछ पत्ते पतले होते हैं, कुछ झिल्लीदार और कुछ खुरखुरे कुछ पत्तों पर रोम होते हैं, और कई पत्तों परमोम जैसे पदार्थ की तह-सी जमी रहती है।

कुछ पौधोंके पत्ते पतझड़में गिर जाते हैं। और वसन्त ऋतुमें नए पत्ते निकलते हैं। ये पौधे गलित-पत्र कहाते हैं। कुछ पौधोंके पुराने पत्ते वसन्त ऋतुमें निकले हुए पत्तों की पूर्ण बाढ़ होजाने तक नहीं गिरते हैं। बादमें वे धीरे धीरे गिर जाते हैं। ये पौधे सदा-पत्री कहे जाते हैं। कुछ पौधों के पत्ते कई बरसों तक कायम रहते हैं।

पत्तोंके परिवर्तित रूप

आवश्यकता और परिस्थितिके अनुसार पत्ते जुदे जुदे आकार ग्रहण कर लेते हैं और तब वे एक विशेष कार्य सम्पन्न करते हैं।

१—कुछ पौधोंमें पत्ता या उसका हिस्सा प्रतानमें बदल जाता है। कभी कभी पक्ष पत्र की प्रतानका रूप ग्रहण कर लेता है।

२—कभी कभी पत्ता या उसका हिस्सा कांटेका रूप ग्रहण कर लेता है। कभी कभी सारा का सारा पत्ता तीन कांटोंमें बदल जाता है यथा नागफणी।

वेष्टन

कलिकाके अन्दर छोटे छोटे पत्तेके लिपटे रहने की रीति को 'वेष्टन' कहते हैं। भिन्न भिन्न पौधोंमें यह वेष्टन जुदे जुदे प्रकारका होता है, वेष्टन दो प्रकार का होता है १. कलिका में एक पत्ते का वेष्टन और २. कलिकाओंमें कई पत्तों का वेष्टन।

उक्त लिखित दो भेदों के भी कई उपभेद हैं। ये भेद पत्ते की लपेटन की रीति पर निर्भर रहते हैं। इन उपभेदों को अनावश्यक समझ कर हमने छोड़ दिया है।

पत्र-संगठन या पत्रावली

प्रत्येक जातिके पौधेमें तने पर पत्तों की रचना एक-सी होती है। तने या शाखा पर पत्तों की रचना को ही पत्र-संगठन या पत्रावलि संगठन नाम दिया गया है।

प्रकृतिने तने या शाखा पर पत्तोंका संगठन इस खूबी से किया है। कि प्रत्येक पत्ते को प्रकाश और

वायु पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। किसी पौधे को अधिक प्रकाश की आवश्यकता होती है और किस को कम की। प्रकृति ने पौधेको आवश्यकतानुसार प्रकाश और वायु पहुंचानेका समुचित प्रबंध कर दिया है।

तने या टहनी की ग्रंथि पर ही पत्ते निकलते हैं। तने पर पत्तों का रचनाक्रम पर्वकी लम्बाई पर निर्भर रहता है।

एकान्तर क्रम या पर्याय क्रम इसमें प्रत्येक ग्रंथि पर एक ही पत्ता निकलता है इस क्रम में, दूसरा पत्ता, पहले पत्ते से ठीक विरुद्ध दिशामें ऊपर की गाँठ पर रहता है। यथा सीताफल, नीबू,नारंगी।

अभिमुख क्रम-इस क्रम में तने की प्रत्येक गाँठ पर आमने सामने दो पत्ते निकलते हैं। यथा बबूल, नीम। यदि एक गाँठ पर अभिमुख पत्र उत्तर दक्षिण हों और दूसरी पर पूर्व पश्चिम, तो इस प्रकार के पत्र-संगठन को व्यत्ताभिमुख या विषम-कोणित कहेंगे, यथा साग तुलसी।

घूर्ण या विवर्तुल

यदि एक ही ग्रंथि पर दो या उससे अधिक पत्ते पैदा हों, तो उसे घूर्ण या विवर्तुल कहेंगे। यदि अभिमुख पत्र-संगठन में ग्रंथि की प्रत्येक बाजू पर दो या उसके ज्यादा पत्ते निकलें, तो उसे वर्तुल कहते हैं। व्यत्ताभिमुख क्रम में प्रत्येक ग्रंथि पर दो या ज्यादा पत्ते निकल आवें, तो उसे व्यत्ताभिमुख घूर्ण कहा जाता है।

अक्सर देखा जाता है कि तने पर पत्ते तो एकान्तर क्रम से निकलते हैं किन्तु पर्व के न बढ़ने के कारण वे घूर्ण और अभिमुख संगठन से जान पड़ते हैं। इसे क्रमिक घूर्ण कहते है।

पत्र-संगठन का अनुशीलन

किसी पौधे की एक टहनी लेकर उस पर तार या धागा इस ढंग से लपेटो कि यह प्रत्येक पत्ते की डंडी से छूता हुआ-सा जान पड़े। जहाँ जहाँ धागा या तार पत्ते की डंडीसे छूता हो, वह निशान कर दो, इसके बाद यह देखो कि शुरूके पत्तेसे ठीक उसके सरपर के पत्ते तक कितनी-लपेटनमें कितने पत्ते आये हैं। जितनी लपेटनमें जितने पत्ते आवेंगे, वही उस पौधेके पत्रावलि संगठनका क्रम होगा। केलेके तनेपर धागा लपेटनेसे तीन लपेटन में आठ पत्ते आवेंगे। अतएव केलेका पत्र-संगठन $\frac{3}{8}$ व्यावर्त क्रम होगा। घास, बीज आदि का व्यावर्तक्रम $\frac{1}{2}$ और नासपातीका व्यावर्तक्रम $\frac{2}{5}$ है। ऊपरका अङ्क धागे या तार की लपेटन की संख्या बतलाता है – और नीचेका अङ्क उस लपेलटनमें आनेवाले पत्तोंकी संख्या।

रोम

रोम शब्दमें सभी प्रकारकी रोम रचनाका समावेश होता है। बाल, रोएं, काँटे आदि रोम ही कहलाते हैं।

यदि पत्ते या पौधेके अन्य अवयव पर छोटे, कोमल तथा बिखरे हुए रोम हों, तो उन्हें लोमश कहेंगे। यदि रोम लम्बे और बिखरे हुए हों, तो उन्हें 'तृणलोमश' कहते हैं। बहुत सख्त और बिखरे हुए बाल वाले पत्ते 'कंटकित रोमश' कहे जाते हैं और घने और छोटेबालोंको तूल रोमश नाम दिया गया है। यदि तूल रोमश बहुत घने और आपसमें गुथे हुए हों तो गुथित तूल कहेंगे लम्ब और गुथे हुए बालोंवाले पत्ते को ऊर्णायित और बाल रहित पत्तेको चिकना पत्ता—कहते हैं।

गुलाब आदिके काँटे भी रोम ही हैं। इन पर किसी दूसरे लेखमें विचार किया जायगा। ❀

❀ लेखक की 'तरु-विज्ञान' नामक अप्रकाशित पुस्तकके एक परिच्छेदके आधार पर लिखित।

चश्मे ।

(लेखक श्री रघुबीरप्रसाद माथुर)

नुष्यके बनाये चश्मोंके विषयमें कुछ कहनेके पहले प्राकृतिक चश्मोंका हाल जानना आवश्यक है। हमारे नेत्र एक गोल रबड़की गेंदकी तरह होते हैं जिसके एक ओर एक नस (optic nerve) (न) लगी होती है जिसको दर्शक नस कहते हैं दूसरी ओर बाहरकी तरफ और एक गोल कटोरेकी सी एक चीज (क) होती है जिसको (cornea) कहते हैं इसके पीछे गेंदके भीतर एक प्राकृतिक चश्मा अर्थात् ताल (च) लगा होता है। कटोरे (cornea) और तालके बीचमें एक विशेष प्रकारका नमकीन घोल (Aqueous humour) होता है। और तालके पीछे आंखके भीतरी भाग (posterior chamber) में एक दूसरी प्रकार का द्रव्य (vitreous Kumour) भरा होता है।
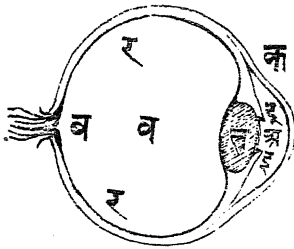
चित्र १

सामनेकी किसी चीजसे फैली हुई आती किरणें जब (क) और नमकीन घोलमें होकर ताल (अ) पर पड़ती हैं तो उसके दूसरी ओर वह सिकुड़ती हुई निकलती हैं और मस्तिष्क को जाने वाली दर्शक नस (ब) के मुंहके निकट सामने की वस्तुका एक उल्टा चित्र पर्दे पर बना देती हैं। इस चित्रके बननेका हाल नस द्वारा मस्तिष्क में पहुँचता है और दर्शक का वह वस्तु सीधी दीखने लगती है।

(इ इ) आंखकी रक्षा करनेवाला परदा (Iris) है। जब सामनेका प्रकाश बहुत अधिक और तेज होता है तो यह रक्षक परदा फैलकर ताल (अ) के अधिकांश को ढक लेता है और अधिक प्रकाशको आंखके अन्दर जाने से रोकता है। और जब प्रकाश कम होता है तो स्वयं सिकुड़ कर उसके लिये अधिक मार्ग छोड़ देता है।

देखने के लिए कटोरा (cornea), बाहिरी गृहका (anterior chamber) का नमकीन घोल, ताल अथवा चश्मा (अ) भीतरी गृह का घोल और दर्शक नस मुख्य चीजे हुई। चश्मा (च) पास की रगों (ligaments) द्वारा मोटा और पतला हो सकता है। यदि पास की चीज देखनी होती है तो इन रगों द्वारा ताल मोटा हो जाता है और यदि दूर की तो पतला।
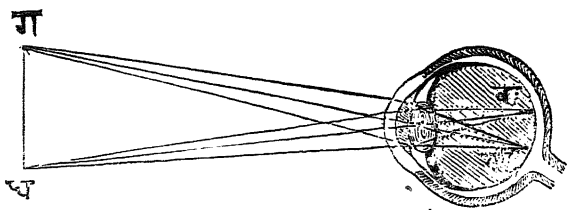
चित्र २

नेत्र का विषय स्वयं ही ऐसी विशाल है कि इस पर पूरी पूरी पुस्तकें लिखी जा सकती हैं इसलिये इस विषय को हम यहीं छोड़ते हैं। अब हम नेत्रों की त्रुटियों को लेकर मनुष्य निर्मित चश्मों द्वारा उनको दूर करने की रीति लिखेंगे।

पहली और सब से बड़ी त्रुटि मोतिया बिन्दु या पानी उतरना और नेत्र का अन्धा हो जाना है। परन्तु हमारे विषय से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। तथापि यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि यह त्रुटि उस समय उत्पन्न होती है जब कि आंख का ताल अपारदर्शक हो जाता है और दीखना बन्द हो जाता है। डाक्टर लोग कटोरे (क) को हटा कर ताल को जोकि अब एक मोठ

वस्तु की भांति होता है, बाहर निकाल देते हैं। फिर आंख काम देने लगती हैं।

दूसरी त्रुटि निकट-दृष्टि (myopia) की है। इस में पास की किसी वस्तु का चित्र तो पर्दे पर ठीक बन जाता है परन्तु दूर की चीजों का चित्र पर्दे के सामने ही बन जाता है। जैसा कि चित्र ३ में दिखाया गया है। वह हटाव आंख के लम्बे होने के कारण भी हो सकती है क्योंकि हर एक ठीक आँख के ताल की केन्द्रीय लम्बाई २२-२३ सहस्रांशमीटर ही होती है। ऐसी दशा में एक बीच में नतोदर ताल (concave) की सहायता से नेत्र के ताल को सहायता मिल सकती है। देखिये चित्र न० ३ (concave) नतोदर ताल ऐसी केंद्रीय लम्बाई का चुना जाता है जिसके आँख के ताल के साथ मेल होनेसे चित्र पर्दे पर ही बन जाता है।
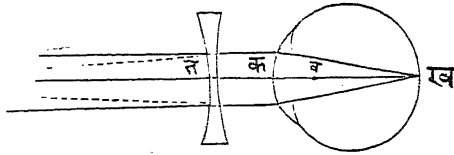
चित्र ३

तीसरी त्रुटि दूर दृष्टि की है। इसमें किसी दूरकी वस्तु का चित्र पर्दे के पीछे बनता है। सम्भव है कि इसका कारण आँखका छोटा होना हो। ऐसी आँखसे न तो पास की ही न दूरकी वस्तु साफ़ दीख सकती है। केवल तालके छोटा बड़ा करनेसे अथवा भीतरी या बाहरी गृहके घोलमें समयानुकूल प्राकृतिक परिवर्तनसे ही सहायता मिल सकती है। परन्तु इससे ही आंखके प्रायः सबही भागों पर जोर पड़ता है। ऐसी दशामें प्रायः उन्नतोदर ताल (convex lens) की सहायता से नेत्रके ताल को सहायता मिलती है जैसा कि चित्र नं० ४ से भली प्रकार मालूम होगा।

चौथी त्रुटि बड़ी विचित्र है। जलके अन्दर एक थाह पर पड़ी हुई चीज़ बाहरसे देखने पर म पर दीखता है इससे यह ज्ञात हुआ कि जलमें प्रकाश देने की शक्ति होती है। यही शक्ति सब पारदर्शक चीज़ोंमें
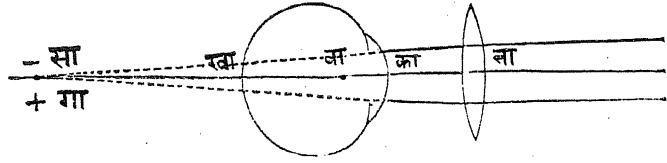
चित्र ४

भिन्न होती है। अब तक नेत्रके विषयमें विचार करते हुए हमने यह मान लिया है कि आँखकी धुरी (axis) के चारो ओरका घोल अथवा ताल ऐसे नियमानुसार लगा है कि एक विन्दुसे आती हुई और नेत्रके चारों ओर पड़ती हुई किरणें सब एक ही बिन्दु पर मिलती है। परन्तु यदि इस धुरीसे चारों ओर के भिन्न भिन्न भागों में यह शक्ति भिन्न हो तो सम्भव है कि प का चित्र किसी एक भागके कारण तो द पर बने और किसी दूसरे भागके कारण ध पर। अब एकबिन्दुके बदले एक रेखा द ध बन जावेगी। (देखो चित्र ७

जब आंख में यह त्रुटि होती है तो प्रायः या तो खड़ी चीजें लम्बी और पड़ी छोटी या पड़ी लम्बी और खड़ी छोटी दिखाई देने लगती हैं। इस त्रुटि को अकेन्द्रिकता कहते हैं। इसको दूर करने में उद्देश्य यही रहता है कि नेत्र के जिस भाग में प्रकाश की किरणों को घुमा देने की शक्ति कम है उसकी वह शक्ति एक ताल द्वारा अधिक कर दी जावे। मान लो कि नेत्र को खड़ी चीज़ें पड़ी चीजों की अपेक्षा लम्बी मालूम होती हैं। इसका अर्थ यह है कि पड़ी दिशा में (horizontally नेत्र के ताल की घुमाने की शक्ति कम है। इस शक्ति को बढ़ाने के लिये यदि हम नीचे दी प्रकार का परन्तु (अच्छा दीखने के लिये) गोलाकार ताल नेत्र के सामने आड़ीधुरीकी दिशामें रक्खें तो आवश्य खड़ी दिशा की किरणें अधिक घूम जावेगी उचित घुमाओं का ताल लेने से नेत्र के ताल की कमी पूरी जा सकती है। इसी प्रकार तालकी धुरी को खड़ा रखने से पड़ी

चीज अधिक लम्बी दीखने की त्रुटि दूर हो सकती है।

इस चौथी त्रुटि के साथ दूसरी या तीसरी त्रुटि भी हो सकती हैं। ऐसी दशा में ताल को एक ओर (चित्र न० ८ के अनुसार) और दूसरी ओर से नतोदर या उन्नतोदर बनाकर नेत्र की त्रुटि पूरी की जा सकती है।

उपर्युक्त विचार से यह भली भांति मालूम हो गया कि ऐनकों में पाँच प्रकार के तालों की विशेष आवश्यकता है।

(१) नतोदर
(२) उन्नतोदर
(३) बेलनाकार
(४) बेलनाकार तथा नतोदर
(५) बेलनाकार तथा उन्नतोदर

अब यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि ताल की केन्द्रीय लम्बाई क्या होती है और इसका किरणों को सिकोड़ने अथवा घुमा देने का बल से क्या सम्बन्ध है। यदि एक उन्नतोदर ताल सूर्य की अथवा किसी और चीज़ से आती हुई समानान्तर किरणों के सामने जमा दिया जाय और दूसरी ओर एक कागज़ आगे पीछे हटाया जावे तो एक जगह ऐसी मिलेगी जहाँ कि सूर्य अथवा उस चीज़ का चित्र अधिक से अधिक तीव्र बनेगा। इस दशा में जो उस चित्र की ताल से दूरी होगी वह ही ताल की केन्द्रीय लम्बाई है। नतोदर ताल में भी इसी प्रकार केन्द्रीय दूरी पर ही चित्र बनता है परन्तु उस ही ओर जिधर से कि किरणें आरही हैं।

एक ताल की केन्द्रीय लम्बाई जितनी कम होती है उतनी ही अधिक उसकी शक्ति (Power) होती है। अर्थात् मनुष्य जिनके नेत्र कम खराब हैं अधिक केन्द्रीय लम्बाई का (अथवा कम शक्तिका) ताल प्रयोग करते है और जिनके नेत्र ज्यादाह खराब हैं वह कम केन्द्रीय लम्बाई के प्रायः मोटे मोटे ताल प्रयोग करते हैं।

ताल की शक्ति उसकी केन्द्रीय लम्बाई की उलटी होती है अर्थात् जब केन्द्रीय लम्बाई कम तो शक्ति अधिक इत्यादि होती है, अतः वैज्ञानिकों ने सहूलियत के लिये शक्ति का परिचय दूसरी प्रकार से ही दिया है। इनके अनुसार ताल की शक्ति उसकी केन्द्रीय लम्बाई की उलटी (reciprocal) अर्थात् $\frac{१}{\text{केन्द्रीय लम्बाई}}$ होती है।

कर्बन और शैलम्

(ले० श्री सत्यप्रकाश, एम-एस-सी)

गतांकसे आगे।

कर्बनद्विओषिद् द्रव और ठोस भी किया जासकता है। द्रव कर्बनद्विओषिद्का सामान्य वातावरण पर क्वथनांक—७८°श है, इससे और नीचे ठंडा करने पर यह ठोस हो जाता है। ०°श पर ३५.५ वातावरण दबाव डाल कर भी यह द्रव किया जासकता है। इस द्रवको एक छेदद्वारा शीघ्रतासे वाष्पीभूत किया जाय तो शेषद्रव ठोस पड़ जाता है। अत्यन्त निम्न तापक्रम प्राप्त करनेके लिये इसका उपयोग बहुत किया जात है।

संगठन—कोयलेको यदि ओषजनके निश्चित आयतनमें जलाया जाय और कर्बनद्विओषिद्को या ओषजनको निकल कर बाहर न जाने दिया जाय तो जलनेके पूर्व जितना आयतनथा उतनाही आयतन जलने के बाद भी मिलेगा। इससे स्पष्ट है कि कर्बन द्विओषिदमें इसके आयतनके बराबर ही ओषजन विद्यमान है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो आयतनमें अवश्य अन्तर पड़ जाता। प्रयोग करके यह भी पता चला है कि इसका वाष्प घनत्व २२ है अर्थात् यह उदजनसे २२ गुना भारी है। अतः २२.४ लिटर कर्बनद्विओषिद का भार ४४ ग्रामहुआ। इनमें २२.४लिटर ही ओषजन है जिसका भार १६ × २ = ३२ ग्राम होता है। अतः ४४ ग्राम कर्बनद्विओषिद्में ३२ ग्राम

ओषजन और १२ ग्राम कर्बन है। ओषजन का परमाणुभार १६ और कर्बनका १२ है अतः कर्बन-द्विओषिदके एक अणुमें एक परमाणु कर्बन का और दो परमाणु ओषजनके हैं अतः इसका सूत्र क ओ$_2$ हुआ।

पहिचान—कर्बन द्विओषिद् चूनेके पानीको दूधिया कर देता है, अर्थात् खटिक कर्बनेतके दूधिया कान अवक्षेपित होने लगते हैं।

ख (ओ उ)$_2$ × क ओ$_2$ = ख क ओ$_3$ × उ$_2$ ओ

इस विधिसे इसकी बहुधा पहिचान की जाती है।

कर्बनेत और अर्धकर्बनेत

(carbonate and bicarbonate)

कर्बन द्विओषिदके जलीयघोलमें नीला द्योतकपत्र डाला जाय तो यह कुछ लाल पड़ जायगा जिससे स्पष्ट है कि घोल अम्लीय है। इस घोलमें कार्बनिकाम्ल की विद्यमानता है। यह अम्ल अत्यन्त शीघ्र विभाजित हो जाता है—

उ$_2$ ओ + क ओ$_2$ = उ$_2$ क ओ$_3$
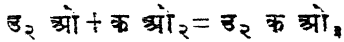
कार्बनिकाम्ल द्विभस्मिक अम्ल है अर्थात् इसमें उदजनके दो ऐसे परमाणु हैं जो धातुओंसे स्थापित किये जा सकते हैं। अतः इसके दो प्रकारके लवण बनते हैं। यदि एकही उदजन धातु तत्वसे स्थापित हो तो लवणको अर्धकर्बनेतकहते हैं पर यदि दोनों कर्बन स्थापित हो जायंतो लवणको कर्बनेत कहेंगे। यह अम्ल स्वयं तो अस्थायी है पर इसके लवण स्थाय होते हैं—

उ$_2$ क ओ$_3$	सै उ क ओ$_3$	सै$_2$ क ओ$_3$
कार्बनिकाम्ल	सैन्धकअर्ध कर्बनेत	सैन्धककर्बनेत
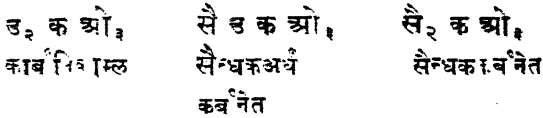
सैन्धकक्षारमें यदि कर्बन द्विओषिद् प्रवाहित किया जाय तो सैन्धक कर्बनेत बन जाता है। पर सैन्धक कर्बनेतके जलीय घोलमें यदि और कर्बन द्विओषिद् प्रवाहित करें तो सैन्धकअर्धकर्बनेत बन जायगा। प्रक्रियाय निम्न प्रकार हैं—

२ सै ओ उ + क ओ$_2$ = सै$_2$ क ओ$_3$ + उ$_2$ ओ

कर्बनेत

सै$_2$ क ओ$_3$ + क ओ$_2$ + उ$_2$ओ = २ सै उ कओ$_3$

अर्धकर्बनेत
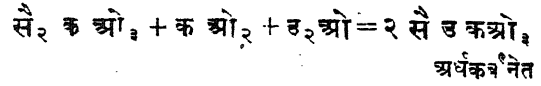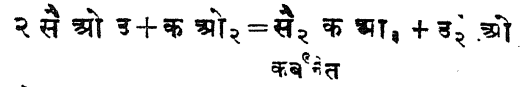
चूनेके पानी, खटिकउदौषिद, ख (ओ उ)$_2$ में कर्बन द्विओषिद प्रवाहित करनेसे खटिक कर्बनेत बनता है जैसाकि ऊपर कहा जाचुका है। जितने कर्बनेत हैं वे सब उदहरिकाम्लसे विभाजित होकर कर्बन द्विओषिद देते हैं। यह कर्बन द्विओषिद चूनेके पानीको दूधिया कर देता है। इस प्रकार कर्बनेतोंकी परीक्षा की जा सकती है। कर्बनेतमें उदहरिकाम्लका हलका घोल डालो। जो गैस निकलने लगे उसे चूनेके पानीमें प्रवाहित करो। यदि पानी दूधिया पड़ जायतो कर्बनेतकी विद्यमानता समझनी चाहिये। यदि दूधिया घोलमें कर्बन द्विओषिद बहुत देर तक प्रवाहित किया जायगातो आया हुआ श्वेत अवक्षेप धीरे धीरे घुलने लगेगा क्योंकि खटिक अर्धकर्बनेत बन जायगा जो जलमें घुलनशील है। खटिक कर्बनेत जलमें अघुल है।

खकओ$_3$ + कओ$_2$ + उ$_2$ओ = ख (उकओ$_3$)$_2$
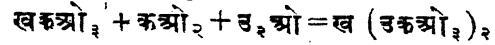
उदकर्बन (Hydrocarbon)

कर्बन और उदजनके संयोगसेजो यौगिक बनते हैं उन्हें उदकर्बन कहते हैं। कार्बनिक रसायनमें इनका विस्तृत वर्णन दिया गया है अतः यहाँ विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

दारेन Methane) क उ$_4$—एक भाग सैन्धक सिरकेत, क उ$_3$क ओ ओ सै,को ४ भाग सैन्धक चूना (दाहक सोडा और चूनाका मिश्रण,के साथ गरम करने से दारेन नामक नीरग वाष्प्य प्राप्त होता है। यह हलकी नीली लपकसे जलता है—

कउ$_3$ कओओ स + सओउ = स$_2$कओ$_3$ × कउ
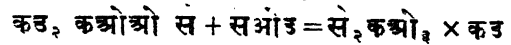
सिरकीलिन (acetylene), क$_2$ उ$_2$—कर्बन और उदजनको विद्युतचापके तापक्रम पर गरम करने से सिरकीलिन गैस बनती है खटिक कर्बिद, ख क$_2$

(कैल्शम कार्बाइड पर जल डालनेसे भी यह बन सकती है।

ख क₂ × २उ₂ ओ=ख (ओउ)₂ × क₂उ₂
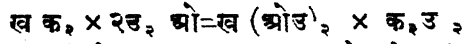
यह दुर्गन्धयुक्त नीरंग वायव्य है जो धुंएदार प्रकाशयुक्त ज्वालासे जलती है। मोटर, साइकिल, मैजिक लालटेन आदिमें रोशनी करनेके लिये इसका उपयोग किया जाता है।

शैलम, शै, २८·३.

ओषजनको छोड़कर और कोई ऐसा तत्त्व नहीं है जो शैलम्‌के समान इस भूमिमें अधिक पाया जाता हो। यह तत्त्व बहुधा शैल ओषिद, शैओ₂ के रूपमें उपलब्ध होता है, बहुतसे पत्थर, बिल्लूरी कांच, बालू आदिमें शैलम्‌का बहुत अंश विद्यमान रहता है। गेलूजक और थेनार्डने सं० १८६८ वि० में सबसे पहले शैलम्‌को इसके यौगिक शैलप्लविद, शैप्ल₄, में से पृथक किया था। बर्ज़ीलियसने इसके कुछ गुणोंकी परीक्षा करके इसे धातु तत्त्व निर्धारित किया पर डेवी नामक वैज्ञानिकने विस्तृत परीक्षण करके यह निश्चित किया कि यह कर्बनके समान अधातु तत्त्व है। इसे आवर्त्त संविभागके चतुर्थसमूहमें कर्बनके नीचे स्थान दिया गया है। कर्बन और इसके गुणोंमें बहुत समानता है जैसेकि निम्न यौगिकोंसे पता चलेगा।

ओषिद —	क ओ₂,	शै ओ₂
हरिद —	क ह₄,	शै ह₄
हरोपिपील —	क उ ह₃	शै उ ह₃
दारेन —	क उ₄,	शै उ₄ (शैलेन)

उपलब्धि—शैलम् का मुख्य यौगिक शैलओषिद, शैओ₂ है। इस ओषिदसे शैलम् तत्त्व निम्न विधियों द्वारा पृथक् किया जा सकता है।

(१) पांशुज-प्लव-शैलेत, पां₂ शैप्ल ६ को पांशुजम् धातुके साथ लोह नीलकामें गरम करनेसे शैलम् तत्त्व मिल सकता है। प्रक्रिया इस प्रकार है—

पां₂ शै प्ल₆ + ४पां=६ पां प्ल + शै

(२) शैल ओषिद को विद्युत भट्टा में कर्बन के साथ गरम करने से ओषिद का अवकरण हो जाता है। व्यापारिक विधिमें बालू को कोयले के साथ गरम करते हैं। प्रक्रिया निम्न प्रकार है

शै ओ₂ + २ क=शै + २ कओ
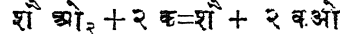
इस प्रकार लेखनिक के समान रवेदार शैलम् प्राप्त होता है।

(३) शैलओषिद को मगनीसम चूर्ण के साथ गरम करने पर यह सरलता से प्राप्त हो सकता है—

शै ओ₂ + २ म=शै + २ मओ
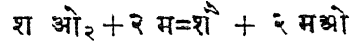
इसविधिसे चूर्ण-शैलम प्राप्त होता है। यह पसीजने लगता है और ओषजन में रक्त तप्त करने पर जलने लगता है। यह सब अम्लों में अनघुल है, केवल नोषिकाम्ल और उदप्लविकाम्लके मिश्रणमें घुल सकता है। रक्त तप्त होने पर यह जल वाष्प को विभाजित कर देता है।

शै + २उ₂ओ=शै ओ₂ + २ उ₂
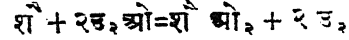
यह दाहक क्षारोंके सम्पृक्त घोलोंमें घुलनशील है। सैन्धककर्बनेत, पांशुज हरेत या नोषेत के साथ गरम करके पिघलाने पर शैलेतमें परिणित हो जाता है।

शै + २पां ओ उ + उ₂ ओ=पां₂ शै ओ₃ + २उ₂

शैलम प्लविन, नैलिन् और हरिन से संयुक्तहोकर लविद आदि यौगिक देता है—

शै + २प्ल₂=शै प्ल₄
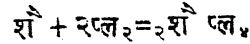
शैलउदिद या शैलेन (Siliciane)

शैलम् तत्त्व उदजनके साथ कई प्रकारके यौगिक देता है, जैसे शैलेनका चतुउदिद, शै उ₄, (दारेन कउ₄ के समान), द्विशैलेन शै₂ उ₆ (ज्वलेन, क₂ उ₆ के समान) आदि। मगनीसम् चूर्ण और बालू या चूर्ण शैल ओषिद को साथ साथ घरियामें गरम करें तो मगनीसशैलिद, म₂शै, नामक यौगिक प्राप्त होता है जो उदहरिकाम्लके संसर्ग से शैलेन, अर्थात् शैल चतुर-उदिद देता है—

म₂ शै + ४ उ ह=शै उ₄ + २ मह₂
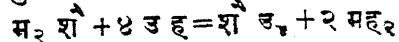
शैलेन स्फुरिनके समान वायव्य है जो वायुके संसर्गसे ही जलउठता है और श्वेत धुँएके बादल उठने लगते हैं। प्रक्रिया में शैल ओषिद बनता है:—

शै उ$_4$ + २ ओ$_2$ = शै ओ$_2$ + २ उ$_2$ ओ
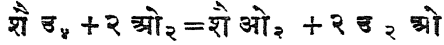
शैलहरिद, और प्लविद

कहा जाचुका है कि शैलम् तत्त्व हरिन गैसके साथ गरम करने पर जलने लगता है। प्रक्रिया में शैलहरिद, शैह$_4$ बनता है। मननीसम् और शैल-ओषिद (बालू) के मिश्रण को हरिनके प्रवाहमें गरम करने पर भी यह हरिद मिल सकता है।

शै ओ$_2$ + २ म + २ ह$_2$ = शै ह$_4$ + २ मओ
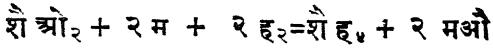
इसी प्रकार हरिन्के स्थानमें अरुणिन् क उपयोग करने में शैलअरुणिद, शैरू$_4$ बन सकता है शैलहरिद उड़नशीलद्रव है जिसका घनत्व १.५२४ है, इसकाद्रवांक—७०° और क्वथनांक ५६.८° श है। जलमें इसे प्रवाहित करने से लसदार (gelatinons) शैलओषिद बनजाता है—

शैह$_4$ + ४उ$_2$ओ = उ$_4$ + शै ओ$_4$ + ४ उ ह

या = २उ$_2$ओ + शै ओ$_2$ + ४ उ ह
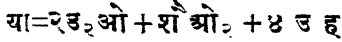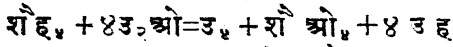
शैलम् प्लविन् गैसमें जलने लगता है और शैलप्लविद, शैप्लु$_4$, बन जाता है। शैलओषिद और उदप्लविकाम्लके संसर्गसे भी यह बनता है। उद-प्लविकाम्लका काँच पर इसी गुणके कारण प्रभाव पड़ता है अर्थात् दोनोंके संसर्गसे काँच पर चिह्न पड़ जाते।

४ उ प्लु + शै ओ$_2$ = शै प्लु$_4$ + २ उ$_2$ ओ

खटिक प्लविद, ख प्लु$_2$ बालू और गन्धकाम्लके गरम करनेसे भी शैलप्लविद प्राप्त हो सकता है—

शै ओ$_2$ + २ ख प्लु$_2$ + २उ$_2$ ग ओ$_4$ =
शैप्लु$_4$ + २ ख ग ओ$_4$ + २उ$_2$ओ
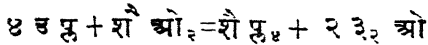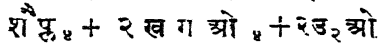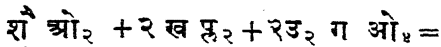
शैल प्लविद नीरंग गैस है। यह जलके संसर्ग-से अति शीघ्र लसदार शैलओषिद और उद-प्लव-शैलिकाम्ल, उ$_2$ शै प्लु$_6$ में परिणत हो जाता है—

३शैप्लु$_4$ + २उ$_2$ ओ = शै ओ$_2$ + २उ$_2$ शै प्लु$_6$
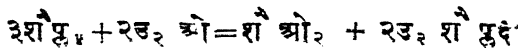
शैल कर्बिद 'शै क'

५ भाग बालू और ३ भाग कोक कोयला-में थोड़ा नमक और लकड़ी का बुरादामिला कर विद्युत् भट्टी में १५५०–२२००°श तापक्रम तक गरम करने से शैल कर्बिद (या कर्बोरण्डम्) प्राप्त होता है—

शै ओ$_2$ + ३ क = शै क + २ क ओ
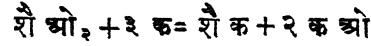
यह हीरेके समान ही कठोर पदार्थ है। इस पर आग का असर बहुत ही कम होता है अतः भट्टियोंके निर्माणमें इसका उपयोग किया जाता है। यह प्रत्येक अम्लमें अनघुल है। पिघले हुए सैन्धक क्षारमें वायु की विद्यमानतामें यह घुलना सैन्धक शैलेत बनाता है।

श क + ४ सै ओ उ + २ ओ$_2$ =
सै$_2$ क ओ$_3$ + सै$_2$ शै ओ$_3$ + २ उ$_2$ ओ
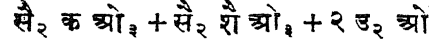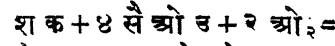
शैलओषिद (Silica) शै ओ$_2$

बालू के रूपमें शैलओषिद बहुत पाया जाता है। बालूमें शैलओषिदके अतिरिक्त कुछ लोह कण भी विद्यमान रहते हैं। शैलओषिद दो रूपोंमें पाया जाता है—(१) रवेदार जैसे क्वार्ट्ज पत्थर आदि (२) चूर्ण। क्वार्ट्ज़के नीरंग पारदर्शक सुन्दर रवे होते हैं। पर कभी कभी मांगनीज ओषिद की विद्यमानताके कारण इनमें हलका रंगभी आजाता है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा देखनेमें ये रवे षट्भुजी त्रिपार्श्व प्रतीत होते हैं। ये अत्यन्त कठोर होते हैं और इनका घनत्व २.६५ है।

ट्रिडाईमाइट—दूसरे प्रकार का रवेदार शैलओषिद है। इसके रवे षट्भुजी पत्रके आकारके होते हैं। इनका घनत्व २.२: है।

ओषजन-उदजन धौंकनीसे १७१०° तक गरम करने पर हरेक रूपका शैलओषिद पिघलने लगता है और विद्युत भट्टीमें यह २२३०°श पर उबलने लगता है। इस प्रकार पिघलनेसे यह काँचके समान नरम पड़ जाता है और इसके तार खींचे जासकते हैं, बोतल, कुप्पियाँ, गिलास आदि बनाये जा सकते हैं।

अगेट आदि क़ीमती पत्थर शैलओषिदके चूर्ण रूप हैं। शैलओषिद उच्चतापक्रम और अत्यन्त दबाव पर जलमें घुल जाता है। इस घोलसे फिर यह धीरे धीरे पृथक् होने लगता है और चूर्ण शैलओषिद जम जाता है।

रासायनिकगुण—साधारणतः यह जलमें और उद-प्लविकाम्ल को छोड़कर यह सब अम्लोंमें अनघुल है। उदप्लविकाम्लके प्रभावसे यह शैल चतुर्प्लविदमें परिणत हो जाता है।

शै ओ$_2$ + ४ उप्ल = शै प्ल$_4$ + २ उ$_2$ ओ

यह दाहकक्षारोंमें घुल सकता है। सैन्धककर्बनेत और बालूके मिश्रण को साथ साथ पिघलानेसे सैन्धक शैलेत बन जाता है।

२ सै ओ उ + शै ओ$_2$ = सै$_2$ शै ओ$_3$ + उ$_2$ ओ
शै ओ$_2$ + सै$_2$ क ओ$_3$ = सै$_2$ शै ओ$_3$ + क ओ$_2$

सैन्धक गन्धेतके साथ भी उच्च तापक्रम पर शैल ओषिद को गरम करनेसे सैन्धक शैलेत बनता है—

शै ओ$_2$ + सै$_2$ ग ओ$_4$ = सै$_2$ शै ओ$_3$ + ग ओ$_3$

शैलिकाम्ल (Silicic acids)

सैन्धक शैलेत में अम्ल छोड़ने से शैलिका अम्ल का लसदार अवक्षेप प्राप्त होता है। इस अम्ल को शैल ओषिद ही समझना चाहिये जिससे जलके एक या दो अणु संयुक्त रहते हैं। इस अवक्षेपको वायु में सुखाने पर केवल १६ प्रतिशत जल रह जाता है। और शेषजलउड़ जाता है। शैलम् तत्त्व चतुर्शक्तिक है अतः इसको ओषिद और अम्ल निम्न प्रकार सूचित किये जा सकते हैं—

ओ=शै=ओ, ओ=शै<ओउ ओउ, ओउ ओउ >शै< ओउ ओउ

ओषिद मध्यशैलिकाम्ल पूर्वशैलिकाम्ल

शै ओ$_2$,—शैलओषिद

शै ओ$_2$ + उ$_2$ ओ = उ$_2$ शै ओ$_3$ + मध्यशैलिकाम्ल
शै ओ$_2$ + २उ$_2$ ओ = उ$_4$ शै ओ$_4$ पूर्वशैलिकाम्ल
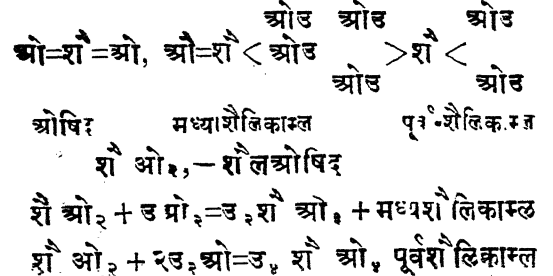
शैलिकाम्ल के लवणों को शैलेत कहते हैं सैन्धककर्बनेत और बालू की उपयुक्त मात्रा साथ साथ पिघलाने से सैन्धक पूर्व शैलेत, सैउशै ओउ और सैन्धक मध्य शैलेत सै$_2$ से ओ$_3$ दोनों बनते हैं:—

स$_2$ क ओ$_3$ + शै ओ$_2$ = सै$_2$ शै ओ$_3$ + क ओ$_2$
सैन्धकमध्यशैलेत

सै$_2$ शै ओ$_3$ + सै$_2$ क ओ$_3$ = से$_4$ शै ओ$_4$ + क ओ$_2$
सैन्धक पूर्वशैलेत
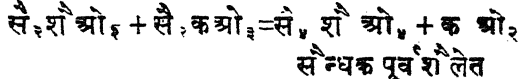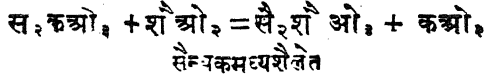
कलाद्र शैल ओषिद सैन्धकशैलेत के हलके घोल को हलके उदहरिकाम्ल के हलके घोल की अधिक मात्रा में धीरे धीरे डाल कर अच्छी तरह हिलाने से शैलओषिद का अवक्षेप नहीं प्राप्त होता है यद्यपि प्रक्रिया द्वारा शैल ओषिद अवश्य बनता है—

सै$_2$ शै ओ$_3$ + २ उह = २ सै ह + (शै ओ$_2$ + उ$_2$ ओ)
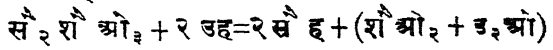
इस प्रकार घोल को कलार्द्र घोल (Colloidal) कहते है। संक्षीण गन्धिद के कलार्द्रघोल का वर्णन पहले दिया जा चुका है। शैलओषिद के कलार्द्र घोल को एक हद तक तो सुखाकर संपृक्त किया जा सकता है पर इसमें अधिक सुखाने पर शैलओषिद एक प्रकार की झिल्ली (Jelly) में परिणत हो जाता है। लवणों के घोल डालने से कलार्द्र घोल का अधः क्षेपन (coagwlation) किया जा सकता है, अर्थात् शैलओषिद के स्थूल कण पृथक किये जा सकते हैं।

शीशा या काँच(Glass)

क्षारधातुओं के शैलेतों को खटिक या सीस शैलेत के साथ मिश्रित करके पिघलाने से काँच बनता है। काँच बेरवा अघुल पदार्थ है। और इस पर अम्लों का (उद प्लविकाम्ल को छोड़ कर) कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः रासायनिक पदार्थों को रखने लिये काँचसे अधिक उपयोगी और सस्ते बर्तन किसीभी पदार्थके नहीं होसकते हैं। इसमें विशेष गुण यह है कि पिघला हुआ काँच ठंडा होनेपर एक

ऐसी अवस्थामें आजाता है कि इसे फूँककर मोड़कर, और साँचोंमें ढालकर जिस रूपमें चाहें बना सकते हैं। इसीलिये इसके पात्र आसानीसे बन सकते हैं।

काँच बनानेके भिन्न-भिन्न विधियाँ है। किसी मिट्टीके बर्तनमें बालूमें सैन्धक या पांशुज कर्बनेत या गन्धेत अथवा चूनेका पत्थर मिलाकर रक्त तप्त घरके पिघलाते हैं। भिन्न भिन्न धातु ओषिदों की विद्यमानता के कारण काँचमें नीला, हरा या लाल रङ्ग आजाता है। नीरङ्ग काँच बनानेके लिये यह आवश्यक है कि बालूमेंसे धातुओं के ओषिद पहलेसे ही पृथक् कर लिये जायं।

चीनी मिट्टीके भी बर्तन बनाये जाते हैं। इसमें बहुधा स्फट शैलेत होता है। एसबेस्टसमें मगनीस खटिक शैलेत होता है।

वैज्ञानिकीय

(ले० श्री अमीचन्द जी विद्यालंकार)

हवा की चाल

मी. प्र. घ.	फी. प्र. से.	कैसी
१	१·४७	चलती मालूम नहीं होती
२	२·९३	कुछ २ मालूम होती है
३	४·४	"
४	५·८७	हलकी हवा समीर
१०	१४·६७	कुछ तेज़ हल्की हवा
१५	२२·७	"
२०	२९·३	झोंका
३०	४४	तेज़ हवा (पवन)
३५	५१·३	"
४०	५८·६	बहुततेज़ (झंझा)
४५	६६·०	"
५०	७३·३	आँधी (प्रचण्ड पवन)
७०	१०२·७	"
८०	११९·३	तूफ़ान
१००	१४६·६	प्रचण्ड तूफ़ान जिससे पेड़ उखड़ेपड़ें

संसार के सब से बड़े १० द्वीप

(१)	आस्ट्रेलिया	२९७५०00 व॰ मी॰
(२)	ग्रीनलैण्ड	८२५००० "
(३)	न्यूगिनी	३३०००० "
(४)	बोर्नियो	२८०००० "
(५)	बौफिनलैण्ड	२३६००० "
(६)	मैडगास्कर	२२८००० "
(७)	सुमात्रा	१६०००० "
(८)	ग्रेटब्रिटेन	८८००० "
(९)	शियूर (जापान)	८७५०० "
(१०)	सिलेबिस	७२००० "

भिन्न भिन्न पशुओं की हृदय की धड़कन की गति प्रति मिनिट

हाथी	२६	से	२८	तक
घोड़ा	२६	से	४०	तक
गधा	४६	से	५०	तक
बैल	४०	से	५०	तक
मनुष्य	७०	से	८०	तक
भेड़	७०	से	८०	तक
बकरी	७०	से	८०	तक
सुवर	७०	से	८०	तक
कुत्ता	९०	से	१००	तक
बिल्ली	१२०	से	१४०	तक
शशक	१२०	से	१५०	तक
पक्षी	१२०	से	१८०	तक

खून का एक चक्र पूरा करने का समय

कुत्ता	१५ से १७ सेकण्ड
बकरा	१४ सेकण्ड
शशा	८ सेकण्ड
गिलाहरि	४½ सेकण्ड
आदमी	२३ सेकण्ड

प्राणियों में खून की मात्रा अपने शरीर का

जवन मनुष्य	तीसवाँ भ.ग
घोड़ा	अठरहवाँ भाभ
बैल	तेरहवाँ भाग
भेड़	बीसवाँ भाग
बकरी	पचीसवाँ भाग
सुवर	अठाइसवाँ भाग
कुत्ता	अठाइसवाँ भाग
बिल्लो	बीसवाँ भाग
शशक	तीसवाँ भाग
पक्षी	उनतीसवाँ भाग

आँख चाल

	प्र॰ घं॰	प्रति॰ मि॰
घोड़ा सादी चाल	४ मी॰	१·९ ग.
" टुड़की	६	४·४
" सरपट	१५	७·३
घुड़ दौड़ में	३०	१४·५
शिकारी कुत्ता	५६	२७·३
एक्स प्रेसगाड़ी	६०	२६·३
कबूतर	६०	२६·३
बाज	६६	३३·७५
रचैली	१४८	७३
शब्द		३६६
प्रकाश		१८६००० मी॰
बेतार की तार की लहर		१८६००० मी.

२० सब से ऊँचे पहाड़

गौरी शंकर	(एवरेस्ट) हिमालय	२६१४२ फी॰
दपसंग	कराकोरम	२८२५० फी॰
कांचन जंगा I	(हिमालय)	२८१५०
" II		२७८०३
	(")	
मकालू	(")	२७७६०
धवलागिरि	(")	२६८००
नन्द पर्वत	(")	२६६२६
नन्दा देवी	(")	२५ ००
तिराक मीर	अफगानिस्तान	२५४००
उलुगमुस्तघ	तिब्बत	२५३००
एलिंगगंगरी	"	२४०००
तेंगरी खाँ थियानशान		२४०००
घमुलारी	हिमालय	२४०00
त्रिशूल	"	२ ४००
दूनागिरि	"	२३ ००
एकौंकागुवा	एण्डीज़	२३८००
टुपंगेटो	एण्डीज़	२३०००
केदारनाथ	हिमालय	२२८००
पंच चूली	"	२२७००
अपी	"	२२७००

तीस वर्ष के उम्र के आदमी की ऊँचाई के अनुसार उसका भार और उसकी छाती की चौड़ाई

ऊँचाई	भार	छाती
५—०	१—१६ सेर	३३½
५—१	१—१८	३४
५—२	१—२०	३५
५—३	१—२३ ॥	३५
५—४	१—२६ ॥	३६
५—५	१—२८	३७
५—६	१—३० ॥	३७ ॥
५—७	१—३४ ॥	३८
५—८	१—३४ ॥	३८½
५—९	१—३७ ॥	३९
५—१०	२—०	३९ ॥
५—११	२—३	४०
६—०	२—५	४० ॥
६—१	२—७	४१

भिन्न भिन्न जातियों की औसतन ऊँचाई

लैपलैण्डर	६०·५ इञ्च	फयूजियन	६५·४
बुशमैन	६२	जर्मनी	६६·२
मलायन	६३·१	अरबी	६६·२

पिरूवियन	६३.१	बैलिजयन	६·२६
बर्मी	६३·३		
फिन	६३·८	डेनमार्कवासी	६६·२
चीनी	६४·२	आयरिस	६७·४
मगयर	६४·२	अंग्रेज	६७·४
ज्यू	६४·६	स्वीडिश	६७·४
फ्रैंच	६५	पोलीनेशियन	६९·५
हिन्दू	६५	पैटोनेनियन	७०३
एस्किमी	६५		
रशियन	६५·४		

महा सागर
अधिक से अधिक

सागर	क्षेत्रफल ब' मी	गहराई
प्रशान्त	६३९·६०००	३२०८९ फी'
एटलान्टिक	३१५३० ०००	३११६८ "
हिन्द	२८३५० ०००	२२६६६ "
आर्कटिक	५२४१६००	१३२००० "
एण्टार्कटिक	२००० ०००	

औसत गहराई

प्रशान्त	१२ ५६४ फी'
एटलान्टिक	१० ३६ ८ फी'
हिन्द	११ ७ ९० फी'
एण्टार्कटिक	४६२० फी'
सब सागर	११४७२ फी.

प्रति मिनिटश्वास की संख्या

घोड़ा	६	से	१०
बैल	१०	से	१५
भेड़	१२	से	२०
बकरी	१२	से	२०
कुत्ता	१५	से	२८
बिल्ली	२०	से	३०
शशक	५०	से	६०
ह्वेल मछली	४	से	५
मनुष्य	१२	से	१६

मनुष्य के अंगों का औसत भार

अंग	पुरुष	स्त्री
हृदय	५ से ६ छटाक	४ से ५ छं०
फेफड़ा दायाँ	११ ॥ छंटाक	
" बायाँ	९ ॥ छंटाक	
पेट	... २ से २ ॥ छटाक	
लीवर	... २२ से ३० छंटाक	
तिल्ली	... २ ॥ से ३ ॥ छंटाक	
गुर्दे	... २ से २ ॥ छंटाक	
दिमाग पुरुष ...	... २५ छंटाक	
" स्त्री	२२ छंटाक	

भिन्न भिन्न जातियों के दिमाक का औसत भार

स्कौटिश	५ १ औस
जर्मन	४ ९· ६
अंग्रेज	४९· ५
फ्रैंच	४७·६
जूलु	४७·५
चीना	४७·२
इटलियन	४६·६
हिन्दू	४९·१
एस्कीयो	४३·६

पचने में समय

	घ' मि'
चावल	१ ·
कच्चे अण्डे	१ ३०
सेब	१ ३०
उबाला हुआ साग	१ ४५
" दूध	२ .
भूने आलू	२ ३०
उबाले मटर	२ ३०
" अण्डे	३०
भुना मांस	३०
ताजी रोटी	३ १५
उबाले आलू	३ ३०
मक्खन	३ ३०
पनीर	३ ३०

सूर्य-सिद्धान्त

[ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस० सी० एल० टी० विशारद]

गतांक से आगे

युतिकाल का साधन—

ग्रहवद्द्युनिशेभानां कुर्याद्दृक्कर्म पूर्ववत् ।
ग्रहमेलकवच्छेषं ग्रहभुक्त्यादिनानिच ॥१४॥
एष्योहीने ग्रहे योगो ध्रुवकादधिके गतः ।
विपर्ययाद्वक्रगते ग्रहे ज्ञेयः समागमः ॥१५॥

अनुवाद—(१४) पहले जिस तरह युतिकालिक ग्रहोंका दिनमान और रात्रिमान जाननेको कहा गया है उसी तरह नक्षत्रों का भी दिनमान और रात्रिमान साधन करके उनका आक्षदृक्कर्म संस्कार करना चाहिये। इसके पश्चात् जैसे ग्रहों का परस्पर युतिकाल और युतिस्थान जाना जाता है उसी तरह केवल ग्रह की गतिसे ग्रह और नक्षत्रका युतिकाल और युतिस्थान जान लेना चाहिये। (१५) यदि ग्रहका आयन-आक्ष-दृक्कर्म-संस्कृत भोग नक्षत्र के आक्षदृक्कर्म-संस्कृत ध्रुवकसे कम हो तो समझना चाहिये कि नक्षत्र और ग्रहका योग होनेवाला है और यदि अधिक हो तो समझना चाहिये कि योग हो चुका है। परन्तु यदि ग्रह वक्री हो तो इसका उलटा समझना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—इन दोनों श्लोकोंमें जो नियम बतलाये गये हैं उनकी व्याख्या ग्रहयुत्यधिकारमें आ चुकी है। यहां ग्रहका तो आयन और आक्ष दोनों दृक्कर्म करने को कहा गया है परन्तु नक्षत्रका केवल आक्षदृक्कर्म करने को कहा गया है। इसका कारण स्पष्ट है। क्योंकि ग्रहका जो भोगांश स्पष्टाधिकार के अनुसार आता है वह कदम्बाभिमुख होता है इसलिए उसमें आयनदृक्कर्म का संस्कार करने से वह ध्रुवाभिमुख होता है। अब यदि इसमें आक्षदृक्कर्म का संस्कार किया जाय तो इसका भोगांश समप्रोतवृत्तमें आता है। परन्तु नक्षत्रों के जो ध्रुवक दिये गये हैं वे ध्रुवाभिमुख हैं इसलिए इनमें केवल आक्षदृक्कर्म का संस्कार करने की आवश्यकता पड़ती है इस प्रकार ग्रह और नक्षत्र के भोगों में किसी इष्ट कालमें जो अंतर होता है उसको ग्रह की दैनिक गति से भाग देने पर यह जाना जाता है कि कितने समय में ग्रहका नक्षत्रसे योग होगा या होने वाला है और बातें सब ग्रहयुत्यधिकार में बतलाये गये नियम के अनुसार ही समझनी चाहिए। यहाँ सुगमता यह है कि नक्षत्र स्थिर होते हैं इस लिए केवल एक ग्रह के संबन्ध की करनी पड़ती है।

नक्षत्रों के योगतारों के पहचानने की रीति—

फाल्गुन्योर्भाद्रपदयोस्तथैवाषाढयोर्द्वयोः ।
विशाखाश्विनिसौम्यानां योगतारोत्तरास्मृताः ॥१६॥

पश्चिमोत्तरतारा या द्वितीया पश्चिमे स्थिता ।
हस्तस्य योगतारा सा श्रविष्ठायास्य पश्चिम ॥१७॥

ज्येष्ठा श्रवण मैत्राणां बार्हस्पत्यस्य मध्यमा ।
भरण्याग्नेय पित्र्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा ॥१८॥

रोहिण्यादित्यमूलानां प्राची सार्पस्यचैव हि।
यथा प्रत्यत्र शेषाणां स्थूला स्याद्योगतारका ॥१९॥

पूर्वस्यां ब्रह्महृदयांशकैः पञ्चभिःस्थितः।
प्रजापति र्वृषान्तेऽसौ सौम्येऽष्ट त्रिंशदंशकैः ॥२०॥

अपांवत्सस्तु चित्राया उत्तरेऽशैस्तु पञ्चभिः।
वृहत्किञ्चिदतो भागैरापः षड्भिस्तथोत्तरे ॥२१॥

इत्यष्टमोध्याय :

अनुवाद—(१६) पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ उत्तराषाढ़; विशाखा, अश्विनी और मृगशिरा नक्षत्रों में से प्रत्येक नक्षत्र का उत्तरवाला तारा उस नक्षत्र का योग तारा है। (१७) हस्तनक्षत्र के पश्चिमोत्तर दिशामें जो दो तारे हैं उनमें दूसरा पच्छिमवाला तारा इस नक्षत्रका योगतारा है और धनिष्ठा नक्षत्र के दो उत्तरवाले तारों में भी पच्छिमवाला तारा योग तारा है। (१८) ज्येष्ठा श्रवण, अनुराधा और पुष्प नक्षत्रोंके बीचवाले तारे प्रत्येक के योग तारे हैं। भरणी, कृत्तिका, और रेवती नक्षत्रके दक्षिणवाला तारा प्रत्येक नक्षत्रोंका योग तारा है। (१९) रोहिणी, पुनर्वसु, मूल और आश्लेषा नक्षत्रोंका पूर्व वालातारा प्रत्येक का योग तारा है। २८ नक्षत्रोंमें से अब जितने शेष हैं। उनमें अर्थात् आर्द्रा चित्रा, स्वाती, अभिजित और शतीभषक नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्रका सबसे बड़ा तारा उस नक्षत्र का योग तारा है। (२०) ब्रह्म हृदय तारे से ५ अंश पूर्व की ओर प्रजापति नामक तारा वृषके अंतमें है। इसका उत्तर विक्षिपांश ३८ है। (२१) चित्रा तारे से ५ अंश उत्तर की ओर अपांवत्स तारा है जिससे ६ अंश उत्तर कुछ बड़ा आप नामक तारा है।

विज्ञान भाष्य—१६—१९श्लोकों में यह बतलाया गया है कि प्रत्येक नक्षत्र में कौन तारा मुख्य माना गया है जिसका ध्रुवक और शर पहले बतलाये गये हैं। ऐसे मुख्य तारे को योग तारा कहा गया है। आजकल इन योगताराओं के सम्बन्धमें विद्वानों में कुछ मतभेद है। आगे एक सारणी दीजायगी जिससे पता चलेगा कि आजकल कौन विद्वान किस तारे को योगतारा मानता है। नक्षत्रके लिए कभी कभी उनके देवताओंके नामों का प्रयोग किया गया है इसलिए सुविधाके लिए यह भी बतलाया जायगा कि किस नक्षत्रों के स्वामी कौन देता है। तथा प्रत्येक नक्षत्रमें कितने तारे हैं। तारोंको संख्याओंमें प्राचीन आचार्योंमेंभी मत-भेद है जैसा कि सारणीसे पता चलेगा।

ब्रह्महृदयका ध्रुवक १राशि २२ अंश बतलायागया है। इससे ५ अंश पूर्व प्रजापतिका तारा है। इसलिए प्रजापतिका ध्रुवक १ राशि २७ अंश है श्लोकमें बतलाया गया है कि प्रजापति वृषराशिके अंतमें है परन्तु इसका अर्थ यही लेना चाहिए कि यह वृषराशिके अंतके पास है। चित्रा तारे का दक्षिण शर २ है और अपांवत्स तारा चित्रासे ५ अंश उत्तर है इसलिए अपांवत्सका उत्तर शर ३ अंश हुआ। आप तारा अपांवत्ससे ६ अंश उत्तर है इसलिए इसका उत्तर शर ९ अंश हुआ।

तारों और नक्षत्रोंकी पहचानके लिए ३ आकाश चित्र दिये जायगे जिनसे यह सहज ही जाना जा सकता है कि कौन नक्षत्र किस समय आकाशमें कहां देख पड़ता है।

नक्षत्रके देवता और तारोंकी संख्या

(मुहूर्त चिंतामणि तथा भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ ४५८)

क्रम संख्या	नक्षत्रोंका नाम	नक्षत्र के स्वामी या देवता	तैत्तिरीय संहिता	नक्षत्र कल्प	वृद्धगार्गीय संहिता	नारद संहिता	वराह मिहिर	खंडखाद्यक	लल्लकृत रत्नकोश	शाकल्य ब्रह्मसिद्धान्त	श्रीपतिकृत रत्नमाला	मुहूर्त तत्व	मुहूर्तचिंतामणि	नक्षत्र के तारों के नाम Kaye के Hindu astronomy के अनुसार
१	अश्विनी	अश्विनी कुमार	२	२	२	३	३	२	३	२	३	३	३	β, γ Arietis
२	भरणी	यम		३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	35, 39, 41 Arietis
३	कृत्तिका	अग्नि	७	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	η Tauri, etc.
४	रोहिणी	ब्रह्मा	१		५	५	५	५	५	५	५	५	५	$\alpha, \theta\ \gamma, \delta, \epsilon$ Tauri
५	मृगशिरा	चन्द्रमा		३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	γ, ϕ_1, ϕ_2, Orionis
६	आर्द्रा	रुद्र	१या२	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	α Orioniss
७	पुनर्वसु	अदिति	२	२	२	४	५	२	४	२	४	४	४	β, α Geminorum
८	पुष्य	बृहस्पति	१	१	१	३	३	१	३	३	३	३	३	θ, δ, γ Cancri
९	आश्लेषा	सर्प		६	६	५	६	६	५	५	५	५	५	$\epsilon, \delta, \sigma, \eta, \rho$ Hydrae
१०	मघा	पितर		६	६	५	५	६	५	५	५	५	५	$\alpha, \eta, \gamma, \xi, \mu, \epsilon$, Leonis
११	पूर्वा फाल्गुनी	भग	२	२	२	२	८	२	२	२	२	२	२	δ, θ Leonis
१२	उत्तरा फाल्गुनी	आर्यमा	२	२	२	२	२	२	२	२	५	५	५	β, 93 Leonis

क्रम संख्या	नक्षत्रों का नाम	नक्षत्रों के स्वामी या देवता	तैत्तिरीय संहिता	नक्षत्र कल्प	वृद्ध गार्गीय संहिता	नारद संहिता	वराह मिहिर	खंड खाद्यक	लल्ल कृत रत्न कोश	शाकल्य ब्रह्म सिद्धान्त	श्रीपतिकृत रत्न माला	मुहूर्त तत्व	मुहूर्त चिंतामणि	नक्षत्रके तारोंके नाम Kaye के Hindu के astronomy अनुसार
१३	हस्त	सूर्य		५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	δ, γ, ε, α, β Corvi
१४	चित्रा	बिश्कर्मा	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	α Virginis
१५	स्वाती	पवन	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	α Bootis
१६	विशाखा	इन्द्र अग्नि	२	२	२	२	५	२	४	२	४	४	४	γ, β, α, < Librae
१७	अनुराधा	मित्र		४	४	४	४	४	४	३	४	४	४	δ, β, π Scorpii
१८	ज्येष्ठा	इन्द्र	१		३	३	३	३	३	३	३	३	३	α, τ, Γ Scorpii
१९	मूल	राक्षस	१या२		६	११	११	२	११	६	११	११	११	λ, μ, x, t, < θ ξ, ε Scorpii
२०	पूर्वाषाढ़	जल		४	४	४	२	४	२	४	४	४	२	δ, ε, Sagittarii
२१	उत्तराषाढ़	विश्वदेव		४	४	२	८	४	२	४	४	३	२	τ, ζ Sagittarii
	अभिजित	ब्रह्मा	१		३			३	३	३	३	३	३	α, ε, ζ Lyrae
२२	श्रवण	विष्णु	१	३	३		३	३	३	३	३	३	३	α, β, γ, Aquilae
२३	धनिष्ठा	वसु	४	५	४		५	५	४	५	४	४	४	β, α, γ, δ Delphin
२४	शतभिषक	वरुण	१	१	१	१००	१००	१	१००	१००	१००	१००	१००	λ Aquarii, etc.
२५	पूर्वा भाद्रपद	अजपाद		२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	α, β Pegasi
२६	उत्तरा भाद्रपद	अहिर्बुध्न्य	४	२	२	२	८	२	२	२	२	२	२	γ Pegasi, α Andromedae
२७	रेवती	पूषा	१	१	४	३२	३२	१	३२	३२	३२	३२	३२	ξ Piscium, etc.

किस नक्षत्र का कौन योग तारा है (भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५६)

क्रमसंख्या	नक्षत्र का नाम	कोलब्रुकके मत से	बेंटली और केरोपंत के मत से	व्हिटने और बर्जेस के मत से	बापूदेव के मत से	वें.बा.केत-करके मतसे	शंकर बाल-कृष्णदीक्षित के मत से	चन्द्रशेखर सिंहसामंत का सिद्धान्त दर्पणभूमिका पृ० ५६,५७
१	अश्विनी	α Arietis	β Arietis	β Arietis	α Arietis	β Arieitis	β Arietis	α Arieti
२	भरणी	μ or 35.	35 Arietis	35 Arietis	35 Arietis	41 Arietis	41 Arietis	41 Arieti
३	कृत्तिका	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri
४	रोहिणी	α Tauri अर्थात् Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran	Aldebran	Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran
५	मृगशिरा	λ Orionis	116 Tauri	λ orionis	λ orionis	γ orionis	λ orionis	λ orionis
६	आर्द्रा	α Orionis	133Tauri	α orionis	α orionis	α orionis	γ Geminorum	α orionis
७	पुनर्वसु	Pollux अर्थात् β Geminorum	Pollux	Pollux	Pollux	Pollux	Pollux	β Geminorum
८	पुष्य	δ cancri	δ cancri	δ cancri	δ cancri	δ cancri	δ cancri	Proesepe
९	अश्लेषा	α cancri	49 cancri	ϵ Hydrae	α cancri	α cancri	γ Hydrae	γ Hydrae
१०	मघा	α Leonis अर्थात् Regulus	Regulus	Regulus	Regulus	Regulus	Regulus	Regulus
११	पूर्वाफाल्गुनी	δ Leonis	θ Leonis	δ Leonis	δ Leonis	θ Leonis	θ Leonis	δ Leonis
१२	उत्तरा फाल्गुनी	β Leonis अर्थात् Denebola	Denebola	Denebola	Denebola	Denebola	Denebola	β Leonis
१३	हस्त	γ or δ corvi	δ corvi	δ corvi	λ or δ corvi	δ corvi	δ corvi	δ corvi
१४	चित्रा	Spica अर्थात् α Virginis	spica	spica	spica	spica	spica	spica
१५	स्वाती	Arcturus अर्थात् α Bootes	Arcturus	Arcturus	Arcturus	Arcturus	Arcturus	Arcturus

क्रम संख्या	नक्षत्र का नाम	कोलब्रुकके मत से	बेंटली और केरोपंत के मत से	व्हिटने और बर्जेस के मत से	बापूदेव के मत से	बं.बा.केतकरके मतसे	शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मत से	चंद्रशेखर सिंहसामंत का सिद्धान्त दर्पणभूमिक पृ० ५६,५७
१६	विशाखा	∝ or K Librae	24 Librae	24 Librae	∝ or K Librae	24 Librae	∝ Librae	∝ Librae
१७	अनुराधा	δ Scorpii	β scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii
१८	ज्येष्ठा	∝ Scorpii अर्थात् Antares	Antares	Antares	Antares	Antares	Antares	Antares
१९	मूल	v or 34scorpii	34 scorpii	λ scorpii	34 scorpii	45 ophiuchi	λ Scorpii	λ Scorpii
२०	पूर्वाषाढ़	δ Saggittarii	δ Saggittarii	δ Sagit-	δ Sagittarii	δ Sagittarii	λ Sagittarii	δ Sagittari
२१	उत्तराषाढ़ अभिजित	t Sagittarii ∝ Lyrae अर्थात् Vega	ϕ Sagittari Vega	τ Sagittarii Vega	t Sagittarii Vega	[illegible] Sagittarii Vega	π Sagittarii Vega	ϕ Sagittari Vega
२२	श्रवण	∝ Aquilae अर्थात् Altair	Altair	Altair	Altair	Altair	Altair	Altair
२३	धनिष्ठा	∝ Delphini	∝ Delphini	β Delphini	∝ Delphini	∝ Delphini	∝ Delphini	∝ Delphini
२४	शतभिषक	λ aquarii	λ aquarii	λ Aqarii	λ Aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii
२५	पूर्वाभाद्रपद	Markab अर्थात् ∝ Pegasi	Markab	Markab	Markab	Markab	Markab	β Pegasi
२६	उत्तराभाद्रपद	∝ Andromedae अर्थात् Alpherat	γ Pegasi (Algenib, ∝ Andromedae	Algenib ∝ Andromedae	∝ Andromedae	∝ Andromedae	γ Pegasi (Algenib)	∝ Andromeda
२७	रेवती	γ Piscium	γ Piscium	λ Piscium	γ Piscium	γ Piscium	γ or μ Piscium	η Piscium

इन सारणियों में तारों के अङ्गरेज़ी नाम विलक्षण ढंग से दिये हुए हैं इस लिये यह बतला देना आवश्यक है कि ये नाम किस प्रकार रखे गये हैं। अङ्गरेजी में तारा पुञ्जों के जो नाम प्रचलित हैं वह अधिकतर लैटिन और यूनानी (Greek) भाषा को से लिये गये हैं। प्रत्येक तारापुंज के नाम के पहले कोई यूनानी अक्षर जोड़ कर रखा गया है। इन अक्षरों का क्रम अधिकतर इस प्रकार रखा गया है कि उस पुंज में जो तारा सबसे चमकीला और बड़ा है उसका नाम पहले अक्षर 'आल्फ़ा' से प्रकट किया गया है। उसके बाद जो तारा उससे छोटा है उसका नाम दूसरे अक्षर 'बीटा' से प्रकट किया गया है, इत्यादि। कुछ प्रधान तारोंके नाम इस तरह तो रखे ही गये हैं परन्तु साथ ही साथ उनके साहित्य में प्रचलित नाम भी अब तक व्यवहार में आते हैं।

यदि यह मालूम हो कि किसी तारे की संस्कृत साहित्य में क्या नाम प्रचलित है और अङ्गरेजी साहित्य में क्या नाम है तो तारों के पहचानने में बड़ी सुविधा होती है। इस लिए पहले यह बतला कर कि यूनानी भाषा के अक्षर और उनके नाम क्या हैं, एक सारिणी से यह भी बतलाया जायगा कि तारापुंजों के नाम संस्कृत और अङ्गरेजी तथा लेटिन और यूनानी भाषाओं में क्या है। इन अक्षरों की जगह हमारे आकाश चित्र में हिन्दी के अङ्क क्रमानुसार प्रयुक्त किये जायंगे जैसा कि अन्तिम स्तम्भ बतलाया गया है।

यूनानी अक्षर	नाम	उच्चारण	समान उच्चारण के रोमन अक्षर	हमारे आकाश चित्र में प्रयोग किये हुए अंक
α	alpha	आल्फ़ा	a	१
β	Beta	बीटा	b	२
γ	Gamma	गैमा	g	३
δ	Delta	डेल्टा	d	४
ξ	Epsilon	एपसाइलन	e short	५
ξ	Zeta	ज़ीटा	z	६
η	Eta	ईटा	e long	७
θ	Theta	थीटा	th	८
V	Iota	आयोटा	i	९
K	Kappa	कैपा	k	१०
λ	Lambda	लैमडा	l	११
μ	Mu	म्यू	m	१२

यूनानी अक्षर	नाम	उच्चारण	समान उच्चारण के रोमन अक्षर	हमारे आकाश जिसमें प्रयोग किया हुआ अंक
γ	Nu	न्यू	n	१३
ξ	xi	क्साई	x	१४
o	omicron	ओमीक्रोन	o short	१५
π	Pi	पाई	p	१६
ρ	Rho	रो	r	१७
σ	Sigma	सिग्मा	s	१८
τ	Tau	टा	t	१९
υ	upsilon	अपसाइलन	u	२०
ϕ	Phi	फाई	ph	२१
x	chi	कोई	ch	२२
ψ	Psi	प्साई	ps	२३
ω	omega	ओमेगा	o long	२४

१२ राशियों के नाम—

२ संस्कृत के पर्याय	४ संस्कृत साहित्य में प्रचलित नाम	अंग्रेजी नाम	३ लैटिन नाम
क्रियः	मेष	Ram	Aries
तावुरि	वृष	Bull	Taurus
जितुमः, जित्तमः	मिथुन	Twins	Gemini
कुलीर	कर्क	crab	cancer
लेय	सिंह	Lion	Leo
पाथोन, पार्थेय	कन्या	virgin	Virgo
जूकः	तुला	Balance	Libra
कौर्प्यः	वृश्चिक	scorpion	scorpio
तौक्षिक	धनु	Archer	sagittarius
आलोकेर (?)	मकर	capricorn	capricornus
हृद्रोग	कुंभ	Water-bearer	Aquarius
इत्थय, इथुसी (?)	मीन	Fishes	Pisces

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी.। इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्सकी बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

मध्यमाधिकार ... ... ॥=)

स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)

त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० ... बी०के मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... ।)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

भाग १ ... ... २॥)

भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१५६ Reg. No. A.708

भाग २६ Vol. 26. कुम्भ, मीन १९८४ संख्या ५, ६ No. 5, 6

फरवरी, मार्च १९२८

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय सूची

१—पत्तों के कार्य—[ले० श्री० पं० शंकर राव-जोशी, डिप्० ए जी०, एफ० आर० एच० एस] १७७
२—संसृति तथा विकास—[ले० श्री० गोपाल] १८५
३—रेडियो—[ले० श्री गोविन्द राम तोशनीवाल जी, एम० एस-सी] १९२
४—मक्खन, घी और पनीर की जांच—[ले० श्री रामचन्द्र भार्गव एम० बी०, बी०एस०] १९७
५—लुई पास्ट्यूर—[ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०] २०३
६—मिसमेयो—[ले० श्री तत्ववेत्ता] ... २०९
७—समुद्र यात्रा की बीमारी—[ले० श्री हरिवंशजी] २१५
८—सैन्धकम् और पांशुजम्—ले० श्रीसत्य-प्रकाश, एम० एस-सी] २१७
९—वानजावीन समुदाय—[ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०] २२५
१०—समालोचना—[सत्यप्रकाश] ... २३६
११—वैज्ञानिकीय—[अमीचन्द विद्यालंकार] ... २३६
१२—वैज्ञानिक परिमाण—[ले० श्री डा० निहालकरण सेठी] २३७
१३—सूर्य-सिद्धान्त—[ले० श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव] २४४

विज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग २६ | मीन, संवत् १९८४ | संख्या ५, ६

पत्तोंके कार्य

[ले० श्री० पं० शंकरराव जोशी, डिप्० एजी०, एफ़० आर० एच० एस]

पहिले, तनेपर पत्तेके रचनाक्रम, आदिपर विचार कर आये हैं। इस परिच्छेदमें पत्तोंके उन कार्यों पर विचार किया जायगा, जिनके बिना पौधा जीवित ही नहीं रह सकता है। ये कार्य हैं—१ स्वेदन-क्रिया २ पाचन-क्रिया और ३ श्वासोच्छ्वास-क्रिया।

स्वेदन-क्रिया

पहिले लिख आये हैं कि पानी पौधेके भोज्य-तत्वोंमेंसे है। इससे पौधेको उदजन और ओषजन मिलता है। अन्य-भोज्य पदार्थ भी पौधेको पानी द्वाराही प्राप्त होते हैं। पानी कोष-रस बनकर पौधेके भिन्न भिन्न अवयवोंमें पहुँच कर कोष-भित्तिका, प्रोटोप्लाज़म, माँडी आदि बनाता है। जड़ें ही जमीनमें से पानी सोखकर पौधेके भिन्न-भिन्न अंगमें पहुंचाती हैं।

पौधेमें पानीका आवागमन तीन कारणोंसे होता है। १ मूलद्वारा सोखे हुए पानी का दबाव, २ स्वेदन क्रिया, ३ पौधेकी बाढ़। प्रथम दो कारणोंसे पानी ज़ोरोंसे ऊपर चढ़ता है और तीसरेके कारण उसकी गति कुछ कम हो जाती है।

दिनके प्रकाशमें पत्ते अपने छिद्रों या रंध्रों-द्वारा वाष्पके रूपमें बहुतसा पानी वातावरणमें छोड़ते हैं। इस वाष्पीभवनकी क्रियाकोही स्वेदन-क्रियाका नाम दिया गया है। नीचे लिखे प्रयोगसे यह बात भले प्रकार समझमें आ सकती है।

प्रयोग एक गमलेको जिसमें पौधा लगा हो, वाटरप्रूफ कपड़ेसे इस प्रकार लपेट दो कि गमला अच्छी

तरहसे ढक जाय। कपड़ा तनेसे लिपटा रहना चाहिये। यह कपड़ा इसलिए लपेटा जाता है कि मट्टीमें की तरी भाप बनकर न उड़ने पावे। इस गमलेको तब धूपमें रखकर बेलजारसे ढँक दो। कुछही घंटे बाद बेलजारके भीतरकी ओर काँचपर पानीकी छोटी छोटी बूँदें दिखाई देने लगेंगी।

प्रयोग दूसरा—एक गमलेमें सूरजमुखीका पौधा बोओ। इस पौधेके पत्तोंको एक काँचकी नलीमें रखकर नलीके दोनों मुँह मजबूतीसे बन्द करदो। कुछ घंटे बाद नलीमें पानी भर जायगा।

उक्त दोनोंही प्रयोगोंसे साबित होता है कि पत्तों- मेंसे जल-वाष्प निकलकर वातावरणमें मिलती रहती हैं। पौधेको धूपमें रखनेसे स्वेदन क्रिया ज्यादा तेजीसे होने लगती है। शुष्कहवा और तापक्रमकी वृद्धिसेभी इसकी गति बढ़ जाती है। छायामें इसकी गति कम होजाती है और यही कारण है कि कमरोंमें रक्खे गमलोंको कम पानी सींचना पड़ता है।

सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे देखनेसे पत्तेके भीतर सूक्ष्म छिद्र दिखाई देते हैं। ये छिद्र बहुतही सूक्ष्म होते हैं। ये पत्र-रंध्र असंख्य नलिकाओं और धमनियोंके मुख या द्वार हैं। पत्र-रंध्र और मानव-शरीरके रोम-रंध्र करीब करीब एकही उद्देशकी पूर्ति करते हैं। जिस प्रकार मनुष्य शरीरसे रोम-रंध्र द्वारा पसीना निकलता है, उसी प्रकार पत्र-रंध्रद्वारा भी निकलता है। जलज वनस्पतियोंके पत्तोंकी ऊपरी सतह पर पत्र-रंध्र होते हैं। ये रंध्र दिनमें खुले रहते हैं और रातको बंद हो जाते हैं।

पत्ते पानीको खींचते भी हैं। जितना पानी पत्ते वाष्परूपमें हवामें छोड़ते हैं, उतनाही वे तनेमेंसे अपनी ओरका खींचते हैं। यह क्रिया दिनके प्रकाशमें जारी रहती है।

पौधेके जीवनके लिए स्वेदन क्रिया बड़े महत्वकी है। मूल द्वारा सोखा हुआ भोज्य-पदार्थ-मिश्रित जल पत्तोंमें पहुँचता है। पत्तोंमें रासायनिक क्रिया द्वारा ये भोज्य-पदार्थ एक ऐसे रसमें परिवर्तित होजाते हैं, जो पौधेका पोषण और वृद्धि करता है। भोज्य-पदार्थोंके आहार-रसमें परिवर्तित होनेके बाद जितना भी जल बच जाता है, पत्र-रंध्रोंमेंसे भाप बनकर हवामें मिल जाता है। स्वेदन-क्रियाके बंद होतेही पौधा-मृत्यु पथका पथिक बन जाता है। कारण कि, इस क्रियाके बन्द हो जानेसे पत्तोंमें जल भरा रह जायगा, जिससे पत्ता रोगी हो जायगा।

स्वेदन क्रिया द्वारा प्रतिवर्ष बहुत अधिक जल वातावरणमें छोड़ा जाता है। प्रयोगोंसे पता चलता है कि एक सेर काष्ट निर्माण करनेके लिये पौधेको दो सौ सेर जल वाष्परूपमें हवामें छोड़ना पड़ता है। और एक सेर क्षारांश तैयार करनेके लिये दो हजार सेर जल हवामें फेंका जाता है। इस परसे अनुमान हो सकता है कि इस क्रियाको जारी रखनेके लिये जड़ोंको कितना अधिक जल जमीनमेंसे सोखना पड़ता है। जड़ोंका कार्य रुकतेही पत्तोंको कुम्हला[illegible] पड़ता है और पानी सींचतेही वे फिर डहडहे हो जाते हैं।

यही बात पौधोंके स्थानान्तरित करनेमें भी पाई जाती है। पौधोंको उखाड़नेसे जड़ों परके कोमल रोम टूट जाते हैं। जिससे दूसरे स्थान पर लगा देनेके बाद भी पत्ते मुरझाये रहते हैं। स्थानान्तरित करनेके कुछ दिन बाद जड़ों पर नवीन रोम निकल आते हैं और ये अपना कार्य करने लग जाते हैं, जिससे पौधा शीघ्र हरा भरा होजाता है। नवीन रोम निकल आने तक प्रकाशमें रहनेसे पत्तोंमें वाष्पीभवनकी क्रिया जारी रहती है। इस प्रकार फेंके हुए जलकी कमीको पूरा करनेकी शक्ति जड़में न होनेसे पौधा मर जाता है। यही कारण है कि स्थानान्तर करनेके बाद पौधे पर छाया कर देते हैं। और कुछ पत्तेभी कम कर दिये जाते हैं। पौधे पर छाया कर देने और पत्तोंकी संख्या कम कर देनेसे वाष्पीभवनकी क्रिया रुक सी जाती है। हवामें ठंडक होनेसे यह क्रिया उतनी तेजी से नहीं होती। प्रयोगोंसे मालूम हो सकता है कि बरसातमें स्वेदन क्रिया धीमी होती है और गरमी- में तेजी से जारी रहती है।

पौधेके जीवनकेलिये स्वेदन-क्रिया आवश्यक तो है, किन्तु इसका बहुत ज्यादा तेजीसे जारी रहना हानिकारक है। रूखी हवा, कड़ाकेकी धूप, और वर्षाकी खींचके कारण अत्यधिक पानी भाप बनकर हवामें उड़ने लगता है। किन्तु जमीनमें पानीकी कमीके कारण जड़ें पौधेकी मांगको पूरी नहीं कर सकती हैं—आयसे व्यय बढ़ जाता है। परिणाम यह होता है कि पौधा मर जाता है। प्रकृतिने इसका उत्तम प्रबन्ध किया है। परिस्थितिके अनुसार पौधेके अवयवोंमें इस इस प्रकार परिवर्तन होजाता है कि पौधेको कमजोर बनाने या उसके जीवनको नष्ट कर डालनेमें इतना जल पत्रों द्वारा फेंका ही नहीं जा सकता।

उन देशोंमें जहां पानी कम बरसता है और गरमी ज्यादा पड़ती है, ऐसे पौधे पैदा होते हैं, जिनके पत्ते छोटे होते हैं। कई पौधोंके पत्तों में पत्र-रंध्रकी संख्या कम होती है जिससे बहुत कम पानी भाप बनकर उड़ने पाता है। बहुतसे पौधे पतझड़के मौसममें पत्र-हीन हो जाते हैं, जिससे गरमीके दिनोंमें स्वेदन क्रिया होती ही नहीं। कुछ पौधे अपनी देहमें जल संचय कर लेते हैं। जल न मिलने पर भी पौधा इस जलके कारण हरा भरा बना रहता है। और बाढ़ भी जारी रहती है। चमकीले पत्ते प्रकाशकी किरणोंका परावर्तन करते हैं, जिससे पत्तोंको ज्यादा गरमी नहीं पहुँचती है। वह भी स्वेदन क्रियामें रुकावट डालनेका एक उपाय है। पत्रों पर रोमका होना भी ऐसा ही एक उपाय है।

ज्यों ज्यों पौधेके वायवीय अवयवोंका विस्तार होता जाता है, जड़ें भी जमीनमें चारों ओर फैलती जाती हैं। कारण कि, पौधेका विस्तार जितना ही अधिक होगा, उतनाही अधिक जल उसके पत्तों द्वारा वातावरणमें फेंका जायगा। पौधेके इस व्ययको चलाते रहनेके लिये जड़ोंको जमीनमें चारों ओर फैलकर जल सोखना पड़ता है।

पाचन-क्रिया

पौधे मिट्टी और हवामेंसे जिन जिन आहार तत्वोंको ग्रहण करते हैं वे सब अकार्बनिक या भौतिक-यौगिकके रूपमें होते हैं। पौधेको इन्हें कार्बनिक योगिकके रूपमें बदलने पड़ते हैं। और इन्हींकी बदौलत कोष-भित्ति जीवन-रस आदि बनते हैं भौतिक-तत्वोंको कार्बनिक तत्वोंमें परिवर्तित करनेकी क्रिया को ही पाचन क्रिया कहते हैं।

जमीनमेंसे ग्रहण किये हुए भोज्य-पदार्थ-मिश्रित जल और वातावरणमेंसे ग्रहण किये हुए कर्बनद्विओ-ओषिद को रासायनिक क्रिया द्वारा, कार्बोहायड्रेट (कर्बउदेत)में बदलने की क्रिया ही हरे पौधेको सबसे पहले करनी पड़ती है। यह क्रिया हरित कण युत कोषोंमें ही होती है। इस प्रकारके कोष अधिकतर पत्रोंमें ही पाये जाते हैं। अतएव यह क्रिया पत्तोंमें ही होती है। कर्बोदेत दिनके प्रकाश में ही बनता है।

कर्बोदेत तैयार होनेकी क्रिया एक साधारण प्रयोगसे जानी जा सकती है।

प्रयोग—किसी जलज वनस्पतिको कर्बन-द्विओषिद् मिले हुए जलमें डुबोकर बरतन धूपमें रख देनेसे पानीमें बुलबुले उठने लगेंगे। ये बुलबुले ओषजन गैसके हैं। यदि जलज वनस्पतिको कर्बनद्विओषिद्-रहित जलमें रक्खा जायागा, तो बुलबुले कदापि नहीं उठेंगे।

इस प्रयोगमें जो बुलबुले उठते हैं, वे ओषजन गैसके है या नहीं, इसको जाननेके लिए नीचे लिखा हुआ प्रयोग करना चाहिये।

प्रयोग दूसरा—किसी जलज वनस्पतिको पानी भरे हुए काँचके बर्तनमें डुबो देनेके बाद उस पर काँच की कीप ढक दो और तब कीप की नलीमें एक परख-नली लगा दो और बरतन को इतना पानी से भर दो कि आधी नली जलमें डूबी रहे। तब इस बरतनको धूपमें रखदो। एक दो घन्टे बाद नली को ऊँचा उठाकर पानीसे बाहिर निकालनेके पहिले ही उसके मुखको अँगूठासे बन्द करदो। एक सुलगते हुए फलीताको फूँककर अँगूठा हटाकर नलीके मुखमें रक्खो। भीतर जाते ही फलीता सुलग उठेगा।

ओषजनमें चिनगारीको सुलगानेकी शक्ति विद्यमान है। फलीतेका सुलग उठना इस बातका द्योतक

है कि परखनलीमें ओषजन गैस मौजूद थी। और पानीके अन्दर रक्खी हुई जलज-वनस्पतिमेंसे ही यह गैस नलीमें जमा होती रही है।

ऊपरके प्रयोगमें, पानीमें बुलबुले तभी तक उठते रहेंगे, जब तक कि कर्बनद्विओषिद उसमें मौजूद रहेगी। उक्त प्रयोगसे यह साबित होता है कि पानीमें के कर्बन गैसको पत्तोंने ग्रहण कर लिया है और ओषजन छोड़ा गया है।

बदलीके दिनोंमें या मन्दे प्रकाशमें यह क्रिया धीमी हो जाती है और रातके वक्त तो बिलकुल होती ही नहीं। इस क्रियाके ठीक तरहसे जारी रहनेके लिये, सूर्यके प्रकाशकी अत्यन्त आवश्यकता होती है।

ऊपरके प्रयोगमें जलज-वनस्पतिका उपयोग इसलिये किया गया है कि जमीन पर ऊगनेवाली वनस्पति की पाचन क्रियाको देखनेके लिये श्रम-साध्य प्रयोगकी आवश्यकता है।

अक्सर देखा जाता है कि दिनके वक्त पत्तोंके हरित अणुओंमें तथा पौधेके अन्य हरे भागोंमें मांड़ीके दाने उठ आते हैं। अंधेरेमें ये नजर नहीं आते हैं। कर्बन द्विओषिद-रहित वातावरणमें भी मांड़ी नहीं बनती है। इससे यह माल्रुम होता है कि कर्बन द्विओषिदका ग्रहण किया जाना और ओषजनका विसर्जन तथा मांड़ीके तैयार होनेमें कुछ न कुछ पारस्परिक संबन्ध अवश्य ही है। पौधेके हरितयुत कोषों में शर्करा बनती है जो कोषरसमें घुल जाते हैं। शर्कराकी मात्रा बढ़जाने पर ही हरित अणुओंमें मांड़ीके कण दिखलाई देने लगते हैं।

हरित युत कोषोंमें जो शर्करा तैयार होती है वह ईख शर्करासी होती है। यह शर्करा कर्बोदितका एक रूप है। कर्बोदितके बिना कार्बनिक पदार्थोंकी वृद्धि नहीं हो सकती है और हरितके अभावमें कर्बोदित नहीं बन सकता है। इसलिए हरित रहित पौधोंको अपने जीवनके लिए बने बनाये कर्बोदितकी जरूरत होती है। कारण कि, हरितके अभावमें वे कर्बोदित तैयार नहीं कर सकते हैं। यही कारण है कि हरित-हीन पौधे अपनी जड़ें दूसरे पौधोंकी देहमें प्रवेश कराकर जीवित रहते हैं। दूसरे पौधेकी देहमेंसे सोखी हुई खूराक पर होवे जिन्दे रहते हैं। आकाश बेल या अमरबेल एक ऐसा ही पौधा है। कुकुरमुत्ताकी जातिके पौधे मृत कार्बनिक पदार्थों पर ही जीवित रहते हैं। इन पौधोंको परोप जीवी पौधे कहते हैं।

पाचन-क्रियाके लिए प्रकाशके साथ ऊँचे ताप-क्रम की भी जरूरत होती है। कारण कि तापक्रमके एक निश्चित सीमा तक घट जाने पर पाचन-क्रिया रुक जाती है। हर पौधेके लिए भिन्न भिन्न तापक्रमकी जरूरत होती है।

प्रकाशके संबन्धमें भी एक बात बड़े मार्केकी है। वह यह है कि सूर्यकी सभी किरणें पाचन क्रियाको जारी रखनेमें सहायता नहीं पहुँचाती हैं। प्रयोगोंसे पता चला है कि लाल रंगकी किरणें जल और कर्बन द्विओषिदके अणुओंको पृथक् करनेके लिए पर्याप्त शक्ति प्रदान करती हैं, जिससे कर्बोदित पैदा होता है।

जीवन-मूलके बननेमें ऊपर वर्णित नोषजन रहित कर्बोदितके अलावा नोषजन युत कार्बनिक-योगिककी भी जरूरत होती है। प्रोटीड ही ये नोषजन-युक्त योगिक हैं, जिनमें नोषजन और सल्फर (गंधक) के अलावा कर्बन, ओषजन और उद्जन भी पाया जाता हैं। ये कर्बोदित में भी वर्त्तमान होते है। प्रोटीड बनानेमें सब तत्त्व किस प्रकार सहायक होते हैं इस पर यहाँ बिचार करनेकी जरूरत नहीं जान पड़ती। सिर्फ इतना ही लिखना काफी होगा कि प्रत्येक सजीव-कोष—अनुकूल तत्वोंके प्राप्त होने पर प्रोटीड तैयार करता है।

इस प्रकार पत्तोंमें नोषजन युत और नोषजन रहित तत्व तैयार होते हैं। ये पदार्थ आवश्यकतानुसार पौधेके उन अवयवोंमें पहुँचा दिये जाते हैं, जिनमें बाढ़ होती रहती है, या बीज, कंदल, कंद, जड़ और कली आदिमें ये पदार्थ संचित होते रहते हैं। और दूसरी मौसममें बाढ़के वक्त इनका उपयोग किया जाता है।

आहार रसका स्थानान्तरित होना—ऊपर लिख आए हैं कि पत्तोंमें बना हुआ स्टार्च (मंड) वहीं नहीं रह जाता है। पौधेके अन्य अवयवोंको भेज दिया जाता है। पौधे को अन्धेरेमें रख देने पर कुछ हो घन्टे बाद मांडीके कण गायब हो जाते हैं। मांडीके कण ठोस और अघुलनशील होते हैं। ये रासायनिक-क्रिया द्वारा एक प्रकारकी शर्करामें बदल जाते हैं। यह यव शर्करा (maltose) कोष-रसमें घुल जाती है और तब धीरे धीरे एक कोषसे दूसरे कोषमें होती हुई पौधेके भिन्न भिन्न अवयवोंमें पहुँच जाती हैं। प्रोटीड भी इसी रीतिसे कोष-रसमें घुलाकर पौधेके अवयवोंमें पहुँचा दिया जाता है।

पहले बतला आए हैं कि आहार-रसका कुछ हिस्सा तो पौधेकी वृद्धि और पोषणमें खर्च होजाता है और शेष भाग बीज, कन्द आदिमें जमा होता रहता है।

जो नोषजन रहित पदार्थ पत्तों द्वारा शर्कराके रूपमें बीजोंमें जमा रहते हैं। अन्डी आदि कुछ पौधों के बीजोंमें ये तैलके रूपमें मौजूद रहते हैं। अन्य पौधोंमें ये तुलीनके रूपमें पाये जाते हैं।

मूल स्कंध, कंदल, कंद आदिमें भी नोषजन रहित पदार्थ मांडी या तेलके रूपमें ही मौजूद रहते हैं। कुछ पौधोंके फलोंमें तेल रहता है। चुकन्दर और ईखमें कर्बोदित इक्षु शर्कराके रूपमें पाया जाता है। प्याजमें कर्बोदित द्राक्ष-शर्कराके रूपोंमें मौजूद रहता है। मांडी पौधेके प्रत्येक अवयवमें मौजूद रहती है। किन्तु यहाँ इतना अवश्य ही स्मरण रखना चाहिए कि ये पदार्थ पौधेके उन्हीं अवयवोंमें जमा रहते हैं, जो प्रकाशसे परे रहते हैं, और जिनमें हरितका अभाव रहता है। इन अवयवोंमें हरितको देखकर एक दम यह शंका हो जाती है कि प्रकाश और हरितके अभावमें यह कैसे बन गया है। इन अवयवोंमें जीवनमूलके कण मौजूद रहते हैं, जिनमें हरित नहीं रहता। प्रकाश मिलते ही जीवन-मूलके कण हरित युत हो जाते हैं। पाठकोंने अकसर हरे आलू या उनका कुछ भाग हरा अवश्यही देखा होगा। मिट्टी दूर होजानेसे प्रकाशके कारण, आलूका जितना भाग प्रकाशमें आजाता है, उतना ही हरा हो जाता है। यह हरा रंग हरितकी मौजूदगी बतलाता है।

ऊपरके विवेचनसे साबित होता है कि मांडी तैयार करनेके लिए हरित और प्रकाशकी जरूरत नहीं होती। शर्करा ही एक ऐसा पदार्थ है, जो प्रकाश और हरितके अभावमें तैयार हो नहीं सकता है।

पत्तेमें मंड या मांडी बनती है, यह बात नीचेके प्रयोगसे मालूम हो सकती है।

प्रयोग—किसी पौधेके एक पत्ते पर कागज या कार्क पिनसे इस प्रकार लगा दिया जावे कि सारा पत्ता उससे ढक जाय। कागज या कार्कमें एक छेद कर दिया जाय, जिससे पत्तेके कुछ हिस्से को प्रकाश मिलता रहे। तीन दिन बाद शामके वक्त उस पत्तेको तोड़कर कागज या कार्कको हटा लो और तब तीन मिनिट तक उस पत्ते को उबलते हुए पानीमें डुबो रक्खो। बादमें उसे मैथिलेटेड स्पिरिट (mathylated spirit) से धो डालो। ऐसा करनेसे पत्तेका हरा रंग निकल जायगा। तब पत्ते को टिन्चर आयोडिनमें डुबो दो ऐसा करनेसे पत्तेका वह भाग, जिस पर प्रकाश पड़ता रहा है, नीला हो जायगा। वह नीला दाग साबित करता है कि उस भाग पर प्रकाश पड़ता रहा है, जिससे शर्करा बननेके बाद मंड बना है। यह नीला दाग मांडीका अस्तित्व दिखाता है।

श्वासोछ्वास—क्रिया

पहिले बतला आए हैं कि दिन के प्रकाश में हरे पत्तों द्वारा पौधा वातावरण मेंसे कर्बन द्विओषिद ग्रहण करता है। और ओषजन छोड़ता है। अब यह बतलाया जायगा कि पौधे भी प्राणियों की तरह सांस लेते हैं। वे वातावरण में से ओषजन ग्रहण करते और कर्बन द्विओषिद छोड़ते हैं। कर्बन द्विओषिदके

साथ जल वाष्प भी छोड़ा जाता है। सारांशमें वनस्पति और प्राणियों की श्वासोछ्वास क्रिया एक सी है।

ओषजनका ग्रहण करना बनस्पतिके लिये भी उतनाही आवश्यक है, जितना कि प्राणियोंके लिये। प्रयोगों से पता चला है कि जब तक पौधे को ओषजन स्वतन्त्रता पूर्वक मिलता रहता है, तभी तक वह जिन्दा रह सकता है। ओषजनके न मिलने पर पौधे के जीवन- व्यापार में रुकावट पड़ती है, जिससे पौधा मर जाता है।

पौधे की बाढ़ जितनीही तेजीसे होती है, उसके अन्दर रासायनिक परिवर्तन भी उतनी ही तेजी से होते रहते हैं। और यही कारण है कि पौधेके बढ़ने वाले भागों में श्वासोछ्वास की क्रिया बहुत जल्दी नजर आजाती है।

प्रयोग—सेमके बीजोंको चौबीस घन्टे तक पानी में भिगोकर एक काँच की नली में इस प्रकार रक्खो कि दो तहोंके बीचमें गीला स्याही-सोखता कागज रहे। इस नली का मुंह मजबूत ढक्कन से बन्द करदो; जिससे भीतर की गैस बाहर न निकलने पावे। कुछ घन्टों बाद ढक्कन हटाकर एक जलता हुआ फलीता इस नली में प्रवेश कराया जावेगा, तो वह बुझ जावेगा। कर्बनद्विओषिदके कारण ही यह फलीता बुझ गया है।

इस कांचकी नलीमें कर्बनद्विओषिद है, यह बात एक दूसरे प्रयोग द्वारा सिद्ध की जा सकती है। —कांचके एक गिलासमें पानी डाल कर उसमे थोड़ा सा चूना मिला दो। चूने के पानीमें घुलजाने के बाद ग्लास को थोड़े समयके लिये एक तरफ रखदो। चूने के तलीमें जम जानेके बाद ऊपरका पानी अलग निकाल लो। स्मरण रहे इस पानी के साथ चूना न आने पावे। अब उस सेमके बीज वाली नली का ढक्कन हटाकर चूनेका पानी उसमें उंडेल दो। यह पानी दूध जैसा सफेद हो जायगा।

कर्बन द्विओषिद के कारण ही पानी सफेद होगया है।

प्रयोगों से यह बात भी मालूम की जा सकती है कि पौधा जितना ओषजन ग्रहण करता है, करीब करीब उतना ही कर्बन द्विओषिद छोड़ता है। यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये कि पौधे के प्रत्येक अवयवमें और प्रत्येक सजीव कोष में, जहां बाढ़ और रासायनिक परिवर्तन जारी रहते हैं, श्वासोच्छ्वासकी क्रिया चौबीसों घटे जारी रहती है।

उच्छ्वास से साथ छोड़े हुए कर्बन द्विओषिद में का कर्बन पौधों की देह में सेही लिया गया है और ग्रहण किया हुआ ओषजन जीवन-मूल में मिल जाता है। सिर्फ सजीव जीवन मूल ही सांस लेता है। इस लिये यह मानना पड़ता है कि श्वासोच्छ्वास की क्रिया के कारण पौधे को पचाए हुए आहार रसकी कमी पड़ती है।

यदि किसी पौधेका बीज या आलू किसी अँधेरे स्थानमें बोकर देखा जाय, तो मालूम हो जायगा कि उसमें सुरक्षित रक्खे हुए भोज्य-पदार्थको खाकरही वे अंकुरित होते और बढ़ते हैं। कारण कि अँधेरेके कारण पाचन-क्रिया नहीं हो सकती है, जिससे नवीन आहार रस बनही नहीं सकता। अगर कुछ दिन बाद पौधेको उखाड़ कर तोला जायगा, तो बीज या आलूके वजनके बराबरही पौधेका वजन होगा। इस क्रियाके कारण गरमी पैदा होती है और यह क्रिया जितनी ज्यादा तेजीसे होगी, गरमी भी उतनीही अधिक बढ़ती जायगी।

किसी पौधेके बीजोंको, चौबीस घंटे तक पानीमें भिगो रखनेके बाद, एक काँचकी नलीमें रखदो। इस नली पर एक ऐसा ढक्कन लगाओ, जिसके बीचमें छेद हो। इस छेदमेंसे एक थर्मामीटर (ताप-मापक-यंत्र) नलीके अन्दर डाल दो। एक दूसरा थर्मामीटर बाहर रखलो। कुछ घंटोंके बाद नलीके अन्दरके थर्मामीटरका पारा चढ़ता हुआ नजर आवेगा। दोनों थर्मामीटरको देखनेसे मालूम होसकता है कि नली में कितनी गरमी बढ़ी है।

पौधे ओषजन ग्रहण करते हैं, इस बातको जानने के लिये नीचे दिया हुआ प्रयोग किया जाना चाहिये।

प्रयोग—सेमके कुछ बीजोंको अंकुरित करके एक काँचकी चिमनीके (कांचकी नली जो लैम्पों पर लगाई जाती है) चौड़े मुँहमें रखदो और ऊपर से एक काँचका ढकना इस प्रकार लगादो कि बाहरी हवा भीतर न घुस सके। इस चिमनीका सँकड़ा मुँह लाल कास्टिक पोटैश (पांशुजक्षार) भरे हुए बरतनमें रखदो। कुछ घंटे बाद चिमनीमें पानी ऊपरको चढ़ता नजर आवेगा। इसका कारण यह है कि सेमके बढ़नेवाले अंकुरोंने चिमनीके अंदरकी वायुको ग्रहण कर लिया है, जिससे हवा कम होगई है। और वातावरण का भार कम होजानेके कारण ही चिमनीमें पानी ऊपर चढ़ने लगा है।

गैसोंका ग्रहण

श्वासोच्छ्वासक्रिया और पाचन-क्रियामें, पौधों और गैसोंमें लेनदेनका व्यापारजारी रहता है। यह लेन देन पत्तोंके छेदों द्वारा ही होता है। पौधेकी शाखा या तने पर भी महीन रंध्र होते हैं। इनके द्वारा भी वायु भीतर वायु प्रवेश करता है। कर्बन द्विओषिद और ओषजन इन रंध्रों-द्वारा पौधेके अंदर प्रवेश करते हैं। वहाँ ये गैसें कोषोंके बीचकी खाली जगहमें घूमती हुई, पौधेके उन अवयवों तक पहुँच जाती हैं, जिनको इनकी जरूरत होती है। कार्बन-द्विओषिद तो हरितकोषोंमें पाचन-क्रियाके काम आता है, और ओषजन प्रत्येक सजीव कोषमें श्वासोच्छ्वासकी क्रियाके काम आता है। यही तब पत्र-रंध्र द्वारा बाहर फेंक दिए जाते हैं। पौधेंकी जाति और उसकी आवश्यकतानुसार पत्र-रंध्र छोटे या बड़े होते हैं। पानीमें डूबे रहनेवाले पौधोंके पत्तों पर रंध्र नहीं होते। इन पौधेमें त्वचाके कोषोंकी भित्ति द्वारा ये गैस भीतर प्रवेश करती है। जिन पौधोंके कुछ अवयव जल या भूमिके अन्दर रहते हैं। उनमें पत्र रंध्र संवर्धित रहते हैं और उन रंध्रोंको जोड़नेवाली शिराएं भी विकसित रहती है, जिससे जल या भूमिके अंदर वाले भागोंको भी वायु मिल जाती है। और उनमें भी श्वासोछ्वासकी क्रिया जारी रहती है।

पौधेके अवयवोंमें परिवर्तन

गत परिच्छेदोंमें पौधेकी आन्तरिक अवस्था और पुश्तैनी आदतोंके अनुसार होनेवाली शारीरिक बाढ़ परही विचार कर आये हैं। अब हम यह देखेंगे कि पौधेकी बाढ़ पर बाह्य-परिस्थितिका असर कहां तक पड़ता है।

पौधेके जीवन मूलमें एक गुण यह भी है कि वह बाहरी उत्तेजनाओंके वशीभूत होकर तदनुसार कार्य करने लगता है। पौधे की बाढ़ और सजीव अवयवोंकी गति विधि आन्तरिक शक्ति द्वारा होती रहती है; किन्तु ताप-क्रम, प्रकाश, गुरुत्वाकर्षण आदि बाह्य-शक्तियोंके कारण उनकी बाढ़ की गति और दिशा में परिवर्तन होजाते हैं।

तापक्रम या प्रकाश या दोनों ही के प्रभाव से बहुत से फूल खिलते हैं। और तब मुंद जाते हैं। सबेरे प्रकाशके फैलने और गरमीके बढ़नेसे फूलों की पंखड़ियाँ तनकर फैल जाती हैं। जिससे फूल खिल जाता है। दोपहर ढलने पर ज्यों ज्यों प्रकाश कम होता जाता है और तापक्रम घटता जाता है, पंखुड़ियाँ सिकुड़ने लगती हैं और तब मुंद जाती हैं।

साधारण अवस्थामें अंकुर और अन्य अवयव लम्बाई में बढ़ते हैं, किन्तु उनको लगातार कई दिनों तक अंधेरेमें रख दिया जाय, तो वे बहुत लम्बे बढ़ जाते हैं। प्रकाश पौधे की वृद्धि को रोकता है। अंधेरे में पौधे की बाढ़ तो खूब होती है, किन्तु पत्तों की बाढ़ बिलकुल ही रुक जाती है।

पौधे के बढ़ने वाले भागों पर, खासकर प्रारंभिक मूल और प्रारंभिक तने पर, गुरुत्वाकर्षण का असर पड़ता है। प्रारंभिक मूल नीचे की ओर को बढ़ती है और प्रारंभिक तना ऊपर की ओर को। किन्तु यह प्रकाश का प्रभाव नहीं है। कारण कि, अन्धेरेमें बोने पर भी प्रारंभिक मूल नीचे की ओर को—पृथ्वी

की ओर को, और प्रारंभिक तना ऊपर को आकाश की ओर को पढ़ता है। यह पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षण का ही प्रभाव है।

कुछ पौधों का तना बहुत कमजोर होता है। उनको ऊपर उठने के लिये सहारे की जरुरत होती है। इन पौधों पर पहिले विचार कर आये हैं।

कुछ पौधोंके तने तीन तीन चार चार फीट तक तो सीधे बढ़ते हैं और तब सहारे को पाकर ऊपर चढ़ जाते हैं। ये पौधे कुन्डल मारकर सहारे पर चढ़ते हैं। इन पर पहिले लिख आये हैं।

प्रतान स्पर्शशील होता है। उन्हीसे सहारे को पकड़ कर पौधा ऊपर को चढ़ता है। इस पर भी किसी गत परिच्छेद में विचार कर आये हैं।

बहुतसे पौधोंके प्रामाणिक-पत्र सुबहको विकसित होते हैं और शाम को सिमट जाते हैं। छुई मुई या लाजवन्ती के पत्ते स्पर्श करते ही सिमट जाते हैं और कुछ समय बाद फैल जाते हैं। द्वि दल जाति के कई पौधोंके पत्ते दिन को फैले रहते हैं और रात को सिमट जाते हैं। कुछ पौधोंके पत्ते रातके वक्त नीचे की ओर झुक जाते हैं, किन्तु उनके पत्रक विकसित या फैले हुये रहते हैं।

पौधेके पत्तों का फैलना और सिकुड़ना प्रकाश पर ही निर्भर रहता है। यदि किसी पौधेको अंधेरे में रख दिया जाय तो पत्ते सिकुड़ जावेंगे। पौधे को वहांसे हटाकर प्रकाशमें रखतेही पत्ते फैल जावेंगे। तापक्रम के घटने बढ़नेका असर भी पत्तों पर पड़ता है, किन्तु यह असर उतना स्पष्ट नहीं दिखाई देता।

कुछ फूलोंके पुंकेसरके नीचेके भागको छूते ही, वे एक दम इस तेजीसे हिल उठते हैं कि रज, कोष रेत पात्रसे छू जाता है।

कीट—भक्षक पौधोंके पत्तों पर भी बाहरी उत्तेजनाओंका—विशेष कर रासायनिक उत्तेजनाका प्रभाव पड़ता है। सनड्यू नामके पौधेके पत्तेकी ऊपरी सतह पर मक्खी या थोड़ा सा कच्चा गोश्त या अन्य कोई नोषजन युत कार्बनिक पदार्थ रख दिया जावे तो पौधे के खास अवयव उसको ढक लेने के लिये एक दम आगे बढ़ आवेंगे। इसी प्रकार वेनस फ्लाय ट्रेप नामक पौधेके पधे की सतह पर कुछ भी पदार्थ छुलातेही पत्ते के दोनों आधे भाग एक दम मिल जावेंगे।

कीट भक्षक पौधों को नोषजन युत भोजन पकड़े हुए कीड़ों की देहमें से ही प्राप्त होता है।

पौधे पर प्रकाश और ताप का असर

पहिले लिख आये हैं कि पाचन क्रियाके लिए प्रकाशकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। कारण कि, प्रकाश की सहायतासे ही पौधा कर्बन द्विओषिद का विश्लेषण करके उसे ग्रहण करता और शर्करा तैयार करता है पौधेकी बाढ़में भी प्रकाश सहायता पहुंचाता है। और पौधे के बढ़नेवाले या पूर्णबाढ़को पहुँचे हुए अवयवोंके परिवर्तनमें भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे प्रकाश सहायता पहुँचाता ही है। किन्तु यहां इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि प्रकाशकी सभी किरणें वनस्पतिके लिए समान रूपके लाभकारी नहीं है।

हमें सूर्यका प्रकाश सफेद मालूम होता है, किन्तु सूर्य्य की किरणें भिन्न भिन्न सात रंगकी होती हैं। ये सातरंग हैं—लाल, नारंगि, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैंजनी। प्रयोगोंके पता चला है कि लाल, नारंगी पीले और हरे रंगकी किरणोंका असर पौधेकी रासायनिक क्रिया पर पड़ता है।

हरित और कर्बोदेत के निर्माणमें प्रकाशका रासायनिक प्रभाव पड़ता है। शर्कराके निर्माण कार्य-में, बैंजनी और आसमानी किरणोंके प्रकाशका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। लाल रंगकी किरणोंके अभाव में पाचन क्रिया एक दम रुक जाती है।

किसी पौधेको भिन्न भिन्न रंगके कांचके बरतनों से ढँक कर भिन्न भिन्न रंगकी किरणोंका असर जाना जा सकता है।

गरमी या ताप

पहिले लिख आये हैं कि श्वासोच्छ्वास की क्रियासे ज्यादा गरमी पैदा होती है। किन्तु साधारण तौरसे वाष्पी भवन और उष्णता विसर्जनका कार्य इतनी फुरतीसे होता है कि पौधेका ताप-क्रम बढ़नेही नहीं पाता। मट्टी, पानी या हवा आदिका तापक्रमही पौधेका ताप-क्रम माना जा सकता है। पौधे उष्णता वाहक होता है पर वह कार्य बहुतही धीरे धीरे किया जाता है। यही कारण है कि, पौधेका ताप-क्रम आसपासकी हवासे थोड़ा कम या ज्यादा होता है। हवाका ताप-क्रम तेजीसे घटता बढ़ता है और मट्टी और पानीका तापक्रम बहुत धीरे घटता बढ़ता है और यही कारण है कि इनका ताप क्रम हमेशा करीब करीब बराबर रहता है।

पौधे उष्णताका विसर्जन तेजीसे करते हैं। पत्ते उष्णताको इतनी तेजीसे विसर्जित करते हैं कि अकसर रातको निरभ्र आकाशमें उनका ताप-क्रम, आसपासकी हवासे इतना कम होजाता है कि उनपर ओस जम जाती है।

पौधेका जीवन-व्यापार गरमी या ताप परही निर्भर करता है। स्थूल मानसे ३२ अंश फा० से लगाकर १२२ अंश फा० के तापमें पौधेकी सभी क्रियाएं सम्पन्न होती रहती हैं। ३२ अंशसे नीचे पारा जातेही पौधेके सब व्यापार बन्द होजाते हैं और पारेके दो चार अंश नीचे उतरतेही पौधा मर जाता है। १२२ अंशसे ज्यादा गरमीभी पौधेके लिए हानिकारक है।

प्रयोगोसे पता चला है कि ४१ अंश फा० से कम उष्णतामें गेहूँ का बीज उगताही नहीं है; और १०८ अंशसे ज्यादा गरमीभी यही असर दिखाती है। ५० अंश और ११५ अंश फा० के ताप-क्रममें मक्काका बीज उग सकता है। ५० अंशसे कम और १५ अंशसे ज्यादा गरमी—मक्काके बीजके लिए हानिकारक सिद्ध हुई है। साधारण मानसे गेहूँके अंकुरित होनेके लिए ८४ फा० और मक्काके लिए ९३ अंश फा० ताप अच्छा साबित हुआ है।

अधिक या न्यून तापका घातक-प्रभाव पौधे की देहमेंके जल पर निर्भर करता है। जिस पौधेकी देहमें बहुत ज्यादा पानी होता है, उस पर तापक्रमके घटने बढ़नेका उतनाही अधिक घातक परिणाम होता है। सेमके बीजोंको एक घंटे तक ७०° अंश सेंटीग्रेडके तापमें रखनेसे उनकी उगनेकी शक्ति नष्ट होजाती है। यदि ये बीज २४ घंटा तक पानीमें भिगोकर रक्खे जाय तो उनकी उगनेकी शक्ति नष्ट करनेके लिए ५४ अंश सेंटीग्रेड ताप काफी होगा।

पौधेके जिन भागोंमें पानीका अंश कम होता है, वे तापक्रमके घट जाने पर भी अधिक समय तक जीवित रह सकते हैं। किन्तु विकसित होनेवाली कलियाँ ज्यादा पानी सोखती हैं जिससे उन पर पाले असर जल्दी पड़ता है।

संसृति तथा विकास।

[ले० श्री 'गोपाल']

तत्रतंबुद्धि संयोगं लभते पौर्व देहिकम्
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन

श्रीमद्भगवद्गीता। अध्याय ६ श्लोक ४३।

इस सृष्टिमें नाना प्रकारके जीवधारी हैं। कितनीही नस्लोंके कुत्ते आपने देखे होंगे; कबूतरबाज आपके कबूतरोंकी दसियों जाति गिना देगा। तितलियोंको ही देखिये, तरह तरहके रूप रंग देख कर बुद्धि चकित होने लगती है। वर्षा ऋतुमें न जाने कितने प्रकारके नये जीवोंकी उत्पत्ति होती है और फिर न जाने वे सारेके सारे कहाँ चले जाते हैं। सम्भव है आपने कोई बड़ा चिड़ियाघर देखा हो—उसमें इतनी जातियोंके जन्तु रहे होंगे कि आपको अब उनमेंसे चौथाहीका नाम भी स्मरण न रहा होगा। जीवधारियोंकीही यह बात हो सो नहीं, उद्भिज संसारकी दशा इससेभी विचित्र

है। आपको याद है, अपने जीवनमें आपने कितने प्रकारके आम खाये हैं—नहीं—आपको तो पिछले वर्षकी संख्याका भी अनुमान न होगा। किसान ईखकी कई उपजातियोंको जानता है। बाहर जाकर किसी साधारण खेतको देखिये—दसों प्रकारके नन्हे नन्हे पौध होंगे। किसी सघन बनमें तो वृक्षोंकी जातियाँ आपसे गिनते भी न बनेगी। प्राणिवर्गका रूप वैचित्र्य यहीं समाप्त नहीं होजाता। ऐसी भी सहस्रों प्रकारकी जातियाँ हैं जो इन मानुषी चक्षुओं द्वारा बिना यंत्रोंकी सहायताके दिनमें तारे देखनेवाले को भी न दिखलाई देंगी। हिन्दुओंके सृष्टिक्रममें ८४ लाख योनियोंकी योजना है। कोई ४० लाखसे ऊपर वैज्ञानिकोंकी गिनती भी पहुंच गई है—दिन दिन नई खोज होती रहती है—नैसर्गिक तत्वविद् कभी नई मछली ढूंढ निकालते हैं तो कभी नई तितली; रोगोंके सैकड़ों प्रकारके छोटे छोटे कीटाणुओंका तो कहनाही क्या। इसपर भी कोई यह नहीं कह सक्ता कि प्राणि संसारकी सभी जातियोंसे विज्ञानके शीघ्रही परिचय होजानेकी सम्भावना है।

परन्तु क्या आप बता सकते हैं कि ये सब आई कहांसे? इनकी इतनी भिन्नताका कारण क्या है? मैं आज आपसे कोई नया प्रश्न पूछने नहीं चला हूँ। सृष्टिके आदिसे—अथवा यों कहिये कि जबसे मनुष्यको सोचनेकी शक्ति प्राप्त हुई है तभीसे बहुतसे विचारकोंके मनमें यही प्रश्न उठता रहा है और अपने बुद्धि-अनुसार सबनेही कुछ न कुछ इस विषय पर प्रकाश डालनेकी चेष्टाकी है। सम्भव है कोई पूछे कि पुराने आदमियोंने तो ऐसी बेसूद बातोंके पीछे क्यों माथा पच्चीकी होगी। इसका उत्तर कोई नहीं। हाँ, उन्होंने भी अपनी सी उधेड़ बुनकी है जरूर। हिन्दुओंके पुराणों और शास्त्रोंको बात जाने दीजिए, न बाईबिल इससे खाली न कुरानको इससे फुर्सत। अच्छा, सबके सामने एकही समस्या है और आश्चर्यकी बात है कि एकसी ही उत्तर। सभी कहते हैं कि एक साथ किसी अदृष्ट कर्ताने एक निर्धारित समयमें सबको बनाकर तैयार कर दिया था। बहुत पुराने समयसे मनुष्य यही सोचते चले आये हैं। परन्तु मनुष्य तो स्वभावसेही विचार शील है—उसने सोचा, वाह—अल्लामियाँने हमें व्यर्थही न बनाया होगा। क्या वह हम लोगोंको गढ़ने बैठा होगा—कदाचित् सांचेमें ढाल ढाल कर आसमानसे टपका दिया हो। यह दकियानूसी बातें बहुतोंको ठीक नहीं जँची। अरस्तू इन बातोंको ठीक न मानता था। बहुतसे विचारकोंने जब तब अल्लामियांकी करतूत पर अविश्वास प्रकट किया परन्तु बेचारोंको यातो निर्द्वन्द होकर घोषणा करनेका साहस न हुआ या उचित मात्रामें प्रमाण न मिले। लैमार्क[1] ने क्रान्तिकी घोषणाकी। डार्विनके पितामह इरेसमस[2] डार्विनको भी ऐसी ही सूझी। उन्नीसवीं शताब्दिमेंतो बहुतोंका सुर बदल चला। चार्लेस[3] डार्विन और वैलेस[4]ने तो अल्लामियांको गद्दीसे उतारही डाला। अकेले "जातियों[5]का निकास" के सामने खुदावन्दके चाक और सांचे सारे मिट्टीमें मिलगए। बेचारे पादरी और धर्माधीश बहुत गुर्राये और बर्राये—परन्तु हुआ कुछ नहीं, डार्विन साहब के आगे एक न चली। त्रेताके मित्र कलियुगमें बाप दादा बनगए। हेकल[6], स्पेन्सर[7] और हक्सलेने[8] रही सही मिट्टी पलीद करदी। ऐसे ऐसे प्रमाण और तर्क दिए कि किसीको सिर उठानेकी ताब न हुई। लोगोंके मुँहपर बहुत दिनों तक विकासवादकीही गाथा चलती रही। जब बन्दरके बन्दोंको (अल्लाके नहीं—वह तो बेचारा इस गड़बड़में न जाने कहां भाग गया) अपने कर्तृत्वका स्वराज्य मिलगया तो उसके बांटनेकी बारी आई। हिन्दू मुसलमानोंकी भांति एक दल लैमार्कके पीछे पड़ा और एक डार्विन के—यह कुत्ता फजीती समाप्त भी न होने पाई थी कि डि-वीज[9]का दल अनारकिस्टोंकी तरह दूसरीही ओर झपटा। अच्छी जूतियोंमें दाल बटी और आज तक बट रही है। कोई सरकता है तो कोई खिसकता है और अब दोचार कूद कूदकर चलनेवाले भी निकल आए। वाईज़मान[10] और मेण्डल[11]ने नया ही बखेड़ा पैदा कर दिया था। पोल्टन[12] साहब

डार्विनकी हामी भरते रहे और बेटसन' ² डी-रीजके पीछे कूदा। विकासवादकी यही संक्षिप्तमें कथा है।

प्राणिवर्गके वैचित्र्यके कारण पर अथवा जातियोंकी विभिन्नताके सम्बन्धमें जितने प्रकारके मत हो सकते हैं उनको नीचे इस प्रकार अंकित कर सकते हैं।

पहिले संसृति तथा विकासका झगड़ा चला, डार्विनने सबको विकासवादका अनुयायी बना दिया अब वैज्ञानिक विकासवादके सिद्धान्त पर प्रायः शंका नहीं करते। सब वेद वाक्यकी भांति उसे स्वयं सिद्ध मानने लग गए हैं। यहाँ तककी भौतिक विज्ञान (Physics) रसायन (Chemisty) प्राणी-विज्ञान (Biology) जीवन विज्ञान (Physiology) भूमि विज्ञान (Geology) ज्योतिष (Antronsmy) मानव विज्ञान (Anthrohology) इतिहास (History) तथा समाज शास्त्र (Sociology) इत्यादि सब अपनेको उसी कांटे पर तौलनेको उतरे हैं। अब झगड़ा रहा अनुकूलन (Adaptation) और प्राकृतिक निर्वाचन) (Natural slection) का, सो उसका भी डार्विन साहबकी बदौलत उनके पक्षमें ही निर्णय हो चुका था। अब बात रही उत्क्रान्ति (Mutation) और विक्रान्ति (Variation) की, उसमें पहिलेतो डार्विन साहबकी ही तूती बोलती थी परन्तु डीरीजने इतने जोरसे झंझोड़ाकि अब लोगोंको बेबस उसकी बात माननी पड़ रही है: और उधर कोई कोई और कुछ भी कहही गुजरते हैं। बात निश्चित न तो अब तक कुछ हुई, नहो ही पाती है। आईये देखें झगड़ा क्या है।

विकासवादके अनुसार आदिमें एक या दो जीव थे, उसमें ही परिवर्तन तथा विकास होते होते उस सब सृष्टि का आविर्भाव हुआ है जो हम वर्तमान में देख रहे हैं अथवा भूत में विनष्ट हो चुकी है। हम सबका आपस में खून का रिश्ता है। सृष्टि पहिले पहल जल में उत्पन्न हुई होगी, ऐसा विकासवादियों का अनुमान है। बात बहुत सीधी है जिसको देखिये सन्तान वृद्धि की धुन में है (मुझे पाश्चात्य अर्वाचीन सभ्यतावादी क्षमा करें· क्योंकि सतति निरोध के कृत्रिम उपायों का अविष्कार करके बच्चेबाज़ी उन्होंने बहुत कम कर ली है) देखिए हिन्दुओं को सन्तान उत्पन्न किये बिना मोक्ष भी नहीं मिल सकती। भारत के भूखों की भांति पालन पोषण की पर्याप्त सामग्री न भी रहते सारे जीव बेहद बच्चे उत्पन्न करते है। सबको भोजन नहीं मिल सक्ता-जो दुर्बल होते है चल बसते हैं सबल रह जाते हैं। जीवन के लिए विकट संघर्षण होता है और उसमें वही सफल होते है जो इस भूमण्डल पर कोई विशेष क्षमता लेकर अवतरित हुए हैं। हजारों जन्मते हैं और हजारो ही मरते हैं- जो रह जाते हैं किसी विशेषताके कारण पहिले भेद थोड़ा रहता है परन्तु बढ़ते बढ़ते उससे ही नवीन जातियां बनती चली जाती हैं।

इस सम्बन्ध में इतना तो निश्चित माना जाता है और आपको भी मानने में आपत्ति न होनी चाहिए।

(१) एक माता पिता की सन्तान सब समान नहीं होती, थोड़ा बहुत अन्तर भाई भाईमें अवश्य ही हो जाता है।

(२) प्रत्येक प्राणी आवश्यकतासे अधिक सन्तान उत्पन्न करता है, वा उत्पन्न करने की चेष्टा करता है। इस कारण भोजनके परिमाणसे जीवों की संख्या कहीं अधिक हो जाती है।

(३) भोजन कम और खाने वाले अधिक होने से जीवन रक्षाके लिए प्राणियोंमें संघर्ष शुरू होजाता है।

(४) इस पेट युद्धमें वही बच पाते हैं जिनमें कोई विशेष योग्यता होती है।

जिन प्रमाणोंके आधार पर विकास वादका सिद्धान्त अवलम्बित है अब उनको भी सुन लीजिए।

(१) वर्गीकरण (Clasfiiscation) किस खूबीके साथ प्राणि संसारको समुदाय, वर्ग, समूह, जाति, उपजाति इत्यादि उतरती चढ़ती कक्षाओं में विभक्त किया जा सक्ता है- इस कारण सबका उद्गम कहीं एक ही स्थानसे प्रकट होता है।

(२) क्रम विधान (Gradation) देखिये एक छोर पर कैसे सरल बनावटके अमीबा (Amoeba) सरीखे जीव और उससे आगे अधिक अधिक विकसित जीव-अन्तमें मानव देह जैसा भव्य भवन।

(३) आकृति (Morphology-Anatomy) देखिये मनुष्य और बंदरकी बनावट, दोनेके ५-५ उंगली, ४ हाथ पैर। मिलती जुलती रीढ़ हड्डियां। वृक्षोंमें एक समान ही तने, पत्ते, जड़, मिलते जुलते फल, फूल इत्यादि।

(४) पालतू पशुओं तथा खेती और उद्यान के पौधों का विभिन्न विकास।

(५) निसर्गमें तथा प्रयोगों द्वारा प्राणिवर्गकी उत्क्रान्ति (Mutation) तथा विक्रान्ति (Variation)

(६) गर्भ विज्ञान, भिन्न जीवोंके गर्भकी समानता। कुछके जीवनकालमें पुरानी जातिगत घटनाओं की पुनरावृत्ति।

(७) भूमिविज्ञान तथा पुराविज्ञान (Geology and palaentology)। भूमि गर्भसे एकके पश्चात् दूसरे समुन्नत प्राणियोंके देह का आविष्कार।

(८) भौगोलिक विस्तार (Geographical distribution)।

(९) सन्तानमें उतरनेवाले गुण सम्बन्धी नियम। (Laws of inheritence and Mendelism) इनके सम्बन्धमें अभी काफी गड़बड़ है)

(१०) जीवन विज्ञानका साक्ष्य। जैसे प्राणि देहमें नमक तथा दूसरे खनिज पदार्थोंकी मात्रा। जीवरासायनिक (Biochemical)) अथवा खूनका खून पर प्रभाव।

जीवनके प्राणी संसारमें एकसे व्यापार अथवा यह कहिए कि सारे प्राणियों पर नैसर्गिक शक्तियोंका एक सा प्रभाव।

जिधर जाइए वहीं जीवन संघर्ष (Struggle for existence) की बात सुननेमें आती है। जो लोग विकासवादका कुछ भी अर्थ नहीं समझते उनकोभी यही भावना हो गई है कि संसारमें वोही जीवित रह सक्ता है जो बल पूर्वक सबको भोजनसे वंचितकर अपना पेट भरनेकी शक्ति रखता है। बिल्कुल यही भाव "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावतमें है, "अन्धोंमें काना सरदार" और स्पेन्सर (Herbert spencer)) के बली की विजय (Survival of the fittest) में कितनी समानता है? ❋ इसी सिद्धान्तको लेकर जर्मनीने महासमरकी घोषणा की थी और इसीके बलपर पाश्चात्य राष्ट्र

❋ नोट किसी अगामी लेखमें इस बात पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायगा कि विकासवादके जितने सिद्धान्त आजतक सोचे गए हैं। उनमेंसे प्रायः बहुत भारतवर्षमें पण्डितोंसे निकलकर कभीके जनतामें पहुँच

अपने भाग्यका निपटारा करने पर तुले हुए हैं। बोस्टन के डाक्टर इमरसन रिटर (Emerson Retter, ने राष्ट्रोंके इस मृषा सिद्धान्तवाद पर कुढ़कर एक पूरी किताब* ही लिख डाली है परन्तु अभीतक तो कोई राहपर आता दिखाई नहीं देता।

मजा यह है कि प्रायः सारे विज्ञानविद् एक स्वरसे एक बात कह रहे हैं और सारे धर्म ग्रन्थ दूसरी बात। धर्माधीशोंमें और विज्ञानमें सत्यका रूप संशोधित तथा संस्कृत होता रहता है—धर्ममें सत्य सनातन होता है। कमसे कम धर्माध्यक्ष तो ऐसीही बातें कहा करते हैं। खोजीके लिए कोई भी बात तुच्छ नहीं। पहिले तो ऐसीही बातें कहा करते हैं। खोजीके लिये कोई भी बात तुच्छ नहीं। मेरी पहिले तो यह जानने की इच्छा हुई कि इस सम्बन्धमें संसारके धर्म प्रवर्तकों ने एक ही प्रकारकी भूल क्योंकी। हिन्दू और मुसलमान धर्म कितने विरोधी तिसपरभी सृष्टिकी उत्पत्ति पर दोनोंका एकही मत है। ऊपरसे ऐसा अनुमान होता है कि विकासवादके सिद्धान्तसे बहुतसी शंकाओंका समाधान होजाता है; परन्तु मेरा असंतोष उससे बढ़ता ही गया। उससे यदि एक प्रश्नका उत्तर मिलता है तो चार नये उत्पन्न हो जाते हैं। फिर मैंने सोचा तो क्या ईश्वर ने हमें गढ़ गढ़ कर, या चाकपर उतार कर या सांचे में ढालकर बनाया होगा और ऊपरसे नीचेको छोड़दिया होगा। मनको किसी प्रकार भी शान्ति न मिलासकी। फिर बहुत दिनोंमें सूझा कि अल्लामियां को न तो हमारे गढ़नेकी आवश्यकता थी और न हमारे विकसित होकर बन्दरसे आदमी बनने की आवश्यकता।

विकासवाद के सिद्धान्त का विस्तृत खण्डन तो किसी आगामी लेखमें करूँगा। पहिले संसृति सम्बन्धी सिद्धान्त के मूल तत्व देदेना मुझे अधिक सुविधा-जनक प्रतीत होता है, कारण कि विकास वादकी बातें सुनते सुनते हम इतने अभ्यस्त होगये हैं कि उन बुद्धिगत संस्कारोंके आगे इस पुराने सिद्धान्तका पुनरोत्थान असम्भव सा नहीं तो कठिन अवश्य प्रतीत होता है। इस व्यवहारसे विषयमें कुछ असम्बद्धता नहीं होगी और मस्तिष्कमें जिन विचारों ने घर करलिया है नयी योजना के साथ उनकी सहज हीमें तुलना भी हो सकेगी।

प्राणियों की अनन्तता सनातन है। जिस समय पृथ्वी पर उनका आविर्भाव हुआ होगा उस समय से ही भूतल पर अनेक जातियोंके रहनेका प्रमाण मिलता है। प्रत्येक प्राणी में दो भिन्न प्रकार की शक्तियां काम कर रही हैं। एकको संरक्षक और दूसरी को प्रवर्तक कह सक्ते हैं। पहिली शक्ति का निवास स्थान प्राणी है और दूसरी का वाह्य जगत। पहिली शक्ति का व्यापार है रूपको सदा एक दशामें एक सा बनाये रखना। दूसरी वाह्य दशा के अनुरूप अपने प्रभावसे रूप परिवर्तनकी चेष्टा करती रहती है। सामूहिक तौरसे जीव अपरिवर्तनशील हैं जो थोड़ा बहुत भेद देख पड़ता है उसका कारण बाह्य संसर्ग है यदि वाह्य संसार सदा एकसा ही बना रहे तो सब जीव समान बने रहें। आकस्मिक अथवा अनियमित परिवर्तन के जो कुछ उदाहरण मिलते हैं वह अपवाद के रूपमें हैं नियम के रूप में नहीं। यहाँ रसायन विज्ञान से एक उदाहरण देदेना अच्छा होगा। रेडियम का परिवर्तन जगद्विख्यात है, एक दो और भीरासायनिक तत्वों की परिवर्तन शीलता भली भांति प्रमाणित हो चुकी है। सम्भव है परिवर्तनकारिणी शक्तिपर वैज्ञानिकों को प्रभुत्व भी मिल जाय, परन्तु रसायनिक तत्वों की अपरिवर्तनशीलता बनी रहेगी, इसी भाँति जीव धारियों की एक दो जातियां सम्भव है परिवर्तन शील हों-और अवश्य चाहें उनका वह स्वभाव भी सनातन ही हो परन्तु शेष अपरिवर्तन शील ही रहती रही हैं और आगे भी यही सम्भावना है। प्राणियों में अन्तर पड़ने की एक निश्चित सीमा है, उसके आगे उनका भेद नहीं बढ़ता। ,झूलता हुआ पालना-चलता रहने पर भी अपने पथ से आगे न जाकर जिस प्रकार

चुके थे जिनके भग्नावशेष छोटी मोटी कहावतों और कहानियोंके रूपमें आज तक मिलते हैं।

* Unity of Organism.

लौट आता है उसी प्रकार जीवों की दशा है। विद्युत् कण और स परमाणु की भाँति उसे अपने क्षेत्र में विचरने की स्वतन्त्रता है परन्तु उसके आगे जाने की सामर्थ्य उसमें नहीं। विचरण क्षेत्र सबका एक बराबर ही हो यह कोई आवश्यक नहीं। विचरण गति भी सबकी असमान ही होगी। एक निश्चित समय में किसी के रूप में कम और किसी के रूपमें अधिक अन्तर पड़ सकता है।

इस विचरणमें एक जाति दूसरेके कितना समीप पहुंच जा सकती है यद्यपि यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता तथापि दो समीपवर्ती जातियोंमें इतनी समानता आ जाय कि उनका भेद अप्रकट हो जाय ऐसा सम्भव है अर्थात् दो भिन्न जातियां समयानुसार एक सा ही रूप धारण करलें यह असम्भव होने की आवश्यकता नहीं।

अब यदि जातियोंका यह रूप सनातन माना गया तो आप पूछेंगे कि गढ़ा सृष्टि का आरम्भ किसने भांति हुआ। भूमि विज्ञान के आगे हमें यह शंका करने की गुन्जायश नहीं कि धरणी और धरा का यह रूप अनादि है। भूमि बनी और अवश्य कभी बनी। पृथ्वी बन जानेके पश्चात ह्वेल मछली और हाथी जैसे बड़े जीवों को किसने गढ़ा और किसने सांचेमें ढाला ? क्या जीव जन्तु वर्षाके साथ अन्तरिक्ष से टपक पड़े। जब तीन वर्ष पहिले विकास वाद के सम्बन्ध में मेरे मन में शंका उत्पन्न हुई थी तो यही तर्क मेरे मन में भी उठा था—एक बार तो मैं घबरा गया था कि मेरी शंका निर्मूल है परन्तु दो वर्ष बराबर इसी बात को सोचता रहा और अन्त में उसका समाधान मिल ही गया।

जिन्होंने वटका कोई पुराना वृक्ष देखा है उनसे मैं पूछूंगा कि किस इञ्जिनियरिंग कार्यालयने उनकी समझ में, उसको ढालकर वहाँ जड़ा होगा। वट का बीज आपने देखा होगा यदि किसी प्रकार वह वट का नन्हा सा बीज जो परिमाण में पोस्त के दाने सा भी नहीं-बनजाय तो समस्या सहज ही में हल हो जाय परन्तु वह होना तो बहुत बड़ी बात है। वट वृक्ष के एक अथवा दो कोषों से उस बीज की उत्पत्ति हुई है। कोष की क्षुद्रता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि साधारणकोषों को तीव्र से तीव्र दृष्टि वाला पुरुष भी बिना अनुवीक्षण यंत्र की सहायता के भली भांति नहीं देख सकता। उस कोष का सारा ही अंश उस गुणविधान में भाग लेता हो सो भी बात नहीं इमरसनरिटर (Emerson Ritter) यद्यपि इसके विरुद्ध हैं, केवल न्यूक्लियस (केन्द्रमूल) का कुछ भाग इस सारीक्रिया के लिए उत्तरदायी है। अब क्या केन्द्रविन्दु के उस भाग का गठन करने के लिये हम तनिक और आगे नहीं जा सकते। उस का भी कोई सूक्ष्मतर आधार सृष्टि द्रव्यों में कहीं निहित हो यह मान लेने में मैं कोई आपत्ति नहीं देखता। इस सूक्ष्मतर द्रव्य के सम्बन्ध में केवल इतनाही कहा जा सक्ता है कि उसका परिमाण बहुत ही छोटा रहा होगा और उसका आस्तित्व भी स्वतन्त्र रह सक्ता होगा। पृथ्वी के आरम्भ काल में ऐसे असंख्य जीवन कण रहे होंगे। यह जीवन कण कहाँ से आए और इनमें कैसे अनन्त गुणों का प्रवेश और परिचालन हुआ आगे यह बात सोचनी है।

जिन लोगों ने फोटो का प्लेट डिवलप (develop) होते हुए देखा है या जो फोटोग्राफी के नियमों को कुछ जानते हैं उनको इसके समझने में कुछ कठिनाई न होगी। फोटो की तसवीर तो सबने ही देखी होगी। परन्तु क्या आपने कभी सोचा है कि यह सब कैसे होता है। यदि मैं कहूं कि फोटोग्राफर देखकर आपकी सूरत याद-कर लेजाता है और अँधेरे में बैठकर उसपर उन बातों को खुच देता है तो क्या आप मान जायेंगे। कदाचित कोई दकियानूसी मान भले, अच्छा यदि सूरत खुरची या खोदी नहीं जाती तो कांच के छोटे से टुकड़े पर पृथ्वी भर के पेड़, मकान, रास्ते, गली सब कैसे बन जाते हैं। पेड़की डाली ?, नहीं, फूल और फूलकी पत्ती पत्ती। इसका भेद यों है कि प्लेट पर

चांदीके एक विशेष पदार्थका लेप चढ़ा रहता। उसका यह गुण होता है कि प्रकाशसे उसमें प्रभाव पड़के उसका गुण कुछ बदल जाता है। यों कहिए कि प्रकाशसे उसमें प्रभावान्वित होनेकी अकेली क्षमताके कारण जैसा चाहे वैसा चित्र उतर आता है। मेरे इस कथनका अर्थ यह है कि गुणोंकी जो विभिन्नता हम जीवोंमें देखते हैं उसका आदिमें एकही आधार रहा हो तो असम्भव नहीं। हमारे जीवन कणमें आदिमें ऐसाही केवल एक गुण था आगे जो बात कही जायगी उसके समझनेके लिये विज्ञानके विशेष ज्ञानकी आवश्यकता है, जो इस युक्तिको नहीं समझ सकते उनको समझानेके लिए वह बात लिखी गई हैं। स्फट विज्ञान (Crystallography) से जिन लोगोंका यथेष्ट परिचय है वह जानते हैं कि स्फट रूप (Crystal form) के सम्बन्धमें कुछ दिनोंसे कुछ गणित रेखागणितके सिद्धान्त चालू हैं। स्फट जगतमें भी यही रूप और गुणोंकी भरमार है। ब्रेविस[१४], शाके[१५], श्योनलीज[१६] इत्यादिने १४-६५-और २५० विशेष आकृतियोंको लेकरही उससे सारे स्फट जगतका निर्माण होना समझा दिया है। स्फटका रूप और गुण उनके कणके रूप और गुण पर तथा निर्माण नीति पर अवलंबित है मेरे विचारमें इसी भांति जीवोंका रूप गुण भी उनके जीवनकण और उसकी निर्माण नीति पर अवलंबित है। मेरे कहनेका यह तात्पर्य नहीं कि प्रोटोप्लाज्म (protoplasm) की बनावटको मैं रवेदार (Crystalline) सिद्ध करना चाहता हूँ। मेरा तो आशय केवल इतनाही है कि सम्भवत: दोनों क्रियाओंमें कोई नियम सादृश्य हो। मेरा विश्वास है कि आगे खोजसे विज्ञानको जीव धारियोंमें और स्फट जगतमें नियमोंकी और भी अधिक सादृश्यता मिलती जायगी।

जिन जीवन कणोंकी मैंने बात कही है वह बहुत पुराने हैं इतने पुराने कि उनके आगे सोचनेकी इस समय आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई; हां ऐसा होसकता है कि चैम्बरलीन (Chamberlien) के ग्रहसिद्धान्त (Plsnetesimal Hypothesa) की भांति उनकी भी उत्पत्ति होनेकी कल्पना करली जाय। और इस कारण उनको जीवमूल (Biogenetesimal) या 'protobion) (जीवनकणआदि जीवाणु) कहना अनुचित न होगा। पृथ्वी तल पर इनकी उत्पत्ति हुई या किसी अन्य आकाश प्रदेशसे भूमण्डल पर इनका अविर्भाव हुआ यह कहनेके लिए अभी मैं तैयार नहीं।

इस अनुमान पर बहुतसी आपत्तिकी जासकती हैं--इसका इतना संक्षिप्त विवरण देनेसे बहुतसे लोग इसका यथार्थभाव न समझ सकेंगे और बहुत भ्रम होजानेकी सम्भावना है। अवकाश मिलने पर इसकी विस्तृत विवेचना करनेकी चेष्टाकी जायगी आशा है तब तक विचारशील सज्जन इसपर भली भांति अपने मनमें विचार करेंगे और अपने निर्णयोंकी इससे तुलना करनेकी कृपा करेंगे।

फुटनोट

1. C. de Lamark (1744-1829)
2. Erasmus Darwin (1731 1802)
3. Charles. R. Darwin (1809-1822)
4. A. R. Wallace (1822-1913
5. Origin of Species (1859)
5. Professor E. Haekel (1833-1919)
7. Herbert Spencer (1820-1903)
8. T. H. Huxley (1825-1895)
9. D. Vries
10. Weismann.
11. G. J. Mendel
12. Poulton.
13. Bateson.
14. A. Bravies (1848)
15. L. Soucke (1899)
16. Schonflies (1890)

Reference

1 Origin of Species-Darwin
2. Essays on Evolution-Poulton

3. Variation-Heredity & Evolution Lock
4. A. Picture book of Evolution—D. Hird.
5. Unity of Organism E.-Ritter.
6. Grammar of Science-K. Pearson
7. Mechanistic conception of life-Loeb.
8. History and theory of Vitalism Hans Oriesch.
9. Crystallography and practical crystal measurment Tulton.
10. The Making of the Earth—Gregory.

रेडियो

(ले० श्री गोविन्दराम तोशनीवालजी, एम. एस-सी)

वर्तमान कालमें दिनों दिन समाचार और वस्तुऐं इधर उधर भेजनेकी युक्तियोंमें इतनी उन्नति होरही है कि मनुष्यको यह प्रतीत होता है कि पृथ्वी अब बहुत छोटी है कुछ लोगोंने तो यहां तक विचार कर रक्खा है कि यंत्रों द्वारा चन्द्रलोककी यात्रा कर आयें और तार रहित युक्तियोंसे मंगलके वासियोंसे बातचीत कर सकें। अभी तक तो यह कल्पना मात्रही प्रतीत होता है परन्तु आजकल जिस गतिसे उन्नति हो रही है यह बात सम्भव भी हो सकती है। इन नूतन आविष्कारोंसे पूर्व हिन्दुस्तानसे विलायत जानेके लिये प्रायः ६ महीने लगा करते थे। पर अब हवाई जहाजसे आप ५, ६ दिवसमें वहां पहुंच सकते हैं और जब रात्रिमें भी हवाई जहाज उड़ सकेंगे तो आपको कुछ ३ दिन या उससे भी कम लगेंगे, समाचारोंके भेजनेमें तो विशेष उन्नति हुई है। आपके समाचार बिजलीकी लहरों पर आरुढ़ होकर एक सेकन्डमें पृथ्वीकी प्रायः आठ परिक्रमा कर सकते हैं। आप आज यहां बैठे हुए विलायतमें अपने किसी मित्रसे वार्तालाप कर सकते हैं। और सूरत भी एक दूसरे की देख सकते हैं, इसको अंग्रेजी भाषा में (दृश्य तार रहित द्वारा) Vision by wireless or Telerision (दूर दृश्य) कहते हैं। टेलीविज़न वे अर्ड साहिबके अन्वेषणों का परिणाम है और अभी इसमें काफी उन्नतिके लिए बहुतसे प्रयोगोंकी आवश्यकता है परन्तु एक दूसरेसे बात चीत करना या "रेडियो" या "ब्राडकास्ट" आज तक अच्छी उन्नति कर चुका है और आज आप यहांसे दिनमें किसी समय अमेरिका वालों से बातचीत कर सकते हैं।

आप कहेंगे कि आखिर तार और बेतारमें अन्तर ही क्या है बेतारके आविष्कारसे पूर्व एक जहाज जो बीच समुद्रमें था वह बड़ी बड़ी तोपें चलाकर ही आपत्तिकी सूचना दे सकता था जो केवल आस पासके जहाजही सुन पाते थे परन्तु अब बेतारकी सहायतासे सारे संसारको मालूम हो जाता है कि अमुक जहाज आपत्तिमें है और चारों दिशाओं से उसको सहायता मिल सकती है, और केवल यही नहीं बल्कि जहाजके यात्रीभी संसारकी गतिसे सूचित रहते हैं यही हालत हवाई जहाजोंकी भी है रेडियो तो वर्तमानकालमें अस्पतालोंमें भी पहुँच गया है और बीमार अपनी चारपाई पर सोते सोते तकिये पर सिर रक्खे रक्खेही तकियेमें से ही मधुर संगीत और संसार के समाचार सुन सकता है। ग्रामोफोन तो अब बहुतही पुराना हो चला क्योंकि रेडियो द्वारा नित नया संगीत सुना जासकता है अब बड़ी बड़ी सभाओंमें यह भय नहीं है कि व्याख्यान दाताका भाषण नहीं सुनाई पड़ेगा, स्थान स्थान पर जोरसे बोलनेवालों (Loud Speeker) के लगाने भरकी देरी है कि जहां पहिले एक शब्दभी साफ नहीं सुनाई देता था वहां अब ऐसा मालूम होता है कि व्याख्यानदाता वहीं खड़ा हुआ बोल रहा है।

यहीं तक नहीं अब विद्यार्थियोंको विद्यालयमें प्रोफेसरोंके भाषण सुनने जानेकीभी आवश्यकता

नहीं है घर ही पर बैठकर सब कुछ सुना जा-सकता है।

इतने सब गुण रेडियोमें होते हुए भी हमारे यहां अशिक्षित समाजही क्या बल्कि शिक्षित समाज भी आज "रेडियो"के सिद्धांतोंसे अनभिज्ञ है इसलिए मैं आज आप लोगोंको थोड़ा परिचय "रेडियो"से कराना चाहता हूँ:—

पूर्व इसके कि मैं समाचार भेजने और उनके पकड़नेकी युक्तियोंका वर्णन करूं थोड़ासा आपको रेडियोके विकासका हाल बताना चाहता हूँ।

सन् १८७९ ई० में डी० ई० ह्यूजनने बेतार भेजे हुए समाचारको ६० फीटकी दूरी पर सुना। सन् १८८८ में हाइनरिख हर्ट्जने यह निश्चय किया कि क्लार्क मैक्सवलकी प्रकाश सम्बन्धी कल्पित बिजलीकी लहरें आकाशमें चलाई जासकती हैं। तबसे रेडियोकी लहरें हर्ट्जकी लहरें कहलाती हैं। सन् १८९० ई० में ब्रानली ने 'कोहिरर' निकाला और हर्ट्ज लहरोंके पकड़ने का काम इससे लिया इसी साल सर अलीवर लाज ने झूलन चक्करों (oscillatory circuits) से इन लहरों को आकाशमें फैलाना और इनका ग्रहण करना बतलाया। सन् १९०७ ई० तक धीरे धीरे उन्नति होती गई, परन्तु अब तक सिर्फ चिह्नों और खटकों द्वारा ही समाचार भेजे जा सकते थे। बाद १९०७ ई० के जब कि ली० डी० फारस्ट ने बिजलीके कपाट (thermionic vaut) का आविष्कार किया, इसकी उन्नति बड़ी शीघ्रतासे हुई।
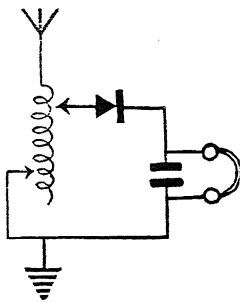
चित्र नं० १

अब पहिले इसके कि "रेडियो" की लहरों को ग्रहण कर हम उनके उत्पन्न करने का उद्योग करेंगे।

ऊपर वाले चित्र में "स" विद्युत सग्राहक है "आ" आवेश वेठन है "बा" बाधा और "ब" एक बाटरी है। जब चाबी (switch) "चा" को खोल देते हैं तो "स" भर जाता है पर जब 'चा' कोबन्द कर देते हैं तो 'स' 'आ' 'बा' 'ब' चक्रमें घटते हुए झोंटों की झूलन धारा (damped oscillator) बहने लगती है।

$$\text{धारा के झोटों की संख्या "न"} = \frac{\text{"ब"}}{२\pi\sqrt{\text{ल} \times \text{क}}} \quad (१)$$

चित्र नं० २

(damped oscillatory current)

घटते हुए झोटोंवाली झूलन धारा।

ऊपर दिया हुआ चित्र 'स' 'आ' 'बा' 'चा' चक्र में 'चा' के बन्द करने के बाद किसी समय बिजली की धारा की मात्रा और दिशा बतलाता है। श्री डा० निहालकरण सेठी और बाबूलाल जी गुप्त यह पहिले बतला चुके हैं कि इस प्रकारकी घटते हुए झोटों वाली लहर (damped waves) किस प्रकारसे आकाश में फैलाई जा सकती है। मैं भी उसी तरह का एक चित्र देकर इस बात को यहीं पर समाप्त करूँगा।

श्री बाबूलालजी ने इसका पूरा विवरण अपने लेख में दिया है इसलिए इसे संक्षिप्त में लिखना ही उचित मालूम होता है।

---

* डा० निहालकरण सेठी विज्ञान अक्टूबर नवम्बर सन् १९१९।
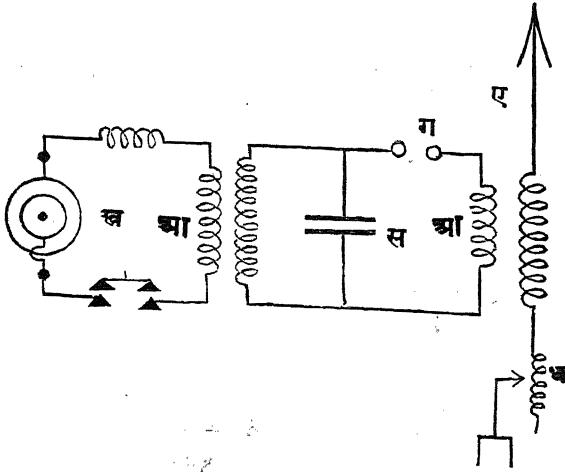
चित्र नं० ३

ख—उल्टी सीधी धारा [illegible] विद्युत संग्राहक
आ—आवेश बेठन एण्टना आकाशीतार
ग [illegible] खण्ड।

"ख" की सहायता से उल[illegible] सीधी धारा "अ" में प्रवेश करती है इ[illegible] उसके समीपवर्ती बेठन द्वारा [illegible] पूर्णतया [illegible] हो जाता है (श्री बाबूलालजी गुप्त विज्ञान सितम्बर सन् १९२८)

ऐसी अवस्था में संग्राहक के सिरों पर अवस्था यह अधिक होने से तड़ित् खण्ड में होकर धारा बहने लगती है और चिनगारी निकल जाती है। 'स' 'ग' 'आ' चक्कर चित्र नं० १ के चक्कर के समान काम करने लगता है। इस चक्कर में झूलन धारा बहने लगती है और झोटों की संख्या का अनुमान समीकरण १ से किया जा सकता है। इस समीकरण से यह साफ है कि संग्राहक की समाई अथवा बेठन का आवेश एक या दोनों को घटाने बढ़ाने से झोटों की संख्या घटाई बढ़ाई जा सकती है जब जब 'स' 'ग' 'आ' चक्कर में धारा झूलने लगती है तो एण्टनावाले बेठन द्वारा एण्टना में भी झूलन धारा बहने लगती है जिसका अनुमान झूलन धारा मापक यन्त्र 'ध' से हो सकता है।

यह भी सेठीजी और गुप्तजी दोनों बता चुके हैं कि अगर इस प्रकार झूलन धारा एण्टनामें बहने लगे तो आकाशमें उसी संख्याकी विद्युत लहरें बहने लगती हैं और किसी दूरके एण्टनामें झूलन धारा पैदा कर सकते हैं।

अब तक आप लोगों ने किसी बिजलीवाले इञ्जिनियर से सुना होगा कि अमुक बिजली घर (power house) ६०—१०० दौरेवालीउल्टी सीधी धारा शहर को बांटता है परन्तु आपको यह जानकर कुछ आश्चर्य होगा कि रेडियो द्वारा समाचार भेजने वाली धाराकी दौरोंकी संख्या १०, ००, ००० या इससे अधिक प्रति सेकेण्ड होती है। शायद आप जानना चाहेंगे कि आखिर इतने ऊंचे संख्याके दौरोंकी जरूरत ही क्या है जब सिर्फ झूलन धारा ही की जरूरत है तो क्यों नहीं शहरकी विद्युत् ही एण्टनामें चलाकर बेतार खबर भेजी जावे। इसके उत्तरमें आपको इस लेखमें मैं सिर्फ इतना ही बता देना चाहता हूँ कि विद्युत सामर्थ्य जो आकाशीतार से चारोंओर निकल कर जाती है संख्या के वर्ग के साथ घटती बढ़ती है इसलिए जितनी ऊँची संख्याकी धारा आकाशी में बहेगी उतनी ही ज्यादा विद्युत् सामर्थ्य आकाश में प्रवेश करेगी और हम ज्यादा दूर तक समाचार भेजने में समर्थ होंगे।

दूर समाचार भेजनेके लिए आकाशीमें बहनेवाली झूलन धाराके झोटोंकी संख्या अधिकसे अधिक होनी चाहिए। परन्तु यदि ऐसी झूलन धारा किसी ऐसे यन्त्र में ली जावे जिसमें इस धारा से शब्द पैदा हो जैसे टेलीफोन तो वह शब्द हमको सुनाई नहीं दे सकता है क्योंकि यह शब्द इतनी ही ऊँची संख्या का होगा परन्तु जो शब्द कि हम सुन सकते हैं उसकी संख्या १००—८००० तक होनी चाहिए। जो शब्द हम बोलते अथवा जो स्वर कि हम बोलते समय निकालते हैं उनके झोटोंको संख्या इन्हीं संख्याओं के बीच में होती हैं। यदि इन संख्याओं की धारा आकाशीमें बहाई जावे तो समाचार हजारों मीलों तो दरकिनार फुटों की दूरी पर नहीं पहुँचेगा। इस

कारण ऐसा किया जाता है कि स्वरों को बिजली की उसी संख्या की लहरोंमें बदल कर आकाशी तारकी ऊंची संख्या वाली लहरों पर सवार करा दिया जाता है। समाचार पकड़नेवाले स्थान पर इसका उल्टा होता है और स्वर सुन जाने लगते हैं।

जो यन्त्र कि शब्दोंकी लहरोंको बिजलीकी लहरोंमें बदलता है माईक्रोफोन कहलाता है,

जब माइक्रोफोन के समाने 'ए' स्वर बोला जाता है तो स्वर की संख्याके बराबर वाली दौरेकी उल्टी सीधी धारा माइक्रोफोन के चक्कर में पैदा होती है। इस धाराका चित्र नीचे दिया है।

चित्र नं० ४

इसके देखनेसे यह साफ मालूम हो जाता है कि धारा उल्टी सीधी है परन्तु धाराके झोटोंकी दौड़ अथवा झोटें एक समान नहीं बल्कि घटते बढ़ते हैं।

इस चित्रके साथ साथ अगर घटते हुए झोटों (damped oscillations) का चित्र भी आप देखेंगे तो थोड़ा विचार करनेसे पूर्ण रूपसे प्रतीत होगा कि घटते हुए झोटे माईक्रोफोनीय धाराके लिए (damped oscillations microphonic) किसी प्रकारभी अच्छा वाहक नहीं हो सकते क्योंकि यहां पर तो पहिले ही से झोटों की दौड़ (amplitude) कम और ज्यादा होती रहती है और अगर इस पर माईक्रोफोनीय धारा चढ़ा दी जावे (superimpose) तो "रेडियो" द्वारा ग्रहण करने पर 'ए' शब्द कभी नहीं सुना जायेगा। कुछ शोर (parasistic noise) सुन पड़ेंगे। इसीलिए अब यह आवश्यक जान पड़ता है कि हमारा काम घटते हुए झोटों (damped oscillations) से नहीं चलेगा। अब हमको समान झोटों की (undamped oscillations) आवश्यकता हो गई है। बिजलीके कपाट (thermionic valve) या त्रिलोद (triode) के पूर्व इस प्रकार के समान झोटों के (undamped oscillations) उत्पन्न करनेका काम पाउलसनचाप (Poulson arc, Alexanderson) अथवा (Goldschmidt) एलेकजेन्डर, गोल्डस्मिट के ऊंची दौर वाले उल्टी सीधी धारा जनक (alternator) से लिया जाता था (इस प्रकारकी वस्तुका वर्णन आगे किसी अङ्क में दिया जावेगा। वर्तमान कालमें इस प्रकार की धारा उत्पन्न करने का [illegible] त्रिलोद (T[illegible]des) से ही लिया जाता है। [illegible] क हमको [illegible] चल कर त्रिलोद (Triode [illegible] काम पड़ेगा, थोड़ा सा इसका विवरण [illegible] उचित है।
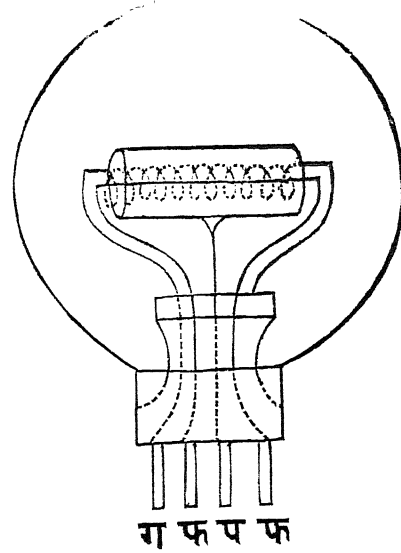
चित्र न० ५

ग—rid, जाली

प—Plate पट

फ—Filament. तंतु

बिजलीके कपाट वैलव (Thermionic valve) में मुख्य तीन वस्तु होती हैं।

(१) तंतु (filament) यह वूलफ्राम का एक तार होता है जिसे विद्युत धारा बहाकर गरम करते हैं।

(२) जाली grid) यह नकलम् (nickel) धातु की होती है जो साधारण रूपसे एक सर्पज (helice) की सूरत का होता और तन्तु (filament) के चारों ओर फैली रहती है। (चित्र नं० ५ देखिये)।

(३) पट (plate) अथवा धनोद (anode यह एक बेलनाकारके रूप का तंतु (filament) और जाली (grid)दोनों को चारों ओर से घेरे रहता है।

तन्तु जालीके बीच में रहता है और यह धनोद (Anode) बेलनकी अक्ष भी है इस प्रकार इन सबको लगाकर एक कांच के गोलेमें बन्द कर उसमें से सारी हवा निकाल लेते हैं। चार सिरे (terminals) इस गोले के बाहर निकले रहते हैं दो तन्तुके (filament) सिरे एक जाली (grid) का और चौथा धनोद (anode) का इन चारों का चित्र नीचे दिया गया है।
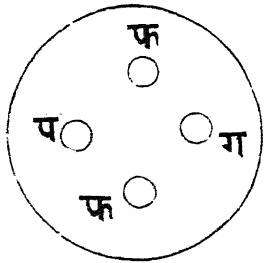
चित्र नं० ६

त्रिलोद (triode) के सिरों की सूरत देख कर ही हर एक आदमी बता सकता है कि अमुक सिरा अमुक वस्तुसे जुड़ा है। यह ओ. डबलू रिचर्डसन (O. W. Richardson) बता चुके हैं कि अगर किसी धातुको गर्म किया जावे तो उसमेंसे विद्युतकण (electrons) निकलते हैं इसलिए हम जब तन्तु (filament) को गर्म करते हैं तो वह कण (electrons) देने लगता है और अगर धनोद को तन्तु की अपेक्षासे उच्च अवस्था का कर दिया जाता है तो कण (electrons) खींचकर धनोद (anode) को चले जाते हैं और धनोद और तन्तुके बीचमें विद्युत धारा बहने लगती है। अब बिजलीके कपाटके (thermionic valve) विषयमें इतना ही कहकर मैं आपको समान झोटों (undamped oscillations) के उत्पन्न करनेके लिये चित्र देकर समाप्त करूँगा।
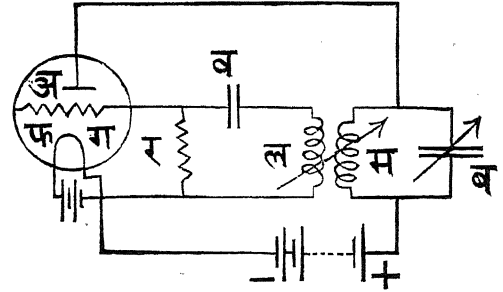
चित्र नं० ७

र—बाधा (Resistance) १०००० ओम।
ल—वेठन जाली (grid) चक्र में
य—वेठन धनोद (Anode) चक्र में
व—विद्युत संग्रहक
ब—बदलती हुई (variable) समाईका विद्युत संग्राहक
अ—धनोद (Anode)
म—जाली (grid)
फ—तन्तु (filament)

यह किस प्रकार समानझोटों (undamped oscillations) को उत्पन्न करता है यह आगामी किसी अङ्क में दिया जावेगा।

अब हमारे पास समान झोटोंवाली (undamped oscillatory) धारा भी है और माईक्रोफोनीय धारा (microphonic) भी है केवल अब इस प्रकारकी धाराको (undamped) समान झोटो वाली धारा पर आरूढ़ करने की आवश्यकता है।
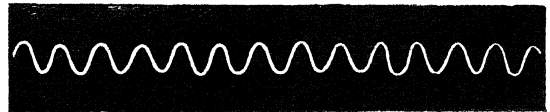
चित्र नं०८

जब इस प्रकारकी धारा पर हम माईक्रोफोनीय धारा microphonic) चढ़ा देते हैं तो धाराकी सूरत का चित्र निम्न प्रकार हो जाता है।

चित्र नं० ६

अब आप पूर्ण रूप से समझ गये होंगे कि उचित सवारी के मिलने पर आपके मुँह का निकला हुआ शब्द "रेडियो" द्वारा आकाश में फैलाया जा सकता है, अब हम आपको आगामी अङ्क में ग्रहण करने की विधियाँ बतायेंगे।

—:○:—

मक्खन, घी और पनीरकी जांच

[ले० श्री रामचन्द्र भार्गव एम० बी०, बी० एस]

मशीनसे निकाले मक्खनकी औसद बनावट निम्नलिखित प्रकार होती हैं:—

वसा घी)	८३·५%
पनीरिन (केसीन)	१%
राख	१·५%
दुग्ध शर्करा	१%
जल	१३%

जल ८ से १५% तक हो सकता है। मक्खनकी वसा मधुरिन (गिलीसरिन) और कुछ मेदस्वी अम्लोंके यौगिकोंकी बनी होती है। इन यौगिकोंको मधुरिद कहते हैं।

(क) कुछ उड़नशील और गरम जलमें घुलनशील मेदस्वी अम्लोंके मधुरिद रहते हैं। ऐसे अम्लोंमें मुख्य नवनीतिक अम्ल है और थोड़ी थोड़ी मात्रामें अजोइक, अजिक और अजीलिक अम्ल भी रहते हैं।

(ख) कुछ गरम पानीमें अघुलनशील मेदस्वी अम्लोंके मधुरिद ऐसे अम्लोंमें खजूरिक (पामिटिक) चर्बिक (स्टिरिक, जैतूनिक और मिरिस्टिक अम्ल हैं।

मधुरिदके उसी परमाणुमें कई अम्ल लगे रहते हैं।

मक्खनकी जाँच एक दम आरम्भ कर देना चाहिये और यदि रखना आवश्यक हो तो ठंडी और अन्धेरी जगहमें रखना चाहिये क्योंकि जब मक्खन खराब होने लगता है कुछ विशेष लक्षण जो कि जांचमें काम आ सकते हैं कम स्पष्ट होने लगते हैं। मक्खनके खराब होने पर अघुलनशील अम्लोंके बढ़ने और घुलनशील अम्लोंके कम होनेकी ओर झुकाव रहता है। मक्खनकी वसाके खराब होनेके कारण जीवाणु है और वे केवल प्रकाश और वायुकी उपस्थिति में ही प्रभाव डाल सकते हैं। पहिले मक्खन का ऊपर ऊपर का भाग खराब होता है और फिर खराबी भीतरकी ओर फैलती जाती है। जब मक्खन में से दूधके अन्य अंश अच्छी तरहसे नहीं धो दिये जाते हैं तो मक्खन बहुत जल्दी खराब होता है। जाँच के लिये आये मक्खनको कागजमें लपेट कर नहीं रखना चाहिये क्योंकि कागजमें कुछ पानी सोखनेकी सम्भावना रहती है। मक्खनको स्वच्छ और सूखी हुई बोतलमें रख सकते हैं।

भौतिक लक्षण—अच्छे मक्खनकी गंध और स्वाद सब कोई जानते हैं और इनसे मक्खनकी विशुद्धताके बारेमें बहुत कुछ लाभकारी ज्ञान होता है। यदि मक्खन २५°श तक गरम कर लिया जाय तो असाधारण स्वाद की उपस्थिति जान पड़ने की सम्भावना बढ़ जाती है।

मक्खनमें जल, वसा पनीरिन और लवणों का निम्नलिखित प्रकार अनुमान किया जा सकता है।

एक चपटे पैदें की कुल्हिया में ५ ग्राम मक्खन तौल लीजिये और उसे १०५° श पर भभकेमें रख दीजिये। जब सब पानी उड़ जायगा तो तौल स्थिर हो जायगो। इसलिये मक्खनको भभकेमें उस समय तक

रखे रहना चाहिये जब तक कि उसकी तौल स्थिर न हो जाय। तौल की कमी से जल की मात्रा मालूम हो जायगी यदि ५ घन श॰ म॰ मद्यसार छोड़ दिया जाय तो सुखाने में सुविधा होगी। वसाका अनुमान करनेके लिये जलरहित मक्खनको ज्वलक (ईथर) से कई बार धोइये। प्रत्येक बार ज्वलक नया होना चाहिये। मक्खन को धोनेके पश्चात् जो कुछ बचे उसे सुखा कर तौलने-से जो कुछ तौल आए वह पानीरहित और राख की तौल है और जो कुछ तौलकी कमी आये वह वसा की तौल है। इस प्रकार वसाका अनुमान किया जा सकता है।

कुल्हियामें बचे वसा रहित अवशिष्टको नीचे तापक्रम पर जलाकर तौलनेसे लवणोंकी तौल निकल आयगी और तौल की कमीसे पर्नारिनक अनुमान किया जा सकता है।

मिलावट—मक्खनके अतिरिक्त और प्रत्येक अन्य प्रकारकी वसा जो मक्खनसे मिलती झुठती बनाकर बेची जाय वह 'चर्बी,' 'तेल' अथवा 'मार्गेरीनके नामसे बेची जानी चाहिये चाहे उसमें कुछ मक्खन मिला हो अथवा नहीं। मार्गेरीनके बनानेके लिये, वानस्पत्य और पाशविक वसायें पिघला और छानकर वर्फमें ठंडीकी जाती हैं। फिर उनमें कुछ थोड़े दूधका समावेश करके उनमें रंग और नमक मिला दिया जाता है मार्गेरिन देखनेमें और स्वादमें लगभग मक्खन जैसी होती है। पोषण शक्ति भी मार्गेरिनमें लगभग मक्खनके ही बराबर होती है, केवल जीवामिनोंकी विटा-मिन कमी रहती है। मार्गेरिन खानेमें बड़ा लाभकारी द्रव्य है परन्तु वह मक्खनके नामसे नहीं बेची जानी चाहिये। शूकरवसा, गौ और भेड़की वसायें, विनोले, तिल, नारियल और मूंगफलीके तैल मक्खनकी वसा-के स्थानमें बेंचे और मक्खनमें मिलाये गये हैं। कुछ कम अवसरों परसम्बन्धिन (पैरेफिन) और मोमका भी मार्गेरीनमें समावेश किया गया है। परसम्बन्धिन कोई पोषक पदार्थ नहीं और इससे हानि होनेका भय रहता है।

मक्खन अथवा मार्गेरीनकी वसा पहिले बतलाई हुई विधियोंके अनुसार पृथक्की जा सकती है।

मक्खन और अन्य वसाओंमें मुख्य अन्तर जो कि बनावटके अन्तर पर निर्भर है निम्नलिखित प्रकार है।

मक्खन की वसा

१ घुलनशील, उड़नशील मेदस्वी अम्लोंकी औसत् ६°/॰ और ७°/॰ के बीचमें होती है। ४.५°/॰से कभी कम नहीं होती।

अघुलनशील मेदस्वी अम्ल ८८°/॰ के लगभग होते हैं।

२ राई खर्ट माईसल संख्या (५ ग्रामकी) २४ से ३१ तक होती है।

३. वेलैन्टा की जांच में वसा ३०° से ४०° श तक में स्वच्छ हो जाती है।

४. ध्रुवत्व दर्शक (पोलैरिस्कोप)—सूक्ष्म ध्रुवत्व दर्शक यन्त्र द्वारा नमूने को बहुत पतलो परत की जांच करनेसे जब नीकोल त्रिपार्श्व (क्रकचायत) व्यत्यस्त रहते हैं तो क्षेत्र बिलकुल अंधेरा रहता है केवल कहीं कहीं संरक्षक इत्यादि अन्य द्रव्योंकी उपस्थितिके कारण कारण प्रकाशमय विन्दु दृष्टि गोचर होते हैं।

अन्य प्रकार की वसा

१ अधिकतर ०.५°/॰ होती हैं और ०.७५ से अधिक कभी नहीं।

२ नारियलके तैलके अतिरिक्त साधारणतः यह संख्या १ से २ तक होती है। नारियलके तैलमें ७ से ८ तक होती है।

३. कोई पशुओं की चर्बी ९४° से कम पर नहीं स्वच्छ होती है और कोई भी वानस्पत्य तैल ८०° श से कम पर नहीं स्वच्छ होता है।

४. इसी प्रकार से अधिक अन्य वसा उपस्थित है तो अंधेरा क्षेत्र नहीं मिल सकता और क्षेत्र में कुछ

बादल के सदृश आकार दिखलाई देंगे। वास्तव में क्षेत्र में अंधेरा होना असंभव है। इस जांचसे वास्तव में यह मालुम होता है कि वसा उबाल ली गई है।

मक्खन और घीमें मिलावटकी सब से उत्तम साक्षी घुलनशील उड़नशील मेदस्वी अम्लोंकी मात्राओं के अनुमान से मिलती है।

राईखर्ट माईसल विधि—मक्खनमें अन्य मिलावट के लिये इस्तेमालकी जाने वाली वसाओं से अधिक घुलनशील उड़नशील मेदस्वी अम्ल रहते हैं। इस कारण यदि उड़नशील मेदस्वी अम्ल वसामें से पृथक् किये जायँ तो उनकी मात्रा मक्खनमें अधिक मिलेगी।

१. हाल ही में पिघलाई हुई वसा को सूखेछनने कागजसे छान कर तंग ग्रीवाके एक ३०० घ० श० म० की धारण शक्तिकी सुराहीमें जब तक कि ५ ग्राम न हो जाय डालते जाइये। यदि कुछ अधिक वसा गिर गई हो तो आधिक्य शीशेकी छड़से निकाला जा सकता है और इस प्रकार ठीक ठीक ५ ग्राम वसा ली जा सकती है।

२—५०°/, सज्जीक्षारके (सोडे) घोलके २ घ० श० म० लीजिये और २० ग्राम मधुरिन और इन दोनोंको भी सुराही में छोड़ दीजिये। सुराहीको लौपर चढ़ा दीजिये। गरम करते समय सुराहीको घुमाते जाइये। जब झाग बनना बंद हो जांय और द्रव स्वच्छहो जाय तो सुराहीको आग परसे उतार लेना चाहिये। मेदस्वी अम्लोंके योगसे इस प्रकार साबुन बन जाते हैं।

३. ३० घ० श० म० दश मिनट तक उबाला हुआ गरम निष्कर्षित जल हिला हिलाकर छोड़िये और फिर ९० घ. श. म. ठंडा हालमें उबाला हुआ निष्कर्षित जल।

४. जब साबुनीय घोल ६०° श. तक ठंडा हो जाय तो इसमें ५ घ. श. मी घन गन्धिक अम्ल छोड़िये साबुन टूटकर अवद्ध मेदस्वी अम्ल बन जाँयगे।

५. मटरके बराबर बराबर दो झांवा (प्युमिस) पत्थरके टुकड़े भफरन रोकनेके लिये छोड़ देने चाहिये। फिर सुराही को घनीकरणयन्त्रसे (Candensing apparatus) एक ऐसी नली द्वारा सम्बन्धित कर देते हैं कि जिसमें डाटसे ५ श. म. की दूरी पर ५ श० म० के व्यासकी एक फूलन हो। फूलनके ऊपर ही नली टेढ़ी दिशामें झुकी होती है। इसके बाद फिर नली
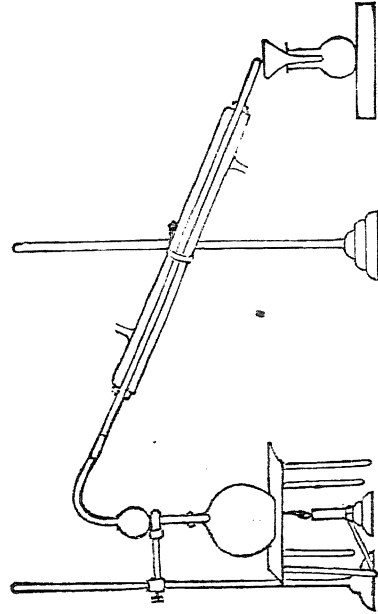
मुड़ी होती है। सुराहीका घनीकरण यन्त्र से सम्बन्ध एक नली अथवा डाट द्वारा किया जाता है। सुराहीको गरम करके उसके भीतरके द्रवको धीरे धीरे उबालते हैं। अघुलनशील मेदस्वी अम्ल पिघल जाते हैं और नवनीतिक अम्ल उड़कर स्रवितमें आ जाती है, परन्तु कुछ अघुलनशील अम्लभी उड़ आते हैं, इस लिए इनको पहिले पृथक् करनेके लिये स्रवितको छानना चाहिये। अब स्रवितमें अम्लके अनुमानसे घुलनशील उड़नशीलका अम्लोंका अनुमान हो जायगा।

६. ठीक ठीक ११० घ. श. म. स्रवित एक निशानेदार सुराहीमें इकट्ठा कर लिया जाता है। लौ को इतना ही तेज रखना चाहिये कि इतनी मात्राके निष्कर्षमें कमसे कम आधा घंटा लगे। फिर १०० घ. श. म. छनने कागज द्वारा छान लिये जाते हैं। इस

छने हुए स्रवितमें फिनौलथैलीनको सूचकके स्थान में उपयोग करके क्षारके दशांश सामान्य घोल द्वारा अम्लत्वका अनुमान कर लिया जाता है। भार उदौषिद्‌का घोल इस कामके लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। मधुरिन सज्जीक्षार मिश्रणसे एक खाली परीक्षण भी कीजिये और जो कुछ उत्तर आये उसे वास्तविक परीक्षणमें आई हुई $\frac{\text{सा}}{१०}$ क्षारके घोल की घ. श. म की संख्याओंमेंसे घटा दीजिये। अधिकसे अधिक १. घ. श. म. घटानेकी आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार जितनी भी १० क्षारके घ. श. मकी संख्या स्रवित तर्के अम्लत्वके अनुमानमें लगे उसे १·१ से गुणा करनेसे राईखर्ट माईसल सख्या निकल आयेगी। इस प्रकार ५ ग्राम मक्खन लेने पर राई खर्ट माईसल संख्या कम से कम २४ होनी चाहिये और २४ से ३२ तक पाई जा सकती है। तेलकीमार्गैरीनमें यह संख्या २ से ७ तक होती है और क्योंकि साधारणतः मक्खनका जायका देनेके लिये उसमें कुछ दूध मिला दिया जाता है इसलिये अधिकतर यह संख्या ५ से ६ तक पाई जाती है। जिसके कि धोखेबाजीमें आसानी न हो और धोखेबाजी पकड़नेमें आसानी हो १०% से अधिक मार्गैरीनमें नवनीतीय वसा मिलाना मना होना चाहिये। गरीके तेलकी उपस्थितिमें मार्गैरीनमें इतनी नवनीतीय वसा मिलानेसे राईखर्ट-माईसल संख्या ४ होती है।

मान लीजिये कि किसी नमूनेमें राईखर्ट-माईसल नम्बर २० घ.श. म. है वो नमूनेमें कितनी नवनीतीय वसा है। ४ मार्गैरीनके लिये गरीके तैलकी उपस्थितिमें उच्चतम संख्या होती है और २४ नवनीतीय वसाके लिये नीचतम संख्या होती है इसलिये जब (२४—४)= २० अन्तर होता है तो वसा १००% नवनीतीय होती है। इसी प्रकार जब अन्तर केवल १६ है तो नवनीय वसा ८०% होगी अर्थात् २०% मार्गैरीन उपस्थित है। पौलैन्सकीके निम्न लिखित परीक्षणके अनुसारसे गरी (नरियल) के तैलकी उपस्थितिका भी कुछ पता चल सकता है।

१. जब ११०घ. श. म. स्रवित इकट्ठा कर लिया जाता है तो सुराहीको हटा दिया जाता है और एक २५ घ. श. मी का गिलास रख दिया जाता है।

२. सुराही को बिना हिलाये हुए १०°श. के पानी बर्तनमें रखते हैं। पानी कमसे कम इतना होना चाहिये कि कमसे कम ११० घ. श. म के निशान तक आ जाये।

३. अघुलनशील मेदस्वी अम्ल सुराहीमें जलके पृष्ठ पर उठ आते हैं। मक्खनमें ये अम्ल पृष्ठ पर सफेद अपारदर्शिन कणोंके रूपमें होते हैं और गरीके तैलमें तैल की बूंदोंके रूप में। यदि मिश्रणमें १०% से अधिक गरी का तैल उपस्थित है तो भी तैल की बूंदे ही दृष्टिगोचर होंगी।

४. अब सुराहीके द्रव को छानकर अम्लत्वका अनुमान कर लिया जाता है।—

५. घनीकरण यन्त्र गिलास और सुराही को १८ घ. श. मी जलसे धोकर यह जल भी छनने पर छोड़ दिया जाता है।

६. छनने कागज पर की अघुलनशील मेदस्वी अम्लों को मद्यसारमें घुलाकर घोलमें फिनोल थैलीन को सूचक के स्थानमें उपयोग करके भार उदौषिद्‌के द्वारा अम्लत्वका अनुमान कर लिया जाता है।

७. $\frac{\text{सा}}{१०}$ भारउदौषिद्‌के घोलकी जितने घ. श. म की संख्या लगे उसे पोलैंस्की संख्या कहते हैं। असली मक्खनमें पोलैन्सकी संख्या ३ से अधिक नहीं होती है। गरीका तैल मक्खनमें मिलानेसे मिश्रण की पौलेन्सकी संख्या अधिक बढ़ जाती है क्योंकि गरीके तैल की संख्या १६·८ से १७·८ तक होती है।

वेलन्टाकी जांच—यह भी जांच लाभकारी है क्योंकि सरलतासे की जा सकती है। यदि ३ घ. श. म. पिघली हुई वसा ३ घ. श. म. हैम (glacial) सिरकिक अम्लके साथ एक तंग निशानेदार नलीमें मिलाई जाय एक तापक्रम-मापक भी लगा दिया जाय तो यह देखा जायगा कि वसा तैल अथवा मार्ग-

रीन है तो मिश्रण हिला हिलाकर जब तक ४°श तक न गरम किया जाय तब तक स्वच्छता नहीं आयगी परन्तु यदि वसा घी है तो वसामें साधारणतः ३६°श पर ही स्वच्छता आ जायगी। असली मक्खनके भिन्न भिन्न नमूनेमें स्वच्छता आनेका तापक्रम ३०° और ४०° के बीचमें आती पाई जा सकती है परन्तु कोई भी पाशविक वसा ९४° के नीचे और कोई भी साधारण वानस्पत्य तैल ८०°श के नीचे नहीं स्वच्छ होता है इसी जाँच की दूसरी विधि यह है कि वसामें स्वच्छता आ जानेके पश्चात् गरम करना बंद कर दिया जाय और फिर वह तापक्रम देख लिया जाय कि जिसपर वसा फिर धुंधली होती है। इन दोनों तापक्रमों अर्थात् स्वच्छ और फिर धुंधलेपन आनेके तापक्रमोंकी औसद भी ली जा सकती है। द्रव्यों और नलियोंमें नमी न रहना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि नमीके कारण वेलन्टा संख्या बढ़ जा सकती है। सिरकिक अम्ल की तीव्रतासे भी संख्यामें कुछ अंतर आजाता है इस लिये एक जांच शुद्ध मक्खन की वसा अलग लेकर भी कर लेना चाहिये।

जीन ने इस जांच को निम्न लिखित प्रकार बढ़ाया है। कुछ मिनट बाद यह देखा जाता है कि कितना अम्ल अलग हो गया क्योंकि कुछ अम्ल वसा सोख लेती है। मान लीजिये परीक्षणके पश्चात् सिरकिक अम्ल १·१. घ. श. म. रह गया तो वसामें ३-१·१= १-६ घ. श. म. मक्खन समा गया १-६ घ. श. मी. ३ घ. श म. का ६३% है। नवनीतीय वसा लगभग ६०% सिरकिक अम्ल सोख लेती है मार्गरीन साधारणतः ३०% से अधिक अम्ल नहीं सोखती।

एक और स्थूल जांच इस प्रकार की जा सकत सकती है—५ ग्राम नमूनेमें ५० घ. श. म. उबलता हुआ ताजा दूध छोड़िये। फिर मिश्रण को जब तक कि कुल वसा न पिघल जाय चलाते जाइये। फिर मिश्रणके गिलास को बरफके बराबर ठंडे पानीमें रख दीजिये यदि नमूना मार्गरीन है तो वसा कठोर टुकड़े के रूप में जायगी। यदि वसा नवनीतीय है तो वह मुलायम पाई जायगी या दूध में मिली होगी।

यदि एक स्वच्छ पररौप्य की पटरी पर कुछ वसा जलानेके पश्चात् लौ बुझाने पर चर्बी जलने की गन्ध आय तो मार्गरीनका संदेह करना चाहिये। जब मक्खन पररौप्यकी कुलिइयामें गरम किया जाता है तो बहुत झाग उत्पन्न होते हैं और कुल्हियाके बाहिर भी फैल जा सकते है परन्तु मार्गरीन को अपेक्षा किड़किड़ाहट कम होती है। मर्गरीनमें झाग कम पैदा होते हैं।

सैन्धक उदेतके मद्यमारीय घोलके साथ मक्खन को गरम करनेसे और फिर ठंडे पानी पर डालनेसे एक विशेष गन्ध उत्पन्न होती है। कुछ अन्य वसाओं की थोड़ी मात्रामें उपस्थिति पकड़नेके लिये अभी कोई उपाय नहीं ज्ञात हैं। अनंट्टो और कभी कभी हल्दी, जाफरान (कुंकुम), गेंदा गाजरिन और कुछ अलकतरे के रंग मक्खनको रंगनेके लिये इस्तेमाल किये जाते हैं। इनकी उपस्थिति की जाच इस प्रकार की जा सकती है। एक नलीमें ५५ ग्राम पिघला और छाना हुआ मक्खन लीजिये। इसमें १५ भाग दारीनिलिक मद्यसार और २ भाग कर्बनद्विगन्धिदके छोड़िये। ऊपरके मद्यसारमें रंग आ जायगा। फिर रंग की जांच कर लीजिये कभी कभी मक्खनमें टंकणिक अम्ल भी मिलता है। सैलिसिलिक वेदमुश्किक अम्ल सैन्धक बानजोयेत, ह्यविद, गन्धित इस काम के लिये उपयोग किये जाते हैं।

कभी कभी मक्खनमें धोखा देनेके लिये जल बहुत मिला दिया जाता है परन्तु १६% से अधिक पानी होनेसे मक्खन बिगड़ता जल्दी है। अधिकतर मार्गरीनोंमें पानी कम होता है। साधारण नमक स्वाद बढ़ाने और केसीन को सड़नेसे बचानेके लिये मिलाया जाता है। बहुतही कम अवसरों पर मक्खनमें इतना अधिक नमक मिलता है कि उसका स्वाद जाये अर्थात् अधिकतर मक्खनमें ५ या ६% से अधिक नमक नहीं होना चाहिये।

मक्खनमें कभी कभी क्षयरोगके और अन्य अम्ल पक्षके जीवाणु पाये जा सकते हैं और जीवाणुमेंके द्वारा ही आस्वादका भी निर्णय होता है।

पनीर

पनीरमें अधिकतर दूध (गाय अथवा बकरीके) उपादान मुख्यशः पनीरिन (केसीन) और वसा ही पाये जाते हैं, परन्तु जैसे जैसे वह पकती जाती है तो शर्करा बदलती जाती है (मुख्यशः दुग्धिक अम्लमें)। पकनेकी क्रियामें जीवाणु, और फफुँदन इत्यादि की बहुत वृद्धि पाई जाती है। पनीरमें हानिकारक मिलावट बहुत कम होती है। जो मावा कि रेनेट (दुग्ध थक्कक) द्वारा दूधमेंसे निकाला जाता है उसके स्थानमें कोई ऐसी चीज उपयोग नहीं हो सकती है कि जिससे पनीरके सदृश द्रव्य बन सके परन्तु तो भी मार्गेरीन पनीर बनानेमें और सस्ती पनीर बनानेमें पाशिवक और वानस्पत्य वसायें मिलाई थर (क्रीम) जा सकती हैं इस प्रकार एक प्रकार की सस्ती पनीर निकाला दूध और शूकरवसा अथवा अन्य वसा मिलाकर बनाई जा सकती है।

कुछ पनीरोंमें बड़े विषैले जीवाणुनाशक जैसे संक्षीरास अम्ल और ताम्र गन्धेत, पृष्ठ पर रगड़े हुए मिलते हैं। यह विष द्रव्यरक्षाके विचारसे छोड़े जाते हैं। पृष्ठीय भाग को रंगनेके लिये रंग (सीसं रागेत इत्यादि) उपयोगमें लाये जाते हैं और कुछ अच्छी पनीरोंमें लिपटे हुए कागजसे भी सीसा आजा सकता है। इसलिये पनीरके पृष्ठीय भाग की कभी कभी जांच करना आवश्यक हो सकता है। नोषजनकी मात्राको ६. ३२ से गुणा करनेसे आदिन प्रोटीनकी मात्राका अनुमान किया जा सकता है। वसाके अनुमानके लिये पनीरकी कुछ ज्ञात मात्राको सुखाकर एक जांच नलीमें लीजिये। उसमें कुछ तीव्र उदहरिक अम्ल छोड़ दीजिये। उबालिये। जब कुल पनीर घुल जावे तो पनीर ठंडा करके उसमेंसे ज्वलक द्वारा उसे तीन बार धोकर वसा निकाल ली जाती है। पृथक् किया हुआ ज्वलक उड़ा दिया जाता है और बची हुई पनीर को सुखाकर तोल लिया जाता है।

यदि ३०% से कम वसा मिले तो वसा की कमी उपस्थित समझना चाहिये।

राईखर्ट माईसल विधिसे वसा की शुद्धता देखी जा सकती है। एक सुराहीमें कुछ टुकड़े की हुई पनीर पर तीव्र उदहरिक अम्ल छोड़कर उबालने के पश्चात् फिर वसा को एक पृथकरण-कीपमें गरम जलसे धोकर पर्नरसे वसा को निकाल सकते हैं। दूसरी विधि वसा निकालने की यह उपयोगमें लाई जा सकती है कि एक कीपमें कुछ पनीर पानीके भभकेमें एक सुराही पर रख दे तो वसा पिघलकर सुराहीमें आजायगी। असली पनीरमें राईखर्ट माईसल संख्या कमसे कम १८ से अधिक होती है परन्तु मार्गेरीनी पनीरमें यह संख्या ६ से कम होती है।

फेनोत्पादक इत्यादिकोंके प्रभावसे राईखर्ट माईसल संख्या कम हो जाती है। अधिक पकी पनीरमें यह अधिक कम होती है।

पनीरमें और विशेषत: नम प्रकारवाली पनीरमें जीव बड़ी सरलतासे वृद्धि पाते हैं।

असपेरगिलास ग्लोकस से नीली और कभी हरी फफूंदन उत्पन्न होती है।

स्पोरेण्डोनीमा केसीआई भी इसी प्रकारकी एक वनस्पति होती है और इससे लाल फफूंदन उत्पन्न होती है। म्यूकर मूसिडो एक और फफुंदनवर्ग की वनस्पति होती है जो कि पनीर पर आक्रमण करती है।

अकेरस डोमेस्टिकस एक प्रकार का कीड़ा होता है जो कि पनीरमें पाया जाता है।

पनीरकी लटे एक मक्खी पूयप्रेमी (पायोफिलस) की लटे होती हैं और नग्न चक्षु अथवा मामूली तालसे देखी जा सकती है।

लुई पास्ट्यूर

(ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०)
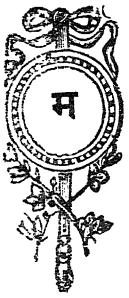
महा पुरुषोंके दिव्य जीवन अपने प्रखर प्रकाशसे संसारकी अन्ध तमिस्रा एवं अज्ञानकालिमाको तिरोभूत करनेके लिए सदा प्रयत्नवान रहते हैं। आज हम जिस व्यक्तिकी चारुकथा सुनानेके लिये समुपस्थित हो रहे हैं, वह उन उदार आत्माओं में से एक है जो शान्त रूप से संसार के एक स्थल पर कार्य करती हुई मानव जातिकी दारुण व्यथाओंको दूर करने के लिये और प्रकृति देवीके गूढ़ अलौकिक और कौतूहलवर्धक रहस्यों के उद्‌घाटन के हेतु अपना समस्त जीवन निछावर कर देती हैं। लुई पास्ट्यूर किसी एक संकुचित एवं सीमित देश जाति अथवा सभ्यताकी सम्पत्ति नहीं है। उसके कुसुमित जीवनके सुगन्ध-सौरभसे समस्त भूमण्डल ऋणी हो रहा है।

शुक्रवार २७ दिसम्बर सन् १८२२ ई० को प्रातःकाल दो बजे डोल (फ्रान्स) स्थान में जीन जोसेफ पास्ट्यूर से घर में एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम लुई पास्ट्यूर रखा गया। जोसेफपास्ट्यूर ने दो वर्ष पश्चात् आरबोय (Arbois) स्थानमें चमड़ेका व्यवसाय करना आरम्भ किया। पिताके चारु चरित्र और उदार विचारों के विस्तृत वर्णन देने की कोई आवश्कता नहीं है। प्रथाके अनुसार लुई की शिक्षा दीक्षा का समुचित प्रवन्ध कर दिया गया। मत्स्याखेट और चित्र कला में बालक लुई की रुचि विशेष थी। चित्रकला ने इसके भावी जीवन में बड़ी सहायता दी। अरबोय में तत्वज्ञान अध्ययन की कुछ सुविधा न थी अतः लुई ने बेसाँकों (Besancon) के लिये प्रस्थान किया और वहाँ स्नातक की उपाधि (बेचेलर एस-लेटर्स) प्राप्तकी। इसी समय पास्ट्यूरकी प्रवृत्ति रसायन विद्या की ओर भी हो चली थी और वह सदा इसके अध्ययन की सामग्रीके संचयमें व्यग्र रहने लगा। वहां दवाई बेचने और बनाने वाले एकाध वैद्यों से उसने घनिष्ठता स्थापित की और अपनी ज्ञान पिपासा को तृप्त करना आरम्भ कर दिया।

लुईकी इच्छा पेरिस के शिक्षणालय इकोल नारमेल में पढ़ने की हुई। वह प्रवेश परीक्षा में सम्मिलित हुआ और उत्तीर्ण भी हो गया पर उत्तीर्ण विद्यार्थियों में उसका नम्बर पन्द्रहवाँ था अतः उसने नाम लिखाना उचित न समझा और एक बार और परीक्षा दी। इस समय उसको चौथा स्थान प्राप्त हुआ और तब वह सहर्ष इकोल नारमेलका विद्यार्थी हो गया। यह शिक्षणालय फ्रान्स का बड़ा प्रसिद्ध विद्यालय है। इकोल नारमेल में अरुणिन् तत्व के अन्वेषक बैलेर्ड और सौरबों में ड्यूमा प्रभृति विख्यात रसायनज्ञोंके व्याख्यान सुनने का अवसर लुई को प्राप्त हुआ। इन व्याख्यानों ने उसकी रुचि को और भी अधिक प्रोत्साहित किया। रविवार की छुट्टियों में भी यह अत्यन्त परिश्रम से रसायन के प्रयोग करता था। उसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य रसायन के अज्ञात नियमों की खोज करना हो होगया।

पास्ट्यूर ने सब से पहला कार्य संक्षीण-साम्ल और क्षारसंक्षीणितों पर किया। इसके बाद उसने दिग् प्रधान प्रकाश और रवों के गुणों पर अपनी महत्व पूर्ण खोजें आरम्भ कीं। सन् १८०८ में मैलस नामक भौतिक विज्ञ ने दिग् प्रधान प्रकाश (Polarised light) के रहस्यों को सर्व प्रथम संसार के सम्मुख उपस्थित किया था, इसके उपरान्त अरेगो और वायट ने इसके सम्बन्ध में उपयोगी सिद्धान्तों की खोज की थी। वायट ने स्पष्ट दर्शा दिया था कि शर्करा, कर्पूर, इमलिकाम्ल, तारपीन के तैल इत्यादि कार्बनिक पदार्थों में यह गुण होता है कि ये द्रव अथवा घोल की अवस्था में दिग् प्रधान प्रकाश को मोड़ सकते हैं। उसने यह भी दिखाने की चेष्टा की कि यह गुण उक्त पदार्थों के अणुओं के

संगठन पर निर्भर है। इसी समय मिटशरलिश नामक अन्य वैज्ञानिक ने रवों की समरूपता का सिद्धान्त भी उपस्थित किया।

इस समय रसायनज्ञोंके सम्मुख एक विचित्र समस्या आगई। सैन्धक अमोनियम इमलेत और परइमलेत (अंगूरेत) नामक दो ऐसे लवण प्राप्त होते थे जिनका रासायनिक रूप, घनत्व, द्विगुण वर्त्तन, और रवों का रूप सब एक समान था। पर दोनों में एक भेद था। इमलेतका जलीयघोल दिग् प्रधान प्रकाशको मोड़ सकता था पर अंगूरेत (परइमलेत) का घोल ऐसा करनेमें सर्वथा अशक्त था; बस प्रश्न यही था कि इस भेदका कारण क्या है!

पास्ट्यूर ने इकोल नारमेलकी पढ़ाई समाप्त करदी थी और इस समय वह बैलेर्ड अध्यापकका सहायक नियुक्त हो गया था। अतः उसने अब अपना समस्त समय इस प्रश्न पर विचार करने के लिये देना आरम्भ किया। वह रवोंका अध्ययन करने लगा। हौवे (Hauy) नामक विज्ञने निरीक्षण करके कार्टजके रवोंको दो भागोंमें विभक्त किया था। एक प्रकारके रवोंमें दाहिना सिरा कुछ टूटा सा था और दूसरे प्रकारके रवों का बांया सिरा। बायटने यह प्रदर्शित कर दिया कि दाहिनी ओर टूटे हुये रवे दिग् प्रधान प्रकाशको दाहिनी ओर मोड़ते हैं, और बायीं ओर टूटे हुए सिरे इसे बायींओर मोड़ते हैं। इस प्रयोगका प्रभाव पास्टयूर पर बहुत पड़ा। उसने १९ प्रकारके इमलेतोंके रवे बनाये। उसने सब रवोंमें टूटे हुए अर्ध संगतिक तल (Hemihedral Facets) पाये। इसके अतिरिक्त उसने यह भी देखा कि ये अर्ध संगतिक तल सब रवोंमें एकही ओर उपस्थित है और इन सब रवों के घोल दिग् प्रधान प्रकाशको एकही ओर मोड़ते हैं। अतः पास्ट्यूर ने यह धारणा स्थिर की कि अर्ध संगतिक तलों की उपस्थितिका दिग् प्रधान प्रकाशको मोड़नेसे अनिवार्य सम्बन्ध है, यह गुण क्वार्ट्जके रवोंके गुणके समान है यद्यपि भेद यह है कि क्वार्ट्ज के रवे ठोस रूपमें दिग् प्रधान प्रकाशको मोड़ते हैं और इमलेतों के रवे घोलके रूप में।

यह कहा जा चुका है कि अंगूरेतोंके रवे भी इमलेतोंके रवोंके समान होते हैं। दोनों रवे समरूपी हैं पर बायट ने अपने प्रयोगोंसे यह स्पष्ट कर दिया है कि अंगूरेतों के रवे दिग् प्रधान प्रकाशको किसी ओर नहीं मोड़ते हैं। इसका क्या कारण है! बस पास्ट्यूरने इस प्रश्न पर ध्यान देना आरम्भ किया। वह सैन्धक अमोनियम अंगूरेतके रवोंकी परीक्षा करने लगा। भाग्य ने भी पास्ट्यूरकी सहायता की। जिस रहस्यके पीछे इतने वैज्ञानिकों की बुद्धि चकरा रही थी, वह पास्ट्यूर को धीरे २ स्पष्ट होने लगा। उसने सैन्धक अमोनियम अंगूरेतके रवे बनाये। इन रवोंमें उसने देखा कि सभीमें अर्ध संगतिक तल हैं पर दैव योग से उसका ध्यान एक विशेष दृश्यकी ओर आकर्षित हुआ। उसने देखा कि इमलेतोंके सभी रवोंमें ये अर्धसंगतिक तल दाहिनी ओर थे। पर अंगूरेतोंके कुछ रवोंमें ये तल दाहिनी ओर हैं और कुछमें बायीं ओर। उसने दाहिनी ओर वाले रवोंको बायीं ओर वाले रवोंसे पृथक् किया और दोनों प्रकारके रवोंका अलग अलग घोल बनाया। अब उसने इन दो प्रकारके घोलोंकी दिग् प्रधान प्रकाश द्वारा परीक्षा की। उसने क्या देखा? दाहिनी ओर वाले रवोंका घोल प्रकाशको दाहिनी ओर मोड़ रहा है और बायीं ओर वाले रवोंका घोल प्रकाशको बायीं ओर मोड़ रहा है। यह देखना ही था कि उसके हृदयमें आनन्दका स्रोत उमड़ पड़ा, अवर्णनीय उत्ताल तरंगोंसे उसका मानसरोवर लोलायमान हो उठा। जिस अज्ञात रहस्यकी खोजमें उसने इतनी तपस्याकी थी, वह स्पष्ट होगया। बोयटका कहना था कि अंगूरेतका घोल दिग् प्रधान प्रकाशको किसी ओर नहीं मोड़ता है, पर पास्ट्यूरने यह दिखा दिया कि अंगूरेतोंमें दाहिनी और बायीं दोनों ओर मोड़ने वाले दो प्रकारके रवे विद्यमान हैं। दोनों समान मात्रामें हैं अतः जब तक उन्हें पृथक् नहीं किया

जायगा तब तक तो दिग् प्रधान प्रकाश किसी ओर नहीं मुड़ सकता है, क्योंकि एक प्रकारके रवोंकी शक्ति दाहिनी ओर मोड़नेकी है और दूसरोंकी बायीं ओर; अतः एकका प्रभाव दूसरेसे शिथिल पड़ जाता है। इस दृश्यको देखतेही पास्ट्यूरके हृदयोद्वेग आर्कमीडिजके समान उद्दीप्त होगये और हर्षोन्मत्त होकर वह प्रयोगशालासे बाहर दौड़ा और प्रयोगशालाके रक्षक बर्ट्रैण्डसे वह लिपट गया और उसे अपने प्रयोगस्थल पर समस्त वृत्तान्त समझानेके लिये घसीट लाया। जिस अलौकिक स्वर्गीय सुखका उसने इस समय अनुभव किया था वह विरले व्यक्तियोंको ही प्राप्त होता है। उसने अपने अन्वेषणके परिणाम सायंस-एकेडेमी को लिख भेजे। बायटको भी इसका समाचार मिला। वैज्ञानिक जगत् में क्रान्ति मच गई। बायटको पास्ट्यूरके प्रयोगोंपर विश्वास न हुआ। उसने उसे बुलाया और समस्त प्रयोग उसकी उपस्थितिमें करनेके लिये कहा। बायटने सब प्रकारकी सावधानी रखी। पास्ट्यूरने इसका बड़ा मनोरञ्जक वृत्तान्त दिया है। 'बायट स्वयं कुछ अंगूरिकाम्ल लाया जिसके विषयमें उसने पास्ट्यूरसे कहा—'मैंने इसका बड़ी सावधानीसे अध्ययन किया है। दिग् प्रधान प्रकाशको यह किसी ओर नहीं मोड़ता है। उस वयोवृद्ध पुरुषने सन्देह-प्रदर्शक शब्दोंमें कहा कि 'जिस जिस पदार्थकी आवश्यकता तुम्हें हो वह मैं स्वयं अपने हाथसे लाकर दूंगा'—यह कह कर वह सोडाक्षार और अमोनियाकी बोतलें ले आया, और अंगूरिकाम्लके लवण उसकी आंखोंकेसामने तैयार करनेके लिये कहा। अम्लमें क्षारीयघोल मिला दिये गये, बायटने द्रवको स्फटिकीकरणके हेतु स्वयं अपने हाथोंसे एक कोनेमें लेजाकर रक्खा जिससे कोई दूसरा उसको छू न ले। और पास्ट्यूरको विदा करते हुए उसने कहा कि 'जाओ, समय आने पर मैं तुम्हें बुला लूँगा'। ४८ घंटे पश्चात् द्रवमें छोटे छोटे रवे पृथक् होने लगे और रवोंकी जब समुचित मात्रा संचित होगई, तो पास्ट्यूर बुलाया गया। पास्ट्यूरने बायटकी उपस्थितिमेंही एक एक रवेको अलग उठाया और उसमें लगे हुए द्रवको पोंछा। उसने बायटको अर्धसंगतिक तलोंकी स्थितिकी ओर निर्देश किया और दाहिनी ओरके तल वाले रवोंको और बायीं ओर वाले रवों को अलग अलग रक्खा।

बायटने कहा—'क्या यह तुम्हारा निश्चित विश्वास है कि तुम्हारे दाहिनी-ओर-वाले रवे दिग् प्रधान प्रकाशको दाहिनी ओर मोड़ेंगे और बायीं ओर वाले रवे बायीं ओर'?

पास्ट्यूरने कहा—'हां'

बायटने कहा—'अच्छा शेष काम मुझे स्वयं करने दो बायटने स्वयं अपने हाथोंसे दोनों प्रकारके रवोंके पृथक् पृथक् दो घोल बनाये, और पास्ट्यूरको बुलाया। उसने यन्त्रमें पहले वह घोल रक्खा जिसे पास्ट्यूरके मतानुसार दिग् प्रधान प्रकाशको बायीं ओर मोड़ना चाहिये था। उसने विस्मयकारक नेत्रोंसे निरीक्षण आरम्भ किया। घोलने प्रकाशको बायीं ओर मोड़ दिया। बस क्या था, उस बुड्ढे बायटने युवक पास्ट्यूरको गोदमें लिपटा लिया और स्नेह युक्त शब्दोंसे कहा—'प्रिय वत्स, मैंने जीवनभर विज्ञानसे इतना प्रेम किया है कि मेरा हृदय पूर्णतः इससे आबद्ध होगया है'। इस समयसे बायट और पास्ट्यूरकी घनिष्टता अभेद्य हो गई।

पास्ट्यूरने यही नहीं दिखाया कि अंगूरिकाम्ल उत्तर और दक्षिण-भ्रामक इमलिकाम्लोंमें विश्लेषित किया जासकता है, उसने उत्तर और दक्षिण-अम्लोंके घोलों को समान मात्रामें मिलाकर तद्रूप अशक्त अंगूरिकाम्ल बनाकर भी दिखा दिया। तदुपरान्त उसने मध्य इमलिकाम्लकी अशक्तताका भी समाधान किया। मध्य इमलिकाम्ल अंगूरिकाम्लके समानही दिक् प्रधान प्रकाशको मोड़नेमें अशक्त है—पर दोनोंमें भेद यह है कि मध्य इमलिकाम्लके स्फटिकीकरण करनेसे अंगूरिकाम्लके समान उ-इमलिकाम्ल और द- इमलिकाम्ल पृथक् नहीं किये जासकते हैं। पास्ट्-

यूरने मध्य-इमलिकाम्लके अन्तर्निष्करण (Interual Compensation) का सिद्धान्त स्पष्ट किया। इस प्रकार चारो प्रकारके इमलिकाम्लोंको पास्ट्यूरके मतानुसार निम्न प्रकार चित्रित किया जा सकता है—
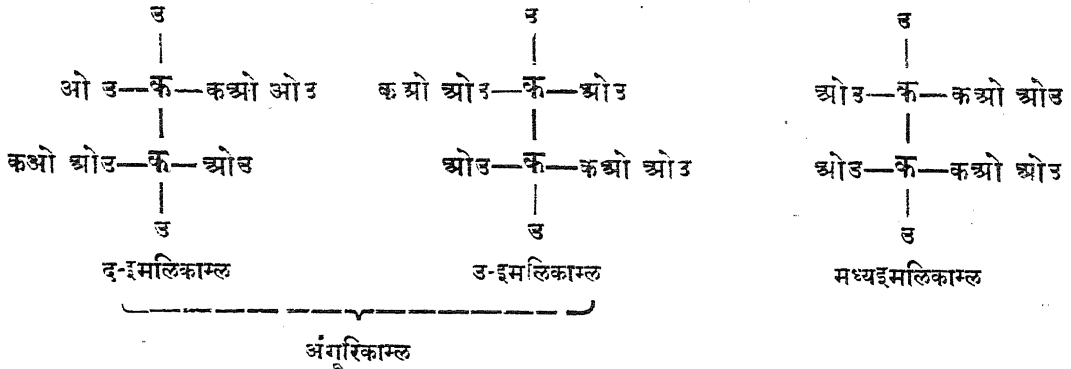
वाह्यनिष्करण वाले यौगिकोंको सशक्त यौगिकोंमें पृथक् करनेकी तीन विधियां भी निकालीं जो रसायन शास्त्रमें विशेष महत्व की हैं, इस क्षेत्रमें पास्ट्यूरने इतना काम कर दिया है कि अब भी उसका कार्य्य अछूता विद्यमान है और इसके उपयोगसे कार्बनिक रसायनके अनेक झमेले सुलझ गये हैं। शर्कराओंके संगठन निश्चित करनेमें एमिल फिशरने इसकी उपयुक्त सहायता ली है।

वाह्यनिष्करण यौगिकों को सशक्त अंगोंमें विभक्त करनेकी तीन विधि ये हैं—(१) स्फटिकीकरण द्वारा (२) सशक्त अम्ल और क्षारसे संयुक्त कराके और (३) प्रेरक जीवाणुओं द्वारा। इसमें पहली और तीसरी विधि अकस्मात् ही पास्ट्यूरको सूझ गई थी। पहली विधिके लिये निश्चित तापक्रम की आवश्यकता है। दैवयोगसे फ्रान्सके वायुमंडल का तापक्रम इसी निश्चित तापक्रमके अनुकूलही था। कहीं यदि पास्ट्यूरको यह प्रयोग ग्रीष्म प्रधान प्रदेशोंमें करना पड़ता जहाँ का तापक्रम २७ से ऊपर रहता है, तो उसके सैन्धक अमोनियम अंगूरेतके रवे दो प्रकारके सशक्त रवोंमें कभी प्रथक् न होते।

बहुधा यह देखा गया है कि खटिक इमलेतके अशुद्ध घोल कालान्तरमें गंदले होजाते हैं और गरमी की ऋतुमें खमीरण आरम्भ होजाता है। साधारण रसायनज्ञ गंदले होनेके महत्वको न समझ कर घोल को नालीमें ही फेंक देंगे पर पास्ट्यूरने इसके रहस्य को समझा और उसने देखा कि प्रक्रियान्तरमें अशक्त घोलमें थोड़ी थोड़ी उत्तर भ्रामक शक्ति आ रही है। इस प्रयोगसे उसने प्रेरक जीवों द्वारा अशक्त यौगिकों को सशक्त यौगिकोंमें पृथक् करनेकी विधि निकाल ली।

इमलिकाम्लोंकी अशक्तताके अतिरिक्त सेविकाम्लों की सशक्तताका भी पास्ट्यूरने भली प्रकार अध्ययन किया। पास्ट्यूरका प्रथम रासायनिक कार्य्य बैलर्डकी सहकारितामें पेरिसके इकोल नार्मेलमें आरम्भ हुआ था। सन् १८४८ में २६ वर्षकी आयुमें वह डिजोनमें भौतिक विज्ञानका प्रोफेसर नियुक्त हुआ पर तीन मास पश्चात् ही स्ट्रेसबर्ग यूनिवर्सिटीमें रसायनके डेपुटी-प्रोफेसर पद पर आमन्त्रित हुआ और सन् १८५२ में यहाँ वह प्रोफेसर होगया। यहाँ ही यूनिवर्सिटीके रेक्टर लौरेण्टकी पुत्रीसे उसका परिचय हो गया था जिसके साथ सन् १८५० में उसका विवाह होगया। विवाह सम्बन्धी यह घटना प्रसिद्ध है कि वह प्रयोग शालाके वैज्ञानिक कार्य्योंमें वह इतना संलग्न होगया था कि उसे अपने विवाहोत्सवकी तिथिही भूल गई और समय आने पर उसके पास मित्रगण दौड़ाये गये जो उसे बुला लाये। श्रीमती पास्ट्यूरके साथ लुई पास्ट्यूरका जीवन आनन्दसे बीतने लगा। श्रीमतीजी गृहकार्य्यमें दक्ष तो थी हीं पर धीरे धीरे वे

पास्ट्यूरके रासायनिक कार्य्यमें भी सहयोग देने लगीं। इस प्रकार उन्होंने सहधर्मिणी शब्दको सार्थक कर दिया।

सन् १८५४ में लिलेके विद्यालयमें पास्ट्यूरको फैकल्टी आव साइन्सका डीन (अध्यक्ष) बनाया गया। इस प्रान्तमें चुकन्दर और अन्नसे मद्यसारका व्यापार होता था। पास्ट्यूरने मद्य-उत्पादन क्रिया का अध्ययन करना और तद्विषयक व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। इस अवसर पर 'खमीरण' (Fermentation) के सम्बन्धमें उसने अपने अति महत्त्व-पूर्ण अन्वेषण-प्रयोग कर डाले। इस समय लीबिग सदृश रसायनज्ञोंका विश्वास था कि नशास्ताको मद्यमें परिणत करनेके लिये किसी प्रकार के जीवित प्रेरकाणुओं की आवश्यकता नहीं है। उनका विश्वास था कि अन्य रासायनिक प्रक्रियाओंके समान ही इसमें भी प्रक्रिया होती है। पास्ट्यूरने १८५७में दौग्ध खमीरण और सन् १८६० में मद्यिक खमीरण पर महत्त्व-पूर्ण लेख लिखे। प्रेरक कीटाणुओं-की प्रक्रियाओंके भावी अध्ययनके हेतु इन लेखोंने क्रान्तिकारक नींवकी स्थापना की। उसने स्पष्ट दिखा दिया कि गन्नेके रसको मद्य अथवा सिरकेमें परिणत करने तथा दूधके खट्टे होनेमें प्रेरक जीवाणुओंका विशेष हाथ होता है। ये जीवाणु जीवित प्राणियोंके समान व्यापार करते हैं और अनुकूल परिस्थिति पाकर इनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। लीबिगके सिद्धान्तों-का इसने पूर्णतः खण्डनकर दिया।

यह वह समय था जब कि फ्रान्समें शासनक्रान्ति-के कारण विचित्र परिवर्त्तन हो गये थे। सन् १८५० में पास्ट्यूर लिलेसे पेरिस आ गया। इस स्थान पर उसे एक विशेष असुविधा हुई। उसे रासायनिक खोजके लिये ६० पौण्ड वार्षिकसे अधिक राज्यसे सहायता मिलनेकी आशा न रही। पर पास्ट्यूरने असुविधाओं पर विशेष ध्यान न दिया और अपने व्ययसे इकोल नारमेलकी प्रयोगशालाकी संवृद्धि आरम्भ की। उसने यहां नवनीतिक खमीरण पर प्रयोग किये। खमीरण सम्बन्धी समस्त प्रयोगों को तीन प्रभाव पड़े। पहला लीबिग आदि पूर्ववर्त्ती रसायनज्ञोंके सिद्धान्त खण्डित होगये, दूसरा वैज्ञानिकों को रसायन और जीवशास्त्र को एकता और पारस्परिक सम्बन्धके महत्त्वका ज्ञान हो गया और गूढ़ समस्याओंके निवारणमें इस प्रकार जीव रसायनको विशेष प्रोत्साहन मिला, तीसरी बात पास्ट्यूरने यह दर्शा दी कि वायु बिना भी जीवाणुओं-का जीवन सम्भव है।

अब हम पास्ट्यूरके कुछ कौतूहल वर्धक सिद्धान्तों की ओर आते हैं। जीवोंकी अमैथुनिक आकस्मिक उत्पत्तिके प्रश्न पर भी इसने विचार किया। वान-हेल-मौण्ट आदिका विचार था कि केवल रासायनिक पदार्थों को निश्चित अनुपातमें संयोग करानेसे जीवोंकी आकस्मिक सृष्टि हो सकती है। एक नुसखा इस प्रकारका प्रचलित भी था। सड़ी फलालेनका रस यदि गेहूँ के दानेकी बोतलमें निचोड़ कर २१ दिन तक रक्खा जाय तो उसमें युवावस्थाके कीट उत्पन्न हो जायंगे इस प्रकारकी रासायनिक सृष्टि पर लोग बहुत वि-श्वास करते थे। पास्ट्यूरने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया कि यदि रासायनिक पदार्थोंमें स्थिति जीवाणु सर्वांशतः नष्ट कर दिये जायं तो फिर केवल रासाय-निक पदार्थोंके सम्मेलसे जीवाणुओंकी आकस्मिक सृष्टि नहीं हो सकती है। सन् १८६२ में इस खोजके उपलक्षमें वह अकेडेमी आव् साइन्सेजका सदस्य बना लिया गया।

सिरकेके खमीरणकी विस्तृत गवेषणा करके पास्ट्-यूरने न केवल रासायनिक सत्यताकीही खोजकी प्रत्युत इससे उसके देशकी अभ्युदय-संवृद्धि भी बहुत हुई। शराबके बनानेमें बहुत ऐसा कीटाणु उपस्थित हो जाते हैं कि उनके कारण शराब पीने वालोंमें कई प्रकारके रोग हो जाते हैं। पास्ट्यूरने इन कीटाणुओंके निवा-रणके उपचार भी निकाले। पहला प्रयोग उसने कीट-हर ओषधिओंसे किया। क्षार-उपस्फुरित और अर्ध गन्धित नामक रासायनिक यौगिकोंमें यहगुण हैं कि ये कई प्रकारके कीटाणुओं को मार देती हैं। पर इस विधिने कोई विशेष लाभ न दिया। दूसरी विधि गरम करनेकी थी। कीटाणु निश्चित तापक्रमके अन्दर ही

जीवित रह सकते हैं। अतः पदार्थको यदि इस ताप क्रमसे अधिक गरम कर दिया जाय तो जीवाणु मर जायंगे। यह विधि मद्यके लिये उपयुक्त नहीं थी क्योंकि अधिक गरम करनेसे मद्यमें हानिकारक उत्तेजक गुण आजाते हैं, ऐसा समझा जाता था। पर पास्ट्यूरने पहले ही मद्य और ओषजनके सम्बन्धका अध्ययन कर लिया था और उसके सिद्धान्तानुसार जब मद्य पूर्णतः ओषजन शोषण कर चुके तो फिर और गरम करनेमें कोई हानि न होगी। क्वथनांक तक गरम करनेकी भी आवश्यकता नहीं है। इस तापक्रमसे कममेंभी जीवाणुओंकी प्रेरक शक्ति शिथिल हो जाती है, और इस प्रकार जीवाणुओंके पूर्णतः नाश करनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि उनमें केवल मूर्च्छना उत्पन्न करदी जाय तो फिर वे हानि नहीं पहुँचा सकते हैं। इस प्रकार अपंग कर देनेकी विधिका नाम ही अब पास्ट्युरीकरण (Pasteurisation) पड़ गया है। इस विधिका उपयोग दूध, मक्खन और अन्य भोज्य पदार्थोंमें सफलता पूर्वक किया जा रहा है। सन् १८७६ में पास्ट्यूरके शराब सम्बन्धी अन्वेषणोंका पुस्तकाकार संकलन किया गया। इस पुस्तकको महत्वके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। अनेक वर्षों तक व्यापारियोंके लिये यह अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता रहा है।

पास्यूट्रका ध्यान एक दूसरी ओर भी आकर्षित हुआ सन् १८६५ में दक्षिणी फ्रान्समें रेशमके कीड़ोंको बीमारी हो गई, इससे रेशमके व्यापारका बड़ी ही हानि होने लगी। गवर्नमेंण्टसे सहायतार्थ अपील की गई। अब यह प्रश्न बड़ा विकट था कि इस दुर्गम कार्य्य को किसे सौंपा जाय, अनेक जीव विज्ञानवेत्ता फ्रान्समें उपस्थित थे, रोग विद्या की अनेक संस्थायें थीं। पर यह काम पास्ट्यूर को सौंपा गया—क्या विचित्र बात थी। पास्ट्यूर केवल रसायनज्ञ था, भौतिक विज्ञानका पण्डित था—पर रेशमके कीड़ेको इससे पहले उसने कभी छूआ भी न था। उसने क्षमा चाही पर जनताका विश्वास उसी पर था, उसके अति-आग्रह को भी किसीने न सुना। अस्तु, इस समस्याके निराकरण करनेके लिये वह अग्रसर हो गया। केवल इसी भरोसे पर कि जिन कीटाणुओंका अध्ययन उसने शराब आदिके विषयमें किया है, कदाचित् उनसे इसे सहायता मिल सके। उसने प्रयोगों द्वारा दिखा दिया, कि रेशमके कीड़ोंमें रोगकीटाणु लग गये हैं, और इनको दूर करनेकी विधि भी पास्ट्यूरने खोज निकाली। इससे जनताको बहुत लाभ हुआ।

रोगाणुओंके सिद्धान्तका उपयोग करके पास्ट्यूरने प्लेग, हैजे, चेचक आदि रोगोंमें टीके लगानेके सिद्धान्तका उद्घाटन किया। एक विशेष प्रकारके रोगाणुओंके एकाएक आक्रमणसे शरीरमें प्लेगकी बीमारी फैल जाती है। जिस मनुष्यने कभी अफ़ीम नहीं खाई है, उसे एकाएक यदि अफीम खिलादी जाय तो उस पर इसका घोर असर प्रकट हो जायगा। पर यदि किसी मनुष्यने थोड़ी थोड़ी अफ़ीम खानेका अभ्यास कर लिया है तो उस पर फिर और अधिक अफ़ीम खानेका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है। बस यही अभ्यस्त सिद्धान्त प्लेग आदिके टीकोंमें लगता है। टीके द्वारा रोगके कीटाणु सूक्ष्म मात्रामें शरीरसे अन्दर धीरे धीरे प्रविष्ट करा दिये जाते हैं। इस प्रकार शरीर अभ्यस्त हो जाता है। इसका फल यह होताकि जब कभी एकाएक प्लेग, हैजे आदिकी बीमारी फैल जाती है और इन रोगोंके कीटाणुशरीर पर आक्रमण करने लगते हैं तो अभ्यस्त शरीर पर इनका कुछ भी हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है। कुत्ते काटनेसे भी शरीर में विष फैल जाता है। इसके उपचारके लिये प्रत्येक देशमें ओषधालय हैं, और सहस्रों रोगियोंको इनसे आराम मिलता है। इन ओषधालयोंका एक मात्र महत्त्व पास्ट्यूरको ही है। उसने कुत्ते काटनेके उपचारकी अद्वितीय विधि निकाली। इस उपचारमें विषसे विष मारा जाता है—विषस्य-विषमौषधम्। औषधालयमें कुत्ते-काटे-रोगीके शरीरमें इसी विषकी थोड़ी थोड़ी मात्रा उत्तरोत्तर प्रविष्ट कराते रहते हैं। कालान्तरमें शरीर अभ्यस्त हो जाता है और रोगी पर रोगका प्रकोप नहीं होने पाता है

वह पागल होनेसे बच जाता है। फ्रान्समें पास्ट्यूरके नाम पर एक बृहद्-पास्ट्यूर इन्स्टीस्ट्यूट खोला गया है। मानव जातिके सांक्रमिक और अज्ञात रोगोंके निवारणार्थ यह इन्स्टीस्ट्यूट आज भी संलग्न है। भारतवर्षके कसौली स्थानमें पास्ट्यूरके सिद्धान्तोंको लक्ष्यमें रखकर एक औषधालय है जहाँ कुत्तोंद्वारा आक्रमित रोगियोंकी देखभाल की जाती है।

पास्ट्यूरने जो कुछ किया उसे कोई नहीं भूल सकता है, वह केवल रसायनज्ञ ही न था, उसके समान क्रियावान और उदारहृदयी व्यक्तिभी विरले ही होते हैं। वह हृदयसे फ्रान्सको चाहता था और फ्रान्स भी उसे अपना अमृत पुत्र समझता है। पास्ट्यूर कभी जीर्ण नहीं हुआ और न कभी मरा हो, वह अब भी जीवित है, हाँ यह दूसरी बात है कि लोग कहते हैं कि शनिवार २८ सितम्बर सन् १८९५को ४. बजे तीसरे पहर पास्ट्यूरका भौतिक शरीर निश्चेष्ट होगया। संसारी पास्ट्यूर अब हो या न हो, पर हमारा पास्ट्यूर—रसायनका प्यारा पास्ट्यूर—कभी मर सकता है—कभी नहीं !!

मिसमेयो

[ले० 'श्री० तत्ववेत्ता']

मिसमेयो ने मदर इंडिया नामक जगद् विख्यात पुस्तक लिखकर संसारमें हलचल मचा दी है। भारतवर्षके प्रमुख नेताओं और विचारशील व्यक्तियों ने इस ग्रन्थके विरोधमें घोर क्रन्दन करना आरम्भ कर दिया है, और इसके प्रत्युत्तर में भी समुचित साहित्य उत्पन्न किया जा चुका है। हमने भी मदर इंडियाको आद्योपान्त पढ़ा है और यद्यपि इस पुस्तकके विचारोंकी पुष्टिमें कुछ भी लिखना अरण्यरोदन मात्र ही माना जायगा पर हम मिसमेयोको उनकी अद्वितीय पुस्तकके उपलक्षमें बधाई दिये बिना नहीं रह सकते हैं।

मदर इंडिया क्यों लिखी गई—इसका उत्तर चाहे कुछ भी क्यों न हो पर यदि मिसमेयोके शब्दों पर विश्वास करें तो हम कह सकते हैं कि पुस्तक यथोचित उद्देश्यसे लिखी गई थी। बर्लिनके डेली मेलके संवाददाताके पूछने पर मेयो ने यह उत्तर दिया था—'नवयुवक भारतीय यूनाइटेड स्टेट्समें आकर अध्यात्म विषयों पर काल्पनिक व्याख्यान देकर अपने यहाँकी सभ्यताका आतङ्क जमाना चाहते हैं अतः यह मेरा कर्तव्य है कि मैं अपनी स्वजातीय जनताको उस देशका वास्तविक चित्र दर्शा दूँ जिससे उनके कथनोंका मूल्य ज्ञात हो सके।' बात ठीकही है, स्वामी रामतीर्थ, और विवेकानन्द प्रभृति व्यक्ति जिस भारतकी सभ्यताके प्रतिनिधि होकर अमरीका आदि प्रदेशोंमें ब्रह्मज्ञान और अद्वैतवाद के सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये जाते हैं उनके लिये यह कुछ कम लज्जाकी बात नहीं है कि अध्यात्म-गुरु भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अवस्था इतनी शोचनीय और निंद्य है कि संसारके सभ्य समाजमें इसको कोई भी स्थान प्राप्त नहीं हो सकता है।

कहा जाता है कि मेयो ने अपनी पुस्तक किसी राजनीतिक उद्देश्यसे लिखी है। हम इस विषय पर कुछ न कहेंगे। पर थोड़ी देर के लिये यदि हम इस बातको भूल जायं कि मदर इंडिया किसी विदेशी व्यक्तिके स्वार्थ पूर्ण उद्देश्य से लिखी गई है और फिर हम यदि पक्षपातको छोड़कर और हृदयको साक्षी रखकर पुस्तकावलोकन करें तो सम्पूर्ण पुस्तकमें अधिकांश स्थानों पर हमें बहुत कुछ सचाई मिल सकती है। अन्ध विश्वास, अविद्या और छल कपट द्वारा इस देश में एक प्रबल अंग दूसरे निर्बल अंग पर जिस प्रकार हृदय विदारक अत्याचार कर रहा है उसकी जितनी क्रान्तिपूर्ण शब्दोंमें आलोचनाकी जाय वह कम ही है। पतिव्रत, सतीत्व और धर्मकी आड़में लाडिली ललनाओंका समस्त जीवन जिस

प्रकार यम-यातनाओंसे संतप्त किया जा रहा है; झाड़, फूंक, टोने, भूत, प्रेत और अन्य कुत्सित देवी-देवतों के महान् प्रज्वलित यज्ञमें जिस प्रकार भारत के भावी दुध मुँहे रत्नोंकी आहुतिदी जा रही है, उसके लिये वज्रके समान कठोर भाषा का उपयोग करना भी कभी असंगत न होगा। भारत के लिये यह लज्जा की बात है कि इस देश के अग्रगण्य नेता मिसमेयो द्वारा प्रदर्शित दूषणोंका पिष्ट पेषण करने के लिये जिस बुरी तरहसे सचाईका संहार कर रहे हैं इससे देशकी सामाजिक स्थिति और भी अधिक शोचनीय हो जायगी। यदि मेयोकी पुस्तकके समाजसुधार सम्बन्धी अवतरणों के अनुवाद प्रत्येक भारतीय भाषामें विस्तृत रूपसे सामान्य-जनतामें बांटे जायँ तो देशकी दशा कुछभी सुधर सकती है। वैज्ञानिक सिद्धान्तोंसे अपरिचित होनेके कारण जो जो कुरीतियां इस देशके रुधिरको जौंकके समान निरन्तर चूस रही हैं उनका कुछ वर्णन मेयो की पुस्तकके आधार पर यहां दिया जायगा। यह आवश्यकता नहीं थी कि मदर इंडियाका प्रचार यूरोप और अमेरिका में किया जाय, ऐसा करना तो लेखिका की क्षुद्र मनोवृत्ति का परिचायक है, भला दूसरोंकी दृष्टिमें भारतवर्षको अपमानित करके स्वार्थ साधन करना कभी श्रेयस्कर हो सकता है। पर हां, यदि भारतके हितार्थ शुभचिन्तिका बनकर मिस-मेयो ने अपना उत्साह पूर्ण क्रन्दन इस देशके कोने कोनेमें मचाया होता तो आज उसे प्रत्येक भारतीय के हृदयमें उज्ज्वल स्थान प्राप्त हो सकता था।

बाल विवाह और बेमेल विवाहके कारण जो अत्याचार हो रहे हैं, उनका रोना कब तक रोया जा सकता है। सन्तान-पालनमें अशिक्षिता और बाल-मातायें अपने अन्धविश्वास और अज्ञानके कारण जिस प्रकार महान् भ्रमोत्पादक भूलें करती हैं उसके हानिकर प्रभावसे सभी परिचित हैं। ये नववधू अपने घरसे क्या सीख कर आती हैं वह मिसमेयोके ही शब्दों में सुनिये—'ये पूर्णतः निरक्षरा होती हैं, उनका सम्पूर्ण ज्ञान केवल अन्धविश्वास जन्य रीति रिवाज और रस्मोंमें ही सीमित रहता है, वे यह भली प्रकार जानती हैं कि देवीदेवतों और भूत प्रेतों के प्रकोपसे किस प्रकार क्षति होना सम्भव है। इसके अतिरिक्त अपने पतिकी सेवा करनेकी विस्तृत विधि भी उन्हें ज्ञात रहती है और पतिको ही वे अपना सबसे बड़ा आराध्यदेव समझती हैं और यह पति भी कैसा—वह चाहें उसीकी आयु का बालक हो या उससे पचास बरस बड़ा विधुर हो।' हम यहां पाश्चात्य और पूर्वीय आदर्शोंकी समीक्षा न करेंगे पर इतना अवश्य कहेंगे कि बेमेल और बालविवाह तो हानिकर हैं ही पर प्रत्येक बालिकाको इस बातको समझना चाहिये कि पतिके अतिरिक्त औरोंके प्रति भी उसका उसी प्रकार कर्त्तव्य है जिस प्रकार पुरुषोंका। पति उसका सर्वस्व नहीं है।

ऐसे उदाहरण बहुधा देखे जाते हैं कि पुरुष स्त्रीके दोषोंके कारण नहीं प्रत्युत अपनो ही शक्तिहीनताके कारण सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ रहते हैं, पर इसका उत्तरदायित्व बेचारी बालिकाओं परही मढ़ाजाता है। मिसमेयो लिखती हैं कि 'ऐसी अवस्थामें बस पुरुषोंके लिये एकही उपाय रह जाता है—वह स्त्रीको तीर्थयात्रा अथवा देवदर्शन करनेके लिये भेजता है जिससे देवोंके प्रसादसे कदाचित् पुत्र प्राप्ति हो जाय'। ये ललनायें फकीरोंके पास, मदार मुल्लाओं और पीर की कबरों पर जाकर मिन्नतें मांगती हैं, कहीं बजरंगीके नाम पर लड्डू बोलती हैं तो कहीं हरि-द्वारमें बच्चेके मुंडन संस्कार करानेका वचन देती हैं - इस बातमें न कहीं अत्युक्ति है, और न झूठही। प्रत्येक हिन्दू घरमें ऐसा हमेशा ही होता रहता है। बच्चे न होते हों, तो उसकी भी यही दवा है, और यदि होकर शीघ्रही मर जाते हों तो भी उसकी यही ओषधि है, लड़का न होकर लड़की होती हो तो भी उसका यही उपचार है। सर्वेषांरोगाणामेकमात्र-मोषधिः—इसीका नाम है मानसिक दासत्व—मान-सिक दासोंके लिये विज्ञानके पास कोई साधन नहीं हैं।

मिसमेयोने अपनी पुस्तकमें 'स्वीकृति-बिल' (Consent Bill) सम्बन्धी एसेम्बलीके वादप्रतिवादका विस्तृत वर्णन देकर भारतीय मनोवृत्तिका मनोरञ्जक चित्र खींचा है। वास्तवमें बालबालकके दाम्पत्य सम्भोगका ही यह परिणाम है कि भारतवर्षमें मृत्यु संख्या इतनी तीव्रतासे बढ़ रही है। भला संयोग आयुको १३ या १४ वर्षकी कर देनेमें भी किसी विचारशील व्यक्तिको आपत्ति हो सकती है पर विलासप्रिया जनताने इसका भी विरोध किया। यह बिल भी ऐसाका ऐसाही रहगया। वैज्ञानिक नियमोंके प्रचरित न होनेके कारण हमारे शिरोमणिनेता भी इसके महत्वको नहीं समझते हैं और केवल पुरानी परिपाटीके स्थिर रखनेके लियेही पूर्वागत रीतियोंका समर्थन कर रहे हैं। ९, १०, ११, १२ वर्षकी बालिकायें यदि गृहपत्नियाँ और मातायें बनने लगेंगी तो जैसी सन्तान उत्पन्न होगी वह सभी जानते हैं। मेयोके इस कथनमें अधिक अत्युक्ति नहीं है कि भारत का आदर्श जल्दी विवाह करना और जल्दी मर जाना है।

मद्रास और उड़ीसाकी देवदासियोंकी प्रथा भारतके लिये कम लज्जाजनक बात नहीं है। छोटी छोटी बालिकाओंका जीवन जहां हरिभक्तिकी आड़में अनाचार युक्त विपदाग्रस्त बनाया जा रहा है, वहां सखी सम्प्रदायके सन्तोंने, अपने को 'प्यारीराधाके अन्तःपुरकी सखियां' कहनेवाले पुरुषोंने दाम्पत्य-जीवनके वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका उन्मूलन करके समस्त वायुमण्डल कलुषित कर दिया है। विलास-प्रियताको दार्शनिक और धार्मिकरूप देकर अनाचार बढ़ानेमें भारतवर्ष सदासे सिद्धहस्त रहा है।

एक डाक्टरी साक्षी प्रस्तुत करके मिसमेयो लिखती हैं—'लड़कियोंकी सम्पूर्ण शक्ति कभी कभी प्रथम सम्भोग कृत्यमें ही समाप्त होजाती है, तत्पश्चात् बलात् विलाससे जो बालक उत्पन्न किये जाते हैं उनमेंसे बहुधा ४ पौण्ड तौलके ही बच्चे होते हैं, बहुतसे मरे ही पैदा होते हैं। इनमें स्फूर्तिहीनताके कारण जीवित बच्चे भी शीघ्र ही रोगके शिकार हो जाते हैं। मेरे बहुतसे रोगी विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंकी पत्नियाँ होती हैं।' बहुधा ऐसा भी होता है कि एक, दो स्वस्थ बच्चोंके उत्पन्न करनेके ही पश्चात् दम्पत्ति इस शक्ति हीनता को प्राप्त होजाते हैं कि फिर सन्तान या तो कठिनतासे होती है या बालकालमें ही मर जाती है। ऐसे उदाहरण प्रत्येक नगरमें बहुत मिलेंगे।

मिसमेयोने यह ठीक निरीक्षित किया है कि भारतमें 'पुत्रोंके पालन करनेवाले माता पिता होते हैं, पर पुत्रियोंका पालन करनेवाला केवल परमात्मा ही है।' सचमुच भारतमें यह प्रतिदिनका ही रोना है। पुत्रोत्पत्ति पर उत्सव मनाना और पुत्रियोंके जन्म पर मरसिये पढ़ना भारतवर्षकी ही परिपाटी है। मुझे इसका अनुभव है कि पुत्रोंकी उत्पत्ति पर धाइयोंको अधिक पुरस्कार भेंट किया जाता है और बालिकाओंकी उत्पत्ति पर कम। लड़कियोंको कोनेमें छिपकर या जमीन पर सिर नीचा करके बैठनेकी शिक्षा इस सीमातक दी जाती है कि बुढ़ापेमें भी उनका यह स्वभाव दूर नहीं होता है! हमारे यहांकी वृद्धायें भी छोटे छोटे युवकोंके सामने खाट पर बैठनेमें संकोच करती हैं और धरती पर ही बैठ जाती हैं। मानसिक अधःपतनका ही तो यह परिणाम हैं। भारतीय ललनाओंमें आत्मगौरवका क्रूरतासे संहार कर दिया गया है। स्त्रियां स्त्रियों को ही गिरी दृष्टिसे देखती हैं, तो फिर सुधार की क्या आशाकी जा सकती है।

हिन्दुओंमें एक विचित्र आदर्शका प्रचार हो गया है जिसके लिये उनके पास कोई दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। वह यहकि विवाह केवल भौतिकशरीरके भौतिक शरीरसे संयोग होना का ही नाम नहीं है, वास्तवमें यह दो आत्माओंका सम्मिलन है। बस इसी आधार पर बेचारी विधवायें सन्तप्त की जा रही हैं और उन्हें पुनर्विवाह की स्वीकृति नहीं दी जाती है। भारतमें २६८३४८३८ विधवाओंका होना कलंक नहीं तो और क्या है!

मिसमेयोने अपनी पुस्तकमें धाइयों, उपमाताओं का बड़ा विस्मयकारक चित्र खींचा है। हम पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि इस स्थल पर विशेष विचार करें और उसे कार्य्यमें परिणत करें। धाइयों की अशिक्षिता होने और उनके गन्दे पवित्रहीन रहनेके कारण बहुतसे भावी नवजात बालक शीघ्रही कालोन्मुख हो जाते हैं, भारतमें धायी-प्रथा वंशागत प्रथा है। 'जब एक धायी मर जाती है तो उसकी पुत्री या पतोहू जिसे धायीकृत्यका चाहें कुछ भी ज्ञान न हो, अपनी माता या सासके व्यवसायको करने लगती है,' इसका परिणाम जो होना चाहिये सो होता ही है। धाइयोंको शरीर विज्ञानकी कभी शिक्षा मिलती ही नहीं है। अतः विकट अवस्थाओंमें ये सहायता देनेके स्थानमें हानि ही अधिक पहुंचाती हैं, धायी की रहन सहन भी देखिये-फटी पुरानी गूदड़ लपेटी औरत जिसके वस्त्रोंमें न जाने कितने रोग कीटाणु होंगे भावी बालकके जन्म देनेके लिये बुलायी जाती है। 'यदि प्रसवमें देरी होती है तो यही धाई इस विलम्ब का कारण पता लगानेके लिये सचेष्ट होती है। वह लम्बा, बेधुला गन्दे कड़े और पौंचियोंसे युक्त हाथको जिसमें रोगाणुओंकी कमी नहीं होती है बेचारी रोगी माताके शरीरमें प्रविष्ट कराती है और जो कुछ उसके हाथ लगता है उसे मरोड़ती और खींचकर बाहर निकालनेका यत्न करती है। यदि इस प्रकार वह सफल न होती तो पतिका आदेश पाकर बच्चेके टुकड़े टुकड़े काट और तोड़कर कृत्य पूर्ण किया जाता है।' इस प्रक्रियामें रोगी माता जिस नरक-यातनाका अनुभव करती होगी उसको तो उसीका हृदय जानता है और कोई क्या कह सकता है।

नारा काटनेका भीषण दृश्य भी कम विस्मयकारक नहीं होता है। कभीतो बांसकी खपच्चटसे या किसी टूटे तेज धातुके पत्रसे या अजीब जंग लगी गड़ासी या दरातीसे यह महत्व पूर्ण कार्य सम्पादित किया जाता है। इसी दराती या चाकूसे भाग्य विधाता धायी अपने यहांकी शाक भाजी बनाती है। अस्तु, इस प्रकार उत्पन्न बालककी आगेकी अवस्था सुनिये—'वह नंगा जमीन पर गंदी भूमिमें छोड़ दिया जाता है। धायी के अतिरिक्त और कोई इसकी खबर नहीं लेता है। और कहीं दैवयोगसे पुत्र न होकर पुत्री हुई तो उसकी सम्पूर्ण जीवनयात्रा वहांकी वहीं समाप्त कर देनेका यत्नभी कभी कभी किया जाता है'। आजकल इस सीमातक तो बिरले ही पहुँचते होंगे पर पहले पत्थरके नीचे दबाकर प्राणान्त कर देनेकी प्रथा अच्छे अच्छे घरोंमें प्रचलित थी। अबभी पुत्रियोंकी उत्पत्ति पर शोक साम्राज्य नहीं तो उदासीनता अवश्यही छा जाती है। पिताके मित्र गण भी सहानुभूति प्रकट करते हैं और वहभी इसे अपने भाग्य अथवा कर्मका परिणाम समझकर सन्तोष धारण करता है। इससे मनोवृत्ति स्पष्ट ही है। नये बालकके स्थानमें—सोहरमें प्रकाशका प्रवेश बहुत कम होता है, वायु कहीं बालक को पीड़ित न करदे इसकी इतनी सावधानी रखी जाती है कि स्वच्छ हवा भी प्रविष्ट नहीं होने पाती और उसमें तेलका टिमटिमाता दीपक वहांकी परिस्थिति पर रहस्यमयी मुसकानसे अज्ञात-वासियों को मोहित करता रहता है। यदि घरके लोगोंका किसी बातका विशेष ध्यान रहता है तो टोने और टोटकेका। कहीं किसीकी अपदृष्टि न पड़ जाय, कहीं कोई उनके मुन्ने बच्चे को नजर न लगादे बस इसकी बहुत ही सावधानी रक्खी जाती है। बन्दरकी खोपड़ी और मोरके पंखसे सोहरालय विभूषित कर दिया जाता है। इन आडम्बरों के प्रामाणिक सिद्धान्त बुड्ढी औरतोंको भली प्रकार अभ्यस्त रहते हैं और हम ऐसे व्यक्तियोंको नियमोल्लंघन करनेके उपलक्षमें प्रति दिन कुछ न कुछ कौतूहलजनक कुवाक्य सुनने ही पड़ते हैं। मिसमेयो एक उद्धरण देती हैं—'यह न समझना चाहिये कि गरीब लोग ही इस प्रकारके दुष्परिणामोंको सहन करते हैं। मैं तुम्हें विश्वविद्यालयकी उच्चोपाधि प्राप्त भारतीयोंके उदाहरण दे सकती हूँ जिनकी श्रीमतियां फटे पुराने कपड़े में लिपटी हुई ही सोहरके दिन बिताती हैं और प्रथा के अनुसार बाजारू धाइयां ही सम्पूर्ण कृत्य सम्पादित करती हैं। बी, ए.

उपाधिके पठन क्रममें इस अवसरके उपयुक्त किसी प्रकार की भी सामान्य बुद्धिकी शिक्षाको स्थान नहीं मिलता है। घरके रीतिरिवाजोंसे लोग इतने आबद्ध हो गये हैं कि पति देव कहते हैं कि हम उसे (माताको) पाँचवें दिन स्वच्छ वस्त्र और शुद्ध वस्तु देंगे पर इस समय नहीं, क्योंकि हमारे यहाँका यही रिवाज है।" अपनेको पाक समझनेवाली और छुआछूतके नाम पर पहाड़ उठाने वाली मातायें प्रसवकालसे लेकर कुछ दिन और तक चमारिन एवं भंगिनोंके आश्रयमें अत्यन्त अपवित्रतासे रहनेमें भी संकोच नहीं करती हैं— उनको क्या समझाया जा सकता है। इन धाइयों के हाथसे बालक मर जायं या रोगी हो जायं तो कोई आश्चर्य नहीं है। हमें तो आश्चार्य इस बातका है कि इनके होते हुए भी बच्चे किस प्रकार फलते फूलते और बड़े हो जाते हैं।

अस्तु, इस बातको यहां ही छोड़िये। आगे बढ़िये। वैज्ञानिक सिद्धान्तानुसार वायु प्राणीमात्र का जीवन है। अब परदेमें कैद बीबियोंकी हालत देखिये। अजीब दृश्य है—स्वर्गीय छबि है, जिसे देखिये वही असूर्य पश्या हो रही है, लम्बा लम्बा घूंघट और मुसलमानी बुरका सभी भगवानकी सृष्टिमें पुष्पाय-मान हो रहे हैं। तपैदिक हो जाय तो किसीको पर-वाह नहीं, देह सड़ जाय तो पूछना नहीं, यदि परदे में अनाचार हो, देवर और ज्येष्ठोंकी कुदृष्टि पड़े तो भी धर्मपर कोई आपत्ति नहीं, यदि नगे पैर भ्रमण करनेसे हुकवर्म रोग हो जाय तो किसीको मलाल नहीं, पर यदि साफ सुथरे वस्त्रोंमें ये सूर्य की रोशनी खुली आँखोंसे देखलें, यदि किसी उप-वन में जाकर वायुविहार करलें, यदि अपनी स्वास्थ्य रक्षाके लिये कहीं पर्यटन करने निकल जायँ तो इन छुईमुई ललनाओं का धर्म संकटमें पड़ जाता है, लोग ताने मारना आरम्भ कर देते हैं, बात बातकी, हाव भाव और कटाक्ष कों क्रूर आलोचनायें आरम्भ हो जाती हैं। इस पैशाचिक जीवनके रंग मंच पर हमारी लाडिली बेटियोंके इन दृश्योंको देखकर कौन कह सकता है कि स्वर्गमें धर्म शास्त्रकी नीव और मर्य्यादा स्थापित करने वाले पूर्वज पूज्य पितृलोक अवश्य गद्गद् और प्रसन्न हो रहे होंगे।

व्यायाम आदि की शिक्षाका प्रचार भला कब सम्भव हो सकता है। यदि कहीं पुराने विचार वाले संकुचित हृदयी पुरुष कन्या-पाठशालाओं में बालि-काओंको भांति भांतिकी कसरत करते देखलें तो उनकी आँखोंमें खून उतर आवेगा। हिन्दू पिता तत्काल यह शिकायत करने लगेगा कि वह अपनी लड़की को बाजारू वेश्या पुत्री नहीं बनाना चाहता है, उसे अभी इसका संकुचित जाति मर्य्यादा के अन्दर विवाह करना है। कौन जानता है कि ससुरालमें नवशि-क्षिता बालिकाको देखकर कोई वृद्धा यह कह न उठे कि 'इस लड़की को तो जनता में हाथ पैर मटकाना सिखाया गया है; ऐसी निर्लज्ज लड़की हमारे घर न आती तो अच्छा था।' क्या मिसमेयोके इस अनुभव-में कोई त्रुटि है! हम सदा यही देखते हैं कि थोड़ी देरके लिये यदि लड़कीके माता पिता बालिकाको शिक्षा देने के लिये तैयार भी हो जायं पर जहाँ ही लड़कीके विवाह का प्रश्न उनको स्मरण आता है, उनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह विचार होते ही कि न जाने उसे कैसी ससुराल मिले, न जाने उसकी सास, जिठानी देवर और ससुर के कैसे विचार हों, वह लड़कियोंको स्कूलों से उठाकर घरमें बिठा लेते हैं। कन्या-पाठशालाओं के सञ्चालकोंको उच्चकक्षाओं-के चलानेमें इस प्रकारकी कठिनाइयाँ सदा ही झेलनी पड़ती हैं। कहीं यदि लड़कियोंको फीस देकर पढ़ानेका नियम होता पड़ता तो स्कूलोंमें बेञ्चों और डेस्कोंको ही शिक्षा पानी पड़ती और पिता किसी सजीव बालिकाको शिक्षा देनेके लिये न भेजते। विवाहके अवसर पर दो तीन सहस्र का दहेज देना उन्हें स्वीकार है पर शिक्षा पर सौदो सौ रुपये व्यय कर देनेमें उनका दम निकल जाता है।

छुआछूतके भूत पर और जाति बन्धनकी दुर्भेद्यता परभी मिसमेयो ने मदर इंडियामें बहुत कुछ लिखा है। इसके विषयमें हम कुछ न कहेंगे क्योंकि प्रत्येक उदार नेता को इसके लिये कुछ न कुछ आँसू अवश्य बहाने

पड़ते हैं। हाँ, एक बात हम अवश्य कहेंगे। प्रजनन शास्त्रके वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर विचार करते हुए सभी इस बातमें एक मत हैं कि पुत्र और कन्याके रुधिरमें जितनेही दूरका अन्तर होगा उतना ही जातिकी वृद्धि और सन्तानकी पुष्टिकीके लिये विवाह हितकर होगा। विवाहादिके सम्बन्ध में जाति बन्धन इस प्रकार संकुचित कर दिया गया है कि फलतः आज एक व्यक्तिसे कई सम्बन्ध निकटके ही निकल आते हैं। यहाँ तक कि प्रश्न अब इतना क्लिष्ट हो गया है कि समाधान समझ ही में नहीं आता है। इसीके कारण देशकी शक्ति क्षीण होती जा रही है। इस समय आवश्यक है कि देशकी पुष्टिके लिये अन्तर-जातीय सम्बन्ध स्थापित किये जायं। जिस प्रकार अच्छे पशुओंकी उत्पत्तिके लिये दूर दूर देशोंसे सांड़ बुलाकर रक्खे जाते हैं, उसी प्रकार मानव शक्तिकी वृद्धि के लिये भी उपाय करना आवश्यक है।

इस विषयको भी छोड़िये—पंच गव्य द्वारा शुद्धि करनेका भी हास्यजनक वृत्तान्त मिसमेयोने दिया है। पंच गव्य में दूध, घी, दही, गोबर और गोमूत्र सम्मिलित हैं। गोमूत्रके पान करनेकी आख्यायिकायें बहुत प्रसिद्ध हैं। गोमूत्रका वैद्यक दृष्टिसे कितना लाभ है इसको हम यहाँ नहीं उठाना चाहते हैं, पर एक बात अवश्य है कि सामान्य जनतामें इसके प्रति भी अन्धविश्वास प्रचलित है। रोग निवारणार्थ इसका पान कदाचित् ही कोई करता होगा, पर पाप निवारणार्थ श्रद्धालुजन इसका सेवन अवश्य करते हैं। हमने स्वयं एक विश्वस्त घटना सुनी है—प्रायः ऐसी घटनायें होती ही रहती हैं—एक बार किसी गायने सड़क पर मूत्र किया और वहीं एक श्रद्धालु औरत जा रही थी। वह श्रद्धापूर्वक दौड़ी और मूत्र पृथ्वी तक पहुँच भी न पाया था, कि उसने हाथों हाथ लेकर चुल्लू में पानीके समान पी लिया। वैद्यक के बहाने इसकी पुष्टि चाहें कितनीभी क्यों न की जाय पर इसका सेवन तो इसी प्रकारके अन्धविश्वास से प्रेरित होकर किया जाता है। इसका उपयोग औषधियोंमें इतना नहीं है जितना प्रायश्चित्त पदार्थोंमें। अज्ञानके अतिरिक्त और इसे क्या कहियेगा!

गोशालाओंका हृदयाकर्षक चित्तभी मिसमेयोने खींचा है। सता सता कर मारना और ऊपरसे श्रद्धा और भक्तिकी उद्गाराञ्जलि भेंट करना भारतीयों को खूब आता है। गोके नाम पर मर मिटने वाले, और गोकी जान पर जान दे देने वाले हिन्दू जिस बेरहमीसे गौओंको सताते हैं इनके लिये हम क्या कहें। 'मरी गैया बाम्हन के सिर' मढ़ने वाले व्यक्ति गौकी पूंछ पकड़ कर बैतरनी नदी तो पार करनेके लिये उत्सुक हैं, उसके पैर पूजते हैं, उसे माता कहकर पुकारते हैं, पर क्या लज्जाकी बात नहीं है कि उनकी ये मातायें अन्नचारा बिना किस प्रकार तड़फड़ाती हैं। प्रयागके ग्रामोंमें हमने स्वयं अपने नेत्रोंसे ग्रीष्म कालीन हृदय विदारक दृश्य देखा है। ऐसी अवस्थामें यदि कोई गऊ विष्ठा खाने के लिये भी तत्पर हो जाती है तो उसका क्या दोष—यह तो आपद् धर्म है और ऐसे आपद् धर्म गौओं के लिये तो जन्म मृत्यु पर्य्यन्त बने रहते हैं। हमारे यहांके अपढ़ ग्वाले कसाइयोंसे भी बढ़कर हैं, ये दूध क्या दुहते हैं, बेचारे पशुका रुधिर ही पिये जाते हैं। खिलाते समय इनकी नानी मर जाती है। और जब गऊ ने दूध देना बन्द कर दिया या वह वृद्धा हो गई तो ये ही माता कहने वाले यमराज उन्हें कसाइयों के हाथ बेच देते हैं। मरे बछड़ेकी खालमें भूसा भरके गायकी आँखोंके सामने रखकर वे धोखा देना चाहते हैं; पर वह अबला गाय इतनी पागल नहीं है कि अपने जीवित और मृत पुत्रमें भी भेद न कर सके। परवश होकर वह अब कर ही क्या सकती है। जितना चाहो, इसे सतालो। कबतक सताओगे, वह दिन दूर नहीं है कि तुम्हारे दुधमुंहे लालों को भी दूधकी एक एक बूँदके लिये तड़फड़ाना पड़ेगा। अहिंसाके आडम्बरमें इससे अधिक और क्या ढोंग रचा जा सकता है। बेचारी मिसमेयो! भारतीयोंके इस कृत्यके लिये तू हमें जितना चाहें अपमानित कर ले, हम तुमसे कुछ न कहेंगे।

हम इस लेखको अब यहीं समाप्त करेंगे। मिस-

मेयोकी सम्पूर्ण पुस्तक विचारशील ज्ञातव्योंसे भरी हुई है, काशीका दृश्य भी पठनीय है, नीम हकीम और वैद्यों-का भी वर्णन किया गया है। अस्तु, इन सबको हम यहीं छोड़ते हैं। मिसमेयोंने जो कुछ सिद्धान्त निकाले हों, हमें मतलब नहीं। उसकी पुस्तकमें जो कुछ दोष हों, उनसे हमें क्या करना है। हम यह नहीं कहते कि सम्पूर्ण दोषोंका उत्तरदातृत्व भारतकी जनता पर ही है और गवर्नमेंएट इसके विषयमें अदोष है, हम यह भी नहीं कहते कि इस प्रकारके अनाचार संसारके अन्य देशोंमें नहीं होते हैं। सम्भव है कि कुछ अंशोंमें यूरोप और अमेरीकाकी सामाजिक अवस्था भारतकी अवस्थासे भी खराब हो, पर इससे हमें क्या लेना है! यह भी सम्भव है कि मिसमेयोने बहुतसे स्थानों पर अपनी सम्मति निर्धारित करनेमें बहुत जल्दबाजीकी हो पर हम तो यही कहते हैं कि मदर इंडियाको देखकर भारतीयोंको चेत जानेकी आवश्यकता है। ईश्वर हमें ज्ञान दे, विज्ञान दे, जिससे हम दूसरोंके गुण और अपने दोष देख सकें।

समुद्र यात्राकी बीमारी

(ले० श्री हरिवंश जी)

आज कल पहलेकी अपेक्षा समुद्र यात्रा अधिक की जाती है। लोग विद्याभ्यासके लिये, रोज़गारके लिये अथवा सैर सपाटेके लिये समुद्र यात्रा किया करते हैं। समुद्री यात्रा करने वालोंको प्रायः यात्राके पहले दो चार दिन बड़ी मतली छूटती है और क़ै आरम्भ होजाती है। ऐसा होना कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। इसका कारण यह है कि स्थलकी जल-वायु और समुद्रकी जल-वायुमें बड़ा अन्तर होता है। और बहुत थोड़े ही मनुष्य ऐसे होते हैं जो जल-वायुके परिवर्तनको सह सकें। दूसरा कारण इसका यह है कि यह परिवर्तन जहाज़ोंको अति वेग गामी होनेके कारण अकस्मात् ही हो जाता है और स्वस्थ से स्वस्थ मनुष्य भी बिना रोग ग्रसित हुए नहीं रह सकता।

पहिले समयमें जहाज़ बहुत धीमे चलते थे इससे जल-वायु परिवर्तन एकदम नहीं होता था और न जहाज बीच समुद्रमें ही चलते थे। वे प्रायः किनारे किनारे ही जाया करते थे और इस कारण उन्हें प्रायः स्थल-की सी ही जल-वायु समुद्रपर भी मिलती थी। यही कारण है कि हम पुरानी समुद्री यात्राओंमें इस बीमारीका कोई ज़िक्र नहीं पाते हैं। परन्तु आज-कल-के जहाज़ किनारे पर चलही नहीं सकते और यात्रा-को कम लम्बी करनेके लिये जहाज अक्सर तटसे हज़ारों मीलकी दूरी पर रहते हैं। और इस कारण समुद्री बीमारीसे ग्रस्त होना ही पड़ता है।

यह बीमारी न तो किसी रोग विशेषका द्योतक है और न किसी प्रकारकी कमज़ोरीका ही चिह्न है। स्त्री, पुरुष, बूढ़े नवजवान बच्चे सभी इस रोगके शिकार हो सकते हैं। जहाज़के डाक्टरोंका कथन है कि अक्सर उन लोगों को ऐसे भी लोग समुद्र यात्राके रोगसे ग्रसित हुए मिले हैं जिन्होंने अपनी सारी उम्र ही समुद्र यात्रामें व्यतीत करदी हैं। हां, १२ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चोंको यह रोग कम होता है। परन्तु यह बीमारी जीव घातक नहीं है और एक बार जो इस रोगसे ग्रसित हो जाते हैं उन्हें दूसरी बार उतनी घबराहट अथवा मानसिक वेदना, जिसमें कि वह मृत्यु होना तक भी सम्भव समझते हैं, नहीं होती। पहली बार समुद्र यात्रा करनेवालोंको जब यह बीमारी होती है तब शारीरिक कष्टके साथ मानसिक वेदना भी हद दर्जेकी होती है।

इस बीमारीका आरम्भ इस प्रकार होता है कि पहले जम्हाई ज़ोर ज़ोर से आती है या सांस वेगसे मुंहसे निकली है। जल्दी ही या कभी कभी कुछ देर बाद पेटमें कुछ दर्द सा मालूम होता है। ऐसी दशामें यदि सिगरेटका धुवां नाकमें चला जाय तो जल्दही यदि पेट खाली हुआ तो पेटमें एक मरोड़ सी पैदा हो जाती है और यदि पेट भरा हुआ हो तो कै शुरू हो

जाती है। हाथ और पैर बर्फकी तरह ठंडे हो जाते हैं चेहरा पीला पड़ जाता है और मस्तक और गालों पर पसीना निकलना शुरू हो जाता है। जबान ऐंठ जाती है और मुंहका जायका कड़ुवा हो जाता है। मुंह सूखने भी लगता हैं, जी घबराने लगता है। और मौत आ गई ऐसा मालूम होने लगता है।

हर एक जहाज पर बड़े बड़े दवाईखाने और डाक्टर रहते हैं जो हर मनुष्यको उसकी अवस्था तथा दशाके अनुसार दवा देते ही हैं। पर जो लोग सामुद्रिक बीमारीसे बचना चाहें उनके लिये डा० ऐलेन वेनेट जो बहुत दिनों तक पैसिफिक स्टीम नेवीगेशन कम्पनी में सर्जन रह चुके हैं, की बताई हुई बातो पर ध्यान देना चाहिये।

पहली बात ध्यान देनेकी यह है कि यह कभी न सोचना चाहिये कि हमको बीमारी होगी ही। जो लोग ऐसा सोचकर जहाज पर चढ़ते हैं उन्हें कभी निराश नहीं होना पड़ता और सामुद्रिक बीमारी उन्हें अवश्य होती है। यह कोई जरूरी बात नहीं कि यह बीमारी सभीको हो। जहाज पर भी ऐसे रोगियोंके पास इनको देखने भालने न जाना चाहिये। ऐसे रोगियोंको देखकरभी यह बीमारी हो सकती है।

जो लोग समुद्र यात्राके पहले भोजन अधिक अथवा नाना प्रकारके करते हैं उनको यह बीमारी अवश्य सताती है। जिन लोगोंका हाज्मा दुरुस्त हो और पेटमें और किसी प्रकारकी गड़बड़ी न हो तो उनके लिये निम्न लिखित उपाय बहुत लाभ कारीहोंगे। और कमसे कम उन्हें यात्राके पहले सप्ताहमें यह बीमारी टल जायगी। बादको यदि हुई भी तो इतनी दुखदाई न होगी क्योंकि तब तक मनुष्य सामुद्रिक जल वायुसे अभिज्ञ हो जाता है।

किसी लम्बी समुद्र यात्रा लेनेसे पहले सात दिनों तक केवल दो वार भोजन करना चाहिये एक सुबह को ९, १० के करीब और दूसरा शाम को ६ सात के लगभग, इसके बीचमें कुछ भी न खाना चाहिये। भोजन सादा करना चाहिये जिसमें कई प्रकारकी चीजें अथवा चटनी अचार मिठाई वगैरा न हों। यदि मांस खानेकी आदत हो तो केवल एक वार ही खाना चाहिये। सबेरेके खानेमें मक्खन रोटी और एक आध सेव होने चाहिये। जिन्हें शराब पीनेकी आदत हो उन्हें उसे कम कर देनी चाहिये। पानी स्वच्छन्दता पूर्वक पी सकते हैं पर सिगरेट पीनेकी आदत अवश्य कम करनी चाहिये। जिन्हें मांस खाने, शराब पीने अथवा सिगरेट पीने की बिल्कुल आदत न हो और अच्छी बात है। सिद्धान्त यह है कि हाज्मा दुरुस्त रहना चाहिये और पेट साफ़।

समुद्र यात्राके लिये रवाना होनेके दो दिन पहले उपवास करना चाहिये जिसमें भोजन कुछ भी न करना चाहिये पर पानी इच्छानुसार पीना चाहिये। उपवास करनेवाले दिनकी रातको ५ ग्रेन ब्ल्यू पिल खाना चाहिये और उस रातके सबेरे सेडलिज पाउडर* (Sedlitx Powder) ये चीजें अगर अप्राप्य हों तो नमककी एक मात्रा खानी चाहिये।

समुद्र यात्रा करते समय जब मचली आवे तब भी ऊपर लिखी दवायें काम आवेंगी।

उन लोगोंके लिये जिनकी घबड़ाहट बहुत ज्यादा बढ़ रही हो और अवस्था संशयात्मक मालूम हो उन्हें गरम खारी पानीसे भरी टबमें नहलाना चाहिये। आधा घंटा अथवा एक घंटा या इससे भी अधिक इस तरह स्नान करा सकते हैं। मरीजके पैर उतराते न रहें इसलिये उन्हें टबके किनारोंसे अड़ा देते हैं। पानीका आपेक्षिक घनत्व १.२ रहता है और मरीजका शरीर इस पर भली भांति उतरा सकता है। मरीजकी आंखोंमें पट्टी बँधी रहनी चाहिये।

उक्त डाक्टरका कहना है कि ऐसी तरकीबसे बहुत शीघ्र ही बड़ा आराम पहुंचता है।

---

* ये दवायें अंग्रेजी दवाखानोंमें मिलती हैं। इनकी दो चार खुराकें समुद्र यात्रीको पासमें रख लेनी चाहिये।

हमने यह भी सुना है कि मचली आने पर नमकीन चीज़ें बहुत लाभकारी होती हैं और साधारणतया नींबू चाटना बड़ा लाभकारी है।

समुद्र यात्री यदि इन बातोंका ध्यान रक्खेंगे तो समुद्र यात्राकी बीमारी इनको अधिक न सतायेगी।

द्वितीय खण्ड

धातु समूह

सैन्धकम् और पांशुजम्

(Sodium and Potassium)

[ले० श्रीसत्यप्रकाश, एम० एस-सी]

अब तक हमने अधातु तत्वोंका वर्णन दिया है। सप्तम, षष्ठ, पंचम और चतुर्थ समूहके तत्त्व मुख्यतः अधातु हैं। तृतीय समूहके तत्त्वोंसे धातुशक्ति आरम्भ होती है। द्वितीय और प्रथम समूही तत्त्व विशेषतः प्रबल धातु हैं। ये सब धनात्मक शक्तिके माने जाते हैं। प्रथम समूहके तत्वोंके दो वंश हैं—क और ख—जैसा कि आवर्त्त संविभागका वर्णन देते समय कहा जा चुका है। इसी प्रकार अन्य समूहोंमें भी दो दो वंश हैं। क-वंशके तत्त्वोंमें ख-वंशीय तत्त्वोंकी अपेक्षा धनात्मक गुण अधिक प्रबल हैं और ख-वंशीय तत्त्वोंमें ऋणात्मक गुणोंका कुछ न कुछ समावेश अवश्य है।

प्रथम समूहके क-वंशीय तत्त्वोंका विवरण निम्न प्रकार है—

तत्त्व	संकेत	परमाणुभार	द्रवांक	क्वथनांक	०° पर घनत्व
शोणम्	शो	[illegible]·९४	१८०·१° श	>१४००° श	०·५६
सैन्धकम्	सै	२३·०	९७·९°	८७७°	०.९७२३
पांशुजम्	पां	३९·१	६२·०४°	७५८°	०·८५९
लालम्	ला	८५·४५	३९·०°	६९६°	१·५२५
व्योमम्	वो	१३२·८	२८·४५°	६७०°	१·९०३

इस सारिणीके देखनेसे पता चलता है कि तत्वों-का परमाणुभार ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, उनका द्रवांक और क्वथनांक क्रमशः कम होता जाता है पर घनत्व बराबर बढ़ता जाता है (सैन्धकम् अपवाद है)। इन सब पांचों तत्वोंके गुण समान हैं जैसा कि आगेके वर्णनसे प्रतीत होगा। इन तत्वोंमें सैन्धकम् और पांशुजम् विशेष उपयोगी हैं अतः इनका ही वर्णन इस स्थान पर दिया जायगा।

प्राकृतिक लवण

सैन्धकम् और पांशुजम् अत्यन्त शक्तिशाली तत्व हैं अतः ये शीघ्र ही अन्य अधातु तत्वोंसे—गन्धक, ओषजन, हरिन्, कर्बनद्विओषिद आदिसे—संयुक्त हो जाते हैं। इसीलिये प्रकृतिमें ये शुद्ध रूपमें उपलब्ध नहीं हो सकते हैं।

सैन्धकम्के मुख्य प्राकृतिक लवण निम्न है—

(१) साधारण नमक—यह सैन्धक हरिद, सै ह है। नमक को संस्कृतमें सैन्धक कहते हैं, इसीलिये इस तत्वका नाम सैन्धकम् पड़ा है। समुद्र, झील और खारी कुओंके पानीमें यह बहुत मात्रामें विद्यमान है। नमककी बड़ी बड़ी खानें भी होती हैं।

(२) चिलीशोरा—यह सैन्धक नोषेत होता है। सैनो ओ$_3$।

(३) सोडा—बाजारमें जो सोडा बिकता है वह सैन्धक कर्बनेत होता है। सज्जी मिट्टीमें भी यह यौगिक विद्यमान है।

(४) पत्थरोंमें सैन्धक शैलेत और कहीं कहीं सैन्धक-स्फट-प्लविद (क्रायोलाइट-खनिज) पाये जाते हैं।

पांशुजम्के अनेक लवण भी प्रकृतिमें उपलब्ध होते हैं, यद्यपि ये सैन्धकम् लवणोंसे समान बहुतायतसे नहीं पाये जाते हैं। कुछ मुख्य लवण ये हैं:—

(१) शोरा—पांशुज नोषेत, पांनोओ$_3$

(२) फेल्सपार } पांशुज-स्फट शैलेत
(३) माइका }

(४) कार्नेलाइट—पांशुज मगननीसहरिद-पांह मह$_2$. ६उ$_2$ ओ

सैन्धकम् और पांशुजम् धातु

सैन्धकम् धातु दाहक सैन्धकक्षार-सैओउ (सैन्धक-उदौषिद) के विद्युत् विश्लेषणसे प्राप्त होती है। सैन्धक क्षार बनानेकी विधि आगे लिखी जायगी। सैन्धकक्षारको लोहेके एक बड़े बर्तनमें रखकर डायनेमोसे विद्युत् धारा प्रवाहित करते हैं। धनध्रुव (धनोद) पर ओषजन निकलने लगता है और सैन्धकम् एवं उदजन ऋणोद (ऋण ध्रुव) पर संचित हो जाता है। यह सैंधकम् पिघली हुई अवस्था में होता है, इसे ठंडा करके ठोस करते हैं, और फिर पिघला कर मोटी मोटी बत्तियों (या बेलनों) के रूपमें ढाल लेते हैं।

२ (सै ओ उ) = [२सै, उ$_2$] + ओ$_2$

सैन्धकम्को मिट्टीके तैलके अन्दर रखा जाता है क्योंकि वायुके संसर्गसे यह ओषिदमें परिणत हो जाता है और जलके साथ जल कर सैन्धकक्षार बन जाता है। विद्युत् विश्लेषणकी प्रक्रियासे सैन्धकम् व्यापारिक मात्रामें बहुत बनाया जाता है। अमलगम (सैन्धकपारद मेल) बनाने और श्यामिद बनाकर सुवर्ण-व्यापारमें इसका उपयोग किया जाता है।

पांशुजम् धातु को इतनी अधिक व्यापारिक मात्रामें बनाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जो काम इससे लिया जा सकता है वही सैन्धकम्से भी निकल सकता है। अस्तु, पांशुजम् भी सैन्धकम्के समान पांशुजक्षार, पां ओ उ, के विद्युत् विश्लेषणसे बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इमली की मलाई (पांशुज उदजन इमलेत)को बन्द घरियाके गरम करनेसे अथवा पांशुज कर्बनेतको कर्बनके साथ मिश्रित करके पिटवां लोहे की बोतलमें उच्च तापक्रम तक गरम करनेसे भी यह मिल सकता है:—

पां$_2$ क ओ$_3$ + २क = २ पां + ३ क ओ

पर ऐसी अवस्थामें पांशुजम् की वाष्पें प्राप्त होती हैं जिन्हें शीघ्रही लोह-पटोंके बीचमें ठण्डी करनी चाहिये अन्यथा पांशुजम् और कर्बनएकौषिदके संसर्गसे अति प्रबल विस्फुट-कारक यौगिक बन जायगा जिससे बहुधा अत्यन्त हानिकारक दुर्घटनायें हो जाया करती हैं।

सैन्धकम् और पांशुजम् दोनों धातुएं जलसे हलकी हैं, दोनों धातुएं चाकूसे काटी जा सकती हैं, और काटने पर धातु की सी चमकदार सतह निकल आती हैं। दोनों पिघलने पर पारदके समान द्रव देते हैं, और उबलने पर सैन्धकम् सुनहरी वाष्पें तथा पांशुजम् सुन्दर हरी वाष्पें देता है। इनके द्रवांक और क्वथनांक पहले दिये जा चुके हैं।

दोनों धातुएं जलके संसर्गसे जल उठती हैं और प्रक्रियामें तत्सम्बन्धी उदौषिद क्षार प्राप्त होते हैं जो लाल लिटमस द्योतक पत्र को नीला कर सकते हैं, यह प्रक्रिया पांशुजमके साथ अधिक वेगसे होती है, इस प्रक्रियामें जो उदजन जनित होता है, एकाएक सुन्दर बैंजनी लौ से जलने लगता है:—

२ सै + २ उ$_2$ ओ = २ सै ओ उ + उ$_2$
२ पां + २ उ$_2$ ओ = २ पांओ उ + उ$_2$
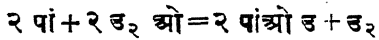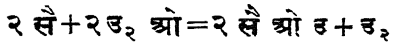
दोनों धातुएँ वायुके संसर्गसे ओषिदमें (और यदि जलवाष्प भी वायुमें हो तो उदौषिदमें) परिणत हो जाती हैं।

२ पां + ओ$_2$ = पां$_2$ ओ
पां$_2$ ओ + उ$_2$ ओ = २ पां ओ उ
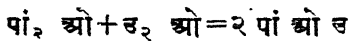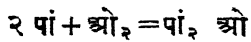
यदि किसी खरलमें थोड़ा सा पारा लिया जाय और इसमें सैन्धकम् के छोटे छोटे शुष्क टुकड़े काट कर मूसलीसे रगड़ कर मिलाये जायँ तो तीव्रतासे संयोग आरम्भ होता है और कभी कभी प्रकाश की दीप्ति भी प्रकट होती है। जब ८० भाग पारदमें एक भाग सैन्धकम् मिल जाता है तो ठंडा होने पर मिश्रण ठोस हो जाता है। इसको पारद-मेल या अमलगम कहते हैं, यह पारदमेल भी जलके साथ प्रक्रिया करके उदजन देता है, पर इस अवस्थामें प्रक्रिया उतनी तीव्रतासे नहीं होती है जितना कि स्वच्छ सैन्धकम् के साथ।

सैन्धकम् और पांशुजम् का संयोग तुल्यांक

प्रयोग द्वारा यह देखा गया है कि रजत यदि शुद्ध नोषिकाम्लमें घोला जाय और इस रजत-घोलके रजतको पूर्णतः रजतहरिदमें परिणत करनेके लिये सैन्धक हरिद घोल डाला जाय तो १०७·८८ भाग रजतके लिये ५८·४६ भाग सैन्धक हरिद की आवश्यकता होगी। यह भी देखा गया है कि १०७·८८ भाग रजत ३५·४६ भाग हरिन्से संयुक्त होकर रजत हरिद बनाता है। अतः ५८·४६ भाग सैन्धक हरिदमें ३५·४६ भाग हरिन् होगा, शेष ५८·४६—३५·४६=२३ भाग सैन्धकम्के होंगे अतः सैन्धकम् का संयोग तुल्यांक २३ हुआ।

ठीक इसी प्रकार का प्रयोग पांशुज हरिद लेकर भी किया जा सकता है। १०७·८८ भाग रजतके लिये ७४·५६ भाग पांशुज हरिदकी आवश्यकता होगी अतः पांशुजम्का संयोग तुल्यांक ७४·५६—३५·४६ = ३९·१ हुआ।

सैन्धकम्का आपेक्षिक ताप ०·२९३ है अतः इसका परमाणु भार $\frac{६·४}{·२९३}$=२१·८ के लगभग हुआ। संयोग तुल्यांक २३ था अतः निश्चित परमाणु भार २३ माना गया है पांशुजम्का आपेक्षिक ताप ०·१६६ है अतः परमाणु भार $\frac{६·४}{.१६६}$=३८·६के लगभग है। इसका संयोग तुल्यांक ३९·१ है अतः पांशुजम्का निश्चित परमाणु भार ३९·१ ही माना जायगा। इस प्रकार सैन्धकम् और पांशुजम् दोनों एक शक्तिक हैं अर्थात् इनका एक परमाणु अम्लोंमेंसे एक उदजन परमाणु ही पृथक् कर सकता है।

सैन्धकम् और पांशुजम् के ओषिद

यह कहा जा चुका है कि वायुके संसर्गसे सैन्धकम् ओषिदमें परिणत हो जाता है। यदि समुचित वायुप्रवाहमें सैन्धकम् गरम किया जाय तो सैन्धक

परौषिद, सै₂ ओ₂, बनता है पर यदि संकुचित वायुमें इसे गरम करें तो सैन्धक एकौषिद, सै₂-ओ, ही बनेगा।

सैन्धक परौषिदको शुद्ध बनानेके लिये यह आवश्यक है कि वायु शुष्क हो और कर्बन द्विओषिदसे पूर्णतः रहित हो। यह श्वेत अथवा पीलापन लिये हुए श्वेत चूर्ण पदार्थ है। अति उच्चतापक्रम पर गरम करनेसे यह एकौषिदमें परिणत हो सकता है पर साधारण तापके प्रति यह स्थायी यौगिक है। जलके संसर्गसे यह सैन्धकक्षार और उदजनपरौषिद देता है जिसका वर्णन पहले दिया जा चुका है:—

सै₂ ओ₂ + २ उ₂ ओ = २ सै ओ उ + उ₂ ओ₂

इसी प्रकार गन्धकाम्लके संसर्गसे सैन्धक गन्धेत और उदजन परौषिद प्राप्त होता है।

सै₂ ओ₂ + उ₂ ग ओ₄ = सै₂ क ओ₃ + ओ₂

भार परौषिद, भ ओ₂, मागनीज़ द्विओषिद माओ₂ आदि भी सैन्धक परौषिदके समान हैं, कर्बनद्विओषिदके साथ यह सैन्धक कर्बनेतमें परिणत हो जाता है और ओषजन दे देता है:

२ सै₂ ओ₂ + २ क ओ₂ = २ सै₂ कओ₃ + ओ₂

पांशुजम् भी यदि वायुमें गरम किया जाय तो कई प्रकारके ओषिदों का मिश्रण प्राप्त होता है जिनमें से परौषिद मुख्य होता है, इसे बहुधा पां₂ ओ₄ लिखते हैं। खूब गरम करनेसे यह पांशुज एकौषिदमें परिणत होजाता है। पांशुजक्षार को पांशुजम्के धातुके साथ गरम करके भी एकौषिद बना सकते हैं:—

२ पां ओ उ + २ पां = २ पां₂ ओ + उ₂

सैन्धक और पांशुजकर्बनेत— सै₂ क ओ₃ और पां क ओ₃

सैन्धक कर्बनेतको सैन्धकराख भी कहते हैं। इसका उपयोग सैन्धकक्षार आदि यौगिकोंके बनाने में होता है। साधारण नमक से इसके बनाने की दो मुख्य विधियाँ हैं:—

(१) लीब्लांक विधि

(२) अमोनिया-सोडा विधि

इन दोनों विधियों का सूक्ष्मतः वर्णन यहां दिया जायगा।

लीब्लांक विधि—लीब्लांक विधिमें पहले साधारण नमक तीव्रगन्धकाम्लके संसर्गसे सैन्धक गन्धेतमें परिणत किया जाता है और फिर यह सैन्धक गन्धेत कोयले और खटिक कर्बनेतके साथ तप्त करके पिघलाया जाता है। इस प्रकार खटिक कर्बनेत दो प्रक्रियाओंमें बन जाता है—

२ सै ह + उ₂ ग ओ₄ = सै₂ ग ओ₄ + २ उ ह

सै₂ ग ओ₄ + ख क ओ₃ + २ क = सै₂ क ओ₃ + ख ग + क ओ₂

इस कामके लिये लोहेके बड़े कड़ाहेमें बहुत सा नमक रखते हैं और इसमें तीव्र गन्धकाम्लकी आवश्यक मात्रा डालते हैं। मिश्रण सदा भलीभाँति टारा जाता रहता है। कड़ाहेको मन्द अग्निसे गरम करते हैं। प्रक्रियामें पहले सैन्धक उदजन गन्धेत और उदहरिकाम्ल बनता है। उदहरिकाम्ल बनानेकी विधि बताते समय इसका निर्देश किया जा चुका है, आम्लिक वाष्पें पृथक करली जाती हैं। इस कामके लिये विशेष स्तम्भ या स्तूप होते हैं। उदजन गन्धेत मिश्रणको दूसरे कड़ाहेमें और भी अधिक उच्च तापक्रम पर गरम करते हैं जहां पूर्णतः अनार्द्र सैन्धक गन्धेत बन जाता है।

सै उ ग ओ₄ + सै ह = सै₂ ग ओ₄ + उ ह

यह गन्धेत अनार्द्र कठोर श्वेत पदार्थ है। इसे लवण-रोटिका कहते हैं और इस विधि से तैयार करने को लवण-रोटिका-विधि कहते हैं।

अस्तु, इस लवण रोटिका अर्थात् सैन्धक गन्धेत-कोतोड़ कर टुकड़े टुकड़े किये जाते हैं, और फिर इसमें कोयला और चूनेके पत्थरका चूर्ण मिलाया जाता है मिश्रणको फिर जोरों से गरम किया जाता है। इस कामसे लिये लोहपटोंके बड़े बड़े बेलन उपयोग में लाये जाते हैं। ज्योंही बेलनोंका मिश्रण हलुआ सा हो जाता है और उसके ऊपर पीली वाष्पें दृष्टिगत होने लगती हैं तो पिघले हुए पदार्थको बाहर लोहपात्रों

में निकाला जाता है इनमें ठंडा करके एक छेद द्वारा इसे ठोस कर लेते हैं। प्रक्रियायें इस प्रकार मानी जा सकती हैं:—

$सै_2गओ_4 + २क = सै_2ग + २कओ_2$

$सै_2ग + खकओ_3 = खग + सै_2कओ_3$
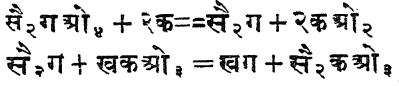
इस प्रकार खाकी रंगकी काली राख प्राप्त होती है जिसमें सैन्धक कर्बनेत और खटिक गन्धेत दोनों मिले होते हैं। सैन्धक कर्बनेत जलमें घुलनशील है पर खटिक गन्धिद अनघुल है अतः पानीमें मिश्रण डाल कर जोरोंसे हिलाते हैं और खटिक गन्धिदको छान कर पृथक् कर लेते हैं शेषघोलमें पहले कर्बन द्विओषिद प्रवाहित कर देते हैं क्योंकि उपर्युक्त प्रक्रियाओं में कुछ सैन्धक क्षारभी बनजाता है जो कर्बन द्विओषिद द्वारा पूर्णतः कर्बनेतमें परिणत हो जाता है तत्पश्चात सैन्धक कर्बनेतको सुखाकर गरम करके अलग कर लिया जाता है। इस प्रकार उपलब्ध पदार्थभी पूर्णतः शुद्ध कर्बनेत नहीं होता है। इसमें ८४% कर्बनेत और शेष सैन्धक हरिद, गन्धेत आदि अशुद्धियाँ होती हैं।

सैन्धक कर्बनेतके स्फटिकीकरणसे कपड़े धोनेका सोडा, $सै_2कओ_3 + १०उ_2ओ$ प्राप्त होता है। सैन्धक कर्बनेतके रवोंको कर्बन द्विओषिदकी विद्यमानतामें खुले छोड़नेसे सैन्धक अर्द्ध कर्बनेत प्राप्त होता है:—

$[सै_2कओ_3 + १०उ_2ओ] + कओ_2$

$= २सैउकओ_3 + ९ उ_2 ओ$
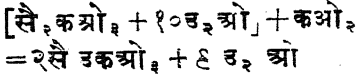
अमोनिया सोडा विधि—सैन्धक हरिद अर्थात् नमकके घोलके अमोनिया द्वारा सम्पृक्त करनेके पश्चात् यदि कर्बन द्विओषिद प्रवाहित किया जाय तो सैन्धक अर्धकर्बनेत बनता है।

$सैह + उ_2ओ + नोउ_3 + कओ_2$

$= सैउकओ_3 + नोउ_4ह$
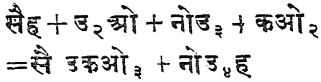
इस समीकरणसे यह स्पष्ट है कि प्रक्रिया में अमोनियम हरिद भी बनता है अमोनियम हरिदकी विद्यमानता में सैन्धक अर्धकर्बनेत जलमें बहुत कम घुलनशील है यह रवेके रूपमें पृथक् हो जाता है और छानकर इसे अलग कर लेते हैं फिर थोड़ेसे जलसे इसे धोते हैं जिससे इसमें लगा हुआ अमोनिया घुल जाय; तत्पश्चात् उसेकड़ाहोमें सुखा लेते हैं। अर्ध-कर्बनेतको भट्टी में गरम करनेसे सैन्धक कर्बनेत प्राप्त हो जाता है:—

$२सैउकओ_3 = सै_2कओ_3 उ_2ओ + कओ$
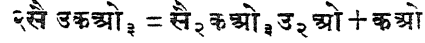
इस प्रकार लीब्लांक विधि और अमोनिया-सोडा विधिसे सैन्धक कर्बनेत प्राप्त करते हैं। इन्हीं विधियोंसे सैन्धक गन्धेत और अर्धकर्बनेतभी बीच बीच में उपलब्ध हो जाता है।

शुष्क सैन्धक कर्बनेतको बिना विभाजित किये पिघलाया जा सकता है। यह जलमें घुलनशील है। घोल में से कपड़े धोनेके सोडाके रवे, $सै_2 कओ_3 १० उ_2 ओ$, पृथक् होते हैं। हवामें रखने से इनका स्फटिकीकरण का जल पृथक् होना लगता है इस प्रक्रियाको लोना लगना या पुष्पण (efflorescent) कहते हैं। कर्बनेतका घोल क्षारीय होता होता है। इसके ठंडे घोलमें कर्बन द्विओषिद प्रवाहित करनेसे अर्धकर्बनेत, $सैउकओ_3$ बन जाता है। यह अर्धकर्बनेत घोल किसी भी अम्लके साथ चाहें सिरकाम्ल नीबूइयाम्ल या कोई भी क्यों न हो, कर्बनद्विओषिदके बुलबुले देने लगता है।

$सैउकओ_3 + उह = सैह + उ_2ओ + कओ_2$
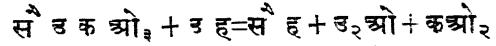
इस प्रक्रियासे अम्लोंकी पहिचान की जा सकती है।

पांशुज कर्बनेत—वनस्पतिओंको जलानेसे जो राख शेष रहती है उसमें पांशुज कर्बनेत विद्यमान रहता है। पांशु शब्द का संस्कृत में अर्थ 'राख' है। इसी लिये इस तत्वका नाम पांशुजम् रखा गया है। पांशुजकर्बनेत भी सैन्धककर्बनेत के समान आजकल पांशुजहरिदसे बनाया जाता है। इसमें पसीजनेका गुण है और जलमें बहुत घुलनशील है (१०० भाग जलमें २०°श पर ११२०भाग घुलन शील)। सैन्धक अर्धकर्बनेतके समान यह भी पांशुज अर्धकर्बनेत $पांउकओ_3$, देता है।

सैन्धक और पांशुजक्षार, सै ओउ, और पांओउ

लीब्लांक विधिमें वर्णित 'काली राख' मेंसे खटिक गन्धिद् दूर कर देनेके पश्चात् सैन्धक कर्बनेत का जो घोल शेष रह जाता है, उसे लोहेके बेलनोंमें चूनेके साथ गरम करते हैं। प्रक्रियामें सैन्धककर्बनेत सैन्धकक्षारमें परिणत हो जाता है और खटिक कर्बनेत अवक्षेपित हो जाता है:

सै$_2$क ओ$_3$ + ख (ओउ)$_2$ = ख क ओ$_3$ + २सै ओउ

इस घोलमें वायु प्रवाहित करते हैं, इससे दो लाभ हैं—पहला तो यह कि मिश्रण ख़ूब टरता रहता है और दूसरा यह कि जो कुछ गन्धक-यौगिक हों उनका ओषदीकरण हो जाता है। कालान्तरमें खटिक कर्बनेतके सूक्ष्म कण तलैटीमें बैठ जाते हैं। इन्हें छान कर अलग कर लिया जाता है। फिर द्रवको उथले कड़ाहोंमें १३८° क्थनांक तक गरम करते हैं। फिर बड़े बड़े कटोराकार लोहपात्रोंमें घोलको जोरोंसे गरम करते हैं। इस प्रकार उनका सम्पूर्ण जल पृथक हो जाता है। फिर इन्हें बट्टियाँ अथवा बत्तियोंमें ढाल लेते हैं।

सैन्धक हरिदके उदविश्लेषणसे भी सैन्धकक्षार प्राप्त हो सकता है। शुद्ध सैन्धक क्षार बनानेके लिये बाजारू सैन्धकक्षारको मद्यमें घोलना चाहिये। इस प्रकार केवल क्षार मद्यमें घुल जायगा पर अशुद्धियाँ अनघुल रहेंगी इन्हें छान कर पृथक् किया जा सकता है। मद्यिक घोलको उड़ाकर शुद्ध क्षार मिल सकता है। अत्यन्त शुद्ध क्षार सैन्धकम् धातु को स्रवित जलमें घोलकर चांदी की प्यालियोंमें वाष्पी भूत करके प्राप्त हो सका है। चांदी पर इस क्षारका न्यूनतम प्रभाव पड़ता है।

पांशुजक्षार भी सैन्धक क्षारके समान बनाया जा सकता है। पांशुज हरिदके विद्युत्-विश्लेषणसे यह विशेषतः बनाया जाता है। एक ध्रुव पर हरिन् मुक्त होकर आजाता है और दूसरे ऋणोद पर पांशुजम्। ऋणोद बहुधा पारदधातुका होता है। पांशुजम् पारदधातुके साथ पारदमेल बनाता है। यह पारदमेल पुनः जलके संसर्गसे पांशुज क्षारमें परिणत हो जाता है इस घोल को सुखाकर पांशुजक्षार बना लेते हैं। अत्यन्त शुद्ध क्षार बनानेके लिये पांशुज गन्धेत चूर्णको संपृक्त भारउदौषिद् घोलके साथ गरम करते हैं। भार गन्धेतका अवक्षेप छानकर पृथक् कर लिया जाता है:—

पां$_2$ ग ओ$_4$ + भ (ओ उ)$_2$

= २ पांओ उ + भ ग ओ$_4$

सैन्धक और पांशुज क्षार दाहक क्षार भी कहलाते हैं। इनको घोलनेसे जल बहुत गरम हो जाता है। पांशुज क्षारका उपयोग मृदु-साबुनके बनाने में बहुत होता है।

सैन्धक और पांशुज हरिद्—सैह, पांह

साधारण नमक सैन्धक हरिद् है, इसमें थोड़ा सा मगनीसहरिद भी मिला रहता है, जिसमें पसीजनेके गुण हैं। इसी लिये बरसातके दिनोंमें साधारण नमक पसीजने लगता है इससे स्वच्छ नमक, सैन्धहरिद्-प्राप्त करने की विधि यह है कि नमक घोलमें उदहरिकाम्ल गैस प्रवाहित करो। ऐसा करनेसे शुद्ध सैन्धक हरिद् अवक्षेपित हो जायगा पर मगनीस हरिद जलमें ही घुला रहेगा, लवणको शून्यक पम्पकी सहायतासे छानलो और फिर पररौप्यम्की घरियामें रक्ततप्त करलो।

स्टैस्फर्टकी तहोंमें पांशुजहरिद प्राप्त होता है, कार्नेलाइटमें यह मगनीस हरिदके साथ मिला रहता है। आंशिक स्फटिकीकरण द्वारा शुद्ध रूपमें यह पृथक् किया जा सकता है। गरम पानीमें यह सैन्धकहरिद की अपेक्षा कहीं अधिक घुलनशील है। सम्पूर्ण पांशुजलवण इसी हरिदसे बनाये जाते हैं।

पांशुज अरुणिद—पांरु-लोहचूर्ण और अरुणन् जल का प्रभाव डालनेसे लोह अरुणिद बनता है। पांशुज कर्बनेतके साथ प्रक्रिया करनेसे पांशुज अरुणिद प्राप्त हो जाता है:—

२ लो रु$_3$ + ३ पां$_2$ क ओ =

६ पां रु + लो$_2$ ओ$_3$ + ३ क ओ$_2$

सैन्धक अरुणिद, सैरु, भी इसीके समान है इसके रवे सै रु + २ उ$_2$ ओ होते हैं।

पांशुज नैलिद—यह भी उपर्युक्त विधिके अनुसार बनाया जाता है। ओषधियों और नैलिन्-मापकता (Iodometery) में इसका उपयोग किया जाता है।

पांशुजहरेत—पां ह ओ$_3$-इसकी विधि हरेतोंका वर्णन करते हुए दी जा चुकी है। गरम चूनेमें हरिन् प्रवाहित करके खटिक हरेत बनाया जाता है।

ख (ओउ)$_2$ + ६ ह$_2$

=५ ख ह$_2$ + ख (ह ओ$_3$)$_2$ + ६ उ$_2$ ओ

फिर खटिक हरेतमें पांशुज हरिद डालते हैं। अनघुल पांशुज हरेत अवक्षेपित हो जाता है:—

ख (ह ओ$_3$)$_2$ + २ पां ह=ख ह$_2$ + २ पां ह ओ$_3$

सैन्धक और पांशुज श्यामिद, सै क नो, पां क नो

सैन्धक श्यामिद—यदि लोह भभकेमें सैन्धकम्के अमोनियाके प्रवाहमें ४००° पर गरम किया जाय तो सैन्धकामिद (sadamide) पदार्थ, सै नो उ$_2$, मिलता है।

२ नो उ$_3$ + २ सै=२ नो उ$_2$ सै + उ$_2$

यह मोमके समान श्वेत पदार्थ है। कर्बनके साथ गरम करनेसे यह सैन्धक श्यामिदमें परिणत हो जाता है:—

सै नो उ$_2$ + क=सै क नो + उ$_2$

स्वर्णके निष्कर्षणमें सैन्धक श्यामिदका बहुत उपयोग किया जाता है, यह अत्यन्त विषैल पदार्थ है।

पांशुज श्यामिद—यह भी उपर्युक्त-विधिके अनुसार बनाया जा सकता है। यदि पांशुज कर्बनेतको कर्बन और अमोनियाके साथ पिघलायें तो, बहुत शुद्ध मिल सकता है। इस विधि को 'बीलबी की विधि' कहते हैं:—

पां$_2$ कओ$_3$ + क + २ नोउ$_3$=२ पांकनो + ३ उ$_2$ ओ

पांशुजलोहश्यामिद, पां$_4$ लो (कनो)$_6$, को रक्त तप्त करनेसे भी यह मिल सकता है:—

पां$_4$ लो (कनो)$_6$=४ पांकनो + लो + २ क + नो$_2$

सैन्धक और पांशुज गन्धेत—सै$_2$ ग ओ$_4$, पां$_2$ ग ओ$_4$

सैन्धक गन्धेत—सै$_2$ ग ओ$_4$, लीब्लांक विधिमें इसका वर्णन दिया जा चुका है। यह जलमें घुलनशील है। घोलमेंसे रवे बनानेपर इसके अणुमें स्फटिकीकरण के १० जलाणु, सै$_2$ ग ओ$_4$. १० उ$_2$ ओ, मिल जाते हैं। ऐसी अवस्थामें इसे ग्लौबर-लवण कहते हैं।

सैन्धक गन्धित—सै$_2$ ग ओ$_3$—सैन्धक कर्बनेतके घोलमें गन्धक द्विओषिद प्रवाहित करके संपृक्त करनेसे सैन्धक अर्ध गन्धित सैउ गओ$_3$—बनता है, यह श्वेत पदार्थ है—

सै$_2$ कओ$_3$ + २ गओ$_2$ + उ$_2$ओ

= २सै उ ग ओ$_3$ + कओ$_2$

सैन्धक अर्धगन्धितके संपृक्त घोलमें यदि सैन्धक कर्बनेतकी और मात्रा छोड़ी जाय तो सैन्धक गन्धित बनेगा —

२ सै उ गओ$_3$ + सै$_2$ कओ$_3$=

२स$_2$ गओ$_3$ + उ$_2$ ओ

गन्धितके रवोंमें स्फटिकीकरणके ७ जलाणु होते हैं। इसका घोल क्षारीय होता है। हरिन्, नैलिन् या नोषिकाम्लके प्रभावसे यह ओषदीकृत होकर सैन्धक गन्धेतमें परिणत हो जाता है:—

सै$_2$ गओ$_3$ + नै$_2$ + उ$_2$ ओ=सै$_2$ गओ$_4$ + २ उनै

सैन्धक गन्धकी गन्धेत, सै$_2$ ग$_2$ ओ$_3$ + ५ उ$_2$ ओ सैन्धक गन्धितको गन्धक-पुष्पके साथ उबालनेसे सैन्धक गन्धकी गन्धेत बनता है:—

सै$_2$ गओ$_3$ + ग=सै$_2$ ग$_2$ ओ$_3$

इसके रवोंमें स्फटिकीकरणके पांच जलाणु होते हैं। फोटोग्राफीमें इसका बहुत उपयोग किया जाता है (यह हाइपो नामसे प्रसिद्ध है) क्योंकि यह अपरिवर्त्तित रजत अरुणिद,-नैलिद-हरिद आदिको घुला लेता है। पर चित्र पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस लवणमें गन्धकाम्ल डालनेसे गन्धक द्विओषिदकी गन्ध आवेगी और गन्धक मुक्त हो आवेगा—

सै$_2$ ग$_2$ ओ$_3$ + उ$_2$ गओ$_4$
= सै$_2$ गओ$_4$ + उ$_2$ ओ + ग ओ $_2$ + ग

मुक्त नैलिन्के संसर्गसे इसमें एक उपयोगी प्रक्रिया होती है। नैलिन् स्वयं सैन्धक नैलिद्में परिणत हो जाता है और सैन्धक चतुर्गन्धकेनेत यौगिक बनता है।

२सै$_2$ ग$_2$ ओ$_3$ + नै$_2$=२सैनै + सै$_2$ ग$_4$ ओ$_6$

इस प्रक्रियाका उपयोग किसी नैलिन् घोलकी शक्ति निश्चित करनेमें किया जाता है।

पांशुज गन्धेत—पां$_2$ ग ओ$_4$ —यह पांशुज हरिद्से बनाया जा सकता है। इसका उपयोग खादके रूपमें भी होता है।

पांह + उ$_2$ गओ$_4$=पांउ गओ $_4$ + उह
पांउ गओ$_4$ + पांह=पां$_2$ गओ$_4$ + उह

प्रक्रियामें पहले उदजन गन्धेत बनता है और फिर पांशुज-गन्धेत।

सैन्धक और पांशुज नोषेत, सै नोओ$_3$;पांनोओ$_3$

सैन्धक नोषेत, सैनोओ$_3$—चिलीका शोरा-शोरे को जलमें कई बार घोल कर स्फटिकी करण करनेसे शुद्ध नोषेत प्राप्त हो सकता है। यह जलमें घुलनशील है और नम हवामें रखनेसे पसीजने लगता है। गरम करने पर पहले यह पिघलता है और फिर ओषजन दे देता है—

सै नो ओ $_3$ = सैनो ओ$_2$ + ओ

इसका उपयोग नोषिकाम्लके व्यापार और खादके रूपमें होता है।

सैन्धक नोषित—सै नो ओ$_2$—सैन्धक नोषेत को खूब गरम करनेसे सैन्धक नोषित बनता है। सैन्धक नोषेतमें लोहचूर्ण मिलाकर गरम करनेसे भी यह बन सकता है। लोह ओषजनका एक परमाणु ले लेता है सैन्धकक्षारमें नोषस वाष्पोंके प्रवाहित करनेसे भी यह मिल सकता है।

सैन्धक नोषितका घोल निर्बल अम्लोंके भी डालनेसे (जैसे सिरकाम्ल) विभाजित हो जाता है और भूरी नोषस वाष्पें निकलने लगती हैं।

सैन्धक नोषितके घोलमें पांशुज नैलिद्का घोल डाल कर थोड़ा सा नशास्ताका घोल और सिरकाम्ल डाले तो नीला रंग प्रकट होगा। नोषित और अम्लके संसर्गसे प्रक्रियामें नोषसाम्ल, उनो ओ$_2$ बनता है। पांशुज नैलिद अम्लके साथ उदनैलिकाम्ल देता है। नोषसाम्ल और उदनैलिकाम्लके प्रभावसे नैलिन् उत्पन्न होता है जो नशास्ताको नीला कर देता है।

उनो ओ$_2$ + उनै=नै$_2$ + २ नोओ + उ$_2$ ओ)

पांशुज नोषेत, पां नो ओ$_3$—या शोरा—भारत वर्षमें शोरा का व्यापार बड़ा प्रसिद्ध है। पांशुज हरिद् और सैन्धक नोषितके गरम सम्पृक्त घोलोंके संसर्गसे भी यह व्यापारिक मात्रामें तैयार होता है। घोलको उबालते हैं। सैन्धक हरिद् पृथक् हो जाता है, इसे छान कर अलग कर लेते हैं, और घोलमें पांशुजनोषतके रवे बना लिये जाते हैं।

पांह + सैनो ओ$_3$=सैह + पांनोओ$_3$

बारूद—गोला बारूद बनानेमें शोराका उपयोग किया जाता है। सैन्धक नोषेत नम वायुमें पसीजने लगता है अतः यह इस कार्य्यके लिये उपयुक्त नहीं शोरा, कोयला, और गन्धक चूर्ण निम्न अनुपातमें अलग अलग बारीक़ पीस कर मिलाते हैं:—

शोरा पां नो ओ	७५
कोयला	१४
गन्धक	१०
जल	१
	१००

फुलवाड़ी, आतशबाजी आदिमें भी शोरेका उपयोग किया जाता है।

पांशुज नोषित—पां नो ओ$_2$ यह गुणोंमें सैन्धक नोषितके ही समान है, और इसके बनाने की भी विधि वैसी ही है।

पांशुजम्के लवण नीरंग ज्वालामें गरम करनेसे बैजनी रंग की लौ देते हैं, पर सैन्धकम्के लवण सुनहरे रंग की लौ देते हैं। एक पररौप्यम्-तारको उदहरिकाम्लमें डुबोकर पांशुज या सैन्धक लवणके

चूर्णके संसर्ग लाकर नीरंग ज्वालामें लाकर भिन्न भिन्न लौओं की परीक्षा की जासकती है। पांशुजम्की लौ नीले शीशेमें होकर देखनेसे सैन्धकम् लवणोंकी विद्यमानतामें भी स्पष्ट बैंजनी दिखाई पड़ेगी।

शोणम्, लालम्, और व्योमम् के गुण भी सैन्धकम् और पांशुजम् के समान हैं।

द्वितीय खण्ड

बानजावीन–समुदाय

बानजावीन और उसके लवणजन और नोषोयौगिक

(Benzene & its Halogen and Nitro derivatives)

(ले० श्री० सत्यप्रकाश एम० एस-सी०)

अब तक हमने ऐसे कार्बनिक पदार्थों का वर्णन दिया है जिनके संगठनमें केवल 'खुली शृंखला' (open chain) का उपयोग किया गया है। अब हम 'बन्द शृंखला' (closed chain) के यौगिकोंका वर्णन देंगे। निम्न प्रकारके यौगिक खुली शृंखलाके यौगिक कहलाते हैं :—

—क—क—क—क—क—क—
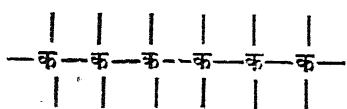
जैसे पंचेन ($क_5उ_{12}$), षठेन आदि अथवा तत्सम्बन्धी मद्य, अम्ल आदि

केलील मद्य

पर यदि इनके यौगिकोंका पहला कर्बन परमाणु एक संयोगशक्ति द्वारा अन्तिम कर्बन परमाणुसे जोड़ दिया जाय तो जो यौगिक बनेगा उसे बन्द शृंखलाका यौगिक कहेंगे। यह उसी प्रकार समझना चाहिये जैसे खुली ज़ंजीरके दो सिरे मिलाकर परस्परमें बांध दिये गये हों।
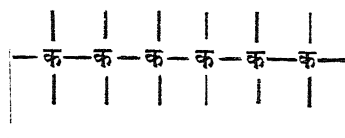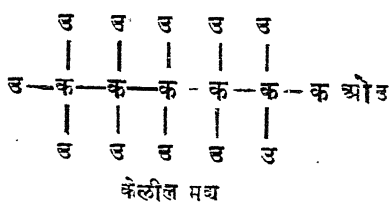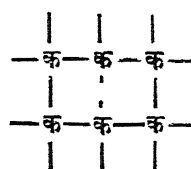
इस प्रकार चक्रपंचेन ($(कउ_2)_5$) को निम्न प्रकार सूचित करेंगे :—
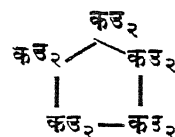
इस यौगिकमें भी कर्बनकी चारों संयोग शक्तियां संपृक्त है, दो संयोग शक्तियोंसे दो उदजन परमाणु संयुक्त हैं और दो से दो अन्य कर्बन परमाणु। पंचेन ($क_5उ_{12}$) में भी कर्बन की सम्पूर्ण संयोगशक्तियां सम्पृक्त रहती हैं—

पंचेन
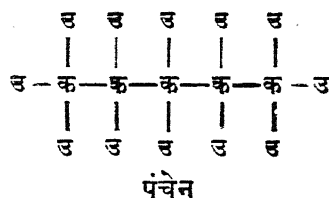
इस उदाहरणसे पता चल जावेगा कि खुली और बन्द शृंखलाके यौगिकोंके संगठनमें क्या भेद है, अब तक जिन उदकर्बनों, मद्यों, अम्लों, शर्कराओं आदि

का वर्णन किया गया है वे सब खुली शृंखलाके यौगिक हैं। अब हम बन्द शृंखलाके कुछ प्रसिद्ध यौगिकोंका वर्णन करेंगे। बानजावीन यौगिक अत्यन्त उपयोगी हैं। रसायनमें इसका इतना विस्तृत व्यवहार है कि बानजावीन समूह नामसे अलगही एक विभाग कर दिया गया है।

बानजावीन ($क_६ उ_६$)

टोलुबालसमसे एक उदकर्बन प्राप्त होता है जिसका नाम टोल्वीन रखा गया है। इसका सूत्र $क_७ उ_८$ निश्चित किया गया है। कड़वे बादामोंके तैलसे एक मद्यानार्द्र निकलता है जो $क_७ उ_६ ओ$ सूत्रसे सूचित किया जा सकता है। इसी प्रकार बानजोन गोंद(Gum Benzoin)से एक अम्ल बानजाविकाम्ल, $क_७ उ_६ ओ_२$ प्राप्त होता है। टोल्वीन उदकर्बनके ओषदीकरणसे जो मद्यानार्द्र बनता है वह बिलकुल वही मद्यानार्द्र है जो कड़वे बादामोंके तैलसे प्राप्त हुआ था और यह मद्यानार्द्र पुनः ओषदीकृत होकर जिस अम्लमें परिणत होता है वह वही अम्ल है जो बानजोन गोंदमें मिला था। इससे स्पष्ट है कि ये तीनों यौगिक परस्परमें सम्बन्धित हैं। इसी प्रकारका सम्बन्ध ज्वलेन, सिरकमद्यानार्द्र और सिरकाम्लमें है।

$क_७ उ_८$	$क_७ उ_६ ओ$	$क_७ उ_६ ओ_२$
टोल्वीन	बानजाव मद्यानार्द्र	बानजाविकाम्ल
$क_२ उ_६$	$क_२ उ_४ ओ$	$क_२ उ_४ ओ_२$
ज्वलेन	सिरकमद्यानार्द्र	सिरकाम्ल

बानजाविकाम्लको सैन्धक-चूनाके साथ स्रवण करनेसे एक यौगिक मिलता है जिसका सूत्र $क_६ उ_६$ ठहराया गया है (सिरकाम्लको सैन्धकक्षार चूना के साथ स्रवण करनेसे दारेन $कउ_४$ मिलता है)

$$क_७ उ_६ ओ_२ = क_६ उ_६ + क ओ_२$$
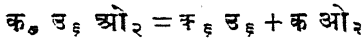
इस $क_६ उ_६$ यौगिक को बानजावीन (benzene) कहते हैं। यह यौगिक बड़ी कठिनतासे ओषदीकृत होता है और ओषदीकृत होने पर केवल कर्बन द्विओषिद और जल देता है, बीचके अन्य यौगिक नहीं प्राप्त होते हैं।

$$२ क_६उ_६ + १५ ओ_२ = १२ कओ_२ + ६ उ_२ ओ$$

यदि साधारण खुली शृंखलाके उदकर्बनोंके समान बानजावीन संपृक्त यौगिक होता तो इसके ६ कर्बन परमाणुओंके लिये १४ उदजन परमाणुओं की आवश्यकता पड़ती। यदि हम इसे असम्पृक्त यौगिक मानते हैं तो इसके ओषदीकरणसे निम्न प्रकार कुछ अम्ल अवश्य प्राप्त होते।

$$...कउ = कउ—कउ... + ओ_२ = ...कओओउ + कओ_२उ.कउ...$$
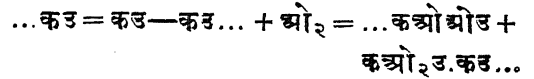
जैसा कि चरपरिकाम्ल, $कउ_२:कउ.कओओउ$ के ओषदीकरणसे कर्बन द्विओषिद और काष्ठिकाम्ल मिलते हैं—

$$कउ_२:कउ.कओओउ + ५ओ = कओ_२ + (कओओउ)_२ + उ_२ओ$$
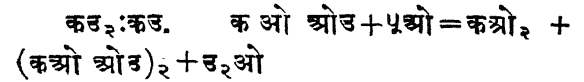
इससे स्पष्ट है कि बानजावीन न तो सम्पृक्त उदकर्बन ही है और न यह खुली शृंखला का असम्पृक्त यौगिक ही है। केकुले नामक विख्यात रसायनज्ञने इसे बन्द शृंखला का यौगिक निर्धारित किया है। वह इसे निम्न प्रकार सूचित करता है।
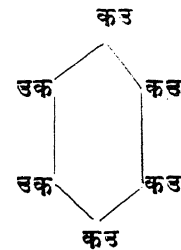
कर्बन के ६ परमाणु उदजन के ६ परमाणुओंसे मिलाकर निम्न प्रकार एक सीधमें रखे जा सकते थे।

—कउ. कउ. कउ. कउ. कउ. कउ.—
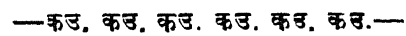
केकुलेने दोनों सिरों को जोड़ कर बन्द शृंखला बना दी है!

कउ. कउ. कउ. कउ. कउ. कउ.
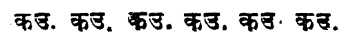
इसेही भली प्रकार चित्रित करनेके लिये षट्भुजी आकृति दी गई है जैसा की ऊपर दिखाया गया है, पर इस षट्भुजी रूपमें कर्बन की तीनही संयोग शक्तियों का उपयोग हुआ है, प्रत्येक कर्बन की एक संयोग शक्ति उद्जनके एक परमाणुसे संयुक्त होनेमें लगी है और दूसरी संयोग शक्ति अन्य कर्बनों के दो परमाणुओंमें संयुक्त है। हम जानते हैं कि कर्बन की चार संयोग शक्तियाँ होती हैं। अब प्रश्न यह है कि बानजावीनमें इसकी चौथी संयोग। शक्ति कहां लुप्त हो गई है।

इस बात पर विचार करते हुए केकुलेने बानजावीन का सङ्ठन निम्न प्रकार प्रदर्शित किया।
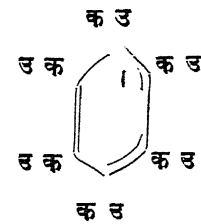
इस प्रकार इस संगठनमें तीन द्वि-बन्धोंकी कल्पना की गई है। आर्म्सट्रंग और बायर रसायनज्ञ इसे निम्न प्रकार सूचित करते हैं—
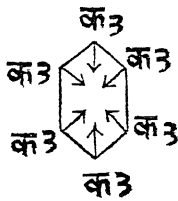
इनका कहना है कि प्रत्येककी चौथी संयोग शक्ति षड्भुज आकृतिके केन्द्रकी ओर आकर्षित है और एकका प्रभाव दूसरेके प्रभावसे शिथिल पड़ जाता है। हम इस बातकी विवेचना यहां नहीं करेंगे कि केकुले और बायरके चित्रोंमें से किसका चित्र अधिक ठीक युक्त और युक्तिसंगत है।

बानजावीनके ६ कर्बनोंकी ६ संख्यायें पड़ी हुई हैं, इनसे अन्य यौगिकोंके संगठन समझनेमें सरलता होती है। नम्बरवार सबकी संख्या इस प्रकार है—

कल्पना करो कि संख्या १ के कर्बनके साथ का संयुक्त उद्जन किसी अन्यमूल म (तत्व या तत्व-समूह) से स्थापित किया गया है। यदि हम इसकी विद्यमानतामें किसी दूसरे उद्जनको किसी मूल म या म' से संस्थापित करें तो हम निम्न प्रकार स्थापित कर सकते हैं—
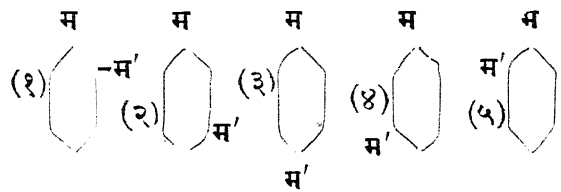
अर्थात् म की अपेक्षासे म' पांच प्रकारसे रखा जा सकता है। १ २; १. ३; १. ४; १. ५; १. ६ कर्बन परमाणुओंमें। इन पांचोंके संगठनके देखनेसे पता चल जावेगा कि वस्तुतः (१) और (५ आकृति एक ही है। म' एकमें दाहिनी ओर है और दूसरीमें बायीं ओर। पर म' और म में एक बराबर ही दूरी का अन्तर है अतः इन दोनोंमें उस प्रकार का भेद नहीं है जैसा आकृति (१) और (२ में है। आकृति (१) में (२)की अपेक्षा म' मूल म से अधिक निकट है। इसी प्रकार आकृति (२) और आकृति ४) में भी कोई भेद नहीं है। दोनोंमें म से म' बराबर दूरी परही स्थित हैं। इस प्रकार केवल तीन मुख्य रूप रह जाते हैं—

पहले प्रकारके यौगिकको पूर्व(ortho)और दूसरी प्रकारके यौगिकको मध्य (meta) और तीसरी प्रकार के यौगिकोंको पर यौगिक (Para) कहते हैं। तीनों प्रकार के यौगिकोंके भिन्न भिन्न गुण, द्रवणांक आदि होते हैं।

बानजावीन—सन् १८८२ वि० में फैरेडे नामक वैज्ञानिकमें इसका अन्वेषण किया था। इसके बनानेकी कई विधियां हैं:—
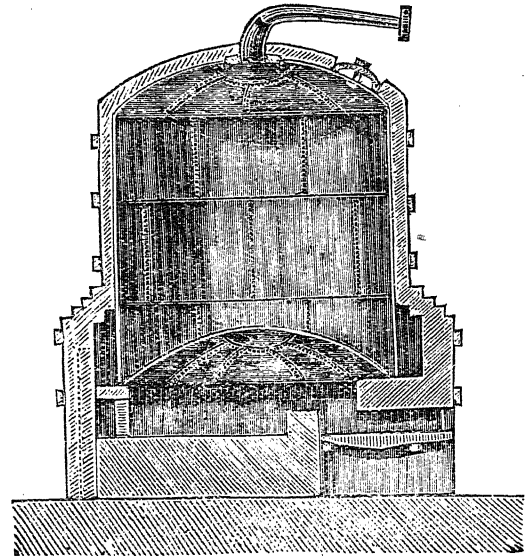
(१) खटिक बानजावेतको बुझे चूनेके साथ स्रवण करनेसे अथवा बानजाविकाम्लको सैन्धक चूना के साथ स्रवण करने से बानजावीन उदकर्बन द्रव के रूपमें प्राप्त होता है।

$$क_६ उ_५ कओ ओ ख' + ख' ओउ = क_६ उ_६ + खकओ_३$$
बानजावीन

[ख'=½ख]

(२) बरथेलो ने सिरकीलिन (क₂ उ₂) को बन्द बर्तन में गरम करके बानजावीन बनाया था।

$$३क_२ उ_२ = क_६ उ_६$$
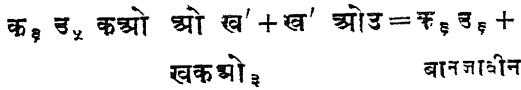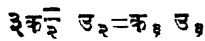
(३) आजकल बानजावीन कोलतार के स्रवणसे व्यापारिक यात्रामें बनायी जाती है। कोलतार द्वारा बानजावीनके अतिरिक्त इसके अन्य सह-यौगिक (homologue) भी प्राप्त होते हैं। मिट्टीके भभकोंमें कोयलेके भञ्जक-स्रवण द्वारा कोलतार और कोल-गैस बनती है। भभके के ऊपर लगी हुई नलियोंमें से कोलगैस तो निकाल ली जाती है और नीचे जो कोल-तार इकट्ठा रह जाता है वह नालियों द्वारा टंकियों (कुण्डों) में बहा लाया जाता है।

इस कोलतार का फिर आंशिक स्रवण किया जाता है भिन्न भिन्न क्वथनांकों पर स्रवित होने वाले अनेक उड़नशील पदार्थ पृथक् हो जाते हैं। इस काम-के लिये ढलवा-लोहेके बड़े बड़े भभके (चित्रदेखो) बनाये जाते हैं जिसमें २० से ३० टन तक कोलतार स्रवित किया जा सकता है। इन भभकोंमें चारों ओर ईंट की जुड़ाई रहती है और नीचेसे आगसे गरम किये जाते हैं ऊपर लगी हुई भभके की नलीसे भिन्न भिन्न तापक्रम पर स्रवित होने वाले भिन्न भिन्न पदार्थ अलग अलग संचकोंमें सञ्चित कर लिये जाते हैं—स्रवित पदार्थों का बहुधा निम्न प्रकार विभाग किया जाता है:—

स्रवित पदार्थ	स्रवण तापक्रम	स्रवित पदार्थों में यौगिक
हलका तैल	१७०° श तक	बानजावीन और सहयौगिक
मध्य या कार्बलिक तैल	२३०° श तक	कार्बलिकाम्ल और नफ्थलीन
भारी तैल	२७०° श तक	इसके अंश बहुधा पृथक् नहीं किये जाते हैं।
अङ्गारिन तैल	२७०° के ऊपर	अङ्गारिन
पिच	भभके में अवशिष्ट	——

'हलका तैल', 'मध्य तैल' और 'भारी तैल' नामसे ही स्पष्ट है कि ये पद इन पदार्थोंके आपेक्षिक घनत्वके अनुसार रखे गये हैं। स्रवण करते समय थोड़ासा स्रवित पदार्थ पानीमें डाल दिया जाता है, अगर यह पानीपर तैरने लगे तो इसे 'हलका तैल' समझना चाहिये ! और अगर यह डूब जाय तो इसे 'भारीतैल' कहेंगे। 'हलके तैल' के स्रवण कर लेनेके पश्चात् थोड़ा सा पदार्थ और पृथक् किया जाता है जिसे मध्यतैल कहते हैं।

कोलतारके १०० भागमें निम्न मात्रामें ये यौगिक विद्यमान हैं :—

बानजावीन और सहयौगिक—	१.४०
कार्बलिकाम्ल	०.२०
नफ्थलीन	४.००
भारी तैल (क्रिओसोट)	२४.००
अङ्गारिन	०.२०
पिच	५५.००
जल	१५.००
	६६.८०

बानजावीन प्राप्त करनेके लिये 'हलके तैल' को लेते हैं और इसका फिर स्रवण करते हैं। जो भाग ८०° और १५०° के बीच में स्रवित होता है उसमें से ही बानजावीन और इसके सहयौगिक निकाले जाते हैं। इसमें नीलिन् पिरीदिन आदि भास्मिक पदार्थ होते हैं जो तीव्र गन्धकाम्ल द्वारा विक्षुब्ध होने पर अम्ल में घुल जाते हैं। अम्लको पृथक् कर लेते हैं और तैलमें फिर सैन्धकक्षार का घोल डालते हैं। इससे लाभ यह है कि मिला हुआ गन्धकाम्ल और कर्बलिकाम्ल इस प्रक्रिया से दूर हो जाते हैं। इसके पश्चात् तैलमें थोड़ासा पानी मिला कर खूब हिलाते हैं और फिर तैल की सतह अलग कर लेते हैं। इस तैल को एक विशेष भभके में स्रवित करते हैं इसमें तैल भाप द्वारा गरम किया जाता है। इस प्रकार आंशिक स्रवण द्वारा ५०–९० प्रति शतक शुद्धता का बानजावीन प्राप्त होता है। ५० प्रति शत शुद्धता का तात्पर्य यह है कि यदि इस द्रवके १०० घ. श. म. १००° श तक गरम किये जायं तो ५० घ. श. म. बानजावीन प्राप्त होगा।

इन बानजावीन का आंशिक स्रवण करके इसके सहयोगी टोल्वीन, वनीन आदि भी पृथक् किये जा सकते हैं। बाजारू बानजावीनमें गन्धादिव्यीन (Thiophene) नामक यौगिक विद्यमान रहता है।

बानजावीन के गुण—यह विचित्र गन्धका नीरंग द्रव है जिसका कथनांक ८०.५° है ५.४ श पर यह ठोस भी हो जाता है। २०° श पर इसका घनत्व ०.८७४ है। यह जलनशील द्रव है। इसमें आग लगने

पर धुएंदार प्रकाशयुक्त लपक उठती है। यह जलमें अनघुल है और पानीकी अपेक्षा कम घनत्व होने के कारण यह पानी पर तैरता है घोलकोंके रूपमें इसका बहुधा उपयोग किया जाता है।

इसके रासायनिक गुण विचित्र हैं। किसीभी ओषदकारक अथवा अवकारक रसका इस पर प्रभाव नहीं पड़ता है पर तीव्र नैलिकाम्ल द्वारा उच्च तापक्रम पर गरम करने से अथवा कज्जार्द्र पर-रौप्यम्‌की विद्यमानता साधारण तापक्रम पर तथा नकलम् चूने की विद्यमानता में १६०° श तापक्रम पर उदजन के साथ गरम करने पर यह अवकृत होकर षड्-उदिद क$_{६}$ उ$_{१२}$ में परिणत हो जाता है।

$$क_{६} उ_{६} + ३उ_{२} = क_{६} उ_{१२}$$

बानजावीन षड्उदिद
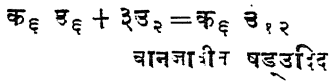
धूपमें बानजावीनको अरुणिन् अथवा हरिन संसर्गमें रखनेसे बानजावीन षड-अरुणित क$_{६}$ उ$_{६}$ रु$_{६}$ अथवा बानजावीन षड्-हरिद क$_{६}$ उ$_{६}$ ह$_{६}$के रवे प्राप्त होते हैं। ये दोनों अस्थायी यौगिक हैं। ये बानजावीन के युक्त-यौगिक हैं।

पर यदि किसी उत्प्रेरक की विद्यमानता में हरिन् या अरुणिन् बानजावीन पर प्रभाव डालें तो बानजावीनके संस्थापित यौगिक, एकहरोबानजावीन, द्विहरो, त्रिहरो-बानजावीन आदि बनेंगे। इस प्रकार बानजावीनके ६ ओ उदजन हरिन् अथवा अरुणिन परमाणुओंसे संस्थापित हो सकते हैं।

$$क_{६} उ_{६} + ह_{२} = क_{६} उ_{५} ह + उह$$

एकहरो बानजावीन

$$क_{६} उ_{५} ह + ह_{२} = क_{६} उ_{४} ह_{२} + उह$$

द्विहरो बानजावीन
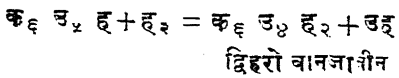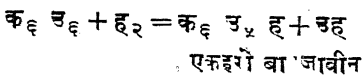
इत्यादि। स्फट-ताम्र मिथुन लोह, चूर्ण आदि पदार्थ इन प्रक्रियाओं में उत्प्रेरक का काम कर सकते हैं।

इस प्रकार नैलिन् का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। हलके नोषिकाम्ल से भी बानजावीन पर कोई प्रक्रिया नहीं होती है पर तीव्र नोषिकाम्लसे जोरोंकी प्रक्रिया होती है और नोषोबानजावीन यौगिक प्राप्त होते हैं जिनका आगे वर्णन दिया जावेगा।

$$क_{६} उ_{६} + उ नो ओ_{३} = क_{६} उ_{५} नो ओ_{२} + उ_{२} ओ$$

नोषोबानजावीन

$$क_{६} उ_{५} नो ओ_{२} + उनो ओ_{३} = क_{६} उ_{४} (नो ओ_{२})_{२} + उ_{२} ओ$$

द्विनोषोबानजावीन
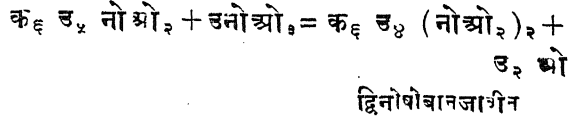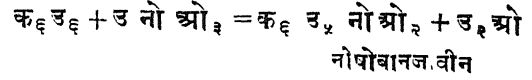
गरम करने पर तीव्र गन्धकाम्लमें बानजावीन घुल जाती है और बानजावीन-गन्धोनिकाम्ल बन जाता है। धूम्रित गन्धकाम्लसे बानजावीन द्विगन्धोनिकाम्ल बनेगा।

$$क_{६} उ_{६} + उ_{२} ग ओ_{४} = क_{६} उ_{५} ग ओ_{३} उ + उ_{२} ओ$$

बानजावीन गन्धोनिकाम्ल

$$क_{६} उ_{५} ग ओ_{३} उ + उ_{२} ग ओ_{४} = क_{६} उ_{४} (ग ओ_{३} उ)_{२} + उ_{२} ओ$$

बानजावीन द्विगन्धोनिकाम्ल
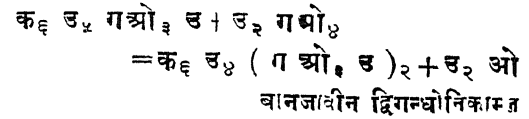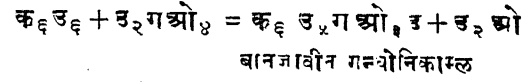
इन सब यौगिकों का आगे विस्तृत वर्णन दिया जावेगा।

टोलवीन (Toluene)

$$क_{६} उ_{५} क उ_{३}$$
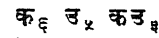
टोलुबालसमके स्रवण करनेसे एक यौगिक मिलता है जिसे टोल्वीन कहते हैं। इसे हम दारील-बानजावीन या दिव्यील दारेन भी कह सकते हैं। कोलतार नफ्थाके स्रवणसे यह प्राप्त होता है जैसा कि पहले कहा जा चुका है इसके गुण बहुधा बानजावीनके गुणोंके समान हैं। यह नीरंग द्रव है जिसमें बानजावीनसे मिलती जुलती गन्ध होती है। इसका क्वथनांक ११०° है और—९८°श तक ठंडा करने पर यह ठोसाकार हो जाता है। यह कहा जा चुका है कि ओषदीकरण करनेसे इसे बानजाविकाम्लमें परिणत कर सकते हैं और यह बानजाविकाम्ल सैन्धकचूनाके साथ स्रवित होने पर बानजावीन देता है अतः टोल्वीन का बानजावीनसे सम्बन्ध स्पष्ट है। इसका संश्लेषण दो विधियों द्वारा मुख्यतः किया जाता है—

फिटिगकी विधि—यह विधि वुर्जकी विधिके समान है जिसका उपयोग पहले बताया जा चुका है। अरुणोबानजावीनमें दारीलनैलिद् मिलाकर शुष्क ज्वलकसे इस घोलको हलका करते हैं और फिर सैन्धकम् के छोटे छोटे टुकड़े काट कर इसमें डाल देते हैं। प्रक्रिया शीघ्रही आरम्भ होजाती है। जब प्रक्रिया समाप्त हो जाय तो द्रवको सैन्धक लवणोंसे पृथक् कर लेते हैं। इस द्रवके आंशिक स्रवणसे टोल्वीन प्राप्त हो जाता है:—

$क_६ उ_५ रु + कउ_३ नै + सै_२ = क_६ उ_५ कउ_३ + सैरु + सैनै$
अरुणो बानजावीन दारीलनैलिद　टोल्वीन

$क_६ उ_५ रु + कउ_३ नै + सै_२ = क_६ उ_५ कउ_३ + सैरु + सैनै$
अरुणो　दारील　टोल्वीन
बानजावीन　नैलिद

फ्रीडिल क्राफ्टकी विधि—यह प्रक्रिया अत्यन्त उपयोगी है और अनेक अन्य संश्लेषणोंमें काम आती है। इसमें अनार्द्र स्फट हरिद का उपयोग किया जाता है। बानजीवनमें स्फट हरिद मिलाया जाता है और इसमें दारील हरिद प्रवाहित करते हैं अथवा मिश्रणमें दारील अरुणिद डाल देते हैं। उदहरिकाम्ल अथवा उदअरुणिकाम्लकी वाष्पें उठने लगती हैं। टोल्वीन बन जाता है। मिश्रणको जलके साथ हिलाते हैं और ऊपरकी सतहको पृथक् कर लेते हैं। इसमेंसे टोल्वीन का आंशिक स्रवण कर लिया जाता है। प्रक्रियामें स्फटहरिद किस प्रकार भाग लेता है यह कहना कठिन है। इसे इस प्रकार समझ सकते हैं।

$क_६ उ_६ + कउ_३ ह [+ स्फह_३] = क_६ उ_५ कउ_३ + उह$

स्फटहरिदके उपयोगसे अन्य अनेक यौगिक बताये जा सकते हैं। यदि दारीलहरिदके स्थानमें ज्वलील-हरिद लें तो ज्वलील-बानजावीन, $क_६ उ_५ क_२ औ_५$ प्राप्त होगा। बानजावीन, सिरकील हरिद और स्फट हरिदके संसर्गसे दिव्यील दारीलकीतोन बनेगा—

$क_६ उ_६ + कउ_३ कओह [+ स्फह_३]$
सिरकीलहरिद

$= क_६ उ_५ कओ कउ_३ + उह$
दिव्यील दारील कीतोन

टोल्वीनको निम्न प्रकार चित्रित किया जा सकता है।—
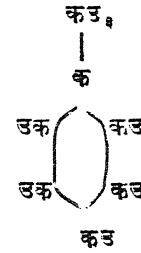
टोल्वीन पर हरिन्का प्रभाव—टोल्वीनके सङ्गठनमें दो भाग हैं—एक तो मुख्य बानजावीन अंग और दूसरा दारील समूहका अंग जिसमें मद्यमज्जिक गुण हैं। बानजावीन अंगको हम बानजावीन केन्द्र (nucleus) कह सकते हैं और दारील अंगको पार्श्व श्रेणी (side chain) औषद्-कारक आदि रसों का पार्श्व श्रेणीपर ही पहले प्रभाव पड़ता है और बान-जावीनकेन्द्रअप्रभावित रह जाता है। हरिन् का टोल्वीन पर दो प्रकारसे प्रभाव पड़ सकता है। (१) या तो यह पार्श्व श्रेणीके उदजनों को पृथक् करके उनका स्थान ग्रहण करले अथवा (२) बानजावीन केन्द्रके उदजनोंके स्थानमें स्थापित हो जाय। पार्श्व श्रेणी प्रभावित होनेपर निम्न यौगिक देगी :—

$क_६ उ_५ कउ_२ ह$; $क_६ उ_५ कउ ह_२$; $क_६ उ_५ कह_३$
बानजील हरिद　बानजल हरिद　बानजनील हरिद
या बानजीलिदिन　या बानजात्रोत्रिहरिद
हरिद

टोल्वीन पर प्रथमतः हरिन का इसी प्रकार प्रभाव पड़ता है पर ठंडे टोल्वीन में यदि हरिन आञ्जनहरिद स्फट-पारद मिथुन, नैलिन् या अन्य वाहक (उत्प्रेरक, (carrier) की विद्यमानतामें प्रवाहित की जाय तो, एक-, द्वि-, त्रि-आदि हरो-टोल्वीन प्राप्त होंगे। एक-हरो टोल्वीन तीन प्रकारके हो सकते हैं,—पूर्व, मध्य और पर—
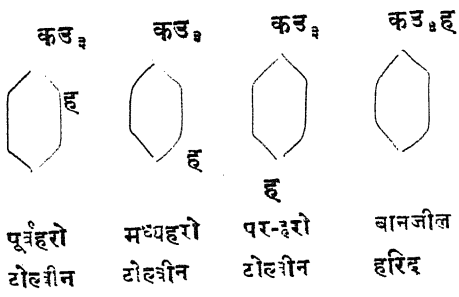
बानजील हरिद भी इन तीनोंके समरूपी है। इसमें हरिन् पार्श्व श्रेणीमें स्थापित किया गया है। इन चारों यौगिकोंके गुणोंमें बहुत भेद है।

वनीन (Xylene)

क₆ उ₄ (कउ₃) ₂
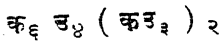
द्विदारील बानजावीन का नाम वनीन है। पूर्व मध्य और पर-भेदसे ये तीन प्रकारके होते हैं। इन तीनोंके क्वथनांक भिन्न भिन्न हैं।

पूर्व वनीन	१४२°श क्वथनांक
मध्य वनीन	१३७°श
पर-वनीन	१३७°श

पूर्व-और पर-अरुणो टोलवीन पर दारील नैलिद और सैन्धकम् का प्रभाव डालनेसे फिटिग की विधिके अनुसार पूर्व-और पर-वनीन बन सकते हैं—

क₆ उ₄ रु (कउ₃)+कउ₃ नै+सै₂ =क₆उ₄ (कउ₃)₂+सैरु+सै नै
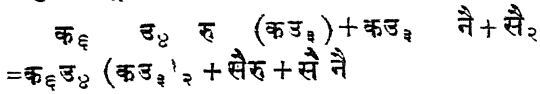
मध्य वनीन इस प्रकार नहीं बनता है। यह त्रिदारील बानजावीन (mesitylene) से बनता है जो ओषदीकृत होकर द्विदारील बानजाविकाम्ल (mesitylenic acid) देता है। इसको सैन्धक-चूनाके साथ स्रवण करनेसे मध्यवनीन मिलता है।
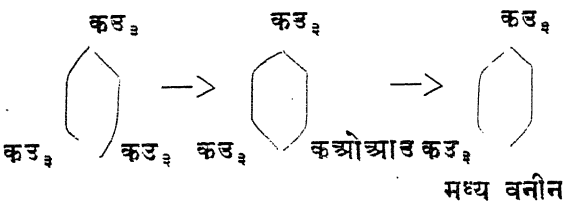
तीनों वनीन ओषदी करण करनेसे एक भस्मिक अथवा द्वि भस्मिक अम्लोंमें परिणत हो जाते हैं
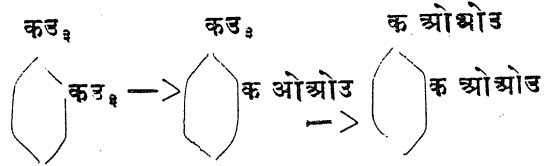
इसी प्रकार मध्य और पर वनीन का भी ओषदीकरण समझना चाहिये। ओषदीकरण करने पर क्रमशः पहले मध्य और पर-टोलिकाम्ल मिलेंगे जो बाद को सम थलिकाम्लमें परिणत हो जायंगे।

सिरकोन का वर्णन करते हुए कहा जा चुका है कि सिरकोन और गन्धकाम्लके संसर्गसे मेसिटिलीन (mesitylene) या १. ३. ५ त्रिदारील बानजावीन बनता है। [१. ३. ५ से तात्पर्य्य यह है कि दारील मूल बानजावीनके १, ३ और ५ के कर्बन परमाणुसे संयुक्त हैं]
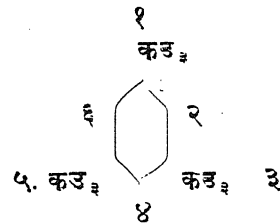
इसके ओषदोकरण करनेके धीरे धीरे तीनों दारील मूल कर्बोषिल मूल क ओ ओउ में परिणत किये जा सकते हैं।

पूर्व, मध्य और पर-यौगिक जानने की पहिचान—किसी यौगिकके यह जाननेके लिये कि यह पूर्व-, मध्य-अथवा पर-में से कौन सा है, कौनरने एक विधि निकाली है। इस विधिमें द्वि-स्थापित यौगिकोंसे त्रिस्थापित यौगिक तैयार करते हैं। उदाहरणके लिये द्विहर बानजावीनसे त्रिहर बानजावीन बनावेंगे। यदि पूर्व-द्विहर बानजावीन लेंगे तो उससे दो प्रकारके

त्रिहर बानजावीन बनेंगे। मध्य द्विहर बानजावीनसे तीन प्रकारके त्रिहरबानजावीन मिल सकेंगे और पर-द्विहरबानजावीनसे केवल एक ही प्रकार का त्रिहर बानजावीन मिलेगा। निम्न चित्रोंसे स्पष्ट है कि इससे अधिक त्रिहर यौगिक किसी अवस्थामें न मिलेंगे—
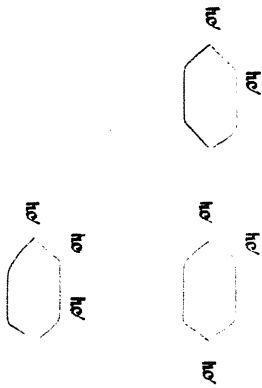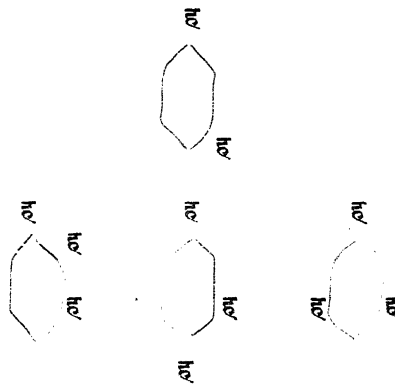
पूर्वसे दो त्रि-मूल यौगिक | मध्य से तीन त्रि-मूल यौगिक | पर-से एक त्रिमूल यौगिक
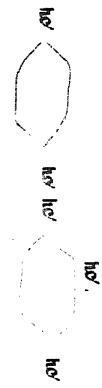
इस प्रकार त्रि-मूल यौगिकों की संख्या निकाल लेनेसे पता चला जावेगा कि यौगिक पूर्व-, मध्य- अथवा पर है।

लवणजन यौगिक

हरो-बानजावीन, हरो-वनीन आदि का निर्देश पहले किया जा चुका है। इनका सूक्ष्म विवरण यहाँ फिर दिया जाता है।

हरो बानजावीन (chlorobenzene) क$_6$ उ$_5$ ह। बानजावीनमें स्फट-पारद मिथुन की विद्यमानतामें हरिन् प्रवाहित करके इसे बनाते हैं। उदहरिकाम्ल गैस निकलने लगती है। जब प्रक्रिया शिथिल हो जाती है तो द्रव को सैन्धक क्षारके साथ हिलाते हैं फिर खटिक हरिद द्वारा सुखाते हैं और अधिक शुद्ध करने के लिये इसको फिर स्रवित करते हैं और १३०°–१३५° श के बीच में स्रवित होने वाले द्रव को संचित कर लेते हैं। यह नारंग द्रव है जिसका क्वथनांक १३२° श और घनत्व १. १२८ है। बानजावीनके समान इसके भी नोषोयौगिक और गन्धोनिक अम्ल बनाये जा सकते हैं। उदौष बानजावीन (दिव्योल) पर स्फुर पंच हरिद के प्रभावसे भी हरो बानजावीन बन सकता है।

$$\text{क}_6\text{उ}_5\text{ओउ} + \text{स्फुह}_5 = \text{क}_6\text{उ}_5\text{ह} + \text{स्फओह}_3 + \text{उह}$$

दिव्योल — हरोबानजावीन
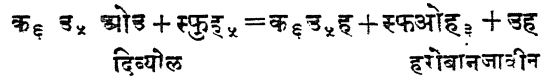
स्फट पारद-मिथुन की विद्यमानतामें अरुणिन्के प्रभावसे बानजावीन अरुणो-बानजावीन में परिणत किया जा सकता है। इसका क्वथनांक १५५ और घनत्व १. ५१७ है। नैलोबानजावीन इस विधि से नहीं बनाया जा सकता है। यह द्वयजीव प्रक्रियासे बनता है जिसका वर्णन आगे दिया जावेगा इसका क्वथनांक १८८° श और घनत्व १. ८६१ है।

हरो टोल्वीन—क$_6$ उ$_4$ (कउ$_3$) ह—टोल्वीन को उत्प्रेरकों (वाहकों) की उपस्थितिमें हरिन् द्वारा प्रभावित करनेसे पूर्व और पर-हरोटोल्वीन बनते हैं। ये नीरंग द्रव हैं। मध्य-हरोटोल्वीन मध्यअमिनो-टोल्वीन क$_6$ उ$_4$ (कउ$_3$) नोउ$_2$, से द्वयजीव प्रक्रिया द्वारा मिल सकता है जिसका आगे वर्णन दिया जावेगा। ये हरोटोल्वीन ओषदीकृत होने पर तत्सम्बन्धी हरोबानजाविकाम्ल देते हैं।

बानजील हरिद्—(Benzyl chloride)

$क_६ उ_५ कउ_२ ह$—उबलते हुए टोलवीनमें शुष्क हरिन् प्रवाहित करनेसे बानजील हरिद बनता है। यह नीरंग द्रव है जिसका क्वथनांक १७९° है। यदि हरिन् देर तक प्रवाहित की जाय तो बानजल हरिद, $क_६ उ_५ कउह_२$ बनता है जिसका क्वथनांक २०९° है। इसके ओषदीकरण से बानजाव मद्यानार्द्र बनाया जाता है जिसका वर्णन आगे दिया जावेगा। थोड़ी देर हरिन् और प्रवाहित करनेमें अन्तिम यौगिक बानजावो त्रिहरिद, $क_६ उ_५ कह_३$ बनता है जिसका क्वथनांक २०९° श है।

लवणजन यौगिकोंके गुण—बहुधा ये नीरंगद्रव (कभी कभी ठोस भी) होते हैं जो जलसे भारी होते हैं। जलमें ये अनघुल हैं। पार्श्व श्रेणीमें स्थापित लवणजन यौगिकोंमें तीक्ष्ण गंध होती है पर बानजावीन केन्द्रमें स्थापित यौगिकोंमें अच्छी सुगन्ध होता है और पार्श्वश्रेणीमें स्थापित यौगिकों की अपेक्षा कहीं अधिक स्थायी होते हैं। पार्श्वश्रेणीके यौगिक मद्यमज्जिक लवणजन यौगिकोंके समान हैं। बानजील-हरिद ज्वलीलहरिदके सामन पांशुनक्षार, अमोनिया या पांशुजश्यामिदसे क्रमश: मद्य, अमिन, और श्यामिद यौगिकमें परिणत हो जाते हैं।

$क_६ उ_५ कउ_२ ह + पां ओउ = क_६ उ_५ कउ_२ ओउ + पांह$ बानजील मद्य

$क_६ उ_५ कउ_२ ह + नोउ_३ = क_६ उ_५ कउ_२ नोउ_२ + उह$ बानजीलामिन

$क_६ उ_५ कउ_२ ह + पां कनो = क_६ उ_५ कउ_२ कनो + पांह$ बानजील श्यामिद
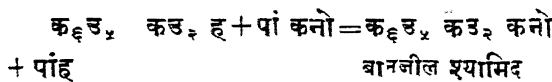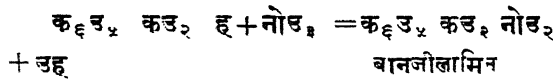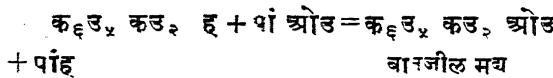
बानजीलहरिदके ओषदीकरणसे बानजाविकाम्ल बनता है पर यह स्मरण रखना चाहिये कि हरो-टोलवीनके ओषदीकरणसे हरो-बानजाविकाम्ल बनेगा। दोनों प्रक्रियाओंमें पार्श्व श्रेणी कर्बोषिल मूलमें परिणत हो जाती है:—
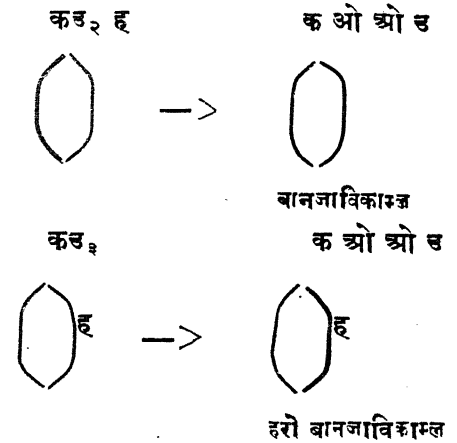
पार्श्व-संस्थापित हरो-यौगिकोंमें और केन्द्र-संस्थापित हरो-यौगिकोंमें यह भेद है।

नोषोयौगिक (Nitro compounds)

यह कहा जा चुका है कि बानजावीन पर नोषिकाम्लकी प्रक्रिया करनेसे नोषोबानजावीन प्राप्त होता है। इसी प्रकार टोल्वीन नोषिकाम्ल द्वारा नोषोटोल्वीनमें परिणत किया जा सकता है। ये प्रक्रियायें १·४ घनत्वके तीव्र नोषिकाम्ल द्वारा तीव्र गन्धकाम्लकी विद्यमानतामें करनी चाहियें। इस प्रकार इन उदकर्बनोंमें एक नोषोमूल लगाया जा सकता है। यदि दो नोषोमूल स्थापित करने हों तो धूम्रित नोषिकाम्ल (१·५ घनत्व) और धूम्रित गन्धकाम्लके साथ देर तक गरम करना पड़ेगा। यहां कुछ उपयोगी नोषोयौगिक दिये जायंगे।

नोषोबानजावीन, $क_६ उ_५ नो ओ_२$—बानजावीनको बर्फमें ठंडा करो और इसमें तीव्रनोषिकाम्ल और तीव्र-गन्धकाम्लका मिश्रण धीरे धीरे डालते जाओ, और मिश्रणको बराबर हिलाते रहो। निम्न प्रक्रियाके अनुसार नोषोबानजावीन बन जावेगा —

$क_६ उ_६ + उ नो ओ_३ = क_६ उ_५ नोओ_२ + उ_२ ओ$ नोषोबानजावीन

मिश्रणको जलकुंडी पर गरम करके प्रक्रियाको पूर्ण करलो। नोषोबानजावीनकी सतह अम्लकी सतह पर तैरने लगेगी। इसे पृथक्कारक कीपसे अलग करलो, नोषोबानजावीन हलका-पीला द्रव है जिसका क्वथनांक २०५°श है। २०° पर इसका घनत्व १·२ है। इसमें कड़वे बादामोंकी सी सुगन्ध होती है।

मध्यद्विनोषोबानजावीन, $क_६ उ_४ (नो ओ_२)_२$— धूम्रित नोषिकाम्ल और तीव्र गन्धकाम्लद्वारा नोषोबानजावीनको प्रभावित करनेसे मध्यद्विनोषोबानजावीन बनता है।

नो ओ₂ + उ नो ओ₃ = नो ओ₂ नो ओ₂ + उ₂ ओ

$क_६ उ_५ नोओ_२ + उनोओ_३ = क_६ उ_४ (नोओ_२)_२ + उ_२ओ$

मध्य-द्विनोषोबानजावीन

नोषोबानजावीनमें अम्ल मिश्रण डालकर जलकुण्डी पर थोड़ी देर तक गरम करते हैं और फिर इसे जलमें उडेल देते हैं। द्विनोषोबानजावीन ठोस हो जाता है जिसका मद्यमें घोलकर स्फटिकीकरण किया जा सकता है। इसके रवे लम्बे नीरंग सूच्याकार होते हैं; जिनका द्रवांक ९०° श है। इसका उपयोग रंग बनानेमें किया जाता है।

नोषो टोल्वीन—पू-और प-, $क_६ उ_४ (कउ_३) नोओ_२$ टोल्वीनको तीव्र नोषिकाम्ल और तीव्रगन्धकाम्लद्वारा प्रभावित करनेसे पूर्व-नोषो टोल्वीन और पर-नोषोटोल्वीन दोनों लगभग बराबर मात्रामें ही बनते हैं। दोनोंके मिश्रणको ठंडा करके दोनों नोषो टोल्वीन पृथक् किये जा सकते हैं क्योंकि पर-नोषो-टोल्वीन साधारण तापक्रम पर ठोस पदार्थ है जिसका द्रवांक ५४° है, लेकिन पूर्व-नोषोटोल्वीन इस तापक्रम पर द्रव है जिसका क्वथनांक २२३° श है नोषोटोल्वीनका और नोषकरण (nitration करनेसे २-४ द्विनोषोटोल्वीन प्राप्त होता है। त्रिनोषोटोल्वीन विस्फुटकारक पदार्थ है।

प-नोषोटोल्वीन द्विनोषोटोल्वीन; त्रिनोषोटोल्वीन

(२) (४) (२—४) (२·४·६)

नोषोयौगिकोंके गुण—कुछ नोषोयौगिकोंको छोड़ कर शेष सब ठोस होते हैं। उदकर्बनोंके नोषोयौगिक नीरंग अथवा पीले होते हैं। ये जलमें अनघुल और जलसे भारी होते हैं। इनमेंसे कुछका वाष्पस्रवण किया जा सकता है। अवकरण करने पर नोषमूल (नोओ₂) अमिनो मूलमें परिणत हो जाता है। इस प्रकार नोषोबानजावीनसे अमिनो बानजावीन अर्थात् नीलिन् मिलता है।

$क_६ उ_५ नो ओ_२ + ३ उ_२ = क_६ उ_५ नोउ_२ + २उ_२ओ$

नोषो बानजावीन नीलिन्

यह अवकरण दस्त-चूर्ण और हैम सिरकाम्ल द्वारा किया जाता है। यदि स्फट-पारद मिथुन द्वारा शिथिलघोलमें नोषोबानजावीनका अवकरण किया जाय तो द्विव्यील उदौषिलामिन मिलेगा—

$क_६ उ_५ नोओ_२ + २उ_२ = क_६ उ_५ नोउ (ओउ) + उ_२ओ$

द्विव्यील उदौषिलामिन

समालोचना

फेफड़ों की परीक्षा—ले० श्री कविराज शिव शरण वर्मा, वैद्यरत्न, प्रकाशक आचार्य धन्वन्तरि मंडल फगवाड़ा कपूरथला स्टेट। पृ० संख्या १७६, मूल्य १॥) छपाइ कागज उत्तम

शरीर विज्ञानके पाठकोंके लिये यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। इसमें फेफड़ोंके निर्माण, रूप, तथा विकार आदि पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक में दो भाग हैं। पहले भाग में फेफड़ों की सीमा, खण्ड, भिन्न भिन्न आकृतिके वृत्त प्रदेश, धड़कन आदि अनेक विषयोंका समावेश है। दूसरा भाग और भी अधिक उपयोगी है श्वासरोग, वायुअवरोध, फेफड़ोंके व्रण फेफड़ोंकी सूजन परिफुफ्फुसौष का अच्छा वर्णन किया गया है। पुस्तक लाभदायक और उपादेय है। इस प्रकार की पुस्तकों का प्रकाशित होना हिन्दी साहित्यके लिये अभिनन्दनीय है। आशा है कि पुस्तकका भली प्रकार प्रचार होगा।

मूत्र परीक्षा—लेखक और प्रकाशक पूर्ववत् पृ० ६१ मूल्य ।।=)

कविराज शिवशरण वर्मा जी की यह भी पुस्तिका अत्यन्त उपयोगी है। पुरातम प्रणालीके वैद्य और नूतन प्रथाके डाक्टर दोनों ही इससे समुचित लाभ उठा सकते हैं। इसमें मूत्रकी भौतिक और रासायनिक परीक्षाओं का स्पष्ट वर्णन किया गया है। मूत्रस्थ शर्कराओं और लवणोंकी परीक्षाके अतिरिक्त रक्त पीव वसा शुक्रकीट आदि पदार्थों की विद्यमानता की परीक्षायें दी गई हैं। पुस्तक छोटी पर अत्यन्त उपयोगी है। उसमें अंग्रेजी शब्द बहुधा तद्रूप व्यवहृत हुए हैं। आशा है कि जनता इसका आदर करेगी।

—सत्यप्रकाश

वैज्ञानिकीय

(ले० श्री अमीचन्द विद्यालंकार)

भिन्न भिन्न जन्तुओं का
नाप परिमाण

बिल्ली	१०२	बन्दर १०४
कौवा	१०६	बैल १०२
कुत्ता	१०२	चीता १०२
गधा	६८	तोता १०६
हाथी	१००	सुअर १०५
लूमड़	१०२	कबूतर १०६
बकरा	१०४	चूहा १०२
मुर्गी	१०८	भेड़ १०४
शशा	१००	सांप ८८
गीदड़	१०१	चिड़िया १०८
मनुष्य	६८.८	शेर ६८.८
		भेड़िया १०५

संसार के सब से लम्बी
१० नदियाँ

नदी	कहाँ गिरती हैं	लम्बाई
एमेजन	एटलान्टिक	४०००
नील	भूमध्यसागर	३५००
यनीसी	आर्कटिक	३२००
यँग्शी	उत्तरी शान्त	३१६०
कोंगो	एटलान्टिक	३०००
लीना	आर्कटिक	३०००
मिसूरी	मिसिसपी नदी	३०००
आमूर	उत्तरी शान्त	३०००
मेकंग	दक्षिणीचीनसमुद्र	२८०२
नाइगर	गिनी की खाड़ी	२६००

वैज्ञानिक परिमाण

(ले० निहालकरण सेठी, डी० एस-सी)

७९—महत्वपूर्ण लहरों की लम्बाइयां

लहरें	हर्ट्ज लहरें	परालाल	लाल	नारंगी	पीला	हरा	आसमानी	कासनी	
लम्बाई	$१०^{११}$—४ × $१०^{७}$	[illegible] × $१०^{३}$ ७७००	६४७०	५८८०	५५००	४९२०	४५५०	३६००	१००

८०—प्रकाशमापन के प्रमाण

प्रकाश प्रभाव की अंग्रेजी इकाई को बत्ती (केण्डिल) कहते हैं। औसतगालीय बत्तीबल प्रकाश स्रोत से प्रत्येक ओर जानेवाले प्रकाशप्रभावों की औसत को कहते हैं। औसत धरातलीय बत्तीबल लैम्प से गुजरते हुए धरा समानान्तर तल पर पड़ने वाले प्रकाश प्रभावों की औसत है।

अंग्रेजी प्रामाणिक बत्ती ह्वेल से निकले मोम की $\frac{7}{8}$ इंच व्यास की मोमबत्ती होती है जो १२० ग्रेन प्रति घंटे के हिसाब से जलती है। परन्तु काममें लाते समय यह प्रमाण सुभीतायुक्त नहीं पाया जाता और अधिकतर १० बत्तीबल वाला पैन्टेन लम्प ही काम में लाया जाता है। ७६० सहस्रांश-मीटर पारे के दबाव और आयतनानुसार ८ भाग प्रति १००० भाग वाष्पवाले वातावरण में जलते हुए १० बत्तीबल वाले पैन्टेन लम्प के प्रकाश का $\frac{१}{१०}$ वां भाग १ बत्तीबल के बराबर समझ लिया जाता हैं इस लम्प का बत्तीबल = १० + ·०६६ (८—वा)—·००८ (७६०—पा)

वा = आयतनानुसार प्रति १००० भाग में वाष्प पारे के पा सहस्रांश मीटर दबाव पर

फ्रांसीसी इकाई को बूजी डेसीमेल कहते हैं। परराष्ट्र के एक वर्ग शतांश मीटर से ठोस भवन ताप क्रम पर निकलते हुए प्रकाश का यह बीसवां भाग होता है इस इकाई का काम में लाना बहुत कठिन है। अधिकतर काम सरसों के तैल के विशेष लैम्प (कारसेल लम्प) से लिया जाता है।

जर्मन इकाई ७६० सहस्रांश मीटर पारे के दबाव और ८८ प्रति १००० भाग वाष्प वाले वातावरण में केलील सिरकेत (अम ईल असीटेट) जलाने वाला हेफनर लम्प से निकला प्रकाश है।

एक अंग्रेजी बत्तीबल = १ फ्रांसीसी बूजी डेसीमेल = १०/९ जर्मन हेफनर इकाई = ·१०४ कारसेल इकाई।

प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि प्रकाश और विद्युत लहरें एक ही हैं इस कारण दोनों लहरों का वेग समान है।

(क) प्रकाशका वेग भिन्नभिन्न पदार्थों में

पदार्थ	वेग
शून्य	२.९९८६ × १०^१० श॰ म॰/सै
पानी	२.२५४६ ”
दारीलमद्य	२. ५४६ ”
ज्वलोलमद्य	२.२०१६ ”
केलीलमद्य	२.१२६६ ”
तैल	२.०८२३ ”
हवा	२.९९७७ ”

(ख)—आवर्त्तन संख्या $\left(\mu = \frac{\text{शून्य में वेग}}{\text{पदार्थ वेग}}\right)$ यह प्रत्येक पदार्थ के लिये भिन्न भिन्न लहरों के वास्ते भिन्न है।

पदार्थ	संख्या (μ ना) λ=५८९३ × १०^-८ श. म.
शून्य	१
पानी	१.३३
दारोलमद्य	१.३३
ज्वलीलमद्य	१.३६
केलीलमद्य	१.४१
तैल	१.४४
हवा	१.०००३

(ग) विस्तरणबल (ω)

(Dispersive power)

$\omega = \frac{\mu \text{ला}_\text{१} - \mu \text{आ}}{\text{ना} - १}$, यहां μला$_\text{१}$ यह लहर (६५६३) के लिए आर्वजन संख्या है तथा μआ और μना यह लहर (४८६२) और लहर (५८६३) के लिए है।

वस्तु	ω
कांच	०.०१५२
नमक	०.०२३३
मद्यसार	०.०१७१
पानी	०.०१८०

(घ)—लहरोंकी लम्बाई

प्रत्येक वस्तु जब प्रकाश देने की स्थिति में रहती है तब एक विशेष प्रकार की लहरें पैदा करती है यह लहरें किरण दर्शक नामक यंत्र से निश्चित की जाती हैं। यह लहरें प्रत्येक वस्तु के लिए बहुसंख्या होती हैं और किसी किसी वस्तु के लिये तो इतनी नजदीक नजदीक होती है कि किरण दर्शक के द्वारा एक पट्टा ही विद्यमान दीखता है (Continuous) इस यंत्र द्वारा अगर सूर्य के प्रकाश का निदान किया जाय तो एक सुन्दर रंगीन पट्टा दिखाई देता है और इस पट्टे में लाल सिरे से कासनी तक और इधर उधर काली लकीरें भी दिखाई देती हैं, इसको शोषण रेखायें नाम देना उचित (absorptionlin) यह लकीरें फ्रानहाफर साहब ने पहिले देखी अतएव इनका नाम फ्रनहाफर लकीरें है। मुख्य मुख्य फ्रानहाफर लकीरें के नीचे लहर—लंबाई दी गई है।

लकीर का नाम		किस द्रव्य के कारण पैदा हुई	लहर की लंबाई
ला$_१$	A	ओषजन	७६६१ $\times$ १०$^{-८}$ श. म.
ला$_२$	B	"	६८६७.३ "
ला$_३$	C	उद्जन	६६२.८ "
ना$_१$	D_1	सैन्धकम्	५८९५.९ "
ना$_२$	D_2	"	५८८९.९ "
ह	E	लोह	५२६९.६ "
आ	F	उद्जन	४८६१.४ "
का$_१$	G	लोह	४३०७.९ "
का$_२$	H	खटिक	३९६८.४ "
का$_३$	K	"	३९३३.६ "
का$_४$	L	लोह-कर्बन	३८२०.४ "
का$_५$	M	लोह	३७१९.९ "
उ का$_१$	N	"	३५८१.२ "
उका$_२$ ओ	O	"	३४४०.६ } " ३४४१.० }

८१—दर्पण बनाना

इस काम के लिये निम्न पदार्थों के १०% घोल बनाओ—(१) शुद्ध रजतनोषेत रनोओ$_3$ (२) शुद्ध पांशुजक्षार (३) अन्नशर्करा और (४) अमोनिया (९०% जल, ०. ८८० आपे० घ० का १०% अमोनिया)। शक्कर के घोल में १/२% शुद्ध नोषिकाम्ल और १०% मद्य डालो। कुछ देर पहले का तैयार रखा हुआ शक्कर का घोल अधिक उपयोगी होता है। रजतनोषेत का १% घोल भी बनाओ। इन सब घोलों में स्रवितजल का उपयोग करना चाहिये।

लगभग १२ इंच लम्बा दर्पण बनाने के लिये ४०० घ. श. म. रजतनोषेत घोल लो और इसमें तीव्र अमोनिया डालो, ऐसा करने से भूरा अवक्षेप मिलेगा। अमोनिया तब तक डालते जाओ जब तक यह अवक्षेप घुल न जाय। क़रीब क़रीब जब अवक्षेप घुल जाय तब १०% अमोनिया डालकर घोल को स्वच्छ करलो। अब इसमें १% रजतनोषेत का घोल तब तक डालो जब तक घोल का रंग हलका भूरा न हो जाय। यह रंग हलका ही रहना चाहिये। स्रवितजल डालकर घोल का आयतन १५०० घ. श. म. कर लो।

शीशेको अम्लसे भली प्रकार धोलो, और इसे स्रवितजल की थाली में रखो।

इतनी विधि के उपरान्त २०० घ. श. म. शक्करके घोलको ५०० घ. श. म. पानी में मिलाओ, और इसे रजत पांशुजघोलमें डालकर अच्छी प्रकार हिलाओ और इसे स्वच्छ पोर्सलिन की थाली में रखो। स्रवितजलमें से शीशेको बाहर निकालकर इस घोलमें मुँह नीचा करके रखदो। शीशा सावधानी से रखना चाहिये जिसके उसके साथ वायुके बुलबुले न चले आवें।

द्रव का रंग पहले हलका भूरा था पर धीरे धीरे यह काला पड़ जायगा। चार पांच मिनट में ही शीशे पर चांदी की पतली तह जम जायगी। धीरे धीरे यह तह मोटी होती जायगी। २० मिनट या आधे घंटे में दर्पण ठीक बन जायगा। इस समय घोल का रंग पीला भूरा हो जायगा। १८°श का तापक्रम चांदी चढ़ानेके लिये सर्वोत्तम है।

दर्पणको बाहर निकाल लो और इस स्रवितजल से धोओ और टेढ़ा करके इसे एक किनारे पर खड़ा कर दो। लगभग १२ घंटे में यह सूख जावेगा।

इन सब कामों में चीनी मिट्टी, पोर्सलिन या कांचके पात्रों का उपयोग करना चाहिये।

नोट—रजत-पांशुज घोल दो घंटे से अधिक नहीं रखा जा सकता है। जो भी कुछ बचा हुआ घोल हो उसमें उदहरिकाम्ल डालकर रजतहरिद् अवक्षेपित कर लेना चाहिये। यदि १०-१२ घंटे तक रजतपांशुज घोल रख छोड़ा जायगा तो इसकी सतह पर काला चूर्ण जम जायगा जो कि विस्फुटक पदार्थ है। इससे पात्र के चटक जाने या टूट जानेकी सम्भावना है।

८२—बाधायें

(Resistances)

धातु और धातु-संकर

शुद्ध धातुओं की बाधा करीब करीब केल्विन तापक्रम के साथ साथ घटती बढ़ती है और इसी माप के शून्य के आसपास कहीं बिल्कुल गायब हो जाना चाहिये परन्तु धातु संकरों के लिये यह नियम लागू नहीं है।

धातु

धातु	तापक्रम	विशिष्टबाधा	धातु	तापक्रम	विशिष्टबाधा
	श°	१०−६			
आञ्जनम्	१५	४०.५	दस्तम्	१००	७.९
इन्द्रम्	१८	५.३	नकलम्	−१६०	५.९
ओड्रम्	१८	६.०	" { ९७°/० न }	१८	११.८
			" { ९७°/० न }	१००	१५.७
कोबल्टम्	२०	९.७१	परर्रौप्यम्	−२०३	२.४
खटिकम्	२०	१०.५	"	१८	११.०
तन्तालम्	१८	१४.६	"	१००	१४.०
ताम्रम् आकृष्ट	−१६०	०.४९	पारदम्	०	९४.०७
"	१८	१.७८	"	२०	९५.७६
"	१००	२.३७	पांशुजम्	०	६.६४
" निर्वाप्त	१८	१.५९	पैलादम्	१८	१०.७
थलम्	२०	२१	"	१००	१३.८
थैलम्	०	१८.६	मगनीसम्	०	४.३५
थोरम्	१५	४०.१	रजतम् ९९.९°/०	−१६०	०.५६
दस्तम्	−१६०	२.२	"	१८	१.६६
"	१८	६.१	"	१००	२.१३

धातु	तापक्रम	विशिष्टबाधा	धातु	तापक्रम	विशिष्टबाधा
लोहम्	१८	–६.१५	"	१८	७.५४
"	१००	१६.८	"	००	६.८२
पिटवा	–१६०	५.४	सीसम्	–१६०	७.४३
" "	१८	१.३६	"	१८	२०.८
" "	१००	१८.८	"	१००	२७.७
इस्पात	१८	१६.६	सुनागम्	२५	४.१
" "	१००	२५.६	सैन्धकम्	०	२४.७४
वङ्गम्	–१६०	३.५	स्त्रंशम्	२०	२५
"	१८	११.३	स्फटम्	१६०	०.८१
"	१००	१५.३	"	१८	२.६४
विशद	१८	११६.०	"	१००	४.१३
"	१००	१६०.३	स्वर्णम्	–१८३	०.६८
वुल्फ्रामम्	२५	५.०	"	१८	२.८२
शोणम्	०	८.४	"	१००	३.११
संदस्तम्	–१६०	२.७२			

क्रमशः

सूर्य-सिद्धान्त

ले० श्री महाबीरप्रसाद श्री वास्तव बी० एस-सी० एल टी० विशारद

गतांक से आगे

संस्कृत, लैटिन और अंग्रेजी सभी नामों के एक ही अर्थ हैं परन्तु *यूनानी नामों के अक्षरों में भी समानता पायी जाती है जिससे जान पड़ता है कि इनकी उत्पत्ति एक ही देश में हुई है। वह देश चाहे भारतवर्ष हो या यूनान अथवा कोई अन्य देश जिससे इन दोनों देशों ने लिया हो। यह बात भाषा-तत्व-विशारदों से ही स्पष्ट हो सकती है कि इस एकता का क्या कारण है। फलित ज्योतिष के और भी शब्द ऐसे हैं जिनके संस्कृत, अरबी और यूनानी नामों में समता है। परन्तु इस विषय पर यहां तुलनात्मक विचार नहीं किया जायगा क्योंकि इसकी सामग्री इस समय दुर्लभ है। यदि सुविधा हुई तो भूमिका में यह विषय फिर उठाया जायगा।

इस अध्यायमें जिन नक्षत्रोंकी चर्चा हुई है उनकी पहचान के लिए यह आवश्यक है कि उनके चित्र दिये जांय। इसलिए सौर ज्येष्ठ, भाद्रपद, मार्गशीर्ष और फाल्गुन मासोंके आकाश-चित्र † दिये जाते हैं। इन चित्रोंमें तारोंके यूनानी नाम नहीं दिये गये हैं इसलिए योग तारोंके पहचाननेमें कुछ कठिनाई पड़ सकती है परन्तु नक्षत्रों अर्थात् तारा-समूहों और उनकी स्थितिके समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती। इन चित्रोंमें केवल वही तारे नहीं दिये गये हैं जिनकी चर्चा इस अध्यायमें आयी है वरन् आकाशके अन्य प्रधान नक्षत्र समूहों के भी स्थान दिखलाये गये हैं। इनमें से जिनकी चर्चा प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें आयी है उनके नाम संस्कृत ग्रन्थों से ही लिये गये हैं परन्तु जिनकी चर्चा प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं है उनके नाम वही रखे गये हैं जो आजकल अङ्गरेजी ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं अथवा इनके हिन्दी के समानार्थ-सूचक शब्द बनाये गये हैं। जैसे Cassiopea के लिए काश्यप मंडल, Cepheus के लिए सिफियस, Draco के लिए अजगर, Leporis के लिए शशक इत्यादि। आचार्य वेंकटेश बापू केतकरने अपने ज्योतिर्गणितके पृष्ट ३२४में कई प्रधान तारोंके नाम प्रसिद्ध ऋषियों और देवताओं के नाम पर रखे हैं जैसे कराव, कुबेर, रुद्र, यम, पराशर इत्यादि। परन्तु ये नाम इस चित्र में नहीं दिये गये हैं क्योंकि अभी ये किसी सभा द्वारा स्थिर नहीं किये गये हैं इस लिए पाठकों को तभी सुविधा होगी जब वही नाम दिये जांय जो संसार के साहित्य में बहुत प्रसिद्धि पा चुके हैं।

इन चित्रों में आकाश के वह दृश्य दिखलाये गये हैं जो २५ अक्षांश के सब स्थानों से चित्रों में बतलाये हुए महीनों में संध्या के ८ बजे से १० बजे तक देखे जा सकते हैं। महीने का

* खेद है कि यूनानी अक्षरों के टाइपके अभावसे यूनानी नाम नहीं दिये गये।

† संवत १९७८ विक्रमीय के कार्तिक माससे संवत १९७९ के भाद्रपद मास तक की मर्यादाके लिये जब वह काशीके ज्ञानमण्डलसे प्रकाशित होती थी, उसके सम्पादक बाबू सम्पूर्णानन्दजी की इच्छासे दस मासके आकाशचित्र इसी लेखक द्वारा बनाये गये थे। उन्हींसे चार चित्र चुनकर दिये जाते हैं। इनमें उस समय के मंगल, गुरु और शनि ग्रहों के चित्र भी यथा स्थान दिये गये थे, जो ब्लाक से हट नहीं सकते इसलिये पाठकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि वे ग्रह अब वहां नहीं देख पड़ेंगे क्योंकि ग्रहों के स्थान बदलते रहते हैं तारों की तरह एक से नहीं रहते। इन ब्लाकों के देने में ज्ञानमंडल के संचालक बाबू शिवप्रसाद गुप्तजीने जो उदारता दिखलाई है उसके लिए विज्ञान-परिषद और लेखक दोनों गुप्तजी के ऋणी हैं।

आरम्भ संक्रान्ति के प्राय: दूसरे दिन से माना गया है क्योंकि चांद्रमास के अनुसार बनाया हुआ चित्र एक महीने से अधिक काम नहीं दे सकता जब कि संक्रान्ति के हिसाब से बनाया हुआ चित्र सैकड़ों वर्ष तक काम में आ सकता है। संक्रान्ति का विचार भी आजकल तीन तरह से किया जाता है। यहाँ सूर्यसिद्धान्त की रीति से संक्रान्ति का विचार किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए यह बतलाना आवश्यक जान पड़ता है कि कौन संक्रान्ति अङ्गरेजी महीने की किस तारीख को पड़ती है। इन चार चित्रों से वर्ष के बारहों महीनों में कैसे काम लिया जा सकता है उसके लिए भी कुछ बातें अगले दो पृष्ठों की सारणी में दे दी जाती हैं जिसकी विधि आगे बतलाई जायगी।

ऊपर जो तीन तीन महीने एक साथ दिखलाये गये हैं उसका अर्थ यह है कि उन तीन महीनों की पहली तारीखको बीचवाले महीने का आकाश-चित्र ६ठें स्तम्भ में बतलाये हुए समय पर देखा जा सकता है। अथवा यों कहिये कि मोटे अक्षरों में बतलाये हुए महीने का आकाश-चित्र इस महीने के आगे पीछेवाले महीनोंकी १ली तारीखको ६ठें स्तम्भमें बतलाये हुए समय पर देखा जा सकता है।

इस सारणीमें केवल यह बतलाया गया है कि महीनेकी १ ली तारीखको कौन आकाश चित्र किस समय देखना चाहिये यदि महीनेकी किसी और तारीखको आकाश-चित्रसे काम लेना हो तो यह ध्यानमें रखना चाहिये कि जो दृश्य महीनेकी १ ली तारीखको १० बजे देख पड़ता है वही दृश्य २री तारीखको दस बजनेसे ४ मिनट पहले, ३री तारीखको दस बजनेसे ४ × २=८ मिनट पहले, एक सप्ताह के बाद अर्थात् ८ वीं तारीखको ४ × ७ = २८ मिनट पहले और १५ दिनके बाद १६ तारीखको १५ × ४ = ६० मिनट या १घंटा पहले अर्थात् ९ बजे देख पड़ेगा। इसका कारण यह है कि पृथ्वी दिन रात भरमें १ अंश सूर्यकी परिक्रमा करनेमें आगे बढ़ती है जिससे सूर्य तारोंके मध्य पूरबकी ओर एक अंश खसकता हुआ देख पड़ता है। इसलिये सूर्यको याम्योत्तर वृत्तपर आनेमें प्रतिदिन ४ मिनटकी देर हो जाती है अथवा सूर्यका विषुवांश प्रति दिन प्राय: ४ मिनट बढ़ता जाता है। परन्तु आकाश-चित्र जिस नाक्षत्र-कालका बनाया गया है वह स्थिर है इसलिये मध्याह्नसे जितने समय पर आकाश किसी दिन देख पड़ता है उससे ४ मिनट पहले ही दूसरे दिन देख पड़ता है (देखो पृष्ठ ४६३-४६६)। सीधा नियम यह है कि मध्याह्नके सूर्यके विषुवांश से जितना पहले या पीछे आकाश चित्रका नाक्षत्र-काल है मध्याह्नसे उतना ही पहले या पीछे आकाश-चित्रमें बतलाये गये दृश्य आकाशमें देख पड़ते हैं। जैसे वैशाखकी १ ली तारीखको मध्याह्नकालीन सूर्यका विषुवांश १ घण्टा २६ मिनटके लगभग होता है और ज्येष्ठके आकाश चित्रका नाक्षत्रकाल १३ घंटा ३० मिनट है अर्थात् मध्याह्न कालीन विषुवांशसे १२ घण्टा १ मिनट पीछे है इसलिये वैशाखकी १ ली तारीखको ज्येष्ठका आकाश चित्र रातके १२ बजकर १ मिनट पर देख पड़ेगा। परन्तु ६ठें स्तम्भमें ११

सौर मास	किस संक्रान्ति से आरम्भ होता है	उस दिनकी अङ्गरेजी तारीख जिस दिन सौर मास की पहली तारीख मानी गयी है	सौर मासकी १ली तारीखके मध्याह्न कालका सूर्य का विषुवांश*		नाक्षत्रकाल† जिसका आकाश चित्र बनाया गया है		सौरमास की १ली तारीखको आकाश चित्र देखने का समय धूप-घड़ीके अनुसार मध्याह्नोपरान्त		सौरमास की १ली तारीख का काल-समीकरण
			घन्टा	मिनट	घन्टा	मिनट	घन्टा	मिनट	
वैशाख	मेष	१४ अप्रेल	१	२९			११	५९	
ज्येष्ठ	बृष	१५ मई	३	२७	१३	३०	१०	१	
आषाढ़	मिथुन	१५ जून	५	३३			७	५६	
श्रावण	कर्क	१७ जुलाई	७	४५			११	४३	
भाद्रपद	सिंह	१७ अगस्त	९	४६	१९	३०	९	४२	
आश्विन	कन्या	१७ सितम्बर	११	३८			७	५१	
कार्तिक	तुला	१८ अक्टूबर	१३	३१			११	५७	
मार्गशीर्ष	वृश्चिक	१७ नवम्बर	१५	२९	१	३०	९	५९	
पौष	धनु	१६ दिसम्बर	१७	३४			७	५५	
माघ	मकर	१४ जनवरी	१९	४२			११	४६	
फालगुन	कुम्भ	१३ फरवरी	२१	४६	७	३०	९	४३	
चैत्र	मीन	१५ मार्च	२३	३९			७	५०	

* मध्याह्नकालमें जो सूर्यका विषुवांश होता है वही मध्याह्न का नाक्षत्रकाल भी होता है (देखो पृष्ठ ४०६ पाद टिप्पणी) । यह १९८५ विक्रमीय का प्रयागके मध्याह्नकालका विषुवांश है । यह प्रतिवर्ष एक एक मिनट कम होता जाता है परन्तु ४ वर्ष के बाद प्रायः वही फिर हो जाता है । परन्तु यह अन्तर नगण्य है ।

† नाक्षत्र काल नाक्षत्र-घटिका-यन्त्र से जाना जाता है और जिस समय बसन्त-सम्पात-विन्दु याम्योत्तरवृत्त पर जाता है उस समय नाक्षत्र दिन का आरम्भ होता है (देखो पृष्ठ ४९३-४९४)

बंज कर ५६ मिनट बतलाया गया है इसका कारण यह है कि १२ घन्टा १ मिनट नाक्षत्र-काल में है और ११ घन्टा ५६ मिनट धूपघड़ीके अनुसार सावन-कालमें है। क्योंकि यह बतलाया जा चुका है कि सावन दिन नाक्षत्र दिनसे ४ मिनटके लगभग बड़ा होता है (देखो पृष्ठ ४६३-४६६)। इस लिये नाक्षत्र-कालका ६ घण्टा सावन-कालके ५ घण्टा ५६ मिनटके समान होता है।

इस नियमके अनुसार यदि आप माघ महीनेकी १ली तारीखको एक ही रातमें आकाशके कुल तारोंको देखना चाहें तो सहज ही देख सकते हैं। इस तारीखको बम्बई और जगन्नाथ पुरीको मिलानेवाली रेखाके उत्तरके प्रान्तोंमें अर्थात् सारे उत्तर भारतमें सूर्य साढ़े पांच बजेके पहले अस्त होता है। इसलिये ६ बजे संध्याके समय आकाशके तारे अच्छी तरह दिखाई पड़ने लगते हैं। इस तारीखको मध्याह्नकालीन सूर्यका विषुवांश १६ घण्टा ४२ मिनट होता है इसलिये मध्याह्न से ६ घन्टा पीछेका नाक्षात्र काल हुआ १६ घण्टा ४२ मिनट + ६ घण्टा = २५ घन्टा ४२ मिनट अथवा १ घन्टा ४२ मिनट जो १ घन्टा ३० मिनटके लगभग है। इस लिये माघ की १ली तारीख को १ घण्टा ३० मिनट वाले नाक्षत्रकाल का आकाश चित्र अर्थात् मार्गशीर्षका आकाश चित्र ६ बजे संध्या के समय देखा जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आप श्रवणसे लेकर पुनर्वसु तक के १३ नक्षत्रों को अथवा धनिष्ठा से लेकर पुनर्वसु तक के १२ नक्षत्रों को सहज ही पहचान सकते हैं। यदि इससे ६ घंटा पीछे १२ बजे रात को आकाश देखें तो उस समय का नाक्षात्रकाल ७ घंटा ४२ मिनटके लगभग होगा जब कि फाल्गुन मासका आकाश-चित्र आपके काममें आ सकता है क्योंकि फाल्गुन मास का आकाश चित्र उस समय का है जब नाक्षत्र काल ७ घंटा ३० मिनट होता है। इस चित्र से आपको अश्विनीसे लेकर हस्त नक्षत्र तक की पहचान सहज ही हो सकती है। इसी प्रकार यदि आप इसी रात को ६ बजे प्रातः-काल के लगभग अथवा १०, १२ मिनट और पहले ही आकाश देखें तो ज्येष्ठ का आकाश चित्र काम दे सकता है क्योंकि ६ बजे प्रातःकालका नाक्षत्रकाल १३ घंटा ४० मिनटके लगभग होगा और इससे १२, १३ मिनट पहले का आकाश-चित्र १३ घंटा ३० मिनट के नाक्षत्रकाल के समय का होगा। इस आकाश-चित्रसे आप पुनर्वसु से लेकर मूल या पूर्वाषाढ़ तकके तारे देख सकते हैं। इसी प्रकार यह भी हिसाब लगाया जा सकता है कि किसी और रात को किस समय किस मास के आकाश चित्र काम दे सकते हैं।

चित्रका साधारण वर्णन—चित्रमें जो गोल रेखा खींची हुई है वह २५ अक्षांश का क्षितिज है इसलिए प्रयाग या काशीके क्षितिजसे प्रायः मिलता है। केन्द्र में धन का एक चिह्न इस प्रकार + है। इससे आकाशका वह बिन्दु प्रकट होता है जो २५ अक्षांश पर सिरके ठीक ऊपर होता है। इसे खस्वस्तिक या खमध्य कहते हैं। गोल रेखाके पास उत्तर, दक्षिण, पूरब, पच्छिम तथा इनके बीच की दिशाएं दिखलाई गयी हैं। उत्तरसे दक्षिण तक जो सीधी रेखा देख पड़ती है वह याम्योत्तरवृत्त है। मध्याह्न-कालमें सूर्य इसी रेखा पर रहता है। पूरबसे पच्छिम तक जो टेढ़ी रेखा देख पड़ती है वह विषुवद्‌वृत्त है। वसंत-सम्पात और शरद्-संपात के दिन सूर्य इसी पर देख पड़ता है और ठीक पूर्व में उदय तथा ठीक पच्छिम में अस्त होता है। विषुवद्‌वृत्त को काटती हुई एक दूसरी रेखा भी है जिसे क्रान्तिवृत्त कहते

हैं। सूर्य इसी पर प्रतिदिन चलता हुआ देख पड़ता है। यथार्थ में यह हमारी पृथ्वीका मार्ग है जिसपर चलती हुई यह वर्ष भर में सूर्य की एक परिक्रमा कर लेती है। यह मार्ग बड़े महत्वका है। चंद्रमा और ग्रह इसी के आसपास आकाश में चक्कर लगाते हुए देख पड़ते हैं। क्रान्तिवृत्त २७ समान भागों में बांटा गया है जिन्हें नक्षत्र कहते हैं। मार्गशीर्ष के आकाश चित्रमें नक्षत्रोंके नाम भी दे दिये गये हैं परन्तु अन्य चित्रों में नक्षत्रों की केवल क्रम संख्या दी गयी है। जैसे क्रान्ति वृत्तपर जहां १ लिखा है वहां १ ला नक्षत्र अश्विनीका अन्त होता है, जहां ५ लिखा है वहां ५ वां नक्षत्र मृगशिरा समाप्त होता है, इत्यादि। क्रान्तिवृत्त पर जहां छोटेसे वृत्तके भीतर चिह्न बना हुआ है वहीं सूर्य सिद्धान्त के अनुसार आजकल रेवती नक्षत्रका अन्त और अश्विनी नक्षत्रका आरम्भ समझा जाता है। क्रान्ति वृत्त, विषुवद्‌वृत्त और याम्योत्तरवृत्त की रेखाएं आकाशमें देख नहीं पड़ती हैं। इनकी कल्पना ज्योतिषियोंने सुविधा के लिए की है।

वैसे तो निर्मल आकाशमें जब अन्धेरी रात हो अनगिनत तारे देख पड़ते हैं परन्तु इन चित्रोंमें केवल वही दिखलाये गये हैं जो चांदनी रात में भी देखे जा सकते हैं। आकार का परिचय कराने के लिये कुछ ऐसे तारे भी ले लिये गये हैं जो पूर्णमासी के ३, ४ दिन आगे पीछे चन्द्रमा का अधिक प्रकाश होने के कारण नहीं देख पड़ते। आकाश-गङ्गा भी जिनमें नन्हे नन्हे असंख्य तारे एक दूसरेसे मिले हुए देख पड़ते हैं इन चित्रोंमें नहीं दिखलायी गयी है। अंधेरी रातमें यह आकाश गंगा भी उत्तर की ओर प्रजापति, परशु, कश्यप, राजहंस और श्रवण मन्डलोंको नहलाती हुई वृश्चिक, धनु राशियोंको सींचती हुई प्रसिद्ध अग्रहायण और लुब्धक मण्डलको पुनर्वसु और प्रश्वासे अलग करती हुई उत्तरसे दक्खिन तक आकाशको घेरे हुए है।

जिस समय का चित्र बनाया गया है उससे कुछ पहले देखने पर पूर्व क्षितिज के पास वाले तारे उदय न होने के कारण नहीं देख पड़ेंगे और पच्छिम क्षितिज के पासवाले तारे कुछ ऊपर देखपड़ेंगे और याम्योत्तरवृत्तके पास वाले तारे कुछ पूरब की ओर हटे हुए देख पड़ेंगे। परन्तु यदि उपर्युक्त समय से कुछ पीछे आकाश देखा जाय तो पूर्व क्षितिजके तारे कुछ ऊपर उठे हुए देख पड़ेंगे और क्षितिजके पास कुछ नये तारे भी उदय हो चुके रहेंगे; पच्छिम क्षितिजमें कुछ तारे अस्त हुए रहेंगे और याम्योत्तरवृत्तके पासवाले तारे पच्छिमकी ओर ढल चुके रहेंगे।

२५ अक्षांशसे जो स्थान उत्तर हैं वहां उत्तर के कुछ और तारे देख पड़ेंगे। परन्तु जो स्थान दक्षिण हैं वहां दक्खिन के कुछ और तारे देख पड़ेंगे और तारोंकी ऊंचाई नीचाईमें भी कुछ अन्तर देख पड़ेगा परन्तु इससे कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

चित्र देखने की रीति—जिधर मुंह करके आकाशको देखना हो चित्रमें अंकित उसी दिशाको नीचे करके चित्र को खड़ाकर लीजिए। सबसे नीचे वह तारा है जो क्षितिज के पास देख पड़ेगा। नीचे से केन्द्र तक जो जो तारे चित्रमें दिखाये गये हैं क्षितिजसे खस्वस्तिक तक वही तारे उसी क्रमसे देख पड़ेंगे।

ज्येष्ठ मासका आकाश चित्र—

सिरके ऊपर— स्वाती खस्वस्तिकसे कुछ पूरब और दक्खिन है। पौन घण्टेमें यह यामोत्तरवृत्त पर आजायगा और उस समय खस्वस्तिकसे ५ अंश दक्खिन रहेगा।

उत्तर—सप्तर्षिके पहले ५ तारे यामोत्तरवृत्तसे पच्छिम हो गये हैं। छठा तारा वशिष्ठ प्रायः यामोत्तरवृत्त पर है। इसीके पास इसका युगल तारा अरुंधती भी ध्यानसे देखने पर देख पड़ेगा। सातवां तारा मरीचि कुछ पूरब है और १५ मिनट में यामोत्तरवृत्त पर आजायगा।

१०

सप्तर्षिके नीचे ४ मंद तारे पूरब से पच्छिम की ओर प्रायः एक रेखामें फैले हुए देख पड़ते हैं। यह अजगर की पूंछ की तरफ के तारे हैं, जिसका मुंह इस समय उत्तर-पूर्व दिशामें प्रायः उसी ऊंचाई पर देख पड़ता है जिस ऊंचाई पर लघु-सप्तर्षि के तारे उत्तर दिशामें अजगरकी लपेटके नीचे देख पड़ते हैं। उत्तर से कुछ पूर्व की ओर सिफियसके तीन तारे क्षितिजके पास ही देख पड़ते हैं।

उत्तर-पूरब—इस दिशामें क्षितिजके पास ही हंस मण्डलके तारे देख पड़ते हैं। यहांसे लेकर पूरब-दक्खिन के कोने तक एक चमकती हुई सड़क सी दिखाई पड़ती है। इसीको आकाश-गंगा कहते हैं। इसमें अनगिनत तारे आरम्भिक दशामें हैं। हंसके ऊपर बहुत ही चमकीला तारा अभिजित है। प्रथम श्रेणी का यह तीसरा तारा है। इसी के बगलमें पूरबकी ओर अजगर का मुख है।

पूरब—क्षितिज के पास ही कुछ उत्तर की ओर हटकर श्रवण नक्षत्र के तीन तारे हैं जिसके बीच का तारा बहुत चमकीला और प्रथम श्रेणी का है। श्रवण के ऊपर खस्वस्तिक और क्षितिज के बीचोबीच हरिकुलेश पुंज है जिसके सभी तारे मन्द ज्योतिके हैं। हरिकुलेश पुंज के कुछ ही ऊपर ५, ७ तारे मुकुट के आकार के देख पड़ते हैं। इसके तारे भी मन्द ज्योति के हैं। इसके और ऊपर खस्वस्तिक के पास स्वाती पुञ्ज है जिसका स्वाती नामक तारा प्रथम श्रेणी का चमकीला तारा है रङ्ग में कुछ कुछ लाल है।

पूरब दक्खिन—इस समय इस दिशा में वृश्चिक राशि के तारे अपनी अपूर्व छटासे आकाश को शोभायमान कर रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है मानों एक बड़ा भारी बिच्छू आकाशमें लटक रहा है जिसका मुख अनुराधा नक्षत्रके तीन तारों से बना हुआ है और पेट में ज्येष्ठा नक्षत्र के तीन तारे लटक रहे हैं। बीच वाला तारा भी प्रथम श्रेणीका और कुछ कुछ लाल है। बिच्छूका डंक दक्खिनकी ओर फैला हुआ है जिसमें बहुत से छोटे छोटे तारे चमक रहे हैं। क्षितिजके पास ही मूल नक्षत्रके तारे भी पास ही पास देख पड़ते हैं। कुछ पूरब की ओर परन्तु क्षितिजके पास ही पूर्वाषाढ़ नक्षत्रके तारे देख पड़ते हैं। मूल और पूर्वाषाढ़ के तारे धनुराशि में हैं जो पूरा उदय नहीं हुआ है। पूर्वाषाढ़के ऊपर चित्रमें मङ्गल ग्रहके दो स्थान दिखलाये गये हैं परन्तु अब वह यहाँ नहीं देख पड़ेगा। अनुराधाके ऊपर विशाखा नक्षत्रके दो तारे दहने बायें फैले हुए देख पड़ते हैं। ये बहुत चमकीले नहीं है परन्तु बड़े महत्वके हैं।

दक्षिण—इस दिशामें क्षितिजके पासही सेन्टोरी पुंजके दो तीन तारे प्रथम श्रेणीके हैं। ये इतने दक्खिन हैं कि हम काशी प्रयाग निवासियों को एक घन्टेसे अधिक नहीं दिखाई पड़ते।

लखनऊ वालोंको इससे भी कम समय तक देख पड़ते हैं। अलीगढ़, बरेली वालोंको कठिनाईसे देख पड़ेंगे और इससे भी उत्तर रहने वालोंको नहीं देख पड़ेंगे। कुछ पच्छिम की ओर क्षितिजके पास ही दूसरी श्रेणीके चार तारे पास ही पास देख पड़ते हैं। यह भी एक घन्टे से अधिक नहीं देख पड़ते।

खस्वस्तिक और दक्षिण क्षितिजके मध्यसे कुछ और ऊपर प्रथम श्रेणी का चित्रा तारा है जो अपनी स्थिति के कारण बड़े महत्व का है। यह प्रायः क्रान्तिवृत्त पर है। आजसे कोई सवा सोलह सौ वर्ष पहले शरद सम्पात इसी तारे के पास होता था अर्थात् जब सूर्य यहां पहुंचता था तब वह दक्षिण गोल में जाता था। आजकल शरद सम्पात इस तारे से २२ अंश ५० कला के लगभग पच्छिम हो गया है और उस जगह है जहां १२ वें नक्षत्र के पास श अक्षर लिखा हुआ है। महाराष्ट्र प्रान्त में इसी तारेके सम्बन्ध में बड़ा वादविवाद चल रहा है। जो लोग कहते हैं कि अश्विनी नक्षत्र अथवा मेष राशि का आरम्भ उस बिन्दु से माना जाना चाहिए जिससे चित्रा तारा ठीक १८० अंश दूर है वे लोग चैत्र पक्ष के कहलाते हैं। इस पक्ष के समर्थक आचार्य वेंकटेश बापूजी केतकर तथा अन्यान्य सज्जन हैं। इनके विरुद्ध एक दूसरा पक्ष है जिसके समर्थक लोकमान्य तिलक भी थे। इनका मत है कि अश्विनी का आरम्भ स्थान वह बिन्दु है जिस से चित्रा तारा १८४ अंश के लगभग दूर है। यह विन्दु रेवती नक्षत्र में है (देखो भाद्रपद मास का चित्र)। इसी लिए इस पक्ष को रैवत पक्ष कहते हैं।

चित्रा से पच्छिम कुछ नीचे की ओर हस्त नक्षत्र के ५ तारे हाथ की अंगुलियों की तरह फैले हुए देख पड़ते हैं। हस्त के ऊपर कन्या राशिके कई मंद मंद तारे देख पड़ते हैं। नीचेकी ओर के दो तीन तारे जो प्रायः सीधी रेखा में हैं क्रान्तिवृत्त के पास ही प्रायः उसी के समानान्तर देख पड़ते हैं। इस रेखाके पच्छिम सिरे पर जो तारा है उसी के पास आजकल शरद सम्पात विंदु है, इसलिये जब सूर्य यहां आता है तब वह दक्षिण गोल में जाता है। इसी से चित्रा तारा २३ अंश के लगभग दूर है।

दक्षिण पच्छिम—इस दिशा के आकाश में कोई महत्व के तारे नहीं हैं। बहुत मन्द २ तारों की एक वक्र रेखा चित्रा और हस्त नक्षत्रों के नीचे से होती हुई पच्छिम दिशा तक फैली हुई है जिसके पच्छिमी सिरे पर एक तारा कुछ चमकीला है।

पच्छिम—क्षितिजके पास प्रश्वा नामक तारा देख पड़ता है। इससे उत्तर की ओर कई मन्द मन्द तारे एक वक्र रेखामें देख पड़ते हैं जिसके उत्तरी छोर पर दो प्रथम श्रेणी के तारे हैं। यही पुनर्वसु नक्षत्र के दो तारे हैं। प्रश्वासे पुनर्वसु तक मन्द मन्द तारों की जो वक्र रेखा बन जाती है वह मिथुन राशि है। प्रश्वाके ऊपर बहुत मद मंद तारों का एक वक्र है जिसे कर्क राशि कहते हैं। यह ठीक पच्छिमको ओर देख पड़ता है। इससे ऊपर कुछ ही पच्छिम की ओर हटकर खस्वस्तिक और क्षितिज के बीचो बीच सिंह राशि के तारे अपनी अपूर्व छटा दिखा रहे हैं। सिंहकी गर्दन नोचेकी ओर लटकी हुई है जिसमें ६, ७ तारे सहज ही देखे जा सकते हैं जिनका आकार हँसियाकी तरह जान पड़ता है। दक्खिन वाला अथवा बायीं ओर वाला तारा कुछ कुछ लाल है और प्रथम श्रेणीका है। इसीको मघाका योग तारा या केवल मघा तारा कहते हैं। यह प्रायः क्रान्तिवृत्त पर है इसलिए बड़े महत्वका है। इससे दहने उत्तरकी ओर एक और तारा है जो चमकमें मघासे कुछ कम है परन्तु इतना

चमकीला अवश्य है कि पूर्णमासीकी रातमें भी देखा जा सकता है। मघाके ऊपर दो तारे दहने बायें चमकते हुए देख पड़ते हैं। ये पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके तारे हैं और सिंहराशिकी कमरमें हैं। सिंहराशिकी पूंछमें पूर्वाफाल्गुनीके कुछ और ऊपर उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्रका अकेला तारा है। इस प्रकार यह प्रकट है कि पच्छिम दिशामें दो राशियोंके तारे अपनी चमकसे सहज ही लोगोंको आकर्षित कर सकते हैं; केवल कर्कराशिके तारोंको मिथुन और सिंहराशियोंके बीच कुछ दक्खिनकी ओर ध्यानसे देखना पड़ता है।

उत्तर पच्छिम—इस दिशामें क्षितिजके पास प्रजापति मण्डल-के केवल प्रजापति नामका तारा देख पड़ता है। ब्रह्महृदय तारा कुछ पहले अस्त हो गया है। इसके सिवा क्षितिजके पास कोई चमकीला तारा अथवा तारा समूह नहीं है। बहुत ऊपर पहले बतलाये हुए सप्तर्षिमण्डलके तारे देख पड़ते हैं। सप्तर्षिमण्डल-के दो ध्रुव-सूचक तारों क्रतु और पुलहकी रेखामें दक्खिनकी ओर एक तारा है इससे और दक्खिन परन्तु पूर्वाफाल्गुनीके उत्तर दोनोंके बीचमें बहुत मन्द मन्द तारे सर्पाकार देख पड़ते हैं और पुराणोंमें प्रसिद्ध नहुष राजाकी याद दिलाते हैं जो अगस्त ऋषिके शापसे सर्प बन गया था।

इस प्रकार ज्येष्ठमासके आकाश चित्रका वर्णन पूरा हुआ।

भाद्रपद मासका आकाश-चित्र।

सिरके ऊपर—इस समय तीन प्रसिद्ध नक्षत्रमण्डल खस्वस्तिक-के आसपास देख पड़ते हैं। श्रवणमण्डलके तीन तारे प्रायः याम्योत्तरवृत्त पर खस्वस्तिकसे कुछ दक्खिन हटे हुए देख पड़ते हैं। इन्हींके पास धनिष्ठा नक्षत्रके चार तारे बहुत पास पास परन्तु मंदज्योतिके हैं। यह नक्षत्र ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़े महत्वका है। वेदांग-ज्योतिष-कालमें जब सूर्य यहां पहुँचता था तभी उत्तरायणका आरम्भ होता था।

खस्वस्तिकके पास ही एक मन्द तारा है जो हंसकी पूंछका अन्तिम तारा है। इससे उत्तर पूर्व दिशामें एक ही रेखामें दो और तारे हैं जो इससे अधिक चमकीले हैं परन्तु उत्तर वाला इनमें सबसे अधिक चमकीला है। बीचवाले तारेके अगल बगल पहली रेखासे समकोण बनते हुए प्रायः एक ही रेखामें दो तीन तारे और देख पड़ते हैं जो हंसके पंखकी तरह जान पड़ते हैं। यह हंस आकाशगङ्गामें पंख फैलाये तैरता हुआ जान पड़ता है। हंसके पच्छिम अभिजित नक्षत्र है जिसका सबसे चमकीला तारा भी अभिजित नामसे प्रसिद्ध है। यह आकाशगङ्गासे बाहर पच्छिमकी ओर है। चमकमें इस तारेका स्थान तीसरा है।

आकाश गङ्गा—यह चित्रमें नहीं दिखलाई गयी है परन्तु इस समय इसका दृश्य बहुत ही मनोरम है। इस समय यह उत्तर-पूर्व क्षितिजसे दक्षिण-पच्छिम क्षितिज तक फैली हुई है। उत्तर-पूर्व दिशामें इस समय परशु या पारसीक मण्डल उदय हो रहा है। वहींसे आकाश गङ्गाका भी आरम्भ देख पड़ता है जो राहमें काश्यप मण्डलको नहलाती हुई सिफियसके बगलसे होती हुई हंसको अच्छी तरह शराबोर कर देती है। हंसके उत्तरवाले तारेसे ही इसकी दो शाखाएं हो जाती हैं जो प्रायः समानान्तर दिशामें आगे बढ़ती हुई दक्षिण पच्छिम क्षितिजके पास फिर मिलती हुई जान पड़ती हैं। पूर्ववाली शाखा श्रवण नक्षत्रको परिप्लावित करती हुई धनुराशिके मूल और पूर्वाषाढ़ नक्षत्रोंको लीन करती हुई क्षितिजमें गुप्त हो जाती है। पच्छिमवाली शाखामें चमकीले तारे बहुत कम हैं। दक्षिण-पच्छिम क्षितिजके

पास वृश्चिकके डकके तारोंको डुबाती हुई यह भी गुप्त हो जाती है। ज्येष्ठा नक्षत्र इस शाखाके पच्छिमी तट पर देख पड़ता है।

उत्तर—लघु सप्तर्षिके तारे ध्रुवसे पच्छिमकी ओर फैले हुए हैं। लघु सप्तर्षिके कुछ और पच्छिम अजगर लटका हुआ देख पड़ता है जिसके मुखके चार तारे अभिजितके पास तक फैले हुए देख पड़ते हैं। अजगरकी पूंछके पास सप्तर्षि मण्डलके ध्रुव-सूचक तारे उत्तर और उत्तर-पच्छिम दिशाओंके बीच क्षितिज के पास ही देख पड़ते हैं। इस सप्तर्षि मण्डलके अन्य तारे उत्तर-पच्छिम दिशामें देख पड़ते हैं।

ध्रुव ताराके पूरब कुछ ऊपरकी ओर सिफियसके ४ मंद तारे हैं जिसके और पूरब काश्यप मण्डलके तारे अंग्रेज़ीके डबलू (W) अक्षरका आकार बनाते हुए देख पड़ते हैं। काश्यप मण्डलसे नीचे उत्तर-पूर्व दिशामें परशु या पारसीक मण्डलके तारे क्षितिजके पास ही हैं।

पूर्व—पूर्व और उत्तर-पूर्व दिशाओंके बीच क्षितिजके पास ही अश्विनी नक्षत्र के तीन तारे उदय होते हुए देख पड़ते हैं। इसके ऊपर अंतरमदा (Andromeda) का वक्र देख पड़ता है जिसका आरम्भ पारसीक मण्डलके पाससे होता है। इस वक्र पर पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपद नक्षत्रोंके उत्तरवाले तारे हैं। इन दो नक्षत्रोंके दो दो तारे मिलकर एक वर्गाकार बनाते हैं जिसे भाद्रपदावर्ग अथवा (square of Pegasus) कहते हैं। वर्गके नीचेवाले दो तारे उत्तराभाद्रपद नक्षत्रमें हैं और ऊपरवाले तारे पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमें हैं। उत्तराभाद्रपदके तारोंकी रेखाकी सीधमें दक्खिनकी ओर बढ़ने पर प्रायः उतनी ही दूरी पर जितनी दूरी पर ये दो तारे आपसमें हैं वसंत-संपात विन्दु है जहां क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त एक दूसरेको काटते हुए जान पड़ते हैं। जब सूर्य यहां देख पड़ता है तभी वसंत ऋतुका आरम्भ होता है और सूर्य उत्तर गोलमें आता है। इसी दिन दिन रात समान होते हैं और इसी समयसे दिन बड़ा और रात छोटी होने लगती है।

पूर्व-दक्षिण—इस दिशामें चमकीले तारे बहुत कम हैं। ज्येष्ठ-के महीनेमें इस दिशामें जितने तारे थे वे सब इस महीनेमें दक्षिण-पच्छिम दिशामें हो गये हैं। क्षितिजके पास एक प्रथम-श्रेणीका तारा (Fomalhaut) अवश्य देख पड़ता है जिसे हिन्दीमें कुम्भज कहना उचित प्रतीत होता है यद्यपि कुम्भजका पर्याय अगस्त्य तारा इससे बहुत भिन्न है। इसका नाम कुम्भज मैंने दो कारणोंसे रखा है। एक कारण तो यह है कि यह कुम्भ राशिके पास है दूसरा कारण यह है कि यह ७, ८ बजे संध्याके समय प्रायः आश्विनके महीनेमें दिखाई देने लगता है जब वर्षा ऋतुका अन्त होता है। जबकि अगस्त्य नामक तारेका उदय वर्षा ऋतुके ठीक मध्यमें होता है और प्रातःकाल केवल थोड़ी देर तक देख पड़ता है। कुम्भजसे कुछ और दक्षिणकी ओर तीन तारे समकोण त्रिभुजके तीन कोण-विन्दु बनाते हुए देख पड़ते हैं। इनका नाम सारस रखा गया है क्योंकि अंग्रेजीमें इन्हें Crane कहते हैं।

कुम्भजके ऊपर कुछ पूरबकी ओर हटे हुए कुम्भराशिके मन्द मन्द तारे हैं। सारसके ऊपर और श्रवण नक्षत्रके नीचे दोनोंके बीचमें मकरराशिके मन्द मन्द तारे हैं।

दक्षिण—इस दिशामें इस समय क्षितिजके पास कोई चमकीले तारे नहीं हैं। श्रवण नक्षत्र बहुत ऊपर खस्वस्तिकके पास देख पड़ता है

दक्षिण-पश्चिम—जैसे ज्येष्ठके महीनेमें दक्षिण-पूर्व दिशा बृश्चिक और धनु राशियोंके तारोंसे शोभायमान होती है इसी तरह इस महीनेमें दक्षिण-पश्चिम दिशा इन्हीं दो राशियोंके तारोंसे जगमगा रही है। यहां विशेषता यह है कि इस समय धनुराशिके सभी तारे, तथा पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंके भी तारे दिखाई पड़ रहे हैं। बिच्छूके और पश्चिम क्षितिजके पास विशाखा नक्षत्रके तारे भी दिखाई देते हैं।

पश्चिम—इस दिशामें इस समय कोई तारे विशेष महत्वके नहीं हैं। विशाखाके तारे कुछ दक्खिन हट कर हैं। स्वातीका तारा कुछ उत्तरकी ओर हटा हुआ है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि प्रायः इसी दिशामें स्वातीका तारा है। स्वाती मण्डलके ऊपर मुकुट और मुकुटके ऊपर हरिकुलेश मण्डलके मन्द मन्द तारे हैं जिनकी चर्चा ज्येष्ठ मासके आकाश चित्रके पूरब दिशाके वर्णनमें अच्छी तरह की जा चुकी है।

मार्गशीर्ष मासका आकाश चित्र।

इस मासमें आकाश बहुत स्वच्छ रहता है। बैशाख, जेठ महीनोंकी धूल और सावन भादोंके बादल कहीं देख नहीं पड़ते और न माघ, फागुनके कुहरासे ही दृष्टिको बाधा पहुँचती है। इसलिए इस महीनेके आकाश-चित्रसे ज्ञान और मनोरंजन दोनों होते हैं। इस महीनेके आकाशमें पूरब दिशामें बहुत से नये तारे और तारा समूह देख पड़ते हैं जिनकी चर्चा प्राचीन साहित्यमें भी अनेक स्थलों पर की गयी है।

उत्तर—क्षितिजके पास लघुसप्तर्षिके तारे लटके हुए देख पड़ते हैं। इस समय इनमें ध्रुवतारा सबसे ऊपर है। लघुसप्तर्षिके ऊपर सिफियसके तीन मन्द तारे पश्चिमकी ओर फैले हुए देख पड़ते हैं। क्षितिजसे जितने ऊपर ध्रुवतारा है, ध्रुवतारासे उतने ही ऊपर काश्यप मण्डल अंग्रेजीके एम् (M) अक्षरके आकारका देख पड़ता है। इसके चार बड़े तारे यामोत्तरवृत्तको लांघकर पश्चिमकी ओर चले गये हैं केवल एक तारा यामोत्तरवृत्तसे कुछ ही पूरब है। काश्यप मण्डलके ऊपर अन्तरमदाका वक्र है जिसका केवल एक तारा अब यामोत्तरवृत्तसे पूरब है और सब पश्चिमकी ओर चले गये हैं।

सिरके ऊपर—अश्विनी नक्षत्र बिलकुल सिर पर देख पड़ता है।

उत्तर पूरब—इस दिशामें कुछ पूरबकी ओर और हटकर पुनर्वसु के दो तारे उदय हो चुके हैं। इनके ऊपर ठीक उत्तर-पूर्व दिशामें प्रजापति मण्डल चमक रहा है जिसके पांच मुख्य तारे पंचभुज क्षेत्र बनाते हुए जान पड़ते हैं। इस मंडलके उत्तरवाले दो तारे बहुत तेजवान हैं और नीचे ऊपर देख पड़ते हैं। नीचेवाले तारेको प्रजापति और ऊपरवालेको ब्रह्महृदय कहते हैं। चमकमें इसका स्थान चौथा है। आकाशमें सबसे चमकीला तारा लुब्धक है जो इस समय पूर्वदिशासे कुछ दक्खिन है और क्षितिजके पास ही देख पड़ता है। दूसरा तारा अगस्त्य है जो अभी क्षितिजके ऊपर नहीं आया है। तीसरा तारा अभिजित है जो उत्तर-पश्चिम क्षितिजके पास देख पड़ता है और चौथा तारा ब्रह्महृदय है। ब्रह्महृदयके सम्मुख पंचभुज क्षेत्रके दक्खिन कोने पर अग्नि नामक तारा है।

प्रजापति मण्डलके ऊपर पारसीक मण्डल या परशुमण्डल है जिसके दक्षिण सिरे पर कृत्तिका नक्षत्रके ६ तारे पास ही पास देख पड़ते हैं। पारसीक मण्डलके ऊपर प्रायः सिर पर अश्विनी नक्षत्रके तीन तारे हैं जिनमें दो बड़े हैं।

पूर्व—इस दिशामें प्रश्वा नामक प्रथम श्रेणीका तारा उदय हो चुका है परन्तु क्षितिजके बिल्कुल पास है। इससे कुछ दक्षिण हटकर क्षितिजके पास ही लुब्धक अपनी दिव्य ज्योतिसे चमक रहा है। लुब्धक और प्रश्वाके ऊपर प्रसिद्ध आग्रहायण मण्डल (Orion) है जो अपनी दिव्य ज्योति, आकार और प्रसिद्धिके कारण अत्यन्त प्राचीन कालसे महत्वपूर्ण समझा जाता है। लोकमान्य तिलक ने इसीके सूक्ष्म विचारसे अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ओरायन (Orion) में सिद्ध किया है कि वेदके जिस मंत्रमें इसकी चर्चा की गयी है वह आजसे कमसे कम ६००० वर्ष पहले प्रकाशित हुआ होगा। इसको कालपुरुष भी कहते हैं। इसकी चर्चा यूनानी और पारसी साहित्यमें बहुत आलंकारिक भाषामें की गयी है। इस मण्डलके बीचमें तीन चमकीले तारे प्रायः एक ही रेखामें पास ही पास देख पड़ते हैं जिन्हें इल्वक कहते हैं। इनमें सबसे ऊपर वाला तारा प्रायः विषुवद्‌वृत्त पर है इसलिए क्षितिजके जिस विन्दु पर यह तारा उदय होता है वही ठीक पूर्व दिशा है और जहां अस्त होता है वही पच्छिम दिशा है। आग्रहायणके चारों कोनों पर चार तारे अपनी अपूर्व छटा दिखलाते हैं। इनमें उत्तरवाला नीचेका तारा कुछ कुछ लाल रंगका देख पड़ता है। इसे ही आर्द्रा नक्षत्रका योग तारा कहते हैं। इसके ऊपर वाला तारा मृगशिरा नक्षत्रका योग तारा कहलाता है। दक्खिनकी ओरका ऊपरवाला तारा भी प्रथम श्रेणीका है। गाववाले इस मण्डलको हलाहली कहते हैं और जाड़ेकी रातमें इसकी स्थितिसे समयका पता लगाते हैं। आग्रहायण मण्डलके दक्खिन कई तारे मंद ज्योतिके हैं जिनसे शशकका आकार बना हुआ जान पड़ता है। इसीलिए इनको शशक (Leporis) कह सकते हैं।

आग्रहायणके ऊपर कुछ उत्तर हटकर रोहिणी नक्षत्र है जिसका नीचे वाला तारा प्रथम श्रेणीका कुछ कुछ लाल रंगका है। इसी रंगके कारण इसका नाम रोहिणी पड़ा। रोहिणी नक्षत्रके ५ तारोंसे जो आकार बनता है वह अङ्गरेजीके (V) अक्षर के सदृश होता है। रोहिणी नक्षत्रके उत्तर प्रजापति मडल और ऊपर कुछ उत्तरकी ओर कृत्तिका पुंज है जिसे गांव वाले कचपचिया कहते हैं। इससे भी रातको समय जाननेका काम लिया जाता है। कृतिकाके ऊपर प्रायः शिर पर अश्विनी नक्षत्र है।

जिन तारा पुंजोंकी चर्चा इस समयकी गयी है और जो इस समय पूर्व दिशामें देख पड़ते हैं जाड़ेकी ऋतुमें रातभर दिखाई देते हैं इसलिए इनको शीतकालके नक्षत्र (Winter constellations) कहते हैं।

पूर्व-दक्षिण—इस दिशामें कोई चमकीले तारे नहीं देख पड़ते। शशक कुछ पूरब है जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है।

दक्षिण—इस दिशामें क्षितिज के पास तीन तारोंका पुंज है जिसे अङ्गरेजीमें फीनिक्स कहते हैं। बहुत ऊपर तिमिमंडल देख पड़ता है जिसका मुंह ह्वेल मछलीके आकारका नीचेकी ओर लटका हुआ और फैला हुआ जान पड़ता है। इसके तारे सभी धीमी ज्योति के हैं।

दक्षिण-पच्छिम—इस दिशामें इस समय सारस और कुम्भज या दूसरा अगस्त देख पड़ते हैं दूसरेकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

पच्छिम—दक्षिण और पच्छिम दिशाओंके बीच क्षितिजके पास मकर राशिके मन्द मन्द तारे फैले हुए हैं। इनके ऊपर कुंभ राशिके तारें भी देख पड़ते हैं।

पश्चिम—इस दिशामें क्षितिजके पास ही श्रवण नक्षत्रके तारे देख पड़ते हैं श्रवणके ऊपर कुछ उत्तर हटकर धनिष्ठाके तारे हैं। श्रवण के बहुत ऊपर पूर्वा भाद्रपद और उत्तरा-भाद्रपदके तारे हैं जिनका वर्गाकार भी बहुत ही साफ़ साफ़ देख पड़ता है वर्गाकार क्षेत्रके नीचेवाली भुजके दो तारे पूर्वाभाद्रपद और ऊपरवाले भुजके दो तारे उत्तरा-भाद्रपदके तारे कहलाते हैं।

उत्तर-पश्चिम—इस दिशामें अभिजित नक्षत्र क्षितिजके पासही देख पड़ता है। अभिजितके ऊपर हंसमंडलके तारे हैं।

इससे और उत्तर क्षितिजके पास अजगरके मुखके कुछ तारे देख पड़ते हैं।

आकाश-गंगा—इस समय आकाशगंगा पूर्व क्षितिजके पाससे उत्तर-पश्चिम क्षितिज तक फैली है। पूर्व क्षितिजमें यह प्रश्वाको उत्तर तट पर और लुब्धकको दक्खिन तटपर छोड़ती हुई आग्रहायणके उत्तर, अग्नि और ब्रह्महृदयके बीचसे होती हुई पारसीक मंडल और काश्यप मंडलके मध्य हंस मंडलके पास दो शाखाओंमें बटती हुई और श्रवणको दक्खिन तटपर छोड़ती हुई पश्चिम और उत्तर-पश्चिम क्षितिजमें विलीन हो जाती है।

फाल्गुन मासका आकाशचित्र

सिर पर—मिथुनराशि इस समय ठीक सिर पर है। पुनर्वसुके दोनों तारे प्रायः खस्वस्तिक पर और प्रश्वा कुछ दक्खिन है।

उत्तर—लघुसप्तर्षि ध्रुवतारासे पूर्वकी ओर फैला हुआ है। ध्रुवतारासे पश्चिम सिफियसके तीन तारे हैं जिनमेंसे एक क्षितिजसे बिलकुल मिला हुआ है। लघुसप्तर्षिके पूर्व अजगरकी लपेट है जिसका मुंह अभी क्षितिजसे नीचे है।

उत्तर-पूर्व—इस दिशामें सप्तर्षिमंडलके सातों तारे दिखाई पड़ रहे हैं। सप्तर्षिके ऊपर सर्पाकार मंद मंद तारे हैं।

उत्तर-पूर्व और पूर्व दिशाओंके बीच क्षितिजके पासही कुछ कुछ लाल रंगका स्वाती तारा है।

पूरब—इस दिशामें क्षितिजके पास कन्या राशिके तारे दिखाई पड़ रहे हैं। अभी चित्रा उदय नहीं हुआ है। कन्या राशिके ऊपर सिंहराशिके सब तारे दिखाई पड़ रहे हैं। नीचेवाला अकेला तारा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रका है। इसके ऊपर दो तारे पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके हैं। पूर्वाफाल्गुनीके ऊपर मघा नक्षत्रके तारे हंसियाके आकारके देख पड़ते हैं। इस हंसियाके नीचेके दो तारे बहुत चमकीले हैं जिनमें दक्खिनवाला तारा मघाका योगतारा है यहभी कुछ कुछ लालरंगका देख पड़ता है।

हंसियाके ऊपर बहुत मंद मंद तारे हैं। उत्तरवाले तारोंको पुष्यनक्षत्र और दक्खिन वाले तारोंको आश्लेषा नक्षत्र कहते हैं। यहीं कर्कराशि भी है। पुनर्वसु और मघाके बीचमें जितने मंद मंद तारे हैं सभी कर्कराशिमें कहे जा सकते हैं।

पूर्व और पूर्व-दक्षिण दिशाओंके बीच ४,५ तारे क्षितिज.. पासही देख पड़ते हैं। ये हस्तनक्षत्रके तारे हैं।

पूर्व क्षितिजसे लेकर सिरके ऊपरतक वरन् कुछ और पश्चिम तक जितने नक्षत्र क्रान्तिवृत्तके पास देख पड़ते हैं उनको वर्षाके नक्षत्र कहते हैं। इस लिए नहीं कि ये वर्षा ऋतु में देख पड़ते हैं वरन् इस लिए कि जब सूर्य इन नक्षत्रों में

रहता है तभी यहाँ वर्षा होती है। वर्षा के नक्षत्रों के नाम क्रमानुसार यह हैः—आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रा।

पूर्व-दक्षिण—इस दिशामें कोई प्रसिद्ध तारा इस समय नहीं देख पड़ता।

दक्षिण—इस दिशामें क्षितिजके पास कई तेजवान तारोंका समूह है जा जहाजके आकारका देख पड़ता है इसी लिए इसको नौका पुंज (Argo Navis) कहते हैं। इस समूह का प्रधान तारा अगस्त याम्योत्तरवृत्तसे पच्छिम हो गया है और क्षितिजके पास देख पड़ता है। चमकमें इसका स्थान दूसरा है। पहला स्थान लुब्धक को प्राप्त है जो इससे ठीक ऊपर देख पड़ता है। नौका पुंज के ऊपर लुब्धक मंडल है।

पच्छिम दक्षिण—इस दिशामें क्षितिजके पास कोई चित्ताकर्षक नक्षत्र नहीं है। कुछ ऊपर शशक और इससे भी ऊपर प्रसिद्ध आग्रहायण मंडल है। आग्रहायण मंडल के ऊपर प्रायः सिर पर मिथुन राशि के तारे हैं।

पच्छिम—इस दिशा में कुछ उत्तर को हटकर अश्विनी नक्षत्र क्षितिजके पास हो है। इससे ऊपर २,३ बहुत मंद तारे हैं जिसे भरणी नक्षत्र करते हैं। भरणीसे कुछ और उत्तर तीन तारे त्रिकोण बनाते हुए देख पड़ते हैं। भरणी के ऊपर कुछ पच्छिम की ओर कृत्तिका नक्षत्र है। कृत्तिका से कुछ ऊपर और पच्छिम रोहणी नक्षत्र है। कृत्तिका से उत्तर पारसीक मंडल है इन दोनों नक्षत्रों के ऊपर प्रजापति मंडल है जिसका अग्नि तारा कृत्तिका के ऊपर और ब्रह्महृदय पारसीक के ऊपर है। ब्रह्म हृदय के ऊपर प्रजापति का तारा है। पारसीक और प्रजापति मंडलों के उत्तर वाले तारे ब्रह्महृदय, प्रजापति आदि उत्तर पच्छिम दिशामें देख पड़ते हैं।

त्रिकोण के उत्तर अंतरमदा के कुछ तारे क्षितिज के पास देख पड़ते हैं।

उत्तर पच्छिम—इस दिशा में पारसीक और प्रजापति मंडलके उत्तरवाले तारे हैं जिनकी चर्चा अभी हो चुकी है। इस दिशा से कुछ उत्तर और हटकर काश्यप मंडल के तारे क्षितिज के पास हैं।

आकाश गंगा—इस समय उत्तर पश्चिम के कोने से दक्खिन क्षितिज तक फैली हुई है। उत्तर-पच्छिम क्षितिजसे आरंभ कर के इसमें या इसके आसपास काश्यप, पारसीक, प्रजापति, आग्रहायण, लुब्धक मंडल और नौका पुंजके तारे हैं।

इन चार मासों के आकाश चित्रों और इनके वर्णनों से आकाश के सभी सभी प्रधान तारों और तारा समूहों की जानकारी की जा सकती है। इनकी सहायता से रात्रि में जब आकाश निर्मल हो दिशा, देश और काल का ज्ञान सहज ही हो सकता है।

इस प्रकार नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार नामक आठवें अध्यायका विज्ञान-भाष्य समाप्त हुआ।

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Yijnana, the Hindi Organ of the Yernacular Scientific Society Allahabad

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफेसर ब्रजराज,
एम० ए०, बी० एस-सी०, एल० एल० बी०

श्रीयुत सत्यप्रकाश,
विशारद एम० एस-सी

भाग २६
तुला-मीन १९८४

प्रकाशक
विज्ञान परिषत् प्रयाग ।

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

औद्योगिक रसायन

गैस रक्षक और धुएँके परदे—[लेo श्रीo पंo यमुनादत्ततिवारी एम. एस.-सी.] ... २

चाँदी की कलई करना—[लेo श्रीo कालीप्रसादजी वर्मा बी. एस.-सी विशारद] ... १०३

जीवन चरित्र

लुई पास्टयूर—[लेo श्री सत्यप्रकाश एम. एस-सी] २०३

स्वर्गीय श्रीo श्रीनिवास रामानुजन एफo आरo एसo—[लेo श्री डाo प्यारेलाल एमo एo डीo फिल इत्यादि] ५१

स्वान्ते आरहीनियस—[लेo श्रीo कुंजविहारी मोहनलाल बी. एस-सी] १६

जीव-विज्ञान

संसृति तथा विकास—[लेo श्री 'गोपाल'] ... १८५

ज्योतिष

वह तारा कितनी दूर है—[लेo श्री डाo गोरखप्रसादजी डी. एस.-सी.] ... ५७

सूर्यसिद्धान्त—[—लेo श्रीo महावीर प्रसाद श्रीवास्तव बी. एस-सी. विशारद] ... ४१-११३-१६९-२४४

भौतिक शास्त्र

चश्मे—[लेo श्री रघुवीर प्रसाद माथुर] ... १५६

रेडियो—लेo श्रीo गोविन्दराम तोशनीवालजी एम एस-सी १९२

विद्युन्मय धूलके बादल—लेo श्रीदौलतसिंह कोठारी बी. एस.-सी १८

वैज्ञानिक परिमाण—लेo श्री डाo निहालकरण-सेठी डी. एस-सी.] ... ३७-९१-२३७

हवा—लेo श्री धर्मनाथ प्रसाद कोहली बी. एस-सी ६६-१४५

रसायन

उदौष और कीतोनिक अम्ल—[लेo श्रीo सत्यप्रकाश एम. एस.-सी.] ८२

कर्बन और शैलम्—लेo श्रीo सत्यप्रकाश एम. एस-सी. ... १०६—१६१

द्विभस्मिक अम्ल और उनके यौगिक—[लेo श्रीo सत्यप्रकाश एम. एस-सी.] ... २१७

मक्खन, घी और पनीरकी जाँच—[लेo श्रीo रामचन्द्रभार्गव एम. बी. बी. एस.] ... १८७

वानजावीन समुदाय—[लेo श्री सत्यप्रकाश एम. एस-सी] २८५

शर्कराएँ अथवा कर्बउदेत—[लेo श्री सत्यप्रकाश एम. एस.-सी. २३

संक्षीणम् और आंजनम्—[लेo श्री सत्यप्रकाशजी एम एस.-सी.] ... ...

सन्धकम् और पांशुजम्—[ले० श्री सत्यप्रकाश एम. एस-सी० ... ... २१७

वनस्पति शास्त्र

तना या पेड़ी—[ले० श्री० पं० शंकर रावजोशी] ११
पत्ता और रोम—[ले० श्री० पं० शंकरराव जोशी] १५२
पत्तों के कार्य—[ले० श्री० पं० शंकरराव जोशी] १७८

वैद्यक और स्वास्थ्य

रोगोपचार के साधन—ले० श्री सत्यप्रकाश एम. एस. सी.] १०५
संसार वासियों का भोजन—[ले० श्री डा० नीलरत्न धर डो. एस-सी, आई. ई. एस. तथा सत्यप्रकाश] ७२
समुद्रयात्रा की बीमारी—ले० श्री हरिशंकरजी २१५

साधारण

कविता और विज्ञान—[ले० श्री० सुदक्षिणा देवी] १५१
क्रान्तिकारी विद्वान्—[ले० श्री० तत्ववेत्ता] ... ४६
दीमक की बुद्धिमत्ता—[ले० श्री० पं० शंकरराव जोशी] ८८
देवासुर संग्राम—[ले० श्री० तत्ववेत्ता] ... १
मिसमेयो—[ले० श्री० तत्ववेत्ता] ... २०६
वार्षिक वृत्तान्त १०१
विचित्र कल्पना—[ले० श्री० तत्ववेत्ता] ... १२६
वैज्ञानिकीय—[ले० श्री प्रकाशचन्द्रदास एम बी, अमीचन्द्र विद्यालंकार और सम्पादक— ३३-७६-१६६-२३६
समालोचना—[ले० श्री० सत्यप्रकाश एम. एस. सी.] ३६-८०-२३६

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।≈)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को ज़रूर पढ़ें। ... १॥)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

मध्यमाधिकार ... ... ॥≈)

स्पष्टाधिकार ... ... ॥)

त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।≈)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।≈)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... १)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।≈)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—हमारे शरीरकी कथा—ले०—डा० ... बी०के मित्र, एल. एम. एस. ... ... -)॥

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

भाग १ ... ... २॥)

भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥≈)

वैज्ञानिक कोष— ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।